डा० अमृतलाल नागर के उपन्यासों में विद्यमान वस्तु एवं शिल्प–वैभव का अनुशीलन

बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, की पी०एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

सन् 2007 ई०

BUNDELKHAND UNIVERSITY
Central Library
Acc. No. 7263
Date 30/07/09
JHANSI

निर्देशक :
डा० (श्रीमती) नीलम मुकेश
रीडर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उरई, (उ०प्र०)

अनुसंधाता :
सत्येन्द्र कुमार सिंह
ग्राम व पोस्ट – महरामऊ
जनपद – उन्नाव (उ०प्र०)

शोध केन्द्र :

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय

उरई, (उ०प्र०)

डा० अमृतलाल नागर के उपन्यासों में विद्यमान वस्तु एवं शिल्प वैभव का अनुशीलन

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या से–तक
एक	उपन्यास का स्वरूप, परिभाषाएँ, प्रकार, संक्षिप्त इतिहास	08–33
	संकेत सन्दर्भ	34–35
दो	नागर पूर्व हिन्दी उपन्यासों में वस्तु एवं शिल्प का प्रयोग	37–52
	वस्तु एवं शिल्पगत पीठिका की दृष्टि से अमृतलाल नागर का अभिनवत्व	52–56
	नागर–साहित्य के विकास के चरण	56–58
	संकेत सन्दर्भ	59
तीन	नागरजी की जीवन दृष्टि	61–68
	साहित्य–दर्शन	68–70
	वस्तु एवं शिल्पगत विचार	70–73
	संकेत सन्दर्भ	74–75
चार	1. वस्तु एवं शिल्प का सैद्धान्तिक अनुशीलन	77–101
	2. उपन्यासों की रचना प्रक्रिया और वस्तु, शिल्प की कलात्मक स्थिति	101–104
	3. नागर के उपन्यासों की रचना प्रक्रिया, वस्तु–शिल्पगत प्रयोग	104–109
	(क) नागरजी की उपन्यास–सृष्टि	109–117
	संकेत सन्दर्भ	118–123

पाँच	अमृतलाल नागर के उपन्यासों में वस्तुविधान	125–214
	संकेत सन्दर्भ	215–222
छह	1. पात्र एवं चरित्रांकन शिल्प	224–225
	(क) पात्रों का चयन, निर्माण	225–227
	(ख) पात्रों का वर्गीकरण	227–228
	(ग) पात्रों का चारित्रिक अनुशीलन (घ) नारी–पुरुष	{228–308}
	2. चरित्रांकन शिल्प की विविध भंगिमाएँ	308–350
	संकेत सन्दर्भ	351–366
सात	1. संवाद–शिल्प	368–409
	2. संवाद–शिल्प का अनुशीलन	409–411
	संकेत सन्दर्भ	412–415
आठ	1. देशकाल–परिवेश–प्रस्तुतीकरण–शिल्प	417–473
	2. नागरजी के उपन्यासों में कालगत धारणा	474–495
	संकेत सन्दर्भ	496–504
नौ	विचार–प्रस्तुतीकरण–शिल्प	506–525
	संकेत सन्दर्भ	526–528
दश	नागरजी के उपन्यासों का भाषा–शिल्पगत अनुशीलन	530–557
	संकेत सन्दर्भ	558–566
ग्यारह	उपसंहार वस्तु–शिल्पगत मूल्यांकन	568–593
	संकेत सन्दर्भ	594
	उपसंस्कारक–ग्रन्थ–सूची	595–600

प्रमाण–पत्र

सहर्ष प्रमाणित किया जाता है कि श्री सत्येन्द्र कुमार सिंह ने, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध(डा.अमृतलाल नागर के उपन्यासों में विद्यमान वस्तु एवं शिल्प–वैभव का अनुशीलन) मेरे सान्निध्य में रहकर और मेरे पर्यवेक्षकत्व में ही लिखा है। इन्होंने इस शोध प्रबन्ध के प्रणयन में, इस विषय पर उपलब्ध अद्यतन सामग्री का सदुपयोग किया है। श्री सिंह ने इसमें मेरे समस्त सुझाओं और परामर्शों को समाहित कर लिया है तथा इसका आद्यन्त प्रणयन मेरे निर्देशानुसार ही किया है। इस शोध प्रबन्ध में उनका पांडित्य एवं अध्यवसाय पग–पग पर परिलक्षित है। प्रबन्ध को मौलिक रूप प्रदान करने में वह सहज सफल हुए हैं। मेरी दृष्टि में उनके इस कृतित्व का मौलिक पक्ष निर्विवाद है। यह शोध प्रबन्ध श्री सिंह का निजी सफल प्रयास है।

एतदर्थ वह साधुवाद के पात्र हैं। मैं उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करती हूँ। इन्होने शोध अध्यादेशानुसार शोध केन्द्र पर उपस्थित होकर 200 दिन कार्य किया है।

दिनांक– 12–10–2007

डा० (श्रीमती) नीलम मुकेश
रीडर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उरई, (उ०प्र०)

प्राक् कथन

डॉ॰अमृतलाल नागर की उपन्यास कला पर अनेकानेक पुस्तकें उपलब्ध हैं, जिनमें संक्षेप में उपन्यास के तत्वों पर विचार प्रकट किए गये हैं, किन्तु नागरजी के उपन्यासों में 'वस्तु एवं शिल्प' विषय पर पृथक् एवं सर्वांगीण विवेचन अद्यावधि अनुपलब्ध है। इसी अभाव की पूर्ति के रूप में प्रस्तुत शोध एक प्रयास है। इसमें नागरजी के– 'महाकाल', 'सेठ बाँकेमल', 'बूँद और समुद्र', 'सुहाग के नूपुर', 'शतरंज के मोहरे', 'अमृत और विष', 'एकदा नैमिषारण्ये', 'नाच्यौ बहुत गोपाल', 'सात घूँघट वाला मुखड़ा', 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन'– उपन्यासों को ही आधार बनाकर अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबन्ध का विषय उसकी रूप–रेखा सहित, श्रद्धेय श्री रामशंकर द्विवेदी, हिन्दी विभाग, दयानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई के निर्देशन में तैयार कर विश्वविद्यालय में स्वीकृ–ति हेतु प्रस्तुत किया गया था, किन्तु 'अवकाश प्राप्त शिक्षक निर्देशक नहीं हो सकते, अतः आप अपना निर्देशक परिवर्तित कर लें, अन्यथा विषय की स्वीकृति पर कोई विचार नहीं किया जाएगा।' विश्वविद्यालय की इस आपत्ति पर मेरे समक्ष फिर से एक समस्या खड़ी हो गयी। दैव योग से डी0वी0 कालेज, उरई के बॉटिनी के प्रोफेसर श्री आर0बी0 सिंह सेंगर की कृपा से उसी कालेज की हिन्दी विभाग की व्याख्याता **श्रीमती नीलम मुकेश** से परिचय हुआ और 'नीलम' जी ने निर्देशन कार्य का दायित्व स्वीकार कर लिया। विषय स्वीकृत हो गया।

प्रबन्ध के विषय–चयन और रूप–रेखा निर्माण में निर्देशन एवं सुझावों के प्रति मैं **श्री रामशंकर जी द्विवेदी** का हृदय से आभारी हूँ। श्रीमती नीलम मुकेश के सान्निध्य में उनके निर्देशन एवं सुझाओं के प्रति मैं असीम श्रद्धा–विनत हूँ। **श्री आर0बी0 सिंह सेंगर** के स्नेह एवं सौजन्य का मैं सदैव ऋणी रहूँगा। परम श्रद्धेय **डॉ0 शशि भूषण सिंहल जी** से पत्राचार एवं दूरभाष पर प्राप्त सुझाओं ने मेरा मार्गदर्शन किया, एतदर्थ मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

शोध प्रबन्ध के प्रणयन में जिन सुधी समीक्षकों की पुस्तकों से मुझे मार्गदर्शन एवं सहायता मिली है, उनके प्रति भी मैं सादर कृतज्ञ हूँ।

मेरे परमादरणीय एवं परम शुभेच्छु **डॉ0 बाबू सिंह जी** के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना उन्हें रुष्ट करना ही होगा, परन्तु उनसे जो आत्मीय सहयोग प्राप्त हुआ, उसका उल्लेख न करना मेरा अपराध होगा। मुझे यह कहने में किंचित भी संकोच नहीं है कि यदि उन्होंने अपना अमूल्य समय, स्नेह और मार्गदर्शन मुझे न दिया होता तो कदाचित् यह शोध प्रबन्ध इस रूप में प्रस्तुत न हो पाता।

मैं अपने पूज्य माता–पिता (**श्रीमती सुखदेवी** तथा **श्री चन्द्रकिशोर सिंह**) के ऋण से कभी मुक्त न होऊँगा, जिनकी असीम स्नेहमयी छत्र–छाया में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रणयन में मुझे किंचित भी असुविधा का आभास तक नहीं हुआ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को मौलिकता प्रदान करने एवं विषय का यथार्थ अनुशीलन करने में मुझे कितनी सफलता मिली है, इसका मूल्यांकन तो सुधीजन ही करेंगे, मैं तो यही कह सकता हूँ कि अपनी कृति किसे अच्छी नहीं लगती।

सत्येन्द्र कुमार सिंह

दिनांक– 12–10–2007

सत्येन्द्र कुमार सिंह

अध्याय – एक

(क) उपन्यास का स्वरूप (परिभाषा एवं प्रकारादि)

(ख) उपन्यास साहित्य का संक्षिप्त इतिहास।

उपन्यास का स्वरूप

सृष्टि के प्रारंभ से ही मानव–रचना एक अनबूझ पहेली रही है। मानव मन की अचेतन और अवचेतन स्थितियों का भेद पाना अत्यंत कठिन है। मानव–प्रकृति का अध्ययन जितना कठिन है उतना ही रुचिकर भी। अनादिकाल से हम मानव संबंधी, उनके चरित्रों से संबद्ध साहसिक एवं अलौकिक कथानक सुनते आए हैं। कथा कहना और सुनना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है। अतः कहा जा सकता है कि कथा का अस्तित्व परम प्राचीन है। यदि हम कहें कि साहित्येतर कथाओं का अस्त्तित्व मानव–अस्तित्व जितना ही पुराना है तो कदाचित् कोई अतिशयोक्ति न होगी।

मनुष्य के विकास के साथ–साथ उस की सभ्यताएवं संस्कृति का भी विकास हुआ। इसी के साथ कथाओं का रूप भी विकसित होता गया। शनैः शनैः उसने कथा–साहित्य का रूप ले लिया। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, तथा रामायण और महाभारत की कथाओं के साथ–साथ हितोपदेश, कथासरित्सागर, पंचांत्र एवं बौद्धकालीन जातक–कथाओं के रूप में कथा–साहित्य की एक अतिप्राचीन एवं सुदीर्घ परंपरा रही है। इसी परंपरा की एक कड़ी के रूप में हम उपन्यास–साहित्य के युग में प्रवेश करते हैं।

उपन्यास : कथा–साहित्य की एक नवीन विधा :

'उपन्यास' नए युग की नई देन है। यह अपने युग के यथार्थ, नवीन परिस्थितियों, जटिल परिवेश, नूतन विचारों, चिन्ताओं के परिप्रेक्ष्य एवं नवीन मानवीय संदर्भों, अधिकार एवं दायित्वों को रूपायित करने वाली कथा साहित्य की एक नवीन विधा है। इसे अंग्रेजी में NOVEL कहते हैं, जो नवीनता का बोध कराता है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक कालों को छोड़कर हिन्दी साहित्य में प्रबन्ध काव्य,महाकाव्य, खण्डकाव्य, चरितकाव्य, नाटक,संवाद, वार्ता जैसी विधाएं तो प्राप्त होती हैं परन्तु उपन्यास जैसी कोई विधा प्राप्त नहीं होती। आधुनिक साहित्य के प्रायः सभी अध्येता स्वीकार करते हैं कि उपन्यास एक पाश्चात्य–साहित्य–विधा है। भारत में इसका उद्‌भव अंग्रेजों के आगमन, अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार–प्रसार के साथ हुआ।

प्राचीन कथा साहित्य और उपन्यास में अन्तर

प्राचीन कथा साहित्य और उपन्यास में गुणात्मक और तत्वतः अन्तर है। प्राचीन कथा–साहित्य स्थूल कथावस्तु–प्रधान, बोधप्रधान, वायवी एवं चमत्कारिक तत्वों से युक्त था, वहीं

इस अर्वाचीन कथा साहित्य में सूक्ष्मताएवं यथार्थ के दर्शन होते हैं। इसमें चरित्र–चित्रण की भी एक विकसित पद्धति मिलती है। इसमें निरूपित मानव–चरित्र मनुष्य की वास्तविक अवधारणा को स्पष्ट करते हैं।

पुराने कथा साहित्य का परिवेश अधिकांशतः सामन्त कालीन जीवन मूल्यों को सामने लाने वाला था, वहां इस नवीन कथा साहित्य का परिवेश उन जीवन–दृश्यों की सृष्टि करता है जो पिछली डेढ़ दो शताब्दी के वैचारिक मन्थन से उत्क्रान्त हैं। वह अब केवल राजा–रानी, राजकुमार–राजकुमारी, सेठ–सेठानी या पंडित–पंडिताइन तक सीमित न रहकर देश और समाज के सामान्य लोगों के जीवन धरातल तक उतर आया है।''[1]

प्राचीन कथा साहित्य में देशकाल के चित्रण का भी प्रायः अभाव–सा रहता था। नाटकीयता का सहारा न लेकर सीधे 'एक था राजा, एक थी रानी' आदि से कथा का आरंभ होता था। राजाओं के नाम भी प्रायः 'भोज', 'उदयन', 'विक्रम' इत्यादि ही रहते थे। कथावस्तु भी अधिकांशतः 'कथा सूत्रों' पर आधारित रहती थी। सामान्य जन–जीवन से उसका कोई विशेष लेना–देना न था। निम्नवर्ग या सामान्यवर्ग के पात्र सेवक–सेविका की भूमिका में मिलते थे। कथावस्तु भी कल्पना–प्रसूत ही होती थी। आधुनिक कथा साहित्य यथार्थ पर आधारित है। नवीनता को लेकर चलने वाला यह कथा साहित्य, समाज के सामान्य वर्ग के दुख दैन्य, उनकी दैनिक समस्याओं को लेकर चलता है।

'प्राचीन कथा साहित्य' कहीं–कहीं अति रहस्यात्मक और चमत्कार प्रधान होता था। तर्क, बुद्धि या आधुनिक विज्ञान अथवा मनोविज्ञान की कसौटी पर उसके काल्पनिक तथ्य ठहर नहीं सकते थे। जबकि 'नवीन–कथा–साहित्य' पूर्ण रूप से यथार्थ वादी स्थितियों पर आधारित है।

तात्पर्य यह है कि 'आधुनिक कथा साहित्य' और प्राचीन 'कथा साहित्य' में केवल नाम की समानता है। प्रवृत्ति और प्रकृति उभय दृष्टि से 'आधुनिक कथा साहित्य' जिसका रूप 'उपन्यास' है, उस पुराने कथा साहित्य से नितान्त भिन्न है।

अनेक विद्वान 'उपन्यास' का उद्‌भव 'लोगिनुस' हेलिओदोरस, तथा 'पेत्रोनियस' एवं मध्यकालीन गद्य प्रेमाख्यानों, और संस्कृत में रचित बाणभट्‌ट की 'कादम्बरी' तथा दण्डी के 'दशकुमार चरित' आदि से संबद्ध करते हैं। यदि विश्लेषणात्मक रूप से देखा जाय तो इस 'प्राचीन कथा–साहित्य' और 'अर्वाचीन उपन्यास' में केवल दो तत्वों–कथा का समावेश और गद्यशैली का प्रयोग की ही समानता है। यह समानताएं अब केवल वाह्य रह गयी हैं क्योंकि 'आधुनिक उपन्यास' में 'कथा' तत्व के अतिरिक्त चरित्रों का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, विभिन्न विचार धाराओं का आलम्बन, मानवीय जीवन के विभिन्न पक्षों का सजीव चित्रण, नारी के प्रति अद्यतन नवीन दृष्टि के कारण उसका स्वरूप प्राचीन रम्याख्यानों से अलग प्रकार का दिखाई देता है।

NOVEL पश्चिम में भी बहुत पुरानी नहीं है। आधुनिक विद्वान उसका उद्‌गम् योरूपीय पुनर्जागरण एवं पुनरुत्थान में देखते हैं। इसके कारण योरूपीय जीवन में एक मूलभूत एवं गुणात्मक परिवर्तन आया, जिससे नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्रतरहो गयी। औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न सामाजिक एवं नागरिक जीवन की जटिलता ने 'उपन्यास' के आविर्भाव को अनुकूल पीठिका प्रदान की। भारतीय भाषाओं में 'उपन्यास' का आगमन अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव स्वरूप हुआ। उपन्यास शब्द अपने में बहुत ही अस्पष्ट है। इस शब्द की व्याख्या से भी इसके पूर्ण स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता है। अतः आवश्यक है कि उपन्यास का वास्तविक स्वरूप जानने का यत्न किया जाना चाहिए।

जिस प्रकार शरीर की रचना किसी एक अंग मात्र से नहीं होती है, उसमें हाथ–पैर, मुख–नाक–कान आदि समस्त अंगों का होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य होता है अन्यथा वह शरीर नहीं कहलाएगा। इसी प्रकार उपन्यास का सृजन केवल किसी एक तत्व मात्र से संभव नहीं है। उपन्यास, उपन्यास तभी कहा जायेगा जब उसमें आवश्यक तत्वों का समावेश होगा।

उपन्यास एक विस्तीर्ण लिखित गद्य–कथा है। यह कथा साधारण जीवन जैसी है, पर इसकी गति अत्यन्त तीव्र है। इसके पात्र मनुष्य के समान होकर भी विलक्षण होते हैं। साधारण जीवन में विशालता है, बिखराव है और कार्य–कारण संबंध अस्पष्ट सा है। उपन्यास में व्यक्तजीवन अनुभव पर आधारित एवं विश्लेषित होता है। उपन्यास, जीवन के गतिमय पक्ष को उभारता है। इसमें जीवन की उलझन की चुनौती है और पात्रों के पुरुषार्थ की गति है। ऐसा जीवन उपन्यास के काल के आयाम में फैलकर कथा बनता है और पात्रों का चरित्र उद्‌घाटित करता है।''[2]

उपन्यास सामान्य जनजीवन के सामानान्तर चलने का पूर्ण प्रयास करता है। इसीलिए यह साहित्य की अन्य विधाओं की भांति शिल्प से बंधा नहीं होता हैं। इसकी कथा के विस्तार की भी सीमा नहीं है। वर्णन या चित्रण की भी कोई निश्चित परंपरा या ढंग नहीं है। पात्र और अनुच्छेद भी संख्या से या आकार प्रकार से अवरुद्ध नहीं होते। यह जीवन की समस्यानुसार अपना रूप ग्रहण कर लेता है। इसी के अनुसार उपन्यास के आकार–प्रकार तथा तत्वों का प्रसार एवं विकास होता है। उपन्यास का शिल्प बहुत ही लचीला होता है। इसी कारण जीवन को सही और अधिकतम व्यंजित करने के लिए आवश्यकतानुसार उपन्यास अन्य अनेक सहयोगी विधाओं के गुण अपना लेता है। यह नाटक, इतिहास, जीवनी तथा निबन्ध की मूल विशेषताओं को आवश्यकतानुरूप अत्यंत स्वाभाविक भाव से ग्रहण कर लेता है।

1. **नाटकः** कालगति का अनुसरण करके भी उसे देश विशेष में बांधकर पात्रों के मनोभाव को सामाजिकों के समक्ष अधिकाधिक मूर्त करने का प्रयास करता है। प्रत्यक्षीकरण और संप्रेषणीयता के तत्व प्रमुख होते हैं।

2. **इतिहासः** इसमें राष्ट्र या समाज की विविध शक्ति–धाराओं की पारम्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया का आख्यान रहता है। वह अपने वर्णन में व्यक्ति को स्वतंत्र महत्व नहीं प्रदान करता है।

3. **जीवनीः** यह व्यक्ति को महत्व देती है। उसकी पृष्ठभूमि में राष्ट्र या समाज रहता है। व्यक्ति के गहन एवं समाज के विस्तीर्ण जीवन को प्रस्तुत करने में जीवनी तथा इतिहास आपस में पूरक हैं। तथ्यों के आधार पर दोनों अपने वर्ण्य विषय का रूप खड़ा करते हैं। प्रमाणों द्वारा निष्कर्ष निकालते हैं और अनुमान से बचते हैं। कल्पना के आधार पर व्यक्तित्व या परिस्थिति का चित्रण कदापि नहीं करते हैं।

4. **निबंधः** पात्रों के आन्तरिक एवं वाह्य जगत को प्रस्तुत करते हुए इनके विषय में जो उपन्यासकार की धारणा बनती है उसमें निबंध का सहयोग होता है। निबंध जीवन के अनुभव को विचार रूप में बांधता है। नाटक, इतिहास तथा जीवनी की भांति कालगति का अनुसरण इसमें नहीं होता है। यह तो उस गति का परिणाम मात्र होता हैं

उपन्यास में पात्रों के मनोभावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए नाटकीयता का आश्रम लिया जाता हैं। इतिहास की भांति वातावरण सर्जक सामाजिक शक्तियों का चित्रण होता है। जीवनी की भांति पात्रों के चरित्र को उभार दिया जाता हैं इसके साथ ही साथ उपन्यासकार की स्वयं की भी क्षमता होती है जिसे संवेदनात्मक कल्पना कहते हैं। यह पात्रों के परिवेश और उनकी गतिविधि तक सीमित न रहकर उनके मान के भीतर झांकने का प्रयास करती है।

उपन्यास को बहुत से विद्वान आधुनिक युग के महाकाव्य की संज्ञा देते हैं। अतः महाकाव्य और उपन्यास के मूलभूत अन्तर को जान लेना भी आवश्यक है।

5. **महाकाव्यः** 'महाकाव्य' की 'कथा' विस्तृत होती है। युग चित्रण एवं पात्र चरित्र चित्रण भी रहता है किन्तु यह पद्य कथा है। महाकाव्य में जीवन को नहीं, जीवन संबंधी प्रबल अनुभूतियों का अभिव्यक्तीकरण होता हैं कवि की गंभीर अनुभूति का अंकुश संपूर्ण कृति पर रहता है। जो जीवन उसके अन्तर्गत आता है, वह विशिष्ट प्रतीकात्मक होता हैं। महाकाव्य, कथा के सुनिर्मित ढांचे और पात्रों के सुनिश्चित स्वरूप को साधन रूप में ग्रहण करता है।

6. **उपन्यासः** इसकी भी कथाविस्तृत होती है किन्तु यह 'गद्यकथा' है। समाज का चित्रण और पात्रों का चरित्र चित्रण भी होता है। इसमें रचना कार का उद्देश्य अपनी धनीभूत भावना को नहीं, साक्षात जीवन को प्रस्तुत करता है। परोक्ष में रहकर कथा और चरित्र को स्वयं अग्रसर होने देता है। पात्रों की स्वायत्त सत्ता को उभारना उपन्यास का परम् उद्देश्य है। 'उपन्यास' का जीवन 'महाकाव्य' की भांति प्रतीकात्मक न होकर यथार्थ होता है।

पात्र.

उपन्यास के पात्र मनुष्य के समान होकर भी विलक्षण होते हैं। उनमें पारदर्शिता होती है। उसका अन्तःकरण उपन्यासकार के लिए अभेद्य नहीं होता। वह अपनी सहज कल्पना से उसके

मन की गहराई में उतर जाता है। अतः कहा जा सकता है कि पात्र जीवन से चुना हुआ और तराशा गया एक पारदर्शी व्यक्ति है। इसमें साधारण जीवन के स्त्री–पुरुषों की अपेक्षा अधिक अर्थवत्ता होती है।

पात्र, देशकाल–परिस्थिति की सीमा में रहकर अपना मार्ग चुनता है। कुछ ग्रहण करता है, कुछ त्याग करता है। कभी स्थिति का सामना करता है, कभी भाग खड़ा होता है। यह सब उसके निर्णय हैं। इससे ही उसके चरित्र का परिचय मिलता है। परिस्थितियों के बन्धन स्थूल अधिक हैं। इनसे घिरा पात्र पर्याप्त सचेत और वहिर्मुख होता है। उसका स्वयं तत्व मुखर रहता है, पाठकों को उसकी दृष्टि स्पष्ट अवलोकित होती है। इसके विपरीत जहां परिस्थितियों के बन्धन शिथिल होते हैं और बाहरी दुनिया का दबाव कम होता है, ऐसे उपन्यासों में चिन्तनशील पात्र अन्तर्मुखी हो जाते हैं। अन्तर्मुखी पात्रों के लिए सामाजिक बन्धन शिथिल हो जाते हैं अथवा वे उन्हें स्वयं नकार देते हैं किन्तु इससे उनका मार्ग सहज होने की अपेक्षा जटिल हो जाता है। कभी–कभी उनकी मानसिक उलझन इतनी बढ़ जाती है कि वे स्वयं अपने लिए पहेली बन जाते हैं। वे नहीं समझ पाते कि उन्हें क्या करना चाहिए और किस स्थिति में वे क्या कर बैठेंगे ?

पात्र, उपन्यास और पाठक

उपन्यास मानव संबंधों और उसके मन की दिशाओं को, काल के विविध आयामों में प्रत्यक्ष करता है। यहां पात्र अच्छा है या बुरा ? यह बताने की अपेक्षा बल इस बात पर रहता है कि वह वास्तव में है क्या? वह जैसा दिखाई देता है, क्या मन से भी वैसा ही है ? इसके अतिरिक्त जो उसके मन में है, वह क्यों है ? इन प्रश्नों की गहराई में जाने पर उपन्यासकार मनुष्य पर कोई सरल निर्णय देने की अपेक्षा उसकी रचना और विकास प्रक्रिया के अध्ययन में ज्यादा रूचि लेता है। उपन्यास हमें मनुष्य को समझने, सहानुभूतिपूर्वक समझने की क्षमता प्रदान करता है और उसके प्रति अधिक सहनशील बनाता है। इसीलिए उपन्यास को, सामाजिक बन्धनों के विघटन और वैयक्तिक चेतना की स्वतंत्रता का वाहक कहा गया है। वास्तव में उपन्यास ऐसे पाठकों के लिए है जिनकी नैतिकता रूढ़ नहीं है, जो चिन्तनशील है, और जिनकी रुचि सहज जीवन में है।

उपन्यास और घटनाएं

उपन्यास में संवेदनात्मक, गतिशील जीवन की अभिव्यक्ति होती है। उस गति को घटनाएं व्यक्त करती हैं। अतः उपन्यास का प्रमुख लक्षण है– 'परिणामयुक्त घटना' (एक सुनिश्चित कथानक)। यह घटनावली कुतूहल–तृप्ति द्वारा पाठकों का मनोरंजन करती है। इसके द्वारा पाठक उपन्यास में कभी जानते हैं कि 'आगे क्या हुआ? और कभी समझते हैं कि जो हुआ, वह कैसे हुआ ?' इन दोनों समस्याओं का समाधान घटनातत्व और चरित्र–तत्व पर निर्भर रहता है।

उपन्यास–नाटक–नाटकीयता

उपन्यास में जीवन की गति और उसका अनुभव रहता है। गति का तत्व नाटक की विशेषता है। अनुभव को संजोना निबंध का कार्य है। उपन्यास वास्तव में नाटक और निबंध इन दो विधाओं की निराली देन है। नाटक का रंगमंच उपन्यास में घटनास्थल बन जाता है और यह उपन्यास के जीवन के प्रकरणों के साथ परिवर्तित होता चलता है। उपन्यासकार अपने मंच को बदलने और सजाने में वर्णन–विवरण का आश्रय लेता है। संवाद, नाटक और उपन्यास दोनों में रहते हैं। इनके अतिरिक्त नाटककार पात्रों को प्रस्तुत करने में उनके हावभाव और स्वगत कथन का प्रयोग करता है। उपन्यासकार अपने चित्रण–विश्लेषण से कथा पात्रों की अन्तश्चेतना के निदर्शन से यह कार्य करता है। यहां तक किसी न किसी रूप में नाटक और उपन्यास समीप हैं। नाटक और उपन्यास में कुछ भिन्नताएं भी हैं। नाटक का उपन्यास जैसा विशद विस्तार नहीं होता, अपने प्रभाव में एकाग्रता और गति में तीव्रता रखने के कारण यह सामाजिकों का ध्यान बांधे रखने की विशेष क्षमता रखता है। इसमें कथा के अन्तर्गत देश–काल–कार्य के संकलन पर बल रहता है। यह मूलतः संवादाश्रित रचना है।

उपन्यास जीवन की स्वाभाविकता के अनुकरण में आकार में विस्तृत होता है। स्थूलता के कारण उसके प्रभाव में एकाग्रता और गति में तीव्रता निरन्तर नहीं रह पाती।

नाटक के उपर्युक्त गुणों की आवश्यकता उपन्यासकार को समय–समय पर पड़ती रहती है। वह कथा के बीच में अपनेप्रभाव की जकड़ बनाए रखने के लिए नाटकीयता का प्रयोग करता है। उदाहरणार्थ–"नहर लम्बी होती है। बहते–बहते उसकी गति धीमी पड़ जाती है। जल को पर्याप्त गतिशील रखने के लिए आवश्यक दूरियों पर रोक लगाकर – लकड़ी के तख्तों या पक्की दीवारों को बीच में उठाकर नया वेग दिया जाता है। रोक पर जल एकत्र होता है फिर नये वेग से हरहरा कर आगे चलता है। इसी प्रकार उपन्यास रूपी नहर में वर्णन, विवरण, विश्लेषण से जब उसकी गति धीमी पड़ने लगती है तब 'नाटकीयता की रोक' से नई गति लाई जाती है।"[3] नाटक में मनोभावों का प्रत्यक्षीकरण अभिव्यक्ति द्वारा होता है। इस आधार पर नाटकीयता का अर्थ हुआ प्रखर अभिव्यक्ति। उपन्यास में नाटकीयता लाने के लिए उपन्यासकार भाववस्तु को रूप और गति में परिणत करता है। भाव या विचार अमूर्त होते हैं। इन्हें दृष्टिगोचर कराने के लिए किसी आकार में ढाला जाता है। आकार को सजीवता प्रदान करने के लिए चेष्टा या गति से सम्पन्न किया जाता है।

उपन्यास में कथा, कथ्य और शिल्प

कहा जा चुका है कि कथा से ही क्रमशः आधुनिक कहानी और उपन्यास का विकास हुआ है। शिल्प के बिन्दु पर उपन्यास को समान्य कथा से पृथक कर सकते हैं। कथा में जीवन के अनुभव को रोचक घटनाओं के माध्यम से कहा जाता है। उपन्यास में भी मूलतः एक कथा

रहती है किन्तु यह क्रमबद्ध घटनावली मात्र नहीं होती। उपन्यास का स्थूल कलेवर घटनाओं के माध्यम से भले ही पहचाना जाए किन्तु उसकी आम्यन्तर योजना के अन्तर्गत घटनाओं में परस्पर कारण–कार्य का सूक्ष्म क्रम स्थापित करने और उनमें अन्तर्निहित मानवीय तत्व को विशिष्ट रूप से उभारने पर बल रहता है। कथा मूलतः मनुष्य को वाह्य गतिविधि का चित्रण भर करती है, परन्तु मनुष्य की गतिविधि का नियामक तत्व है 'मन', स्वभाव, या उसका चरित्र। जब मनुष्य की गतिविधि रूपी कार्य से, उसके कारण या उसके प्रेरक स्वभाव का संबंध जोड़ा जाता है तो वह कथा, मात्र कथा न रहकर उपन्यास बन जाती है। उपन्यास घटना की तथ्य परक प्रामाणिकता की चिन्ता न कर, घटनाओं की रोचकता में न रमकर, मनुष्य के मन तथा उसके कृतित्व के अंतः–संबंध की पहचान पर बल देता है। तभी वह 'उपन्यास' बनता है और 'कथा' तथा 'इतिहास' से अलग अपनी पहचान बनाता है। तभी वह 'उपन्यासकार 'कथा' कहता नहीं, वरन् अपनी कला से उसे दिखाता चलता है। कहने का तात्पर्य है कि वह घटनाओं का वर्णन भर नहीं करता, वरन् पात्रों के चरित्र और उनके परिवेश के माध्यम से घटना का दृश्यांकन करता है। इन्ही बिन्दुओं के आधार पर कथा और उपन्यास में अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है।

कथा (उपन्यास का एक तत्व)

उपन्यास के जीवन में, पात्र अपने मूल स्वभाव के अनुसार गतिशील रहते हैं। उनकी इन्हीं गतिविधियों के परिणाम स्वरूप उनके जीवन–जगत में जो परिस्थितिसूत्र विकसित होता है, वह 'कथा' है।

कथ्य या वस्तु (उपन्यास का मूल बीज तत्व)

रचनाकार के मन में, मस्तिष्क में एक विषय या समस्या या जीवन–व्यवहार में घटित और अनुभूत कोई विशेष घटना जब बीज रूप में अंकुरित होती है तो वह अपने युग से विविध प्रेरणाएं लेकर उन्हें अपने व्यक्तित्व के आलोक में ढालकर, नवीन भावबोध सौंदर्य बोध के परिणति स्वरूप वस्तु तत्व में अभिव्यक्त करता है। इसी वस्तु तत्व को 'कथ्य' मूल उद्देश्य, केन्द्रीय भाव, मूलदृष्टि, आदि अन्य कई नामों से भी व्यवहृत किया गया है। इसे हम इस प्रकार भी स्पष्ट कर सकते हैं कि उपन्यासकार देखे सुने जीवन को अपने व्यक्तित्व, सामर्थ्य के नअुसार समझता है। उसकी जीवन संबंधी यह समझ या धारणा उसकी रचना की मूलदृष्टि होती है। यही उपन्यास का 'कथ्य' है।

शिल्प (उपन्यास का 'शिल्प' तत्व)

'उपन्यास–कला' तथा 'उपन्यास शिल्प विधि' में पर्याप्त अन्तर है। कला का क्षेत्र बहुत व्यापक है। कला जीवन विषयक अनुभूति की आनन्दमय पुनः सर्जना है। इसका संबंध किसी विधा की अनुभूति क्षमता और उसकी समस्त अभिव्यक्ति प्रक्रिया के प्रमुख लक्षणों से है। कला को कई

प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है, वाणी से, चित्र से, मूर्ति से, संगीत से। इसी आधार पर इन्हें नाम भी दिया गया है 'कला' का। यथा–काव्य कला, चित्रकला, मूर्तिकला और संगीतकला।

'शिल्प' कलाओं के अन्तर्गत आता है। शिल्प रचना विशेष का होता है। वस्तु तत्व या कथ्य की रचना रूप में परिणति की समूची प्रक्रिया शिल्पविधि है। इसे हम ढंग, कौशल या अंग्रेजी में 'टेक्निक (Technique) भी कहते हैं। 'शिल्प' निर्माण कौशल पर निर्भर करता है। इसमें संयोजन तथा रूप सज्जा की क्षमता अपेक्षित है। यह क्षमता प्रायः प्रशिक्षण तथा अभ्यास के द्वारा अर्जित की जाने वाली विशेषता है।

'वस्तु' या 'कथ्य' को जीवन चित्र में परिणत करने की विधि ही उपन्यास का शिल्प है।

जैसे काव्य की आत्मा 'रस' है। 'काव्यस्यात्मा वै रसः'। वैसे ही उपन्यास में कथ्य उपन्यास की आत्मा है, आकार–कथा है और गति हैं पात्र। उपन्यास की सफलता, उसकी जीवन विषयक परिपक्व दृष्टि और उस दृष्टि को मानव–चरित्र तथा परिस्थिति क्रम में साक्षात् करने की समुचित सामर्थ्य में निहित है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जिस प्रकार मानव शरीर या स्वरूप निर्माण में हाथ–पैर, नाक–मुख, ग्रीवा–कान–आंख, उदर, आदि अंगों तथा उपांगों का सहयोग होता है किन्तु आत्मा प्राणतत्व के अभाव में उसका कोई महत्व नहीं होता उसी प्रकार उपन्यास का स्वरूप भी कथा, पात्र, घटना, संवाद, देश काल परिवेश, परिस्थिति, के साथ–साथ नाटक, इतिहास, निबंध आदि के सहयोग तथा भाषा, शिल्प और चरित्र आदि को समेटकर निर्मित होता है। हम कह सकते हैं कि उपन्यास के तीन मुख्य तत्वों–कथ्य, कथा और पात्रों की उपन्यास निर्माण में मुख्य भूमिका है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि– ''उपन्यास' का स्वरूप इतना शक्तिशाली है कि साहित्य की सारी विधाओं की छवियों को सन्निहित कर लेने की शक्ति है उसमें। 'उपन्यास' में 'कथा' तो है ही, साथ ही साथ अवसर–अवसर पर वह काव्य की सी भावुकता और संवदेना जगाकर पाठकों को अपने में तल्लीन करता है। प्रकृति ओर प्रकृत्येत्तर दृश्यों और रूपों की योजना का सौंदर्य जगाता है। इसमें निबन्ध की सी चिन्तन मूलकता भी होती है। लेखक स्वयं निबंधकार की भांति प्रश्नों के ऊपर विचार करता चल सकता है, चरित्रों का विश्लेषण कर सकता है। इसमें 'नाटक' की सी संवाद योजना होती है और चरित्र अधिकांशतः अपना या औरों का विश्लेषण अपने कार्य व्यापारों तथा पारस्परिक संवादों या स्वगत चिन्तनों से करते रहते हैं। 'नाटक' के रंगमंच के विधान की भांति परिवेश विधान अर्थात् देश–काल विधान होता है। इसी लिए मैरियन फाक्सने इसे 'जे.बी. थियेटर', 'पाकेट थियेटर' भी कहां है। नाटक, काव्य, कहानी या निबन्ध की भांति उपन्यास के विस्तार की कोई सीमा नहीं होती है। वह जितना चाहे फैल सकता है और संगठित रूप से जीवन की जितनी भी व्यापकता चाहे समेट सकता है।''[4]

उपन्यास की परिभाषाएं

उपन्यास के रचनास्वरूप को देखते हुए कुछ विद्वानों ने इसको परिभाषा–निबद्ध करने का प्रयास किया। इस प्रकार की कुछ परिभाषाएं दृष्टव्य हैं।

उपन्यास शब्द 'उप' और 'न्यास' के योग से निर्मित हुआ है। उप का अर्थ है–छोटा, लघु और न्यास का अर्थ है–स्थापना, अंकित या चित्रित करना। मानक हिन्दी कोष (प्रधान संपादक–रामचन्द्र वर्मा) के अनुसार ये अर्थ इस प्रकार है –

1. **उप**–एक संस्कृत उपसर्ग, जो क्रियाओं और संज्ञाओं के पहले लगकर उनके अर्थों में अनेक प्रकार की विशेषताएं उत्पन्न करता है।

2. काल–रूप–मान–संख्या आदि के विचार से किसी के अनुरूप, सदृश्य, या लगभग होने पर भी उससे कुछ घटकर छोटा, निम्न काटि का या हल्का, जैसे–उपदेवता, उपधातु, उपमंत्री, उपविश, उपेन्द्र (इन्द्र का छोटा भाई)[5] **न्यास**–1. कोई चीज जमा या बैठाकर रखना। 2. अंकित या चित्रित करना। 3. चीजें चुन या सजाकर यथा स्थान रखना"[6]

इस शब्दार्थ के आधार पर डॉ0 शशिभूषण सिंहल की परिभाषा विचारणीय है– "प्रस्तुत जगत में हमारा जीवन है वो लेखक की रचना उपन्यास में उपजीवन है। उपन्यास लघु जीवन की स्थापना या चित्रण करता है।"[7]

"उपन्यास का उपजीवन न्यास, जीवन पथ पर अग्रसर पात्रों का वृत्त होता है। व्यावहारिक जीवन तथा तात्कालिक परिस्थितियों का वृत्त चित्रण किया जाता है। उपन्यास जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण, उसकी समस्याएं तथा तत्संबंधी समाधान प्रस्तुत करता है। यहां जीवन की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक नहीं प्रत्यक्ष होती है। पात्रों का व्यक्तित्व नहीं, उनका चरित्र प्रस्तुत किया जाता है। यह जीवन की अनेकता, विविधता को प्रत्यक्ष करता है। मानव का अन्वेषण विश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक दोनों प्रकार की शैलियों द्वारा करता है और इस कार्य के लिए उपयुक्त माध्यम गद्य को अपनाता है।" इस प्रसंग में उपन्यास की निम्नांकित परिभाषा उल्लेखनीय एवं विचारणीय है–

"नावेल नाम साहित्य में समकालीन अथवा आधुनिक जीवन के निरीक्षण पर आधारित आचार–विचार के अध्ययन को प्रदान किया गया है। इसमें पात्र घटनाएं, षड्यंत्र (रहस्य) काल्पनिक होते हैं तभी यह पाठक के लिए नवीन (नावेल) है किन्तु इसकी नीव वास्तविक इतहास की समानान्तर रेखाओं पर ही रहती है। 'नॉवेल' एक श्रृंखलाबद्ध कहानी है। यह कहानी वास्तव में ऐतिहासिक रूप से सत्य नहीं है किन्तु वैसी (वास्तविक) ही सहज हो सकती है।"[8]

उपन्यास के मूल तीन अंगों–कथ्य, पात्र और कथा को दृष्टिगत रखते हुए उसकी परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है–

"उपन्यास अनुभूत जीवन का पात्र–कथायुक्त गद्यात्मक विस्तीर्ण चित्र है।"

जिस प्रकार प्राचीन साहित्य के रूप 'महाकाव्य' में तत्कालीन जीवन समाज और जगत की अनेकानेक लाक्षणिकताएं उभरती थीं, उसीप्रकार उपन्यास ने इस युग की विभिन्न विशेषताओं और लाक्षणिकताओं को उनके यथार्थ रूप में समुपस्थित करने का कार्य किया। इसी कारण बहुत से विद्वान उसे 'आधुनिक युग के महाकाव्य' की संज्ञा देते हैं।

"The Novel is the epic art form of our modern Bourgious society."[9]

आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने भी बिल्कुल इसी से मिलती जुलती बात कही है:– "उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है। इसमें मानव जीवन एवं मानव चरित्र का चित्रण उपस्थित किया जाता है। वह मनुष्य के जीवन और चरित्र की व्याख्या करता है।"[10]

भारतीय भाषाओं में उपन्यास, नावल के प्रभाव स्वरूप आया है। इसीलिए अधिकांश भाषाओं में इसे नवल कथा, नवल आदि शब्दों का रूप दिया गया है। हिन्दी में इस नव्य रूप के लिए उपन्यास शब्द का प्रयोग मिलता है। उपन्यास शब्द भारतीय 'काव्यशास्त्र' में 'नाट्यशास्त्र' के अन्तर्गत 'प्रतिमुख' सन्धि के एक उपभेद के रूप में आया है। इसकी व्याख्या दो प्रकार से की गई है–"उपत्तिकृतों हृद्यर्थः उपन्यासः" तथा 'उपन्यासः प्रसादनम्' अर्थात् उपन्यास में किसी बात को युक्तिपूर्वक कहा जाता है और वह मनोरंजन के लिए होती है।

पश्चिम से आयातित इस नए काव्य रूप में उक्त दोनों बातों को लक्षित करते हुए कदाचित् यह नाम दिया गया होगा।[11] अभिप्राय यह कि उपन्यास साहित्य का एक नया प्रकार है। परन्तु हिन्दी में जो नाम दिया गया, वह प्राचीन नाट्यशास्त्र से संबद्ध है।

उपन्यास काल, परिस्थिति, स्थान, घटनाएं, जीवन, समस्याएं और समाधान, या यों कहें कि जो कुछ भी है, औपन्यासिक रचना के घटाटोप में, उसके केन्द्र में सब में 'पात्र चरित्र' ही रहता है। अनेक पाश्चात्य विद्वान–'हेनरी जेम्स', 'ओर्तेगा' तथा 'आर्नोल्ड बेनेट' आदि कथा साहित्य में चरित्र निर्माण के कार्य को ही अधिक महत्व देते हैं। 'बेनेट' तो यहां तक कहते हैं कि कथा साहित्य में चरित्र चित्रण के अतिरिक्त है क्या?

इस प्रकार उपन्यास के संबंध में प्रेमचन्द की परिभाषा ही सर्वथा उचित प्रतीत होती है:–"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[12]

डॉ0 राम दरश मिश्र के अनुसार "उपन्यास का अर्थ है कथा (सूक्ष्म या सघन) के माध्यम से व्यक्त होने वाला जीवन चित्र जो स्थान विशेष या सामान्य से संबद्ध होकर सर्वदेशीय मानव संवेदनाओं और मूल्यों की प्रतिष्ठा करे।"[13]

डॉ0 गोपालराय ने आकार, NOVEL (नव्य या नवीन) को समाहित करते हुए उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार की है–

"उपन्यास पर्याप्त आकार की वह मौलिक गद्य कथा है जो पाठक को एक काल्पनिक, पर यथार्थ संसार में ले जाती है, जो लेखक द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभूत एवं सर्जित होने के कारण नवीन होता है।"[14]

"उपन्यास गद्य साहित्य का वह समर्थ रूप है जिसमें प्रबन्ध–काव्य सी मार्मिकता, नाटकों का सा प्रभाव गांभीर्य तथा छोटी कहानी कीसी कलात्मकता एक साथ मिल जायगी। श्रृंखलाबद्व कथानक द्वारा सरल तथा गूढ़ मानव–चरित्रों का निर्माण, उनकी समस्याओं, सक्रिय गतिविधियों तथा सामाजिक एवं मानसिक संघर्षों से युक्त उसके स्भावों एवं मन की महतीशक्तियों का पूर्ण जीवंत एवं यथार्थ चित्र कल्पना के द्वारा जिस साहित्य रूप द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, उसे 'उपन्यास' कहते है।"[15]

वास्तव में साहित्य के इस रूप (उपन्यास) ने अपनी लोकप्रियता और विषय वैविध्य के कारण इतना विकास कर लिया है कि किसी एक निश्चित परिमाण में इसे बाँध पाना कठिन है। इस विकासोन्मुख साहित्य रूप को परिभाषित करना अत्यन्त कठिन एवं खतरों से युक्त है।

इसी दृष्टि से 'वाल्टर एलेन' ने कहा है "मैं 'उपन्यास' को परिभाषित करने का प्रयत्न न ही करूँगा, क्योंकि जहाँ प्रत्येक को असफलता मिल चुकी है मुझे सफलता क्यों कर मिलेगी।"[16]

प्रो० कैथराइन लीवर के अनुसार–"A novel is the form of written prose narrative of considerable lenth in volving the reader is an emagined real world which is new becouse it has been created by the auther."[17]

अर्थात् "उपन्यास पर्याप्त लम्बा लिखित गद्य कथा वृत्त है जिसमें पाठक लेखक की कल्पना द्वारा सृजित वास्तविक नवीन विश्व में विचरण करता है। वह नवीन इस अर्थ में है कि उसकी रचना लेखक द्वारा हुई है।"

इस प्रकार 'Novel' तथा 'उपन्यास' शब्दों के अर्थ क्रमशः 'नवीन' और 'निकट रखना' को समाहित करते हुए और नाट्यशास्त्र के 'हृदयर्थ'को दृष्टि में रखते हुए मेरे विचार से 'उपन्यास'की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है–

विस्तृत लिखित गद्य कथा के रूप में रचना कार का वह 'नया' (मौलिक) और जनमन रंजन कारी प्रयास जो कल्पित संसार को यथार्थ (वास्तवविक) जगत के निकट स्थापित करता है।

:उपन्यास के प्रकार:

'उपन्यास' आज के साहित्य की सबसे अधिक प्रिय और सशक्त विधा है। 'उपन्यास' में मनोरंजन के साथ साथ जीवन की बहुमुखी छवियों को व्यक्र करने की शक्ति और अवकाश, दोनों ही होते हैं। साहित्य की समस्त सर्जनात्मक विधाओं में उपर्युक्त दोनों गुण विद्यमान रहते हैं किन्तु

अन्य विधाएँ अपने अपने विशिष्ट स्वरूप के कारण इन दोनों तत्वों का प्रस्फुटन 'उपन्यास'की भाँति नहीं कर पातीं।

बदलते मूल्यों तथा जीवन दृष्टि के कारण उपन्यासों में पापी, अपराधी, विद्रोही तथा नारी पुरुष के नैतिक मूल्यों पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाने लगा है। इस चेतना का मूल आधार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। इसी लिए उपन्यास साहित्य में नवीन भाव–बोध का जन्म हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप उपन्यासों को नई दिशाएँ प्राप्त हुई।

स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी उपन्यास नवीन यथार्थ का ऐसा परिदृश्य लेकर उपस्थित हुआ, जिसमें उसके बहुमुखी विकास की अनन्त संभावनाएँ थीं। 'उपन्यास' अपने समय का साक्षी तो होता ही है, वह समय के साथ यात्रा भी करता है। अपनी लगभग पाँच दशकों की यात्रा में हिन्दी उपन्यास ने देश के बदलते हुए जीवन यथार्थ को उसके पूरे विस्तार वैविध्य में गहरी संवेदन शीलता के साथ प्रस्तुत किया है। इस अवधि में परिमाण और प्रकार दोनों दृष्टियों से कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जो 'उपन्यास' की संवेदनशील पकड़ से छूट गया हो। पिछली आधी शदी में गाँवों की वास्तविक जिन्दगी और उसमें आए बदलाव, स्त्री की परम्परागत दुख भरी गाथा, उसके रूपान्तरण 'अबला से सबला' बनने की प्रक्रिया, दलितों का नरक तुल्य जीवन, उनके उठ खडे होने की सच्चाई, समाज के पिछड़े वर्ग का विद्रोह, मध्यवर्ग का बहुरंगी यथार्थ, परिसर जीवन की विकृतियाँ, राजनीतिक क्षेत्र में आई गिरावट, कला, साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र की कुरूप वास्तविकता आदि हिन्दी उपन्यास में अपने यथार्थ रूप में दिखाई देते है। इसके साथ ही भारतीय इतिहास और पुराण साहित्य भी उपन्यास का उपजीव्य बना है। प्रतिभाशाली उपन्यासकारों ने उसे समृद्ध ही नहीं किया, उनके नए प्रयोग भी किए हैं। इन नए नए रूपों में 'उपन्यास'के उनेक प्रकार हो गए जो कभी–कभी एक दूसरे से बिलकुल भिन्न लगते हैं। कथ्य, प्रवृत्ति, शिल्प संरचना तथा शैली के आधार पर उपन्यासों के निम्नांकित प्रकार प्राप्त होते हैं:–

1– सामाजिक और समाजवादी।
2– मनोरंजन प्रधान (तिलस्मी तथा अय्यारी)।
3– अपराध प्रधान (जासूसी)।
4– प्रेम प्रधान (रूमानी)।
5– ऐतिहासिक।
6– राजनीतिक।
7– सांस्कृतिक।
8– पौराणिक।
9–मनोवैज्ञानिक।
10–आंचलिक।
11–व्यंग्यात्मक।
12–दार्शनिक।
13–प्रगतिवादी।
14–प्राकृतवादी।
15–प्रयोगवादी।
16–आधुनिकतावादी।
17–उत्तर आधुनिककता।
18–नारी वादी।

1. **सांस्कृतिक उपन्यास** : जिस उपन्यास में आद्यंत उसके सभी अंगो में अर्थात् वातावरण, कथानक, पात्र, परिकल्पना, शिल्पविधान, भाषाशैली और उद्देश्य सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति होती है, या सभी उस चेतना से संबद्ध हैं, वही सांस्कृतिक उपन्यास कहलाता है। सांस्कृतिक उपन्यासों में इतिहास आभास मात्र होता है।

2. **ऐतिहासिक उपन्यास** : ऐतिहासिक उपन्यास युग विशेष के ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर रचा जाता है। उसमें वातावरण, पात्र, घटनाएँ, तिथियाँ आदि इतिहास सम्मत और यथार्थ होते हैं यद्यपि उपन्यासकार युग जीवन को सजीव बनाने के लिए कल्पना का सहारा लेकर इतिहास को रंगीन बनाता है।

3. **ऐतिहासिक सांस्कृतिक उपन्यास** : कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों में सांस्कृतिकदृष्टि और तत्वों की प्रधानता देखकर समीक्षकों ने उन्हे ऐतिहासिक–सांस्कृतिक उपन्यास कहा है।"सांस्कृतिक ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति, षड्यंत्रो की प्रमुखता, शासकों की विलासप्रियता, वर्णव्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था और उसकी विविध रूढ़ियाँ, धार्मिक परिस्थिति, नारीजीवन और उसका महत्व आदि विषयों का विस्तार से वर्णन किया जाता है।"

4. **सामाजिक उपन्यास** : सामाजिक उपन्यास में राष्ट्रीय पारिवारिक और सामाजिक जीवन के स्वरूप और उसकी समस्याओं का अंकन किया जाता है। एक प्रकार से यह समस्या प्रधान उपन्यास है और उस समस्या का संबंध युगीन सामायिक जीवन की वहिर्मुखी गति विधि से होता है।

5. **तिलस्मी, जासूसी और अय्यारी उपन्यास** : घटना प्रधान होते हैं इनका लक्ष्य केवल मनोरंजन है। इनका कोई साहित्यिक मूल्य नही है।

6. **धार्मिक उपन्यास** : जीवन के एक पहलू को लेकर चलता है। धार्मिक कट्टरता, साम्प्रदायिकता, रूढ़–व्यवस्था आदि को लेकर इसकी रचना होती है।

7. **दार्शनिक उपन्यास** : किसी दर्शन विशेष से संबद्व होकर एकांगी हो जाता है। इसका शिल्प वैचारिक सूत्रों पर आधारित होता है।

8. **प्रगतिवादी उपन्यास** : मार्क्सवादी दृष्टि से रचित सामाजिक उपन्यास है। इसमें सामाजिक जीवन को राजनीतिक–आर्थिक व्यवस्था पर आधारित मानकर जीवन का आख्यान किया जाता है। इनमें मार्क्सवादी सैद्धान्तिक आख्यान और विचार विमर्श के कारण कथानक–शिल्प में विखराव आ जाता है।

"ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखक ऐतिहासिक परिवेश को उसकी सच्चाई में मूर्तिमान तो करता ही है, साथ में उस परिवेश के भीतर से वह ऐसे प्रश्न, ऐसे मूल्य, ऐसे सौदर्य उभारता है जो अधिक व्यापक और गहन होने के नाते वर्तमान जीवन को भी अपनी परिधि में समेट लेते हैं।"[18]

9. **राजनीतिक उपन्यास** : इनमें प्रगति वादी उपन्यास की तरह राजनीतिक दृष्टि प्रधान होती है। उस राजनीति का सामान्य जनजीवन पर प्रभाव दिखाया जाता है। कभी–कभी कुछ राजनीतिक सिद्वान्तों का आधार लिया जाता है। राजनीतिक दॉव पेंच दिखाने में इस प्रकार के उपन्यास का रचनात्मक स्वर प्रधानतः व्यंग्यात्मक हो जाता है।

10 **आंचलिक उपन्यास** : आंचलिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास का ही एक रूप है। स्थान विशेष की भौगोलिक स्थिति, ग्रामीण लोक जीवन और संस्कृतिरस्म रिवाज, पर्व त्योहार, लोक साहित्य और भाषा की झलक, ग्रामीण संस्कार आदि के आधार पर आंचलिक उपन्यास की रचना होती है।

"आंचलिक उपन्यास, उपन्यास का एक विशिष्ट प्रकार है क्योंकि उसका उद्देश्य भिन्न है। वहन तो घटना प्रधान उपन्यासों की तरह कुछ खास पात्रों के जीवन से संबद्व घटनाओं और समस्याओं को लेकर वेगवती धारा की तरह नई–नई भूमियों को पार करता हुआ आगे बढ़ता है और न तो मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की तरह कुछ गिने चुने पात्रों के मन का विश्लेषण करता है। इन दोनों अवस्थाओं में विखराव का कोई प्रश्न नहीं उठता, किन्तु आंचलिक उपन्यास का उद्देश्य है–स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीते हुए अंचल के व्यक्तित्व के समग्र पहलुओं का उद्घाटित करना।"[19] आंचलिक उपन्यासों का अध्ययन दो भागों में किया गया है–(अ) ग्राम भित्तीय उपन्यास (ब) नगर भित्तीय

11. **व्यक्तिवादी या वैयक्तिक उपन्यास** : सामाजिक चेतना प्रधान सामाजिक उपन्यास का उलटा रूप व्यक्तिवादी उपन्यास है। एक में सामाजिक दृष्टि और मूल्यों को लेकर, तथा दूसरे में व्यक्तिवादी दृष्टि और मूल्यों को लेकर मानव–जीवन का चित्रण और आख्यान होता है। शिल्प की दृष्टि से व्यक्तिवादी रचना में पात्र विशिष्ट व्यक्तित्व संपन्न लगते हैं। व्यक्तिवादी उपन्यास व्यक्तिमन की चेतना, जीवन में उसकी साधना और परिस्थिति पर व्यक्ति की विजय का चित्र प्रस्तुत करता है।

12. **मनोवैज्ञानिक उपन्यास** : मनोवैज्ञानिक उपन्यास, मानव आचरण और उसके प्रेरक मन के पारस्परिक संबंध का विश्लेषण करता है। मानव मनोभूमि का प्रत्यक्षीकरण मनोवैज्ञानिक उपन्यास है।[20] मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चेतना प्रवाह (Stream of Conciousness) का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में आन्तरिक जीवन क्रिया का अनेक विम्बों एवं प्रतीकों द्वारा चित्रण होता है। "इन प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में हमें ऐसा लगता हे कि हम जीवन जी रहे हैं, जीवन की कहानी नहीं सुन रहे। चूँकि यह आन्तरिक जीवन की यात्रा है, इसलिए इसमें अनिवार्य भाव से विम्बों और प्रतीकों की योजना होती है।"[21]

13. **व्यंग्यात्मक उपन्यास** : इस प्रकार के उपन्यासों में आजकल की राजनैतिक, सामाजिक तथा इन क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार, पदलोलुपता और दिखावटी चरित्र का अंकन प्रमुख रूप से प्रतीकों के माध्यम से व्यंग्यात्मक होता है। यथा–उर्दू बेगम (भगवान दास 1905), हुजूर

(रांगयराघव 1952), कढ़ी में कोयला (पांडेय वेचन शर्मा उग्र 1955) चाँदी का जूता (विंध्याचल प्रसाद गुप्त) रागदरवारी (श्रीलाल शुक्ल 1968) एक मंत्री स्वर्ग लोक में (डॉ0 शंकर पुणतांवेकर 1970) एक चूहे की मौत (बदी उज्मा 1971) छठा तंत्र 1977 आदि।

14. **पौराणिक उपन्यास** : इनमें पुराणों की कथाओं को आधार बना कर तत्कालीन सामाजिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक जीवन मूल्यों, परिस्थितियों आदि का प्रभावी अंकन होता है। अमृत लाल नागर का 'एकदा नैमिषारण्ये' इसका अप्रतिम उदाहरण है।

15. **रूमानी उपन्यास** : ऐसे उपन्यासों में रूमानी तत्वों, युद्व और प्रेम के अतिरंजित और विश्वसनीय वर्णनों की भरमार होती है। इन उपन्यासों को ऐतिहासिक–रोमास भी कहा गया है। "इन उपन्यासों को पढ़ते समय हमें किसी यथार्थ संसार में विचरण करने का बोध नहीं होता। पात्रों के नाम ऐतिहासिक हैं पर कथा में प्रायः इतिहास की उपेक्षा की गई है।"[22] किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यास इसी श्रेणी में आते हैं।

वास्तव में, जीवन के समग्र निरूपण में कथ्य के अनेक वर्ग मिल जाते हैं। दृष्टि, चिंतन और प्रवृत्ति को लेकर उपन्यासों के निम्नप्रकार भी हो सकते हैं– 1. आदर्शवादी 2. यथार्थ वादी, 3. अतिय यथार्थ वादी 4. प्राकृतवादी 5. स्वच्छन्दता वादी 6. अस्तित्व वादी।

शिल्प के क्षेत्र में हुए विविध नवीन प्रयोगों के कारण उपन्यासों को निश्चित प्रकारों या रूपों में बॉटना सम्भव नहीं है। आकार जीवन चरित्र के व्यापक समग्र निरूपण के अनुसार भी इन्हें दो प्रकारों में विभाजित किया गया है– (1) वृहदाकार (2) लघु उपन्यास अथवा उपन्यासिका।

इसके अतिरिक्त **महाकाव्यात्मक उपन्यास** (गोदान) और **युग विशेष और पीढ़ियों का उपन्यास** भूले विसरे चित्र) भी शिल्प संरचना की दृष्टि से उपन्यास के विशिष्ट रूप हैं।

डॉ0 माधव सोन हक्के के अनुसार उपन्यास के निम्नप्रकार भी हैं– (1)प्रयोग वादी (2) आधुनिकता वादी और (3) नारी वादी।

संक्षेप में "संरचना का तानावाना उपन्यास कार की प्रतिभा के अनुसार नित्य नवीन रूप में प्रस्तुत होता है। उपन्यास पर मनोविज्ञान के प्रभाव से स्मृति, पूर्व दीप्ति चेतना प्रवाह, स्वप्न पद्वतियों का प्रयोग हो रहा है। रचना शैली, वर्णनात्मक प्रकथनात्मक, भाव प्रधान, या वैचारिक होती है। बाहरी रचना विधान, ऐतिहासिक कथन, आत्म कथा, गौण पात्र प्रकथन, पत्र डायरी, आदि रूप ग्रहण करता है।"[23]

हिन्दी उपन्यास–साहित्य का संक्षिप्त इतिहासः–

डॉ0 'सी0 चेत्र केशुवुल' ने उपन्यास साहित्य को ऐतिहासिक दृष्टि से निम्नांकित चार युगों में विभाजित किया हैः–

(1) भारतेन्दु युग–1868–1893 (2) द्विवेदी युग–1893–1918

(3) प्रेमचन्द युग–1918–1936 (4) प्रेमचन्दोत्तर युग–1936–आज तक।[24]

डॉ0 'माधव राव सोनटक्के' ने काव्य एवं अन्य विधाओं के साथ 'उपन्यास' साहित्य को भी (1) भारतेन्दु काल (संक्रान्ति काल) 1857से 1900 (2) द्विवेदी काल (जागरण सुधार काल) 1900–1918 (3) स्वच्छन्दता वादी काल–1918–1936 (4) निषेध–विद्रोह या प्रगति प्रयोग काल–1936 से 1950 और (5) स्वातंत्र्योत्तर काल–1950 से अब तक, भागों में विभाजित किया है।[25]

कतिपय समीक्षकों ने आधुनिक काल– 1857–1918 तक के काल–खण्ड को मिलाकर उसे 'प्रेमचन्द पूर्व युग'की संज्ञा दी है। कुछ ने प्रेमचन्दोत्तर युग को 1936 से अब तक, एक साथ ही मिला दिया है किन्तु इन काल खण्डों की राजनीतिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि में बड़ा अन्तर है। प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी उपन्यास के विकास के विविध आयामों और जीवन मूल्यों एवं दृष्टिकोण संबंधी परिवर्तन को दृष्टिगत रखते हुए कुछ विद्वानों ने 'प्रेमचन्दोत्तर युग' को 'स्वतंत्रतापूर्व' और स्वातंत्र्योत्तर युगों में विभाजित करना उचित एवं आवश्यक समझा है। स्वतंत्रता के पश्चात् उपन्यास के क्षेत्र में अनेक नये प्रयोग ही नही किए गए, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में भ्रष्टाचार और जीवन मूल्यों की अवनति भी हुई है। अतः प्रेमचन्दोत्तर युग को सीधे 1936 से आज तक जोड़ कर उपन्यास साहित्य का अध्ययन उचित नही प्रतीत होता है। इस दृष्टि से प्रो0 गोपाल राय कृत वर्गीकरण सर्वथ उचित प्रतीत होता है:–

(1) नव जागरण काल – 1870–1890 प्रेमचन्द पूर्व युग

(2) रोमांस काल –1891–1917

(3) यथार्थ के नए स्वरः 1918–1947

(क) केन्द्र में किसानः 1918–1936 (प्रेमचन्द युग)

(ख) नयी दिशाओं की तलाशः 1937–1947 (स्वतंत्रतापूर्व युग) प्रेमचन्दोत्तर।

(4) विमर्श के नए क्षितिज –1948–1980 (स्वतंत्र्योत्तर) प्रेमचन्दोत्तर।

(5) समकालीन परिदृश्यः –1981–2000।[26]

1870–1890

1– नवजागरण काल या प्रेमचन्द पूर्व युग अथवा संक्रान्ति काल।

"हिन्दी में 'नावेल' के अर्थ में 'उपन्यास' पद का प्रथम प्रयोग 'भारतेन्दु' हरिश्चन्द्र ने 1875 ई0 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के फरवरी और मार्च 1875 के अंको में धारावाहिक रूप में प्रकाशित अपूर्ण कथा 'मालती' के लिए किया था।"[27]

'भारतेन्दु' जी को 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग करने वाला प्रथम साहित्यकार माना जाता है किन्तु उनका अपना कोई उपन्यास पुस्तकाकार में प्रकाशित नहीं हुआ। इसी प्रकार 'भारतेन्दु' के बाद उपन्यास पद का प्रयोग करने वाले 'राधाकृष्ण दास' का भी कोई 'उपन्यास' परीक्षा गुरु से

पूर्व पुस्तकाकार प्रकाशित नही हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लाला श्री निवास दास के 'परीक्षा गुरु' को, जिसका प्रकाशन 1882 में हुआ था, हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास मानते है। अधिकांश विद्वान उनके इस मत से सहमत हैं। कुछ आधुनिक विद्वान अपनी तर्कशक्ति का प्रयोग करते हुए 'भाग्यवती' और 'देवरानी जेठानी की कहानी' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास सिद्व करने का प्रयास करते हैं। आचार्य शुक्ल के मत से सहमत विद्वानों को 'लकीर पीटने वाला' भले ही कह लिया जाए, किन्तु कोई भी विद्वान अनेकानेक तर्क एवं प्रमाण देकर भी, कई कारणों से इस 'लकीर'को मिटाने में समर्थ नहीं हो सका है। अतः 'परीक्षा गुरु' को ही हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना जाता है।

इस प्रथम चरण में आर्थिक व्यवस्था की उलट फेर प्रेस, समाचार पत्र, शिक्षा–व्यवस्था, नवीन व्यावसायिक वर्ग का उदय, आदि के कारण उत्पन्न मध्यवर्ग की बहुमुखी तथा नवीन समस्याओं को अभिव्यक्त करने हेतु गद्य की नवीन साहित्यिक विधा की आवश्यकता हुई। अंग्रेजी–सत्ता और साहित्य के कारण 'नावेल' विधा की इसके उपयुक्त पाई गयी। इसी लिए सबसे पहले 'बंगला' में 'उपन्यास' लिखे गए। ये उपन्यास अंग्रेजी 'नावेल' से प्रभावित थे। हिन्दी में 'उपन्यास' का आगमन बंगला उपन्यासों के अनुवादों से हुआ। इसके पश्चात् मौलिक 'उपन्यास' का सृजन आरंभ हुआ।

इस पूरे दशक में वालकृष्ण भट्ट उपन्यास लेखन में सर्वाधिक सक्रिय रहे। भारतेन्दु के पश्चात् यदि किसी लेखक ने 'उपन्यास' पद के प्रचार और उपन्यास लेखक को सर्वाधिक प्रोत्साहन दिया, तो वे भट्ट जी थे। उन्होंने न केवल स्वयं उपन्यास लिखे बल्कि 'हिन्दी प्रदीप' में अन्य लेखकों के 'उपन्यास' भी धारावाहिक रूप में प्रकाशित किए और उपन्यासों की सभीक्षाएँ प्रस्तुत कीं। भट्ट जी का 'तूतन ब्रह्मचारी' पूर्ण से पुस्तकार 1886 ई0 में प्रकाशित भी हुआ। ठाकुर जगन्मोहन सिंह ने 'श्यामा स्वप्न' नामक उपन्यास की रचना की जो 1888 ई0 में प्रकाशित हुआ।

नवें दशक के अन्तिम तीन वर्षों में किशोरी लाल गोस्वामी ने तीन मौलिक उपन्यास 'प्रणयिनी परिणय', और त्रिवेणी या सौभाग्य श्रेणी 'स्वर्गीय कुसुम' या कुसुम कुमारी (1889) लिखे। 'प्रणयिनी परिणय' 1890 में प्रकाशित हुआ था। 'त्रिवेणी की रचना 1888 में' हुई थी और 1890 में 'विहार वन्धु' में प्रकाशित हुआ था। स्वर्गीय कुसुम 1889 में लिखा गया था।

इस युग के अन्य उल्लेखनीय उपन्यास कार 'राधा कृष्ण दास' किशोरी लाल गोस्वामी, श्री निवास दास आदि हैं। इस युग के उपन्यास साहित्य ने "सामाजिक पुनर्निर्माण पारिवारिक एवं चारित्रिक सुधार, मध्य युगीन पौराणिकता तथा धर्मान्धता और नवीन शिक्षा के फलस्वरूप उत्पन्न उदार मानवतावादी तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बीच के संघर्ष, राष्ट्रीय नवोत्थान आदि को अपना विषय बनाया। कला अथवा रचना पद्धति की ओर उपन्यासकारो ने इतना अधिक ध्यान नहीं दिया जितना व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन एवं चरित्र के परिष्कार की ओर। यह

कार्य सम्पन्न करने के लिए उन्होंने अपने चारों ओर के जीवन पर तो दृष्टिपात किया ही, साथ ही साथ इतिहास को भी अपनी भुजाओं में समेंटने का लघु प्रयास किया।''[28]

(1891–1917)

2. **रोमांसकाल/दिवेदी युग/या जागरण सुधार काल (प्रेमचन्द पूर्व युग)**

इस युग में स्वतंत्रता संग्राम तीव्र हो उठा। इस राष्ट्रीय चेतना में जीवन के राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक,सामाजिक, सभी पहलू समाविष्ट हो गए। सभी प्रकार की विषमताओं एवं अत्याचारों से समाज के पीडित और कुचले हुए वर्ग को मुक्ति दिलाने के प्रयास होने लगे। साहित्यिक दृष्टि से कालजयी रचनाएं इस युग में भी नए–नए रूपों का विकास हुआ। आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'सच्चा स्वछन्दवाद' इसका प्रमाण है।[29]

इस काल खण्ड के उपन्यासों को कई भागों में विभाजित किया जाता है–

1. **जासूसी, तिलस्मी उपन्यास** : इनके प्रतिनिधि उपन्यासकार गोपाल राम गहमरी देवकी नंदन खत्री आदि हैं। 'घटना प्रधान' इस प्रकार के उपन्यासों का लक्ष्य कुतूहल जगाना और मनोरंजन करना है। यद्यपि इन उपन्यासों का विकासपरक महत्व नहीं है तथापि हिन्दी उपन्यास के प्रारंभकाल में पाठकों को साहित्य की ओर आकर्षित करने का ऐतिहासिक श्रेय तो इनके ही पक्ष में जाता है। ''हिन्दी साहित्य के इतिहास में बाबू देवकीनंदन का स्मरण इस बात के लिए हमेशा बने रहेगा कि जितने पाठक उन्होने उत्पन्न किए उतने किसी अन्य ग्रन्थकार ने नहीं।''[30]

''यह मानना असंगत न होगा कि प्रेमचन्द को हिन्दी में लाने का श्रेय परोक्ष रूप से देवकी नंदन खत्री को भी है। खत्री जी ने पाठक वर्ग के निर्माण के रूप में आवश्यक उपजाऊ जमीन तैयार कर दी जिस पर प्रेमचन्द ने 'उपन्यास' की समृद्ध फसल उगाने में सफलता प्राप्त की।[31]

खत्री जी की 'ऐयारी तिलस्म' प्रधान कथा पुस्तकों को यों तो उपन्यास कहने की ही परिपाटी है, पर वे सही अर्थो में 'उपन्यास' नही है। इसलिए आचार्य शुक्ल ने इन्हे साहित्य की कोटि में नहीं रखा। ''इन उपन्यासों का लक्ष्य घटना प्रधान वैचित्र्य रहा, रस संचार भाव विभूति या चरित्र निर्माण नहीं।

ये वास्तव में घटना प्रधान कथानक या किस्से हैं जिनमें जीवन के विभिन्न पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं है। इससे ये साहित्य की कोटि में नहीं आते।''[32]

खत्री जी की लोकप्रियता से प्रेरित होकर 'हरिकृष्ण जौहर' मदन मोहन मिश्र, बाल मुकुन्द शर्मा, किशोरी लाल गोस्वामी, विनायक लाल दादू, रूप नारायण शर्मा, कुँवर लक्ष्मी नारायण गुप्त, विश्वेश्वर प्रसाद वर्मा, ठाकुर जंग बहादुर सिंह, ब्रह्म दत्त शर्मा, चन्द्रशेखर पाठक, शंकर दयाल श्रीवास्तव, रामलाल वर्मा, वृन्दावन विहारी सिंह गोविंद राव तैलंग, जगन्नाथ मिश्र, रूप किशोर जैन

आदि लेखकों ने 1898–1913 की अवधि में दर्जनों ऐयारी–तिलस्म प्रधान रोमांसों की रचना की। खत्री जी के निधन के पश्चात् भी यह क्रम जारी रहा।

"इन उपन्यासों में एक ओर अद्भुत विस्मय कारी काल्पनिक घटनाओं का इन्द्र जाल था, तो दूसरी ओर मध्यकालीन श्रृंगार परम्परा भी। मध्यकाल में सुंदरियों को प्राप्त करने के लिए राजपूतों में पारस्परिक युद्ध हुआ करते थे। इन उपन्यासों में भी राजकुमार सुन्दर राज कुमारियों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, लेकिन उनके युद्ध ऐप्यार ढंग के हैं। 'तिलस्मों का व्यूह तोड़कर राज कुमारियों की प्राप्ति' इतने से कथा सूत्र का इन्द्र जाली विस्तार उन उपन्यासों में इस तरह हुआ करता था कि पाठक उसकी भूल–भुलैया में अपने आप खो जाता था।"[33]

खत्री जी के उपन्यास लेखन का दौर लगभग 25वर्ष का है। इस दौर में उन्होने 'चन्द्र कान्ता' 'चन्द्र कान्ता सन्तति' भूतनाथ (छहभाग) लिखा। इसके अतिरिक्त 'वीरेन्द्र वीर' अथवा 'कटोरा भर खून' (1895) 'नौ लखा हार' (1899) और काजर की कोठरी (1902) आदि उपन्यास भी लिखे।

खत्री जी से प्रभावित होकर 'गोपाल राम गहमरी' ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया। इनका कथा लेखन खत्री जी से लगभग एक दशक बाद प्रारम्भ हुआ। 1900 ई० के पूर्व उनकी तीन 'जासूसी' कथा पुस्तकें 'अजीब लाश' 'जासूस' और 'जोड़ा जासूस' 'बेंकटेश्वर समाचार' में क्रमशः प्रकाशित हो चुकी थीं।

हिन्दी में 'जासूसी उपन्यास' और 'जासूसी' पद को प्रचलित करने वाले गहभरी जी ही थे। गहभरी जी की इस काल में प्रकाशित मौलिक और अनूदित अपराध प्रधान और जासूसी कथा पुस्तकों की संख्या लगभग 200 है। यद्यपि यह निर्णय करना थोड़ा कठिन है कि इनमें कितनी मौलिक हैं और कितनी अनूदित छान बीन के पश्चात ज्ञात होता है कि लगभग 100 पुस्तकें मौलिक हैं।

2. **सामाजिक उपन्यास :** इस काल के सामाजिक उपन्यासों में, सामाजिक पुनर्निर्माण पारिवारिक एवं चरित्र सुधार, मध्य युगीन पौराणिकता तथा धर्मान्धता, राष्ट्रीय–नवोत्थान आदि को विषय बनाया। इनमें लज्जाराम शर्मा, ब्रज नंदन सहाय कृत 'राजेन्द्र मालती' (1897) अयोध्या सिंह उपाध्याय कृत 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' (1899) महता लज्जाराम शर्मा कृत 'धूर्त रसिक लाल (1899) और स्वतंत्ररमा परतंत्र लक्ष्मी' आदि उपन्यास प्रकाशित हुए। पर इनमें भुवनेश्वर मिश्र को छोड़कर शेष 20वीं शदी के उपन्यासकार हैं। "सामाजिक दृष्टि से इनमें नीति एवं चरित्र संबंधी परंपरागत समस्याओं पर रूमानी अधिक बल दिया गया है, सामयिक समस्याओं का विश्लेषण बहुत कम हुआ है।"[34]

3. **ऐतिहासिक रूमानी उपन्यासः**

सामाजिक उपन्यासों की तुलना में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना इस काल में कम हुई। इस क्षेत्र में किशोरीलाल गो0 का ही नाम प्रमुख और उल्लेखनीय है। "किन्तु उनके

उपन्यासों में ऐतिहासिकता की अपेक्षा श्रृंगारिकता अधिकता है।''[35] गोस्वामी जी की 'हृदय हारिणी' व 'आदर्शरमणी' लवंगलता व आदर्शबाला 1904 में प्रकाशित हुए। इन रचनाओं से गोस्वामी जी ने हिन्दी में ऐतिहासिक रोमांस की नीव डाली। यह हिन्दी कथा साहित्य में एक नयी प्रवृत्ति थी। इसके अतिरिक्त गोस्वामी जी के 'तारा व क्षत्र कुल कमलिनी' (1902), गुलबहार व आदर्श बहार व आदर्श भ्रातृस्नेह (1906), 'कनन–कुसुम व मस्तानी' (1904), हीराबाई या बेहयायी का बुरका (1904), 'सुल्ताना रजिया बेगम या रंगमहल में हलाहल'(1904–05) मल्लिकादेवी व बंग सरोजिनी (1905) 'लखनऊ की कब्र व शाही महलसरा' (1906–1918) 'सोना और सुगन्ध व पत्राबाई' (1909) 'लाल कुंवर व शाही रंगमहल'(1909) आदि ऐतिहासिक रोमांस प्रकाशित हुए।

सामाजिक उपन्यास – किशोरी लाल गोस्वामी, ब्रजनंदन सहाय और महता लज्जा राम शर्मा आदि प्रमुख उपन्यासकारों के अतिरिक्त अन्य दर्जनों लेखक भी थे जिन्होंने इस अवधि में शताधिक सामाजिक उपन्यास लिखे। गोपाल राय गहभरी, योध्या सिंह उपाध्याय, चन्द्र शेखर पाठक, ईश्वरी प्रसाद शर्मा, लाला देराज, लाल जी सिंह, गिरीजा नन्दन तिवारी, हजारी लाल, प्रियंवदा देवी, चतुरसेन शास्त्री आदि नाम प्रमुख हैं।

किशोरी लाल गोस्वामी हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में स्वीकृत हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें ऐतिहासिक उपन्यासकार ही माना है। ''गोस्वामी जी के उपन्यासों में तत्कालीन जीवन का स्पष्ट चित्र सामने नहीं आता। पात्रों के भाव जगत के चित्रण में भी उन्होंने विशेष रुचि नहीं दिखाई है। इन उपन्यासों को पढ़ते समय हमें किसी यथार्थ संसार में विचरण करने का बोध नहीं होता है। पात्रों के नाम ऐतिहासिक है पर कथा में प्रायः इतिहास की उपेक्षा की गई है। इस कारण कतिपय विद्वानों ने गोस्वामी जी के उपन्यासों को ऐतिहासिक रोमांस कहना अधिक संगत समझा है।''[36]

गंगा प्रसाद गुप्त, जयराम दास गुप्त भी गोस्वामी जी की ही तरह उनके ही मार्ग पर चलने वाले ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। गंगा प्रसाद गुप्त ने केवल दो वर्षों में ही 'नूर जहाँ व संसार सुन्दरी' (1902), 'पूना में हलचल व वनवासी कुमार' (1903), 'वीर पत्नी' (1903) तथा 'हम्मीर' (1904) आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिख डाले। पर इन उपन्यासों में कोई उल्लेखनीय नया पन नहीं है। जयराम दास गुप्त ने 'कश्मीर पतन' (1907), 'किशोरी व वीर बाला' (1907), 'मायारानी' (1908), 'नवाबी परिस्तान वा वाजिद अली शाह' (1908), 'कलावती' (1909), 'प्रभात कुमारी' (1909), 'वीर वीरांगना' (1909) आदि उपन्यास लिखे थे। इनमें भी रोमानी तत्वों, युद्ध और प्रेम के अतिरंजित और अविश्वसनीय वर्णनों की भरमार है

इसके अतिरिक्त इस काल के कुछ अन्य लेखक है– ''कार्तिक प्रसाद खत्री, बलदेव प्रसाद मिश्र, मथुरा प्रसाद वर्मा, ठाकुर प्रसाद खत्री, चन्नी लाल खत्री आदि। इसी काल खण्ड में ज्ञात इतिहास, अनुश्रुतियों और कल्पना के मिश्रण से कतिपय ऐतिहासिक कथाएँ भी लिखी गयीं। इनमें हरिचरण सिंह चौहान कृत 'वीर नारायण' (1894), बृज विहारी सिंह कृत 'कोटा रानी' (1902),

बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'पानी– पत' (1902), लाल जी सिंह कृत 'बीर बाला' (1903), गिरिजा नन्दन तिवारी कृत 'पद्यमिनी' (1905), मुंशी देवी प्रसाद कृत 'रूठी रानी' (1906), बल भद्र सिंह कृत 'सौंदर्य कुसुम' (1909), राम नरेश त्रिपाठी कृत 'वीरांगना' (1911), राम प्रताप गुप्त कृत 'महाराष्ट्र वीर' (1913), चन्द्रशेखर पाठक कृत 'भीम सिंह' (1915), युगुल किशोर नारायण सिंह कृत 'राज पूत रमणी' (1916), बृज नन्दन सहाय कृत 'लाल चीन' (1916), मिश्र बन्ध कृत 'वीर मणि' (1917) आदि उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों में प्रमुख घटनाएँ एवं पात्र ऐतिहासिकता का न्यूनाधिक आधार अवश्य लिये हुए है किन्तु ऐतिहासिक वातावरण, युगीन सामाजिक परिस्थितियाँ, तत्कालीन राजनीति, आचार–विचार, वेश भूषा आदि के चित्रण में प्रायः काल दोष मिलता है।''[37] संक्षेप में ''खत्री जी ने इन दस वर्षों (1891–1901) में हिन्दी कथा साहित्य के लिए इतनी उपजाऊ जमीन तैयार कर दी की उसमें अनेक प्रकार की कथा–पुस्तकें बरसात की वनस्पतियों की तरह पैदा हो गयीं और वास्तविक उपन्यास उनमें खो सा गया।''[38]

3. **यथार्थ के नए स्वर** : स्वच्छन्दता वादी काल : प्रेमचन्द युग

(अ) केंन्द्र में किसान (1918 से 1936 ई0)

'सेवा सदन' के साथ प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यास के कथा संसार में एक जबरदस्त परिवर्तन लाए। इसके पहले के उपन्यासों में 'बलवंत भूमिहार' जैसे कुछ के अपवादों को छोड़कर या तो घटनाओं की बहुलता होती थी या प्रकृति, नारी सौंदर्य, विरह, धार्मिक, नैतिक उद्देश्य आदि से संबंधित वर्णनों की सेवा सदन से होता है जिनमें घटनाओं के स्थान पर कार्य व्यापारों को प्रदर्शित किया गया है।

'सेवा सदन' के बाद प्रेमचन्द ने प्रेमाश्रम (1922) रंगभूमि (1925) कायाकल्प (1926)निर्मला (1927) गबन (1931) कर्मभूमि (1932) गोदान (1936) आदि उपन्यासों की रचना की।

''कहने की आवश्यकता नहीं, कथ्य वैविध्य, विजन चरित्र सृष्टि, शिल्प और भाषा सभी दृष्टियों से प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को एक ऐसी उँचाई पर पहुँचा दिया जो आज भी एक मंजिल और मानदंड के रूप में स्वीकृत है।''[39]

इस काल खंड में भी ऐय्यारी–तिलस्मी कथाएँ प्रकाशित हुईं किन्तु उनका जोर का दौर समाप्त हो गया। दुर्गा प्रसाद खत्री द्वारा 'भूतनाथ' (भाग 11–21) इसी अवधि में प्रकाशित हुए। गंगा प्रसाद गुप्त, शंभू प्रसाद उपाध्याय, राजा चक्रधर सिंह आदि कई लेखकों ने देवकी नन्दन खत्री के अनुकरण पर 'कृष्ण कान्ता सन्तति' 'मस्तनाथ' 'प्रेमकान्ता', 'प्रेमकान्ता सन्तति' 'अलकापुरी' जैसे उपन्यास लिखे पर इनमें कोई नया पन नही था। धीरे धीरे हिन्दी पाठकों की रुचि भी इनसे हटने लगी और प्रेमचन्द युग के समाप्त होते इस कथा धारा का अवसान हो गया।

इसी प्रकार की स्थिति अपराध प्रधान और जासूसी उपन्यासों की भी रही। यद्यपि इस अवधि में गहमरी जी की लगभग तीन दर्जन कथा पुस्तकें (जासूसी) प्रकाशित हुई। 'गहमरी' जी के अतिरिक्त दुर्गा प्रसाद खत्री, देवबली सिंह, चन्द्रशेखर पाठक, नरोत्तम व्यास परमानंद खत्री,

निहाल चन्द वर्मा, बलभद्र सिंह आदि ने भी अपराध प्रधान और जासूसी उपन्यासों की रचना की किन्तु केवल दुर्गा प्रसाद खत्री ने ही वैज्ञानिक अनुसंधानों और शासन के विरूद्व आंतक वादी गति विधियों और क्रान्तिकारी हरकतों को सूक्ष्म तथा अप्रत्यक्ष संकेतों को कथा से जोड़कर उसमें 'नयापन' लाने का प्रयास किया। इनके 'लालपंजा' रक्तमंडल (1927) सुफेद शैतान (1937) में वैज्ञानिक साधनों से संपन्न जासूसी कारनामों के साथ साथ राष्ट्र प्रेम का भाव भी व्यक्त हुआ है।

प्रेमचन्द युग के अन्य उपन्यास कारों को मुख्य रूप से तीन कोटियों में बॉटा जा सकता है। प्रथम कोटि में वे लेखक हैं। जिन्होंने लगभग बीसवीं शती के आरंभ में ही उपन्यास लेखन आरंभ किया था और हिन्दी उपन्यास का इतिहास रचने में किसी न किसी रूप में योगदान किया था।

दूसरी कोटि में वे उपन्यासकार रखे जा सकते हैं जिनका रचना काल प्रेमचन्द युग तक ही सीमित है। इनमें रचना क्रम की दृष्टि से जगदीश झा विमल, जी पी0 श्रीवास्तव, मदारी लालगुप्त, चंडी प्रसाद हृदयेश, वेचन शर्मा 'उग्र', गिरिजा दत्त शुक्ल 'गिरीश', देवनारायण द्विवेदी, प्रफुल्ल चन्द ओझा, शिवपूजन सहाय, परिपूर्णानन्द वर्मा, ऋषम चरण जैन, विश्वनाथ सिंह शर्मा, विश्वनाथ शर्मा 'कौशिक' जयशंकर प्रसाद, सूर्य कान्त त्रिपाठी निराला आदि परिगणनीय हैं।

तीसरी कोटि में वे उपन्यास कार हैं जिनकी पहचान तो इसी युग में बन गयी थी पर बाद में भी वे कमोवेश लिखते रहे और चर्चित होते रहे। इनमें चतुर सेन शास्त्री एक मात्र ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपना पहला उपन्यास 'हृदय की परख' विवेच्य काल के एक वर्ष पूर्व ही प्रकाशित कराया है और एक इस युग के बहुत बाद तक उपन्यास लेखन में सक्रिय रहे।

प्रेमचन्द युग के उत्तरार्द्व में उपन्यास कार के रूप में अपनी पहचान बनाने वाले और बाद में भी हिन्दी उपन्यास को समृद्व करने वाले लेखकों में इलाचन्द जोशी, गोविंद बल्लभ पंत, भगवती प्रसाद बाजपेयी, जैनेन्द्र कुमार भगवती चरण वर्मा, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, अनूप लाल मंडल और वृन्दावन लाल वर्मा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में "प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी उपन्यास में नया युग प्रारम्भ होता है। उपन्यास साहित्य की सृष्टि जिस उद्देश्य को लेकर हुई थी, उस उद्देश्य की पूर्ति प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों से नहीं हुई। प्रेमचन्द ने पहली बार उपन्यास के मौलिक क्षेत्र स्वरूप और उद्देश्य को पहचाना, पहचाना ही नहीं, उसे भव्य समृद्वि प्रदान की काफी उँचाई तक ले गए।[40]

"कुल मिलाकर यह काल खण्ड उपन्यास विधा की स्थापना और नयी–नयी औपन्यासिक शैलियों के आविष्कार का काल खण्ड सिद्ध हुआ।"[41]

4–नयी दिशाओं की तलाश। निषेध–विद्रोह या प्रगति प्रयोगकाल

(स्वतंत्रता पूर्व) प्रेमचन्दोत्तर युग : {1937–1947}

प्रेमचन्द के लेखन काल के उत्तरार्द्व (1927–1936) में जिन औपन्यासिक प्रवृत्तियों की नीव पड़ी, उनका पूरा विकास प्रेमचन्द के बाद (1937–1947)में होता दिखाई देता है। जैनेन्द्र, ऋषम चरण

जैन और भगवती प्रसाद बाजपेयी आदि अपनी विशिष्ट सीमित औपन्यासिक संभावनाओं के शिखर पर प्रेमचन्द युग में पहुँच चुके थे। पर प्रेमचन्दोत्तर काल में भी वे उपन्यास–लेखन में प्रवृत्त रहे।

प्रेमचन्द ने उपन्यास को यथार्थ की ओर मोड़ा। उन्होने एक ओर सामाजिक जीवन के यथार्थ संबधो, समस्याओं एवं अन्यान्य विषमताओं को उद्घटित किया। दूसरी ओर परिस्थिति सापेक्षमनः सत्यों को अभिव्यक्ति दी। इस संबध में दृष्टव्य है–

"एक तो प्रेमचन्द ने यर्थाथ के स्वरूप को उद्घटित करते हुए भी उसे आदर्शोन्मुख कर दिया, भौतिकता की तीव्र चेतना को कहीं–कहीं आध्यात्मिकता की झालर से आवृत कर दिया है, दूसरे यह कि यथार्थवाद कोई निश्चित स्वरूप निर्णीत नहीं किया जा सकता है। यथार्थवाद के कई स्वरूप है, कई दृष्टियाँ हैं। यथार्थ के बहुविध रूपो का आरंभ हिन्दी में प्रेमचन्द से हुआ, बहुमुखी विकास उसके बाद।"[42]

प्रेमचन्दोत्तर युग में, प्रेमचन्द युग के दो आयाम– (सामाजिक और मनोवैज्ञानिक) अलग–अलग धाराओं में बँटकर तथा अपनी–अपनी धारा की अन्य अनेक सूक्ष्म बातों से संयुक्त होकर अति तीव्र और विशिष्ट रूप में विकसित होते गए। अतः एक ओर मनोविज्ञान की और दूसरी ओर समाजचेतना की धारा थी जो मनोविज्ञान की नई खोजों से प्राप्त सत्यों को आधार बनाकर चली जिसका संबध मूलतः अचेतन के लोक से है। इस धारा ने मनोविश्लेषण शास्त्रियों के द्वारा उद्घाटित रहस्यों को अपनाया ही नहीं, बल्कि प्रकृतिवाद, अस्तित्ववाद, प्रतीकवाद द्वारा ग्रहीत सत्यों को भी आत्मसात किया।

दूसरी धारा सामाजिक उपन्यासों की है। इनमें एक धारा समाजवादी उपन्यासों की है जो निश्चय ही अपने मार्क्सवादी दृष्टिकोण के कारण प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासो की परम्परा में आते हुए भी उससे अलग है। दूसरी धारा उन उपन्यासो की है जो सामाजिक जीवन के यथार्थ को तो लेते हैं किन्तु उनकी दृष्टि मार्क्सवादी नहीं होती। इनको अलग करने वाला विन्दु है यथार्थवादी दृष्टिकोण। "प्रेमचन्द युग का आध्यात्मिक–विभ्रम धीरे–धीरे टूटता गया और स्वतंत्रता के बाद तो एकदम टूट ही गया। लेखक ठोस यथार्थ पर उतर आया। आध्यात्मिक प्रभाव विकासवाद की चेतना में डूबता गया।"[43]

इस काल खण्ड में मुख्यतः चार वर्गो के उपन्यासों की रचना हुई।

(1) मनोविश्लेषणात्मक तथा व्यक्तिवादी।

(2) समाजवादी तथा यथार्थवादी।

(3) ऐतिहासिक।

(4) आंचलिक।

'मनोविश्लेषणात्मक' उपन्यास में व्यक्ति को समाज के सर्वग्राही अधिपत्य से मुक्ति दिलाकर उसकी मूल चेतना को अभिव्यक्त होने का अवसर दिया जाता है।"[44]

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चेतना प्रवाह का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में आन्तरिक जीवन क्रिया का अनेक विम्बों एवं प्रतीकों द्वारा चित्रण होता है। "इस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में हमें ऐसा लगता है कि हम जीवन जी रहे हैं, जीवन की कहानी नही सुन रहं हैं। चूँकियह आन्तरिक जीवन की यात्रा है अतः इससे अनिवार्य भाव से विम्बों और प्रतीकों की योजना होती है।[45]

अचेतन का सत्य इतना असम्बद्ध, निरन्तर परिवर्तनशील तथा अनेक क्षणें और व्यक्तियो का अनियोजित पुंज होता है कि उसे कहा नहीं जा सकता। विम्बों द्वारा ही उसके उलझे और असंवद्ध रूप को उद्घटित किया जा सकता है।"

इस काल खण्ड के ऐतिहासिक उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टि उभरी है।

इसका आरंभ प्रेमचन्द काल में ही हो गया था जिसका स्पष्ट संकेत 'इरावती' और 'गद कुण्डार' में मिलता है किन्तु सभी में ऐसा नहीं है। समाजवादी उपन्यास कारों ने मार्क्सवादी दृष्टि को प्रधानता दी, मानववादी उपन्यासकारों ने नव मानवीय और सामाजिक दृष्टि अपनाकर इतिहास को वर्तमान की ओर उन्मुख किया। "ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रमुखतः दो प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है। पहली है–मानतावादी दृष्टि से वर्तमान के संदर्भ में अतीत का चित्रण और दूसरी मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित होकर द्वन्द्वात्मक भौतिक वाद के सहारे जीवन–इतिहास का विवेचन विश्लेषण। प्रथम प्रवृत्ति के अन्तर्गत वृन्दावन लाल वर्मा, चतुर सेन शास्त्री, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास आते हैं तो दूसरी प्रवृत्ति के यशपाल, राहुल सांकृत्यायन तथा रांगेय राघव के उपन्यास आते है।

आंचलिक उपन्यासों की भी जन चेतना इन्हे प्रेमचन्द से जोड़ती है। किन्तु अपने स्वरूप और दृष्टि में ये बहुत भिन्न है। इन्हे उपन्यास के एक नए रूप में ही स्वीकारना चाहिए। "आंचलिक उपन्यासों को जनतांत्रिक भावना की सच्ची अभिव्यक्ति भी कह सकते हैं।"[46]

उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्दोत्तर दशक ग्रामीण जीवन के चित्रण की दृष्टि से उदासीन दिखाई देता है। उपन्यास शिल्प संबंधी प्रयोग की दिशा में इस काल के उपन्यास ने लम्बी और सार्थक यात्रा तय की।

5. विमर्श के नए क्षितिज/नव लेखन तथा नव चेतना काल

1948–1980–(2000) प्रेमचन्दोत्तर (स्वातंत्र्योत्तर) युग।

यह काल उपन्यास–लेखन की दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध काल कहा जायेगा। इस काल के उपन्यास साहित्य में कथ्यगत तथा शिल्पगत वैविध्य है। कई नई पुरानी प्रतिमाओं ने इस काल के उपन्यास साहित्यको वैविध्य एवं सम्पन्नता प्रदान करने में अपना योगदान किया है। यशपाल,रांगेयराघव , उपेन्द्र नाथ अश्क, भगवती चरण वर्मा, जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि पूर्वकालीन रचनाकारों की परवर्ती रचनाएँ काल को उनकी परिष्कृत प्रतिभा से लाभान्वित करती रही हैं।

अमृत लाल नागर, फणीश्वर नाथ रेणु, नागार्जुन, मोहनरा केश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर ,धर्म वीर भारती आदि नये रचना कारो ने परिवेशानुकूल उपन्यास को नया रूप प्रदान किया।

प्रेमचन्दोत्तर (स्वातंत्र्योत्तर) युग में बदलती परिस्थितियों के अनुरूप उपन्यास साहित्य का ऐसा बहुमुखी विकास हुआ कि उसे कुछ निश्चित प्रवृत्तियों या घटनाओं में बाँधना संभव नही है। इस युग की प्रमुख विशेषता है– यथार्थ की गहरी पकड़। प्रेमचन्द युग ने जीवन के वहिर्मुखी यथार्थ को व्यक्त किया तो इस युग ने उसकी आन्तरिक चेतना को पहचानने का प्रबल प्रयत्न किया।

आन्तरिक प्रेरणा सूत्रो के साथ जीवन का यथार्थ अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ है। अन्तर और वाहय की संगति विठाने में शिल्प के नए–नए प्रयोग हुए हैं।''[47] इसीलिए स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य में प्रमुख रूप से दो धाराएँ प्रवाहित हैं–

1. व्यक्ति चेतना प्रधान उपन्यास धारा।
2. जन चेतना प्रधान उपन्यास धारा।

इन दो धाराओं के अतिरिक्त ऐतिहासिक सांस्कृतिक उपन्यास की एक धारा और भी दिखाई देती है। यदि व्यक्ति चेतना इस काल के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक प्रयोग वादी तथा आधुनिकता वादी रूप में प्रकट हुई है तो जनचेतना आँचलिक समाजवादी तथा राजनैतिक व्यंग्य बोध के माध्यम से प्रकट हुई है। इसीलिए इस काल के उपन्यास साहित्य को आँचलिक, सामाजिक चेतना प्रयोग वादी आधुनिकता वादी तथा राजनैतिक, ऐतिहासिक–सांस्कृतिक उत्तर आधुनिक वादी और नारी वादी उपन्यास वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

प्रेमचन्दोत्तर (स्वतंत्रता परवर्ती) उपन्यासों में स्वतंत्रता परवर्ती जीवन यथार्थों का चित्रण है। ''मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की मूल चिन्ता अन्तर्मन के उद्घान की होती है जो समाजिक परिवेश का दबाव ग्रहण करता हुआ भी उसके अनुपात में नहीं बदलता। उसकी कुछ मूलभूत मानवीय–वासना में ही लेखक अपने को व्यस्त रखता है। फिर भी नारी पुरुष संबंधों मूल्यों और अनुभवों में आए बदलाव को ये परवर्ती उपन्यास निश्चित ही किसी न किसी रूप में उभारते है। स्वाधीनता परवर्ती लघु उपन्यासों को इस संदर्भ में देखा जा सकता है। स्वाधीनता परवर्ती साहित्य में अनुभव की प्रामाणिकता अधिक मिलती है तथा संरचना में कथात्मक या वर्णनात्मक स्फीति और ऋजुता के स्थान पर शिल्प की संश्लिष्टता और नाटकीय–वक्रता दिखाई पड़ती है। यथार्थ के प्रति तटस्थ दृष्टि का निरन्तर निखार होता गया है। भाषा में भी एक अलगाव दिखाई पड़ता है।''[48]

आंचलिक उपन्यास को स्वाधीनता के बाद की एक नई देन कह सकते हैं। वह अपनी संरचना में तो नया है ही, स्वाधीनता के बाद गाँव की ओर उन्मुखता भी परिणाम है। उसकी प्रवृत्ति के साथ स्वाधीनता परवर्ती समय चेतना स्वतः जुड़ी हुई है।

निष्कर्ष

हिन्दी उपन्यास साहित्य के इस संक्षिप्त इतिहास अथवा विकास–यात्रा से कई निष्कर्ष निकलते है। हिन्दी उपन्यास का मुख्य स्वर सामाजिक रहा। प्रेमचन्द ने सामाजिक यथार्थ की पहचान को उत्कर्ष पर पहुचाया। प्रेमचन्द की इस परम्परा का विकास समाजवादी और सामाजिक चेतना के उपन्यास कारों ने किया। समाजवादी उपन्यास कारों ने यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टि कोण से देखा किन्तु इसी समय के अन्य समाजवादी सामाजिक चेतना के उपन्यासकारों ने मानववादी दृष्टि अपनाई। एक ओर यशपाल जैसे मार्क्सवाद उपन्यासकार है तो दूसरी ओर **अमृतलाल नागर** जैसे मानववादी दृष्टिकोण के सामाजिक कथाकार है। सामाजिक चेतना के उपन्यासों में नया अध्याय जोड़ा आँचलिक उपन्यासों ने। इनमें केवल नगरों की ओर ही नहीं, अब गाँवों की ओर दृष्टि डाली गयी और उनका व्यापक गहरा चित्रांकन किया गया। सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों में भी हुई। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की एक धारा प्रेमचन्दोत्तर युग में प्रवाहित हुई जिसका बल सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा मन के यथार्थ पर था। स्वतंत्राता के पश्चात् इस धारा में बहुत से छोटे–छोटे उपन्यास लिखे गए जिनमें काम ग्रन्थियों पर विशेष जोर रहा और परिवेश की पकड़ ढीली रही। "ऐसे उपन्यास एक नया स्वाद लेने के लिए पढ़े जा सकते हैं किन्तु वे रुग्ण और प्रभाव हीन है। ये हिन्दी साहित्य की परम्परा में हाशिए पर ही रहेंगे। केन्द्र में वे ही उपन्यास हैं जो अपने देश की ग्रामीण या शहरी जमीन से फूटे है और प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य को संघर्ष की शक्ति और जिजीविषा प्रदान करते हैं।"[49]

संकेत सन्दर्भ–

1. डॉ0 मोहम्मद अजहर ढेरी वाला–आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण। पृष्ठ–16
2. डॉ0 शशिभूषण सिंहल– उपन्यास का स्वरूप। पृष्ठ–11
3. ,, ,, पृष्ठ–38
4. डॉ0 राम दरश मिश्र– उपन्यास एक अन्तर्यात्रा। पृष्ठ–14
5. मानक हिन्दी कोष (पहला खंड)। पृष्ठ–356–357
6. मानक हिन्दी कोष (तीसरा खंड)। पृष्ठ–335
7. डॉ0 शशिभूषण सिंहल– उपन्यास का स्वरूप। पृष्ठ–26
8. दि इन्साइक्लो पीडिया ब्रिटेनिका (19वाँ भाग) के। पृष्ठ–833 से अनूदित।
9. दि नावेल एण्ड दि पीपुल–राल्फ फॉक्स। पृष्ठ–20
10. आधुनिक साहित्य। पृष्ठ–173
11. समीक्षायण–डॉ0 पारूकान्त देसाई। पृष्ठ–128
12. साहित्य का उद्देश्य। पृष्ठ–54
13. हिन्दी उपन्यास– एक अन्तर्यात्रा। पृष्ठ–234
14. हिन्दी उपन्यास का इतिहास। पृष्ठ–24
15. हिन्दी उपन्यास–शिल्प और प्रयोग– डा0 त्रिभुवन सिंह। पृष्ठ–11
16. रीडिंग ए नावेल। पृष्ठ–13
17. दि नावेल एण्ड दि रीडर। पृष्ठ–16
18. राम दरश मिश्र– हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा। पृष्ठ–89–90
19. राम दरश मिश्र– हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा। पृष्ठ–236
20. डॉ0 शशिभूषण सिंहल– उपन्यास का स्वरूप। पृष्ठ–65
21. हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा। पृष्ठ–91
22. प्रो0 गोपाल राय– हिन्दी उपन्यास का इतिहास। पृष्ठ–92
23. डा0सी0 चेन्नकेश वुलु–हिन्दी के सांस्कृतिक उपन्यास। पृष्ठ–21
24. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–30
25. हिन्दी साहित्य का इतिहास। पृष्ठ–272–464 के अंतर्गत।
26. हिन्दी उपन्यास का इतिहास–अनुक्रमणिका।
27. प्रो0 गोपाल राय–हिन्दी उपन्यास का इतिहास। पृष्ठ–37
28. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास–(अष्टम भाग) डा0लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय। पृष्ठ–240

29. हिन्दी साहित्य का इतिहास–रामचन्द्र शुक्ल। पृष्ठ–671–673

30. " " " " " " पृष्ठ–551

31. हिन्दी उपन्यास का इतिहास–प्रो0 गोपाल राय। पृष्ठ–70–71

32 . हिन्दी साहित्य का इतिहास–रामचन्द्र शुक्ल। पृष्ठ–273

33. हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ0 माधव सोनटक्के। पृष्ठ–290–291

34. " " " " पृष्ठ–290

35. सांस्कृतिक उपन्यास– डॉ0 सी. चेन्न केशवुलु। पृष्ठ–33

36. हिन्दी उपन्यास का इतिहास– प्रो0 गोपाल राय। पृष्ठ–90

37. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास–डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त। पृष्ठ–914

38. हिन्दी उपन्यास का इतिहास – प्रो0 गोपाल राय। पृष्ठ–95

39. " " " " " " पृष्ठ–142

40. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा– राम दरश मिश्र। पृष्ठ–29

41. हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ0 माधव सोन टक्के। पृष्ठ–331

42. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा– राम दरश मिश्र। पृष्ठ–77

43. " " " पृष्ठ–78

44. हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ० माधव सोन टक्के। पृष्ठ–370

45. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा – राम दरश मिश्र। पृष्ठ–91

46. " " " " " " पृष्ठ–78

47. हिन्दी के सांस्कृतिक उपन्यास– डॉ0 सी. चेन्न केशवुलु। पृष्ठ–39

48. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा– राम दरश मिश्र। पृष्ठ–79

49. " " " पृष्ठ–239–240

अध्याय – दो

(क) अमृतलाल नागर–पूर्व हिन्दी उपन्यासों में वस्तु एवं शिल्प का प्रयोग।

(ख) वस्तु एवं शिल्पगत पीठिका की दृष्टि से अमृतलाल नागर का अभिनवत्व।

(ग) अमृतलाल नागर के उपन्यास साहित्य के विकास के चरण।

अमृतलाल नागर–पूर्व–हिन्दी उपन्यासों में वस्तु एवं शिल्प का प्रयोग

नागरजी का प्रथम 'उपन्यास' 'महाकाल' 1947 ई0 में प्रकाशित हुआ था, अतः 1947 से पूर्व रचित उपन्यासों में वस्तु एवं शिल्पगत प्रयोगों का विवेचन मेरा अभीष्ट है। 'परीक्षा–गुरु' हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास है। निश्चित किया जा चुका है कि इसका प्रकाशन 1882 ई0 में हुआ था। प्रथम चरण में हम 1882 से 1917 ई0 तक रचित प्रमुख एवं महत्वपूर्ण उपन्यासों पर वस्तु एवं शिल्पगत प्रयोगों पर दृष्टि डालेंगे।

'परीक्षा गुरु' वस्तु या कथ्य की दृष्टि से सर्वप्रथम कुछ नवीनता लिए हुए है। इसमें नाटकीय कथा प्रविधि का प्रयोग किया गया है। इस प्रविधि में समयानुक्रम को उलटकर अथवा उसे स्थगित कर दृश्य निर्माण और पात्रों के वार्तालाप द्वारा कथ उग्रसर होती है। इससे जिस रहस्य का सृजन होता है वह उसका समाधान अन्त में कथाकार के सीधे हस्तक्षेप से होता है। उपन्यास में आठवें–आठवें प्रकरण तक कथाकार ने अपने पात्रों का परिचय देना स्थगित रखा है, नवें प्रकरण में सभी पात्रों का एक साथ परिचय कराया गया है। 'परीक्षा गुरु' की कथा योजना बहुत कुछ नाटक की वस्तु योजना के समान है। कथ्य को स्पष्ट करते हुए लेखक नाटकों के 'भरतवाक्य' की तरह कहता है– जो बात सौबार समझाने सौ समझ मैं नही आती, वह एक कार की परीक्षा से भली भाँति मन में बैठ जाती है और इसी वास्ते लोग परीक्षा को गुरू मान्ते हैं।" पुरानी कथाओं का अन्त भी प्रायः इसी प्रकार होता है। उपन्यास इस रूढ़ि का पूर्णतः त्याग कर चुका है।

शिल्प की दृष्टि से 'परीक्षा गुरु' का नयापन पहली बार इतने मुखर रूप में सामने आता है, जबकि वास्तविकता यह है कि भारतेन्दु मंडल के उपन्यासकारों ने इन प्रयोगों का आरम्भ पहले ही कर दिया था। कथ्य की दृष्टि से परीक्षा गुरु राष्ट्रीय परिवेश से अधिक जुड़ा हुआ है।

कार्य व्यापार का और इसीलिए मार्मिक कथा प्रसंगों का भी 'परीक्षा गुरु' में नितांत अभाव है। इसके पात्र कार्यरत कम, संवादरत अधिक दिखाई देते हैं। इसके संवादों में नीति, विज्ञान, व्यवहार नीति, व्यापार नीति आदि की चर्चा अधिक है पात्रों के सुख–दुख, आशा–निराशा, सफलता असफलता की अभिव्यक्ति कम हुई है।

संवाद–योजना की दृष्टि से 'परीक्षा गुरु' संबादों का भंडार है। यह कहना असंगत न होगा कि यह उपन्यास मुख्यतः संवादों पर ही टिका है। संवाद योजना में लेखक ने अंग्रेजी Novels की पद्धति अपनायी है जिसका अपने 'निवेदन' में लेखक ने स्वयं उल्लेख भी किया है। संवाद योजना की यह पद्धति 'परीक्षा गुरु' के पूर्व कथा–साहित्य में नही मिलती । हिन्दी में इस प्रविधि के प्रयोग का श्रेय लाला श्रीनिवास दास को ही है। इतना होने पर भी इस उपन्यास की संवाद योजना कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि की नहीं है। विशेष रूप से उपन्यास के प्रमुख पात्र

ब्रज किशोर के वार्तालाप तो नाना विषयों पर दिए गए भाषणों और पुस्तकों से दिए गए लम्बें–लम्बें उद्धरणों के रूप में हैं जो पात्रों क संवेदना से न जुड़कर उबाऊ हो गये हैं। पर केन्द्रीय पात्र मदन मोहन और उसके खुशामदी दोस्तो के संवादों में नाटकीय प्रभावोत्पादकता है। यदि उपन्यास से लाला ब्रज किशोर के व्याख्यानों और उद्धरणो को निकाल दिया जाय तो 'परीक्षा गुरु' की संवाद योजना हिन्दी उपन्यास के विकास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

जहाँ तक 'परीक्षा गुरु' की भाषा का प्रश्न है सरल और अनगढ़ है।
"इसमें विविध संवेदनाओं और प्रसंगों से उत्पन्न होने वाले विविध कोण और रंग नही हैं एक सपाट एक रसता है। इसमें आए हुए अनेक शब्द आज की दृष्टि से अशुद्ध कहें जा सकते है किन्तु ये उस समय की भाषा और शब्दों का परिचय देते हैं।"[1]

'परीक्षा गुरु' के बाद कुछ उल्लेखनीय उपन्यासों का क्रम इस प्रकार है–रत्न चन्द प्लीडर कृत 'नूतन चरित्र' (1883) बाल कृष्ण भट्ट कृत 'नूतन ब्रह्मचारी'(1986) ठाकुर जगमोहन सिंह कृत 'श्यामा स्वप्न' (1888) किशोरी लाल गोस्वामी कृत–त्रिवेणी या सौभाग्य श्रेणी (1988) हृदय हारिणी व आदर्शरमणी (1890) राधा कृष्णदास कृत निस्सहाय हिन्दू (1890) देवकी नंदन खत्री कृत चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता–सन्तति' (1891) बाल कृष्ण भट्ट 'सौ अजान एकसुजान (1892) गोपाल राम गहमरी कृत नए बाबू (1854) कार्तिक प्रसाद खत्री कृत 'जया' (1896) गोपाल राम गहमरी 'सास पतोहू' और 'बड़ा भाई' (1898) लज्जा राम मेहता कृत 'धूर्तरसिक लाल' (1899) 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' (1899) अयोध्या सिंह उपाध्याय कृत 'अधखिला फूल' (1907) वृज नंदन सहाय कृत 'सौंदर्योपासक' (1911) लज्जा राम मेहता कृत 'आदर्श हिन्दू' (1915) ब्रजनंदन सहाय कृत 'लालचीन' (1916) मन्नन द्विवेदी कृत 'राम लाल' (1917) तथा मिश्रवन्धु कृत 'वीरमणि' (1917)

'नूतन चरित्र' का मुख्य विषय प्रेम है। इसमें प्रेमियों के दो जोड़े हैं। एक जोड़ा विवेक राम और चित्र कला का, और दूसरा चेतराम और चित्रबल्लाभा का है। इन प्रेमियों के आपसी प्रेम, प्रेमी द्वारा प्रेमिका को प्राप्त करने के प्रयत्न तथा विरह और मिलन के वर्णनों से कथा का कलेवर निर्मित है पर इस प्रेम चित्रण में संवेदना की गहराई नहीं है केवल वाह्य क्रिया कलापों का ही बाहुल्य है।

शिल्प की दृष्टि से 'नूतन चरित्र' में पर्याप्त नवीनता दिखाई देती है। घटनाओं की योजना में नाटकीय पद्धति, समयानुक्रम में परिवर्तन तथा समय के निलम्बन द्वारा कथा में रहस्य की सृष्टि आदि औपन्यासिक कौशलों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया गया है। कथाओं के युगपत संक्रमण की प्रविधि का भी सफल प्रयोग हुआ है। "हिन्दी उपन्यास में पहली बार दो प्रेम कथाओं का एक साथ विकास 'नूतन चरित्र' में ही मिलता है। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में 'नूतन चरित्र' का वस्तु विन्यास जटिल है, जो इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है।"[2] यद्यपि कथ्य की दृष्टि से 'नूतन चरित्र' प्राचीन प्रेमाख्यानों के निकट है पर इसका परिवेश इसे उपन्यास के निकट

पहुचाता है। इसकी भाषा, सरल आडम्बरहीन दैनिक बोलचाल की होने के कारण उपन्यासोचित है।

'नूतन ब्रह्मचारी' की वस्तु विनायक नाम के एक बालक का चरित्र है जो सत्य वक्ता, नम्र,दयालु, निष्कपट, सहिष्णु निर्लोभी, आज्ञाकारी और अतिथिसेवी है उपन्यास का पूरा शीर्षक है– 'नूतन ब्रह्मचारी'– एक 'सहृदय' है जिसके चरित्र का विकास प्रस्तुत करना रचना का लक्ष्य है। इसमें लेखक सफल हुआ है। उपन्यास का आरम्भ पर्याप्त नाटकीय ढंग से, रहस्य की सृष्टि करते हुए, एक जंगल में जाते हुए तीन घुड़सवारों के वर्णन से होता है। उपन्यासकार पात्रों के चरित्र और मनोभावों पर टिप्पणी करता हुआ वन प्रदेश के काव्यात्मक वर्णन के साथ कथा को आगे बढ़ता है। यद्यपि रचना में घटनाएँ बहुत कम हैं। पर जो हैं उनकी योजना नाटकीय ढंग से की गयी है। उपन्यास की समाप्ति भी नाटकीय ढंग से अचानक होने वाले रहस्योद्घाटन से होती है। इस प्रकार उपन्यास का पूरा शिल्प नाटकीय है, पर बीच में काव्यात्मक वर्णन से और उपदेशों से यह नाटकीयता वाधित हुई है।

इसमें पात्र संख्या भी बहुत कम है और कार्य व्यापार भी न के बराबर है। उपन्यास की भाषा भी संस्कृत गद्यकाव्यों की भाषा का अनुसरण करती है जो उपन्यास की प्रकृति के अनुकूल नहीं मानी जा सकती।

'श्यामा स्वप्न' का विशेष महत्व इसका शिल्प है। इसका नायक रात्रि के चार प्रहरों में चार स्वप्न देखता है जो मिलकर एक प्रेम कथा का रूप ग्रहण करते हैं। कुल मिलाकर कथ्य की दृष्टि से यह रचना नितांत असफल है। उपन्यास का विशिष्ट लक्षण–यथार्थ के प्रति आग्रह–का अभाव है। पात्र मध्यकालीन प्रेमाख्यानों की छाया मूर्तियाँ हैं। जिनका कोई पृथक स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है। इसमें शिल्प की नवीनता है कि कथा, कथानायक के स्वप्न के रुपये प्रस्तुत की गयी है। इस शिल्प में बहुत सी विसंगतियाँ हैं। कथानायक के प्रेम की अभिव्यक्ति यदि स्वप्न के असंबद्ध विम्बों के रूप में हुई होती तो 'श्यामा स्वप्न' अपने समय का एक क्रान्तिकारी उपन्यास होता है। फिर भी इस की शिल्पगत नवीनता को, समकालन उपन्यास कारों द्वारों द्वारा किए जा रहे प्रयोगों में 'विशिष्ट तो माना ही जा सकता है।'

संक्षेप में, शिल्प की दृष्टि से इस अवधि का उपन्यास एक छोटी सी यात्रा तय करता है। आठवें दशक के उपन्यासों में नाटकीय शिल्प का प्रयोग बिल्कुल नहीं हुआ है, पर नवें दशक की कथा पुस्तकें 'उपन्यास' संज्ञा धारण करने के साथ–साथ 'नाटकीय शिल्प' और यौगपदिक कथा 'संक्रमण' प्रविधि से युक्त हो जाती हैं। इस दशक के उपन्यासों की एक सामान्य कमजोरी यह हैकि इनका कथा संसार बहुत छोटा है। कृति वर्णनों, उपदेश वचनों और विरह–मिलन के वर्णनों से इनका आकार थोड़ा फूला हुआ है, पर कार्य व्यापार की संक्षिप्तता के कारण इनकी कथा में जटिलता बहुत कम है। इसके फलस्वरूप इनके शिल्प में भी प्रयोग की कोई गुंजायश नहीं थी। औपन्यासिक प्रतिभा का अभाव भी इसका कारण माना जा सकता है।"[3]

कथ्य की दृष्टि से 'चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता सन्तति' की धुरी राजकुमार राजकुमारियों का प्रेम हैं। ऐय्यारी और तिलस्म की कौतूहलपूर्ण और रोमांचक घटनाओं की सहीयता से, एक परम्परागत कथा को नया रूप प्रदान किया, जो हिन्दी के लिए बिल्कुल नयी चीज थी। कथ्य की दृष्टि से ये दोनों रचनाएँ रोमांस की कोटि में ही आती है। रोमांसों की तरह ही नेकी बदी के संघर्ष में नेकी की विजय और बदी की पराजय दिखाई गयी है।

कथा–शिल्प की दृष्टि से 'चन्द्रकान्ता' और चन्द्रकान्ता सन्तति हिन्दी–उपन्यास कें इतिहास में एक नवीन प्रारंभ या मोड़ है। इसके पहले के उपन्यासों का कथा संसार बहुत छोटा हुआ करता था। इन उपन्यासों के रूप में एक दीर्घ आकार के, अनेक उपकथाओं से युक्त, जटिल कथा संसार की सृष्टि हुई। इस शिल्प में 'किस्सा गोई' और नाटकीयता का अद्‌भुद मिश्रण है। कथानक का जितना सुगठित निर्माण इनमें है वह हिन्दी उपन्यास में अद्वितीय है। कथाओं के यौगपदिक संक्रमण की प्रविधि का इतने बड़े पैमाने पर सफल प्रयोग पहली बार इन दोनों रचनाओं में हुआ है। इस प्रकार किस्सा गोई की प्रविधि को समयानुक्रम के बन्धन से मुक्त कर उपन्यास–शिल्प को आगे बढाने में इन दोनों उपन्यासों का महत्वपूर्ण योगदान है।

इन उपन्यासों की भाषा बोलचाल की भाषा है। कवित्व और आलंकारिकता से मुक्त इनकी भाषा पाठकों को बर बस अपनी ओर आकर्षित करती है। भाषा के संबंध में कहा जा सकता है कि "खत्री जी की आरम्भिक भाषा और 'सन्तति' के अन्तिम हिस्सों की भाषा एक जैसी नहीं है। उनकी भाषा में विकास दिखाई पड़ता है। उनकी आरम्भिक भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द बहुत कम आते हैं पर बाद में उनका अनुपात बढ़ जाता है। इससे उनके शब्द भंडार में बृद्धि हुई है अभिव्यक्ति में विशदता आई है, पर कहीं भी भाषा बोझिल और प्रवाह–रूद्ध नहीं हुई है। उपन्यास की भाषा को मानक रूप प्रदान करने में देवकी नंदन खत्री का महत्वपूर्ण योगदान है।"[4]

इसी परंपरा में किशोरी लाल गोस्वामी की ऐतिहासिक–रोमांस की रचनाएँ हैं और इनमें वस्तु और शिल्प की दृष्टि से कोई नवीनता नही है। गोपाल राम गहमरी भी खत्री जी से प्रभावित थे और उन्ही की भाँति इनका कथा लेखन भी व्यावसायिक था। गहमरी जी इस काल में प्रकाशित मौलिक और अनूदित तथा जासूसी उपन्यासों की संख्या लगभग 200 है। इन सभी का शिल्प बहुत साधारण है। आचार्य शुक्ल ने गहमरी जी की जासूसी कथा पुस्तकों कां 'साहित्य–कोटि' से बाहर रखा है। भले ही इनकी भाषा कहीं–कहीं साहित्य कोटि तक पहुँच जाती है।

'सौ अजान और एक सुजान' अपने समय का एक विशिष्ट उपन्यास है। यह हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें चरित्र चित्रण को कथा या उद्‌देश्य की तुलना में प्राथमिकता दी गई है। इसके पूर्व के उपन्यासों में कथा और कथ्य केन्द्रस्थ तथा चरित्रांकन हाशिए पर होता था। पर इसमें कथा और कथ्य को गौण और चरित्र चित्रण को प्रमुखता दी गई है। वास्तव में यह चरित्र प्रधान उपन्यास है। इसका शिल्प भट्टजी के पूर्ववर्ती उपन्यासों की ही तरह रहस्यपूर्ण स्थितियों के

निर्माण, बाद में रहस्योद्घाटन, और कालक्रम के स्थगन आदि प्रविधियों से युक्त है। इसकी भाषा काव्यात्मक है पर प्रकृति वर्णन की अधिकता न होने के कारण यह यथार्थ के निकट ही है।

बृजनंदन सहाय कृत 'सौंदर्योपासक' में विवाह संबंधी कुप्रथाओं का विरोध किया गया है। इनके उपन्यासों में शिल्पगत कोई वैशिष्ठय नहीं है। किस्सागों और प्रवाचक के रूप में भी पाठकों से संबंध बनाए रखते हैं। उनके सभी उपन्यासों की भाषा संस्कृतनिष्ठ और परिनिष्ठित है। उर्दू और अँग्रेजी शब्दों से उन्हे कोई परहेज नहीं है पर वे भाषा को कहीं भी ग्राम्य, अति सरल और असाहित्यिक नहीं होने देते।

महता लज्जा राम शर्मा ने अपने उपन्यासों की भूमिका में उपन्यासों के कथ्य को स्पष्ट करते हुए, मनोरंजन, प्रजा के सच्चे चरित्र का शोध, चरित्र शोधन आदि को उद्देश्य बनाया है। 'स्वतत्ररमा और परतंत्र लक्ष्मी' में स्त्री शिक्षा और स्त्री–स्वातंत्र्य की बुराइयों को दिखाकर बालिकाओं को पति परायण तथा आदर्श गृहिणी बनने की शिक्षा दी गयी है। महता जी के उपन्यासों में उपदेश की इतनी भरमार है कि वे उपन्यास न रहकर उपदेशाख्यान बन गए हैं। लेखक नीति और उपदेश की बातें कहने के लिए जैसे अवसर की खोज में रहता है। महता जी उपन्यास का एक उद्देश्य मनोरंजन भी मानते है पर उन्हे मनरंजन बनाने के लिए तिलिस्म, ऐयारी, जादू आदि अलौकिक तत्वों या अपराध प्रधान घटनाओं का सहारा नहीं लेते है। शर्मा जी के उपन्यासों में 'शिल्प' सामान्य ही है। परम्परागत प्रविधियों का ही प्रयोग प्राप्त होता है।

इस अवधि के इसके पश्चात के सभी उपन्यासों में बाल कृष्ण भट्ट, किशोरी लाल गोस्वामी, ब्रजनंदन सहाय आदि की ही भाँति उन्हीं के शिल्प का अनुकरण किया गया है। भाषा की दृष्टि से भी इनमें कोई उल्लेखनीय नूतनता नहीं है। कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के आगमन के पूर्व हिन्दी उपन्यास वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से अपने स्वरूप की तलाश कर रहा था। सम्भवतः उसे औपन्यासिक प्रतिभा की भी खोज करनी थी। प्रेमचन्द के हिन्दी में आगमन के साथ उपन्यास प्रौढ़ता की स्थिति में प्रवेश करता है। (प्रेमचन्द युग) हिन्दी उपन्यास का दूसरा चरण, प्रेमचन्द के, उपन्यासकार के रूप में प्रवेश के साथ उनके पहले उपन्यास सेवासदन (1918) से प्रारंभ होता है। अपने प्रथम उपन्यास 'सेवा सदन' में प्रेमचन्द ने वेश्य जीवन से संबद्ध समस्याओं के चित्रण का प्रयास किया है। हिन्दी में वेश्यावृत्ति को हिन्दू समाज में स्त्रियों की हीन दशा के परिणाम के रूप प्रस्तुत करने परम्परा थी। प्रेमचन्द की भी यही धारणा थी, पर उन्होने सामाजिक–आर्थिक कारणों के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक कारण को भी जोड़कर उसे अधिक विश्वसनीय बना दिया। 'सेवा सदन' के साथ हिन्दी उपन्यास के कथा संसार में एक विशेष परिवर्तन आया। अब उपन्यास ने प्रकृति और नारी सौदर्य, धार्मिक नैतिक उपदेश, विरह–मिलन को त्याग कर कार्य व्यापार को अपना अंग बनाया। अब पात्रों को सजीव बनाने के लिए उनके बाहरी अंग विन्यास वेष भूषा आदि का सटीक वर्णन किया जाता है पर अधिक ध्यान पात्रों के

मनोभावों के वर्णन पर होता है। इस तरह पात्रों के वाह्य और मनोवैज्ञानिक विचारों के संयोजन से निर्मित कथा संसार उपन्यास की प्रकृति को ही बदल देता है।

शिल्प की दृष्टि से सेवा सदन में कोई नवीनता नहीं है। पूर्ववर्ती उपन्यासों से 'सेवासदन' में कुछ अन्तर अवश्य है। किस्सा गोई इसमें अप्रत्यक्ष हो गई है। पाठकों को 'प्रिय पाठक' सहृदय पाठक या रसिक पाठक आदि कहकर प्रत्यक्ष रूप से संबोधित नहीं किया गया है। किस्सागो की अप्रत्यक्षता का क्रम 'सेवा सदन' से ही प्रारंभ होता है। इसके शिल्प की दूसरी विशेषता है–पहले की तुलना में पात्रों के मनोजगत में प्रवेश करने के अधिक अवसर प्रदान करना।

भाषा की दृष्टि से प्रेमचन्द के लेखन में अद्‌भुत परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। 'सेवा सदन' की भाषा की विशेषता है कि इसमें संस्कृत गद्यकाव्य–परम्परा के कोई अवशेष लक्षित नहीं होते हैं। भाषा में सर्जनात्मकता लाकर प्रेमचन्द ने उसे औपन्यासिक स्तर प्रदान कर दिया है। सेवा सदन के पश्चात प्रेमचन्द ने प्रेमाश्रम (1922), रंगभूमि (1925), कायाकल्प (1926), निर्मला (1927), गवन (1931), कर्मभूमि (1932), गोदान (1936) आदि उपन्यासों की रचना की।

'प्रेमाश्रम' और उसके बाद के उपन्यासों में प्रेमचन्द देश की पराधीनता एवं शोषण को यथार्थ के विविध आयामों में प्रस्तुत करते हैं। देश की स्वतंत्रता उनके लिए भावनात्मक अथवा राष्ट्र प्रेम की समस्या नहीं थी, वह देश के आर्थिक शोषण और दमन से संपृक्त थी। ब्रटिश शासन की शोषण नीति से उत्पन्न किसानों की निर्धनता, उनकी दयनीय जीवन स्थिति तथा उनके साथ अमानवीय व्यवहार का चित्रण प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि, गोदान आदि उपन्यासों में करते हैं। भूमिकर बहुत अधिक निर्धारित था और जमीदारों तथा उनके कर्मचारियों द्वारा निर्दयता पूर्वक वसूला जाता था। जमीदारों और महाजनों को किसानों को लूटने की सारी सुविधाएँ शासन से प्राप्त थी। किसानों और कृषि मजदूरों के नेता गाँधीवादी थे, पर किसान बीच–बीच में हिंसा पर उतारू हो जाते थे। स्वाधीनता आन्दोलन की यही सच्चाई है जो प्रेमचन्द के उपन्यासों में विश्वसनीयता के साथ सुरक्षित है।

वस्तु की दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यासों में, समकालीन मध्यवर्गीय समाज के अनेकानेक अन्तविरोध तर्कहीन सामाजिक मान्यताएँ तथा परम्परागत रूढ़ नैतिक धारणाओं से ग्रस्त होने की विश्लेषण के पश्चात् कथा संसार के माध्यम से प्रस्तुतीकरण हुआ है। मध्यवर्ग के जीवन को अपने कथ्य में प्रेमचन्द ने अपने पहले ही उपन्यास से सम्मिलित करना आरंभ कर दिया था। रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला और गबन में इसे पर्याप्त गहराई और विस्तार प्राप्त हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रेमचन्द ग्रामीण जीवन यथार्थ के चित्रण में अद्वितीय है, तथापि तत्कालीन मध्यवर्ग का अंकन भी वे उतनी ही सफलता से करते हैं।

प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासकार नारी संबंधी परम्परागत दृष्टिकोण में किसी क्रान्तिकारी परिवर्तन के पक्षधर नही थे। प्रेमचन्द के समय भी नारी की यही स्थिति थी। उसे न तो पारिवारिक सम्पत्ति में कोई अधिकार था और न वह स्वयं स्वतंत्र रूप से जीविकोपार्जन कर

सकती थी। लड़कियाँ प्रायः शिक्षा से वंचित थी। नारी का स्थान या तो गृहिणी के रूप में था या फिर वेश्या के कोठे पर। प्रेमचन्द के समय का एक दूसरा यथार्थ दलितों की स्थिति से संबद्व था। तीसरा यथार्थ साम्प्रदायिकता से जुड़ा था। अंग्रेज शासकों की मिली भगत से भारत के विभिन्न भागों में अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए थे जिनमें हत्या, लूटपाट आगजली और बलात्कार आदि की अमानवीय घटनाएं घटी थी। प्रेमचन्द ने इस सच्चाइयों का चित्रण विशेष रूप से 'कायाकल्प' में किया है।

शिल्प की दृष्टि से प्रेमचन्द ने कथा–प्रस्तुति की दृश्यात्मक–परिदृश्यात्मक प्रविधि को अपने उपन्यासों में विशेषकर 'गोदान' में शिखर तक पहुँचा दिया है। पूववर्ती उपन्यासों में दृश्यात्मक प्रविधि पात्रों के वार्तालाप तक सीमित थी, प्रेमचन्द ने 'गोदान' में उसे प्रखर नाटकीय प्रभाव से युक्त कर दिया। परिदृश्यात्मक प्रविधि, वैसे तो किस्सा गोई का ही एक विकसित रूप है, पर इसमें यह अत्यंत सूक्ष्म हो जता है और कथा 'कही' न जाकर 'प्रस्तुत' की जाती है। पाठक अनुभव करता है कि वह किसी ऊँचे स्थान पर बैठकर पात्रों के साथ घटित घटनाओं को 'देख' और अनुभव कर रहा है।

कथानक संयोजन की कलात्मक पूर्णता तो देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों में ही मिल गयी थी इसलिए प्रेमचन्द के उपन्यासों में उनकी विशेषता कथा संघटन में नहीं, घटनाओं के स्थान पर कार्य व्यापारों, भावों और विचारों के संयोजन की है। शिल्प विषय का अनवर्ती होता है और उसकी सार्थकता उपन्यास के उद्देश्य के अनुरूप होने में है। इसीलिए प्रेमचन्द ने 'गोदान' में कथानक की पूर्णता और गठन के लिए न तो विषय या पात्रों को विकृत किया, नही उपन्यास की संरचना की उपेक्षा। "गोदान में प्रेमचन्द ने दृश्यात्मक और परिदृश्यात्मक प्रविधियों को उनके उत्कर्ष पर पहुँचाते हुए उन्हे नाटकीय–प्रविधियों से–पात्रों के स्वगतालाप, अतीत का स्मण, दृश्यों की पात्रों के मनः प्रभाव के रूप में प्रस्तुति, उपचेतन के छाया दृश्य, संबधित कर अत्यंत प्रभावशाली बना दिया है।"[5]

भाषा के संबंध में हम कह चुके हैं कि प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास में दो प्रकार की भाषा–शैलियाँ प्रचलित थीं– संस्कृत गद्यकाव्य का अनुसरण और दूसरी बोलचाल की भाषा। प्रेमचन्द कि उपन्यासों में दूसरी शैली का प्रयोग मिलता है। यह भाषा सीधे जनता के बीच से उठायी गयी थी। प्रेमचन्द ने इसे परिष्कृत कर और अधिक चमका दिया था। "इस भाषा में शब्द और अर्थ का अद्युत सामंजस्य, अर्थो की सांकेतिक संभावनाएँ, लक्षणा और व्यंजना की समृद्वि, शैलीय उपकरणों का सार्थक प्रयोग, विम्ब निर्माण की क्षमता आदि मिलकर एक अद्युत प्रभाव पैदा कर देते हैं।"[6]

संक्षेप कहा जा सकता है कि "कहने की आवश्यकता नहीं कि कथ्य, वैविध्य विजन, चरित्र सृष्टि, शिल्प और भाषा, सभी दृष्टियों से प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को एक ऐसी ऊँचाई पर पहुचा दिया जो आज भी एक मंजिल और मानदंड के रूप में स्वीकृत है। लगभग दो दशकों

की प्रेमचन्द की उपन्यास यात्रा (वस्तु एवं शिल्प संबधी) उपलब्धियों की दृष्टि से पूर्ववर्ती पाँच दशकों की उपन्यास यात्रा से बढ़कर मानी जा सकती है।"[7]

प्रेमचन्द युग के अन्य उपन्यासकारों को तीन कोटियों में विभक्त किया जा सकता है। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है। इनमें गोपाल राम गहमरी ने इस काल में भी लगभग तीन दर्जन उपन्यासों की सृष्टि की किन्तु अब तक हिन्दी उपन्यास के विकास में उनकी ऐतिहासिक भूमिका प्रायः समाप्त हो चुकी थी अन्य मत्रन द्विवेदी और चन्दशेखर पाठक में से पाठक जी का एक उपन्यास 'भारती' समकालीन यथार्थ के–देश हित समाज सेवा, नारी जागरण, राष्ट्रीय चेतना आदि–सटीक चित्रण के कारण उनके अन्य उपन्यासों से कुछ अलग है। ग्रामीणों की निर्धनता, अशिक्षा और अज्ञान का ऐसा विश्वासनीय अंकन इस समय के उपन्यासों में दुर्लभ है। सामाजिक और नैतिक समस्याओं के स्थान पर राजनैतिक समस्याओं को उपन्यास का विषय बनाने का तो यह प्रथम प्रयास मालूम पड़ता है। मत्रन द्विवेदी ने 'कल्याणी' नामक उपन्यास लिखा जिसमें बाल विवाह, वृद्ध विवाह, विधवाओं की दुर्दशा, कुशिक्षा भारतीय समाज में पारस्परिक फूट आदि को चित्रित किया गया है। शिल्प की दृष्टि से इन दोनों उपन्यासों में कोई नयापन नहीं है।

केवल प्रेमचन्द के समय तक ही उपन्यास लिखने वालों में शिवपूजन सहाय, ऋषम चरण जैन, विश्वम्भर नाथ शर्मा, वेचन शर्मा 'उग्र', जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला प्रमुख हैं। सर्जनात्मक दृष्टि से 'प्रसाद और निराला' के उपन्यास ही उल्लेखनय है। वेचन शर्मा तत्कालीन समाज की कुरीतियों के नग्न और साहस पूर्ण चित्रण के कारण प्रसिद्ध हैं। उनके 'चन्द हसीनों के खतूत (1927) दिल्ली का दलाल (1927) बुधुवा की बेटी (1928) शराबी (1930) प्रसिद्ध उपन्यास है। कथ्य की दृष्टि से 'चन्द हसीनों के खतूत' में हिन्दू और मुसलमान युवक युवकी के प्रेम और विवाह तथा साम्प्रदायिक सुझाव का प्रतिपादन है, जो उस समय के लिए एक साहसपूर्ण कदम था। 'बुधुवा की बेटी' के केन्द्र में अछूतोद्धार की समस्या है। भंगियों के नारकीय जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण इसके पूर्व किसी उपन्यास में नहीं हुआ। इस दृष्टि से 'उग्र' जी दलित उपन्यास लेखनय के प्रणेता माने जा सकते है। "उपन्यास की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसमें उपन्यास कार का दलित चेतना विषयक 'विजन' धुँधला है। इसका कारण है–प्रत्यक्ष और प्रामाणिक अनुभव का अभावं। शिल्प और भाषा दोनों ही ही दृष्टियों से उपन्यास बहुत कमजोर हैं।"[8] उपन्यासों में प्रमुख दो उपन्यास 'दिल्ली का दलाल' और 'बुधुवा की बेटी' ऐसे उपन्यास हैं जो "अपनी मूल प्रवृत्ति और उद्देश्य में सामाजिक चेतना के उपन्यास हैं। 'दिल्ली का दलाल' तत्कालीन हिन्दू समाज की कुरीतियों पर प्रहार करता है, उसकी नैतिकता के छद्म का अनावरण करता है। हाँ यह अवश्य है 'उग्र' या 'यशपाल' जैसे समाज चेता कथाकारों की कथाओं में यौन अनैतिकता के दृश्य कहीं–कहीं चटक हो जाते हैं कि मूल उद्देश्य के धुँधला हो जाने की शंका पैदा हो जाती है।"[9]

'उग्र' जी ने प्रथम बार हिन्दी उपन्यास में पत्रात्मक प्रविधि का आरम्भ किया। पूर्ण उपन्यास, नाम के अनुसार ही उपन्यास के ही चार पात्रों–नर्गिस मुरारी कृष्ण, असगरी और गोविंद हरि शर्मा– द्वारा लिखे गये सात पत्रो से निर्मित है। परन्तु इन पत्रों में पात्रों के मस्तिष्क को उस सीमा तक नाटकीकृत न ही कर पाया गया है जितना इस प्रविधि के लिए आवश्यक होता है।

शिवपूजन सहाय का 'देहाती दुनिया'(1926) वस्तुतः ग्रामीण जीवन के अनेक प्रसंगों का संकलन है। इसमें शिल्प का लचीलापन है। इसे आंचलिक उपन्यास भी कह सकते हैं।

विश्वम्भर नाथ शर्मा के दो उपन्यास– 'माँ' (1929) भिखारिणी (1929) में कथ्य की दृष्टि से थोड़ी नवीनता है पर विजन, शिल्प और भाषा की दृष्टि से इनमें कोई उल्लेखनीयता नहीं है। इसी प्रकार 'संघर्ष' (1945) में भी आर्थिक विषयता के कारण प्रेम की निष्फलता और बाद में होने वाले पश्चाताप का अंकन इसका विषय है पर 'विजन की मौलिकता और मनोवैज्ञानिक अर्न्तदृष्टि के अभाव में इसमें कोई वैशिष्ट्य नहीं है।

जय शंकर 'प्रसाद' ने 'कंकाल' (1930) तितली (1934) लिखकर वह ख्याति प्राप्त की जो प्रेमचन्द के अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं मिली। 'आदर्शोन्मुख यथार्थवादी' उपन्यास की परम्परा में जिस प्रकार प्रेमचन्द का स्थान है उसी प्रकार 'यथार्थवादी' या 'प्राकृतिकवादी' उपन्यासों की परम्परा के जनक प्रसाद जी है। 'कंकाल' में हिन्दू समाज की विकृतियों और अवैध सन्तानों के यथार्थ को उद्घाटित करने का प्रयास है। प्रयाग, काशी, मथुरा और हरिद्वार तथा 'वृन्दावन' जैसे पवित्र तीर्थ स्थानों में धर्म के नामपर प्रचलित मिथ्याडम्बरों और दुराचारो का भी 'कंकाल' में यथार्थ चित्रण है। स्त्री के प्रति पुरुष के परम्परावादी दृष्टिकोण पर भी प्रसाद जी ने मार्मिक चोट की है। 'तितली' में यथार्थ की पीठिका पर आदर्श की स्थापना की गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय विवाह का उदाहरण सम्भवतः हिन्दी उपन्यास में पहली बार 'तितली' में प्रस्तुत हुआ है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के इस काल के 'अप्सरा (1931) 'अलका' (1933) निरूपमा (1936) और 'प्रभावती' (1936) उपन्यास उल्लेखनीय हैं। 'अप्सरा' में एक अभिजात कुलीन युवक तथा एक 'वेश्या पुत्री' के प्रेम विवाह का अंकन किया गया है। प्रेमचन्द के 'सेवा सदन' आदि उपन्यासों से अन्तर यह है कि प्रेमचन्द ने वेश्याओं के प्रति सहानुभूति तो प्रदर्शित की है पर 'निराला' जैसा साहस वह नहीं दिखा सके। 'निराला' 'निरूपमा' में वेश्या पुत्री 'कनक' का विवाह साहित्य के प्रति पूर्णतः समर्पित युवक राजकुमार से चित्रित करते है। निराला के मानस में इस विषय का कोई ज्वलन्त विजन नहीं है। ''पूरा उपन्यास अति नाटकीय प्रसंगों और संयोंगो से भरा है। जिससे औपन्यासिक संसार कृत्रिम हो गया है।''[10] 'अलका' की वस्तु में भी काई नवीनता नही है, हाँ भाषा, उपन्यास की दृष्टि से अवश्य ही विकसित हुई है। 'निरूपमा' यथार्थ चित्रण की दृष्टि से 'अलका' से आगे है। इसमें ग्रामीण यथार्थ का इतना मर्मवेधी अंकन हुआ है जो प्रेमचन्द के अतिरिक्त अन्य किसी में नहीं मिलता है। इसकी वस्तु 'प्रेम' है जो प्रेम कथा के चौखट में जड़ा

है। 'प्रभावती' एक 'ऐतिहासिक रोमांस' है। इसका कथ्य वीरता और प्रेम, युद्ध और विवाह की कहानी तथा 'युद्ध और प्रेम' से जुड़े भावों को अभिव्यक्ति है। निराला का यथार्थवादी इतिहास बोध 'प्रभावती' को विशिष्ट उपन्यास बनाता है।

चतुरसेन शास्त्री के 'हृदय की प्यास (1927) अमर अभिलाषा (1933) और 'आत्मदाह' (1934) तथा नीलमाटी (1940) आदि उपन्यास हैं। इनमें 'वस्तु' की दृष्टि पर परम्परा वादी हैं, शिल्प विषयक कोई तातम्य नहीं है और न कोई विजन है। हाँ 'अमर अभिलाषा' में शिल्प विषयक यह नवीनता है कि इसमें विधवाओं की कहानियों द्वारा विधवाओं पर होने वाले अत्याचारों का अंकन है।

प्रेमचन्द युग के उत्तरार्द्ध में लिखे गए उपन्यासों में अनूप लाल मंडल के 'निर्वासिता' (1929) समाज की वेदीप (1931) साकी (1932) रूपरेखा (1934) और 'ज्योतिर्मयी (1934) हैं। इनके 'समाज की वेदीपर' और 'रूपरेखा' पत्रात्मक प्रविधि में हैं जो शिल्प के प्रति उनकी प्रयोग सजगता के परिचायक है। भगवती चरण वर्मा का 'चित्र लेखा' हिन्दी के सर्वाधिक प्रिय उपन्यासों में है। यह दार्शनिक या वैचारिक समस्या–पाप क्या है ? उसकी स्थिति कहाँ है ?– पर आधारित उपन्यास है।

भगवती प्रसाद बाजपेयी, जैनेन्द्र कुमार और इलाचन्द्र जोशी ने हिन्दी उपन्यास को सामाजिक क्षेत्र से व्यक्तिवादी या मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में प्रवेश कराने के लिए चर्चित हैं। बाजपेयी के उपन्यासों मं 'वस्तु' रूप में काम भावना की स्थिति है। बाजपेयी जी काल क्रम की दृष्टि से प्रेमचन्द युग के पहले उपन्यासकार हैं जिन्होने 'प्रेम' और उसके भावनात्मक पक्ष को अपने उपन्यासों का केन्द्रीय विषय बनाया है। आर्थिक–सामाजिक क्षेत्र में स्वावलम्बन और पुरुष की गुलामी से मुक्ति का प्रयास करती हुई नारी बाजपेयी जी के औपन्यासिक 'विजन' का एक उल्लेखनीय पहलू है। इसे स्त्री के सबलीकरण की शुरूआत माना जा सकता है जिसकी आज के उपन्यासों में चर्चा चल रही है।

इलाचन्द जोशी का उल्लेखनीय उपन्यास 'घृणामयी (1929) आत्म कथात्मक–प्रविधि में लिखित एक युवती के पश्चाताप की कहानी है जो यौवन के प्रथम चरण में अपने पिता और भाई की उपेक्षा कर एक चरित्र हीन डाक्टर युवक से प्रेम करने लगती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपन्यास में कोई गहराई नही है फिर भी भगवती प्रसाद बाजपेयी के मनुष्य के अर्न्तजगत के चित्रण की शुरूआत का किंचित विकास इसमें दिखाई देता है।

जैनेन्द्र का पहला उपन्यास 'परख' (1930) का कथ्य प्रेम के एक विशेष आदर्श का चित्रण है। उपन्यास की बाल विधवा कट्टो अपने शिक्षक सत्यधन को प्यार करने लगती है, जो स्वयं भी करूणा और प्यार के वशीभूत हो उससे विवाह करने के लिए मानसिक रूप से तैयार है। पर सत्यधन का विवाह इसके पूर्व ही उसके मित्र विहारी की बहिन गरिमा से तय हो चुका है। सत्यधन के मन में इसे लेकर तीव्र संघर्ष होता है जिसका चित्रण उपन्यासकार ने बड़ी सफलता

से किया है। मूल्य विषयक संघर्ष, मानंसिक द्वन्द्व, और व्यक्ति के आन्तरिक जीवन आदि को अधिक गहराई और सर्जनात्मकता के साथ उपन्यास का विषय बनाने में जैनेन्द्र पटु सिद्ध हुए हैं। वह प्रेमचन्द युग के सर्वाधिक उल्लेखनीय उपन्यासकार है क्योंकि उन्होंने अपनी दुर्लभ सर्जनात्मक प्रतिभा से मनोवैज्ञानिकता की ओर उन्मुख हिन्दी उपन्यास को सही दिशा और समृद्धि प्रदान की। सुनीता (1935) में पहली बार एक नारी पात्र ने पाठकों एवं आलोचकों को अपने साहस से हतप्रभ कर दिया। केन्द्रीय पात्र 'सुनीता' विवाहिता एवं दाम्पत्य मर्यादा का पालन करते हुए भी अपने प्रेमी हरि प्रसन्न के समक्ष आक्रमक समर्पण की मुद्रा में निर्वस्त्र हो जाती है। वह हरि प्रसन्न से प्रेम करती हुई भी दाम्पत्य जीवन की मर्यादा तोड़ने में विश्वास नहीं रखती। उसका प्रेमी के समक्ष नग्न होना और समपर्ण के लिए प्रस्तुत होना एक चुनौती है, जिसका सामना हरि प्रसन्न नहीं कर पाता है। यह शरीर प्राप्ति के लिए आतुर पुरुष के प्रति नारी का पहला गाँधी वादी विद्रोह है। दाम्पत्य की सीमाओं के बाहर स्त्री के प्रेम के अधिकार की भी जैनेन्द्र ने वकालत की है। 'सुनीता' में इस प्रेम तथा इससे उत्पन्न द्वन्द्व का अनुभूति पूर्ण अंकन किया गया है। भगवती प्रसाद बाजपेयी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में समाज का कुछ हस्तक्षेप है जिससे 'सुनीता' युक्त है। इस प्रकार जैनेन्द्र ने हिन्दी उपन्यास को एक नितान्त नवीन दृष्टि दी, जिसका विकास बाद में हुआ। जैनेन्द्र की औपन्यासिक सर्जनात्मकता की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने शिल्प और भाषा के स्तर पर नए प्रयोग किए, दोनों को नयी सम्भावनाओं से जोड़ा। " जैनेन्द्र के उपन्यासों में पाठक कथा संसार को बाहर से देखता सुनता नहीं, बल्कि उसमें प्रवेश करता है, उसमें लीन होता है। इस प्रकार जैनेन्द्र ने ऐतिहासिक दृष्टि से प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास को नई दिशा प्रदान की।"[11]

वृन्दावन लाल वर्मा रचित दो उपन्यास 'गढ़ कुंडार' (1930) तथा 'विराटा की पद्मिनी' (1936) ऐतिहासिक उपन्यास हैं जो इसी अवधि में लिखे गए हैं। ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में वर्मा जी ने एक नया अध्याय जोड़ा। 'गढ़ कुंडार' की कथा–संस्कृति दिल्ली सुल्तान बलबन के समय और बुन्देल खण्ड के, कुंडार, भरतपुर, माहौनी, पलोथर, सारौल, करेरा आदि गढ़ों से संबद्ध है। 'गढ़ कुंडार' का मुख्य कथ्य खँगारों और बुन्देलों का जाति गत संघर्ष ही है। 'विराटा की पद्मिनी'की भी यही स्थिति है। इन दोनों उपन्यासों में बुन्देल खण्ड के शौर्य, स्वाभिमान, प्राकृतिक सौंदर्य आदि के चित्रण के रूप में उपन्यासकार का राष्ट्र प्रेम अभिव्यक्त होता है। "शिल्प और भाषा की दृष्टि से वर्मा जी के ये उपन्यास सर्जनात्मक ऊँचाई पर पहुँचते नहीं प्रतीत होते हैं। पात्रों और घटनाओं की संकुलता इन उपन्यासों को सहज पठनीय बनाने में बाधा पैदा करती है। पात्रों के चरित्र, उनके व्यवहार और वार्तालाप, अनेक असंगतियों के शिकार हो गए हैं। कथा–शिल्प में भी कोई नवीनता या आकर्षण नहीं है।"[12]

प्रेमचन्द युग में औपन्यासिक शिल्प संबंधी विशेष सजगता पाई जाती है। जैनेन्द्र ने तो इस दिशा में उपन्यास को शिल्प स्तर पर एक नई दिशा ही प्रदान की। उन्होंने प्रेमचन्द से अलग

प्रसंगों के क्रम बीच में तोड़ दिए हैं और पाठक से अपेक्षा की गयी है कि वह स्वयं ही प्रसंगों को जोड़े। 'परख' में इसका प्रारंभ और 'सुनीता' में अपनी पूर्णता तक पहुँचा है। कुछ गौण उपन्यास कारों ने भी अपनी शिल्प विषयक सजगता का परिचय दिया है। 'आत्म कथात्मक' प्रविधि का प्रयोग इस काल में मन्नन द्विवेदी, शिवपूजन सहाय, इलाचन्द्र जोशी, प्रियंवदा देवी, ऋषभ चरण जैन, सियाराम शरण गुप्ता, अनूप लाल मंडल आदि ने अपने उपन्यासों में अनेक रूपों में किया है। 'पूरे उपन्यास में एक ही पात्र के अवलोकन विन्दु' का प्रयोग इलाचन्द्र जोशी कृत घृणामयी (1929) सियाराम शरण गुप्त कृत 'अन्तिम आकांक्षा' (1934) और अनूप लाल मंडल कृत 'ज्योर्तिमयी' (1934) आदि में किया गया है।

'पत्रात्मक प्रविधि' का प्रयोग भी प्रेमचन्द युग में हुआ। इस प्रविधि के प्रयोग का श्रेय 'उग्र' जी को है। 1927 से 1936 तक इस शिल्प प्रविधि में लगभग 18 उपन्यास लिखे गए, जिनमें चन्द्रशेखर शास्त्री कृत 'स्त्री के पत्र' 'विधवा के पत्र' (1931) गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश कृ –त प्रेम की पीड़ा (1930) अनूप लाल मंडल कृत 'समाज की वेदी पर' (1931) व्यथित हृदय कृत 'दुलहिन के पन' (1933) और जगदीश झा 'विमलकृत' 'केसर' (1936) आदि विशेष उल्लेखनीय है।

'डायरी प्रविधि' भी उपन्यास में नए अवलोकन विन्दु की खोज की आवश्यकता की उपज है। इस प्रविधि का हिन्दी में प्रथम प्रयोग करने का श्रेय आदित्य प्रसन्न राय को है। उन्होने अपने उपन्यास 'मुन्नी की डायरी' (1932) में इसका प्रयोग किया है।

'सहयोगी लेखन' की प्रवृत्ति भी इसी काल में प्रारंभ हुई। 1927 ई0 में 'त्रिमूर्ति' नाम से भगवती प्रसाद बाजपेयी, वर्म्मा और शम्भू दयाल सक्सेना ने 'मीठी चुटकी' नामक उपन्यास लिखा। इसके बाद जैनेन्द्र और ऋषम चरण जैन द्वारा 'तपोभूमि' (1932) नामक उपन्यास लिखा गया। इसका केन्द्रीय विषय प्रेम है। इस प्रकार प्रेमचन्द युग में ही हिन्दी उपन्यास अपनी प्रौढ़ता में प्रवेश कर गया।

उपन्यास लेखन के तीसरे चरण (1937 से 1946 तक) में अनूप लाल मंडल का 'मीमांसा' (1937) राधिका रमण प्रसाद सिंह का 'राम रहीम (1937) प्रकाशित हुए। 'मीमांसा' मानव हृदय की दुर्बलताओं को अंकित करने वाला साधारण उपन्यास है। 'राम–रहीम' का कथ्य धर्म और समाज के तमाम कच्चे चिट्टे एवं भारतीय जीवन के 'आचार' 'विचार' 'अत्याचार' और पुकार है। इसे यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अध्यात्म, श्रंगार, नैतिकता, दर्शन, और 'यथार्थवाद' का अंकन भी इसका उद्देश्य है। परन्तु शीर्षक के अनुसार इसका विजन स्पष्ट नहीं है। इसके कथ्य का दूसरा पहलू 'नारी समस्या' भी है जो उपन्यास के लिए कोई नया विषय नहीं है। शिल्प की दृष्टि से भी कोई विशेषता नहीं है, हाँ भाषा की विशेषता अवश्य उल्लेखनीय है। उषा देवी मित्रा प्रताप नारायण श्रीवास्तव आदि के उपन्यासों में भी कथ्य परंपरावादी ही हैं और शिल्प विषयक कोई नवीनता भी नहीं है।

अज्ञेय का 'शेखरः एक जीवनी' (1940–1944) हिन्दी उपन्यास के इतिहास में, कथ्य, शिल्प और भाषा सभी दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें एक पात्र का पूर्ण चरित्र ही उपन्यास का 'विजन' बना। 'शेखर' के चरित्र का नियामक उसका परिवेश ही है पर अज्ञेय ने उसके चरित्र के अन्तः कारणों, मनोवैज्ञानिक और संवेदनात्मक पक्षों की व्याख्या को ही अपनी रचना शीलता का मुख्य दायित्व माना है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'अज्ञेय' ने उपन्यास को 'मानव चरित्र का चित्र' बनाने की प्रेमचन्द की अभिलाषा को पूर्णता प्रदान की है। इस उपन्यास का विशेष महत्व शिल्प को लेकर है। इसमें प्रेमचन्द के विपरीत कथानक से समय की निरन्तरता की अनिवार्यता को समाप्त किया गया है, और काल–प्रवाह में अन्तराल डालने का प्रयोग भी किया गया है। "काल की रैखिक या ऐतिहासिक गति को तोड़कर पात्रों के वाह्य अथवा अन्तः व्यापार को सुपरिचित समयानुक्रम से विच्छिन्नकर ताश के फेंट दिए गए पत्तों की तरह या टूटी हुई माला के बेतरतीब मनकों के रूप में प्रस्तुत किया । अतीत, वर्तमान और भविष्य इस प्रकार पाठक की चेतना में आते हैं जैसे कोई तमाशागीर गेदों को अपने दोनो हाथों में उछालने और लोकने की क्रिया करता है।"[13]

एक व्यक्ति द्वारा अपने ही चरित्र को 'वह' के रूप में देखने और विश्लेषित करने की प्रविधि भी सर्वप्रथम इसी उपन्यास में प्राप्त होती है। मस्तिष्क के नाटकीकरण की प्रविधि भी पहली बार इसी में प्रयुक्त हुई है। इस प्रकार यदि 'शेखर'–एक जीवनी' को चेतन प्रवाही उपन्यास मानने की हठ धर्मिता न अपनायी जाए तो उसका शिल्प उपन्यास के विजन के सर्वथा अनुरूप और सर्जनात्मक उपलब्धि का एक उदाहरण है। भाषा की दृष्टि से इसकी संस्कृतनिष्ठ पर स्वाभाविक और प्रौढ़भाषा हिन्दी गद्य को उत्कर्ष पर पहुँचाती है। 'मौन की भाषा' इसमें बडी ही सफलता के साथ प्रयुक्त हुई है।

इलाचन्द्र जोशी के दो उपन्यास–'सन्यासी' (1941) और 'पर्दे की रानी' (1941) तथा इसके बाद 'प्रेत और छाया' (1946) तथा 'निर्वासित' (1946) मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं। इनका केन्द्रीय कथ्य फ्रायड, एडलर, जुग आदि के द्वारा प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है जिन्हे जोशी जी ने उपन्यास का विषय बना दिया है। 'प्रेत और छाया' तथा 'पर्दे की रानी' का केन्द्रीय कथ्य मनोवैज्ञानिक कुठाएँ ही है। 'सन्यासी' और 'पर्दे की रानी' में आत्मकथा का शिल्प अपनाया गया है तथा 'प्रेत और छाया' में भी इसी प्रविधि का आश्रय लिया गया है। उसमें 'नरेटर' का हस्तक्षेप अत्यधिक है।

यशपाल के 'देश द्रोही' (1943) पार्टी कामरेड (1946) और दादा कामरेड (1941) समकीन राजनीति और नारी–पुरुष के प्रेम और काम संबंधों पर आधारित उपन्यास हैं। कथ्य की दृष्टि से विजन रहित विस्तार मात्र है 'दादा कामरेड' के, देश द्रोही और पार्टी कामरेड। यशपाल जी ने इन उपन्यासों में नारी पुरुष संबंधों की परम्परागत संहिता को जबरदस्त चुनौती दी है। शिल्प

और भाषा की दृष्टि से ये उपन्यास उल्लेखनीय नही है। शिल्प और भाषा दोनों ही परम्परागत ही हैं।

यशपाल के 'दिव्या' (1945) को एक ऐतिहासिक कल्पना के रूप में देखा गया है। उनका नारी विषयक 'विजन' 'दिव्या' में सुदूर इतिहास के कल्पित कथा संसार के माध्यम से व्यक्त हुआ है। बौद्ध धर्म के अम्युदय के समय नारी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक वन्धनों में पूर्ण रूप से जकड़ चुकी थी। केवल वेश्या के रूप में नारी को स्वतंत्रता प्राप्त थी। परन्तु उस रूप में भी उसकी एक अलग त्रासदी थी। नारी विषयक इसी दृष्टिकोण को लेखक ने दिव्या में व्यक्त किया है। दिव्या एक अभिजात कुल की ब्राह्म कन्या है। अपनी नृत्य कला के लिए उसे 'सरस्वती पुत्री' का सम्मान प्राप्त है फिर भी श्रेष्ठ खड्गधारी पर दास पुत्र, पृथुसेन से प्रेम और देह संबंध स्थापित करने के कारण समाज के लिए अग्राहय है। कुमारी माँ के लिए समाज में कोई स्थान नहीं है। 'दिव्या' अन्त में अभिजात वर्ग के प्रेमियों का तिरस्कार करके चार्वाक दर्शन के 'मारिश' को आत्म समर्पण करती है, जो स्त्री पुरुष के मुक्त नैसर्गिक संबंध में विश्वास करता है। यही यशपाल का नारी दर्शन है।

राहुल सांकृत्यायन का पहला उपन्यास 'जीने के लिए' (1940) है। इसमें वीती शताब्दी के दूसरे दशक से लेकर चौथे दशक तक भारत की विक्षुब्ध सामाजिक, राजनीतिक स्थिति का अंकन है। ब्रिटिश शासन, उसके समर्थक जमीदारों, और व्यवस्था, के ठेकेदारों के विरुद्ध आवाज उठाने में उपन्यासकार के अद्भुत साहस का परिचय मिलता है। सांकृत्यायन के दो अन्य उपन्यास 'सिंह सेनापति' (1944) जय यौधेय (1944) वस्तुतः प्राचीन भारतीय इतिहास पर आधारित उपन्यास है। इनमें स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में गणराज्य विषयक अपने 'विजन' को मूर्त करने का प्रयास लेखक द्वारा किया गया है। उपन्यास में चित्रित व्यवस्था पर रूसी समाजवादी व्यवस्था की स्पष्ट छाप है जिसमें काम और आवश्यकतानुसार उपभोग का मार्क्सवादी सिद्वान्त लागू होता था। पर राहुल जी ने बड़ी कुशलता से अपने विजन को इतिहास में प्रतिविम्बित कराया है। राहुल जी के उपन्यासों में चरित्रों की सृष्टि में गहरी संवेदनशीलता, विचारणाशक्ति और मनोवैज्ञानिक दृष्टि अपनायी गयी है। भाषा की संरचना भी पात्रों के अनुरूप रखी गयी है जिससे विश्वसनीयता की सृष्टि होती है।

शिल्प की दृष्टि से कथा–प्रस्तुति में अप्रत्यक्षता का बोध पैदा करने के लिए 'सिंह सेनापति' में एक बिल्कुल नया और अनोखा प्रयोग किया गया है। उपन्यास की भूमिका में पाठकों को सूचित किया गया कि वैशाली में खुदाई के क्रम में मिली ईटों को जोड़ने पर ब्राह्मी लिपि और संस्कृत भाषा में एक आत्मकथा प्राप्त हुई जिसका अनुवाद ही यह उपन्यास है। विश्वसनीय बनाने के लिए ईटों को पटना म्यूजियम में सुरक्षित भी दिखाया गया जिन्हें देखने के लिए लोग म्यूजियम भी पहुँचे। बाद में राहुल जी ने स्पष्टीकरण दिया कि यह उपन्यास है, इतिहास नहीं।

इसी प्रविधि में हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'वाण भट्ट की आत्म कथा' (1946) है। इस शिल्प ने पाठकों को चौंकाया और आकर्षित किया। यद्यपि 'सिंह सेनापति' में सांकृत्यायन जी इस प्रविधि का प्रयोग कर चुके थे पर 'वाणभट्ट की आत्म कथा' के शीर्षक में जो चमत्कार और आकर्षण था वह 'सिंह सेनापति' में नहीं है। 'वाणभट्ट की आत्म कथा' का कथा संसार इतिहास पर आधारित है पर उसमें इतिहास बहुत कम, कल्पना तथा लोक श्रुति से प्राप्त प्रसंग अधिक है। इतिहास तो बस इतना है कि वाण भट्ट को महाराज हर्ष वर्द्धन के दरबार में कुछ प्रारंभिक कठिनाइयों के बाद राजकवि के रूप में प्रतिष्ठा मिली थी। इस उपन्यास की 'वस्तु' पह उदात्त प्रेम है जो वासना जन्य न होकर आत्मदान लोकमंगल और संपूर्ण समर्पण की भावना से ओत–प्रोत है। नारी नियति के संवेदनशील अंकन के लिए राजकुमारी चन्द्रदीधति, निम्नवर्गीया निपुणिका, अपहृत बालिका महामाया और मध्यवर्गीय ब्राह्मण कुलवधू सुचरिता जैसे चरित्रों की सृष्टि की गई है। यह सभी पात्र सिद्ध करते हैं कि स्त्री चाहे जिस वर्ग की हो, वह भिन्न–भिन्न रूपों में भोग्या ही है। शोषण ही उसकी नियति है। उपन्यास का 'विजन' केवल प्रेम–संवेदना तक सीमित न रहकर राष्ट्रीय संकट का बोध भी कराता है। भारत की परतंत्रता राष्ट्रीय संकट के रूप में उपन्यास में अभिव्यक्त हुई है। उपन्यास में शिल्प के रूप में 'आत्मकथा' प्रविधि अपनायी गई है और जहाँ कहीं भी जरासी भी शिथिलता हुई है, 'आत्मकथा के भीतर आत्मकथा' की प्रविधि का प्रयोग किया गया है। उपन्यास की भाषा सर्जनात्मक है। इसमें संस्कृतनिष्ठ एवं बोलचाल की भाषा का दुर्लभ समन्वय प्राप्त होता है। 'वस्तु' की आवश्यकता के अनुसार कोमल–कान्त पदावली युक्त समास शैली और छोटे–छोटे वाक्यों से युक्त प्रसाद गुणयुक्त शैली का प्रयोग किया गया है।

वृन्दावन लाल वर्मा कृत 'झाँसी की रानी' (1946) उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के ठीक पहले प्रकाशित कराकर वर्मा जी ने अपने देश गौरव, और भारतीय नारी के प्रति आस्था भाव का परिचय दिया। पुरुष सत्ता प्रधान समाज के सारे वन्धनों को लाँधकर एक नारी चारित्रिक उत्कर्ष के जिस चरम बिन्दु पर पहुँच सकती है, इसी का चित्रण उपन्यास का उद्देश्य है। शिल्प की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं है।

वस्तु, विजन, शिल्प आदि सभी दृष्टियों से प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को प्रौढ़ता प्रदान की थी। प्रौढ़ता की ओर बढ़ती उपन्यास पथिक की यह यात्रा जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, राहुल सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी यशपाल और वृन्दावन लाल वर्मा के सहयोग से निरन्तर 1946 तक चलती रही। जैनेन्द्र, अज्ञेय, और इलाचन्द जोशी ने इस यात्रा के कथ्य को मनोवैज्ञानिक आयाम दिए, राहुल सांकृत्यायन और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक उपन्यास को नवीन संभावनाओं से सम्पन्न किया। समकालीन राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अज्ञेय, यशपाल, वृन्दावन लाल वर्मा, राहुल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास विशेष

महत्वपूर्ण है। इन उपन्यासों ने ऐतिहासिक घटनाओं से मुक्त होकर अपनें में ऐतिहासिक यथार्थ बोध और संवेदना वहन की।

"उपन्यास–शिल्प संबंधी प्रयोग की दिशा में इस काल के उपन्यास ने लम्बी और सार्थक यात्रा तय की। जैनेन्द्र ने कथानक को समय के अटूट नैरन्तर्य और प्रवाह से युक्त किया तो अज्ञेय ने ऐतिहासिक काल के स्थान पर आनुभविक काल, कालक्रम वद्ध घटनाओं के स्थान पर, काल निरपेक्ष स्मृतियों तथा वाह्य कार्य व्यापारों के स्थान पर मस्तिष्क में नाटकीकृत संवेदनाओं का उपयोग करके औपन्यासिक शिल्प को अब तक अनछुई ऊँचाई पर पहुँच दिया। उपन्यास में किस्सागो की अप्रत्यक्षता को जैनेन्द्र ने केन्द्रीय पात्र की लिखित आत्मकथा के रूप में सम्भव बनाया तो अज्ञेय ने आत्मकथा कार के 'मैं' को 'वह' में रूपान्तरित कर बहुत जटिल रूप दे दिया। राहुल सांकृत्यायन ने भी केन्द्रीय पात्र 'मै' में किस्सागो का काया प्रवेश कराकर उसे पुरा तात्विक विश्वसनीयता प्रदान करने की कोशिश की और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो उसे परत दरपरत छिपाकर प्रायः अनंग ही बना डाला।"[14]

वस्तु एवं शिल्पगत पीठिका की दृष्टि से अमृतलाल नागर का अभिनवत्व :

नागरजी अत्यंत संवेदनशील और सृजनशील रचनाकार हैं। देश में जब कभी किसी विशिष्ट परिस्थिति के कारण कोई विशिष्ट प्रश्न निर्मित हुआ, जिसने समस्त देश को हिलाकर रख दिया; तब तब उन समस्याओं का यथार्थ और प्रभावी निरूपण नागरजी ने अपनी रचनाओं में किया हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी उपन्यास साहित्य का विविध विषयों को लेकर अनेक रंगी स्वरूप सामने आया। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में भोगे हुए जीवन–सत्य को बड़ी मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है। इसी समय एक महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देता है और वह यह कि अब तक अपरिचित एवं उपेक्षित अंचल और जनजाति को लेकर अनेक आंचलिक उपन्यास लिखे गए है। अनेक उपन्यास कारों ने पीड़ित, शोषित और उपेक्षित वर्ग का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। इस दृष्टि से नागरजी के कई उपन्यास बहुचर्चित रहे हैं।

वस्तु और शिल्प की दृष्टि से नागरजी के उपन्यासों में जों अभिनवत्व पाया जाता है, उसे हम न्यूनाधिक रूप में निम्नांकित बिन्दुओं में विश्लेषित कर सकते है–

युगीन प्रवृत्ति का चित्रण, तात्कालिक प्रश्नों एवं समस्याओं का चित्रण एवं समाधान, स्थायी मूल्यों का विश्लेषण, वर्गगत चेतना और व्यक्तिगत चेतना की अभिव्यक्ति, आदि उद्देश्य को लेकर औपन्यासिक रचना की गई है। सामान्यतः प्रेमचन्दोत्तर स्वातंत्र्योतर उपन्यासों की वस्तु एवं शिल्प संबंधी नवीनताएँ ही नागर जी के उपन्यासों में भी परिलक्षित होती हैं जो निम्नांकित हैं–

1. **वस्तु का ह्रास :** यद्यपि 'वस्तु' का ह्रास प्रेमचन्द युग में ही आरंभ हो गया था और चरित्र चित्रण की प्रधानता उपन्यास का महत्व बन गया था, तथापि जिस तीव्रता से आगें इसका ह्रास

हुआ और यह विकास के उस स्थान तक पहुँची जहाँ वह अत्यंत सूक्ष्म स्वरूप वाली बन गई। नागरजी के कई उपन्यासों में भी वस्तु को सूक्ष्म रूप दिया गया है किन्तु इस सूक्ष्मता ने ही नवीनता का रूप धारण कर लिया।

2. **प्रयोजन दृष्टि** : नागरजी के उपन्यास चाहे घटना प्रधान हों या सामाजिक अथवा ऐतिहासिक सभी में 'वस्तु' का प्रयोग प्रयोजनात्मक है। 'वस्तु' किसी प्रयोजन विशेष को लेकर ही चली है।

3. **चरित्र की प्रधानता** : घटना की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाना नागर जी के उपन्यासों की वस्तु एवं शिल्प, दोनों का अभिनवत्व है। हाँ किसी–किसी उपन्यास में नागर जी ने व्यक्ति को ही समाज की इकाई माना है और उसे सामूहिक रूप दिया है।

4. **मानसिक प्राधान्य** : जीवन के विशाल धरातल को छोड़कर मानव का संकीर्ण धरातल स्वीकार किया गया है। वस्तु का विन्यास पात्रों के अन्दर से होता हुआ वाह्य जगत की स्थूल घटनाओं को अर्न्तजगत की सूक्ष्म घटनाओं के रूप में परिणत कर देता है।

5. **विश्रृंखलता एवं क्रम विपर्यय** : मानसिकता की प्रधानता के कारण वस्तु में विश्रृंखलता आ गई है। वस्तु के प्रारंभ, मध्य और अन्त का कोई नियम नहीं है। घटनाओं के क्रम में उलट फेर, जीवन के प्रसंग विच्छिन्न, और विपर्यस्त होकर कहीं भी स्थान पा लेते हैं।

6. **विगत का जीवंत साक्षात्कार** : विगत घटनाएँ स्मृतियों के रूप में वर्तमान का स्वरूप धारण कर समक्ष प्रकट हो जाती हैं। अतीत वर्तमान प्रतीत होता है। इससे प्रभावान्विति अपेक्षाकृत अधिक तीव्र हो उठती है। शिल्प में यही पूर्व दीप्ति प्रविधि है।

7. **पाठक कथा का संयोजक** : वस्तु का अभिव्यक्तीकरण विभिन्न पात्रों के दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर हुआ है। इसे पाश्चात्य पद्धति 'दृष्टिकोण पद्धति' कहा गया है। इस पद्धति में उपन्यास को खण्डों में विभक्त कर दिया जाता है। मुख्य पात्रों के दृष्टिकोण अथवा स्वगत कथनों से 'वस्तु' के लिए पृथक्–पृथक् अनेक खण्ड निश्चित कर दिए जाते हैं। यद्यपि वस्तु विन्यास की यह विधि परम श्रमसाध्य है तथापि नागरजी ने इस पद्धति का सफल प्रयोग किया है। कथा और चरित्र का उद्घाटन क्रमशः होता है।

8. **तटस्थता** : 'सेठ बाँकेमल' में नागर जी बाँकेमल की आत्म चर्चाओं को सुनकर उसी के शब्दों में लिखकर देते हैं। इस लेखकीय नाटकीय से उपन्यास नाटक का सामीप्य प्राप्त कर लेता है।

9. **आत्म कथात्मक शैली का प्रयोग** : इस शैली में कथा का आख्याता मुख्य पात्र होता है। लेखक अपने मुख से कुछ नहीं कहता है।

10. **व्यंजनात्मकता** : संकेत शैली, प्रतीक शैली, प्रतीकात्मक दृश्यों और पात्रों के सांकेतिक कर्मों का विनियोग व्यंजनात्मकता की प्रधानता को प्रमाणित करते हैं। इसमें 'वस्तु' और अधिक सूक्ष्म हो गया है।

11. **आत्म कथात्मक शैली की प्रधानता** : नागर जी अपेक्षाकृत अधिक आत्मविश्लेषक प्रतीत होते है। उनके उपन्यासों में आत्म कथात्मक शैली को विशेष प्रश्रय मिला है। इस शैली में कथा का आख्याता मुख्य पात्र अथवा गौणपात्र होता है। इस शैली इतिहास शैली में समाहित है। आत्म परकता और वस्तु परकता का अद्‌भुत संगम दृष्टिगोचर होता है।

12. **दृश्यात्मकता** : नागर जी ने 'दृश्य–विधान' शैली को अपनाकर पाठकों को अर्मूत प्रत्यक्षीकरण के आनन्द से लाभान्वित कराया है। वर्णनों का स्थान मूर्त दृश्यों को दिया गया है। दृश्य विधान ने परम्परागत वस्तु विन्यास में आमूल–परिवर्तन कर अभिनव रूप धारण कर लिया।

13. **कहानियों की कहानी** : अनेक कहानियों में एक कहानी की योजना का प्रयोग कर नागर जी ने उपन्यास के वस्तु एंव शिल्प क्षेत्र में एक अभिनव प्रयोग उपस्थित किया। दृश्य, घटना अथवा विचार के आधार पर अनेक कहानियों को प्रस्तुत कर समग्र प्रभाव के रूप में एक कहानी की सृष्टि ने वस्तु के स्वरूप को अभिनव रूप प्रदान किया है। 'सेठ बाँकेमल' सोलह कहानियों के होते हुए भी एक उपन्यास है। कहीं भी ऐसा प्रतीत नही होता कि इनका वस्तु तत्व पृथक् है। ऐसा ही प्रयोग 'बूंद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' में भी दिखाई देता है। इसे विद्वानों ने धारा तरंग न्याय के आश्रित कहा है।

14. **वादी स्वर की प्रमुखता** : आधुनिक विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक विचार धाराओं को भी यथा सम्भव स्थान दिया गया है।

15. **घटना या स्थिति चित्रण** : स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्मता का आग्रह, प्रतीकों के सहारे जीवन अथवा घटना का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि पाठक का मन रमकर रह जाता है।

16. **प्रयोगों की बहुलता** : पाश्चात्य उपन्यास कारों से प्रभावित होकर भी नागर जी ने अपने उपन्यासों में वस्तु–शिल्प संबंधी कई अभिनव प्रयोग किए हैं। इन नूतन प्रयोगों के कारण वस्तु विन्यास प्रभावित हुआ है और यही उसे एक नूतन स्वरूप प्राप्त हो गया है।

17. **नायक की रचनाओं को आधार रूप में प्रस्तुत करना** : 'मानस का हंस' में नागर जी ने 'तुलसी' की विभिन्न रचनाओं से खोज कर उनके जीवन सम्बंधी गतिविधियों को प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत कर रचना को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया है।

18. **आदि और अन्त की कलात्मकता** : कथानकों के आदि और अन्त की कलात्मकता पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रारंभ में अन्त की अभिव्यक्ति और अन्त के अधूरे पत्रों को दिखाकर पाठकीय संवेदना प्राप्त की गई है। कहीं–कहीं प्रमुख पात्र का परिचय बहुत बाद में कई–कई अध्यायों के बाद कराया गया है।

19. **वस्तु विभाजन का कौशल** : वस्तु विभाजन का कौशल नागर जी के कई उपन्यासों में पाया जाता है। पात्रों, घटनाओं, विचारों के आधार पर परिच्छेद बनाये गये हैं।

20. **प्रतीकात्मक शीर्षक** : नागरजी ने अपने अधिकांश उपन्यासों के नाम प्रतीकात्मक शीर्षकों में रखे हैं। शीर्षक से ही रचना का उद्‌देश्य ज्ञात हो जाता है। 'सेठ वाँकेमल' ऐसा नाम है जिसे

पढ़ते ही लगता है कि यह पात्र वास्तव में 'बाँका' ही होगा। शीर्षक ही हास्य का परिचायक है। इसी प्रकार 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' 'अमृत और विष' 'बूँद और समुद्र' आदि उपन्यास भी अपनी वस्तु का परिचय स्वयं प्रकट करते हैं।

(नागरजी का अभिनवत्व)

आधुनिक युगजीवन की गतिशीलता ने नित्य जीवन–मूल्यों, मान्यताओं, आचार–विचारों और नैतिक आदर्शो को यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में जन्म दिया है। यह नवीनता रचना के धरातल पर भी उभरी। पुरानी लीक से हटकर जीवन को देखने–समझने वाली साहित्यकार की नवोन्मेषी दृष्टि में कथा–शिल्पगत नवीनता के प्रति आग्रह दिखाया। नागर जी ने पुरानी लीक छोड़कर उपन्यास के क्षेत्र में नवीन वस्तु एवं शिल्प कला का प्रयोग किया। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' उनका सर्वथा मौलिक और अभिनवत्व पूर्ण उपन्यास है।

नागरजी समग्रतः एक सामाजिक उपन्यास कार है और उनक सामाजिक उपन्यासों में वस्तु एक–दूसरे से भिन्न और विविध कथा प्रसंगों से युक्त हैं। लेखक ने इनकी केन्द्री भूत समस्या को प्रभावी ढंग से उभारते हुए यथा सम्भव उसका समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'सेठ बाँकेमल' में संकलनत्रय का सुन्दर निर्वाह हुआ है। 'शतरंज के मोहरे' के वस्तु विन्यास का आधार ऐतिहासिक है। इसमें प्रमुख प्रसंगों के अतिरिक्त कतिपय प्रासंगिक कथाओं की योजना भी है जिनसे मुख्य कथा को बल मिलता है। 'बूँद और समुद्र' एक विशाल फलक पर मध्य वर्गीय समाज का गुण–दोष भरा चित्र है। इसमें मूल कथा के अतिरिक्त अनेक प्रासंगिक कथाओं, अन्तर्कथाओं एवं वर्णनों की ऐसी बनावट की गई है कि सभी प्रसंग अपना स्वतंत्र महत्व रखते हुए भी मुख्य कथा के प्रवाह में सहायक होते हैं। वस्तु की व्यापकता, जटिलता एवं अतिरेकी घटना प्रसंगों की बहुलता होते हुए भी नागरजी की किस्सागो शैली एवं रोचक तथा भाव प्रधान चित्रणों के कारण समूचे उपन्यास की संवेदता पाठक के मन पर एक अभिनव प्रभाव डालती है। 'अमृत और विष' दुहरे कथानक से युक्त उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रासंगिक कथा–सूत्रों की अधिकता है। 'एकदा नैभिषारण्ये', 'मानस का हंस' पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि पर रंगे 'एकदा नैभिषारण्ये', 'मानस हंस' और 'खंपन नयन' उपन्यास लेखक की प्रौढ़ता के प्रतीक हैं। 'मानस का हंस' में गोस्वामी तुलसी दास के विवादित जीवन वृत्त और संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के घात–प्रतिघात के मध्य ज्ञानी और भक्त कवि की अडिग आस्था, विश्वास तथा मानवता वादी जीवन दृष्टि को खोज निकाला गया है। इसमें नागरजी के सांस्कृतिक चिन्तन और कला नैपुण्य की अद्वितीयता प्रकट है। जीवन चरित्र होते हुए भी इसमें औपन्यासिक कलात्मकता का सुष्ठु संयोजन है। ऐतिहासिक घटनाएँ अपनी दृश्यात्मकता के साथ पाठकीय संवेदना को गहराई के साथ छूती हैं। यह उपन्यास नये शिल्प–सौष्ठव के साथ प्रस्तुत हुआ है। इसमें कथा दो धाराओं में प्रवाहित है। वर्तमान और अतीत की घटनाओं को संस्मरण, यथार्थ घटित और पूर्व दीप्ति पद्धति द्वारा रूपायित किया गया है। 'खंजन नयन' महाकवि सूरदास के गरिमामय जीवन पर

आधारित सांस्कृतिक उपन्यास है। इसमें महाकवि के विश्वास एवं अविश्वास के अन्तर्द्वन्द्व को बड़ी कुशलता से उभारा गया है। सूरदास के व्यक्तित्व को नागरजी ने तीन स्तरों पर प्रस्तुत किया है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' नागरजी की अभिनव कला की विलक्षणता को प्रमाणित करने वाली कालजयी कृति है। इसमें 'मानस का हंस' की ही भाँति कथा और घटना–चक्र वर्तमान और अतीत की परिधि में चक्कर काटते रहते है। उपन्यास का प्रारम्भ 'मैं' शैली मे होता है। स्थान–स्थान पर पूर्व दीप्ति वर्णन शैलियों का प्रयोग कर अपने अभिनवत्व का परिचय दिया है।

वस्तुतः नागरजी के उपन्यासों का वर्ण्य विषय नवीन संदर्भों को नूतन शैली शिल्प में प्रस्तुत करने का सचेष्ट प्रयास है।

नागरजी के उपन्यास–साहित्य के विकास के चरण

अमृतलाल नागर का प्रथम उपन्यास **'महाकाल'** 1947 ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें 'बंगाल' में पडे अकाल का यथार्थ चित्रण है। यही उपन्यास कालान्तर में 'भूख' नाम से प्रकाशित हुआ। 'भूख' मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देती। भूख की शान्ति के लिए मनुष्य अपना स्वाभिमान, मान, सामाजिक प्रतिष्ठा, सब कुछ दाँव पर लगा देता है। पिता–पिता नहीं रह जाता, भाई बहन के संबंध नहीं रह जाते। उपन्यास "बुभुक्षितः किं न करोति पापम्" की उक्ति को प्रस्तुत करता है। संक्षेप में 'महाकाल' आज के विवेक, सद्बुद्धि, सदाचार, ऐक्य और प्रेम के महाकाल (महा+अकाल) की कहानी है।

इसके पश्चात् 1954 में नागरजी का अपेक्षाकृत अधिक वस्तु एवं शैलीगत विशेषताओं से समन्वित 16 कहानियों वाला उपन्यास **'सेठ बाँकेमल'** प्रकाशित हुआ। यह हास्य–व्यंग्य की चित्रित करने वाला उपन्यास है। दो मित्र 'सेठ बाँकेमल' और 'चौबे जी'– (आश्रय हीन और निठल्ले व्यक्ति)– जीविकोपार्जन के लिए अपनी बुद्धि एवं कौशल से काम लेते हैं– इसे ही हास्य–व्यंग्य शैली में चित्रित करना उपन्यास का विषय है। इसमें मुख्य पात्र 'बाँकेमल' स्वयं परिचय देते हैं।

'बूँद और समुद्र' नागरजी की ख्याति का स्तंभ, सन् 1956 में प्रकाशित हुआ। उत्तर भारतीय जन जीवन से संबंधित यह एक वृहद उपन्यास है। इसका नाम प्रतीकात्मक है। इसमें उपन्यासकार ने समुद्र रूपी समाज में बूँद रूपी व्यक्ति के अस्तित्व का महत्व आकने का प्रयास किया है "जैसे बूँद से बूँद जुड़ी रहती है, लहरों से लहर। लहरों, से समुद्र बनता है– इस तरह बूँद में समुद्र समाया है।" जैसे समाज का महत्व व्यक्ति के लिए है, वैसे ही व्यक्ति का महत्व समाज के लिए। प्रस्तुत उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद लिखा गया। अतः यह काल दो विरोधी विचारों के द्वन्द्व का काल है जिसका एक छोर बाबा आदम के युग के संस्करों, रूढ़ियों और आधार हित कुप्रथाओं से बँधा है तो दूसरा नव युग को सुधार वादी, प्रगतिशील विचार धारा से जुड़ा है। एक को दूसरे पर विजय की आकांक्षा है। इसी पृष्ठ भूमि पर रचित है यह उपन्यास।

"शतरंज के मोहरे" 1959 में प्रकाशित नागर जी का ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें अपेक्षाकृत उनकी कला का अधिक निखार पाठकों के समक्ष जाता है। गदर के लगभग अर्द्धशताब्दी पूर्व– भारतीय जनमानस और सामन्त शाही डगमगा रही थी, लखनऊ दरवार के अन्तर्गत अनेक छोटे–छोटे नबाब और सामन्त भी– जिनकी स्थिति बड़े जमीदारों जैसी थी– अपने को संकट में पाते जा रहे थे। लखनऊ तथा अन्य देशी रजवाड़े जहाँ दलवन्दी अव्यवस्था, शोषण, नवाबी वीर्य से उत्पन्न धोविनों और कुजड़िनों की अयोग्य और दुर्बल संताने सदैव राज्य सिंहासन की ओर ललचाई दृष्टि से देखती रहती थी, जिस कारण हरय में चलने वाली गुरबन्दी और अव्यवस्था के कारण राज्य कार्य इधर हो गया था और इसी कारण शासन व्यवस्था ढीली पड़ती जा रही थी। उपन्यास की मूल कथा लखनऊ के नबाव गाजीउद्दीन हैदर और उसके उत्तराधिकारी नसीरूद्दीन के राज्य काल की है। इसका भी शीर्षक प्रतीकात्मक है। अंग्रेजी अपनी पकड़ मजबूत बनाने के लिए नबावों और राजाओं को शतरंज के मोहरे की भाँति प्रयोग करते थे।

सुहाग के नूपुर : 1960 में प्रकाशित यह उपन्यास ईसा की प्रथम शताब्दी में महाकवि 'इलंगोवन' रचित तमिल महाकाव्य 'शिलप्पद्दिकारम' के आधार पर नागर जी द्वारा रचित उनका बहुचर्चित उपन्यास है।

अमृत और विष : यह महाकाय सामाजिक उपन्यास है। यह हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें युवा वर्ग के आक्रोश परिवर्तन शीलता की तीव्र अकु लाहट, भावनाओं आकांक्षाओं एवं संघर्ष का सूक्ष्म अध्ययन, उनके यथार्थ परिवेश में किया गया है। इसका प्रकाशन **1966** में हुआ । 'अमृत और विष' 'बूँद और समुद्र' की परम्परा का ही उपन्यास है, पर इसका फलक 'बूँद और समुद्र' की तुलना में अधिक व्यापक और वैविध्य पूर्ण है। इसका भी शीर्षक प्रतीकात्मक है। जीवन में अमृत और विष (सुखःदुःख) दोनों के घूँट उतारने पड़ते हैं अथवा 'अमृत और विष' के अस्तित्व को सामाजिक संदर्भों में नकारा नहीं जा सकता।

सात घूँघट वाला मुखड़ा : 1968 में प्रकाशित नागरजी का ऐतिहासिक उपन्यास है। यह उपन्यास 'सुहाग के नूपुर, शतरंज के मोहरे कोटि का है और मध्यकालीन भारत के इतिहास का और संस्कृति का चित्र अंकित करता है।

एकदा नैमिषारण्ये : 1972 में प्रकाशित अमृतलाल नागर का सांस्कृतिक उपन्यास है। इसमें पौराणिक पात्रों को यथार्थ मनुष्यों के रूप में प्रस्तुत करते हुए उपन्यास कर ने उन्हें ऐसी संकटपूर्ण स्थितियों से गुजारा है जहाँ मनुष्य का सच्चा रूप अपनी समस्त गरिमा और कोमलता में प्रकट हुआ है। नारद और व्यास जैसे देवी चरित्रों को मानवीय भाव भूमि पर वैज्ञानिक रूप दिया गया है।

मानस का हंस : 1972 में प्रकाशित हुआ उपन्यास नागरजी की कला चातुर्य को और अधिक प्रदर्शित करने वाला है। ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में नागर जी की पहचान वास्तव में 'मानस का हंस' से ही बनती है। गोस्वामी जी की जीवनी और व्यक्तित्व के आधार पर रचित

इस उपन्यास के कारण ही नागर जी उपन्यास साहित्य में विशिष्ट स्थान के अधिकारी बने। इतिहास और चमत्कार पूर्ण किंवदन्तियों से बचते हुए, परम्परा और तुलसी साहित्य में उपलब्ध संकेतों के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास का व्यक्तित्व गढ़ने का प्रयास है यह उपन्यास।

नाच्यौ बहुत गोपाल : (1978) 'मानस का हंस' से उपन्यासकार जगत में शीर्ष स्थान प्राप्त नागर जी के उपन्यास साहित्य के विकास का अगला चरण है 'नाच्यौ बहुत गोपाल'। इस उपन्यास में अपने शिल्प चातुर्य की प्रौढ़ता दिखलाते हुए नागर जी ने नेपथ्य में रहकर वस्तु–विन्यास किया है। इसमें दलित समाज विषयक बहुआयामी विजन को दृश्यात्मक–परिदृश्यात्मक विधि से प्रस्तुत किया गया।

खंजन नयन : 1981 में प्रकाशित नागरजी का, महाकवि सूरदास पर आधारित उपन्यास है। सूरदास के भक्त और कवि जीवन को उभारना ही उपन्यास का उद्देश्य है। प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए जन्मान्ध बालक सूर के चरित्र का विकास बहुत मार्मिक है। यद्यपि सर्जनात्मक दृष्टि से 'खंजन नयन' 'मानस का हंस' की ऊँचाई नहीं प्राप्त कर सका है पर नागर जी की औपन्यासिक प्रतिभा की चमक इसमें भी दिखाई पड़ती है।

विखरे तिनके : 1983 में प्रकाशित हुआ। विषय की दृष्टि से नितान्त नवीन और राजनीतिक वातावरण की समग्रता को प्रस्तुत करने वाला नागर जी का उपन्यास है–'विखरे तिनके'। आकार की दृष्टि से अत्यंत लघु होने के कारण इसे 'लघु उपन्यास' की श्रेणी में माना गया है। इस उपन्यास के विषय की परिधि बहुत विस्तृत है। इसमें आज की भ्रष्ट राजनीति एवं घोस खोरी तथा युवा वर्ग की मानसिकता का चित्रण है।

अग्नि गर्भा : 1983 में प्रकाशित नागरजी के इस उपन्यास का काल लगभग 1805–1905 की अविधि का इतिहास है। इसमें एक खत्री परिवार की तीन पीढ़ियों की कथा है। इसके साथ ही तत्कालीन सामाजिक चेतना के विकास में योगदान करने वाली प्रगतिशील एवं प्रतिगामी शक्तियों के द्वन्द्व को अनेक आनुषंगिक कथाओं द्वारा चित्रित किया गया है।

पीढ़ियाँ : 1990 में प्रकाशित, नागरजी के इस उपन्यास में 'करवट' के इसी इतिहास गाथा का अगला चरण प्रस्तुत किया गया है। 1905–1942 की अवधि की राजनीतिक जागृति और स्वाधीनता आन्दोलन का चित्रण किया गया है। कुल मिलाकर 'करवट' और 'पीढ़ियाँ' 'बूँद और समुद्र' 'अमृत और विष' नागर जी के उपन्यास साहित्य के विकसित वस्तु एवं शिल्प और ऐसे औपन्यासिक विजन की विराटता के बोधक है जो हिन्दी उपन्यास में इसके पहले इतने प्रभाव शाली रूप में सामने नहीं आया था।

संकेत सन्दर्भ –

1. हिन्दी उपन्यास–एक अन्तर्यात्रा–राम दरश मिश्र। पृष्ठ–24
2. हिन्दी उपन्यास का इतिहास–प्रो0 गोपाल राय। पृष्ठ–70
3. " " " " " " " पृष्ठ–67
4. " " " " " " " पृष्ठ–76–77
5. " " " " " " " पृष्ठ–141
6. " " " " " " " पृष्ठ–142
7. " " " " " " " पृष्ठ–142
8. " " " " " " " पृष्ठ–147
9. हिन्दी उपन्यास–एक अन्तर्यात्रा–प्रो0 राम दरश मिश्र। पृष्ठ–72
10. हिन्दी उपन्यास का इतिहास–प्रो0 गोपाल राय। पृष्ठ–152
11. " " " " " " " पृष्ठ–161
12. " " " " " " " पृष्ठ–163
13. " " " " " " " पृष्ठ–179
14. " " " " " " " पृष्ठ–194–95

अध्याय – तीन

(क) अमृतलाल नागर की जीवन दृष्टि।

(ख) अमृतलाल नागर का साहित्य–दर्शन।

(ग) अमृतलाल नागर के वस्तु एवं शिल्पगत विचार।

निष्कर्ष।

नागरजी की जीवन दृष्टि

साहित्कार जब स्वानुभूतिक प्रेरणा से जगत में स्वभुक्त जीवन के अनेकानेक विचारों को भाषा के माध्यम से अपनी रचनाओं में विविध माध्यमों से व्यक्त करता है, यही उसकी जीवन–दृष्टि कहलाती है। अथवा "जीवन को देखने, परखने और अनुभूत करने की एक विशिष्ट चेतना जीवन–दृष्टि कहलाती है।"[1] नागरजी के समस्त उपन्यास साहित्य में उनकी जीवन–दृष्टि, मानव संस्कार, सामाजिक परिवेश, सम्पर्क और अनुभवों की पृष्ठ भूमि से जुड़कर बनी है और इसी आधार पर उन्होंने प्रत्येक वस्तु को यथार्थ रूप में देखने की चेष्टा की है उनका यही यथार्थ वादी चित्रण अतीत और वर्तमान के समन्वय के साथ भावी सदुद्देश्यों के प्रति संकेत देता है। वर्तमान की समस्त ज्वलन्त समस्याओं का चित्रण नागर जी की सूक्ष्म दृष्टि द्वारा प्रस्तुत किया गया है और उनका समाधान भी।

हिन्दी के रचनाकारों ने प्रारम्भिक काल के आर्दशवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप यथार्थवादी चित्रण को अपनाया और उनका यह यथार्थवाद उनके दृष्टिकोणों के अनुसार मनोवैज्ञानिक, प्रगतिवादी, प्रकृतिवादी और समाजवादी यथार्थवाद के रूप में प्रकट हुआ। नागर जी ने यथार्थ की अनावश्यक विकृतियों को छाँट–बाँट कर देश, परिवेश के अनुकूल इसका प्रयोग किया है। अन्य विचार धाराओं का सामान्य प्रभाव होते हुए भी नागरजी में 'लेखकीय संयम' है। वे किसी प्रवाह में बंधे नहीं, उनका जीवन और लेखन एकाकार हो गया है। नागर जी के यथार्थवाद को पूर्ण आदर्शात्मक न पाते हुए भी देश की सांस्कृतिक परंपराओं से जुड़ा हुआ पाया जाता है। "वस्तुतः नागरजी ने एक ओर जीवन और साहित्य की मान्यताओं को प्रेमचन्द के उदात्त स्वर दिए है एवं दूसरी और उनके युग से आगे चलकर स्वतंत्र भारत की स्वस्थ मान्यताओं से पोषित किया है।"[2] नागरजी की जीवन–दृष्टि को निम्नांकित शीर्षकों के अर्न्तगत विवेचित किया जा सकता है।

1. **मानवतावाद और जीवन के प्रति आस्था–** नागरजी मानवीय चेतना के कथाकार हैं। उनकी दृष्टि अपने सम्पूर्ण साहित्य सृजन में मानवता की पीड़ा और उसके निवारण पर केन्द्रित रही है, वे सामाजिक विकास को मानवीय चेतना के विकास पर आधारित मानते है– "जब तक समाज में एक सही मानवीय चेतना नहीं जाग्रत होगी तब तक उसका विकास सम्भव नहीं। यह मानवीय चेतना ही समस्त लोक को अपने प्रकाश से आलोकित कर अंधकार को दूर कर सकती हैं। हमें अपना आत्मविश्वास नहीं खोना चाहिए।"[3] वस्तुतः नागर जी के उपन्यासों में जीवन के अनेकानेक पहलुओं में मूल रूप से मानव मात्र को सुखी और प्रसन्न देखना ही अभीष्ट है।

नागरजी के मानवतावादी चिन्तन की आधार पीठिका भारतीय आध्यात्मिकता के संस्कारों से युक्त गांधी वादी दर्शन और वैज्ञानिक चिन्तन के सामंजस्य से निर्मित हुई है। यही कारण है कि वे विज्ञान की उपलब्धियों को मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में देखते है। "नागर जी

समाजवादी होते हुए भी गाँधीवादी है'' और साम्यवादी होते हुए भी आहिसंक। इनमें खरी वर्ग चेतना है किन्तु इस वर्ग चेतना को उन्होंने व्यापक मानवतावाद में घुला मिला दिया है''[4] नागर जी की प्रत्येक रचना सामयिक वातावरण से सत्–असत् का मूल्यांकन करती हुई मानवतावाद का अखण्ड संदेश प्रसारित करती है। 'बूंद और समुद्र' के बाबा राम जी दास 'अमृत और विष' के अरविन्द शंकर 'शतरंज के मोहरे' के दिग्विजय ब्रह्मचारी 'एकदा नैभिषारण्ये' के 'सोमाहुति भार्गव', 'मानस का हंस' के गोस्वामी तुलसीदास और 'खंजन नयन' के सूरदास आदि पात्र लोक और समाज हित के लिए संघर्ष करते हुए एक आदर्श प्रस्तुत करते है। मानव–मानव के प्रति प्रेम सम्पूर्ण सृष्टि को अपनी विशलता में आत्मसात कर लेता है, 'परजनहिताय, परजन सुखाय' की भावना के साथ प्रेम से ओत–प्रोत मनुष्य मे ही आत्मविश्वास और आस्था का स्वर फूटता है। अहिंसा और प्रेम की भाँति सत्यनिष्ठा भी एक उदात्त मानवीय भाव है। सत्य के आग्रह से मानवता और लोक का कल्याण होता है। 'एकदा नैभिषारण्ये' की मूल भावना यही है। 'बूंद और समुद्र' में मानवता को दुःख, दैन्य और पीड़ा से मुक्त कराने के लिए बाबा राम जी दास जैसे पात्रों का सृजन किया गया है। 'मानस का हंस' के तुलसी जन–जन में सेवा, प्रेम, सहिष्णुता की भावना जाग्रत करते हुए राम राज्य की स्थपना के लिए संकल्प बद्ध हैं।

विज्ञान की उपलब्धियों को मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में देखना नागरजी की जीवन–दृष्टि में समाहित है। 'बूंद और समुद्र' में बाबा राम जी के कथन से यही सिद्ध होता है।

नागरजी के उपन्यासों में **आस्था और जिजीविषा** 'अमृत और समुद्र'के रूप में दृष्टि गोचर होते हैं, नागर जी आस्था के सर्जक और जिजीविषा के वितरक हैं। नागर जी के प्रमुख उपन्यासों 'बूंद और समुद्र' 'अमृत और विष', 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' सभी में अस्था और जिजीविषा पात्रों की सृष्टि में देखी जा सकती है। 'बूंद और समुद्र' की ताई, वन कन्या, शीला,महिपाल सभी में आस्था विकसित होकर जिजीविषा के रूप में परिलक्षित होती है। 'अमृत और विष' का अरविन्द शंकर अनेक द्वन्द्वों और समस्याओं से ग्रस्त होकर आस्था और जिजीविषा के बल पर ही गतिशील बना है। उसके न्याय, मानवता तथा प्रेम जैसे गुंण उसे निराशाओं के प्रतिकूल भी आशावान और ईमानदार बनाते है। अरविन्द शंकर के रूप में नागर जी स्वयं आस्थावादी और जिजीविषावादी होते गये हैं। ''असल में अरविन्द शंकर की आस्था नागर की ही आस्था है। अरविन्द शंकर का व्यक्तित्व एक संघर्षी व्यक्ति का व्यक्तित्व है.....जीवनेच्छा की यह भूमि नागर के व्यक्तित्व का रूपान्तरण है।''[5]

नागरजी अत्यधिक आस्था युक्त जीवन–दृष्टि के समर्थक है। वह अतीत भारत के प्रत्येक ऋषि और महापुरुषों के अस्तित्व को श्रद्धा युक्त होकर देखते हैं– ''उपनिषदकार, ऋषि गण, महावीर, गौतम बुद्ध आदि महानुभाव इस भारत खण्ड में व्याप्त एक ही वैचारिक आन्दोलन की पृष्ठ भूमि के विभिन्न प्रकाश रूपों में उपजे थे। सभी एक–दूसरे को सुसंस्कृत बना रहे थे। उनकी

धर्म दृष्टियाँ अलग थी तो क्या हुआ ? उनका समाज एक ही था। अतएव भारत वर्ष के आर्य समाज को इन सभी ऋषियों और आचार्यों ने सुसंस्कार दिये हैं। सभी श्रद्धेय हैं, प्रणम्य हैं।"[6]

मनुष्य को आस्थावान बनाना उनका मुख्य उद्देश्य है– "भेद रहते हुए भी अभेद भाव को भजता है। उसकी आस्था दोहरी कसौटी पर चढ़कर खरी उतरती है और द्वन्द्व मिट जाता है।"[7] राजननीतिज्ञ भेदों को बढ़ाकर अपनी सिद्धि प्राप्त करता है जबकि सांस्कृतिक आधेय अभेदों को ही सर्वोपरि समझकर तद्वत संस्कार देकर मानव–मानव को आस्थावान बनाता है।

नागरजी की दृष्टि में **विभिन्न पूजा पद्धतियाँ** राष्ट्रीय हैं और किसी भी धर्म का अनुयायी बनकर केवल अपने ही प्रभु को प्रणाम करें। 'सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति', राम, विष्णु, शिव, सूर्य, महावीर और बुद्ध सभी एक है। भारत के महान राष्ट्रीय जीवन के लिए नागर जी ऐसा ही समन्वय आवश्यक समझते हैं क्योंकि सभी सम्प्रदाय हिन्दू जीवन से ही चेतना और रस लेकर आगे बढ़ते हैं।

नागरजी आस्था और विश्वास की संजीवनी लेकर मानव के अभ्युत्थान का स्वप्न संजोने वाले साहित्यकार हैं। उनके चिन्तन जगत् का मानव विभिन्न औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से जीवन के इस सत्य को प्रमाणित करता रहता है। नागरजी 'हेमिग्वे' के विचार दर्शन से प्रभावित हैं। उनके पात्र भी वहाँ के समुद्र और बूढ़े मछुवारे के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। "मनुष्य संघर्ष से अलग जिन्दा नहीं रह सकता और संघर्षशील मनुष्य के लिए पराजय निरर्थक शब्द है।"[8] "श्रद्धा और विश्वास ऐसी संजीवनी बूटी है कि जो एक बार घोलकर पी लेता है वह चाहने पर मृत्यु को भी पीछे ढ़केल देता है।"[9] 'महाकाल' का नायक पांचू गोपाल संघर्षों से जूझता हुआ असह्य दुःख के कारण आस्था विहीन होकर पलायन तो कर जाता है किन्तु जंगल में मृत स्त्री के वक्षस्थल पर रुदन करते हुए शिशु को देखकर उसका आत्म विश्वास पुनः लौट आता है।

'शतरंज के मोहरे' में वैभव सम्पन्न शाही महल में जीने वाला बादशाह गाजीउद्दीन हैदर भी कर्म के प्रति आस्थावान है। 'सात घूंघट वाला मुखड़ा' की जुआना बेगम को राजनीति और प्रेम में असफल होने के पश्चात् भी पुनः आस्था की एक किरण दिखाई देने लगती है– "परिस्थितियों और भावनाओं के घूंघट दर घूंघट उठते–उठते जुआना के सम्मुख यह सत्य स्पष्ट हो गया कि मनुष्य की इच्छा केवल एक ही होती है, उसे दोहरे, तेहरे अनेक रूप देने की प्रक्रिया गलत नहीं, लेकिन अनेकता की एक रूपता अनिवार्य शर्त है। प्रेम विलास और राजनीतिक महत्वाकांक्षा दो अलग–अलग इच्छाऐं हैं, इन्हें एक में बांधने का प्रयत्न निष्फल होना चाहिए था। जुआना अब एक की होकर रहेगी,एक ही से लव लगायेगी।"[10]

नागरजी का जीवन दृष्टि सम्बन्धी स्पष्ट संदेश है–"मनुष्य का आत्मविश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरों को सुख–दुख में अपना सुख–दुख मानना चाहिए।"[11] तुलसी को अध्यात्म में अटल आस्था है– "राम सिद्ध मंत्र हैं, बन्धु–मुझे अपने स्वर्गवासी गुरु बाबा की बात ही राजमार्ग जैसे सरल और सुखद लगती है, तुम

जानते हो, हनुमान जी बचपन से ही मेरी बांह गहे हुए है। नागर जी तुलसी की आस्था में अपने साहित्य का सत्य प्रकट करते है "सत्य, आस्था और लगन जीवन सिद्धि के मूल हैं।"[12] वस्तुतः अमृतलाल नागर का "आस्था फलक मानवतावादी सरणियों से होता हुआ वैश्विक भूमिकाओं का स्पर्श कर सका है।"[13].

नागरजी पलायनवाद में विश्वास नहीं करते जीवन के प्रति कर्तव्य और उसको सार्थक बनाना यही जीवन की आस्था है उनका विश्वास है कि ज्ञान की विनाशकारी शक्ति से भी मानवता का विनाश नहीं हो सकता। "नागरजी निषेधवादी लेखक नहीं है। समूचे अमृत और विष के साथ वे जीवन को स्वीकार करते है और यह स्वीकृति उनके चिन्तन की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। वे कर्म और संघर्ष के द्वारा सेवा, त्याग और प्रेम का आधार लेकर जीवन के समूचे विष को अमृत में बदल देने के लिये कृत संकल्प हैं और कथाकार के नाते उनका यही संकेत है।"[14]

2. **व्यक्ति और समाज–** नागरजी की दृष्टि में व्यक्ति और समाज एक–दूसरे से सम्पृक्त हैं। वे व्यक्ति का नहीं समष्टि का पोषण करते हैं। व्यक्ति की एकांगी महत्ता की अपेक्षा समाज की सम्पूर्णता को प्रश्रय देते हैं। व्यक्ति का समाज में विविध भूमिकाओं के निर्वहन करने का दायित्व होता है क्योंकि उसके हित और अहित के साथ समस्त समाज का हित–अहित जुड़ा है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति और समाज का संबंध ठीक उसी प्रकार है जैसे बूंद और समुद्र का 'अमृत और विष' में नागर जी की यही जीवन दृष्टि बीज रूप में अंकुरित होकर पल्लवित और पुष्पित हुई है – "किन्तु व्यक्ति की स्वतन्त्र विचार धारा को नकारने वाला, बन्धनों और परम्पराओं से जकड़ा समाज में रहकर सारी नैतिकता के लबादे ओढ़कर बेचारा व्यक्ति कितना अकेला, कितना शून्य, कितना निरर्थक है। या तो वह समाज को स्वीकारे अथवा समाज उसका अस्तित्व ही नकार देगा। ये क्या खूब समाजवाद है कि जिसमें समाज तो आजाद है पर उसका व्यक्ति गुलाम, और जब व्यक्ति ही गुलाम है, निज अस्तित्व–हीन है तब समाज ही क्यों कर स्वतंत्र हुआ।"[15] 'बूंद और समुद्र' में महिपाल के माध्यम से नागरजी ने व्यक्ति और समाज के सामंजस्य की भावना प्रकट की है– "व्यक्ति–व्यक्ति अवश्य रहे, पर उसके व्यक्तिवादी चिन्तन में भी सामाजिक दृष्टिकोण का रहना अनिवार्य है। मैं अकेला भी हूँ पर बहुजन के साथ में भी हूँ। सुख–दुख, शान्ति–अशान्ति आदि व्यक्तिगत अनुभव हैं पर ये समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हैं। अतेव हमें यह मानना चाहिए कि समाज एक है, व्यक्ति तो अनेक हैं। सूर्य, चन्द्रमा, धरती यह सब एक–एक हैं, भले ही अनेक तत्वों से इनका निर्माण हुआ है।"[16] नागरजी के अन्य उपन्यास 'मानस का हंस' में भी व्यक्ति–व्यक्ति को राममय के आधार पर जोड़कर तुलसी लोक मंगल की कामना करते हैं– "मैं व्यक्ति के भीतर वाली सगुण–निर्गुण खण्डित आस्था को दशरथ नन्दन राम की भक्ति से जोड़कर फिर खड़ा कर देना चाहता हूँ। मैं अकेले नहीं, पूरे समाज के साथ राममय होना चाहता हूँ।"[17]

'एकदा नैमिषारण्ये' में भी व्यक्ति का नहीं लोक का हित सर्वोपरि माना गया है। लोक का हित मिथ्याचारों और कुमार्गों द्वारा नहीं अपनाया जाना चाहिए। सत्य उसका आधार होना चाहिए क्योंकि अन्तिम विजय सत्य की ही होती है।

नागरजी के उपन्यासों में गाँधीवाद और उसके व्यापक रूप सर्वोदय सिद्धान्तों का प्रभाव भी थोड़ा बहुत पड़ा है क्योंकि मानवीय विषमताओं को दूर कर समस्त समाज का विकास और महत्व ही सर्वोदय की मूल भावना है। व्यक्ति और समाज का समन्वय भी सर्वोदयी विचार धारा के ही अनुकूल है। 'बूंद और समुद्र' में बाबा राम जी की ही भाँति 'मानस का हंस' के तुलसी दास का सन्देश है– "आज के हारे थके, हर तरह से टूटे बुझे हुए जन–जीवन को इस आस्था से भर देना चाहता हूँ कि न्याय, धर्म, त्याग और शील आज भी इस जग में विद्यमान है।"[18]

3. **धर्म, राष्ट्रीय भावना एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण**– नागरजी राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सम्पन्न हैं वह इस हिन्दू राष्ट्र के लिए राष्ट्रीय पर्वोत्सवों आदि की व्यवस्था देकर समग्र देश को एक सांस्कृतिक श्रृंखला में बांध देना चाहते हैं। वह जन्माष्टमी को राष्ट्रीय पर्व घोषित करते हैं। नागर जी की जीवन दृष्टि में मत भिन्नता मानव जीवन के क्रमिक विकास में परमावश्यक है परन्तु यह वैचारिक भिन्नता व्यक्ति को पृथकत्व की ओर नहीं अपितु अभिन्नत्व और समाज के प्रति एकात्मकता के भाव जाग्रत करने वाली हो तभी समाज में समन्वयात्मक और समरसता पूर्ण जीवन व्यतीत हो सकता है। तपस्या और साधना जीवन में परमावश्यक है। संस्कार हीन मनुष्य पशुवत है, सामाजिक कल्याण और श्री सम्पन्नता के योगदान में ऐसे मनुष्य का महत्व नगण्य है।

नागरजी की धर्म भावना साम्प्रदायिकता से सर्वथा मुक्त है। उनके अनुसार धर्म को 'मानव धर्म' का नाम दिया जा सकता है। 'एकदा नैमिषारण्ये' में नारद के माध्यम से धर्म की व्याख्या प्रस्तुत की गयी– "यह शब्द धर्म धारणात्मक 'धृञ' धातु से 'मन्' प्रत्यय का योग करने से बनता है। इसका अर्थ है जो सबको धारण करे, जिस पर लोक स्थिति निर्भर हो।"[19] अन्यत्र यज्ञदत्त द्वारा भी धर्म को परिभाषित किया गया है– "सर्वभूत की हित चिन्ता और मैत्री ही शाश्वत धर्म है।"[20] नागर जी एक ऐसे धर्म की आवश्यकता समझते है– "जो राजा और प्रजा, धनी और निर्धन सबके लिए समान रूप से सुलभ हो, शक्ति सम्पन्न और मंगलकारी हो।"[21]

'मानस का हंस' में तुलसी का भी यही अभिमत दृष्टिगत होता है। विविध देवी–देवताओं के विग्रह को उनकी दृष्टि में इन प्रतीकों से उस परम चैतन्य का जागरण होता है जो मनुष्य के अन्तस की अनजानी गहराई में सुसुप्ता अवस्था में पड़ा रहता है। नागरजी का मत है जब धर्म का व्यापक आधार खण्डित हो जाता है तब उसमें वाह्याडम्बर प्रवेश कर लेते हैं। इसीलिए उनका ध्यान सनातन धर्म की ओर जाता है। 'बूंद और समुद्र' के कई पात्रों द्वारा इन वाह्याडम्बरों की चर्चा की गई है। 'एकदा नैमिषारण्ये' के एक पात्र तो यह कहते हैं कि धर्म का अर्थ है–"जिसके द्वारा धन की प्राप्ति हो।"[22]

'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुनियाँ धर्म को ऊँची जाति वालों का ढ़कोसला मानती है। नागर जी के अनुसार अन्धविश्वासों, रूढ़िवादी आस्थाओं का मूल कारण अशिक्षा है। अतः कहा जा सकता है कि सर्वभूत की हित चिन्ता और मैत्री भाव ही शाश्वत धर्म है।

नागरजी मानवता वाद और राष्ट्रीय एकता की भावना से भारत के सांस्कृतिक मानस को प्रदर्शित करना चाहते हैं। संस्कृति किसी देश की सत्–असत् की कसौटी और चरित्र निर्माण की आधार शिला होती है। नागरजी ने इंगित किया है कि भारतीय संस्कृति अनेकानेक देशी–विदेशी संस्कृतियों का मिश्रण है, उनकी दृष्टि में भारतीय संस्कृति विशाल है और वही एक मात्र संस्कृति है जो मनुष्य को चरित्रवान बनाती है। 'एकदा नैमिषारण्ये' में इस ओर संकेत किया गया है कि अति प्राचीनकाल में किसी एक ही परमतपोनिष्ठ ज्ञान गुरू चेतन मानव समूह में सारी पृथ्वी के मानवों को सभ्यता के संस्कार दिये थे।

नागरजी ने भारतीय एकता को ऐतिहासिक एवं पौराणिक परिप्रेक्ष्य में ही देखा है। नागर जी हिन्दू–मुस्लिम एकता के समर्थक हैं और जाति भेद के विरोधी हैं। उनका दृष्टिकोण है कि जब तक भारत में जाति भेद रहेगा, अनेकानेक प्रयत्न करने पर भी भारतीय समाज मानव समाज के रूप में प्रतिष्ठित न हो सकेगा वे अनेकता में एकता के दर्शन करने वाले व्यक्ति को ही श्रेष्ठ और श्रद्धेय मानते हैं। राष्ट्र जीवन की दृष्टि मिलने के आदि काल से लेकर आजतक इस राष्ट्र जीवन को संगठन और एकत्व की भावना की आवश्यकता रही है। व्यष्टि के रूप में अनादि काल से यह प्राचीन राष्ट्र अनेक विद्वान् और योद्धाओं की परम्परा से युक्त रहा है, परन्तु संगठन के अभाव में अनेक बार पराजित होकर राष्ट्र की लक्ष्मी ने दूसरों के चरणों का चुम्बन किया। अतः कलि काल में 'संध ही शक्ति है'।

नागरजी समन्वयात्मक दृष्टि रखते हैं। उनकी यह मेधा सुखद भविष्य की संरचना के लिये व्याकुल है। नागरजी की कल्पना का सांस्कृतिक भारत अखण्ड आर्यावर्त है। उत्सव, समारोह हमारे सांस्कृतिक जीवन के अभिन्न अंग है। नागरजी इन्हें जीवन के उत्साह एवं उमंग का प्रतीक मानते है। 'बूंद और समुद्र' में इन उत्सवों और समारोहों का तथा इनसे सम्बन्धित लोक गीतों का हृदय हारी चित्रण मिलता है। 'अमृत और विष' में हिन्दू वैवाहिक विधि विधानों का विशद् वर्णन है। वस्तुतः नागरजी ने प्राचीन भारतीय संस्कृति की स्मृति को ताजा किया है।

4. **कर्म और आनन्द–** नागरजी ने गीता के 'कर्मण्येवाधिकारस्तेः मा फलेषु कदाचन्' को आधार मानकर अद्ययुगीन मानव को आश्रय दिया है। कर्म ही ईश्वर है, कर्म सत्य है और कर्म ही मोक्ष है। 'बूंद और समुद्र' में बाबा राम जी के मुख से कर्म योग की व्यावहारिकता को स्पष्ट किया गया है। "लेखक की मूल चेतना एवं जीवन दृष्टि उसके सिद्धान्तों को वैज्ञानिकता प्रदान करती है। जीवन के 'सत्' के प्रति प्रबल आस्था कर्म को प्रेरित करती है और कर्म से ही जीवन गतिशील होता है।"[23] नागरजी की जीवन दृष्टि में कर्म योग में ही सच्चा आनन्द है। सांसरिक कारणों में लिप्त रहकर भी मनुष्य लोक कल्याण हेतु कर्मयोग का आश्रय ले सकता है। 'बूंद और

समुद्र' में सार्वजनिक सेवा का कार्य निष्काम कर्मयोग की ओर इंगित करता है। कर्म की प्रेरणा से जीवन की आशा खोजना ही नागरजी की जीवन दृष्टि है। 'मानस का हंस' में भी सतत् कर्मशीलता के आधार पर ही तुलसी ने 'राम' को प्राप्त किया। नागरजी की कर्म निष्ठा भारतीय दर्शन के आनन्द वाद को अपने में पूर्ण रूप से समाहित किये हुए है। 'अमृत और विष' में कर्म के मूल में श्रम की महत्ता लक्षित है। "भारतीय दार्शनिकों ने जिस आनन्द वाद को प्रतिष्ठा की है वह कहीं कर्म शून्य नहीं रहा है, यही कारण है कि कर्म शून्यता आनन्द का विघातक तत्व है। नागर ने जिस कर्म सूत्र को विज्ञापित किया है वह उन्हें आनन्द लोक तक ले गया है।"[24]

वस्तुतः नागरजी कर्म को ही सर्वोपरि मानते हैं। वे अरविन्द शंकर के स्वर में अन्धकार प्रकाशमय जीवन में न्याय के लिये कर्म करना ही गति मानते हैं।

5. **नारी संबंधी दृष्टिकोण–** नागरजी जैसे संवेदनशील व्यक्ति नारी के शोषण और विवशताओं को अपनी दृष्टि में न रखें, यह सम्भव नहीं था। उन्होंने अपने विभिन्न उपन्यासों में नारी जीवन के प्रति अपनी दृष्टि डाली है। 'महाकाल' की विवश नारी क्षुधा शान्ति हेतु मुट्ठी भर चावलों के लिए अपना शरीर बेंच देती है, परित्यक्ता ताई अभावों से ग्रस्त होने के कारण दैवी और आसुरीय गुणों का मिश्रण बन गई है। वन कन्या अद्ययुगीना, नवीना, स्वाभिमानिनी नारी है और अत्याचार की विरोधी है। 'बूंद और समुद्र' में तारा, डॉ0 शीला के मतानुसार जिसमें वन कन्या का मत भी सम्मिलित है, नारी का आर्थिक दृष्टि से पराश्रित होना ही उसके दुःखों का कारण हैं। वन कन्या के माध्यम से उनकी जीवन दृष्टि नारी को मोह भंग करने, घूंघट के पट खोलने, पुरुष के अत्याचारों के विरुद्ध संगठित होकर अपनी आवाज उठाने के लिये ललकारती हैं। हम यह आशा करते हैं कि जिस दिन स्त्री जाति अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का अन्त करने के लिए निश्चय पूर्वक खड़ी हो जायेगी, उसी दिन दुनिया से हर तरह के अत्याचार मिट जायेंगे।"[25] नारी और पुरुष के प्रेम सम्बन्ध पर नागर जी केवल स्वस्थ प्रेम का समर्थन करतेहैं। स्त्री–पुरुष को काम संबंधों की खुली छूट देने को सामाजिक चेतना का लोप करने की पहली सीढ़ी मानते हैं। स्त्री और पुरुष के नाते का अन्तिम रूप पति–पत्नी होना है। अन्तर्जातीय विवाह, बाल–विधवा विवाह, अन्तर्धर्मीय विवाह आदि समस्याएं भी उनकी दृष्टि से अछूती नहीं है। सामाजिक प्रगति के लिए वह अन्तर्जातीय विवाह को आवश्यक मानते हैं क्योंकि इससे जातिगत बन्धन शिथिल होगा और नवीन सामाजिक चेतना का विकास होगा। दहेज प्रथा की ओर भी नागर जी की दृष्टि गयी है और इसकी भर्त्सना की गई है।

6 **राजनीतिक दृष्टिकोण :**

नागरजी ने अपने उपन्यासों में देश की राजनीतिक स्थिति को चिन्त्य बताया है। देश की राजनीतिक पार्टियों के सिद्धान्त और व्यवहार में अविश्वसनीयता उत्पन्न हो गई है। उनके उपन्यासों का कोई भी पात्र इसलिए देश की वर्तमान राजनीति के पक्ष में नहीं बोलता।

अतः स्पष्ट है कि नागर जी देश में अनेक प्रकार की बुराइयों के मूल में राजनीतिक पार्टियों का ही हाथ मानते हैं। वे आजकी राजनीति को अत्यन्त घृणित मानते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में दुनिया की हर सम्भव बुराई का केन्द्र राजनीति ही है। नागरजी की दृष्टि में आधुनिक चुनाव प्रणाली नितांत अर्थहीन है। उसका उद्देश्य केवल जनता का वोट प्राप्त करने तक सीमित है। लोकतंत्र में मचे हुए अन्धेर, चमचागिरी, गुण्डागिरी आदि दूषित प्रवृत्तियां भी उनकी दृष्टि से नहीं बच पाई है। नागरजी कमयुनिज्म को अभारतीय मानते हैं और उनकी दृष्टि में इससे ईश्वर, धर्म, दर्शन, सामाजिक व्यवस्था आदि सबको खतरा है। कानून के विषय में उनकी दृष्टि बिल्कुल स्पष्ट है। वे कानून को चाक पर चढ़ी मिट्टी मानते हैं। पैसे वाला उसे जैसा रूप देना चाहेगा, दे देगा। अदालतों को सच के नाम पर झूठ से खेलने वाली टीम मानते हैं।

7. आर्थिक दृष्टिकोण–

नागरजी ऐसी आर्थिक व्यवस्था के विरोधी हैं जिसमें व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकताएं भी पूरी नीं हो सकती और इसके लिए वे पूंजीपतियों और शासक वर्ग को दोषी ठहराते हैं। नागर जी ने वर्तमान आर्थिक परिस्थिति के लिए नेतागणों को भी उत्तरदायी माना है। पूंजीवाद, समाजवाद सभी अवसरवाद के आधार पर टिके हुए हैं। पैसा ही अस्तित्व है। नागर जी रूस की अर्थव्यवस्था के प्रति आकृष्ट दिखाई देते हैं। नागरजी की दृष्टि में पैसे की दुनिया, धांधलीबाजी और भ्रष्टाचार का अन्त निश्चित है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि "नागरजी मध्यवर्गीय समाज जीवन को नगरीय सन्दर्भ में देखने वाले मानवतावादी जीवन दृष्टि के कथाकार हैं। अपनी पूर्वाग्रह मुक्तता के कारण जीवन के यथार्थ के प्रति उनकी पकड़ बहुत मजबूत है। आस्थावादिता ने उनकी रचनाओं में आशा और विश्वास का स्वर फूंका है। नारी जीवन की समस्याओं को विभिन्न कोणों से उठाकर उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि जिन्दगी के अत्यधिक संवेदनात्मक पहलू उन्हें कितनी गहराई से छूते हैं। वस्तुतः नागरजी देश और समाज की सीमाओं को लांघकर आदमी को विश्व मानवता के धरातल पर लाकर प्रतिष्ठित करने वाले विचारक एवं कलाकार हैं।"[26]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है– "नागरजी की समग्र जीवन दृष्टि समाज हित पर केन्द्रित है। उनका सम्पूर्ण चिन्तन कल्याणकारी और जीवन के लिए एक विशिष्ट मार्ग प्रस्तुत करता है।"[27]

नागरजी का साहित्य दर्शन :

"साहित्य वैयक्तिक अनुभूतियों, मानव समस्याओं और सीमाओं की अभिव्यक्ति है। उपन्यास साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अपनी व्यापक एवं विशाल परिधि के कारण जीवन के अधिक निकट है। उपन्यास मानव की विभिन्न भाव भूमियों के विभिन्न स्तरों का उद्घाटन और विश्लेषण करने में पूर्ण सक्षम है। उपन्यास अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक व्यापक एवं लचीला है। इसे कितना भी विस्तार दिया जा सकता है। इसमें कुछ भी समाहित किया जा सकता है।"[28]

''प्रत्येक युग में व्यक्ति का वैचारिक जगत् कुछ विचारधाराओं से प्रेरित रहता है। ये विचार दर्शन युग सत्य को परखने के मानदंड होते हैं। व्यक्ति युग, धर्म, स्वभाव तथा रुचि के अनुसार विभिन्न विचार दर्शनों में से किसी एक को स्वीकार कर सकता है क्योंकि इसके अभाव में युग धर्म की रक्षा भी संभव नहीं है। युग धर्म को आत्मसात करने वाला विचार दर्शन ही व्यक्ति की विचारधारा को नियंत्रित और प्रेरित करता है। युग समाज तथा व्यक्ति के पारस्परिक संघर्ष किसी विचारधारा को जन्म दे सकते हैं। इनमें से प्रत्येक का मानसिक जगत् है जो संघर्ष से गतिशील रहता है।''[29]

आज इन संघर्षों के परिणामस्वरूप जन्म लेने वाले जीवन दर्शनों में मानवतावादी जीवन दर्शन युग सापेक्ष है और समाजवादी जीवन दर्शन समाज सापेक्ष है। व्यक्तिवादी जीवन दर्शन व्यक्ति के संघर्षों का परिणाम है। आज का वैचारिक जगत मुख्यतः इन तीनों दर्शनों से प्रेरित है। नागरजी का साहित्य भी मुख्यतः निम्नांकित दर्शनों से समन्वित है।

मानवतावादी जीवन दर्शन

इस दर्शन की अन्तिम परिणति गांधीवादी जीवन दर्शन में है। सत्य अहिंसा तथा सत्यागृह से व्यक्ति का हृदय परिवर्तन हो जाता है। यह इसका मूलभूत आधार है। इस युग में प्रायः सभी लेखकों ने इस दर्शन की असफलता घोषित कर दी है। मानवतावादी विचार दर्शन गांधीवादी विचार दर्शन का ही एक रूप है किन्तु आज गांधी दर्शन के स्थान पर इसको अधिक व्यापक रूप मिला है।

समाजवादी जीवन दर्शन

मार्क्सवाद नवीन समाज व्यवस्था का प्रतीक है। यह मात्र बौद्धिक दर्शन नहीं है। यह अपने क्रियात्मक गुणों के कारण महत्वपूर्ण है। वस्तुतः यह वर्ग भेद मिटाकर सम्पूर्ण समाज की स्थापना करना चाहता है। नागरजी ने प्रायः अपने सभी मुख्य उपन्यासों में समाज और राष्ट्र को इसी आधार पर एक नया रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। 'एकदा नैमिषारण्ये' में विशाल भारत राष्ट्र जो अनेकताओं और विचित्रतओं से युक्त है और इन्हीं में परस्पर अविरोधी और विरोधी विचार भी हुए। इन सभी परस्पर विरोध संघातों की प्रबल और विराट वाहिनी का एकीकरण और समन्वय करना चाहता है। इस उपन्यास के महन्त और भारत चन्द्र तथा नारद आदि का चित्रण, कल्पना जहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से विश्वसनीय है वहाँ ही कल्पनाओं की वैशाखी के सहारे जो सामाजिक भारत के लिए अत्यावश्यक है, इस विशिष्ट विचार को देने का महान प्रयत्न करते हैं।

अखिल मानव समाज के समन्वयात्मक विकास के लिए आवश्यक है कि सामाजिक प्राणी एक–दूसरे की सेवाकर जीवन को मंगलमय् बनाएँ। 'बूंद और समुद्र' में बाबा रामजी सेवा के ज्वलन्त प्रतीक हैं। वे पागलों की सेवा कर समग्र मानवता के लिए वरदान हैं। उनके अनुसार–

"इनकी (पागलों की) सेवा ही मेरा जोग है।"[30] वे इस सेवा को निष्काम सेवा मानते हैं और "हमें अपनी निष्काम सेवा में ही परम सुख मिल रहा है।[31]"

यह कहकर सेवा को निष्काम कर्म योग की दार्शनिकता प्रदान की गयी है। इसमें से जैसे योग कठिन है वैसे ही निष्काम सेवा, क्योंकि इसकी भी साधना करनी पड़ती है।

'सुहाग के नूपुर' में इसी सेवा धर्म को अपनाते हुए कन्नगी आजीवन अपने पति और संबंधियों की सेवा कर जीवन यापन करती है। 'अमृत और विष' का नायक रमेश सेवा को ही अपने जीवन का ध्येय बनाता है, इसी प्रकार भव बन्धनों और माया मोह से दूर रहने वाले युग–चेता कवि और सन्यासी 'मानस का हंस' तुलसीदास भी महामारी के समय जन–जन की सेवा का शंख फूँकते है; और स्वयं बाबा विश्वनाथ की नगरी के मनुष्यों की सेवा में रत रहकर स्वयं रूग्ण हो जाते हैं।

नागरजी मूलतः समन्वय वादी उपन्यासकार हैं और उनका यही साहित्य दर्शन प्रायः सभी उपन्यासों में मुखर हुआ है।

वस्तु एवं शिल्पगत विचार

उपन्यास मानव जीवन का चित्र ही नहीं समाज का प्रतिबिंब भी है। मानव जीवन सतत् विकासशील है। युग, परिस्थितियाँ परिवर्तन शील हैं। उपन्यास जीवन और युग के साथ चलता हुआ विकास शील है। जीवन युग परिस्थितियों और समाज से प्रभावित होता है। समय की विकृतियों ने जीवन को विकृत किया है। आज व्यक्ति के व्यक्तित्व में अनेक व्यक्तित्व दबे पड़े हैं जो समय–समय पर उभरते हैं। आज व्यक्ति का संघर्ष समाज में ही नहीं स्वयं अपने से भी हैं। व्यक्तित्व के विभिन्न रूप परस्पर टकराते हैं संघर्ष को जन्म देते हैं। व्यक्ति संघर्ष में टूटता है, टूट कर जुड़ने का प्रयास करता है। व्यक्ति निःसंदेह एक इकाई है और वह अपने अस्तित्व में सम्पूर्ण भी है।

नागरजी ने 'अमृत और विष' में अरविन्द शंकर के माध्यम से अपने वस्तु और शिल्प संबंधी विचार प्रस्तुत किये हैं। शिल्प विधि कृति की अभिव्यक्ति एवं रूप रचना की प्रक्रिया है। इसमें रचना में प्रयुक्त विभिन्न पद्धतियाँ आतीं हैं।

वस्तु, जैसाकि पिछले अध्यायों में कहा जा चुका है। इसे कथ्य या कथावस्तु अथवा प्लाट भी कहते हैं। वस्तु एवं शिल्प का अन्योन्याश्रय संबंध है। नई 'वस्तु' नये शिल्प की माँग करते हैं, कथानक के शिल्प रूप के अन्तर्गत होने वाले प्रयोग इसी का परिणाम हैं। कथानक के शिल्प रूप में होने वाले प्रयोगों को विभिन्न स्थितियों में देखा जाता है। नागरजी ने नवीन विषयों का चयन किया है और इसीलिए उन्होंने नये–नये शिल्प रूपों का प्रयोग भी किया है। कथा कहने की पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं। वो अपने पात्रों के बारे में मौन रहते हैं अथवा किसी पात्र का निर्माण करके अपनी बात कह देते हैं। वस्तु विभिन्न खण्डों में विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत

लिखी गयी है। 'मानस का हंस' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। कथा कहने का उत्तर दायित्व स्वयं पात्रों पर छोड़ देता है। पात्र स्मृति अवलोकन प्रणाली, चेतना प्रवाह, डायरी शैली, पत्र शैली तथा उदाहरण शैली द्वारा अपने मन की अभिव्यक्ति करता चलता है। उदाहरण के लिए। (बूँद और समुद्र) कथा एक सिल–सिले से नहीं कही जाती कथा एक पात्र नहीं अनेक पात्र कहते हैं (मानस का हंस) उपन्यास में कथा नहीं अनेक कथाए चलती है। (सेठ बाँकेमल) कथा में से कथा, उपन्यास में उपन्यास निकलते हैं। (अमृत और विष)।

नागरजी ने उपन्यासों का नाम प्रतीकात्मक रखा है क्योंकि उनका विचार है कि नाम प्रतीकात्मक होने के कारण उनमें पाठक की जिज्ञासा भी बनी रहती है। प्रतीकात्मक नाम कथा को एक अतिरिक्त सौन्दर्य देते हैं। भाषा में नवीन प्रयोग करना नागरजी आवश्यक समझते हैं, इससे पात्र का चरित्र भाषित होता है। उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग भी भाषा के सौन्दर्य को बढ़ाता है। अप्रस्तुत विधान नागरजी के अत्यधिक चिंतन और भावुकता की अवस्था का प्रतिफलन है। इसीलिए नागरजी को इस क्षेत्र में स्वयं भू कलाकार कहा गया है। सूक्तियों और लोकोक्तियों के प्रयोग से अर्थ गाम्भीर्य और व्यंजना में परिष्कार होता है। 'अमृत और विष' में नागरजी के वस्तु एवं शिल्प संबंधी विचार प्रस्फुटित हुए हैं–

"मैं सावधान होकर बैठ गया। स्फूर्ति ने सारी मानसिक गिरावट चमत्कारी रूप से सम्हाल ली। अपनी मेज के पास पहुँच गया। दराज से सादे कागज निकाले। बूढ़ा मछेरा अपने काम के कड़े–काटे–हार्पून सम्हाल रहा है। बूढ़ा लेखक अपने काम पर जम रहा है। हासिये के लिए कागज मोड़ते हुए मैं अपने आप को बूढ़े मछेरे के मनोबिम्ब से प्रेरित कर रहा हूँ। मछेरे के शून्य आकार में मेरी कल्पना अर्नेस्ट हेमिंग्वे की छवि प्रतिबिम्बित करके देख रही है। बस, शरीर जरा और दुबला बूढ़ा और झुर्रियोंदार। कल्पना में मछेरा अर्नेस्ट हेमिंग्वे मशीनी ताकत और तेजी से तूफानी लहरों को अपनी नाव से चीरता हुआ मेरे कलेजे की ओर बढ़ा चला आ रहा है।..... दौड़ने और उड़ने की तैयारी में गर्माते हुए हवाई जहाज के पंखों की गूँज.....बैण्ड बाजे, बैग पाइप, झय्यम–झय्यम शहनाई और भीड़ की सम्मिलित गूँज कान के भीतर पर्दे में सुरसुरी सी उठ रही है। अपार्थिवता पार्थिव होने लगी, अव्यक्त होने लगा, बारात का दृश्य लिखने जा रहा हूँ। उस दृश्य के साथ मेरे पास ही दुकान के पास साइकिलें लिए दो युवक पैसे वालों की शान और अपनी परेशानियों पर सुँझलाते हुए, बस, इन्ही' दो नव युवकों को लेकर उपन्यास का श्री गणेश करूगां ? इन दोनों में से एक को भंगड़ पाधा का बेटा बनाऊँगां– भंगड़ पाधा मेरे पड़ोसी। उनके नाम से ही हँसी आ गई–और प्लाट ? नहीं अभी प्लाट आदि की चिंता में न पड़ूँगा। मेरे जीवन भर अनुभव सिद्ध औपन्यासिक संस्कारों को इन नव युवक पात्रों के सहारे अपने आप युग कथा में प्रवेश पाने दो। ––फाउण्टेन पेन खुल रहा है, सहालग की सारी धूम धाम भरी चिंताएँ, देखे सुने और समझे हुए वातावरण से यो उभर रहीं हैं, जैसे मधुमख्खियाँ अपने छत्ते के इर्द–गिर्द भन–भना रही हों। सहालग के दिन है– मुझे उस वर्ष की सहालग का ध्यान आ रहा है जब मेरी अरूणा

का व्याह हुआ था। बारातियों और संबधियों से प्राप्त अपमानों के तीर स्मृति के तरकश से निकल और कार्य संकल्प के धनुष से छूटकर मेरी कल्पना में विंध गयें। स्फूर्ति ने शब्दों का रूप ले लिया–उपन्यास चल पड़ा।''[32]

वे आगे लिखते हैं कि चरित्र अनेक होते हैं– ''समाज में एक नमूने के अनेक चरित्र होते हैं। उनकी कुछ झलकियाँ एक साथ मिलाकर देखने से एक नया पात्र ही सामने आ खडा होता है। ये विजन ये ये संदर्शन, छाया, अपच्छाया, आभाष इन तमाम पढ़े लिखे शब्दों के अर्थ स्वरूप मेरा कल्पित दृश्य कभी–कभी इतना मांसल हो उठता है कि वस्तु जगत की चीज का आभास करा देता है।''[33]

नागरजी मानते हैं कि उनके उपन्यास का पात्र उनकी कल्पना की सृष्टि भले ही हैं किन्तु सृष्टि तो अपने नियम से ही चलती है। पात्र के अन्त रंग यथार्थ को देखना बिम्ब ध्वनियों या ध्वनि बिम्बों की अभिन्नता ये सभी बिना किसी प्रकार के श्रम के ही पूर्व श्रम के फलस्वरूप स्वतः घुल मिलकर एक हो जाते हैं–

''उपन्यास का पात्र मेरी कल्पना की सृष्टि भले ही हों पर मेरे बाप का गुलाम तो नहीं। सृष्टि अपने ही नियम से चलती है। रद्धू सिंह के मानस में प्रवेश करने के लिए जब तक उसके बाह्य जगत के अंतरंग यथार्थ को न देखूँगा तब तक उसके मन का यथार्थ मुझे क्यों कर मिल सकेगा ? अपना–अपना तरीका है। मैं यथार्थ की गति स्थूल से सूक्ष्म मानकर चलता हूँ। मेरी बिम्ब ध्वनियों या ध्वनि बिम्बों का अभिन्न अटूट तार अब तो अपनी बहिर्चेतना द्धारा बिना किसी प्रकार का श्रम कराये हुए ही मेरे पूर्वश्रम के अर्जित फलस्वरूप संस्कार बनकर बिम्बावलियों की स्वतंत्र गति के साथ घुल मिलकर एक हो गया है। यथार्थ के स्थूल से सूक्ष्म तत्वों पर आते हुए 'यथार्थ' शब्द किसी भी स्तर पर अपना मूल भूत अर्थ नहीं खोता और इस सूक्ष्म से फिर एक नए यथार्थ की स्थूल अनुभूति तक कभी न कभी होकर ही रहती है या नीचे, दायें या बायें, पर गति चक्र अवश्य है।''[34]

नागरजी पात्रों को विभिन्न तत्वों का आधार लेकर रची गयी सृष्टि मानते है किन्तु यह बना हुआ पात्र मौलिक तत्वों से भिन्न होता है। वे लिखते है कि ''सृष्टि विभिन्न तत्वों का आधार लेकर ही होती है लेकिन, उस सृष्टि का रूप अपने मौलिक तत्वों से एक दम भिन्न हो जाता है। बाप–बेटे आपस में कितना ही गुण, रूप, साम्य रखते हो लेकिन उनमें एक मौलिक दृष्टि भेद होता ही है। उसे बेटे की बाप के प्रति अवज्ञा नहीं माना जा सकता और आरोपण तो वह किसी भी तरह है ही नहीं।''[35]

विचार और कल्पनाओं का स्रोत क्या है इसका उत्तर न देते हुए वे कहते हैं– प्रेमचन्द के बारे में यह विदित है कि वे आम तौर पर अपने गाँव या शहर के समाज से अधिक घुलते–मिलते या रीति व्यवहार नहीं करते थे फिर भी उनकी तमाम कहानियाँ और उपन्यास, चरित्र, घटनाएँ अधिकतर इतने सजीव और यथार्थ लगते हैं, मानो उन्होंने मौके पर बैठ कर ही वह तमाम बयान

कलम बन्द किया हो। उनसे अगर पूँछा जाता आपके अमुक पात्र के पीछे यथार्थ जीवन का कौन सा चरित्र है ? तो शायद वे उसका सही–सही जवाब न दे पाते। यानि अपने प्रसंग में आते हुए इसका मतलब यह हुआ कि खुद मैं भी इस सवाल का जवाब नहीं दे सकता। ××× हर छोटे–बड़े लेखक के साथ में कमजोरी होती है कि वह यथार्थ जीवन के कुछ चरित्रों, घटनाओं और कुछ भावों से ऐसा बंध जाता है कि नये–नये रूपों में उनको बार–बार विभिन्न परिस्थितियों में पेश करने की बान बना लेता है। कलाकार एक मूल बिम्ब से पचासों और कभी–कभी सैकड़ों विभिन्न पात्र–पात्रियों का सृजन कर डालता है।[36]

संकेत सन्दर्भ –

1. अमृतलाल नागर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत, डॉ0 सुदेश बत्रा। पृष्ठ–254
2. ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–255
3. बूंद और समुद्र। पृष्ठ–595
4. प्रकाश चन्द्र मिश्र, नागर उपन्यास कला। पृष्ठ–237
5. डॉ0 सुदेश बत्रा, अमृत लाल नागर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–260
6. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–393
7. ,, ,, पृष्ठ–393
8. बूंद और समुद्र। पृष्ठ–676
9. मानस का हंस। पृष्ठ–376
10. सात घूंघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–115
11. बूंद और समुद्र। पृष्ठ–606
12. मानस का हंस। पृष्ठ–377
13. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, अमृत लाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–286
    तथा डॉ0 सुदेश बत्रा, अमृत लाल नागर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत। पृष्ठ–260
14. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, अमृत लाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–287
15. अमृत और विष। पृष्ठ–609
16. बूंद और समुद्र। पृष्ठ–603
17. मानस का हंस। पृष्ठ–373
18. ,, ,, पृष्ठ–361
19. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–223
20. ,, ,, पृष्ठ–222
21. ,, ,, पृष्ठ–446
22. ,, ,, पृष्ठ–223
23. डॉ0 सुदेश बत्रा, अमृतलाल नागर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–263
24. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–263–264
25. बूंद और समुद्र। पृष्ठ–93
26. डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी–अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–312
27. डॉ0 दामोदर वाशिष्ठ–उपन्यासकार अमृतलाल नागर। पृष्ठ–148
28. हेनरी जेम्स– The futuve of The Novel. Peg–33
29. हिन्दी उपन्यासः परम्परा और प्रयोग डॉ० सुभद्रा। पृष्ठ–71

30.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–429
31.	,, ,,	पृष्ठ–478
32.	अमृत और विष।	पृष्ठ–63
33.	,, ,,	पृष्ठ–113–114
34.	,, ,,	पृष्ठ–114
35.	,, ,,	पृष्ठ–156
36.	,, ,,	पृष्ठ–157

अध्याय – चार

वस्तु एवं शिल्प का सैद्धान्तिक अनुशीलन।

1. (क) उपन्यास–वस्तु एवं शिल्पगत धारणा।

   (ख) पाश्चात्य चिंतन।

   (ग) भारतीय चिंतन।

   (घ) वस्तु एवं शिल्प संबन्धी समीक्षा।

2. उपन्यासों की रचना प्रक्रिया और वस्तु शिल्प की कलात्मक स्थिति।

3. अमृतलाल नागर के उपन्यासों की रचना प्रक्रिया, वस्तु–शिल्पगत प्रयोग।

   (क) अमृतलाल नागर की उपन्यास सृष्टि (संक्षिप्त परिचय)

वस्तु एवं शिल्प का सैद्धान्तिक अनुशीलन

उपन्यास – वस्तु एवं शिल्पगत धारणा

उपन्यास के विवेचन में उपन्यास, को प्रविधि या शिल्प (टेकनीक) वस्तु (कथावस्तु) या प्लाट, चरित्र चित्रण, संवाद, शैली, उद्देश्य आदि शब्द औपन्यासिक अवधारणाएँ हैं जिनके निश्चित अर्थों के अभाव में उपन्यास का व्यवस्थित, संतुलित और स्पष्ट विवेचन संभव नहीं है। साहित्यिक अनुसंधान कर्ता के लिए आवश्यक है कि वह मूलभूत पारिभाषिक शब्दों को यथासंभव परिसीमित करलें। इसी दृष्टिकोण से 'उपन्यास' की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है।

कुछ विचारकों की दृष्टि में उपन्यास भारतीय कहानी परम्परा के साथ अविच्छिन्न रूप से संबद्ध है। उनके मतानुसार पाश्चात्य उपन्यास परम्परा भी संस्कृत कथा साहित्य (कादम्बरी, दशकुमार चरित) का ही विकसित रूप है। इस धारणा को किशोरी लाल गोस्वामी ने 'प्रणयिनी–परिणय' के उपोद्घात में व्यक्त किया है– ''जिस प्रकार साहित्य के प्रधान अंगों में नाटक का प्रचार सर्वप्रथम यहीं हुआ, उसी तरह उपन्यास की सृष्टि भी प्रथम यहाँ ही हुई थी, यह अत्युक्ति नहीं है, परन्तु किसी–किसी महाशय का यह कथन है कि उपन्यास पूर्व समय में यहाँ प्रचलित नहीं था वरन् अँग्रेजों की देखा देखी लोगों ने 'नोवेल' के स्थान में उपन्यास की कल्पना करली है, इत्यादि। परन्तु उन महात्माओं को प्रथम इसकी भीमांसा कर लेनी चाहिए, क्योंकि उपन्यास 'उप+नी उपसर्ग पूर्वक' आस धातु इन शब्दों से बना है तथा उप–(समीप) नी (ले जाना) आस (रखना) अर्थात् इसकी रचना उत्तरोत्तर आश्चर्य जनक एवं कुछ छिपी हुई कथा क्रमशः समाप्ति में प्रस्फुटित हो, और 'अमर'–कार भी 'उपन्यासस्तु वाड्. मुखम्' अर्थात् वाड्. मुखी वाचा, यह अर्थ, उपन्यास के तात्पर्य से ही घटता है, इत्यादि प्रमाणों से भी उपन्यास प्राचीन काल से भारत वर्ष में प्रचलित है और 'दशकुमार चरित' 'वासवदत्ता' 'श्री हर्षचरित' कादम्बरी आदि उपन्यास इसकी प्राचीनता में जाज्वल्यमान प्रमाण हैं।''[1] गोस्वामी जी की इस मौलिक सूझ का समर्थन डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी किया है– ''उपन्यास वस्तुतः ही 'नवल' अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है, फिर भी जिस मेधावी ने कथा, आख्यायिका आदि शब्दों को छोड़कर अँग्रेजी शब्द 'नावेल' का प्रति शब्द 'उपन्यास' माना था, उसकी सूझ की प्रसंशा किए बिना नहीं रहा जाता। जहाँ उसने इस–इस नये शब्द के प्रयोग से यह सूचित किया कि यह साहित्यांग पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं से भिन्न जाति का है, वहीं इसके शब्दार्थ के द्वारा (उप–निकट), (न्यास–रखना) यह भी सूचित किया कि इस विशेष साहित्यांग द्वारा ग्रन्थकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिनव मत, रखना चाहता है। इसलिए यद्यपि यह शब्द पुरानी परम्परा के अनुकूल नहीं पड़ता तथापि उसका प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ

विल्कुल बेमेल नहीं कहा जा सकता।"[2] हाँ उपन्यास का वर्तमान ढ़ाँचा अवश्य पाश्चात्य देशों की देन है। परन्तु यह धारणा भारतीय संस्कृति का व्यामोह मात्र प्रतीत होती है। स्वयं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ही अन्यत्र अपनी पूर्व मान्यता का खंडन किया है–"उपन्यास जातीय कथाकाव्य के नाम से अभिहित अवश्य किया जा सकता है पर साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वे उपन्यास नहीं हैं।"[3]

आधुनिक 'उपन्यास' को भारतीय कथा साहित्य की परम्परा से संबंद्ध स्वीकार करना सत्य की उपेक्षा होगी। श्री नलिन विलोचन शर्मा ने निर्भीकतापूर्वक कहा है–– "हिन्दी उपन्यास की स्थिति हिन्दी काव्य से सर्वथा भिन्न है। संस्कृत के प्राचीनतम काव्य से लेकर आधुनिकतम काव्य की परम्परा अविच्छिन्न है। किन्तु हिन्दी उपन्यास का वह पौधा जिसे अगर सीधे पश्चिम से नहीं लाया गया तो उसका बँगला कलम तो लिया ही गया था, न कि सुवन्धु, दण्डी और वाण की लुप्त परम्परा पुनरुज्जीवित की गई थी।"[4] डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय भी विशुद्ध रूप से उपन्यास को पाश्चात्य साहित्य की ही देन मानते हैं। "उपन्यास का संबंध संस्कृत की प्राचीन औपचारिक परम्परा और पौराणिक कथाओं से जोड़ना विडंबना मात्र है।"[5]

आधुनिक हिन्दी उपन्यास तो मुख्य रूप से प्रेमचन्द जी की देन है ही, जो पाश्चात्य उपन्यास साहित्य से कम प्रभावित न थे। अब यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि उपन्यास अँग्रेजी साहित्य की ही देन है अतः सर्वप्रथम पाश्चात्य उपन्यास की अवधारणा पर दृष्टि डालना उचित होगा।

पाश्चात्य चिन्तन : 'उपन्यास' मुख्य रूप से पाश्चात्य साहित्य की उपलब्धि है अतः पाश्चात्य विद्वानों ने विविध दृष्टिकोणों से परिभाषित करने की चेष्टा की है। उपन्यास के आकार, परिवर्तनशील स्वरूप, कलागत विशिष्टताओं, गद्यात्मकता, यथार्थात्मकता, कल्पनात्मकता आदि को लेकर परिभाषाएँ की गई हैं। अद्यावधि उपन्यास की सक्षम एवं संपूर्ण परिभाषा के अभाव में हम उन परिभाषाओं पर विचार करेंगे जो उपन्यास की आकारगत, सम्प्रेषण माध्यम, उद्देश्य, मनोरंजन साधन, जीवन चित्रण, विचार सम्प्रेषण और कलाभिव्यक्ति आदि विशेषताओं का उद्घाटन एवं प्रकाशन करती है।

1. **आकार–आधारित** : आकारिक मूल्यांकन स्थूल अथवा वाह्य– दोनों ही संभव हैं। स्थूल अथवा वाह्य दृष्टि से उपन्यास, विशाल आकार की रचना है। उपन्यासों में आकार वैविध्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। उपन्यास के आकारिक वैशिष्ट्य को प्राथमिकता देने वाले विचारकों में– बेवेस्टर, ई0एम0फार्स्टर एवेल–शेवेल, एस0डी0 नील, दि न्यू पिक्चर्स इन्साइक्लोपीडिया आदि प्रमुख हैं।

बेवेस्टर– "एक सुनिश्चित आकार की काल्पनिक गद्य कथा, जिसमें एक कथानक के अन्तर्गत वास्तविक जीवन की उद्भावना करने वाले चरित्रों एवं क्रिया कलापों का चित्रण किया जाता है।"[6]

ई0एम0फार्स्टर : "आकार 50,000 शब्दों से कम नहीं होना चाहिए। 50,000 शब्दों से अधिक की कोई गद्यात्मक गल्पकथा उपन्यास ही होगी।"[7]

ऐवेल–शेवेल : "वह एक निश्चित आकार का एक ऐसा आख्यान है जो गद्य में लिखा गया है।"[8]

एस0डी0नील : "गद्य में रचित किसी भी दीर्घ कथा को उपन्यास कहा जा सकता है।"[9]

शिप्ले : "उपन्यास वह कल्पनात्मक गद्य साहित्य रूप है जिसमें वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले चरित्रों एवं व्यापारों को कार्य कारण श्रृंखला बद्ध एक अपेक्षाकृत विस्तृत कथानक के द्वारा निरूपित किया जाता है।"[10]

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ अमेरिका – "उपन्यास बीसवीं शताब्दी में उत्पन्न कोई भी पुस्तक के आकार की काल्पनिक गद्य कथा है जिसमें चरित्रों एवं क्रियाकलापों को एक कथात्मक रूप में चित्रित किया जाता है और वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वास्तविक जीवन के व्यक्तियों और घटनाओं का चित्रण हो रहा है।[11]

2. **सम्प्रेषण–माध्यम आधारित** : उपन्यास में जिन चरित्रों, क्रिया कलापों विचारों और भावनाओं का अंकन होता है, उनका माध्यम गद्य ही होता है। गद्य को उपन्यास का सम्प्रेषण माध्यम स्वीकार करने वाले पाश्चात्य विद्वानों में आर्नेस्ट ए0ब्रेकर, इरा वालफर्ट, रिचार्ड वर्टन, राल्फ फाक्स, आर्नाल्ड केटिल और क्रास आदि प्रमुख हैं।

अर्नेस्ट ए0 बेकर : "उपन्यास का माध्यम गद्य है, पद्य नहीं।"[12]

ईरा वाल्फर्ट : "उपन्यास मानव जीवन एवं भावनाओं का गद्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया अनुवाद मात्र है।"[13]

रिचार्ड बर्टन : "मानव के समकालीन जीवन का गद्य में रचित अध्ययन है।"[14]

राल्फ फाक्स : उपन्यास मानव जीवन का गद्य है, यह केवल गद्यात्मक गल्प नही है। उपन्यास मानव जीवन और उसके विचारों की अभिव्यक्ति का गद्यात्मक प्रयास है।"[15]

आर्नाल्ड कैटिल : "उपन्यास अपने सीमित और पूर्ण रूप में यथार्थ जीवन की गद्य गाथा है।"[16]

क्रास : "सामान्य रूप से उपन्यास उस गद्य आख्यान को कहा जाता है जो यथार्थ जीवन का यथार्थवादी दृष्टि से अध्ययन करता है।"[17]

3. **उद्देश्य–आधारित** : समय–समय पर पाश्चात्य विद्वानों ने उपन्यास रचना के उद्देश्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। किसी ने मनोरंजन अथवा जीवन चित्रण पर बल दिया, किसी ने विचार सम्प्रेषण अथवा कलाभिव्यक्ति पर। यहाँ उपन्यास के उद्देश्य पर आधारित परिभाषाओं पर ही विचार किया जा रहा है।

(अ) मनोरंजन : उपन्यास मनोरंजन को लक्ष्य में रखकर लिखा जाता है। इस दृष्टिकोण को प्रमुखता देने वालों में **हेनरीफील्डिंग** प्रमुख हैं। उनके अनुसार "उपन्यास गद्य का आनन्द दायक महाकाव्य है।"[18] अर्थात् उपन्यास द्वारा पाठक को वही रस प्राप्त होता है जो महाकाव्य द्वारा।

ई0एम0 फार्स्टर उपन्यास को सर्वाधिक नम विधा स्वीकार करते हैं।[19] नम से उनका तात्पर्य संभवतः सरसता से ही है। आनंद रस में ही सन्निहित होता है।

(ब) जीवन चित्रण : मानव चित्रण ही उपन्यास का मुख्य लक्ष्य है। इससे रहित उपन्यास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। **राल्फ फाक्स** ने इस तथ्य को व्यक्त करते हुए कहा है– "उपन्यास मात्र काल्पनिक गद्य नहीं है, वह मानव जीवन का गद्य है। मानव की संपूर्णता को अभिव्यक्ति देने वाली प्रथम कला है।"[20] **ई0ए0बेकर** ने भी यही मत प्रकट किया है– "यह उपन्यास कहानी के रूप में जीवन का चित्र है।"[21] **अर्नाल्ड केटिल**– कहते हैं –"उपन्यास जीवित वस्तु है।"[22] **हेनरी जेम्स** कहते हैं–"उपन्यास की यदि हम व्यापक परिभाषा देना चाहे तो उपन्यास वैयक्तिक जीवन का प्रत्यक्ष प्रभाव है।"[23] अर्थात् जो जीवन में घटित होता है, वह उपन्यास का वर्ण्य विषय है किन्तु साथ ही जीवन की वे घटनाएँ परस्पर संबद्ध होती हैं और यही संबद्धता कथातत्व को जन्म देती हैं।

(स) कलाभिव्यक्ति : साहित्य की एक विद्या होने के कारण उपन्यास भी कलाभिव्यक्ति का माध्यम है। इस धारणा के समर्थकों में सर्वप्रथम नाम **वर्जीनिया–बुल्क** का लिया जाता है। उनकी दृष्टि में "उपन्यास में परम्परागत शिल्प में न तो कथानक होता है, न सुखदुख का चित्रण होता है, न प्रेम प्रसंग या अनर्थकारी घटनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है।"[24] वर्जीनिया बुल्फ ने उपन्यास को परम्परागत रूपों और शिल्प का विरोध कर नवीन शिल्प और विधियों को जन्म दिया है। उनके विचार से जब जीवन ही एक रूप नहीं है तब जीवन को चित्रित करने वाली विधा कैसे एक रूप हो सकती है। अर्थात् उपन्यास में कलात्मक विविधता होना परमावश्यक है।

पाश्चात्य विद्वानों की आकाराधारित, संप्रेषण माध्यमाधारित, उद्देश्याधारित विभिन्न अवधारणाओं के विवेचन करते समय यह देखने की चेष्टा की गई है कि कथावस्तु (वस्तु) को कहाँ तक स्थान दिया गया। वस्तुतः प्रत्यक्ष या प्रकारान्तर रूप में से प्रत्येक ने 'कथावस्तु' की उपस्थिति उपन्यास में अपरिहार्य रूप से स्वीकार की है। न्यूनाधिक रूप में मात्रा का अन्तर हो सकता है किन्तु एक भी धारणा ऐसी नहीं मिलती है जिसमें कथावस्तु की उपेक्षा की गई हो। हाँ वर्जीनिया बुल्फ ने अवश्य कथा हीनता का उल्लेख किया है किन्तु वह विरोध भी परम्परागत 'कथानक' का है, कथावस्तु– परिवर्तित रूप का नहीं।

भारतीय चिन्तन

उपन्यास का आदि स्वरूप : आधुनिकतम मानवीय उपलब्धियों का प्रत्येक सूत्र वेदों में खोजा जा सकता है। फिर कथा साहित्य की अविच्छिन्न परंपरा वेदों से असंबंधित कैसे हो सकती है ? ऋगुवेद के 'संवाद सूक्तों' में दो या अधिक पात्रों के कथोपकथन और इन्हीं स्तुति परक संवाद सूक्तों में अनेक आख्यान बीज रूप में विद्यमान हैं। ब्राह्मण और उपनिषदों में इन्हीं का अंकुरण है। विद्वानों की धारणा है कि आदिकवि बाल्मीकि और वेदव्यास ने भी राम और कृष्ण की

कथाओं को किसी वैदिक आख्यान से ही प्राप्त किया होगा। यह वैदिक परम्परा सहस्रमुखी होकर अनेकानेक पुराणों में प्रकट हुई जिनमें इतिहास और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य है।

(अ) प्रेमचन्द पूर्व : इसके पश्चात् जातक कथाओं की परम्परा परवर्ती संस्कृत साहित्य ने ग्रहण की। 'वृहत्कथा' 'सिंहासन द्वात्रिंसिका' 'वेताल पंचविशंतिका' आदि ग्रन्थों में इसी कोटि की कहानियाँ संग्रहीत हैं। 'पंचतंत्र' और हितोपदेश में उपदेशात्मक तथा 'वासवदत्ता' और 'दशकुमार चरित' आदि अलंकृत और रसात्मक कोटि की हैं। हिन्दी में भी राजस्थान के अनेक चारणों ने रासों ग्रन्थों का निर्माण किया जिनमें श्रृंगार, प्रेम, शौर्य युद्ध आदि के वर्णन भी यही परंपरा प्रदर्शित करते हैं। किन्तु उपन्यास का वास्तविक स्वरूप मुद्रण कला के साथ अस्तित्व में आया। परीक्षागुरु, नूतन ब्रह्मचारी, श्यामा स्वप्न, धूर्त रसिक लाल, निःसहाय हिन्दू, ठेठ हिन्दी का ठाठ' चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति, स्वर्गीय कुसुम, भानुवती, सौन्दर्योपासक आदि रचनाओं ने औपन्यासिक विधा को जन्म ही नहीं दिया, वरन् उपन्यास के विषय में अपनी धारणाएँ भी व्यक्त की हैं।

प्रारम्भिक उपन्यासों में शिक्षा, उपदेश, मनोरंजन, अलौकिकता, आदि विशेषताएँ प्राप्त होती है। **बालकृष्ण भट्ट** ने सुधारात्मक दृष्टि से 'किस्से' पर बल दिया है। किस्सा अर्थात् कथावस्तु को मुख्य तत्व स्वीकार किया है। वाह्य आकार को ध्यान में रखकर **पं0 अम्बिका दत्त व्यास** ने उपन्यास को तीन घंटे में पढ़ी जा सकने वाली कथा को, उपन्यासिका कहा है।[25] **गोपाल राम गहमरी** ने "उपन्यास को कोमल मधुर साहित्य"[26] की संज्ञा दी है। यहाँ मधुर से तात्पर्य है सरसता। सरसता की स्थिति सर्वाधिक मात्रा में कथा में संभव है। **किशोरी लाल गोस्वामी** ने उपन्यास को सर्वाधिक सशक्त साहित्य–विधा मानते हुए लिखा है– "उपन्यास में प्रेम की प्रबलता, प्रणय की उन्मत्ता, चाह की महत्ता, यौवन का पूर्ण विकास, लालसा का प्रबल प्रवाह, कामना का वेग, रस की तरंग, प्रीति की लहरी–सभी कुछ रहता है। इसीलिए कवियों ने साहित्य श्रेणी में उपन्यास को श्रेष्ठ गद्दी दी है।"[27] एक साथ इतने मनोभावों को व्यक्त करने की क्षमता उपन्यास में ही है। इसी अवधारणा को **बनवारी लाल त्रिवेदी** ने इस प्रकार व्यक्त किया है– "किसी घटना को ऐसे अंगों में विभक्त करके, जिनको अलग–अलग वर्णन करने में आश्चर्य, आनन्द और साहित्य के छहों रसों का यथा स्थान रस प्राप्त हो सके और उन भिन्न–भिन्न अंगों के वर्णन के अन्त में समस्त घटना सुश्रृंखल बन जाय और सारा वृतान्त एक साथ मालूम हो जावे, ऐसे गद्य के लेख को उपन्यास कहते हैं।"[28]

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास के विषय में प्रमुख कथाकारों की अवधारणाओं का जब हम अनुशीलन करते हैं तब यह निष्कर्ष निकलता है कि उपन्यास का अर्थ लक्ष्य और सिद्धान्त चाहे मनोरंजन रहा हो, या सुधार–शिक्षा या उपदेश, संपूर्ण एवं प्राप्ति का साधन कथानक ही रहा है। कथानक पर ही उपन्यास का अस्तित्व और सार्थकत्व निर्भर रहा है। कथानक के अभाव में उपन्यास की संरचना कल्पना मात्र ही थी।

(ब) प्रेमचन्द युग की अवधारणा :

प्रेमचन्द के आविर्भाव से हिन्दी उपन्यास जगत् में नये युग का सूत्रपात होता हैं। **प्रेमचन्द** ने युग प्रवर्तक के नाते उपन्यास को भलीभाँति समझ कर घोषित किया– "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।[29] प्रेमचन्द की दृष्टि में उपन्यास एक ऐसा साहित्यिक माध्यम है जिसके द्वारा मानव के चरित्र को उद्घाटित किया जाता है। मानव के गुण दोषों का विवेचन और उसका उचित मार्गदर्शन करना ही उपन्यास का कार्य है। इसी का समर्थन करते हुए **ब्रजरत्न दास** कहते हैं – उपन्यास मानव जीवन के छोटे या बड़े चित्र हैं और उनमें जीवन की ही व्याख्या की जाती है। उपन्यासों में जीवन की इन्हीं सब अवस्थाओं में से एक या अनेक का चित्रण होता है और उनमें से किसी एक की प्रमुखता होते हुए भी जीवन की साधारण बातों की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि चित्र को पूर्ण करने के लिए सभी की आवश्यकता होती है।"[30]
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– उपन्यास को अत्यंत सशक्त विधा मानते हैं– "समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न–भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न कर सकते हैं। किसी जनसमाज के बीच, काल की गति के अनुसार जो गूढ़ और चिन्त्य परिस्थितियाँ खड़ी होती रहती हैं, उनको गोचर रूप में सामने लाना और कभी–कभी विस्तार का मार्ग भी प्रशस्त करना उपन्यासों का कार्य है।"[31] **डॉ0 श्याम सुन्दर दास** ने उपन्यास में गद्य और कथा दो बातों पर विशेष ध्यान देते हुए लिखा है "उपन्यास की कोटि में साधारणतः कल्पना प्रसूत वह सारा कथा साहित्य आ जाता है। जो गद्य की रीति से व्यक्त किया गया हो।"[32]
पं0 सीताराम चतुर्वेदी ने उपन्यास को एक नवीन दृष्टि से देखने का प्रयास किया है–"उपन्यास ऐसी गद्य कथा है जिसमें विशेष कौशल से कौतूहल उत्पन्न करके कोई ऐस सत्य या कल्पित कथा कही जाती है जिससे विनोद होता हो, या किसी विषय या नीति का परिचय और प्रचार किया जाता हो।"[33]

इस प्रकार प्रेमचन्द और समकालीन उपन्यास कारों की दृष्टि में उपन्यास अलौकिक और काल्पनिक जगत से उतर कर मानव जीवन–जगत से संबंधित तो हो गया था किन्तु मनोरंजन, सुधार अथवा उपदेश आदि के उद्देश्य से मुक्तहो पाया था।

स. समकालीन युग की अवधारणा :

प्रेमचन्द युग के पश्चात् ही हिन्दी उपन्यास में नए युग का जन्म होता है। इस युग के प्रारंभिक एवं प्रमुख हस्ताक्षर–**जैनेन्द्र जी** उपन्यास को विकसित रूप ही मानते हैं और शिल्प आदि की चर्चा से कतराते हैं। किन्तु अपने उपन्यास 'परख' में उन्होने उपन्यास संबंधी अपनी धारणा व्यक्त की है "उपन्यास में जैसी दुनिया है, वैसी चित्रित नहीं होती। दुनियाँ का कुछ उठा हुआ, उन्नत, कल्पित रूप चित्रित किया जाता है।" वह उपन्यास किसी काम का नहीं जो इतिहास की

तरह घटनाओं का बखान कर जाता है।''[34] **पं0 भगवती प्रसाद बाजपेयी** उपन्यास को जीवन का महाकाव्य स्वीकार करते हैं– ''मेरी दृष्टि में उपन्यास एक आत्म निरीक्षण है। हम स्वंय क्या हैं ? समाज हमारे लिए क्या है ? क्या–क्या हमें प्रिय सुन्दर और मनोरम लगता है ? कहाँ और क्यों ? किस प्रकार और कैसे हम किसी से बँध जाते हैं ? जीवन रस पाते–पाते, भोगते–भोगते कभी–कभी वितृष्णा, ऊब अथवा कटुता का अनुभव करते हुए रो पडते या छोड़कर चल देते है। फिर लगता है कि सब कुछ होने पर भी जीवन है, रस है, सौदर्य है, अमृत है, विश्वास और श्रद्धा की गरिमा भी है। इस आत्म निरीक्षण का जीवन और समाज के अध्ययन के साथ जो संबंध है, उसी का सम्यक विश्लेषण कथा के रूप में 'उपन्यास' कहलाता है।''[35] **यशपाल जी** उपन्यास में विचारों और समस्याओं को प्रमुख स्थान देते हैं ''विचारों को उपन्यास में प्रधानता देनी चाहिए। समस्याओं के विश्लेषण को प्रोत्साहित करना चाहिए।''[36] **श्री भगवती चरण वर्मा** भी यशपाल की भाँति उपन्यास द्वारा समस्याओं के निदान मे विश्वास करते है– ''अपने उपन्यासों में मैने यह प्रयत्न किया है कि पढ़ने वालो में विचारों की एक हलचल पैदा कर दी जाय। एक कलाकार की हैसियत से जिन विचार धाराओं के आधार पर आज का सामाजिक जीवन स्थिर है, उसको प्रदर्शित करते हुए नवीन विचार धाराओं की ओर भी संकेत करने में विश्वास करता हूँ जिनमे मैं आज की समस्याओं का निदान पाता हूँ।''[37] **श्री उपेन्द्र नाथ 'अश्क'** उपन्यास में कथा की अपेक्षा चरित्र पर बल देते हैं– ''उपन्यास को मैं उपन्यास ही देखना चाहता हूँ, कहानी नहीं। कहानी में मैं जहाँ कथानक को महत्व देता हूँ वहाँ उपन्यास से मुझे कथानक के बदले पात्रों का चरित्र चित्रण, उनके मन में क्षण क्षण उठते–बदलते विचार, दैनिंदन घटनाओं का घात प्रतिघात और जिन्दगी के छोटे–छोटे व्योरों का चित्रण माना है। कहानी जहाँ मेरे निकट जीवन के नद से काटा गया छोटा सा बरहा है, वहाँ उपन्यास जीवन की पूरी गहमा गहमी को अपने अंक में संजोए ठाँठे मारता हुआ महानद है। [38] **पं0 नन्द दुलारे बाजपेयी** उपन्यास की व्यापकता का संकेत करते हुए लिखते हैं ''साहित्य क्षेत्र में उपन्यास ही एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा सामूहिक मानव जीवन अपनी समस्त भावनाओं और चिन्ताओं के साथ संपूर्ण रूप में अभिव्यक्त हो सकता है।''[39] **डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी** भी उपन्यास को उपन्यास ही कहा जाना पसंद करते हैं ''नाना जाति की जितनी पुस्तकें 'उपन्यास' नाम से प्रचलित हैं, उन सबको दृष्टि में रखकर अगर उपन्यास की परिभाषा की जाए तो एक मात्र उपयुक्त परिभाषा शायद यही होगी कि उपन्यास उस कथा कहानी की पुस्तक को कहते हैं जिसे उसका लेखक या प्रकाशक उपन्यास कहना पसंद करें।'' **शिव नारायण श्रीवास्तव** के अनुसार ''उपन्यास परिवर्तित सामाजिक कलात्मक परिस्थितियों की देन है। बाद में विकसित होकर भी साहित्य के इस अंग ने अपना एक प्रधान स्थान बना लिया और उसकी वर्तमान प्रगति को देखते हुए ऐसा अनुमान होता है कि कभी वह साहित्य क्षेत्र में इससे भी अधिक गौरव प्राप्त करेगा। उपन्यासों के इतने अधिक प्रचार का कारण यह है कि वह सर्वथा मानव जीवन से संबद्ध है और अभिव्यंजना का बिल्कुल निजी तथा संवेदनापूर्ण साधन

है।''[40] **डॉ0 राम अवध द्विवेदी** उपन्यास को अत्यधिक गतिशील विधा के रूप में देखते हैं ''जीवन में प्रगति भी है और विस्तार भी, किन्तु प्रगति ही उसका विशिष्ट धर्म हैं। उपन्यास भी इसी प्रकार के चित्र उपस्थित करता है जो पलपल बदलता रहता है और नए रंग, नए रूप, नवीन दृश्य सामने प्रस्तुत करता है।''[41] **श्री शिवदान सिंह चौहान** ''उपन्यास साहित्य एक नया और संश्लिष्ट रूप विधान है। जिसका क्षेत्र और संभावनाएँ अपरिमित है।[42] **बाबू गुलाब राय** ने उपन्यास की समस्त विशिष्टताओं को समेटने का प्रयत्न करते हुए लिखा है– ''उपन्यास कार्य कारण श्रृंखला में बँधा हुआ वह गद्यात्मक कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।''[43] **डॉ0 सत्येन्द्र** ने उपन्यास को ''नये युग की नयी अभिव्यक्ति का रूप''[44] माना है। **रघुनाथ सरन झलानी** की दृष्टि में उपन्यास का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसे शब्दों में परिसीमित करना संभव नहीं। जीवन की भाँति उपन्यास की धारा भी आदि–अन्त हीन है। वे कहते हैं– ''आज उपन्यास जीवन की परोक्ष अपरोक्ष अभिव्यक्ति का सबलतम् साधन है। यह जीवन की व्यापकता और समग्रता को छू रहा है। उपन्यास की धारा उतनी ही प्रशस्त और विस्तृत है जितनी कि जीवन की धारा। उपन्यास की इस व्यापकता का कुछ शब्दों में परिसीमन असंभवप्राय है।''[45] **अज्ञेय** के अनुसार ''किसी ने कहा है कि उपन्यास की सबसे अच्छी परिभाषा उपन्यास का इतिहास है। इस उक्ति में गहरा सत्य है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो उपन्यास मानव के अपनी परिस्थितियों के साथ संबंध की अभिव्यक्ति के उत्तरोत्तर विकास का प्रतिनिधित्व करता है। मानव का मानसिक विकास जैसे–जैसे इस संबंध की परीक्षा की ओर उत्तरोत्तर अधिक आकृष्ट हुआ है, वैसे ही इस संबन्ध की अभिव्यक्ति भी उत्तरोत्तर उसके प्रति मानव के दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होती गई है। इसीलिए कहा जा सकता है कि उपन्यास में दृष्टिकोण या जीवन दर्शन का महत्व उपन्यास की परिभाषा में ही निहित है।[46] **राजेन्द्र यादव** के शब्दों में ''अपनी अधिकांश संभव परिणतियों के साथ एक अनुभव, उपन्यास है।''[47]

निष्कर्ष

उपर्युक्त परिभाषाएँ उपन्यास संबंधी विभिन्न दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करती हैं। इनके विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि उपन्यास आधुनिक जीवन की सबलतम् अभिव्यक्ति का उत्कृष्टतम साधन हैं।

वर्तमान जीवन की बहुरुपिणी आशाओं–आकाक्षाओं के संजीव चित्रण में समर्थ 'उपन्यास' अनन्त भावी संभावनाओं से संयुक्त है। अनेक विद्वानों की धारणाओं से, उपन्यास की व्याख्या की असमर्थता से यह भी संकेत मिलता है कि रचनाएँ उनकी धारणाओं का अतिक्रमण कर प्रकट हो चुकी है। कहा नहीं जा सकता कि भविष्य में कितनी सशक्त रचनाएँ आएँगी और उनमें अभिव्यक्त

जीवन का रूप कितना जीवंत और यथार्थ होगा। इस प्रकार हम कह सकते है कि उपन्यास का इतिहास ही उपन्यास की अवधारणा को स्पष्ट कर सकता है, साहित्य की शब्द सीमा नहीं।

शिल्प (टेकनीक)

1. **अवधारणा** : प्रविधि या शिल्प (टेकनीक) का शाब्दिक अर्थ है किसी वस्तु के निर्माण का ढंग या क्रिया अथवा उन तत्वों का समुचित समायोजन जिनके समानुपातिक उपयोग से किसी नवीन रचना को जन्म मिलता है। विधि, निर्माण प्रक्रिया, रचना शिल्प, कला कौशल आदि को भी 'शिल्प' के न्यूनाधिक पर्यायवाची माना जा सकता है। कला अथवा साहित्य के संदर्भ में 'शिल्प' का तात्पर्य है किसी साहित्यिक कृति अथवा कलात्मक रचना की सृष्टि में जिन विधियों, ढंगों, तरीकों, रीतियों आदि का प्रयोग किया जाता है वे ही 'शिल्प' के नाम से कही जाता हैं।

अ. पाश्चात्य चिंतन

कैम्बेल डबल डे : "श्रेष्ठ प्रविधि का तात्पर्य है, सही बात को सही ढ़ंग से, सही समय पर कहना। विषय वही चुनो जो रूचे। तात्पश्चात् ऐसी शैली अथवा प्रविधि का चयन करो जिसके सहारे वह विषय पाठकों तक मार्मिक ढंग से संप्रेषित किया जा सके।"[48]

पर्सील्युबक : उपन्यास कला के रचना विधान का निर्धारण प्रमुखतः उपन्यासकार के दृष्टिकोण पर आधारित है अर्थात कथाकार का कथा के साथ जो संबंध है, वही अन्ततः उसके उपन्यास निर्माण–विधि का स्वरूप निर्धारित करेगा।"[49]

प्रविधि संबंधी उपर्युक्त व्याख्याओं के अतिरिक्त भी अन्य व्याख्याताओं ने प्रविधि को आन्तरिक एवं वाह्य दृष्टि से विवेचित किया है। आन्तरिक से तात्पर्य है– रचना संबंधी वे समस्त प्रक्रियायें जो रचनाकार के मानसिक जगत में घटती हैं, और वाह्य से– शब्द योजना, भाषा सौष्ठव एवं अन्यान्य उपकरणों से है, जिनके माध्यम से रचनाकार अपने मनोभावों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। दोनों ही दृष्टिकोण अदृश्य हैं फिर भी आन्तरिक–अप्रकट है और वाह्य, प्रकट। फलतः प्रविधि की व्याख्या आन्तरिक और वाह्य अथवा अप्रकट और प्रकट रूपों से भी की गयी है।

अ. आन्तरिक रूप : ईश्वर की सृष्टि यदि विस्तृत जीवन जगत है तो रचनाकार की सृष्टि लघु जगत या जीवन है। साहित्यकार अपेक्षाकृत मननशील अथवा चिन्ता प्रधान प्राणी होता है। उसकी मननशीलता अथवा चिंतन को जिन विधियों या उपकरणों से साहित्य रूप प्राप्त होता है वही प्रविधि का आन्तरिक रूप है। यद्यपि प्रविधि का यह स्वरूप अव्यक्त, प्रच्छन्न, अमूर्त तथा सूक्ष्म होता है तथापि अनुमान गम्य है। रचनाकार की इसी आन्तरिक प्रक्रिया की महत्ता का प्रतिपादन **श्री वान** और **कानर** ने किया है

वान : "प्रविधि ही वह माध्यम है जिसके कारण साहित्यकार की अनुभूति, जो साहित्य का विषय है, उसे उसकी ओर ध्यान देने के लिए मजबूर करती है। उसके पास प्रविधि ही ऐसा साधन है

जिसकी सहायता से वह अपने विषय की खोज, जाँच पड़ताल और विकास कर सकता है तथा इसका अर्थ समझाते हुए इसका मूल्यांकन कर सकता है।"[50]

कानर : जो साहित्यकार अपने विषय की अत्यधिक शिल्पिक जाँच पड़ताल करने की क्षमता रखता है, वही ऐसे समृद्ध साहित्य को जन्म दे सकेगा जिसका विषय अत्यंत संतोष जनक होगा और जिसमें भरपूर अर्थ गाम्भीर्य होगा।[51]

2. **वाह्य स्वरूप** : प्रविधि का आन्तरिक स्वरूप एक ओर जहाँ अनुभूति जन्य अथवा अनुमान गम्य है, वहीं वाह्य स्वरूप प्रत्यक्ष दृष्टिगम्य तथा आकारिक है। जब रचनाकार के भाव अथवा विचार, शिल्प के सहारे भाषा का परिधान धारण कर अथवा लिपिबद्ध स्वरूप में हमारे समीप उपस्थित होते हैं तब वे अमूर्त अथवा अलक्ष्य न रहकर मूर्त और साकार हो जाते हैं। शिल्प के इस आकार गत स्वरूप का निर्धारण, नियम नियोजन और विश्लेषण आदि संभव है।

प्रविधि के आन्तरिक रूप द्वारा जहाँ रचनाकार चिंतन, मनन और विश्लेषण द्वारा भाव जगत से सामग्री एकत्र करता है, वही प्रविधि का वाह्य स्वरूप उस सामग्री विशेष को रूपायित करता हैं। वस्तुतः मनोभावों की अभिव्यक्ति ही प्रविधि का अभीष्ट है। इस अभीष्ट की पूर्ति के लिए रचनाकार के पास मात्र भाषा और लिपि ही ऐसे उपकरण हैं जो मनोभावों को मूर्त करते है। दृश्य विशेष, पात्र–व्यवहार, संवाद, घटना आदि को भाषा ही चित्रित करती हैं। भाषा का अंकित रूप ही लिपि है। अतः रचनाकार, भाषा और लिपि की सहायता से घटना, दृश्य अथवा पात्रों का जीवंत स्वरूप उपस्थित करता है। जीवंत चित्र रूपायित करने के लिए शब्दो की स्पष्टता और सजीवता आवश्यक है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर **ल्यूबक** लिखते हैं–"पुस्तकें मेरे तथ्यों का संग्रह मात्र नहीं है, वरन् संपूर्ण चित्र है। उन तथ्यों का महत्व भी तभी है जब इनकी सहायता से कोई चित्र खींचा जाय।"[52]

भारतीय चिंतन :

जैनेन्द्र : "टेकनीक ढाँचे के नियमों का नाम है। पर ढाँचे की जानकारी की उपयोगिता इसी में हे कि वह सजीव मनुष्य के जीवन में काम आवे। वैसे ही टेकनीक साहित्य–सृजन में योग देने के लिए है।"[53] जैनेन्द्र जी के कथन का तात्पर्य है कि ढांचा विशेष के वे नियम जो सजीव मनुष्य के लिए उपयोगी सिद्ध हों। दो बातें विशेष दृष्टव्य है ढाँचा और नियम तथा मानवीय उपयोग।

डॉ0 त्रिभुवन सिंह : "किसी भी कृति में कुछ थोड़ा ही ऐसा होता है जो पाठकों की स्मृति में शेष रह जाता है, उसके अतिरिक्त वह सब कुछ भूल जाता है। जो कुछ भूल जाता है, निश्चित रूप से वह अनावश्यक है, पर उस अनावश्यक को भी आवश्यक बनाकर उसे कला के अंग के रूप में प्रस्तुत कर देना 'शिल्प' का ही कार्य है।"[54] श्री सिंह शिल्प को एक गतिशील रचना प्रक्रिया मानते है। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं– "साहित्यकार की सृष्टि उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम है। अभिव्यक्ति का कोई एक निश्चित रूप कभी भी सार्वदेशिक और सार्वकालिक नहीं रहा है। देशकाल और पात्र में अन्तर पड़ने पर अभिव्यक्ति के स्वरूप में भी अन्तर पड़ता है। यही कारण है

कि न तो साहित्य का स्वरूप कभी जड़ रहा और न उसकी रचना पद्धति कभी स्थिर रही हैं। रचनाएँ पहले आती हैं उनके लक्षण आचार्यो द्वारा बाद में बनाए जाते हैं। कभी किसी युग में जब प्रतिभा संपन्न रचनाकार उत्पन्न हो जाता है तो वह साहित्य रूप के समस्त प्रतिमान तोड़कर नए नियमों का निर्माण करता है। जब वह नया नियम भी शास्त्रीय पद्धति पर रूढ़ हो जाता है तो समयानुसार उसमें पुनः परिवर्तन होता है। जिस प्रकार परिवर्तन की यह प्रक्रिया कभी समाप्त नहीं होती है, उसी प्रकार शिल्प का अस्तित्व भी कभी समाप्त नहीं होता। जब तक साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति की अनिवार्यता बनी रहेगी, तब तक अभिव्यक्ति के प्रकार के रूप में शिल्प का महत्व अक्षुण्ण रहेगा।''[55]

डॉ0 सत्यपाल चुघ : बिलकुल ठीक यही बात कहते हुए डॉ0 चुघ शिल्प को गतिशील मानते हुए फास्टर के शब्दों मे लिखते है– ''कलाकार सदैव नई टेकनीक की खोज करते है और उनका यह प्रयत्न तब तक जारी रहेगा,जब तक उनका कार्य उनको प्रीद्दीप्त (इक्जाइट) करता रहेगा।''[56]

प्रविधि या शिल्प के आधार

रचनाकार के मनोगत भावों को चित्रित करने के लिए जिस प्रविधि विशेष की आवश्यकता होती है, उसके भी कुछ आधार भूत रूप होते हैं और वह रूप योजना भी दुहरी होती है।

अ. सामग्री चयन :

समग्र मानव जीवन वैविध्यपूर्ण है। पग–पग पर नवीन विचारों, घटनाओं, तथ्यों और अनुभवों के सम्पर्क में उसे आना पड़ता है। कुछ उपेक्षित किए जाते है कुछ प्रभावित करते हैं। रचनाकार उन्हीं का चयन करता है जो कल्पना के अनुकूल चित्र खींचने में समर्थ होतें है। यह चयनक्रिया रचनाकार की दृष्टि से अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती है क्योंकि संपूर्ण उपलब्ध सामग्री – (घटनाओं और तथ्यों) – को रचना का विषय नहीं बनाया जा सकता। रचना में सामग्री चयन के महत्व को स्वीकार करते हुए **डेविड डचेस** ने कहा है– मानव जीवन का शब्दचित्र खींचने वाले प्रत्येक लेखक के सम्मुख उपर्युक्त चयन की समस्या स्वाभाविक है। स्पष्टतः कोई भी लेखक किसी व्यक्ति की हर एक बात, विचार या कार्य का वर्णन नहीं कर सकता है। यदि ऐसा किया जाए तो व्यक्ति विशेष के जीवन के एक घंटे के वर्णन के लिए एक ग्रंथ चाहिए।''[57]

ब. क्रम निर्धारण : सामग्री चयनोपरान्त क्रम निर्धारण की समस्या आती है। सामान्यतः चयनित सामग्री अव्यवस्थित और असंतुलित होती है। अतः इस सामग्री को सुव्यवस्थित, संतुलित और क्रमागत स्वरूप प्रदान करना आवश्यक होता हे। ''विभिन्न पात्रों के गतिशील मनोभावों, समविषम घटनाओं की तीव्रता और कलाकार की वेगवती कल्पनाशीलता का त्रिकोणात्मक संघर्ष इतना तीव्र होता है कि यदि क्रम निर्धारण की सहायता से मनोभावों, घटनाओं और कल्पनाओं में एक सूत्रता न उत्पन्न की जाय तो प्रभाव पूर्ण रचना की सृष्टि कल्पना मात्र होगी।''[58]

रचना की इस प्रविधि की महत्ता को स्वीकारते हुए **हेनरी वारेन** लिखते है–"स्पष्ट शब्दों में यदि कहा जाय तो चयन और क्रम निर्धारण को ही उपन्यास कार की कला कहते हैं।"[59] **कैनेथ मेकनिकोल** भी इसे स्वीकार करते है– "सच्चा कलाकार इस सजीव सामग्री के कुशल चयन व क्रम निर्धारण द्वारा इसे सुन्दर स्वरूप देता है तथा इसे सीधे तथा मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।"[60] **वान ओ0 कानर** भी यही कहते हैं– "कोरी अनुभूति तथा रूपायित अनुभूति या कला में जो अन्तर है वह प्रविधि के कारण ही है।"[61]

शिल्प (प्रविधि) का महत्व

मनोभावों की अभिव्यक्ति एवं स्वरूप संरचना का एक मात्र साधन होने के कारण साहित्य सृजन क्रिया में शिल्प का महत्व स्वयं सिद्ध है। रचनाकार स्वानुभूतियों को सशर्क एवं पूर्ण बनाने का यत्न करता रहता है। एक विशेष विषय, भिन्न–भिन्न कलाकारों के द्वारा विभिन्न रूप, शिल्प द्वारा ही धारण करता है। कलाकार सामग्रीतो सामाजिक परम्पराओं, रूढ़ियों तथा गति विधियों से प्राप्त करता है किन्तु शिल्प का सृजन वह स्वयं करता है। **टालस्टाय** इसी मत का समर्थन करते हैं–"मेरा विचार है कि प्रत्येक कलाकार अनिवार्यतः अपनी प्रविधि की रचना स्वयं करता है।"[62] नवीनता कला का गुण है। नवीनता का अन्वेषण विषय की अपेक्षा स्वरूप पर अधिक होता है। **फार्स्टर** इसके समर्थन में कहते हैं "कलाकार सदैव नई प्रविधि की खोज करते हैं और उनका यह प्रयत्न तब तक जारी रहेगा, जब तक उनका कार्य उनको प्रोद्दीप्त करता रहेगा।"[63] इसी भाँति शिल्प के महत्व को स्वीकार करते हुए **मैंडिलोव** कहते है–जितने जीवंत उपन्यास विद्यमान हैं तद्नुसार उतनी ही प्रविधियाँ है। वस्तुतः एक आलोचक को उपन्यास की प्रविधि की नहीं, उपन्यासों की प्रविधियों की चर्चा करनी चाहिए।"[64]

हेनरी जेम्स : तो विषय वस्तु से अधिक महत्व वाह्य स्वरूप को देते हैं– "स्वरूप उस दर्जे तक विषय वस्तु है कि उसके बिना विषय वस्तु सर्वथा नहीं है।"[65] **ग्रेबो** के अनुसार लेखक का दृष्टिकोण ही प्रविधि का मौलिक सिद्धान्त है। "औपन्यासिक विन्यास में दृष्टिकोण तकनीक का मूलभूत सिद्धान्त है। एक दूसरे दृष्टिकोण को अपनाने में, कथावस्तु, चरित्रचित्रण, वातावरण, वर्णन, सभी कुछ दर्जे तक नियत या निर्णीत होते हैं।"[66] **मार्क शोरर** शिल्प को ही उपन्यास का सर्वस्व स्वीकार करते है "जब हम प्रविधि के विषय में चर्चा करते हैं तब हम लगभग उपन्यास के प्रत्येक विषय में चर्चा करते हैं।"[67] **डॉ0 त्रिभुवन सिंह** के अनुसार "उपन्यासों में शिल्प की सर्वाधिक आवश्यकता होती है क्योंकि यह कला उपन्यास कार का एक मात्र साधन है। जिसके द्वारा वह युग बोध का परिचय दे पाता है। दैनिक जीवन में काम आने वाली कल्पना शक्ति को उद्बुद्ध करने, पूर्वता का ज्ञान प्राप्त करने, उपन्यास कारों द्वारा प्रस्तुत चरित्रों और दृश्यों को मस्तिष्क में धारण करने, उन्हे आयाम देने और चरित्र को पूर्णता प्रदान करने का जो कार्य पुस्तकों द्वारा होता है उसके मूल में 'शिल्प' ही है। आधुनिक उपन्यासों के द्वारा जो मानव जीवन

की विषमताओं को चित्रित किया जा रहा है, उसका ज्ञान एक साधारण पाठक भी बिना विद्वान हुए ही प्राप्त किए ले रहा है, उसका एक मात्र श्रेय उपन्यास के शक्तिशाली 'शिल्प' को ही है।[68]

कहने का तात्पर्य है कि 'शिल्प' लेखक की मूल प्रेरणा या दृष्टि कोण अथवा उद्देश्य की अभिव्यक्ति का साधन है। साधन के अभाव में साध्य की प्राप्ति दुस्साध्य है।

उपन्यास – शिल्प के तत्व

उन्यास, उपन्यासकार के कर्तव्य के समष्टिगत स्वरूप का अभिधान है। इसके निर्माण में एक–एक शब्द का योगदान रहता है। उन्हे पृथक–पृथक रूप में देखने का तात्पर्य होगा, उन तत्वों का विश्लेषण जिन्हे कथावस्तु, चरित्र, संवाद शैली, वातावरण, उद्देश्य कहते हैं। उपन्यास में घटनाएँ और कृत होते हैं। कुछ घटनाएँ काल विशेष में कुछ व्यक्तियों द्वारा की जाती हैं और कुछ परिस्थिति वश घटित होती है। इन्ही घटनाओं और कार्यों का सुगठित और सुव्यवस्थित स्वरूप **कथावस्तु** है। ये घटनाएँ और कार्य जिन व्यक्तियों द्वारा होते है या उनके जीवन में घटित होते है उन्हे **चरित्र** कहा जाता है। इन चरित्रो के मध्य जो वैचारिक आदान प्रदान होता है, वह **संवाद** कहलाता है। घटनाओं और चरित्रों के क्रिया कलाप के लिए जो स्थान और समय अपेक्षित होता है वह **वातावरण** कहलाता है। घटनाओं, चरित्रों और वातावरण तथा कार्य व्यवहारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध्यम ही **शैली** है। लेखक जीवन के जिस दृष्टिकोण विशेष को प्रस्तुत करना चाहता है वही **उद्देश्य** कहलाता है।

उपन्यास के उपर्युक्त तत्वों की संख्या के संबंध में विभिन्नमत हैं। कोई घटनाक्रम को कोई चरित्र–चित्रण को, कोई संवाद को, कोई शैली तो कोई वातारण को महत्वपूर्ण स्थान देता है।

वाल्टर एलन : चरित्र चित्रण को प्रमुखता देते है "चरित्रों के द्वारा ही उपन्यासकार उपन्यास के प्रमुख सामाजिक कर्तव्य का संपादन करते हुए पाठकों में सहानुभूतिपूर्ण समरसता का उदय करते है। यह उपन्यास कार का ही काम होता है कि वह अपने को किसी भी मानव प्राणी की सदृशता में अंकित कर सकता है। वह सदृश चरित्र के स्रोत वाला मानव प्राणी दोषी भी हो सकता है, और निर्दोष भी।"

ग्राहमग्रीन और ट्रिलिंग ने भी इसी के समानान्तर विचार धारा प्रस्तुत की है। **आस्टिन वैरेन** और **रेने वेलेक** ने उपन्यास का विश्लेषण करते हुए उसमें तीन साधक अंगो का उल्लेख किया है– कथावस्तु, चरित्र चित्रण और सेटिंग।[69] **हेनरी जेम्स** ने प्रश्न किया है "चरित्र घटना के अवधारक के अतिरिक्त और है क्या ? घटना चरित्र को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण के अतिरिक्त क्या है ?[70]

भारतीय विद्वानों ने भी इस संबंध में अपनी धारणएँ व्यक्त की है–

प्रेमचन्द : "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[71]

पं0 सीताराम चतुर्वेदी ने उपन्यास के तीन ही तत्व स्वीकार किए हैं। वे लिखते है–''कुछ विद्वानों ने उपन्यास के छः तत्व माने हैं– वस्तु,पात्र, संवाद, देशकाल, शैली, उद्देश्य– किन्तु वास्तव में उपन्यास के तत्व तो तीन ही होते हैं– कथा, पात्र, व्यापार (घटना समूह) । उद्देश्य वास्तव में तत्व न होकर परिणाम है और संवाद तथा शैली उस कथा को उद्देश्य तक पहुँचने के साधन है। देशकाल भी घटना समूह या व्यापार के अन्तर्गत ही आ जाता है। कुछ आचार्यो ने घात प्रतिघात या द्वन्द्व (कान्फ्लिक्ट) तथा कुतूहल (सस्पेंस) को भी तत्व माना है, किन्तु ये सब तो उद्देश्य सिद्धि के लिए तत्वों के संयोजन कौशल हैं अथवा पाटकों को फँसाए रखने के उपाय है इन्हें तत्व नहीं समझना चाहिए।''[72]

ब्रजरत्न दास ने 'शैली' के स्थान पर 'रस' को उपन्यास के उपकरण के रूप में रखा है। इस प्रकार उन्होने छः तत्वों में 'रस' को भी स्थान दिया है।[73] **रघुनाथ सरन झलानी** 'रस' को एक अतिरिक्त तत्व मानते हुए कुल सात तत्व मानते है– वस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल, शैली, रस और उद्देश्य ।[74]

वस्तुतः रस अन्य तत्वों के समष्टिगत स्वरूप का प्रदेय है। अतः रस को पृथक तत्व के रूप में स्वीकार करना उचित नहीं प्रतीत होता है।

निष्कर्ष

कथानक, चरित्र चित्रण, संवाद, वातावरण, भाषाशैली और उद्देश्य आदि तत्वों की दृष्टि से उपन्यास के विवेचन विश्लेषण, अनुशीलन और मूल्यांकन के विषय में परस्पर दो विरोधी धाराएँ उपलब्ध होती है। कुछ विद्वान उपन्यास के अध्ययन के लिए तत्वों का विश्लेषण आवश्यक मानते हैं। उनके मतानुसार जब तक उपन्यास को उसके मान्य तत्वों की कसौटी पर कस नलिया जायेगा, उपन्यास की सफलता असफलता की घोषणा नहीं की जा सकती । विरोधी विचार धारा के समर्थकों का मत है कि उपन्यास एक पूर्ण इकाई है। इकाई को तत्वों के आधार पर चीर फाड़कर देखा–परखा नहीं जा सकता। जिस प्रकार मानव शरीर को तत्वों में विभाजित करके मानव का मूल्यांकन संभव नहीं है उसी प्रकार उपन्यास का विभाजित रूप में मूल्यांकन करना सरल नही है। अतः तत्वगत विवेचन निरर्थक है।

दोनों विचार धाराओं के अस्तित्व को आवश्यक मानते हुए यह कहा जा सकता हे कि साधारण पाठक के लिए उपन्यास का तत्वगत विवेचन निरर्थक है किन्तु विशेष पाठक, आलोचक या विश्लेषक के लिए उपन्यासका तत्वगत विश्लेषण अत्यावश्यक है। उपन्यास के स्वरूप, प्रकार, विकास, प्रवृत्ति तथा भावी संभावना को रेखांकित करने के लिए तात्विक मूल्यांकन आवश्यक है। कथागत नवीन प्रयोग, चारित्रिक नूतनांकन, संवादात्मक नव्यता, वातावरण जन्य प्रभावान्विति, भाषा और शैलीगत परिपुष्टता और उद्देश्यगत जीवन दर्शन के लिए तत्वगत विवेचन विश्लेषण अनिवार्य है।

1. **कथावस्तु** :– अँग्रेजी शब्द 'प्लाट' का हिन्दी पर्याय शब्द, कथानक, कथावस्तु या 'वस्तु' साहित्यिक पारिभाषिक शब्द है। घटनाओं की श्रृंखला को 'कथावस्तु'
कहते हैं। 'वस्तु' उपन्यास रूपी भवन के लिए नीव सदृश होता है। 'वस्तु' के लिए घटनाओं की परस्पर संबद्धता होना आवश्यक है। 'वस्तु' उपन्यास का सर्वाधिक महत्व पूर्णतत्व है। अन्य तत्वों के अभाव में तो उपन्यास की रचना सम्भव भी है किन्तु 'वस्तु' के अभाव में रचना संभव नही है। 'वस्तु' का किसी न किसी मात्रा या रूप में उपन्यास में उपस्थित रहना अनिवार्य है। 'वस्तु' को उपन्यास रचना का मूलाधार माना जाता है। 'वस्तु' की अवधारणा पर विचार करते समय इस पर विस्तृत दृष्टि डाली जाएगी।

2. **चरित्र–चित्रण** : 'वस्तु' के पश्चात चरित्र चित्रण को प्रमुख तत्व माना गया है। रचना में पात्रों या उनके चरित्र को रचनाकार ने सायास चित्रित किया है या स्वाभाविक रूप में, किन्तु पात्र और उनके चरित्र चित्रण के अभाव में 'उपन्यास' अपना स्वरूप धारण नहीं कर सकता। क्योंकि उपन्यास की सृष्टि का आधार विन्दु ही मानव है।

चरित्र–चित्रण को परिभाषित करते हुए पाश्चात्य विद्वान **स्काट मेरेडिथ** ने लिखा है "चरित्र चित्रण कथा के पात्रों की व्यक्तिगत तथा न्यारी विशेषताओं को अथवा उनके स्वभाव को प्रकाश में लाकर उन्हें एक दूसरे से भिन्न दिखाने की एक विधि है।"[75] पात्रों के चरित्र चित्रण की अस्वाभाविकता की सम्भावना की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए, श्री **प्रेमचन्द** ने कहा है– "सब आदमियों के चरित्र में बहुत कुछ समानताएं होते हए भी कुछ विभिन्नताएं होती है। यही चरित्र संबंधी समानता और विभिन्नता– अभिन्नत्व में भिन्नत्व और भिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्तव्य है।"[76] चरित्र चित्रण करते हुए **राविन्सन** ने स्वीकार किया है कि "चरित्र चित्रण का अभिप्राय है कहानी में लोगों (पात्रों) को पर्याप्त मूर्तिमत्ता और स्वाभाविकता के साथ इस प्रकार चित्रित करना कि वे पाठकों के लिए 'छाया' मात्र न रहकर पुस्तक के समतल पन्नो में उभर आएँ और कम से कम उस समय के लिए तो व्यक्तित्व धारण ही कर लें।"[77] चरित्रों की विभिन्न अवस्स्थाओं में संबद्धता होना भी आवश्यक है। **लोट्जे** के शब्दों में–"पात्रों के चरित्र का क्रमिक निर्माण ही उपन्यास की वास्तविक समस्या है।"[78] अर्थात् उपन्यास को अपने चरित्रों की आन्तरिक वृत्तियों, परिस्थिति जन्य मानसिक प्रतिक्रियाओं तथा संस्कार जन्य अन्तः करण में उद्भूत विचारों आदि का यथा तथ्य चित्रण करना होगा। विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न पात्रो की विभिन्न प्रतिक्रियायें भी हो सकती है परन्तु इनको एक सूत्र में बाँधने और चरित्रों के सम्यक् विकास में संगति उत्पन्न करना उपन्यास का कर्तव्य है।

उपन्यास में चरित्र चित्रण यथार्थ के अधिक निकट होना चाहिए। कल्पना जन्य अथवा प्रत्यक्ष अनुभव के अभाव में पात्र अप्रभावकारी होंगें। उपन्यास में चरित्रचित्रण तीन प्रकार से किया जाता है– 1. पात्रों के कार्यों द्वारा 2. पात्रों के वार्तालाप द्वारा 3. कथा लेखक के कथन या

व्याख्या द्वारा। कथा के पात्रों को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाय ? यह कथाकृति के स्वरूप, कथाकार की योग्यता और अभिरुचि तथा कृति के उद्देश्य पर निर्भर होता है। पात्रों के कार्यों अथवा वार्तालाप द्वारा चरित्रचित्रण तो अप्रत्यक्ष चरित्रचित्रण के अन्तर्गत आता है किन्तु अन्तिम तीसरा प्रकार प्रत्यक्ष चरित्र चित्रण या विश्लेषणात्मक पद्धति में परिगणित किया जाता है। चरित्र की आम्यंतरिक सूक्ष्मताओं और मनोवैज्ञानिक रहस्यों का जितना अधिक मनोविश्लेषणात्मक शैली द्वारा उद्घाटन सम्भव है उतना प्रत्यक्ष पद्धति द्वारा नहीं। उपन्यास में अभिनयात्मक और विश्लेषणात्मक शैली के सम्मिलित रूप द्वारा चरित्र चित्रण को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। व्याख्या और टीका की पर्याप्त स्वच्छन्दता के कारण उपन्यासकार चरित्र को धीरे–धीरे विकसित कर विभिन्न परिस्थितियों के आवर्तन में उसे ढालकर वह आकर्षण और औत्सुक्य प्रदान करता है जो पाठक के मन को रमाने के लिए अपरिहार्य होता है। सुविधानुसार उपन्यास कार नाटकीयता और विश्लेषणात्मक शैली में समुचित संबंध स्थापित करके मानवीय मनोवेग, भावावेश, भावना, विचार, उद्देश्य या प्रयोजनादि का सूक्ष्मातिसूक्ष्म समाकलन कर सकता है। गत्यात्मक चरित्रों की अवतारणा उत्तम कोटि के कथा साहित्य की कसौटी है।

चरित्र–चित्रण में सामान्यतः निम्नांकित विशेषताओं का समावेश पाया जाता है–

1. **पात्रों की कथानुकूलता** : कथानक जिस युग का या जिस वातावरण से संबंधित है पात्रों का चयन भी उसी युग या वातावरण के अनुकूल होना चाहिए। कथानक और पात्रों में विषमता अस्वाभाविकता को जन्म देती है।

2. **स्वाभाविकता** : कोई भी पात्र या चरित्र पाठक की संवेदना या सहानुभूति तभी प्राप्त कर पाता है जब पाठक के मन पर उस पात्र के स्वाभाविक होने की छाप हो।

3. **व्यावहारिकता** : उपन्यास मनुष्य के व्यावहारिक जगत से संबंधित होता है। इस लिए जो पात्र व्यावहारिक जगत से जितना अधिक संबध रखेगें वे उतने ही यथार्थ वादी होगें। पाठक की विश्वसनीयता अर्जित करने के लिए यह आवश्यक है कि पात्र व्यावहारिक प्रतीक हों। आभ्यंतरिक स्वरूप के साथ–साथ वाह्य गतिविधियों को चित्रित करने वाली कृति ही श्रेष्ठ समझी जाती है।

4. **सजीवता** : चरित्र चित्रण की चौथी विशेषता है– सजीवता या सप्राणता। पात्रों के संपूर्ण व्यक्तित्व से ही सप्राणता उद्भूत होती है। पात्र में सजीवता तभी अनुभव की जाती है जब उसका आचार विचार, व्यवहार, क्रिया कलाप, और भाव तथा विचार प्रभावपूर्ण होते है। काल्पनिक पात्रों को ही सजीव रूप में प्रस्तुत करना उपन्यास कार के अतिरिक्त कौशल का परिचायक है। पात्रों में प्राण–प्रतिष्ठा के लिए मानव स्वभाव का गहन अध्ययन, चित्तवृत्तियों का समुचित समाकलन, वातावरण अथवा परिस्थिति जन्य क्रियाओं प्रतिक्रियाओं के सम्यक् परिज्ञान में उपन्यासकार जितना कुशल होगा, पात्र उतने ही अधिक सजीव होंगे।

5. **यथार्थता** : वास्तव में उपन्यास मानव जीवन के यर्थाथ स्वरूप की अभिव्यक्ति है। उपन्यास कार प्रत्यक्ष जीवन से किसी न किसी कथानक का चयन करता है। कथानक को

गत्यात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिए जिन पात्रों का चुनाव करता है, वे समाज के किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। सुपरिचित जगत से चयन किए हुए पात्रों में यथार्थता स्वयमेव विद्यमान रहती है।

6. **भावात्मकता** : भावना–प्रधान प्राणी होने के कारण मनुष्य को अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थितियों में भावों के सहारे जीवन यापन करना पड़ता है। उपन्यासकार मानव गुणों का चरित्र में आरोपण करता है। विभिन्न पात्र एक दूसरे के सुखदुख में सहानुभूति एवं संवेदना प्रकट करते है।

7. **सहृदयता** : मनुष्य अत्यंत संवेदनशील प्राणी है। इसीलिए वह अन्य प्राणियों के साथ सहृदयता पूर्ण व्यवहार करता है। करुणा, दया, सेवा, सहानुभूति, प्रेम आदि हृद्यगत भावनाओं से परिचालित पात्र जब दूसरे पात्रों के साथ संवेदना प्रकट करता है तो उस पात्र का चरित्र अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली बन जाता है।

8. **मौलिकता** : रचनात्मक दृष्टि से पात्र मौलिक होने चाहिए। पात्रों का चयन विचार, क्रिया कलाप और आदर्श में मौलिकता होनी चाहिए। जब एक से अधिक पात्र एक ही वर्ग या क्षेत्र विशेष से ग्रहण किए जाते हैं तब यदि उनमें मौलिकता का अभाव होगा तो वे आकर्षण विहीन होगें। रोचकता के लिए चरित्र में किसी नवीनता या मौलिकता का समावेश किया जाय जो पूर्ववर्ती उपन्यास कारों के प्रयोग से सर्वथा परे हो।

9. **अन्तर्द्वन्द्वात्मकता** : आधुनिक समस्या प्रधान उपन्यासों में अन्तर्द्वन्द्व को प्रकाशित करने के अवसर अपेक्षाकृत कम रहते हैं। विभिन्न परिस्थितियों से जूझ रहे विभिन्न पात्रों के मानसिक संघर्ष का चित्रण ही अन्तर्द्वन्द्व कहा जाता है।

10. **बौद्धिकता** : बुद्धि प्रधान प्राणी होने के नाते मनुष्य विवेक सम्मत वस्तु को ही स्वीकार करता है। जो पात्र अपनी बुद्धि से पाठकों को प्रभावित नहीं कर पाते वह यथार्थ से परे समझे जाते हैं। आधुनिक उपन्यास विचार प्रधान होते हैं अतः समसामयिक समस्याओं राजनैतिक–आन्दोलन, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का परिवर्तन तथा दार्शनिक विचार धारा को उपन्यासों में समुचित स्थान प्राप्त होने लगा है।

उपन्यास में, कथानक के माध्यम से ही चरित्रों का सृजन होता हैं, और कथानक को गति मिलती है पात्रों द्वारा। अतः ये दोनों ही तत्व अन्योन्याश्रित है। चरित्र उपन्यास कार की नवीन सृष्टि होता है। नवीनता के लिए यथार्थ की कल्पना का, और कल्पना को यथार्थ का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक होता है।

3. **संवाद** : किसी भी सशक्त उपन्यास में सजीव पात्र, कथा प्रसगों को गति प्रदान करने के लिए जो परस्पर वार्तालाप करते है उसे ही संवाद कहते है। इसे कथोपकथन के नाम से भी जाना जाता है। उपन्यास की जीवंतता, बहुत सुछ सार्थक संवाद पर ही आश्रित रहती है। सामान्यतः कथोपकथन या संवाद का प्रयोग कथानक को गति देने के लिए किया जाता है अतः

कथानक का संवाद से सीधा संपर्क है। घटनाओं में परस्पर सांमजस्य भी संवाद द्वारा ही स्थापित होता है। संवाद द्वारा उपन्यास कार अपने पात्रों की व्याख्या भी उपस्थित करता है। पात्रों की मनोवृत्ति, सम–विषम–परिस्थिति जन्य मानसिक भावनाओं, प्रतिक्रिया स्वरूप परिवर्तित विचारों तथा भावी योजनाओं का सजीव एवं प्रत्यक्ष परिचय संवाद ही कराता है। प्रत्येक रचना का कोई न कोई उद्देश्य भी होता है। उद्देश्य की अभिव्यक्ति रचनाकार स्वयं न करके किसी पात्र द्वारा वार्तालाप या संवाद द्वारा कराता है। संवाद द्वारा रचनाकार इष्ट वातावरण की सृष्टि करता है।

कथोपकथन या संवाद के अभाव में भी श्रेष्ठ रचनाएँ की गई है किन्तु संवाद के प्रयोग की आवश्यकता अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार की है। पात्र के व्यक्तित्व के अनुरूप संवाद स्वाभाविक प्रतीत होता है। परिस्थिति की अनुकूलता, प्रतिकूलता, सहजता, सुस्पष्टता और रोचकता संवाद के अतिरिक्त गुण हैं जिनके अभाव में संवाद निरर्थक और सारहीन प्रतीत होता है। आदर्श संवाद का उल्लेख करते हुए **आरलोवेट्स** ने लिखा है– ''ऐसी रचना जो मनुष्यों की साधारण बातचीत का सा प्रभाव उत्पन्न करें अथवा यथा सम्भव उस सम्भाषण सा लगे जो कहीं ओट में होकर सुना गया हो।''[79] **प्रेमचन्द जी** ने भी संवाद के गुणों की ओर संकेत किया है–''उपन्यास में वार्तालाप जितना ही उपन्यास सुन्दर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक वाक्य को, जो किसी चरित्र के मुँह से निकले, उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिए। बातचीत का स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुकूल सरल और सूक्ष्म होना जरूरी है।''[80]

डॉ0 गुलाब राय ने कथोपकथन के गुणों पर चर्चा करते हुए लिखा है– कथोपकथन की भाषा ही पात्रानुकूल नहीं होनी चाहिए वरन् उसका विषय भी पात्रों के मानसिक धरातल के अनुकूल होना वाँछनीय है। पात्रानुकूल वैचित्र्य के साथ ही उसमें स्वाभाविकता, सार्थकता, सजीवता और संक्षिप्तता के गुण होना वाँछनीय है।''[81]

निष्कर्ष के रूप में कह सकते है कि संवाद या कथोपकथन भी कथानक या चरित्र चित्रण की भाँति उपन्यास का एक अपरिहार्य तत्व है। यह तत्व रचनाकार की अनेक समस्याओं का समाधान करता है तथा अपनी संक्षिप्तता, मौलिकता, सोद्देश्यता और मनोनुकूलता आदि विशेषताओं से युक्त होकर अपनी उपयुक्तता सिद्ध करता है।

4. वातावरण : देशकाल अथवा वातावरण के अन्तर्गत सामान्यतया किसी भी स्थान, समाज अथवा वर्ग विशेष की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक , सांस्कृतिक परम्परागत विशेषताएँ तथा कुरीतियाँ आदि आती है। विभन्न परिस्थितियाँ मनुष्य को भिन्न–भिन्न रूपो में उपस्थित करती है। यह उपन्यास कार का कौशल होता है कि वह विभिन्न विविधताओं से युक्त पात्रों को हमारे समक्ष किस प्रकार उपस्थित करे। अनुकूल वातावरण की स्थिति मे कथानक सुस्पष्ट बनता है, पात्र जीवंत प्रतीत होते है।

उपन्यास में वातावरण का चित्रण कथा–काल और कथा–प्रकार की विशिष्टता के अनुसार किया जाता है। यह चित्रण बहुत कुछ सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति और वर्णनात्मक अभिव्यक्ति पर निर्भर करता है। वर्णन तथ्य परक होने चाहिए जो यथार्थ प्रतीत हो। संतुलित मर्यादित एवं समानुपातिक वातावरण की सृष्टि भी वास्तविक एवं यथार्थ परक बन जाती है। वस्तुतः वातावरण में काल तत्व एवं स्थान तत्व का महत्व लेखक के जीवन संबंधी दृष्टि कोण पर निर्भर होता है।

5. भाषा शैली : साहित्य का माध्यम भाषा है। उपन्यास साहित्य की एक प्रतिष्ठित विधा हो चुकी है। अतः उपन्यास में भी भाषा को वही महत्व प्राप्त है जो अन्याय साहित्यिक विधाओं में। प्रारम्भ में उपन्यासों की भाषा जैसी भी रही है किन्तु अब उपन्यास के अन्य तत्वों की भाँति भाषा का भी महत्व स्थापित हो गया है। भाषा और साहित्य घनिष्ट रूप से संबंधित है। भाषा मानव समाज की ही उपलब्धि है और उपन्यास सामाजिक मानव को चित्रित करता है। अस्तु मानव समाज के चरित्र के सम्यक उद्घाटन में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास में जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है वह सामान्य रूप से व्याकरण सम्मत नहीं होती या त्रुटिपूर्ण भी कही जा सकती है किन्तु विशेष ध्यान इस बात पर रखना है कि उपन्यास की भाषा घटनाओं, कथा, पात्र, और काल के अनुरूप होती है। स्थानीय मुहावरों लोकोक्तियों का स्वाभाविक प्रयोग, प्रवाह रहना आवश्यक है। घटना वैचित्र्य और पात्र–वैविध्य की दृष्टि से उपन्यास की भाषा का रूप स्थिर करना कठिन है फिर भी उपन्यास की भाषा सरल, पात्रोचित, अलंकार विहीन, अकाव्यात्मक, प्रवाहमयी, भावमिव्यंजना शक्ति सम्पन्न तथा अर्थ गांभीर्य से युक्त होनी चाहिए।

शैली : सामान्यतः अभिव्यंजना के प्रकार को 'शैली' कहा जाता है। साहित्य के विभिन्न रूप कविता, कहानी नाटक, उपन्यास निबन्ध आदि भावाभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियाँ हैं। शैली अपने रूप या आकार में व्यक्ति वैशिष्ठ्य गुण से समन्वित होती है। शैली से वस्तुविशेष के रूप या आकार का बोध होता है।

शैली एक प्रभाव पूर्ण अभिव्यक्ति है जिसका माध्यम भाषा है। इस संबंध में कतिपय पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ दृष्टव्य है। **शिप्ले** के अनुसार "शैली साहित्यिक आलोचना का एक पारिभाषित शब्द है जिसे कुछ लोग तो विशिष्टता–प्रधान रूप में ग्रहण करते है और अन्य लोग अतिव्यापकता संपन्न रूप में स्वीकार करते है तथा जिसका प्रयोग किसी अभिव्यक्ति के गुण अथवा प्रकार के नामकरण अथवा वर्णन करने के लिए होता है .....जब विचार की अन्विति अपने अपरिहार्य रूप में होती है तब शैली का प्रादुर्भाव होता है।"[82] **प्लेटो** के मतानुसार जब विचार को तात्विक रूप या आकार दे दिया जाता है तब शैली का उदय होता है।"

वर्नाल्डशाह : तो "प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति को ही शैली का अथ और इति "समझते है

बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार : भाव विचार और कल्पना तो इसमें नैसर्गिक अवस्था में वर्तमान रहते है और साथ ही उन्हे व्यक्त करने की स्वाभाविक शक्ति भी इसमें रहती है। अब यदि हम

उस शक्ति को बढ़ाकर, संस्कृत और उन्नत करके उसका उपयोग कर सकें तो अभावों, विचारों और कल्पना के द्वारा संसार के ज्ञान भंडार की वृद्धि करके उसका बहुत कुछ उपकार कर सकते है। इसी शक्ति को साहित्य में शैली कहते है।''

शैली का मूलाधार भाषा है और भाषा का आधार शब्द है। रचनाकार को शैली–निर्माण के लिए शब्द–शब्द का चयन करना पडता है। भाषा शैली की दृष्टि से उपन्यास–क्षेत्र में नित नए प्रयोग हो रहे है। कतिपय उपन्यास तो अपनी भाषा शैली की विशिष्टता के कारण ही शीर्ष पर पहँच चुके है। उपन्यास क्षेत्र में प्रचलित मुख्य शैलियाँ निम्नांकित है–

1. वर्णनात्मक शैली
2. विश्लेषणात्मक शैली
3. आत्म कथात्मक शैली
4. डायरी शैली
5. पत्रात्मक शैली
6. फ्लैश बैंक शैली (सिनेमा शिल्प से संबोधित)
7. कथोपकथन या संवाद शैली
8. भावात्मक शैली (वीर रस प्रधान काव्यात्मक शैली)
9. लोक कथात्मक शैली
10. आंचलिक शैली (किसी प्रदेश या अथवा अंचल से संबंधित)
11. मनोविश्लेषणात्मक शैली (पात्रों की विभिन्न मानसिक परिस्थितियों का विश्लेषण), (उपन्यास क्षेत्र में इस समय सर्वाधिक प्रचलित शैली)

6. उद्देश्य : उपन्यास के विभिन्न उद्देश्य प्रचलित है। उनमें से नीति शिक्षा, मनोरंजन, कौतूहल, सुधार भावना, हास्य सृष्टि, समस्याओं का चित्रण, राजनीतिक विवेचन, जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति, पदार्थवादी मनोवृत्ति का चित्रांकन तथा आनंद की उपलब्धि आदि प्रमुख है। प्रत्येक उपन्यास रचना का कोई न कोई न्यूनाधिक उद्देश्य अवश्य होता है। सामयिक परिस्थितियों और आवश्यकतानुसार उपन्यास के उद्देश्यों में भी परिवर्तन होता रहता है।

निष्कर्ष

उपन्यास के तत्वगत विवेचन से स्पष्ट है कि उपन्यास ने शास्त्रीय पृष्ठभूमि भी परिपुष्ट कर ली है। कथानक, चरित्र चित्रण, संवाद, वातावरण, भाषाशैली और उद्देश्य आदि तत्वों की दृष्टि से उपन्यास के विवेचन, विश्लेषण और मूल्यांकन के विषय में परस्पर विरोधी विचार धाराएँ उपलब्ध होती है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि कुछ विद्वान उपन्यासका तत्वगत विश्लेषण आवश्यक मानते है और कुछ इसके विरोधी है। मेरी दृष्टि में उपन्यास के विवेचन के लिए दोनों विचार धाराएँ आवश्यक है। तात्विक मूल्यांकन की महत्ता इस दृष्टि से अधिक है कि इससे उपन्यास के स्वरूप, प्रकार, विकास, प्रवृत्ति तथा भावी संभावना को रेखांकित किया जा सकता है। किस युग की किस विचार धारा से अनुप्राणित उपन्यास में किस तत्व का ह्रास तथा किस तत्व का विकास हुआ है– उपन्यास के भावी स्वस्थ विकास के लिए जानना आवश्यक है। कथागत नवीन प्रयोग, चारित्रिक नव्य चित्रण, संवादात्मक विकास, वातावरण और भाषाशैली गत पुष्टता और उद्देश्यगत जीवन दर्शन के लिए तत्वगत विवेचन अनिवार्य है।

वस्तु, कथावस्तु अथवा कथानक (Plot)

उपन्यास की पाश्चात्य एवं भारतीय धारणा के साथ उपन्यास के शिल्प और उसके उपकरणों की सामान्य व्याख्या के अन्तर्गत 'वस्तु' अर्थात् 'कथावस्तु' को भी केवल स्पर्श मात्र किया गया है। शेष विषय में उपन्यास के वस्तु एवं शिल्प का अनुशीलन ही मुख्य विन्दु होने के कारए 'वस्तु' को केवल स्पर्श मात्र करना पर्याप्त नहीं है। अतः 'वस्तु' पर विशेष विवेचन की आवश्यकता समझते हुए विस्तृत विचार किया जा रहा है।

कथा वस्तु (Plot) के अर्थ को समझने के लिए पाश्चात्य और भारतीय परिभाषाओं का उल्लेख करना आवश्यक है। जो 'वस्तु' पर समुचित प्रकाश डालती हैं।

अ. पाश्चात्य चिंतन शिप्ले की दृष्टि में कथावस्तु "घटनाओं का वह संगठन है भले ही वह सरल हो जा जटिल, जिसपर कथा या नाटक की रचना होती है।"[83]

दूसरे स्थान पर वह कहते हैं "कथानक भाषा की क्रिया और क्रिया की भाषा है।"[84] उपन्यास के सुविख्यात व्याख्याकार **ई0एम0फार्स्टर** इसे परिभाषाति करते हुए लिखते हैं– "यह घटनाओं का वह काल क्रमानुसार वर्णन है जिसमें कार्य–कारण संबंध पर विशेष बल रहता है।"[85] सामर सेट माम की दृष्टि में "कथानक केवल वह ढाँचा है जिसपर कहानी व्यवस्थित होती है।"[86] **वाल्टर कार** की धारणा है "कथानक को दबाव और उसकी प्रतिक्रिया का अंकन कहते हैं।"[87] बसफील्ड के शब्दों में "कथानक वह कहानी है जो लेखक के उद्देश्य के अनुरूप क्रम बद्धता एवं विस्तार प्राप्त करती है।" **ग्रीन वुड** के अनुसार "कथावस्तु लेखक के लिए वह धारा है जिसके द्वारा वह अपनी गहराई में डूबकर महत्वपूर्ण विषय की बड़ी और चमकती हुई मछली पकड़ता है।"[88]

अल्वर्ट कुक लिखते है "कथा वस्तु एक खोज है। यह समस्त चरित्रों के गूढ़ जीवन के उपयुक्त केन्द्रों का अन्वेषण करता है।"[89]

ब. भारतीय चिन्तन :

डॉ0 राम अवध द्विवेदी के अनुसार "कथा सरिता तो धारा के समान है और उन परिस्थितियों की, जिनके बीच में से होकर धारा अग्रसर होती है, हम सरिता के किनारों से तुलना कर सकते हैं।"[90] **डॉ0 शम्भू नाथ टण्डन** का विश्लेषण है "कथानक ही वह वस्तु होती है, जिस पर उपन्यास का भवन खड़ा होता है। इसी लिए इसे उपन्यास का ढ़ाँचा माना जाता है। उपन्यास के अन्य तत्व उपकरणों की भाँति कार्य करते है। इस दृष्टि से इन सब तत्वों, प्रधानतः कथानक के योग से ही उपन्यास की रचना होती है।"[91]

डॉ0 सरोजनी त्रिपाठी :"कथावस्तु उपन्यास का प्राण तत्व है। जिस प्रकार यह जानना कठिन है" कि प्राण शरीर के किस अवयय विशेष में अवस्थित है, उसी प्रकार उपन्यास में कथावस्तु की ओर संकेत करना दुष्कर है। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि कथवस्तु संपूर्ण उपन्यास में व्याप्त रहती

है। फलतः कथावस्तु घटनाओं का संगठन मात्र न होकर घटनाओं के मध्य वह सूत्र विशेष है जो घटनाओं का सुव्यवस्थित संयोजन करके औपन्यासिक सृष्टि का मूल आधार बनता है।''[92]

डॉ0 शशि भूषण सिंहल : वस्तु तत्व की व्याख्या करते हुए लिखते है– ''प्रश्न हो सकता है रचना का 'वस्तु' तत्व आता कहाँ से है ? उत्तर है– यह रचयिता के मन मास्तिष्क में प्रस्फुटित होता है। रचयिता अपने युग से विविध प्रेरणाएँ लेकर उन्हें अपने व्यक्तित्व के आलोक में ढ़ालकर, नवीन भाव बोध एवं सौंदर्यबोध के परिणति स्वरूप 'वस्तु' तत्व के रूप में अभिव्यक्त करता है।''[93] किसी विद्वान ने घटनाओं के अभाव में भी 'कथावस्तु' का अस्तित्व सम्भव मानते हुए कहा है– ''स्थूल रूप से 'वस्तु' के लिए घटनाओं का अस्तित्व अपरिहार्य प्रतीत होता है किन्तु सूक्ष्म रूप से विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचना असंभव भी नहीं कि 'कथावस्तु' के अस्तित्व के लिए भाव, विचार, वातावरण या एक स्थिति विशेष भी यथेष्ट समझी जाती है। अर्थात् 'कथावस्तु' वह तत्व विशेष है जो उपन्यास में घटना, स्थिति, चरित्र, वातावरण, भाव या विचार में, स्थूल या सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है और अन्य तत्वों के समानुपातिक योगदान में संतुलन एवं सामंजस्य स्थापित करता है।''

रचना प्रक्रिया की दृष्टि से विचार करने पर हम कह सकते हैं कि जो विचार, भाव, या स्थिति रचनाकार के मस्तिष्क में अंकुरित होती है। वही रचना के क्षणों में कथावस्तु का बीज सिद्ध होता है। उससे संबंधित भाव या वातावरण उपकरण तो बनते हैं किन्तु मूल स्थिति रहती 'कथावस्तु' की ही है। अन्य उपकरण तो कथावस्तु की प्रकृति के अनुकूल ही स्वरूप ग्रहण कर संचरित होते हैं। भाव प्रधान, विचार प्रधान और वातावरण प्रधान कही जाने वाली रचनाओं में प्रमुखता तो अन्य तत्वों की रहती है परन्तु 'वस्तु' का सर्वथा लोप नहीं हो पाता है। कथावस्तु प्राणरूप में सदा इन तत्वों में संचरित होता रहता है। कथासूत्र ही वह माध्यम है जिसके द्वारा विभिन्न चरित्रों या स्थितियों में संतुलन पूर्ण सम्बद्धता स्थापित होती है। घटनाओं के संयोजन, चरित्रों की सृष्टि, वातावरण निर्माण तथा भाव या विचार के उद्‌बोधन में 'वस्तु' ही मूल तत्व के रूप में प्रेरणा देता रहता है।

हिन्दी उपन्यास के इतिहास और विकास को देखते हुए और कुछ प्रमुख उपन्यासों के सर्वेक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक ओर जहाँ परिपुष्ट 'वस्तु' तत्व के दर्शन होते हैं वहीं दूसरी ओर सूक्ष्म पारदर्शिनी–अन्तर्दृष्टि, विलक्षण शिल्प कौशल, कलात्मक निर्लिप्तता, वैज्ञानिक तटस्थता आदि की उपलब्धि सराहनीय है किन्तु उन्तरोत्तर वस्तु–विन्यास का शैथिल्य भी दृष्टिगोचर होता है।

'वस्तु' के मूल आधार

अ. **वस्तु की प्रकृति** : कथावस्तु का चयन बहुत कुछ उपन्यास कार की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। कथानक जीवन के किसी भी खण्ड, स्थिति अथवा क्षेत्र से लिया जा सकता है। कथानक की प्रवृत्ति यदि मनोरंजन अथवा उपदेशात्मक है तो उपन्यास के चरित्र, संवाद, भाषा

शैली, वातावरण तथा उद्देश्य तद्नुकूल होगें। यदि मनोवृत्ति विशेष का निरूपण रचनाकार का मूल स्वर है तो कथानक प्रतीकात्मक होगा। मानव की वाह्य अथवा आन्तरिक प्रकृति का चित्रण प्रस्तुत करने वाले उपन्यासका कथानक वैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिक होगा। यथार्थ अथवा घटनात्मक सत्यता से निर्मित 'वस्तु' पर आधारित उपन्यास आंचलिक की कोटि में आते है। कहने का तात्पर्य यह है कि कथावस्तु की प्रकृति ही उपन्यास के स्वरूप अथवा कोटि का निर्धारण करती है।

ब. **प्रतिभा और कौशल** : उपन्यास, उपन्यास कार की प्रतिभा और कौशल पर ही श्रेष्ठ अथवा अश्रेष्ठ श्रेणी में आता है। सामाजिक गतिविधियों, वैयक्तिक अभिरुचियों यथा घटनात्मक प्रतिक्रियाओं को उपन्यास कार किस सीमा तक ग्रहण कर पाता है, फिर उसे आत्मसात कर अपनी कल्पनात्मक शक्ति से किस रचनात्मक कौशल से अभिव्यक्त कर पाता है–यह न्यूनाधिक रूप से उपन्यास कार की क्षमता पर ही आश्रित होता है।

स. **विषय ज्ञान** : विषय सम्बंधी ज्ञान भी उपन्यास रचना की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नही है। विषय विशेषज्ञ विषय–विशेष पर आधारित 'वस्तु' का निर्माण जितनी उत्तमता के साथ कर सकता है उतना अपरिपक्व ज्ञानराशि का रचनाकार नहीं। अध्ययन, अनुभव, पर्यवेक्षण अनुमान तथा कल्पनाशक्ति विषय के ज्ञान के लिए अनिवार्य है।

'वस्तु' के गुण

'वस्तु' औपन्यासिक रचना का मेरुदण्ड होता है। यह उपन्यास का ढाँचा है। इसीलिए 'वस्तु' उपन्यास का प्राण तत्व माना गया है। अन्य तत्वों की भाँति वस्तु ने विकास किया है और इस विकास के साथ इन विशेषताओं से अपने को समलंकृत किया है जिन्हे गुणों की संज्ञा दी गई है। इन्ही गुणों के आधार पर 'वस्तु' का मूल्यांकन किया जाता है। वस्तु के इन्हीं गुणों का विवेचन किया जा रहा है।

सामान्यतः प्रत्येक औपन्यासिक रचना का पृथक कथानक होता है। उसका गुण विशेष ही उसे अन्य कथानकों से पृथक करता है। फिर भी सामान्य एवं सर्वमान्य गुण स्वीकार किए गए हैं जिन्हे परम्परागत गुण कहते हैं।

संगठनात्मकता : यह 'वस्तु' का सर्वप्रथम गुण है। 'वस्तु' विविध घटनाओं और क्रिया कलापों का समुच्चय होता है। उनमें पारस्परिक संबंद्धता आवश्यक है।

मौलिकता : यह 'वस्तु' का दूसरा मुख्य गुण है। मौलिकता रचनाकार की प्रतिमा का परिचायक होता है। कथानक जितना मौलिक होगा, उतना ही नवीन, आकर्षक और महत्वपूर्ण होगा। अनेक उपन्यासों का विषय एक ही है पर उनकी मौलिकता ने उस सामान्य विषय को विषय विशेष बना दिया है। मौलिकता का गुण तभी आता है जब उपन्यास कार में यथार्थ को ग्रहण करने की शक्ति हो। सूक्ष्म पर्यवेक्षण और तलस्पर्शी विवेचन कौशल हो। कहा जा सकता है कि इतिहास संबंधी विषय में क्या मौलिकता उत्पन्न की जा सकती है ? किन्तु उपन्यासकार की जीवन दृष्टि,

अनुभूत्यात्मक सत्यता, तथा वैचारिक शक्ति जैसी नवीनता से 'वस्तु' को समन्वित किया जा सकता है। जिससे वह मौलिक प्रतीत होने लगे।

3. **घटनात्मक सत्यता** : मानव जीवन की भाँति ही 'कथानक' भी सुखद और अप्रिय अनिश्चित और आकस्मिक, स्वाभाविक और कृत्रिम प्रसंगों का जमघट है। कभी–कभी प्रमुख घटनाएँ सत्याधरित न होकर यथार्थ की संभावनाओं के इतने निकट होती हैं कि अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होतीं। मात्र घटनाओं अथवा मात्र कल्पना के सहारे 'वस्तु' को रोचक या आकर्षक ही बनाया जा सकती और न विश्वसनीय ही।

4. **शैलीगत कौशल** : सामान्य और परिचित घटनाओं में नवीनता और आकर्षण उत्पन्न करने के लिए शैलीगत कौशल अपेक्षित होता है। उपन्यास के क्षेत्र में जो भी नवीन प्रयोग देखने को मिलते हैं वे शैलीगत कौशल के कारण ही होते है। शैलीगत विविधता उपन्यास वैविध्य की सृष्टि करती है।

5. **वर्णनात्मक रोचकता** : मनोरंजन के लिए उपन्यास में वर्णनात्मक रोचकता अत्यावश्क है। इसके अभाव में रचना कितनी ही उत्कृष्ट क्यों न हो, पाठक उसे पढ़ना तक न चाहेगा। वर्णनात्मक रोचकता का संबंध सीधे कथानक से है। जैसे–जैसे मनोविज्ञान का विकास होता गया वैसे–वैसे रोचकता उत्पन्न करने के लिए मनोवैज्ञानिक तत्वों का आश्रय लिया गया।

वस्तु के भेद

अ. शिथल वस्तु विन्यास : **ब. संश्लिष्ट वस्तु विन्यास**

सरल वस्तु विन्यास : किसी घटना विशेष को लेकर।

मिश्रित वस्तु विन्यास : परस्पर विरोधी घटनाओं का समागम/अनेक कथानक एक साथ चलते हैं।

वस्तु विन्यास को प्रभावित करने वाले कारक

अ. उद्देश्य। ब. प्रतिभा। स. वैयक्तिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ।

वस्तु और शिल्प के उपकरणों का संबंध

अ. वस्तु और चरित्र। ब. वस्तु और कथोपकथन। स. वस्तु और वातावरण। द. वस्तु और शैली। य. वस्तु और उद्देश्य।

'वस्तु' और 'शिल्प' के विविध पक्षों के विस्तृत विवेचन से स्पष्ट है कि 'वस्तु' औपन्यासिक रचना सृष्टि की आधार भूमि है। उपन्यास शरीर का मेरुदण्ड है औपन्यासिक विकास क्रम की ऐतिहासिक कहानी है और औपन्यासिक सर्जनात्मक कला एवं विज्ञान का वह सूत्र है जो अन्य तत्वों को परस्पर अन्योन्याश्रित स्वरूप प्रदान करता है। वस्तु के स्वरूपगत मान्यताओं में भले ही परिवर्तन हुए हों किन्तु अभी तक ऐसा न कोई युग आ सका है जिसमें एक भी ऐसी रचना जन्म पा सकी हो जिसमें स्थूल या सूक्ष्म रूप से 'वस्तु' विद्यमान न हो। 'वस्तु' का स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर होना अगति की अपेक्षा प्रगति का लक्षण है। ज्यों–ज्यों 'वस्तु' सूक्ष्मता की ओर

बढ़ रहा है त्यों–त्यों उसकी शक्ति और प्रभावात्मकता बढ़ती जा रही है। ''कल्पना से परे न होगा कि एक दिन कथावस्तु अत्यंत सूक्ष्म या अदृश्य होकर साहित्य की उपन्यास विधा को इतना शक्ति सम्पन्न बना दे कि अन्य विधाएं अपने अस्तित्व तक की रक्षा के लिए उपन्यास की मुखापेक्षी बन जायें।

वस्तु और शिल्प के पिछले विवेचन विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 'वस्तु' शिल्प के प्रमुख छः तत्वों में से एक है। इसी प्रकार 'शिल्प' 'वस्तु' की रचना रूप में परिणति की प्रक्रिया है। दोनों एक दूसरे के अभाव में अपना अस्तित्व गवाँ बैठती है। जिस प्रकार शरीर पाँच तत्वों से निर्मित है किन्तु जब तक 'प्राण तत्व' उसमें नहीं आता वह अचेतन रहता है, इसी प्रकार 'वस्तु' रूपी प्राण के अभाव में 'शिल्प' भी अचेतन अथवा सजीव या प्रभावकारी नही होता। स्पष्ट है कि 'वस्तु' और 'शिल्प' अन्योन्याश्रित है।

उपन्यास की आश्चर्यजनक और अप्रत्याशित गतिशीलता को देखते हुए जहाँ यह असम्भव नहीं है कि उपन्यास–शिल्प किसी क्षण ऐसा रूप धारण कर ले कि 'वस्तु' का स्वरूप संक्षिप्त हो उठे। इस क्षेत्र में शिल्पगत नवीन प्रयोग इस सम्भावना को सबल बनाते है, वहीं विकासात्मक उपलब्धियों और प्रयोगों की क्षणिक और अस्थाई प्रकृति के आधार पर इस विश्वास को भी बल मिलता है कि उपन्यास क्षेत्र मे शिल्पगत कितने ही नवीन प्रयोग क्यों न जन्म लें 'वस्तु' बीजरूप में उपस्थित रहकर उपन्यास का पोषण करता रहेगा।

2. उपन्यासों की रचना प्रक्रिया और वस्तु शिल्प की कलात्मक स्थिति।

उपन्यास कार देखे सुने जीवन को अपनी व्यक्तित्व–सामर्थ्य के अनुसार समझता है। उसकी जीवन संबंधी यह समझ या धारणा, उसकी रचना की मूल दृष्टि है। यह दृष्टि उपन्यास का 'कथ्य' है। 'कथ्य' को 'जीवन चित्र' में परिणत करने की विधि उपन्यास का 'शिल्प' है। उपन्यास के जीवन में पात्र अपने मूल स्वभाव के अनुसार गतिशील रहते है। उस गतिविधि के परिणाम स्वरूप उनके जगत में जो परिस्थिति सूत्र विकसित होता है, वह 'कथा' या 'वस्तु' है। उपन्यास कार की सफलता उसकी जीवन विषयक परिपक्व दृष्टि और उस दृष्टि को मानव चरित्र तथा परिस्थिति क्रम में साक्षात् करने की समुचित सामर्थ्य में 'उपन्यास' अनुभूत जीवन का पात्र–कथा युक्त गद्यात्मक विस्तीर्ण चित्र है।

उपन्यास रचना से यथेष्ट पूर्व उसकी मूल प्रेरणा का रचयिता के हृदय में बीजारोपण हो जाता है। वही बीज स्वयिता के चेतन अवचेतन मस्तिष्क में एक काल तक पलकर, अंकुरित होकर पुष्ट वृक्ष का रूप धारणकर लेता है। इस प्रकार लेखक के हृदय में रचना का सूक्ष्म स्वरूप प्रस्फुटित हो जाने पर इसे लिखित शब्दों का आकार प्रदान करना भर शेष रह जाता है। तब लेखन–क्रिया का महत्व किसी देखे हुए कल्पनागृहीत वृक्ष के रेखांकन मात्र के समान रहता है। वास्तव में किसी लेखक की उपन्यास कला उसकी बीजसूत्र की ग्राहक और पोषक क्षमता पर निर्भर है। यह प्रक्रिया अत्यंत सूक्ष्म है और अदृश्य है। इसका सुस्पष्ट सुनिश्चित विवेचनकार्य

कठिन है। फिर भी इसे समझने के लिए इस क्रिया की सम्भावित गति विधि पर विचार किया जा सकता है।

उपन्यासकार को जो वस्तु किसी रूप में सर्वप्रथम सूझती है, वह पूर्वोल्लिखित तीन तत्वों में से एक से अवश्य संबद्ध होती है। कभी लेखक को रोचक या मर्मस्पर्शी घटना का एकायक ध्यान आता है, अथवा कोई देखा सुना तथ्य उसकी कल्पना को प्रेरित–उद्वेलित करता है। कभी कोई चरित्र उसे विचारने या अपने को लेखनी में उतारने की स्फूर्ति देता है, अथवा जीवन का कोई सत्य सहसा उसके अन्तर को छू जाता है कि लेखक लेखनी उठाने के लिए विवश हो जाता है। कलाकार के अन्तर में ऐसे स्फुरण, ऐसी सूझे आए दिन भीड़ लगाये रहती है। इस भीड़ में से वह किसे चुने और किसे त्यागे ? यह समस्या उसका पीछा नहीं छोड़ती। जो सूझ मार्मिक है, ऐसे क्षणों में आई है, जव लेखक का कलाकार सजग था और जिसे अनुभूति, अनुभव की अनुकूल जलवायु मिलती रही है, वह रचयिता के मन में बच रहती किसी न किसी दिन रचना का रूप धारण कर लेती है। किसी अच्छें उपन्यास की रचना के लिए आवश्यक है कि उपन्यास कार की अनुभूति और चिन्तन शक्ति प्रखर हो, अविचल एकाग्रता हो तथा उसमें विधायक रचना–क्षमता हो।

उपन्यासों की रचना प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए डॉ0 शशिभूषण सिंहल लिखते है– "जब लेखक जीवन तत्वों को ग्रहण करने के लिए सचेष्ट नहीं रहता, पैसे या प्रचार के लिए लिखने को उतावला रहता है और बीज बोते ही उसके फूलों की सुगन्ध लेने और फल–चखने को आतुर हो उठता है तभी अपरिपक्व तथा अनाकर्षक रचनाएँ जन्म लेती हैं। जो उपन्यासकार लिख–लिख कर पोथो का ढ़ेर लगाने की अपेक्षा अपनी सुरचित कृतियों के दीर्घ जीवन की कामना करते है, वे उनकी विधिवत विकास प्रक्रिया का पूरा–पूरा ध्यान रखते है। उपन्यास के उक्त तीनों तत्वों (कथ्य, कथा, पात्र) का उपयुक्त मानसिक सामंजस्य हो जाने पर रचना की पंक्तियाँ उनकी लेखनी में स्वतः सरिता प्रवाह की भाँति निःसृत होती जाती है। जीवन तत्वों को मधुमख्खी की भाँति संचितकर उनके पराग को अपनी कला–साधना से मधु में परिणत करने वाला उपन्यासकार सहज भाव से 'स्वान्तः सुखाय' लिखता है। उसका यह प्रणयन जीवन में कर्म योग की भावना से मेल खाता है।"[94]

उपन्यास–रचना पक्रिया को कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करना उचित होगा। सिंहल आगे लिखते हैं– उपन्यास कार वृन्दावन लाल वर्मा को अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास– 'गढ़ कुडार' की रचना के लिए प्रेरण तेरहवीं शताब्दी की एक रोमांचकारी घटना से मिली थी। उस समय 'कुडार' में खँगार जाति का राजा था। राजा के पास बुन्देला जाति का सोहन पाल शरणार्थी बन कर सहायता लेने आया। सहायता के बदले में राजा ने सोहन पाल की पुत्री से युवराज के विवाह का प्रस्ताव रखा। बुन्देले रवँगारों को जाति पाँति में नीचा समझते थे। क्रुद्ध सोहन पाल ने अन्त में इस अनुचित प्रस्ताव के अपमान का बदला षड्यंत्र द्वारा लिया। उसने विवाह का बहाना करके

ठीक विवाह के अवसर पर छलबल द्वारा खँगारों का सर्वनाश कर 'कुडार' में बुन्देला राज्य स्थापित किया था। यह घटना वर्मा जी के चित्र मे संस्कार रूप में बसी हुयी थी। शिकार का उन्हे व्यसन था। एक रात जंगलों में वेतवा नदी के किनारे शिकार की टोह मे झाड़ी की ओट में बैंठे थे। बयार के झोंकें और ऊपर से धुँधली चाँदनी। प्रकृति की विशाल गोद में दूर चाँदनी में 'कुंडार' का प्राचीन निर्जन किला झाई मार रहा था। ऐसी हृदय स्पर्शी वेला में वर्मा जी के मन में कल्पना और विचारों की आँधी सी आ गई। कितना प्राचीन है यह गढ़ ? न जाने कितने दृश्य इसने देखे होगे ? कैसा वैभव रहा होगा यहाँ ? किन्तु आज तो कुछ भी शेष नही। हृदय में टीस उठी। मन का संस्कार व्यग्रता से करवटें लेने लगा। सुनी हुई घटना में निहित सत्य को खोजने की पारी आ गई। उनकी विश्लेषणात्मक वृत्ति सजग हो चली।''[95] वर्मा जी इसी प्रसंग में स्वयं लिखते हैं– ''प्राचीन में कुछ बहुत अच्छा था, कुछ बुरा। बुरे के हम शिकार हुए, अच्छे ने हमें सर्वनाश से बचा लिया। क्या वर्तमान और भविष्य के लिए हम प्राचीन से कुछ ले सकते हैं ? प्राचीन की गलतियों से बच सकते है, वर्तमान का हर एक क्षण भूत और भविष्य में परिवर्तित होता रहता है। कोई किसी से अलग नहीं। इन्हें भली भाँति देखो परखों और सश्लेषण की विधि अपनाकर पढ़ो। बुन्देल खंड के इतिहास और भूगोल से परिचित था ही, बहुत परम्पराएं भी हाथ लग गई थी। निश्चय किया कि वर्तमान की समस्याओं को लेकर प्राचीन में रम जाओं और उपन्यास के रूप में जनता के सामने अपनी बातों को रख दो।''[96]

इस विश्लेषण ने कुंडार संबंधी घटना को सुचिन्तित आधार दे दिया। खँगार–बुन्देला–वैमनस्य और हिन्दू सत्ता के पतन के मूल में वर्मा जी ने हमारी सामाजिक विषमताओं को उत्तरदायी पाया। इस दृष्टि से उन्होंने घटना का अन्वय किया और उसे पुष्ट रूप प्रदान करने के लिए तत्संबंधी परिस्थिति विकास क्रम के रिक्तस्थलों को उर्वर कल्पना पुट से भरा। परिस्थिति क्रम की योजना के साथ ही उसके प्रेरक पात्र भी स्वतः शनैः–शनैः वर्मा जी के मानस में उभर आए। फलतः इसी उधेड़ बुन में रात कट गई। शिकार का कार्यक्रम जहाँ का तहाँ रह गया। प्रातः तक एक उपन्यास की रूपरेखा उनके मस्तिष्क में खिंच गई। कल्पना में रचना की रूपरेखा भली भाँति उभर आई तो उसे शब्दों में उतारने में उन्हें देर नहीं लगी। अन्य व्यस्तताओं के बीच भी 'गढ़ कुंडार' जैसा वृहत्काय उपन्यास उन्होंने केवल दो माह में लिख डाला जिसमें प्रणय, और शौर्य की अनूठी तीन कथाएं, पूरा एक युग तथा नागदेव, अग्निदत्त दिवाकर, तारा, अर्जुन कुम्हार, जैसे सशक्त पात्र एक साथ सभी कुछ थे।

उपर्युक्त उदाहरण उपन्यासकार को बीज रूप में सूझने का था। पात्र सूझने पर भी उसकी कल्पना शेष दो तत्वों की रचना करती है। रचयिता को जब कोई व्यक्तित्व प्रभावित कर सृजन–प्रेरणा देता है तब वह युग के रंग में 'रंगे हुए अपने अन्तस्तल रूपी दर्पण में उस मूर्ति का भावन करता है। महान पात्र एक नहीं अनेक रचयिताओं को प्रेरित कर विभिन्न रचनाओं को जन्म देने की सामर्थ्य रखते हैं। राम के उदात्त चरित्र को लेकर भिन्न–भिन्न युगों की प्रतिमाओं ने

महान रचनाओं की रचना की।। वृन्दावन लाल वर्मा को अपने अन्य उपन्यास 'मृगनयनी' की रचना की प्रेरणा उसकी नायिका के अपूर्व व्यक्तित्व से प्राप्त हुई थी। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में गूजर कुल की किसान कन्या मृगनयनी को, उसके स्वास्थ्य, सौंदर्य और शौर्य पर मुग्ध होकर ग्वालियर के राजा मानसिंह ने अपनी प्रिय रानी बनाया था उस काल के ग्वालियर किले में स्थित मान मंदिर तथा गूजरी महल हैं और संगीत में तभी के प्रचलित गूजरी टोडी और गूजरी मंगलराग के अवशिष्ट हैं। वर्मा जी ने इन कलाकृतियों के मूल में मृगनयनी के भव्य व्यक्तित्व के दर्शन किए। उन्होंने मृगनयनी के जीवन के विपरीत पक्षों–कृषक और राजसी को प्रकाशित करने और उनमें मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संगति बैठाने के लिए परिस्थिति विकास क्रम की कल्पना की। फिर उस चरित और कथा को आधारभूत दृष्टि मिली। उपन्यास में स्पष्ट हुआ कि शारीरिक स्वास्थ्य मानवता के निर्वाह की पहली सीढ़ी है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रह सकता है। मस्तिष्क से तर्क वितर्क उत्पन्न होते हैं। हृदय कोमल भावनाओं और कला–प्रेम को जन्म देता है। कर्तव्य और भावना के संतुलन समन्वय में ही मानवजीवन का क्षेम है। इस प्रकार 'मृगनयनी' में रचयिता को पात्र से 'कथ्य' और 'कथा' की प्राप्ति हुई।

रचयिता को कथा अथवा पात्र के स्फुरण के अतिरिक्त तीसरे प्रकार की प्रेरणा किसी जीवन सत्य से प्राप्त हो सकती है। इसके लिए कलाकार को विशेष सतर्क और समर्थ होना चाहिए। वह जीवन में जो कुछ देखता सुनता समझता है, उसका दीर्घ मंथन करने पर ही निष्कर्ष स्वरूप कोई बात कहने को पाता है। फिर वह वस्तु के वायवीय अमूर्त तत्व को चरित्रों और घटनाओं में व्यक्त कर मूर्त रूप प्रदान करता है। ऐसी स्थिति में रचयिता को रचनात्मक कल्पना की विशेष आवश्यकता होती है। यहां उल्लेख्य है कि जो उपन्यास कथा बीज से जन्म लेते हैं, वे अधिक रोचक होते हैं जो किसी चरित्र से विकसित होते हैं उनमें विशेष प्रेरणा रहती है और जो जीवन दर्शन से उद्भूत होते हैं, उनमें मानव चिन्तन को आन्दोलित करने की असाधारण क्षमता होती है।

3. अमृतलाल नागर के उपन्यासों की रचना प्रक्रिया, वस्तु शिल्पगत प्रयोगः

उपन्यासों की रचना–प्रक्रिया के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उपन्यास के मूल तीन तत्वों में किसी एक तत्व से शेष दो तत्वों का पल्लवन किस प्रकार होता है। उपन्यास रचना में जीवन का यथार्थ और रचयिता के चेतना स्तर, जो पृष्ठभूमि तैयार करते हैं उस रहस्य को नागर जी ने स्वयं अपने उपन्यास 'अमृत और विष' में उद्घाटित किया है। नागर जी ने अपनी उपन्यास रचना–प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए 'अमृत और विष' उपन्यास के अन्तर्गत एक लघु उपन्यास प्रस्तुत कर उसमें उपन्यासकार का जीवन और उसके द्वारा रचित उपन्यास रचना की प्रक्रिया प्रस्तुत की है। **डॉ0 सिंहल के अनुसार–**

'अमृत और विष' का नायक अरविंद शंकर अपने चिन्तन और लेख्न द्वारा वर्तमान से अतीत, अतीत से वर्तमान और फिर वर्तमान से भविष्य की ओर उन्मुख होता है। उसकी यह

प्रक्रिया घूमने वाले बिजली के पंखे का स्मरण कराती है। उपन्यास में अरविंद शंकर आत्मकथा प्रस्तुत करता है। वह आज साठ वर्ष का हो रहा है। संध्या को नगर के मान्यजनों ने उसकी अभिनंदन सभा का आयोजन किया है। यह स्वागत सम्मान पाकर अरविन्द अन्तर्मुखी हो जाता है। जीवन के अभावों की कसक उसके भावुक हृदय को कचोटने लगती है। वह अपने वर्तमान जीवन के आन्तरिक विरोधों को देख सुन रहा है। वर्तमान की पीड़ाओं ने अरविंद को उसके विगत जीवन में खोने की प्रेरणा दी। वह अपने विगत जीवन पर विचारने के क्रम में पूर्वजों का भी परिचय देता है। अतीत का स्मरण कर अपने वर्तमान जीवन की स्थिति और समस्याओं पर विचार करता है और फिर वह एक उपन्यास लिखने लगता है जिसमें उसके विगत और वर्तमान अलक्षितरीति से छनकर व्यक्ति और समाज के जीवन की भावी संभावनाओं के रूप में व्यक्त होते हैं। 'अमृत और विष' में अरविंद शंकर के पूर्वजों और उसके पिछले जीवन की कथा 'अतीत' है, उसके परिवार की कथा 'वर्तमान' है और उसके द्वारा रचित उपन्यास 'भविष्य' है।

अरविंद शंकर की जीविका लेखन से है। जब उसका चित्त अपने वर्तमान से विकल हो उठता है उसे मुक्ति उसकी लेखनी ही देती है। वह अपने अवसाद को भूलकर रचना के पात्रों के साथ सम्भावित जीवन की कल्पना लीला में भाग लेने जा पहुंचता है। उसकी कल्पना यथार्थ से पलायन नहीं करती। यथार्थ की मिट्टी में जन्म लेकर भविष्य के स्वप्न देखती है। अपने उपन्यास में अरविन्द अपनी देखी हुई अन्तर्जातीय विवाह, हिन्दू मुस्लिम द्वेष, लड़कों के विद्रोह, बाढ़ से उत्पन्न कष्टों आदि की समस्याओं को रखकर उनपर लेखकोचित प्रयोग करता है।

अरविंद शंकर अपना उपन्यास लिखते समय लेखन–प्रक्रिया संबंधी जो सूत्र प्रसंगानुसार प्रस्तुत करता चलता है वे उल्लेखनीय और विचारणीय हैं। लेखक किस स्थिति में लिखने बैठता है इस प्रश्न का उत्तर अरविंद इन शब्दों में देता है–

"कुछ विचारक लोग कहा करते हैं कि लेखक को भूखा रखो तभी वह लिखेगा। मैं समझता हूं कि यह एकांगी हकीकत है। अनुभूति चाहे अभाव की हो या भाव की चरम स्थिति छूते ही लेखक को सृजनात्मक स्फुरण मिल जाता है। सुख और दुख दोनों ही स्थितियां अपने चरम बिन्दु पर उसे अपने लिए चुनौती सी लगने लगती है। मेरा काम ऐसा है जो सुख और दुख से ऊपर उठकर ही होता है। मैं समझता हूं कि मैं सुख और दुख से भी बड़ा हूं।"[97]

लेखक जब लिखने बैठता है, वह अपनी धारणा को कथा के पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करता है। कथा के पात्रों की रचना–प्रेरणा लेखक को यथार्थ जीवन के आधार पर प्राप्त होती है। वह यथार्थ जीवन के मनुष्यों के सूक्ष्म अवलोकन से उनके आन्तरिक तत्व को हृदयंगम करता है। उस तत्व से वह कथा पात्रों का विकास करता है। अरविंद शंकर के शब्दों में नागर जी लिखते हैं–

"रद्धूसिंह (यथार्थ व्यक्ति) के मानस में प्रवेश करने के लिए उसके वाह्य जगत के अन्तरंग यथार्थ को न देखूंगा तब तक उसके मन का यथार्थ मुझे क्यों कर मिल सकेगा

अपना–अपना तरीका है। मैं यथार्थ की गति स्थूल से सूक्ष्म मानकर चलता हूं। यथार्थ के स्थूल से सूक्ष्म तत्वों पर आते हुए 'यथार्थ' शब्द किसी भी स्तर पर अपना मूलभूत अर्थ नहीं खोता और इस सूक्ष्म से फिर एक नए यथार्थ की स्थूल अनुभूति तक कभी न कभी होकर ही रहती है।''[98]

यथार्थ जीवन का व्यक्ति कथा में आकर अपना रूप बदलकर कुछ का कुछ बन जाता है। यह कोई अनोखी बात नहीं हैं। ''सृष्टि विभिन्न तत्वों का आधार लेकर ही होती है, लेकिन उस सृष्टि का रूप अपने मौलिक तत्वों से एक दम भिन्न हो जाता है। बाप बेटे आपस में कितना गुण रूप साम्य क्यों न रखते हों, लेकिन उनमें मौलिक दृष्टि भेद होता ही है। इसे बेटे की बाप के प्रति अवज्ञा नहीं माना जा सकता।''[99] ''यथार्थ जीवन के कुछ पात्रों से लेखक ऐसा बंध जाता है कि नए–नए रूपों में उनको बारम्बार विभिन्न परिस्थितियों में प्रस्तुत करने की बान बना लेता है। कलाकार एक मूल बिम्ब से पचासों और कभी–कभी सैकड़ों भिन्न–भिन्न पात्र–पात्रियों का सृजन कर डालता है।''[100]

नागर अपनी रचना का प्रारम्भ करते समय एकाएक किसी दृश्य का मानसिक प्रत्यक्षीकरण करने लगते हैं। उस दृश्य को विधिवत लेखनी पर उतारते ही पात्र स्वयं उसमें आकर जुड़ने लगते है और प्लाट.....

''प्लाट की वह चिन्ता नहीं करता। लेखक के औपन्यासिक संस्कार पात्रों के सहारे युग कथा में प्रवेश पाते हैं। उदाहरण के लिए अरविंद शंकर जब उपन्यास लिखने बैठता है उस समय तक कथा, पात्रों की कोई सुनिश्चित रूपरेखा उसके मस्तिष्क में नहीं है। उसकी लिखने की वृत्ति सधी हुई है। वह बताता है, जैसे– दौड़ने और उड़ने की तैयारी में गर्माते हुए हवाई जहाज के पंखों की गूँज,..... बैंड बाजे, बैगपाइप, झय्यम–झय्यम शहनाई और भीड़ की सम्मिलित गूँज से कान के भीतर पर्दे में सुरसुरी सी उठ रही है। अपार्थिवता पार्थिव होने लगी, अव्यक्त व्यक्त होने लगा, मैं बारात का दृश्य लिखने जा रहा हूँ।''[101]

दृश्य में पात्र स्वयं आ जाते हैं और वे लेखक की अन्तर्प्रेरणा से गतिशील होकर अपना मार्ग बनाते चलते है। लेखक अपनी सूझ से उन्हे विभिन्न दिशाओं में उन्मुख भर करता है और ''विम्बावली एक बार ढर्रे पर सध भर जाय फिर, तो बस तमाशा देखते चले जाओ। चेतना अन्तर्मुखी होते ही सचमुच दैवी शक्ति हो जाती है।''[102]

नागरजी की रचना–प्रक्रिया को समझने की अनिवार्यता का कारण है उपन्यास की आधार भूत चेतना भूमि। रचनाकार की सृजनात्मिका शक्ति के समाकलन हेतु कलाकार की अनुभूति, कल्पना, भाव, विचार, युगबोध, जीवन मूल्यादि का अनुशीलन भी आवश्यक हो जाता है।

रचना–प्रक्रिया में प्रविष्ट होने से पूर्व नागर जी मानसिक स्तर पर अपने अनुभूति परक चिन्तन को खूब माँजते है। तत्पश्चात् उन मानस क्षणों को देश–काल, परिवेश और संस्कारों के प्रभाव में लाकर शिल्पगत विविध आयामों में आबद्ध करते है। नागरजी का मन्तत्य भी है– ''अपनी रचना–प्रक्रिया के संबंध में कुछ कहने के लिए मै जब कभी प्रेरित किया गया हूँ तभी मेरा

मन उलझकर तरह–तरह के प्रश्नों से भर उठा है। रचना–प्रक्रिया क्या हर बार एक जैसी होती है ? विचार, भावनाएं और कल्पनाएं रहते हुए भी मन हर समय रचना करने के लिए प्रस्तुत क्यों नहीं होता ? कभी उत्तप्त और उत्तेजित अशान्त मन भी अपने चरम बिन्दु को पाकर सहसा रचनात्मक हो उठता है और कभी अड़ियल बैल की तरह लाख उकसाये जाने पर भी टस से मस नहीं होता, इसका क्या कारण है ? यह बतलाना यदि आवश्यक नहीं तो कठिन जरूर है। हर बार मैं अपने मन में एक नया जबाब बड़ी मेहनत से ढूंढ़ता हूँ और आज तक बराबर ही यह अनुभव करता हूँ कि मेरा उत्तर पूरा नहीं हुआ। ब्रह्म ज्ञान के समान 'नेति–नेति' ही कहना पड़ता है।''[103]

उपन्यास में निहित रूढ़ आनुभूतिक सत्य को उद्घाटित करने में शिल्प का महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं। शिल्प–विधान वस्तुतः उपन्यास की सम्पूर्णता का द्योतक है। कथा–प्रतिपादन शैली, पात्रों की मानसिकता, संवाद की व्यक्तित्व–व्यंजकता, परिवेश की यथार्थता, भाषा की सहज प्रवाहमयता आदि शिल्पगत तत्व रचनाकार के चिन्तन को संवहन कर नवीन मानव–मूल्यों की प्रतिष्ठा में सहायक सिद्ध होते है। स्मरणीय है कि ''कलाकार की अनुभूति जितनी तीव्र, व्यापक और युगान्तरकारी होती है उतनी ही उसकी दृष्टि और रूप–विधा संचेतन, विश्लेषणात्मक और मौलिक होती है।''[104] वास्तव में शिल्प ही कला की चरम परिणति है। अतः उपन्यास के मर्म का उद्घाटन करने की दृष्टि से शिल्प का सर्वेक्षण करते हुए वस्तु, चरित्र, संवाद, परिवेश सम्मूर्तन तथा भाषा–शैली पर विचार करना आवश्यक होता है।

नागरजी का सम्पूर्ण अध्ययन–अन्वेषण नित्य के जीवन में घुलमिल कर अनुभूति की गहराई में पहुँचने के बाद अभिव्यक्ति पाने के लिये बेचैन हो उठा और कथा–शिल्प का कवच धारण कर मानवतावाद का जय घोष ''ये रचना प्रक्रिया भी अजब है– कभी मन लिखना चाहता है और कल्पना तथा विचार नखरे करते है और कभी कल्पना या विचार सहयोग देने को तो राजी होते है पर अपनी तरह से । कर्म ही हर अमूर्त सत्य की खरी कसौटी है। मूर्त होकर भी सत्य कर्म से मुक्त नहीं।''

नागरजी के 'अमृत और विष' से प्राप्त उपन्यास रचना की प्रक्रिया के संबंध में ये सूत्र बड़े महत्व के हैं। सच कहे तो नागरजी के उपन्यासों की रचना प्रक्रिया इन्ही सूत्रों पर निर्भर है। नागर जी का व्यक्तित्व युग बोध सहित छन कर उनकी रचनाओं में जिस विशेषता के साथ आता है वह दर्शनीय है। वे अनुभव के बिना लेखन की सिद्धि नहीं मानते। इसीलिए जब वे किसी नये उपन्यास के लेखन में प्रवृत्त होते है तब औपन्यासिक वस्तु को अपने निजी जीवनानुभव से गहराई के साथ जोड़ने का उपक्रम करते है। अपनी नवीन औपन्यासिक कृति 'खंजन नयन' के सन्दर्भ में वक्तत्य देते हुए उन्होने इस बात को बडी निष्ठा के साथ स्वीकार किया– ''सूर के जीवन में, उनकी रचनाओं में वात्सल्य और श्रृंगार ही प्रधान है इसी से चाहता हूँ, तेरीं बा आये और बस

सामने ही बनी रहे। 'मानस का हंस' की रत्ना के विरह की ईमानदार छबि उतारने के लिये मैंने उन दिनों तेरी बा से झगड़ा किया और अलग रहकर उपन्यास लिखा।''[105]

नागरजी की रचना–प्रक्रिया का अंग भूत, अनुभव की प्रचुरता एवं यथार्थ वादिता उनके औपन्यासिक कथ्य को समृद्ध बनाती है वे स्वयं कहते है– ''विभिन्न वातावरणों को देखना, घूमना–भटकना, बहुश्रुत एवं बहुपठित होना भी मेरे बहुत काम आता है। यहाँ मेरा अनुभव जन्यमत है कि मैदान में लड़ने वाले सिपाही को चुस्त–दुरुस्त रखने के लिए जिस प्रकार नित्य की कवायद बहुत आवश्यक है उसी प्रकार लेखक के लिए उपरोक्त अभ्यास भी नितान्त आवश्यक है। केवल साहित्यिक वातावरण ही में रहने वाला कथा–लेखक मेरे विचार से घाटे में रहता है। उसे विविध वातावरणों से अपना सीधा सम्पर्क निःसंकोच स्थापित करना चाहिए।''[106]

जहाँ तक रचना–प्रक्रिया में अनुभूति और कल्पना का पूर्ण सामंजस्य की बात है, वास्तव में यही सृजन के लिए स्वरूप भूमिका प्रस्तुत करता है। इस विषय में नागर जी का मत है– ''हो सकता है कि काफी अरसे तक तरह–तरह से बात पकते–पकते उस स्थिति तक पहुँच गयी थी जहाँ मेरी कल्पना मानो सब कुछ पचाकर अपने स्वतन्त्र विकास के लिए सत्य पा गई थी। शायद भाव और विचार समस्थिति पाकर रचना करने लायक हो जाते है।''[107] नागर जी अपनी रचना–प्रक्रिया में इस मुक्तावस्था को स्वीकार करते हुए इसे योगियों की ब्रह्म समाधि से कम नहीं मानते – ''सोचता हूँ योगियों की ब्रह्म समाधि में क्या इससे ज्यादा अच्छी चीज होती होगी मैं भी अपनी ध्यान–सृष्टि में लय होकर अपने मन से उतनी देर के लिए मुक्त हो जाता हूँ। भले ही लोग मुझे और मेरे साहित्य को अपनी कृतियों से हीन मानते हो लेकिन इससे मेरे चरित्र में या मन में अपने प्रति किसी प्रकार की स्थायी हीनता का बोध अब तक नहीं आ पाया। स्थायी तौर पर यदि कभी बाहरी झकोलो से विचलित होता हूँ तो भी उसकी तेज प्रक्रिया में मेरा मन छन–छनकर अपने ही जनम भर के साधे इस सिद्धान्त के प्रति सतत् गहरा आस्थावान् ही होता है।''[108]

वातावरण की विविधता और कलाकार की अनुभूति गहनता ही नहीं देशकाल संस्कृति के साथ–साथ वेश भूषा, भाषा, बोलियों का वैविध्य पूर्ण परिज्ञान भी रचनाकार के कृतित्व को स्थिरता प्रदान करता है। यही कारण है कि नागरजी के उपन्यास कलावाद और मानवतावाद के बीच सेतु बनकर प्रस्तुत हुए है। कोरा शब्द विलास वे पसन्द नहीं करते है उनकी रचना–प्रक्रिया के मूल में लेखकीय उद्देश्य और दृष्टि कोण की उदान्तता महत्व पूर्ण बनकर उभरी है। वातावरण, वेशभूषा, भाषा और बोलियों का जैसा वैविध्य नागर जी के उपन्यासों में है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ हैं।

नागरजी के जीवन में कुछ ऐसे क्षण भी आये है जब विचार जगत् की शून्यावस्था में भी उन्हे लेखन में प्रयुक्त होना पड़ा। वर्षों पूर्व उनके मानस पटल पर जिस सत्य का उद्घाटन हुआ था वह अकस्मात् सायास क्रमबद्ध कागज पर साकार होता गया। 'शतरंज के मोहरे' की रचना इसी विधि से हुई है। भोगे गये यथार्थ जीवन के कटु सत्य और अनुभव अशान्त मन की ऊहापोह

ग्रस्तता के बीच चिन्तन के क्षणों में अचानक उन्हें रचना की प्रेरणा दे गये और पूर्ण योजना के अभाव में भी एक वृहदाकार उपन्यास 'अमृत और विष' का सृजन हो गया।

नागरजी ने उपन्यासों की भूमिकाओं में सृजन, स्फरण क्षणों के संकेत दिये है 'बूंद और समुद्र' का प्रतीकात्मक रूप ग्रहण कर उन्होने भारत की सांस्कृतिक विविधता की सामाजिक एकता के धरातल पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मद्रास के एक मन्दिर मे तमिल पुराण कथा वाचक के मुख से अखिल भारतीय सांस्कृतिक एकता के प्रतीक नैमिषारण्य में चौरासी हजार संतो के पौराणिक सेमिनार के राष्ट्रीय महत्व की बात सुनकर नागर जी 'एकदा नैमिषारण्ये की रचना में प्रवृत्त हुए। 'सात घूंघट वाला मुखडा' उनकी इतिहास रुचि एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचायक है। 'मानस का हंस' के प्रेरणा स्रोत फिल्म निर्देशक स्वर्गीय महेश कौल थे। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' मेहतर समाज और नारी समाज के प्रति नागर जी के संवेदन शील हृदय का उद्‌गार है जो कई वर्षों के अथक परिश्रम से मेहतर बस्तियों के सर्वेक्षण एवं इण्टरव्यू के आधार पर लिखा गया है।

नागरजी ने अपनी रचना–प्रक्रिया के संबंध में नित्य प्रति की जिन्दगी की घटनाओ और मिलने–जुलने वाले व्यक्तियों में से अपने प्रमुख उपन्यासों की कथा वस्तु एवं पात्रों का चुनाव किया है। इस संबंध मे उनका मन्तव्य है– ''मान्यताएँ बदल चुकी हैं। हमारे दैनिक जीवन में अनेक छोटी–बड़ी घटनाएँ होती हैं और काल प्रवाह के साथ हम उन्हे यथा स्थान छोड़कर आगे बढ़ जाते है, फिर भी वे अपनी प्रभावात्मकता को अक्षुण्ण बनाये रखती हैं। अन्तर्मन में छिपकर उचित परिवेश का इन्तजार करती हैं और ठीक समय पर प्रकट होकर अपनी प्रभावात्मक शक्ति का विज्ञापन करती हैं। ऐसी ही घटनाओं से मेरे उपन्यासों का जन्म हुआ है।''[109]

रचना–प्रक्रिया से सम्बद्ध नागरजी के उपन्यासों की वस्तु और शिल्प संबंधी उपलब्धियों का अनुशीलन करना समीचीन होगा।

नागरजी की रचना–सृष्टि–

अमृतलाल नागर हिन्दी के मूर्धन्य रचना कार है। उन्हें प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासकारों में सबसे बडा उपन्यासकार माना गया। उनमें कथा कहने की अद्‌भुत क्षमता है। उनकी वर्णन कुशलता असंदिग्ध है। उनके उपन्यासों में समाज के प्रत्येक वर्ग का समावेश है। नागरजी की सहानुभूति समग्र समाज के साथ है। इससे उन्हें समग्रतावादी कलाकार भी कहा जाता है।

नागरजी की सभी विधाओ को मिलाकर लगभग चालीस रचनाएँ है किन्तु यहाँ उन सबका परिचय देना असंगत होगा, विवेच्य विषयानुकूल यहाँ नागरजी के औपन्यासिक सृष्टि का ही संक्षिप्त परिचय देना उचित एवं संगत प्रतीत होता है।

नागरजी के उपन्यासों को सुविधा की दृष्टि से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

1. सामाजिक उपन्यास 2. ऐतिहासिक उपन्यास। सामाजिक उपन्यासों में 'महाकाल' (भूख), 'सेठ बाँकेमल', 'बूंद और समुद्र' 'अमृत और विष' 'नाच्यौ बहुत गोपाल'। ऐतिहासिक उपन्यासों के अन्तर्गत विविध बोध प्रतीक–ऐतिहासिक–पौराणिक एवं सांस्कृतिक उपन्यासो को रखा जा सकता है। इनके अन्तर्गत 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर,' 'सात घूंघट वाला मुखडा,' 'एकदानैमिषारण्ये,' 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' आते है। इसके अतिक्ति कुछ विद्वानों ने 'बिखरे तिनके' 'ये कोठे वालियाँ' को भी उपन्यास की श्रेणी में रखा है। 'करवट,' 'अग्निगर्भा,' 'पीढ़ियाँ' भी नागर जी की औपन्यासिक रचनाएँ है।

संक्षिप्त परिचय

1. महाकाल

यह नागरजी का प्रथम उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1946 ई0 में भारतीय भण्डार, इलाहाबाद से हुआ। इस उपन्यास में बंगाल में द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् पड़ने वाले दुर्भिक्ष की पृष्ठ भूमि है। यह समाज में विवेक सद्बुद्धि, सद्ज्ञान, सदाचार, एक्य और प्रेम के महाकाल (महा+अकाल) की कहानी है। बाद में उपन्यास 'भूखा' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें लेखक ने वैयक्तिक एवं सामाजिक हितों के द्वन्द्व का निदर्शन कर व्यक्ति के संकीर्ण स्वार्थ अपनी निर्ममता से समाज का गला घोंटते है। व्यक्ति की इस स्वार्थ परता को नागर जीं ने स्वयं देखा था। भूमिका में वे लिखतें हैं– ''सन् तैतालीस के बंग दुर्भिक्ष में मनुष्य की चरम दययता और परम दानवता के दृश्य मैने कलकत्ते में अपनी आँखों से देखे थे। कलकत्ते वालों को उन दृश्यों से घिर जाने के कारण अपना शहर काटता था। इतनी बड़ी भूख वातावरण में लोगों से मुह में कौर लेते नहीं बनता था। बहुत से ऐसे भी थे जिनके ऊपर उन दृश्यों का उतना ही असर होता था जितना चिकने घड़े पर पानी का होता है। 'दुनिया दुरंगी मकारा सराँय, कहीं खूब–खूब कहीं हाय–हाय'। यही हाल था।''[110] उपन्यास के आमुख में नरेन्द्र शर्मा की इन पंक्तियों को उद्धृतकर नागरजी अपनी कला के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हैं–

स्वार्थ की छैनी लिए, लेकर हथौड़ा लोभ का।
मनुज ने निज पूर्ण पावन, मूर्ति को खंडित किया।

व्यक्तिगत सत्ता का मोह सामूहिक रूप से मानव विकास की समस्या पर आवरण डालता आया है। लेखक की धारणा है कि समाज की समस्या से व्यक्ति किसी भी रूप में अछूता नहीं है। यह अशान्ति व्यक्ति के स्वार्थ की कहानी कहती है।[111]

उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से यह व्यक्त किया है कि क्षुधा ग्रस्त व्यक्ति क्षुधा तृप्ति हेतु समाज में अनैतिक एवं अमानवीय कार्य करने के लिए बाध्य होता है। 'बुभुक्षितः किम् न करोति पापम्' लेखक ने अकाल की समस्या को किसी काल विशेष में न बाँधकर सामाजिक परिवेश में देखने का प्रयास किया है। अर्थ एवं काम की क्षुधा से व्यथित व्यक्ति समस्त सामाजिक व्यवस्था को विकृत कर डालता है। पारिवारिक संबंध विघटित होते है। ऐसे ही सामाजिक परिवेश

में महाजनी क्रूरता अपना दामन फैलाकर सामने आती है। क्षुधित व्यक्ति की असहायावस्था का लाभ पूंजी पति उठाते है और उन्हें अपने शोषण की चक्की में यथेच्छ रूप में पीसते रहते है।

उपन्यास में मुख्य रूप से तीन पात्र हैं जिनमें पांचू गोपाल लेखक के विचारों का वाहक है तथा अन्य दो चरित्र–जिमीदार 'दयाल' और बनिया 'मोनाई' शोषक वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं। "दयाल जिमीदार सामन्ती संस्कृति की विकृतियों का प्रतीक है तथा मोनाई महाजन पूंजीवादी सभ्यता के दूषणों की साक्षात् मूर्ति है।"[112]

2. सेठ बाँकेमल

इस उपन्यास का प्रथम संस्करण 1955 में किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। इसमें कुल 110 पृष्ठ है। यह दो मित्रों 'सेठ बाँकेमल' और 'चौबे जी' की कहानी है। दो आश्रय हीन निठल्ले व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए अपनी बुद्धि एवं कौशल से काम लेते है। इसी का हास्य व्यंग्य शैली में चित्रण उपन्यास का विषय है। इस लघु उपन्यास में कुल सोलह कहानियाँ हैं। एक 'बम्बई फाक्स,' दो 'दिल्ली का धावा,' तीन 'गोकुल की गोपियाँ,' चार 'चौबे जी ने लगोंटा कसा,' पाँच 'भतीजे का पैसा ले भागा,' छः 'राजा साहब की नाक कटी', सात 'सुभाष बाबू भाग गए', आठ 'पंचायतराज', नौ 'डाक्डर', दस 'लव इज यूनीवर्सल' ग्यारह 'बावन नम्बर', बारह 'साज्हाबाद्साय ने कलेजा कूटा', तेरह 'कृष्णजी मुहम्मद बने', चौदह 'पाँच का दाँव', पन्द्रह 'जोसे जवानी', सोलह 'तीर तलवार की आसिकी मासूकी',।

हास्य–व्यंग्य के माध्यम से उपन्यास कार ने सामन्तवादी युग के सामाजिक, सांस्कृतिक संबंधो को उद्घटित करते हुए नष्ट होती हुई पीढ़ी का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है। सामाजिक परिवर्तन के कारण प्रतिष्ठित मूल्यों की ओर भी संकेत है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र सेठ 'बाँकेमल' और 'पारसनाथ' 'चौबे' के पुत्र हैं। सेठ 'बाँकेमल' अपनी दूकान पर बैठ कर अपने स्वर्गीय मित्र 'पारस नाथ चौबे' और अपने अतीत जीवन के संस्मरण छोटे–छोटे उपर्युक्त किस्सों के रूप में चौबे जी के पुत्र को सुनाते रहते है। आत्म कथात्मक शैली में इन संस्मरणों को शब्द–बद्ध किया गया है।

3. बूंद और समुद्र

सन् 1956 में प्रकाशित इस उपन्यास में 583 पृष्ठ हैं तथा 68 परिच्छेद हैं। स्वातन्त्र्योन्तर भारतीय समाज व्यवस्था के टूटते संबंधो और परिवर्तित भारतीय मध्यवर्गीय जीवन परिवेश का यथार्थ के विशाल फलक पर रचित नागरजी का एक सामाजिक उपन्यास है। इस कृति में लेखक की औपन्यासिक कला का अभिनव निदर्शन हुआ है। मध्य वर्गीय समाज का अच्छा खासा विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, उपन्यासकार स्वयं कहता है कि "यह उपन्यास देश के मध्यवर्गीय नगरीय समाज का गुण दोष भरा चित्र ज्यों का त्यों आँकने का यथा मति, यथा साध्य प्रयत्न है।[113] वास्तव में नागर जी को एक उपन्यास कार के रूप में ख्याति दिलाने वाला यही उपन्यास है। यह उपन्यास स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ वर्षो बाद लिखा गया उस समय तक भारतीय जनता

को मताधिकार प्राप्त हो चुका था। नव युग की सुधार वादी प्रगति शील विचार धारा की पृष्ठ भूमि पर लखनऊ के एक मुहल्ले को भारत के जन–जीवन का प्रतीक मानकर उसमें जीने वाले विभिन्न श्रेणियों के व्यक्तियों का चित्रण इस उपन्यास में मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है। इस उपन्यास में प्रमुख पुरुष पात्र उपन्यास का नायक सज्जन और लेखक महिपाल, कर्नल आदि है। नारी पात्रों में उपन्यास की नायिका वन कन्य, महिपाल की पत्नी कल्याणी, ताई नन्दो, डॉ0 शीला स्विंग आदि है। बाबा रामजी दास स्वयं लेखक के विचारों के वाहक है। यह उपन्यास बहु पात्र योजना के अन्तर्गत लिखा गया है।

4. शतरंज के मोहरे

सन् 1984 में इस उपन्यास का पाँचवाँ संस्करण भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। 'शतरंज के मोहरे' गदर काल (1856) के कुछ पूर्व के लखनऊ की नवाबी संस्कृति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने वाला एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें नवाबी शासन की (1820से लेकर 1936 ई0 तक) गाजीउद्दीन हैदर और नसीरूद्दीन हैदर के शासन काल की जिन घटनाओं एवं परिस्थितियों का चित्रण किया गया है वे शायद ही किसी अन्य इतिहास ग्रन्थ में उपलब्ध हो सकें। उपन्यास में साहित्य एवं इतिहास का अद्भुत सम्मिलन है। ऐतिहासिक तथ्यों की पूर्ण रक्षा करते हुए इसे सरल, ग्राह्य एवं जीवन्त बनाया गया है।

इस उपन्यास में 1856 की क्रन्ति को सैनिक क्रान्ति मानकर भारतीय जनता का आन्दोलन माना गया है। "कारण, गदर अंग्रेजों की सेना में हुआ, क्रान्ति अवध, बुन्देलखण्ड और विहार के किसानों और स्त्रियों में। गदर में सामन्तों की नेता शाही का अन्त हुआ। उसे पूरे रंग में देखना मैने आवश्यक समझा। इसलिए कथा का सूत्रकाल उस काल में उठाया है जब शाह अवध के बेटे नसीरूद्दीन का बेटा हुआ।"[114] इस उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्र नवाब गाजीउद्दीन हैदर, नसीरूद्दीन हैदर, आगामीर, हकीम मेंहदी, दिग्विजय ब्रह्मचारी, नईम, रूस्तम अली और मातादीन है। नारी पात्रों में गाजीउद्दीन हैदर की बेगम बादशाह बेगम, दुलारी (रुस्तम अली की पत्नी), भुलनी आदि है।

5. सुहाग के नूपुर

इस उपन्यास का पाँचवाँ संस्करण 1973 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ। इसमें कुल 32 परिच्छेद और 267 पृष्ठ हैं। यह उपन्यास दक्षिण भारत की प्राचीन ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में रचित ईसा की प्रथम शताब्दी में रचित तमिल कवि 'इलंगोवन' के महाकव्य 'शिल्पद्विकारम' का हिन्दी रूपान्तर है। 'शिल्पद्विकारम' का हिन्दी अर्थ 'सुहाग के नूपुर' है। नागर जी ने घिसी–पिटी त्रिकोणात्मक प्रेम कथा को लेकर अपनी रचनात्मकता द्वारा उसे रोचक, सरस एवं मौलिक बना दिया है। ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि निर्माण की दृष्टि से नागर जी ने डॉ0 मोतीचन्द्र कृत 'सार्थवाह, वीच तथा एच जी वेल्स लिखित 'विश्व इतिहास', डोनाल्ड मैकन्जीकृत 'मिथ्स एण्ड लीजेन्स ऑफ इजिप्ट' तथा रार्बट ग्रेब्ज कृत 'क्लाडियस' का अध्ययन–मनन किया है।[115]

कुलवधू के 'सुहाग के नूपुर' और नृत्यांगना के घुघुरूओं का संघर्ष ही उपन्यास की मूल संवेदना है, किन्तु यह संघर्ष एक पक्षीय और व्यक्तिगत बन गया है। नगर वधू माधवी समाज के विरुद्ध संघर्ष करती हुई अपनी एक निष्ठा के बल पर एक गृहिणी की भाँति पति स्नेह, संतान, घर, अपार धन–दौलत सब कुछ प्राप्त कर लेने के पश्चात भी सुहाग के नूपुर पहन कर कुल वधू बनने की उसकी अभिलाषा बालू के ढ़ेर की भाँति बिखर जाती है। वह यह कटु निष्कर्ष निकालती है कि "पुरुष जाति के स्वार्थ और दम्भ के कारण ही सारे पापों का उदय होता है। उसकी स्वार्थवृत्ति के नाते ही नारी जाति पीड़ित हैं। एकांगी दृष्टि से सोंचने के कारण पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर सुख दे सका और न ही वेश्या बनाकर। इसीलिए वह स्वयं झकोले खाता है और आगे खाता रहेगा।[116]

उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं, राजनीतिक संघर्षों, महाजनों की व्यापारिक प्रति द्वन्द्विता, दक्षिण भारतीय संस्कृति और कला का सांगोपांग चित्रण हुआ है। उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्र नायक कोवलन और नारी पात्रों में कन्नगी और माधवी प्रमुख है।

6. अमृत और विष

इसका द्वितीय संस्करण सन् 1968 में लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। यह एक वृहत उपन्यास है। "यह उपन्यास भारतीय समाज व्यवस्था का यथार्थ एवं महत्वपूर्ण दस्तावेज है। प्राचीन–नवीन पीढ़ी के नैतिक आदर्शों, संस्कारों, धार्मिक विचारों आदि के संघर्ष का अंकन 'अमृत और विष' के रूप में किया गया है।"[117] इसमें प्राचीन पीढ़ी की रुढ़ि वादिता, धर्मान्धता और आदर्श वादिता के विरोध में नई पीढ़ी के विद्रोह, घृणित राजनीतिक दाँव–पेंच, छात्र आन्दोलन, नारी जागरण, साम्प्रदायिकता तथा उन्मुक्त यौनाचार जैसी अनेक प्रकार की मानवीय दुर्बलताओं और कुत्सित मनोवृत्तियों का अन्धकार प्रकाशमय अमृत और विषमय चित्रण कर उपन्यासकार ने भारतीय समाज के खोखले पन पर गम्भीर प्रहार करते हुए जागरण का संदेश दिया है। अंग्रेजी शासन से लेकर स्वातन्त्र्योत्तर भारत की प्रत्येक स्थिति को इस उपन्यास में अभिव्यक्ति देने के साथ ही साथ पिछले सौ डेढ़ सौ वर्षों के आदर्शो में परिवर्तन का भी चित्रण किया गया है। उपन्यास के प्रमुख पात्र रमेश, छैलू, लाला रूपचन्द, पुत्तीगुरु, राधेरमन, रद्दू सिंह, लच्छू, मास्टर जगदम्बा सहाय, डॉ0 आत्माराम, अरविन्द शंकर आदि है। नारी पात्रों में रानी, गैहाबानो, मिसेज उमा माथुर, मिसेज बोस, मिसेज चौधरी, गोंपी,सहदेई, कुसुमलता खन्ना, माया आदि है।

7. सात घूँघट वाला मुखड़ा

यह उपन्यास प्रथम संस्करण के रूप के सन् 1968 में तथा तृतीय संस्करण 1975 में राजपाल एण्डसंस, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमें 22 परिच्छेद और 156 पृष्ठ है। ये नागर जी का ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें बेगम समरू के ऐतिहासिक किन्तु किंवदन्तियों के कुहासे से आच्छन्न चरित्र को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया है। प्रेम, विलास और राजनीतिक

महत्वाकांक्षा से पीड़ित बेगम समरू हिन्दुस्तान की मलिका बनने के लिए नवाब समरू के विरुद्ध षड़यंत्र करती है किन्तु नवाब के आत्म हत्या कर लेने पर उसे पश्चाताप्, आत्म ग्लानि एवं प्रेम की अग्नि में सुलगना पड़ता है। सत्ता लोलुप महत्वाकाँक्षा के सम्मुख नारी प्रेम की पराजय का वर्णन है।

बेगम समरू के विषय में कुछ सूत्र तो उसे नवाब समरू की विवाहिता बताते है और कुछ सूत्रों के अनुसार वह दिल्ली की बेंगम कही जाती है। किंवदन्तियाँ कहती है कि वह कई पुरुषो से यौन संबंध रखती थीं। नवाब समरू की मृत्यु के पश्चात् उसने 'ली वायस' नामक फ्रांसीसी युवक से विवाह कर लिया। सेंनापति अंग्रेज अफसर 'टॉमस' से भी उसके संबंध थे। 'ली वायस' से विवाह करने पर उसकी प्रजा ने विद्रोह खड़ा कर दिया। फलतः 'ली वायस' ने आत्म हत्या कर ली और उसके पश्चात् बेगम समरू विद्रोहियों द्वारा गिरफ्तार कर ली गयी। अनेक उतार–चढ़ावों से पूर्ण बेगम की जीवन लीला लम्बी बीमारी के बाद 27 जनवरी 1836 को छियासी वर्ष की आयु में समाप्त हो गई।

उपन्यासकार ने इस घटना और इन्हीं ऐतिहासिक पात्रों को लेकर इस उपन्यास की रचना की है। इस संबंध में लेखक ने स्पष्ट किया है कि ''यह इतिहास नहीं, ऐतिहासिक चरित्र प्रधान उपन्यास है। तिथियों और घटनाओं के क्रम परिवर्तन मनोवैज्ञानिक स्थितियों के अनुसार किये गये है क्योकि बेगम समरू का इतिहास प्रामाणिक होते हुए भी उसकी बहुचर्चा के कारण किंवदन्तियों से भरा हुआ है। इसके प्रमुख पुरुष पात्र नवाब समरू, लवसूल, टॉमस, बशीर खाँ, आदि है। और नारी पात्रों में बेगम समरू जिसे जुआना बेंगम, मुन्नी, दिलाराम, टॉमस प्रिया, लवसूल प्रिया आदि नाम भी दिये गये है, महबूबा आदि है।

8. एकदा नैमिषारण्ये

यह उपन्यास भी प्रथम संस्करण के रूप में 1972 में लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ। इसमें 59 परिच्छेद एवं 576 पृष्ठ हैं। पौराणिक पृष्ठ भूमि पर लिखा गया यह उपन्यास नागरजी की सांस्कृतिक चेतना का संदेशवाहक है। भारतीय संस्कृति में समाहित भावात्मक एकता और उसके लिए किये गये निरन्तर प्रयासों ने हमारी राष्ट्रीय एकता को सुरक्षित रखा है। इस देश में विविध संस्कृतियों के संघर्ष, उत्कर्ष, विकर्ष और सामंजस्य का क्रम अत्यन्त प्राचीनकाल से चलता रहा है। इन्ही सूत्रों को लेकर आधुनिक संदर्भ में भावात्मक एकता विधान की दृष्टि से इस उपन्यास की रचना की गई है। अतीत में, नैमिषारण्य में एक महान् सांस्कृतिक आन्दोलन किया गया था, इसमें चौरासी हजार संतों का मेला लगा था। पुराण, भागवत् तथा अनेक धर्म ग्रन्थों पर गम्भीर चिन्तन, मनन और प्रवचन हुआ था। नागर जी उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उपन्यास की भूमिका में लिखते है– ''नैमिष आन्दोलन को ही मैंने वर्तमान भारतीय या हिन्दू संस्कृति का निर्माण करने वाला माना है। वेद, पुनर्जन्म, कर्मकाण्ड वाद, उपासना वाद और ज्ञान मार्ग आदि का अन्तिम रूप से समन्वय नैमिषारण्य में ही हुआ। अवतार वाद रूपी जादू की

लकड़ी घुमाकर परस्पर विरोधी संस्कृतियों को घुला–मिलाकर अनेकता में एकता स्थापित करने वाली संस्कृति का उदय नैमिषारण्य में हुआ और यह काम मुख्यतः एक राष्ट्रीय दृष्टि से ही किया गया था।''[118]

इस उपन्यास के मुख्य पुरुष पात्र नारद, सोमाहुति भार्गव, विन्ध्य शक्ति, प्रवरसेन, चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्र गुप्त, भवनाग, अच्युतनाग, भृगुवत्स, महाराज गणपति नाग, भारत चन्द्र योगिराज नागेश्वर तथा सन्त बुरबुज, महात्मा सौति, नैमिषारण्य के कुलाधिपति शौनक, सेठ कौरोष एवं वसु मित्र, व्यास पीठ के उत्तराधिकारी व्यास प्रचेता आदि हैं। नारी पात्रों में इज्या, (सोमाहुति भार्गव की पत्नी), भारत चन्द्र की पत्नी प्रज्ञा, सरजू वाशिष्ठी–सरजू मैया आदि हैं।

9. 'मानस का हंस'

इस उपन्यास का संस्करण सन् 1987 में 'राजकमल एण्ड संस' दिल्ली द्वारा प्रकाशित है। इसमें कुल 48 परिच्छेद तथा 380 पृष्ठ हैं। 'श्री राम चरित मानस' के रचियता गोस्वामी तुलसीदास के प्रति नागर जी की यह एक विशिष्ठ श्रद्धांजलि है। 'तुलसी' के अप्रामाणिक एवं विवादित जीवन वृत्त को उपन्यास कार ने अपनी प्रतिभा, गहन अध्ययन एवं सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि तथा अभिनव कला से परम् विश्वसनीय बना दिया है। उपन्यास का नामकरण प्रतीकात्मक है। गोस्वामी जी की परमप्रसिद्ध रचना 'रामचरित मानस' जिसे 'मानस' के नाम से भी जाना जाता है। 'मानस', 'मन' या 'मानसरोवर' को भी कहते है। 'हंस' एक पक्षी विशेष जिसके विषय में कहा जाता है कि वह दूध से पानी पृथक कर केवल दूध पी लेता है, और केवल 'मोती' चुगता है। 'मोती' श्रेष्ठ वस्तु मानी जाती है। इस प्रकार 'हंस' नीरक्षीर विवेकी एवं श्रेष्ठ सत चरित्र का परिचायक हैं। गोस्वामी जी का चरित्र कुछ ऐसा ही है। जो 'हंस' की भाँति मोतियों को 'मानस' से चुनते है। वस्तुतः 'मानस' का हंस' गोस्वामी जी का पर्यायवाची शब्द हुआ।

उपन्यास में विभिन्न घटनाओं तथा स्वयं गोस्वामी जी रचित 'विनय पत्रिका' आदि ग्रन्थों में प्राप्त छन्दों के आधार पर उपन्यास कार ने 'तुलसी' के जीवन वृन्त को प्रामाणिक बनाया है। गोस्वामी जी के युग की परिस्थितियों का चित्रण उनके जीवन वृन्त के माध्यम से किया गया है। लेखक ने तुलसी–जीवन से संबंधित अन्तः साक्ष्य एवं वहिःसाक्ष्य के रूप में प्राप्त समस्त प्रामाणिक, अप्रामाणिक सामग्रियों, लोक–प्रवादों, किंवदतियों तथा अनेक संतो की रचनाओं का सम्यक् अनुशीलन कर तुलसी के विश्वसनीय जीवन कथा का सृजनकर अपनी मौलिक प्रतिभा एवं कला–दृष्टि का परिचय दिया है। उपन्यास की भूमिका में नागरजी ने स्पष्ट किया है– ''विनय पत्रिका' में 'तुलसी' के अन्तः संघर्ष के ऐसे अनमोल क्षण संजोये है कि उनके अनुसार ही 'तुलसी' के मनोव्यक्तित्व का ढांचा खड़ा करना मुझे श्रेयस्कर लगा। 'रामचरित मानस' की पृष्ठ भूमि में रचनाकार की मनोवृत्ति निहारने में भी मुझे 'पत्रिका' के 'तुलसी' से सहायता मिलीं। 'कवितावली' और 'हनुमानबाहुक' में खास तौर से और 'गीतावली' तथा 'दोहावली' में कहीं–कहीं 'तुलसी' की

जीवन झाँकी मिलती है। मैने गोसांई जी से संबंधित अगणित किंवदतियों में से केवल उन्हीं को अपने उपन्यास के लिए स्वीकार किया जो कि इस मानसिक ढ़ाँचे पर चढ़ सकती थी।''[119]

''नागरजी ने 'तुलसी' के जीवन वृत्त को सफल औपन्यासिक व्यक्तित्व प्रदान करने की दृष्टि से मात्र ऐतिहासिक संदर्भों के अनुरूप कथा संयोजन ही नहीं किया अपितु इसमें रोमानी कल्पना का अद्युत रस भी प्रवाहित किया है।''[120]

उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्र–गोस्वामी तुलसी दास, मेघाभगत, पंडित बटेश्वर, पंडित आत्माराम, बाबा नरहरि दास, आचार्य शेष सनातन, पंडित गंगाराम, बकरीदी काका, संत बेनी माधव दास, टोडर मल, नंद दास, सूरदास, दीनबन्धु पाठक, राजा भगत आदि है। नारी पात्रों में प्रमुख रूप से रत्नावली, मोहनी बाई राम कली, आदि है।

10. नाच्यौ बहुत गोपाल :

इस उपन्यास का चतुर्थ संस्करण 1982 में राजपाल एण्ड संस दिल्ली द्वारा प्रकाशित है। इसमें कुल 40 परिच्छेद और 345 पृष्ठ हैं। यह ''नागरजी का सर्वथा मौलिक नवीन शैली शिल्प मे लिखा गया सामाजिक उपन्यास है। यह कृति निर्गुनियाँ के माध्यम से नारी जीवन की विवशता और मेहतर समाज के माध्यम से निम्न वर्गीय समाज की विरूपता,उसकी वैचारिक मनोभूमि, अन्तरंग जीवन के एकान्तिक सत्य और सवर्ण मान्यताओं की टकराहट से उत्पन्न जीवन शैली का खोजपूर्ण आलेख है।''[121]

नागरजी ने उपेक्षित् अपमानित और शोषित तथा बिलबिलाती हुई मेहतर जिन्दगी को निकट से देखा और उसे पूरी यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया। नागर जी का कथन है ''मेहतर कोई जाति नहीं, विजेता ने विजितों को दास बनाकर उनसे जबरदस्ती मल–मूत्र उठवाना आरम्भ किया। श्वपच, चाण्डाल जातियाँ सवर्ण नारियों के अपने से नीचे वर्णों के साथ संभोग करने से उत्पन्न संतानों की श्रेणियों में आती है। भंगी समाज में बहुत से छोटे–छोटे पराजित राजकुलों के वंशधर भी मौजूद है। विजेता के दंभ ने विजितों के दंभ को कुचल कर बिना मानसिक गति में नाली के कीड़े की तरह बहा दिया है।''[122] इसकी मूल चेतना विजेता के दंभ और विजित की जिजिविषा की टकराहट से सम्बद्ध है। उपन्यासकार ने निर्गुनियाँ के माध्यम से इस दंभ को तोड़ने का विकल्प ढूंढ़ा। उपन्यास के नामकरण की सार्थकता निर्गुनियाँ के जीवन के उतार–चढाव के सन्दर्भ में स्वतः प्रमाणित है।

उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्र है मोहन, मसुरिया दीन, मास्टर जैक्सन, मसीताराम, स्वामी वेद प्रकाशनन्द, नब्बू खाँ, माशूक डेविड, डॉ0 एण्डरसन, मास्टर बसन्त लाल आदि। नारी पात्रों में उपन्यास की नायिका श्रीमती निर्गुनियाँ, गुल्लन चाची आदि है।

11. खंजन नयन

नागरजी का यह उपन्यास सन् 1981 में राजपाल एण्ड संस काश्मीरी गेट, दिल्ली द्वारा प्रथम संस्करण के रूप में प्रकाशित हुआ। इसमें कुल 21 परिच्छेद है पृष्ठों की संख्या 234 है।

यह उपन्यास कृष्ण भक्त महाकवि सूरदास के अन्धकार युक्त जीवन का प्रकाशमय वृत्त है। नागर जी ने सूर के विभिन्न पदों के आधार पर उनके जीवन मे घटित घटनाओं का चित्रण कल्पना के रंग के साथ किया है। सूरदास के जन्म स्थान और मृत्यु को बड़ी कलात्मकता के साथ विभिन्न विद्वानों के मतों का अध्ययन अभिनन्दन करने के उपरान्त निश्चित किया है। 'मानस का हंस' के तुलसी की भाँति सूर को भी श्याम के लिए काम से संघर्ष करना पड़ा है। जिस प्रकार तुलसी मोहिनी के प्रति आकर्षित हुए थे वैसे ही सूर कन्तो (कान्ता) के आकर्षण में बद्ध होकर अन्त में श्याम को प्राप्त करते है। सूर का जन्म परासोली ग्राम होना और उसके बाद सीही नामक गाँव में जाकर रहना बताया गया है और विक्रम संवत् 35 बैशाख सुदी 5 सूर के मुख से ही कहल वाया गया है। महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्य कहे गयें है सूर के जन्मान्ध होने को सिद्ध करते हुए लेखक ने सूर से ही कहलवाया है– "मेरे पूर्व के पाप जब जन्मते ही मेरी पुतलियों पर मढ़ गये तो भगवान ने कृपा करके प्रकाश वाहिनी नसें नाक और कान से जोड़ दी। मैं बादलों की गरज को देखता हूँ और बिजली को सूँघता हूँ।"

"मेरे लेखे तो यह सारा ब्रह्माण्ड ही तरंगमय हैं। जब एकाग्र मन से संगठित तरंग शक्ति से जो चाहता हूँ देख लेता हूँ सुन लेता हूँ। इसमें आश्चर्य की कोई बात है भला।"[123] सूर की आयु 105 वर्ष की मानी गयी है, उपन्यास के प्रमुख पात्र है– सूरज, सूर्यनाथ, सूरा, सूरस्वामी या सूरदास, भोला नाथ (भोले), स्वामीनादब्रह्मानन्द, भागवत महाराज (सूरज के पिता), पण्डित सीताराम आचार्य, पुद्दन् पण्डित, छिद्म्मी (मल्लमारतण्ड), लाला हुलास राय आदि। नारी पात्रों में कन्तो, कान्ता (कालूराम मल्लाह की चचेरी बहन), सुनयना और अनारो (दासियाँ) प्रमुख हैं।

संकेत सन्दर्भ –

1. किशोरी लाल गोस्वामी प्रणयिनी परिणय उपोद्घात। पृष्ठ–01
2. साहित्य संदेश 1940 (अक्टूबर–नवम्बर)। पृष्ठ–42
3. हिन्दी साहित्य। पृष्ठ–413
4. 'आलोचना' वर्ष–01। खण्ड–01
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य। पृष्ठ–93–94
6. A fiction of prose tale of considerable length in which characters and actions professing to represents those of real life are portrayed in a plot.
   Webester's- New international Dictionary . P.1670
7. ------- The extent should not be less than fifty thousand words, any fictions prose work over fifty thousand words will be a novel. E.M. Forster- Aspects of the Novel- Page-9
8. A fiction in a prose of certail extent. M. Avel Sivel.
9. A Short History of English Novel.
10. A fictions prose tale a narration of considerable lenth in which characters actions proffeicing to represent those of real life are portrayed in a plot.
    Shipley - The quest for literature.
11. Novel is the 20th centuary generic term for any type of prose fictions of look, lenth in which characters and actions are presented in a plot and as if represent persons and events in real life. The En cyclopaedia of America. Page-467
12. It's medium is prose, not verse. Arnest A. Braker.
13. Aera wolford -- The writer's look. Page-8
14. Rechad Burton.
15. The Novel is not merely fictional prose. It is the prose of man life, first art to-attennd to take the whole man and give him expression. Ralf Fox -- The-novel and the prople.
16. The novel -- as I use the term in this look, is realistic P.62 prose fictions complete in it itself and of a certain lenth.
    Arnold Kattle -- An introduction to the english Novel -- Page-28
17. Cross -- The development of english novel . Page- 01
18. It is a portayal of life, in the shape of a story.
    E.A.Baker-The Histiry of Novel. Page-11
19. A novel is a living thing.

Arnold Kettle -- Introduction to the english novel. Page-12

20. Novel is a comic epic in prose (Henry fielding) queted from "The History of English novel By E.A. Baker -- Page-13

21. It is the most distnictly moisture area of literature.
E.M. Forster -- Aspects of novel -- Page-09

22. The novel is not mearly fictional prose, It is the prose of human and give him expression.
Rolf Fox -- The novel and the people. Page-12

23. A novel is the brodest defiction, a personal, a direct impression of life.
Henry James -- The art of fiction.

24. It (Novel) has not plot, no comedy, no tragedy, no love interest or catastrophy in the accepted style.
Verginia Wolf -- The common reader.

25. पं0 अम्बिका दत्त व्यास– गद्य–मीमांसा–ना0 प्र0 स0 1897।

26. गेरूआ बाबा की भूमिका– गोवा गहमरी।

27. सुखशर्वरी का निदर्शन– किशो0 ला0 गोस्वामी।

28. बनवारी लाल त्रिवेदी– वीर व्रत पालन की अवतरणिका 1905।

29. प्रेमचन्द्र– साहित्य का उद्देश्य। पृष्ठ–54

30. हिन्दी उपन्यास साहित्य–ब्रजरत्नदास। पृष्ठ–10–11

31. हिन्दी साहित्य का इतिहास–रामचन्द्र शुक्ल। पृष्ठ–536

32. साहित्य लोचन–श्याम सुन्दर दास। पृष्ठ–143

33. समीक्षा शास्त्र–सीताराम चतुर्वेदी। पृष्ठ–670

34. परख–कुछ शब्द–जैनेन्द्र। पृष्ठ–12–13

35. एक पत्र–दिनांक 14–02–72 भगवती प्रसाद बाजपेयी।

36. प्रतीक–जनवरी 1961 यशपाल। पृष्ठ–12–13

37. प्रतीक–जनवरी 1961 भगवती चरण वर्मा। पृष्ठ–12–13

38. 'गर्मरारव' की भूमिका–कुछ कड़वे मीठे संस्मरण। पृष्ठ–09–10

39. नया साहित्य–नये प्रश्न।

40. हिन्दी उपन्यास–शिव नारायण श्रीवास्तव। पृष्ठ–02

41. 'आलोचना' उपन्यास अंक। पृष्ठ–31

42. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष–शिवदान सिंह चौहान। पृष्ठ–141

43. काव्य के रूप–गुलाब राय। पृष्ठ–156

44. साहित्य संदेश–आधुनिक उपन्यास अंक 1956। पृष्ठ–07

45. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास–रघुनाथ सरन झालानी। पृष्ठ–29–30

46. हिन्दी साहित्य–एक आधुनिक परिदृश्य–'अज्ञेय'। पृष्ठ–81

47. एक साक्षात्कार दिनांक 11–11–71 राजेन्द्र यादव।

48. Sound and technique means doing the right things in the right-way at the right time. Choose subject matter which appeals to you strongly, then choose style-and technique which will carry, that subject matter appealing to you --Public -- Walter S. Combell Double day -- writing Advice and Devices -- Page-153

49. The whole intricate question of method, in the craft of fiction. I take to be governed by the question of the point of view , the question of the relation in-which the narrator stands to story.
Perly Lubbock -- The craft of fiction -- Page-251

50. " For technique is the means by which the writers expression, which is the subject matter, comples him to attend to it. Technique is the only means he has-of discovering, exploring, Developing his susjects, of conveying its meaning and finally of evaluting it.
Willam Van O. Conner -- Form of fiction -- Page-09

51. The writer capable of the most exacting technical scruiting of his subject -- matter will produce works with the most satisfying content works with thickness and resorance, work which reverberate work with maximum meaning" William Van O. Conner -- Form of fiction- Page-02

52 The Book is not a row of facts. It is single image. The facts have no validity in theselves. They are nothing until they have been used. Percy Lubbock -- The craf of fiction - Page-62

53. साहित्य का श्रेय और प्रेय–जैनेन्द्र कुमार। पृष्ठ–370

54. डॉ0 त्रिभुवन सिंह–हिन्दी उपन्यास–शिल्प और प्रयोग। पृष्ठ–242

55. " " " " " पृष्ठ–241

56. प्रेम चन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि : पृष्ठ–01

57. The problem of relevent selection is one which faces every writer who tries to depict life in words, obviously one can not tell every thing that a man says,-things, does. If that were done every hour of a means life would require a-volume to himself.
David Daiches -- New literary values -- Page-74

58. आधुनिक हिन्दी उपन्यास में वस्तु विन्यास : डॉ0सरोजनी त्रिपाठी। पृष्ठ–41

59. "Reduced to it, its barest terms the novelist's art it one of selection and arrangement." G. Henary Warren -- The writer's Art. P --

60. The true Artist will seek to shape this living substance into the most beautiful- and satisfying Form by skillful selection and arrangement of his materials and by the most direct and appealing presentation of it, in portayal and characterization."
Kenneth Macnichol -- The technique of fictions writing. Page-18

61. The difference between content or experience and achieved content or art is technique." Van O. Conner -- Form of fictions. Page-09

62. I think that every great artist necesarily creates his own form also." Novelist on the novel -- Page-265

63. Artist always seeks a new technique and will continue to do so as long as their work excites them."
To cheers for democracy -- Page-103

64. "There are thus as many technique as there are novels.
Indeed one should not talk of the technique of the novel, but of techniques of novels, " Mendilow -- Time and novel -- Page- 234-235

65. Form is (not) substance to that degree that there is absolutely no substance without it."
Henry James -- Letter to the huge walpone (19th May 1912 selected letters 1956)

66. The point of view, it is apparent, is the fundamental principle of technique in the novel structure. By the adopation of one or another point of view, plot, characterization, tone, discription or all to some degree determind."
- Carl H. Grabo - The technique of the novel - Page-81

67. "When we speak of technique, then we speak of nearly everything."
Forms of modern fiction Page09

68. हिन्दी उपन्यास–शिल्प और प्रयोग। पृष्ठ–242

69. The theory of literature -- Austen Warren and Renewelleck -- Page-224

70. The art of fiction -- Henary James

71. साहित्य का उद्देश्य। पृष्ठ–54

72. समीक्षा शास्त्र। पृष्ठ–679

73. हिन्दी उपन्यास साहित्य। पृष्ठ–21

74. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास। पृष्ठ–30

75. Characterization is the method of distinguishing your story people from one another ---- by revealing their indivisual and distinctive qualities of nature." Scott meredith -- sliffing the Hollowman characterization. Page-62

76. कुछ विचार। पृष्ठ–68

77. The characterization means briefly setting of people in the story with a sufficient degree of visibility and possibility, so that they may for the readers emerge from the flat page as more than shadow names and progress, for the time at least, the rudements of personality. " Page-11

78. Slow shapingt of character is the problem of novel."
Lolze Hudson -- An introduction to the study of literature. Page.148

79. Compsition which produces the offect of human talk-as nearly as porsible the offect of Conversation which is over heard."
Arlobatus-Talk on uriting English series Page-230

80. कुछ विचार। पृष्ठ–102

81. काव्य के रूप। पृष्ठ–172–73

82. T. Shiplay-- Dictionary of world literary terms. Page-387

83. Dictionary of World literature -- J.T. Shiplay -- Page-310

84. " We have difined a story as a narrative of events arranged in their time sequence. A Plot is also a narrative of events, the emphasis falling on cassualities." E.M. Forster -- Aspects of Novel -- Page-32

85. Quoted in the play writes art by Roder M. Busfield.

86. How not to write a play by Walker Pens -- Page-128 -129

87. The play writes art by Roder M. Busfield -- Page-104

88. The play writes by Green wood Page-09

89. The plot is the discovery. It discovers the suitable centre of the lives of all the characters.
The meaning of fiction -- Albert Cook -- Page-249

90. 'आलोचना' उपन्यास विशेषांक। पृष्ठ–33

91. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास। पृष्ठ–41

92. आधुनिक हिन्दी उपन्यास में वस्तु विन्यास। पृष्ठ–70

93. उपन्यास का स्वरूप। पृष्ठ–52
94. ,, ,, ,, पृष्ठ–29–30
95. ,, ,, ,, पृष्ठ–30
96. 'आज कल' (मासिक–जुलाई 1957 दिल्ली)। पृष्ठ–18
97. 'अमृत और विष'। पृष्ठ–165–166
98. ,, ,, ,, पृष्ठ–122
99. ,, ,, ,, पृष्ठ–136
100. ,, ,, ,, पृष्ठ–164
101. ,, ,, ,, पृष्ठ–318
102. ,, ,, ,, पृष्ठ–321
103. सीमान्त प्रहरी–अमृतलाल नागर अंक। पृष्ठ–22
104. डॉ0 प्रेम भटनागर, हिन्दी उपन्यास–शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य। पृष्ठ–11
105. धर्म युग, नवम्बर 1980। पृष्ठ–64
106. नया जीवन, मई, जून, 1962।
107. सीमान्त प्रहरी, अमृतलाल नागर। पृष्ठ–23
108. अमृत और विष। पृष्ठ–164–165
109. आज, दैनिक, 19 अगस्त, 1979।
110. 'भूख,' भूमिका अमृतलाल नागर। पृष्ठ–05
111. अमृतलाल नागर–महाकाल–समर्पण।
112. डॉ0 हेमराज कौशिक, अमृतलाल नागर के उपन्यास (नये मूल्यों की तलाश)। पृष्ठ–71
113. बूँद और समुद्र, भूमिका। पृष्ठ–03
114. डॉ0 रामविलास शर्मा–धर्म युग, 02 अगस्त, 1964। पृष्ठ–16
115. सुहाग के नूपुर, निवेदनम्।
116. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–267
117. डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–125–126
118. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–13
119. मानस का हंस –भूमिका। पृष्ठ–09
120. डॉ0 नगेन्द्र–हिन्दी साहित्य का इतिहास। पृष्ठ–681
121. डॉ0 आनंद प्रकाश त्रिपाठी, अमृतनागर के उपन्यास। पृष्ठ–201
122. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–344
123. खंजन नयन। पृष्ठ–190

अध्याय – पाँच

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में वस्तु विधान।

(क) वस्तु के विभिन्न रूप।

(ख) वस्तुगत चेतना का विकास।

(ग) प्रस्तुतीकरण।

(घ) प्रारम्भ, विकास, चरमसीमा आदि।

निष्कर्ष।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में वस्तु–विधान

वस्तु उपन्यास का एक महत्वपूर्ण तत्व है। उपन्यास के शेष तत्व, पात्र, वातावरण, संवाद, भाषा–शैली तथा उद्देश्य सभी मिलकर वस्तु को एक निश्चित रूप प्रदान करते हैं। मात्र वस्तु के शिल्प रूप में प्रयोग नहीं हुए हैं। चरित्र–चित्रण, वातावरण तथा उद्देश्य में भी प्रयोग हुए हैं और इन्हीं सब प्रयोगों ने वस्तु की सीमा रेखा को नवीन रूपाकार दिया है।

नये विषय, नये शिल्प की माँग करते हैं। वस्तु के शिल्प रूप के अन्तर्गत होने वाले प्रयोग इसी का परिणाम है। वस्तु के शिल्प रूप में होने वाले प्रयोगों को विभिन्न स्थितियों में देखा जा सकता है, इन्हीं स्थितियों में उपन्यासकार या तो परम्परा का निर्वाह करता है या नवीन अन्वेषण करता हैं।

वस्तु के विभिन्न रूप–

वस्तु को शिल्प रूप प्रदान करने के लिये जो प्रयोग किये जाते हैं उन्हें ही अनेक रूपों में देखा जा सकता है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में वस्तु के इन विभिन्न रूपों को सामाजिक ऐतिहासिक, पौराणिक और सांस्कृतिक तथा जीवनी आदि विभिन्न स्थितियों में चित्रित किया है। अब हम नागर जी के उपन्यासों में इन्ही रूपों को लेकर उनकी वस्तुगत चेतना के विकास का अनुशीलन करेंगे–

वस्तुगत चेतना का विकास

(क) प्रस्तुतीकरण–

नागरजी ने अपने भिन्न–भिन्न उपन्यासों में वस्तु का प्रस्तुतीकरण भिन्न–भिन्न प्रकार से किया है। कहीं वे वस्तु का प्रस्तुतीकरण वस्तु की प्रकृति के अनुसार संभावित घटना की भूमिका के रूप में करते हैं। जैसे–'मानस का हंस' और 'खंजन नयन'। उदाहरणार्थ "वृन्दावन से लगभग दो कोस पहले ही पानी गाँव के पास वाले किनारे पर खड़े चार–छः लोगों ने सुरीर से आती हुई नाव को हाथ हिला–हिला कर अपने पास बुला लिया।" मथुरामती जइहौ। आज खून की मल्हारै गाई जा रही हैं वाँपे।" सुनकर नाव पर बैठी सवारियाँ सन्न रह गयीं। 19–20 जने थे, तीन को वृन्दावन उतरना था, बाकी सभी मथुरा जा रहे थे। सभी के होश–हवास सूली पर टंग गये। "आखिर बात का हुई भैयन।" "सुल्तान के राज में मार–काट के काजे कभी कोऊ बात होवै है भला त्यौहार के दिना हमारी माँ, बहन के माथे कौ सिन्दूर आग की लपटो सौं उठ रयो है, चौराये–चोराये पै।" फिर एक ही सांस में भद्दी से भद्दी गालियाँ कहने वाले युवक के मुह से फूट पड़ी। उसके नपुंसक क्रोध का अंत विवशता के आँसुओं में हुआ।

नाव से करीब–करीब सभी लोग बातें सुनने के लिये किनारे पर आ गये थे केवल एक अंधा नवयुवक और दो बुढ़ियाँ ही बैठी रही।"[1] यहाँ अंधे नवयुवक शब्द से 'सूर' की उपस्थिति

दिखलाने का प्रयत्न है। यहीं पर 'सूर' के जन्मान्ध होने की बात को भी प्रस्तुतीरण द्वारा ही चित्रित किया गया है। "अन्धे सूरज की यादों में सोलह–सत्रह दिन पहले की वह साँझ उजागर हो गई जब–पीपल के पेड़ के तने से टिका बैठा था। चिड़ियाँ ऊपर अपनी–अपनी जगहों के लिये आपस में लड़कर भयंकर शोर कर रहीं थी। अन्धे सूरज के मनो लोक में भी उजाले का अंधकार पाने के लिए भंयकर महनामथ हो रहा था। क्रोध रंजित करुणा के स्वर मुखर हो उठे थेः– "किन तेरो नाम गोविन्द धर्‌यो। गुरु सांदीपनि का पुत्र शोक ताप हरने के लिए तुमने असम्भव को सम्भव कर दिखलाया, यम लोक से उनके प्राण छुड़ा लाये। मित्र सुदामा का दुःख–दारिद्रय छुड़ाया, द्रौपदी की लाज बचायी– और मैंने तुम पर इतन–इतना भरोसा किया, इतनी–इतनी स्तुति चिरौरियाँ की किन्तु "सूर की बिरिया निठुर होइ बैठेव जनमत अन्ध करेव।"[2] और इसी के साथ सूर के जन्म, जन्मस्थान संबंधी बातें भी बड़े कौशल के साथ प्रस्तुत कर दी गयी हैं।

2. बूँद और समुद्र

इस उपन्यास में भी वस्तु का प्रस्तुतीकरण बड़े कौशल के साथ चित्रित हुआ है। भारत स्वतन्त्र हो चुका है किन्तु इस स्वतन्त्रता से भारत की जनता सन्तुष्ट नहीं है इसी वस्तु को प्रस्तुत करते हुए उपन्यास कार कहता है–"पवित्रता और आत्मा की सफाई का बड़ा दम भरने वाले भारत वासियों की गंदगी और फूहड़पन जगह–जगह कूड़े के ढ़ेर बनकर सदा की तरह चमक रहा है। घर का कूड़ा निकालकर गली में छितराना, दो मंजिले से छोटे बच्चो के पखाने की पोटली बनाकर गली में फेंकना आदि सांस्कृतिक कार्यनित्य के नियम से आरम्भ हो चुका है। आज की विशेषता के तौर पर नल के पास वाला नाला भी भीतर से घुट जाने के कारण टूटे मेन होल से उबलकर गली की सतह पर अनेक टेढ़ी–मेंढ़ी धाराओं में बहता हुआ, गली को बदबू से सड़ाकर, लोगों को स्वराज की निंदा करने के लिए नया बहाना दे रहा है।"[3] लेखक ने स्वतन्त्र भारत की बिगड़ी हुई स्थिति और लोगों के असन्तोष को प्रस्तुतीकरण के रूप में चित्रित करने के साथ ही साथ उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र 'ताई' को भी उनके व्यक्तित्व सहित प्रस्तुत किया है– "उभरी हुई हड्डियों वाले लम्बे चेहरे पर कड़ी–कड़ी रेखाएँ और सिकुड़ने उसी तरह गन्दी और मनहूस लगती हैं जैसे गली की सतह पर अनेक टेढ़ी–मेढ़ी धाराओं मे अन्दर की घुटन से उबल कर बहता हुआ नाले का पानी।"[4]

प्रारम्भ–विकास और चरम सीमा आदि

नागरजी के उपन्यासों में प्रारम्भ बड़े ही रोचक एवं उत्सुकता पूर्ण वातावरण में होता हैं। वातावरण चित्रण के द्वारा वस्तु का प्रारम्भ नागर जी के प्रायः सभी उपन्यासों में अलग–अलग ढंग से हुआ है। कुछ उपन्यासों में कथानक वर्तमान में अन्त से प्रारम्भ होकर अतीत में जाकर पूर्ण होता है। जैसे– 'सेठ बाँके मल' कुछ उपन्यासों में कथा का प्रारम्भ चरम स्थिति से होता है और वर्तमान से अतीत की ओर उन्मुख होता है जैसे 'मानस का हंस' कहीं–कहीं कथानक का प्रारम्भ

वातावरण या घटना को लेकर और कहीं किसी पात्र के परिचय द्वारा होता है। नागर जी ने अपने उपन्यासों की वस्तु को विभिन्न शैलियों में विकसित किया है। अब हम उनके शोध में आधार ग्रन्थ बनाये गए उपन्यासों में वस्तु के विकास और चरम सीमा आदि का अनुशीलन करेंगें।

महाकाल

इस उपन्यास की कथावस्तु का केन्द्र बंगाल का छोटा सा गाँव मोहनपुर है। पाँचू गोपाल मुखर्जी इस गाँव के ऐंग्लो बंगाली स्कूल का हेटमास्टर है। पाँचू का लम्बा भरा पूरा परिवार आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है। किन्तु उसके समक्ष भी अन्न की समस्या आ खड़ी होती है। वह इस समय दुर्भिक्ष के शिकंजे में फंसा हुआ अबोध बालक की भाँति अपनी क्रिया–प्रतिक्रिया व्यक्त करने में असमर्थ है। उसके पिता संस्कृत के प्रोफेसर हैं जिनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है। पूरा परिवार निर्भीकता और आत्मविश्वास के साथ इस संकट से उबरने के उपाय को ढूंढने का प्रयास करता है किन्तु वह अकाल के कारण नष्ट प्राय हो जाता है। मुट्ठी भर चावलों से पेट की आग बुझाने का स्वप्न देखने वाली शीबू की बहन 'तुलसी' भूख से व्याकुल होकर अपनी लोक–लज्जा त्याग कर नूरुद्दीन के विलास का साधन बनने को विवश हो जाती है। "आबरू नाम की कोई चीज उसके पास नहीं रह गई थी। उनकी बहू बेटियाँ खुलेआम धर्मशालाओं और अनाथालयों में भेजी जाने लगी थीं। हर कोई हर किसी के घर का राज अच्छी तरह से जानता था फिर भी आबरू शब्द की रक्षा की जा रही थी।"[5]

नागरजी ने सम्पूर्ण वस्तु को अत्यन्त सुगठित और परिपक्व रूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देता है कि यह कहानी पाँचू के जीवन का प्रतीक है वह बुद्धिजीवी है परन्तु उसका ज्ञान पेट भरने के भोजन की व्यवस्था नहीं कर पाता। गाँव के सैकड़ों निरीह लोग बिना भोजन के धीरे–धीरे मृत्यु के निकट पहुँचते जा रहे हैं। पाँचू भी कई दिनों से भूखा है, भूंखे पेट में पानी भी तो लगता है। स्प्रों की गोली से मुँह का स्वाद भले ही बदल कर कसैला हो जाय पर उससे भूँख तो नहीं मिटती। पाँचू के घर वाले भी कई दिनो से भूँखे है परन्तु आबरू का भय बना हुआ है कि कोई देख न ले कि उसके घर में भी फाँके हो रहे हैं– "आबरू चली गई तो लाख का आदमी खाक का।"[6] दिन भर इधर–उधर सोंचते–सोंचते–"दो–तीन उपास करना या आधे पेट रहकर जिन्दगी गुजार देना इसकी आदत तो हमारे देश के हर किसान को जन्म से होती है लेकिन अब तो स्थिति और भी दयनीय है"– "घर–मकान, खेत–खलिहान, कपड़े–लत्ते, चिथड़े–गुदड़े सब बेंच–बेंचकर खा गये।"[7] इस पर भी भूख एक दिन की बात तो नहीं। जमीदार के डंडे अलग पड़े और फिर डंडे खाकर लोग "तालों की मछलियाँ ज्यादा न खा सके। पेड़–पत्ते, घास–फूस, कुत्ते, बिल्ली, चूहे का माँस जो भी मिला पेट की ज्वाला में भस्म हो गये। भूख इतने पर भी नहीं मानती रोज लगती है।"[8] भूख ने रिश्तों को भी समाप्त कर दिया। माता और पत्नी जैसे निकट संबंधी भी शत्रु लगने लगे। नूरुद्दीन ने अपनी भूख का गुस्सा अपनी माँ पर उतार कर बुढ़िया को स्वर्गवासी बना दिया।

इसके बाद भी उसकी भूख न मिटी तो वह अजीम का साथी बनकर जिमीदारों के हांथों गाँव की बहू–बेटियों का सौदा करने लगा। मुनीर की पत्नी ने अपनी आबरू बचाने का लाख प्रयत्न किया परन्तु भूख ने उसकी आबरू तो ले ही ली और बच्चे तथा पति फिर भी भूखे के भूखे। उसकी यह स्थिति देखकर नूरुद्दीन प्रसन्न है और कहता है– "भूखी बच्चियों और शौहर से चुराकर अकेले खाने की आदत डलवाकर मैंने उसका जमीर चूर–चूर कर दिया। अब सचाई और पाकदिली की वह अकड़ उसमें न रही है।"[9]

पाँचू ये सब देखने के लिए विवश है मुनीर की लाश दफनाने में उसे चावल की गठरी से हाँथ धोना पड़ा क्योंकि लाश और वह भी मुसलमान की उसको छूकर एक संस्कारी हिन्दू उन चावलो को घर कैसे ले जाय। वह सोंचता है ये आदर्श, धर्म, पाप, पुण्य सब पेट भरे की लीला है इसलिए वह स्कूल की डेस्कों को बेंच देता है। भले ही वह जानता है कि यह चोरी है। जहाँ लेखक पाँचू को सोंचने पर विवश कर देता है कि कुत्ते, बिल्ली भी आसानी के साथ अपने पेट के हक से हटाये नहीं जा सकतें किन्तु मनुष्य है कि बोल भी नहीं सकता। जब व्यक्ति ही व्यक्ति को खाने लगे तो सभ्यता और संस्कृति का अर्थ ही क्या ? आदम युग में भी यही स्थिति थी और आज सभ्यता के एवरेस्ट युग में भी यही है।

परेश घोषा ने एक दिन अचानक ही अपने छोटे भाई और विधवा बहन पर अनैतिक सम्बन्ध का दोषारोषण कर दोनों को घर से निकाल दिया। "अस्सी प्रतिशत भले घरों की बहू–बेटियां मजबूर किये जाने पर पैसों या खाने की लालच से, अथवा भूख और चिन्ताओं की उलझन से छूटकर दो घड़ी गम गलत करने की नियत से वेश्याएँ हो चुकी हैं।"[10] स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी है कि मनुष्य और कुत्तो में अन्तर नहीं रहा। यही वस्तु की चरम सीमा लक्षित होती है। लेखक वीभत्स रस की अवतारणा पूरी सफलता के साथ करने में प्रशंसा का पात्र है, एक स्थान पर जूठन खाने के लिये आदमियों और कुत्तों में संघर्ष का चित्रण है जिसे अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता। इस चरम सीमा को अत्यधिक उत्कर्ष पर पहुँचाते हुए उपन्यासकार मोनाई महाजन के ब्रह्मभोज आयोजन में अनेक ब्रह्मणों द्वारा भूखे पेट वहाँ पहुँचने और अधिक खा लेने के कारण स्वयं मृत्यु को गले लगाने का चित्रांकन करने में नहीं चूकता। यही नहीं भुखमरी का "सबसे वीभत्स दृश्य पाँचू ने देखा कि एक की कै पर दूसरा मर भुखा उसे चाटने लिये बड़ी आतुरता के साथ टूट पड़ा।"[11] वस्तुतः वह दृश्य वीभत्स तो है ही मनुष्य जाति के लिये लज्जा जनित भी। पाँचू फिर सोंचने लगता है "माँ के मर जाने के बाद भी यह बच्चा जीवित रहा। क्या यह घटना जीवन के सत्य को सिद्ध नहीं करती ?"[12] उपन्यासकार ने यहाँ कथा वस्तु में एक नाटकीय मोड़ देकर उपन्यास को त्रासदी होने से भी बचा लिया और उद्देश्य भी सिद्ध हो गया है। फलस्वरूप पाँचू में जीने की इच्छा जाग्रत हुई। इंसान के प्रति इंसान संवेदन शील हुआ और यहीं वस्तु का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है "मानव हृदय में जिस स्वार्थ रहित प्रेम और कर्तव्य का

आभास मुझे इस बच्चे द्वारा मिला है उसे कर्म में बदलना है, रोटी लेनी है, अपने जीने का अधिकार सुरक्षित करना है।"[13]

मनुष्य ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति की है। जीवनी तत्व को अपनी इच्छा के अनुसार संचालित करने की ईश्वरीय शक्ति आज मनुष्य को प्राप्त है, परन्तु इसका उपयोग वह बम बनाने में करता है। एक ओर जीवन को सुलभ करने की दिशा में प्रयत्न तो दूसरी ओर जीवन नष्ट करने का स्वार्थ। परन्तु शक्ति चन्द हाँथों में सिमट कर भी जीवन को निकाल नहीं सकती। विवेक और सद्बुद्धि का 'महाकाल' होने पर भी कहीं इसका अंश शेष है जिनके बल पर आज समाज जीवित है।

उपन्यास में वस्तु का विन्यास करते हुए थोड़ा सा रोमानी टच भी दिया गया है। पाँचू की बहन 'तुलसी' का, काकी नम्बर आठ के भाई के प्रति आकर्षण इसी हेतु छिपाया गया है। 'मंगला' और 'बकल फूल' भूखे पेट भी दो रस भरी बातें करके जी हल्का करती है। लेकिन भुखमरी के ऐसे समय में "स्त्री और पुरुष का संबंध शारीरिक बल के साथ टूटता जा रहा था । बहुत उत्तेजना होने पर एक दूसरे के शरीर से नोचा–घसोटी करके हाँफ जाते थे। यह पस्ती दिल की आग को दुबला करके भड़काती थी। मन किसी परदे में शारीरिक सुख का मोह होने पर भी अपनी पूरी चेतना के साथ मनुष्य, स्त्री–पुरुष के शारीरिक योग से नफरत करने लगा था।"[14] 'बेनी' और उसकी पत्नी की भी यही स्थिति थी। "बेनी रो बैठा है अपने घुटने पर सिर झुकाए उसकी पत्नी बैठी है। दो महीने पहले ही उसका व्याह हुआ था। नई जवानी, नई उमंगे और यह अकाल। वंशी बजाने में 'बेनी' अपना सानी नहीं रखता था। दोनों की जवानी बूढ़ी हो गयी है, पास–पास बैठे रहने पर भी न औरत को मर्द का होश है न मर्द को औरत का।"[15] उपन्यासकार ने यद्यपि इस चित्रांकन में यथार्थ की परिसीमाओं का स्पर्श किया है क्योंकि जब पेट ही भूखा हो तो मन की भूख कहां याद आये तथापि एक अन्य चित्र में पाँचू के अंधे पिता भूखे पेट कोठरी में विवश पड़े हैं, देखने को आँखे भी नहीं और खाने को भोजन भी नहीं इतने पर भी वह पत्नी को पुकारते हैं और पत्नी अपनी जवान पुत्र बधुओं के साथ लाज से मर–मर जाती है। जब वह नहीं आती तो वृद्ध केशव, मन में सोचते है– आना चाहे तो सौ बहाने निकाल कर आ सकती है, मगर नहीं। इसमें भी जैसे उसकी कोई जमा जाती है। दो घड़ी इस शुष्क जीवन में रस आ जाता है सो भी इसे..... "केशव बाबू के खून में फिर गर्मी चढ़ने लगी, अपनी परवशता पर वह मन मसोस कर रह जाते थे। जब–जब उनकी शारीरिक भूख जगती और पत्नी का साथ न मिलता तब–तब वे सन्यासी होने की सोंच लेते। इस विरोधाभास का अंकन उपन्यासकार के किस अनुभव के आधार पर है कहा नहीं जा सकता।

नागरजी ने एक इतिहासकार के रूप में केवल तथ्य ही संग्रह नहीं किए हैं वरन् एक संवेदनशील साहित्यकार की संपूर्ण सहृदयता तथा कलात्मकता लेकर इस घटना के मूल कारणों की छानबीन भी की है और समाज की सारी विसंगतियों का चिट्ठा खोलकर रख दिया है।

उन्होंने दुर्भिक्ष के सामाजिक, राजनीतिक कारणों को परखा और उपन्यास की कथा को यथार्थमय बना दिया। इस कृति में उनका मानवतावादी दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है।

नागरजी ने संपूर्ण कथा को अत्यन्त सुगठित और परिपक्व रूप में प्रस्तुत किया है। 'महाकाल' जन के विरुद्ध साम्रज्यवादी, सामान्तवादी और पूँजीवादी षड्यन्त्र की दर्दनाक कथा है। इसमें यदि एक ओर मृत्यु दंश की तीव्रता है तो दूसरी ओर जीवन का उद्घोष भी। यह कृति मृत्यु के सिर पर जीवन को प्रतिष्ठित करते हुए मानव जिजीविषा को नया सम्बल प्रदान करती है। नागर जी ने मृत्यु की भयानकता से आँखें नहीं फेरी हैं उसका अत्यन्त व्यापक और लोम हर्षक चित्र खीचा है। परन्तु मृत्यु का दर्शन उनकी जीवन संबंधी आस्था को कमजोर नहीं कर पाया हैं। उसने उसे पुष्ट किया है।[16]

कथावस्तु के विकास में आत्म कथात्मक शैली का आश्रय लिया गया है। निष्कर्ष रूप में डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी के शब्दों में कहा जा सकता हैं कि "उपन्यास की कथा सजीव है क्योंकि वह अकाल की यथार्थ घटनाओं को लेकर ही उपन्यास का ताना–बाना बुनती है और जन सामान्य के दुख दैन्य से लेकर जमीदार, सामंत, अंग्रेज शासकों के अत्याचार तक का पर्दाफाश करती है। मुट्टी भर चावल के लिए तरसता हुआ गाँव, बहू, बेटी–पत्नी तक को बेचने की लाचारी, हत्या, बलात्कार, सड़ती हुई लाशों की दुर्गन्ध, बच्चों की चीख जैसे दृश्यों की अवतारणा अकाल की विभीषिका को साकार कर देने में पूर्णतः सक्षम है। यथार्थ की भूमि पर चक्कर काटती हुई कथा का पर्यवसान आदर्श के धरातल पर होता है। जहाँ नई जिन्दगी की किरणें फूटती हैं। कथा वस्तु घटना बहुल नहीं है। सभी घटनाएँ एक ही केन्द्रीय प्रभाव को जन्म देती हैं। लेखक का आदर्शवादी, मानवतावादी चिंतन उसे समृद्ध करता है।"[17]

सेठ बाँकेमल

यह नागरजी का हास्य–व्यंग्य प्रधान नूतन शिल्प प्रयोग भरा उपन्यास है। उपन्यास क्षेत्र में स्वस्थ हास्य का नूतन शिल्प प्रयोग इस रचना में दृष्टिगत हुआ। धारावाहिक कथा और सुनियोजित चरित्र के अभाव में भी छोटे–छोटे रोचक प्रसंगों की श्रंखला इसे उपन्यास का रूप प्रदान करती है। इन प्रसंगों का संबंध सेठ बाँकेमल एवं उनके मित्र पारसनाथ चौबे से है। सेठ बाँकेमल अपनी दुकान पर बैठकर अपने दिवंगत अभिन्न मित्र चौबे जी के साथ गुजारी हुई, जिन्दगी के किस्से अपने भतीजे 'चौबे जी के पुत्र' को सुनाते चलते हैं। लेखक ने श्रोता रूप में सुनकर इन कथाओं को आत्मकथात्मक रूप में शब्दबद्ध किया है।

सेठ बाँकेमल अतिरिक्त उत्साह में अपने जीवन के संस्मरणों में अपनी चरित्रगत विशिष्टताएँ सामाजिक विधान पर कटूक्तियाँ, अपनी मान्यतायें, अपने जमाने के रीति–रिवाज, अपने शौकों के बारे में विभिन्न कहानियों के माध्यम से बताते है। वे अपने आगे न किसी की सुनते है, न चलने देते है। एक बात के प्रत्युत्तर में उनकी ढ़ेरों कहानियाँ हैं। 'जौसे–जवानी' की अनगिनत 'दिलफेंक' तरकेटियाँ उनकी रग–रग में बसी हुई उन्हें जवान बनाए हुए हैं। सभी कहानियाँ विषय

विविधता से भरपूर हैं। यहाँ सेठ बाँकेमल और उनके जिगरी फ्रैन्ड चौबे जी के व्यापारी दाव पेंच के चमत्कारों, पहलवानी के कुतूहलपूर्ण मल्लयुद्धों, हिन्दू मुस्लिम दंगों में दोनों ओर के दंगाइयों पर तटस्थ प्रहारों (गोकुल की गोपियों) से शौर्य मिश्रित प्रेम व्यापारों, पीड़ित व्यक्तियों (देवी सिंह) के उद्धरार्थ तथा कथित बड़े लोगों के पाखंड के निडर पर्दा–फास, जुएं बाजी में (बाँकेमल की) फूंक अमीरी फकीरी और बुढ़पे में भी पतंग बाजी के शौक आदि का बखान हुआ है। डॉ0 राम विलास शर्मा के शब्दों में "वे (नागरजी) हास्य रस के जाने माने लेखक हैं। हास्य के लिए वे आस–पास के सामाजिक जीवन से आलम्बन ही नहीं चुनते पौराणिक गाथाओं और भटियारिनों के किस्से कहानियों का भी सहारा लेते हैं।"[18] राजेन्द्र यादव ने नागरजी की हास्य व्यंग्य क्षमता की समानता प्रख्यात रूसी कथाकार चेखव से की है। सामन्तवाद की सिमटती समाप्त होती संस्कृति भाषा बोली और समग्रतः वह जीवन, नागर जी के कथाकार का प्रिय विषय रहा है। उसका अध्ययन उन्होंने बड़ी लगन और फुरसत से किया है, बड़े स्नेह और चाव से उसकी बातें सुनी हैं। नागरजी को मैं इसीलिए भारत का अद्वितीय हास्य लेखक मानता हूँ कि वे कभी हास्यस्पद परिस्थितियाँ नहीं गढ़ते। उनका हास्य एक विशेष संस्कृति और समाज में पली मानसिकता और मनोविज्ञान की वह मजबूरी है जिस पर हम हंसते हैं। लेखक को हमारे हँसने पर कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन वह मजबूरी से सहानुभूति रखता है, इसलिए खुद नहीं हँसता। चेखव से जहाँ नागर जी की बहुत सी बातें मिलती हैं वहाँ हास्य का यह तरीका भी मिलता है।"[19]

पहली कहानी में 'सेठ बाँकेमल' अपना परिचय देते हुए बम्बई गमन और अपने व्यापार की बात कहते हैं। यहीं चौबें जी और उनके पुत्र जो सेठ को चाचा कहता है– का परिचय प्राप्त होता है। सेठ बाँकेमल आगरा के एक सम्पन्न व्यापारी हैं जिन्होंने प्रारम्भिक समय में सुख और मौज मस्ती का जीवन व्यतीत किया। बदलते हुए परिवेश में उन्हें पुरानी मान्यता और जीवन पद्धति बदलती हुई प्रतीत होती हैं। उनके हृदय में वर्तमान के प्रति असन्तोष एवं आक्रोश है, सेठ सामन्तवादी जीवन व्यवस्था में पड़ने वाले एक वर्ग विशेष के प्रतिनिधि है। अतः उनके मानस पटल पर बीती जिन्दगी की बिजलियाँ कौंधने लगती हैं। इस कहानी में उस विशिष्ट भाषा का दर्शन होता है जो सम्पूर्ण उपन्यास में प्रयुक्त की गयी है। 'बिजया महारानी' का भी योगदान है। दूसरी कहानी 'दिल्ली का धावा' में चौबे जी और सेठ बाँकेमल दिल्ली में व्यापारिक कार्यवश जाते हैं। वहाँ वे एक कोठे वाली के यहाँ पहुँच ऐशो आराम करते हैं 'गोकुल की गोपियाँ' तीसरी कहानी है इसमें गाँव की ही गोपियों के साथ छेड़–छाड़ मार पिटाई का किस्सा है। 'चौबे जी ने लंगोटा कसा' में परम्परा से चली आई मल्लविद्या पर प्रकाश डाला गया है। पाँचवी कहानी 'भतीजे का पैसा ले भागा' में उड़ती खबर अर्थात् समाचार पत्र के बेचने की बात है। छठी कहानी 'राजा साहब की नाक कटी' में चौबे जी और सेठ जी राजा साहब के यहाँ हीरे, जवाहरात के व्यापार के प्रसंग में जाते है। यहाँ सेठ बाँकेमल की व्यापारिक चाटुकारिता का दिग्दर्शन कराया गया है, सुभाष बाबू से संबंधित जन विश्वासों को 'सुभाष बाबू भाग गये' में बड़ी ही अच्छी तरह

से रखा गया है। प्रसंग वश इतिहास का भी उल्लेख हो गया है। आठवी कहानी 'पंचायत राज' में पण्डित देवी दयाल की स्थिति और चौबे जी द्वारा उनकी पुत्री के विवाह का विस्तृत उल्लेख हैं। 'डाग्डर मूंगाराम' शीर्षक कहानी में लाट साहब की बीबी को डाग्डर मूंगाराम द्वारा रोग मुक्त करने की कहानीनुमा गप्प है। अगली कहानी 'लवइज यूनीवर्सल' में पंजाबी दम्पत्ति के द्वारा सेठ बाँकेमल की प्रसिद्ध दुकान पर कुछ क्रय करने का किस्सा है। 'बावन नम्बर' में गोटा किनारी बेचने का पूर्ण उल्लेख है। सौदागर लाइन के एक व्यापारी को सेठ बाँकेमल अपना पुस्तैनी सामान बेचते हैं। 'साज्जहाँ, वास्साय ने कलेजा कूटा' में अकबर बादशाह द्वारा आगरा मे राजधानी स्थापित करना और जहाँगीर तथा उसके पुत्र शाहजहाँ की बेगम ताज बीबी की मृत्यु एवं उसके उपरान्त ताज महल निर्मित होने का किस्सा सुनाया गया है। एकाध स्थान पर इतिहास भी दिया गया है– ''ज्या पे आज ताज बीबी का रोजा बन रया है, वाँ पे राजा जयसींग की बगीची थी।'' इसके पश्चात् शाहजहाँ के कैद और राजपूतों का औरंगजेब का साथ देना चित्रित किया गया है। किस्सा हिन्दू–मुस्लिम दंगों पर समाप्त होता है।

''कृष्ण जी मुहम्मद बने'–में श्री कृष्ण को मुस्लिम धर्म का प्रणेता कहा गया है। इसी के अन्तर्गत अंग्रेजों के 'भेद डालो राज करो' नीति का भी उदाहरण सहित उल्लेख किया गया है। यहीं हरिद्वार जाने के लिये जोगिया वेष धारणकर वहाँ स्नान करने का उल्लेख हैं।

'पाँच का दाँव' इसमें सेठ बाँकेमल की द्यूतक्रीड़ा प्रवृत्ति तथा उसके अत्यधिक लगाव की बात कही गई है। 'जोसे जवानी' इसमें सेठ अपनी युवावस्था की अनेकानेक बाते स्मरण करते हैं। इस बुढ़ापे में भी सेठ बाँकेमल किसी न किसी बहाने अपने पतंग आदि के शौकों को पूरा कर लेते हैं। इसी प्रसंग में विश्वामित्र की आयु सम्बन्धी अटकलें अपनी गप्पावस्था तक पहुँच गई हैं। ''विश्वामित्र ऋषि, मुनि म्हाराज जिन्ने दश हजार वरस तो पत्ते खाके तपस्या कीन्हीं थी, दश हजार बरस हवा फाँक के रये और दश हजार बरस तक पानी पीके ही घनघोर तप कीना।''[20] इससे अधिक गप्प और क्या हो सकती है, लोक मानस इस तरह के अनेकानेक अन्धविश्वासों से भरा है। यहीं नौटंकी और भजन आदि लोक नाट्य गीतों के प्रसंग भी आये हैं। नये युग में सिनेमा और उससे हुई खराबियों का उल्लेख किया गया है। अन्तिम सोलहवाँ किस्सा है 'तीर तलवार की आशिकी मासूकी' जिसमें पुराने–जमाने शेरो–शायरी तथा पारसनाथ चौबे का स्मरण सेठ बाँकेमल को विचलित कर देता है । इसी प्रसंग में सेठ अपने जीवन का उद्देश्य बतलाते है– ''मेरोकाम काज तो भैयो येई है कि अपने को खुश रखो, सदा मौज में रहो। खुश कैटी में मजा नई है प्यारे। एक दिन चलो मेरे साथ राजघाट पे, ठंडाई–फंडाई छानी जाय।''[21] और यही उद्देश्य उपन्यास का भी है।

इस प्रकार बम्बई की यात्रा, चौबे जी के व्यापारी गाँव के दाँव–पेचों के चमत्कार, दिल्ली के नवाबों और राजाओं को मूर्ख बनाने की कला, गोकुल की पनहारिनों से की गई छेड़–छाड़, पहलवानी वाले दिनों के कुतूहल पूर्ण मल्ल युद्धों का वर्णन, कोठों की रंगीन रातें, हिन्दू–मुस्लिम

दंगे, पाखण्ड़ियों का पर्दाफास, जुएं बाजी, अमीरी–फकीरी और वृद्धावस्था में पतंग बाजी के शौक आदि रोचक किस्सों तथा गप्पों और स्वयं सेठ बाँकेमल के शब्दों में 'तर कैटी बातों' से उपन्यास की कथावस्तु अपने में विशेष रोचकता उत्पन्न करती हुई विकसित हुई है। वस्तु के विकास में आत्मकथात्मक शैली को अपनाया गया है। उपन्यासकार का कला नैपुण्य इस बात में है कि इन किस्सों तथा गप्पों के बीच–बीच से सिमटते हुए सामान्तवादी जीवन की झलक मिलती रहती है। "यद्यपि इस उपन्यास में कोई निश्चित कथा–वस्तु नहीं है और कहानियाँ भिन्न–भिन्न उद्देश्य लेकर सुनाई गयी हैं परन्तु फिर भी उसमें औपन्यासिक रस का परिपाक होता है।"[22]

इस उपन्यास में वस्तु विन्यास हेतु पात्रों का सृजन कर विभिन्न दृष्टि कोणों से कथा कही गयी है। सेठ बाँकेमल का हास्य लोक–जीवन का हास्य है जो यथार्थ है और इस यथार्थ में सहजता और स्वाभाविकता भी है। लोक जीवन का हास्य–व्यंग्य अपनी पूर्ण कलात्मकता के साथ समाविष्ट हुआ है। लोक जीवन में प्रचलित कथाओं और हास्यों को लेखक ने अपनी पूर्ण हार्दिकता के साथ अपनाया हैं। अतः डॉ0 सुरेश सिन्हा का यह आक्षेप–"जहाँ तक वाह्य जीवन का प्रश्न है नागर जी ने उनका रोचक वर्णन किया है, पर इस हास्य व्यंग्य का उपयोग किसी बड़े हेतु के लिए नहीं किया जा सकता। यह हास्य व्यंग्य कहीं भी औसत दर्जे से ऊपर नहीं उठ पाया और यही उपन्यास की सबसे बड़ी सीमा है। हास्य व्यंग्य की भी अपनी एक गहरी अनुभूति होती है तथा वह मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। यह तभी हो सकता है जब कलात्मक रचाव के साथ सुनिश्चित योजना में उसे माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाय। इस उपन्यास में नागरजी की कला उस प्रौढ़ता को प्राप्त नहीं कर सकी है और वस्तु के साथ हास्य व्यंग्य की इसमें कोई कलात्मक अन्विति नहीं प्राप्त है।"[23] उचित नहीं है। प्रतीत होता है कि आलोचक की दृष्टि केवल शिष्ट एवं उच्च वर्ग के हास्य पर ही केन्द्रित रही है, अन्यथा आगरा के गली मुहल्लों में सेठ बाँकेमल जैसे सजीव पात्रों की कमी नहीं है, जिनको जनता बड़े ध्यान से सुनती है। उनका मन ऐसे ही प्रसंगों में रमता है। कथावस्तु जिस हास्य व्यंग्य और अलमस्ती को ध्यान में रखकर विकसित की गई है, उसका पूर्ण प्रति फलन हुआ है। इसका हास्य अपेक्षाकृत प्रौढ़ एवं कलापूर्ण है। डॉ0 राम विलास शर्मा ने इस विषय में लिखा है– "गप्प लिखना भी एक आर्ट है और कल्पना की तगड़ी कसरत पर निर्भर करता है, लेकिन ये गप्पै सर्वथा कल्पना पर निर्भर नहीं, यथार्थ की इनमें ऐसी तगड़ी बैक ग्राउण्ड है कि गप्पे मारने वालों का आप कभी शक नहीं कर सकते। सभी पात्र अपनी विशेषताएँ लिये सचित्र और विचित्र पाठक के सामने उपस्थित होते हैं।"[24]

वस्तुतः सेठ बाँकेमल की कथा वस्तु हास्य व्यंग्य पूर्ण यथार्थ लोक जीवन की सहजता और स्वाभाविकता की परिचायक है। उदाहरणार्थ "भैया मूंगा राम डाग्डर ऐसा गजब का था कि एक बार लाट साहब को छीकें आने सुसरी। वो जागे तो छीकें और सोएं तो छीकें, छिन–छिन में ऐसी छीकें सुसरी कि कै महीने मे लाटनी साली खुसकेंट हो गाई। महाराज विलायत से और

लंदन से और अमरीका, अफरीका, चीन और सारी दुनियाँ तक के सारे डाग्डर बुलवालीने विस्ते..... .....पौचे साब मूंगाराम। जाते ही लाटनी की नाक पकडी। दो मिनट देख–भाल के मूंगाराम ने कहीं–जरा एक कैंची मंगा सकते हो आप ? लाटनी सुसरी खुसकेंट हो गई–भैयो। विन्ने कहीं–कहीं नाके तो नहीं काटेगो यह मेरी ? और लाट साहब भी भैयो ये ही सोचे कि जो नाक कटगई तो वे नकटी मेम साली को लिए–लिए कहाँ–कहाँ घूमूगों ? मूंगाराम ने क्या कीनौ भैया, कि नाक में कैंची डाल के एक बाल खैंच लीना और सबके दिखाके कही–ये जो साब, ये छीक आएं थी ससरी।''[25]

मूल कथा वक्ता सेठ बाँकेमल ही हैं, कथ्य केन्द्र भी वही है। सेठजी का सजीव व्यक्तित्व स्वयं नाटकीय है। वह अपने आगे किसी की नहीं सुनतें। यदि कोई उनकी बात काटता है तो वह जोश में आकर अपने मत के समर्थन में कोई न कोई प्रसंग सुनाए बिना नहीं रहतें हैं। सेठ जी कहानी सुनाने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ते। इसीलिए रचनाकार सेठ जी से कुछ ही घंटो में एक दूकान में बैठकर अनेक कहानियाँ सुन लेता है। इस उपन्यास में सोलह कहानियाँ हैं। तीन कहानियां प्रत्यक्ष घटित होती है और शेष को दूकान में बैठे–बैठे सुनाते हैं। कहानियों के विषय वैविध्य ने रोचकता उत्पन्न की है। ''सेठजी अपने मित्रों की बातों का वर्णन इतना बढ़ा–चढ़ाकर करते हैं कि गप्प बाजी का मजा आ जाता है। लेखक ने हास्य व्यंग्य में चित्रण के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों और जर्जर मान्यताओं पर बड़े ही मृदुल प्रहार किये हैं जो उपन्यास के उद्देश्य को परिलक्षित करते हैं इसमें उपन्यास का लक्ष्य परिलक्षित होता है।''[26]

वस्तु शिल्प की नूतनता मुख्य आकर्षण है। आख्याता सेठ बाँकेमल को बनाया गया है और लेखक आगरा के सेठ बाँकेमल की दूकान पर जा बैठता है तथा सेठ दूकान बन्द होने तक कुछ ही घंटों में अपने मित्र चौबेजी के विगत यौवन के किस्से सुना डालते हैं। बीच–बीच में जो ग्राहक आ जाते हैं सेठजी उन्हें भी निपटा देते हैं। अनेक स्थलों पर सेठ जी 'झूठ' नहीं कहूँ आदि कथनों के सहारे अपनी कही हुई बातों में विश्वास पैदा करने का प्रयास करते हैं। कलकत्ते के एक बंगाली रईस के गले में फंसी मछली को निकाल कर डाग्डर मूंगाराम उसे तरकेंट कर देते हैं पानी के साथ खनखजूरा पी जाने वाले मरीज की आतों में छिपकली को उतारकर खनखजूरे को दबाऐं हुए छिपकली के बाहर आने आदि। अन्तिम परिच्छेद में हास्य रस प्रधान काव्य की पंक्तियाँ भी हैं। बिना टिकट हरिद्वार की यात्रा में दोनों का (सेठ बाँकेमल और चौबेजी) जोगी चेला का रूप धारण करना तथा स्थान–स्थान पर 'यू बिलाडी फूल', 'चोप रहो साले', 'आई यौप डैप फोक्सी' आदि अंग्रेजी गालियों द्वारा भी स्वाभाविक हास्य की अवतारण हुई है। 'सुभाष बाबू भाग गये' में सेठ जी भागने के रहस्य का उद्घाटन करते हैं– ''तुझे आज बताऊ हूँ। देख लीजियो तू पड्डे, सुभाष बाबू हिमालय पर्वत पर गए हैं। वे खुसकैट नहीं हैं हिटलर–फिटलर ये साले क्या जाएँगे। ऐसी घन–घोर तपस्या करेंगों भइयो जैसी बालक ध्रुरों ने कोनी थी। वो भी तो भारत माता का बालक है। महाराज, कोई हँसी ठट्ठा नहीं है। ..... और फिर क्या होगा जानो

हो। जहाँ कुरुक्षेत्र के मैदान में ललकारा कि सबके सब साले भाग जाएँगें। क्यों भई ठीक कहूँ हूँ कि नहीं।''

निष्कर्ष रूप में डॉ0 सरोजनी त्रिपाठी के शब्दों में कहा जा सकता है– ''उपन्यास की वस्तु को आत्म कथात्मक शैली, आँचलिक भाषा, संकलनत्रय का नाटकीय शिल्प अविस्मरणीय नायक तथा नायक बद्ध कहानियों की अद्भुत समन्विति ने जो विन्यास प्रदान किया है वह कथात्मक अभिनय शिल्प का अनुपम उदाहरण है।''[27]

बूँद और समुद्र

उपन्यास का लक्ष्य और रचना–शिल्प गतिशील होने के कारण आज उपन्यास का लक्ष्य कुछ सूत्रों के माध्यम से भाव चित्र उपस्थित, करना ही है। लेखक ऐसे शब्द चित्र निर्मित करता है जिसमें व्यक्ति का चित्र उभर कर सामने आ जाता है। उपन्यास का लक्ष्य स्वाभाविक रूप से प्रतिपादित होता है। नागर जी ने इस उपन्यास का नाम इसकी वस्तु के अनुरूप प्रतीकात्मक रखा है। 'बूँद और समुद्र' व्यक्ति और समाज का रूपक है। आत्म कथात्मक शैली का प्रयोग वस्तु के विकास में किया गया है। एक विशिष्ट शिल्प के अन्तर्गत समाचार पत्रों की कतरने और रेडियों समाचार की पद्धति भी अपनाई गयी है, जो एक पद्धति के बाद दूसरे पद्धति का प्रयोग की विशिष्टता का द्योतक है।

प्रस्तुत उपन्यास स्वतन्त्रता के कुछ वर्ष पश्चात् लिखा गया है और उस समय भारतीय जनता को मताधिकार प्राप्त हो चुका था। जनता सन्तुष्ट नहीं थी इसलिए ''इसमें हमारे समाज–जीवन में व्याप्त दुःख, घुटन, बेवसी, अत्याचार, अनाचार, पाशविकता, वीभत्सता आदि को अनावृत कर हमारे सामने रखा गया है। अतृप्त प्रेम भावना में घुटने वाली वधुएं, मनुष्य की स्वार्थ संकीर्णता एवं भोग लिप्सा का शिकार बनी तिरस्कृत नारियाँ, रूज, पाउडर, क्रीम, विन्दी, फैंशन, सिनेमा में भटकने वाली आधुनिकाएँ, अन्ध संस्कारों में जकड़ी हुई तथा टोना–टोटका, भूत–प्रेत, जन्तर–मन्तर आदि में रमने वाली स्त्रियों के अनगिन चित्र उपन्यास में देखें जा सकते हैं।

पुरुष वर्ग में स्वार्थी, दम्भी, शराबी, वेश्यागामी, पत्नी को छोड़ पर स्त्री में रमने वाले, भोगी, रुपये के बल पर न्याय, कला सब कुछ खरीद लेने वाले धनिक, दुर्बल चरित्र वाले बुद्धि जीवी सुधारक और कलाकार के बड़े ही सजीव चित्र इस उपन्यास में संग्रहीत है।''[28]

जहाँ तक इस उपन्यास में कहानी का प्रश्न है वह अत्यन्त छोटी है। पात्रों की बहुलता है और वातावरण चित्रण का ही प्राधान्य हैं। डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी के शब्दों में ''एक विस्तृत पट पर विभिन्न परिपार्श्व एवं दृष्टिकोणों से देखे गए अनगिनत रूप चित्रों को एकत्र कर एक चित्र प्रदर्शनी सी उपस्थिति कर दी गई है। या यो कहें कि केवल इसमें विभिन्न कोणों से फोटों लेता चला गया है।[29]

उपन्यास के क्षेत्र–रूप में लखनऊ चौक के सामाजिक जीवन को चुना गया है। समुद्र के समान अति विशाल भारतीय जन–जीवन का प्रतिरूप पुराने लखनऊ की सीमान्तगर्त देखने के

प्रयास में ही उपन्यास के नाम का औचित्य है। गौंण रूप से कथा सूत्र वृन्दावन तथा कुछ अन्य स्थानों तक जाता है, किन्तु कथा का केन्द्र मूलतः लखनऊ का चौक ही है।

बूँद और समुद्र' नागर जी का एक वृहद् उपन्यास है। इसका कथा क्षेत्र लखनऊ का एक मुहल्ला है और वस्तु सामग्री का चयन उसी की जनता से किया गया है जो वास्तव में भारतीय समाज के विविध वर्गो का प्रतिनिधित्व करता है। कथा वस्तु का व्यावहारिक रूप से प्रारम्भ यहीं से हुआ है। चूँकि यह एक विस्तृत कथा है। अतः इसमें अनेक कथा सूत्र है, जिनके विकास में अनेक प्रासंगिक कथाओं तथा अन्तर्कथाओं का समावेश हुआ है। कथा के पात्रों का वर्गीकरण यदि विविध सामाजिक वर्गों के आधार पर न करके पुरुष और स्त्री पात्रों के आधार पर कर दिया जाय तो सूत्र विकास और उसकी जटिलताओं को समझने में सरलता होगी। जहाँ तक पुरुष पात्रों का संबंध है, मुख्य कथा सूत्र सज्जन और उसकी मित्र मण्डली को आधार बनाकर आगे चलता है। पुरुष पात्रों का दूसरा कथा सूत्र राय साहब तथा उनके समाज को आधार बनाता है। तीसरा सूत्र उस विशिष्ट मुहल्ले के बड़े–बूढ़े तथा सामान्य पुरुषों से संबंध रखता है। चौथा सूत्र कवि विरहेश तथा उस जैसे कुछ अन्य पात्रों पर आधारित है। पाँचवाँ सूत्र रामजी साधू से संबंध रखता है। इसी प्रकार स्त्री पात्रों पर आधारित भी विविध कथा सूत्र हैं, जिनका वर्गीकरण कर लेने पर उनके विकास में जटिलता नहीं दिखाई देगी। स्त्री पात्रों पर आधारित जो कथा सूत्र हैं, उनमें प्रधान है– ताई के चरित्र पर आधारित। दूसरा है, मुहल्ले की अन्य स्त्रियों– बड़ी, नन्दो, तारा आदि का वर्ग, जिनको दूसरे के अन्तर्गत रखा जा सकता है। तीसरा सूत्र वनकन्या से संबंध रखता है। उपर्युक्त विविध कथा सूत्रों का जाल बिनकर ही इस विस्तृत कथानक को तैयार किया गया है। कहीं–कहीं पर ये कथा सूत्र स्वतंत्र रूप से विकास को प्राप्त होते है और कहीं आपस में एक–दूसरे के साथ संयुक्त होकर। यदि पुरुष पात्रों का आधार सज्जन है तो स्त्री पात्रों की ताई। यद्यपि इस कथन से यह आशय समझना गलत होगा कि इन दोनों मे ही उपन्यास के संपूर्ण पात्रों का व्यक्तित्व निहित है। कथा की शैली वर्णनात्मक है, परन्तु जहाँ–जहाँ लेखक ने किसी चरित्र विशेष की व्याख्या करने की ओर ध्यान दिया है वहाँ वह रेखा चित्रात्मक हो गई है। कथा के माध्यम से लेखक ने अपने जीवन दर्शन को भी प्रस्तुत किया है, जिसकी पृष्ठ भूमि में जो प्रधान समस्या लक्षित होती है वह है अनास्था के इस युग में आस्था की समस्या। परन्तु इसके लिए उसे एक विशाल ढाँचा तैयार करना पड़ता है। कभी–कभी उसे अपने कथा क्षेत्र से हटना भी पड़ता है। उदाहरण के लिए कुछ समय के लिए सज्जन और वनकन्या के साथ कथा का सूत्र मथुरा और वृन्दावन तक भी जाता है और इस प्रकार अनेक प्रासंगिक वर्णन उसमें समावेशित हो जाते है। ताई के चरित्र का चित्रण करने के साथ ही साथ लेखक जादू–टोना, यंत्र–मंत्र आदि के विषय में न जाने कितनी बातें बता जाता है और इसी प्रसंग से संबंध रखने वाली कितनी ही और बातें भीं। परन्तु उनके इस हिंसक रूप को छोड़कर उनके हृदय के दूसरे पक्ष और वात्सल्य की अनेक स्नेहसिक्त भावनाओं की अभिव्यक्ति भी वह नहीं भूलता।

सज्जन के साथ ही वह इस घने मुहल्ले के घटना क्षेत्र में कैमरा मैंन के समान प्रवेश करता है। ज्यों ही उसके लिए कोठरी ले ली जाती है त्यों ही मानों कैमरा फिट कर दिया जाता है। सुविधा के विचार से यहाँ कवि विरहेश का प्रवेश कथानक में होता है और इस प्रकार प्रसंग रूप से बड़ी के प्रणय की कथा का समावेश भी हो जाता है। इसी कथा सूत्र के अन्तर्गत महिपाल और उससे संबंध रखने वाली प्रासंगिक कथाएँ आती है। मानसिक संघर्ष एवं चारित्रिक उथल–पुथल की दृष्टि से यह कथावस्तु के चरमोत्कर्ष का स्थल है और सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है। कल्याणी का चरित्र ठीक उसका विरोधी है और डॉ0 शीला से कुछ ही भिन्न प्रकार का चरित्र चित्राराजदान का है। परन्तु ये सब मूल कथानक के प्रासंगिक कथा भाग से संबंध रखने वाले तत्व है। नगीन चन्द आदि पात्र भी इसी सूत्र को बढ़ाते हैं, परन्तु उनका उसमें कोई विशेष योग नहीं है। वनकन्या अवश्य आधुनिक युवती वर्ग का प्रतिनिधित्व करती, कहीं–कहीं दिखाई देती है, यद्यपि उसका चरित्र विकास स्वतंत्र रूप से कम ही हुआ है। वातावरण का इस उपन्यास के कथानक और पात्रों के निर्माण में महत्वपूर्ण योग रहा है। प्रासंगिक रूप से लेखक ने यदि एक ओर विधवा–आश्रम जैसी सेवा–संस्थाओं में होने वाले अनाचार का भी परिचय दिया तो दूसरी ओर मोहन जोदड़ो, वैदिक सभ्यता आदि पर लम्बे वर्णनात्मक चिंतन प्रसंग। इनसे कथानक में शिथिलता और विखराव आ गया है। इस प्रकार इस उपन्यास में अनेक शिल्प रूपों का जमघट–सा दिखाई देता है।[30]

सम्पूर्ण कथावस्तु पूर्ण वर्णित पुरुष तथा नारी पात्रों के अन्तः सम्बन्धों के आधार पर विकास पाती है :–

उपन्यास की कथा सर्व प्रमुख पात्र ताई को केन्द्र बिन्दु बना कर आगे बढ़ती है। ताई राजबहादुर राय द्वारिकादास की परित्यक्ता पत्नी है। राजबहादुर लखनऊ के रईसों में विख्यात हैं। उनका प्रारम्भिक जीवन आर्थिक दृष्टि से अभाव युक्त था। विवाह के बाद ताई के प्रवेश करते ही वे वैभव सम्पन्न हो गए। दुर्भाग्यवश ताई की अपनी सास से अनबन हो गई। फलतः वह सास के प्यार दुलार से वंचित रह गई। पुत्री को जन्म देने के कारण ताई सास सहित परिवार के सभी सदस्यों के ताने सुनने को विवश हो गयी। उसे शंका हो गयी कि घर वाले कहीं उसकी पुत्री को मार न डालें। डर के मारे वह एक अलग कमरे में रहने लगी। दैव विवाक से ताई की आठ मास की पुत्री का निधन हो जाता है। उसका मातृत्व कराह उठता है। वह प्रायः विक्षिप्तावस्था में रहने लगी। धीरे–धीरे उसकी मनः स्थिति और बिगड़ गयीं। वह हिंसा के मार्ग पर चल पड़ी। अतः द्वारकादास ने दूसरा विवाह कर लिया। सौत को देखकर ताई आग बबूला हो उठी और उसी दिन से घर छोड़कर द्वारका दास के पूर्व पुरखों की पुरानी हवेली में रहने लगी। धीरे–धीरे वह अपने हिंसात्मक क्रिया–कलापों के कारण पूरे चौक में चर्चित हो गयीं। उसके लड़ाई–झगड़े, टोने–टोटके से परिवार में ही नहीं पूरे मुहल्ले में आंतक छा गया। उन्हीं दिनों ताई का परिचय चित्रकार सज्जन से हुआ जो लखनऊ के रईश घराने का युवक है। वह ताई की हवेली के ही

एक भाग में रहने लगता है। एक समाज शास्त्री होने के कारण सज्जन गली मुहल्ले के लोगों के जीवन का सम्यक् अध्ययन करता है। ताई के हृदय में सज्जन के प्रति वात्सल्य एवं स्नेह का भाव उदय होता है। सज्जन ताई का प्रिय बन जाता है। ताई के जीवन की अनेक घटनाएँ लखनऊ के चौक मुहल्ले में घटित हुई। अन्ततः ताई की मृत्यु हो जाती है। उसकी मृत्यु पर पूरा मुहल्ला शोक में मग्न हो जाता है। ताई की कथा इस उपन्यास की धुरी है।

दूसरी प्रमुख कथा चित्रकार सज्जन से संबंधित है। वह एक रईस परिवार का सदस्य है। ताई की हवेली में एक किरायेदार के रूप में रहता है। एक सामाजिक कार्य–कर्त्ता होने के कारण सज्जन सामाजिक जीवन में सक्रिय भाग लेने का आकांक्षी है। उसकी एक अपनी निजी मंडली भी है। सज्जन का संपर्क 'वनकन्या' नाम की एक लड़की से होता है। परिवार के अनैतिक वातावरण से क्षुब्ध 'वनकन्या' अपने पिता एवं परिवार से विद्रोह कर देती है। भाभी की मृत्यु पर वह अपने पिता को अपराधी घोषित करती है और मुकदमा दायर करती है। सज्जन, कर्नल और महिपाल वनकन्या की सहायता करते है। सज्जन और वनकन्या का परिचय प्रगढ़ता प्राप्त करता है। वनकन्या का पवित्र उदात्त प्रेम सज्जन की मनोवृत्तियों का परिष्कार कर उसे उन्नत बनता है। उसके सम्पर्क से सज्जन को एक नई दिशा मिलती है। वह उसे प्रेम और विवाह के संबंध में समझाती है। दोनों प्रेम बंधन में बँध जाते हैं। सज्जन और वनकन्या के प्रणय प्रसंग को लेकर कथा में अनेक उतार–चढ़ाव आते हैं। इसी बीच सज्जन का परिचय मानवतावादी संत बाबा रामजीदास से होता है। बाबा दुर्बलों, पीड़ितों, पागलों और अपाहिजों के सेवक हैं। बाबा के परोपकारी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सज्जन अपना जीवन और सम्पत्ति सब कुछ जन सेवा के लिए समर्पित कर देता है।

उपन्यास की तीसरी प्रमुख कथा साहित्यकार महिपाल उसकी पत्नी कल्याणी और प्रेमिका डॉ0 शीला स्विंग से संबंधित है। यह कथा प्रेम के त्रिकोण पर आधारित है। महिपाल मध्यवर्गीय संस्कारों से युक्त एक प्रगति शील लेखक है। उसकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है। लेखक धर्म उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में अक्षम है। "सन् 37 के बाद अब तक महिपाल ने सुख की रोटी का एक दिन भी नहीं जाना। बड़े परिवार को लेकर बच्चों की बीमारी, स्कूल की फीस, किताबें, कपड़े, जनेऊ, मुण्डन, जन्म–मरण से बँधी हुई रस्में, नोन–तेल–लकड़ी की समस्या–उसे जिन्दगी की लड़त में बराबर हतोत्साहित करती रही है।"[31] महिपाल की पत्नी कल्याणी रूढ़िवादी विचारों की युवती है। लेखक पति के लिए उसके हृदय में कोई स्थान नहीं है। महिपाल पत्नी की रूढ़िवादिता से परेशान रहता है। फिर भी उससे सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रयत्न करता है। डॉ0 शीला स्विंग महिपाल की प्रेमिका हैं। महिपाल शादी सुदा व्यक्ति है। उसका भरा–पूरा परिवार है। यह जानते हुए भी शीला महिपाल से अलग नहीं हो पाती। किन्तु वह महिपाल के गृहस्थ जीवन में बाधक भी नहीं बनना चाहती। महिपाल का जीवन–नद–पत्नी और प्रेमिका रूपी दो तटों से जुड़कर प्रवहमान है। लोक लज्जा के भय से महिपाल न तो पत्नी से संबंध विच्छेद

करता है और न प्रेमिका शीला से विवाह ही। अन्ततः मित्रों के समझाने–बुझाने पर वह परिवार को अपना लेता है। अपनी आर्थिक स्थिति से उद्विग्न होकर ननिहाल में चोरी करता है। उसकी भाँजी के विवाहोत्सव में लाला रूपरतन उसकी चोरी का भण्डाफोड़ करता है। अन्ततः महिपाल अपमान और ग्लानि के कारण नदी में डूबकर आत्म हत्या कर लेता है।

सज्जन–वनकन्या, महिपाल–कल्याणी–शीला के प्रसंग एक दूसरे के पूरक हैं। सेठ नगीनचन्द जैन उर्फ कर्नल की कथा सज्जन और वनकन्या से जुड़ी हुई है। पागलों के आश्रम के संचालक बाबा रामजीदास का कथा सूत्र सज्जन और वनकन्या को समाज सेवा की प्रेरणा देता हुआ अग्रसर हैं। बाबारामजी का व्यक्तित्व व्यष्टि और समष्टि के मिलन–विन्दु पर स्थित है।

लखनऊ के चौक मुहल्ले में भभूती सुनार का एक बड़ा भरा पूरा परिवार है। उसकी पुत्री नन्दो पति द्वारा परित्यक्ता होकर कुटिनी का कार्य करती है। भभूती सोनार की बड़ी बहू 'बड़ी' और विरहेश का कथा प्रसंग सामाजिक आचरण का चित्र प्रस्तुत करता है। परिस्थितियों और संस्कारों के कारण मानसिक रति की शिकार 'बड़ी' वेश्यागामी पति से असंतुष्ट होकर विरहेश के प्रेम में फँस जाती है। अन्त में पति द्वारा परित्यक्त, 'विरहेश' के साथ चली जाती हैं। विरहेश चरित्र भ्रष्ट विवाहित कवि है। इस कथा के माध्यम से अल्प शिक्षित मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। चौक मुहल्ले में ही रहने वाले तारा वर्मा दम्पति का भी एक लघु कथा प्रसंग है। इसके अतिरिक्त मास्टर जगदम्बा सहाय और उसकी विधवा भतीज बहू तथा वकील साहब की पगली वधू के प्रसंग भी केन्द्रीय कथाओं के साथ संलग्न है। सभी प्रसंगो में सज्जन अनुस्यूत है। चित्रा राजदान का प्रसंग सज्जन के चरित्र विकास का अंग है। समग्रतः 'बूंद और समुद्र' की सभी छोटी–छोटी कथाएँ रोचक, सरस एवं भाव प्रधान तथा अवसरानुकूल है।

'बूँद और समुद्र' में कथा सूत्रों का ऐसा जाल बुना गया है कि उसमें समाज का सम्पूर्ण परिवेश आवद्ध हो गया है। नागर जी की दृष्टि सर्वत्र आन्तरिक संभावना पर टिकी हुई हैं। कथा विस्तार के बावजूद इन कथानकों में एक सूत्रता बनी रहती है। ये कथा सूत्र यत्र–तत्र, स्वतन्त्र रूप से विकसित हुए हैं। कहीं–कहीं इनका सम्मिलन भी हो गया है। ''सम्पूर्ण कथा पर्वतीय निर्झरिणी की भाँति न होकर मैदानी नदी की तरह है जिसमें से अनेक रसन्कुल्याएँ इधर–उधर फूट निकली है।''[32]

'बूँद और समुद्र' एक वृहद चित्र फलक है। इसमें दुनिया का गति चित्र तैयार कर प्रेम, घृणा, आक्रोश, विवशता एवं जीवनोन्मुखता को एक साथ प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है। सज्जन की दुनिया अधूरी है, विधवाश्रम जैसी सेवा संस्थाओं में होने वाले अनाचार मोहनजोदड़ों, वैदिक सभ्यता आदि पर वर्णनात्मक चिंतन भी उपलब्ध है। उपन्यास की मूल उद्देश्य परक कथा के साथ नागरजी की लेखनी अनेक विधवृत्त चयन की ओर अग्रसर हुई है। कथा प्रवाह की चिन्ता न करते हुए लेखक ने स्थानीय वातावरण, रीति–रिवाज, भाषा, व्यवहार, मानव के समस्त क्रिया–कलापों को पूर्ण मनोयोग से कथानक के कलेवर में अन्तः स्यूत किया है।

बीच–बीच में प्रयुक्त दृष्टांन्त एवं किस्से इस उपन्यास की वस्तु शिल्प में विशेष महत्वपूर्ण बन गए हैं।[33] लोक गीत, फिल्मी गीत, कविता आदि का प्रयोग परिस्थिति सापेक्ष है। इससे वस्तु की आस्वाद क्षमता में वृद्धि हुई है।

शतरंज के मोहरे

इस उपन्यास की मूलकथा नवाब गाजीउद्दीन हैदर और नसीरूद्दीन हैदर के जीवन काल की नाना विध विसंगतियों, अवरोधों और कुचक्रों के कारण उत्पन्न शासन व्यवस्थागत दुर्बलताओं का विस्तृत लेखा–जोखा प्रस्तुत करती है। नागरजी ने कथानक सृष्टि में अवध के इतिहास से संबंधित ग्रन्थों, लोक प्रचलित कथाओं एवं गजेटियरों से पर्याप्त सहायता ली है। नवाबों के क्रिया–कलाप अन्तः पुर में दिन–रात चलने वाले कुचक्र, मलिकए–जमनियाँ, दुलारी का संघर्ष, आगामीर का बदलता हुआ आंतक, नवाबों की बढ़ती हुई विलासिता एवं परावलम्बिता, शासन के प्रति उनकी दृष्टि हीनता, बाँदियों की राजनीतिक सक्रियता और अंग्रेज रेजीडेन्टों की साजिसें सर्वथा इतिहास सम्मत है। ऐतिहासिक घटनाओं के परिवेश में रचित इस उपन्यास में रसमयता, भाव प्रवणता एवं मार्मिकता लाने के लिए कथानक को पूर्णतः संवेद्य बनाया गया है। अनेक मर्मस्पर्शी प्रसंगों की उद्भावना भी की गई है। उपन्यास में लेखक ने अल्प समयान्तराल में घटित होने वाले प्रसंगो को लेकर कथानक का गठन किया है। उपन्यास का कथा–विस्तार अत्यन्त लघु है फिर भी इसमें पात्रों की बहुलता है। इस कृति में प्रमुख पाँच कथा–प्रसंग है–

1. शाहे अवध गाजीउद्दीन हैदर और बादशाह बेगम प्रसंग।
2. दुलारी प्रसंग।
3. कुद्सिया बेगम और नसीरूद्दीन हैदर प्रसंग।
4. कुल्सुम और दिग्विजय ब्रह्मचारी प्रसंग।
5. भुलनी और स्मिथ प्रसंग।

सम्पूर्ण कथा इन्हीं पुरुष तथा नारी पात्रों के अन्तः संबंधों के आधार पर विकास पाती है जिसकी संक्षिप्त रूप–रेखा इस प्रकार है–

नवाब गाजीउद्दीन हैदर की बेगम, 'बादशाह बेगम' एक विदुषी एवं अहंकारिणी महिला है। वह पति को 'शंतरंज का मोहरा' समझती है। उसने अपने और नवाब के मध्य वैमनस्य की दीवार खड़ी कर ली है। अनेक प्रकार से वह नवाब पर अपना अंकुश जमाकर शासन सूत्र हथियाना चाहती है किन्तु आगामीर जैसे कुशल प्रबन्धक के कारण उसकी योजना सदैव निष्फल हो जाती है। पत्नी–उपेक्षित गाजीउद्दीन हैदर 'सुबह दौलत' नामक एक बाँदी से प्रेम करने लगा। उसके पुत्र जन्म का समाचार पाकर 'बादशाह बेगम' ने उसकी हत्या करवा दी और नवजात शिशु को भी मरवा डालने की कोशिश की किन्तु बीबी 'फैजुन्निशा' के अनुनय विनय पर 'सुबह दौलत' का पुत्र 'नसीरूद्दीन हैदर' जीवनदान पा गया। धीरे–धीरे बादशाह बेगम उसके प्रति सदय होकर उससे पुत्रवत प्यार करने लगी। राजरानी होकर अपनी जिन

आशाओं–आकांक्षाओं की पूर्ति वह नहीं कर पायी, उन्हें राजमाता हेकर पूर्ण करने का स्वप्न देखने लगी। कुछ समय बाद 'नसीरूद्दीन' को 'सुखचैन' नामक बाँदी से 'मुन्नाजान' नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। बादशाह बेगम ने गाजीउद्दीन हैदर के पास इस शुभ संदेश के साथ एक सौ एक मुहरों की नजर भिजवायी किन्तु बादशाह ने अस्वीकार कर दिया। उन्हें इस बात का पता हो गया कि मुन्नाजान नसीरूद्दीन की संतान नहीं, धोबिन की औलाद है। उसे स्वीकार करे अथवा नहीं ? इसी अन्तर्द्वन्द्व में घुटने लगा। अपने विरुद्ध रचे गए नाना प्रकार के षड्यंत्रों से निबटने के प्रयत्न में असफल होकर वह परिस्थितियों से समझौता कर लेता है। अन्ततः 20 अक्टूबर सन् 1927 को उसकी मृत्यु हो जाती है। नागर जी ने बादशाही जीवन की व्यग्रता का जीवन्त रूप प्रस्तुत किया है।

फरीदून बख्त उर्फ मुन्नाजान के पालन–पोषण हेतु सेना के एक घुड़सवार अब्बास कुली बेग के सईस रुस्तम अली की पत्नी दुलारी को नियुक्त किया गया। वह एक चरित्रहीन नवयुवती थी। उसने अपने दो सौतेले भाइयों और पड़ोसी नईम को अपने प्रेम–पाश में आबद्ध कर लिया। यह समाचार पाकर उसके पति रुस्तम अली ने दुलारी को घर से निकाल दिया। बीबी मुलाटी की कृपा से उसे शाही महल में धाय की नौकरी मिल गयी। वहाँ पहुँच कर उसने साहब जादे नसीरूद्दीन हैदर को अपने प्रेमजाल में फाँसा। बादशाह बेगम का भय उसके मार्ग में अवरोध बना हुआ था। इधर बादशाह बेगम को इस बात की आशंका थी कि कहीं नसीरूद्दीन हैदर मुझसे बगावत कर अपने पिता और वजीर आगामीर के पास न चला जाय। अतः उसने दुलारी की सहायता से नसीरूद्दीन को अपने चंगुल में फँसाना चाहा। दुलारी ने कूटिनीति से नसीरूद्दीन को उसके पिता गाजीउद्दीन हैदर से मिलाकर अपनी धाक जमा ली। शाही तन्त्र की लगाम युवराज के माध्यम से अपने हाँथ में ले ली। पिता की मृत्यु के बाद नसीरूद्दीन हैदर सिंहासनरूढ़ हुआ और दुलारी अवध की महारानी मलिक–ए–जमनियाँ के पद पर प्रतिष्ठित हुई। उपन्यास में दुलारी के जीवन से जुड़ी घटनाएँ इतिहास सम्मत हैं– "दुलारी एक बदचलन महिला थी। रुस्तम के अतिरिक्त भी उसका अनेक युवकों से संबंध था विभिन्न परिस्थितियों का सामना करती हुई वह लखनऊ के नवाबी राजमहल में जा पहुँची। दुलारी की सुन्दरता पर गाजीउद्दीन हैदर का पुत्र नसीरूद्दीन हैदर रीझ गया और राजगद्दी मिलने पर मलिकए जमानियाँ का खिताब देकर उसे अपनी बेगम बना लिया।"[34] नसीरूद्दीन के शासन संभालते ही बादशाह बेगम ने अपने पुराने शत्रु आगामीर को अपदस्थ करवा दिया। फलतः अवध की स्थिति दिन–प्रतिदिन बिगड़ने लगी। उत्तराधिकार के लिए फिर जाल बुना जाने लगा। बादशाह बेगम मुन्नाजान को राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी और दुलारी अपने ज्येष्ठ पुत्र कैवाँशाह को।

तीसरा मार्मिक प्रसंग नवाब नसीरूद्दीन हैदर और उसकी प्रेमिका कुद्सिया बेगम का है। निश्छलहृदया कुद्सिया बेगम नसीरूद्दीन से प्रेम करती थी। अन्तःपुर के षड्यन्त्र से उस पर बदचलन होने का आरोप लगाया गया। नसीरूद्दीन भी इस षड्यन्त्र के प्रभाव में आकर उससे

घृणा करने लगा। आत्मग्लानि के कारण कुद्सिया ने जहर खाकर अपना प्राणान्त कर लिया। कुद्सिया की मृत्युपरांत भय और आशंका के वातावरण में नसीरूद्दीन का भी 8 जुलाई, 1837 को देहान्त हो गया।

चौथा कथा प्रसंग सामाजिक यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत करता है। दिग्विजय सिंह के भाई मृत्युंजय सिंह ने धर्म परिवर्तन कर अपना नाम नूर मोहम्मद रख लिया। दिग्विजय के पट्टीदारों और उनकी विमाता ने चौधरीगीरी के लिए अनेक षड्यन्त्र किये, मृत्युंजय सिंह उर्फ नूर मोहम्मद शाही फौजों के संघर्ष में मारे गयें। उनकी अनाथ पुत्री कुलसुम को लेकर दिग्विजय सिंह प्रसिद्ध जमीदार लाल कुँवर सिंह के शरणगत हो गये। किन्तु लाल कुँवर सिंह की मृत्यु के बाद ब्रह्मचारी जी गंगा तट पर कुटिया बनाकर रहने लगे। अपने आदर्शों एवं सिंद्धान्तों पर अडिग रहने वाले दिग्विजय जाति–पाँति के भेद–भाव को भुलाकर भतीजी कुलसुम के प्राणों की रक्षा के लिए असफल प्रयास करते रहे। अन्ततः कुलसुम वेश्या बनने के लिये विवश हो जाती है।

पाँचवाँ कथा प्रसंग कटु सामाजिक सत्य का उद्घाटन करता है। भुलनी, गज्जू बसोर की तेरह वर्षीय होनहार बालिका थी। अपनी माँ के साथ वह प्रायः नील कोठी में काम पर जाया करती थी। दुर्भाग्यवश वह नील कोठी के मुनीम मिस्टर स्मिथ की वासनाका शिकार हो गयी। अतः उसने आत्म ग्लानि के कारण आत्म हत्या कर ली। उसकी कथा अत्यन्त कारुणिक है, वह कहती है–"अरे! महिका का। दीन धरम, माता–पिता, भगवान मोर सब कुछ छीन लिहिन। पापी परान काहे अटके हैं। कइसे निकसि हैं।"

उपन्यास में इन कथाओं के अतिरिक्त कई गौण कथाएँ भी हैं जो मुख्य कथा को सम्बल भी प्रदान करती हैं। यद्यपि इन गौण कथाओं का अलग से कोई महत्व नहीं है तथापि यह मूल कथा की अनुवर्तिनी बनकर मार्मिक चित्रों का निर्माण करती है। ये कथाएँ पतनोन्मुख नवाबी शासन की परिस्थितियों का परिचय देती हैं। उपन्यास का वस्तु–तत्व अपनी कल्पना समन्वित ऐतिहासिकता के कारण अत्यन्त भव्य है। ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता को ध्यान में रखकर नागर जी ने नवाबों की उपाधियों, जन्म–मृत्यु एवं घटना तिथियों, घटना क्रमों तथा अन्य पात्रों के परिचय को इतिहास से पुष्ट किया है।

प्रस्तुत उपन्यास एक ऐतिहासिक रचना की सभी सम्भाव्य प्रवृत्तियों से आवेष्ठित होकर पर्यावरण की सजीवता, उपन्यास की चारुता एवं संवेद्य की तीव्रता के लिए अपेक्षा से अधिक पात्रों से युक्त है। ये पात्र तत्कालीन समाज के सच्चे ऐतिहासिक चरित्र हैं। इस उपन्यास के पात्र न केवल नवाबों और सामन्तों के आचार–विचार, राजनीति, धर्म एवं सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं, अपितु तद्युगीन अवध के वर्गगत व्यक्तित्व भी हैं। पात्र विचारों के पुतले न बनकर विभिन्न समूहों के प्रतिनिधि बन गये हैं।[35]

इस उपन्यास का आरम्भ अवध के नवाब नाजिम साहब के वसूली जत्थे के साथ होता हैं। नवाब के स्थानीय जागीरदार जब समय से लगान वसूल कर पाने में असमर्थ रहते थे

तो नवाब अपनी सेना को सुसज्जित कर वसूली के लिए प्रस्थान करता था। ऐसे प्रस्थानों–प्रयाणों में प्रजापीडन अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता था। बिगार में पकड़ी गई निरीह जनता का आर्तनाद 'रुस्तम नगर' में देता है और यह केवल एक नगर की ही बात नहीं थी, अपितु प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक गली कूचों में ऐसा ही कुहराम था। शस्य श्यामला धरती को बीरान करना, बहन बेटियों की अस्मत लूटना आए दिन की बात थी। ज्यों ही नवाब, 'रुस्तम नगर' के नवाब का अतिथि बना, कि "गन्ने के खेत में पीलवान अपने हाथियों को धसाने लगे। दूसरे खेतों की ओर घोड़ो के झुण्ड बढ़े, बैलों के रखवाले और चूल्हे जलाने के लिए लकड़ी की खोज में निकले सिपाहियों ने बाहरी बस्ती के घरों पर छापा मारा। सिपाही, पीलवान शाईस और शाही बैलों के रखवाले, महमूद गजनवी और नादिरशाह बने अकड़ के मारे आसमान में अपना रुख मिलाते घुड़कते और धकियाते थे।"[36]

स्थिरता और राजनैतिक सुव्यस्था के लिए ही प्रजा ने राजा और नवाबो का साथ न देकर अँग्रेजों का साथ दिया। इसी संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में नारी की स्थिति बड़ी ही दयनीय थी। 'दुलारी' हिन्दू होते हुए भी मुसलमानों के द्वारा अपहृत की जाती है। वैवाहिक संबंध स्थापित होने के बाद भी उसके सगे संबंधी, मुसलमानों के परिवारों में आने जाने से गुरेज नहीं करतें थें। यही दुलारी आगे चलकर उपन्यास की महत्वपूर्ण पात्र बनकर अवध के नवाब को अपने इंगित पर चलाने में सफल होती है। मुसलमानों के अभेद्य परिवार को झाँककर उपन्यासकार ने देखा है। इन परिवारों के भीतर चलने वाली ऐय्यासी तथा दाँव पेंच का बड़ा ही विश्वसनीय चित्र अंकित किया है। नवाबों के वैभवपूर्ण जीवन तथा "नाच गानों और वेश्याओं के प्रति उनकी अनन्यभक्ति का चित्रण कर ढलते हुए नवाबी ऐश्वर्य का जो चित्र इसमें खीचा गया है, वह इतिहास संगत है।"[37] "विलास की सर्वोपरि मान्यता में सामाजिक जीवन डूबकर सड़ रहा था।"[38] 'दुलारी' 'मलके जमानियाँ' का पद प्राप्त कर लेती है परन्तु अपने पुराने प्रेमी को देखते ही उसका हृदय उसके अधिकार में नहीं रहता। "दुलारी बेताब हो उठी, सामने नईम उल्ला था। हूबहू वैसा ही, थोड़ा संजीदा हो गया था। दुलारी का कलेजा फड़क रहा था। तमन्ना बेताब हो उठी। अपनी खास बाँदी सलोनी को इशारा किया। उसके कान में कुछ कहा और फिर एकटकी लगाए उसे देखती रही, जिसे देखने के लिए वर्षों से बेकरार थी।"[39]

नवाबों की सारी सम्पत्ति उत्तराधिकारी के अभाव में अँग्रेजी कंपनी की घोषित हो जाती थी। यह गौरांगों की ऐसी साम्राज्यवादी नीति थी कि स्वयं ही, बिना लड़े, बिना खून खराबी के भारत भूमि यूनियन जैक के नीचे आती चली जा रही थी। विलासिता में डूबे रहने के कारण देशी राजा और नवाब अपना पुंसत्व खो बैठने के कारण संतानहीन हुआ करते थे। नसीरुद्दीन् ऐसी ही संतान होने के कारण अपनी अकर्मण्यता और विलासिता के कारण राजपाट खो देता है। बेगमें राजमाता बनने के लिए किसी भी दासी पुत्र को अपना पुत्र घोषित कर दिया करती थीं। यह तो सत्य ही है कि दासियों के गर्भ में भी नवाबों का ही वीर्य पलता था। ऐसे अवसरों पर अँग्रेजों के

भारतीय जासूस सक्रिय रहा करते थे। इसीलिए भारतीय महलों को अँग्रेज अपने अधिकार में करने में सफल हुए।

उपन्यास की कथा मूलरूप में लखनऊ के नवाब बादशाह 'गाजीउद्दीन हैदर' और उसके उत्तराधिकारी नसीरुद्दीन के राज्य काल तथा उन दोनों की मानसिक दशा का बहुत ही सटीक अंकन करती है। ''नसीरुद्दीन बिलासी और अस्थिर मति है। वह अपनी बेगमों तक पर विश्वास नहीं करता। संसार में उसका अपना कोई नहीं है। उसे मनुंष्यों की पहचान नहीं, इसी कारण थोड़ा प्रेमाभिनय और खुशामद भरी बातें करने वाले का वह हो जाता। अविश्वासी हृदय ने उसे घुटन भरा जीवन अस्थिर मति और बेहद सबक दी है।''[40] जीवन में कुदसिया बेगम ही उसे सहारा देती है। वह न तो 'नसीर' की चाटुकारी करती है और न उसे व्यर्थ के जाल में फँसाती है। वह हृदय से उसका हित चिंतन करती है। इसी कारण असमय में ही उसे अविश्वासी महलों से मृत्यु की शय्या सुखद लगी।

उपन्यास का पर्यवसान करुण में होता है। अधिकांश पात्र या तो मृत्यु प्राप्त करते हैं या पलायन, या फिर अँग्रेजों द्वारा बन्दी बना लिए जाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास लखनऊ दरवार से संबंधित होने के कारण फारसी और अरबी शब्दों की बहुलता लिए हुए है। इसमें खड़ी बोली का वही रूप लिया गया है जो आज भी लखनऊ चौक में बोला जाता है। इसीलिए उपन्यास भाषा की ताजगी और जीवंतता से ओत प्रोत है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में 'शतरंज के मोहरे' का विशेष स्थान है। सुगठित कथानक, सजीव चरित्र चित्रण और वातावरण की सृष्टि ने उपन्यास के महत्व को अनायास बढ़ा दिया है।

सुहाग के नूपुर

नागरजी ने नगरवधू की पीड़ा और संघर्ष को वाणी तो दी किन्तु नगरवधू को कुलवधू की सामाजिक प्रतिष्ठा दिला सकने में वे असफल रहे। वस्तुतः यह उपन्यास उपेक्षित एवं अपमानित वेश्या–जीवन की घुटन और उनके द्वारा कुलवधू का स्थान प्राप्त करने के लिए किये गये संघर्ष की लोम हर्षक कहानी है। इसमें तत्कालीन सामाजिक समस्याओं, राजनीतिक संघर्षो, महाजनों की व्यापारिक प्रति द्वन्द्विता, दक्षिण भारतीय संस्कृति और कला का सांगोपांग चित्रण हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास मे भी कई कथा सूत्र हैं। एक कथा विदेशी व्यापारी और उसकी भारतीय प्रेमिका पेरियनायकी की है। दूसरी कथा 'वेश्या चेलम्मा' की है, तीसरी कथा 'माधवी', कोवलन और कन्नगी से संबंधित है। इन्हीं पुरुष तथा नारी पात्रों के संबंधों के आधार पर वस्तु का विन्यास किया गया है।

माधवी, कोवलन और कन्नगी से संबंधित यह कथा आगे बढ़ती है। माधवी को अपने प्रेम का अटूट विश्वास है। अभिमान भी। उसका विचार है कि ''कुलीन ऐसा क्या दे देगी जो मैं न दे सकी। ठीक है, वह अपने साथ गजान्त लक्ष्मी लाएगी परन्तु मैंने भी अपना अनमोल प्रेम दिया है। मैने हृदय से उन पर रीझकर उनको रिझाया है। उन पर मेरा अधिकार है।''[41] वह कोवलन को

"पूर्ण स्वत्वाधिकार"[42] से अंगीकार करना चाहती है। इन सब अव्यावहारिक बातों से पेरियनायकी चिढ़ती है क्योंकि वह वेश्या होने के कारण अपने "पति धर्म को धन से बँधा"[43] हुआ मानती है उसका "प्रेम व्यवसाय है" और पुरूष उसका माध्यम है।"[44] पेरियनायकी माधवी से कोवलन के लिए पत्र लिखवाती है। पत्र विरह से भरपूर है। लज्जित और सतर्क कोवलन सागर तट अवस्थित पान्सा के उद्यान भवन में माधवी से मिलने आया उस भव्य उद्यान में दोनों का अपूर्व संगम होता है। और इसमें "दोनो ने आयु में पहली बार एक–दूसरे से अपना पुरुषत्व और नारीत्व पाया।"[45] इतना ही नहीं अपितु कोवलन माधवी को यह विश्वास दिलाता है कि उसका "मन (माधवी) के लिए एक से दो न होगा।"[46] परन्तु कोवलन "अपने कुल के धवल यश और गौरव को भी किसी के द्वारा एक क्षण के लिए भी कलंकित होते नहीं देख सकता।"[47] यही मर्यादा की तुलना कन्नगी और माधवी के मध्य संतुलन कराने में असमर्थ रहती है। माधवी का यह प्रलाप कि "स्त्री के नैसर्गिक रूप–गुण और मन को पाकर भी उसके अधिकारों से वंचित है।"[48] क्योंकि वह स्त्री नहीं, वेश्या है।[49] कोवलन अपनी वेश्या प्रेमिका को विश्वास दिलाता है कि "तुम्हारे रूप गुण कलाचातुर्थ ने जो प्रेम की ज्योति जलाई थी, वह अखण्ड है। सदा यो ही प्रकाशमान रहेगी। कोट्याधीश मानाइहन की सती कन्या कन्नगी आजीवन उस ज्योति को न बुझा सकेगी।"[50] प्रेम की यह अखण्ड ज्योति उसी समय बुझती है जब माधवी कोवलन को उसकी हवेली में से धक्केमार कर निकाल देती है और स्वयं अपने स्वार्थ और प्रतिक्रिया वश राज्याधिकारी की अंक शायिनी हो जाती है।

माधवी का सप्तवर्णी प्रेम कोवलन की मन बुद्धि को यहाँ तक आच्छादित कर लेता है कि "कन्नगी के सपनो की पहली रात तुम मेरे यहाँ रहोगे और .....तुम्हारी कन्नगी मेरी नागरत्ना की तरह तुम्हारी और मेरी सेवा में।"[51] का वचन कोवलन माधवी को दे देता है। कोवलन दिये हुए वचन का पालन करता है परन्तु माधवी की सनक के कारण कोवलन का हृदय उसकी ओर से रिक्त हो जाता है क्योंकि माधवी के सम्मुख खड़ी हुई "कन्नगी की झुकी हुई आँखों वाला शान्त मुखमण्डल उसे कड़ी धूप और लू के झोंकों भरे मैदान से झुलस कर आने पर वट वृक्ष की घनी छाँव सा शीतल लगा।"[52] क्योंकि काँच के लोभ में उसने हीरे का तिरस्कार किया था। कोवलन सतीसाध्वी कन्नगी से इस गुरुतर अपराध के लिए क्षमा–याचना करता है। इस प्रकार कुलवधू के नूपुरों की मन्थर ध्वनि से क्रमशः सौभाग्य पथ पर आगे बढ़ती जा रही थी।[53]

कोवलन ने व्यापार क्षेत्र में नवीन कीर्तिमान स्थापित किये। आर्थिक क्षेत्र को नई गति प्रदान कर स्वयं कोवलन अपनी प्राणाधिक्य प्रिया कन्नगी को साथ लेकर सार्थ सहित विदेश जाता है। अनेक वर्ष विश्व के विभिन्न भागों का भ्रमण कर रोम पहुँचा। वहीं रोम में कन्नगी की ज्योतिषाचार्य, भिक्षुणी से भेंट होती है। भिक्षुणी ने कन्नगी के संबंध में एक कुटिया और राजकुमारी की कथा सुनाई जिसमें "बेचारी पतिव्रता राजकुमारी इतना यत्न करते रहने पर भी अपने सौभाग्य को सुरक्षित न कर सकी।"[54] वहीं विदेश में ही कोवलन को अपने श्वसुर मानाइहन चेट्टियार का

एक सार्थवाह से संदेश मिला कि वह शीघ्र स्वदेश लौट आए। इधर मानिनी माधवी भी अपने विरह के दिन व्यतीत करते हुए भी मन को साध रही थी। अनेक प्रकार की पूजा अर्चना करते हुए भगवान से प्रार्थना करती कि उसके पति रूप कोवलन सकुशल स्वदेश लौट आएँ। सुदिन आ गया किन्तु कोवलन माधवी से मिलने न आ सका।

ऐसी स्थिति में पेरियनायकी और माधवी ने एक ऐसी योजना बनाई जिसमें कोवलन बुरी तरह फँस गया। उस समय तक न निकल सका जब तक कि माधवी ने उसे इन्द्रोत्सव में अपमानित कर दिया। हारा–थका–पिटा कोवलन फिर कन्नगी की शरण में चला गया उस सती की तपस्या से कोवलन स्वस्थ हो गया। कन्नगी कोवलन ने चेलम्मा की आज्ञानुसार मथुरा के लिए प्रस्थान किया। प्रस्थान करने से पूर्व माधवी की प्रति हिंसा के कारण कोवलन की पुरानी किन्तु निर्जन हवेली में कन्नगी की बाल सखी 'देवन्ती' की हत्या कर दी जाती है। सत्य ही है दुर्भाग्य कभी एकांगी नहीं आता। ठीक इसी समय कावेरीपट्टणम् में जल प्लावन होता है। नगर की शताब्दियों से संचित धनराशि, वैभव और सांस्कृतिक जीवन जलमग्न हो जाता है। इस आघात से माधवी पागल हो कांची के बौद्ध विहार में शरण प्राप्त करती है और मणिमेखला की जल समाधि हो जाती है।

अन्त में 'सुहाग के नूपुर' बेचते समय कोवलन बन्दी बना लिया जाता है। मदुरा में जब यह शूली पर चढ़ाने के लिए ले जाया जाता है तो उसी समय विलाप करती हुई कन्नगी अन्यायी राजा को शाप देती है। जनरोष के भय से कन्नगी और कोवलन राजा के निकट ले जाये जाते हैं। निर्दोष होने के लिए प्रमाण माँगने पर कन्नगी सुहाग के दूसरे नूपुर को साक्ष्य के रूप में दिखला देती है। दोनों मुक्त हो जाते हैं। धनादि प्राप्त कर अपना व्यापार बढ़ाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में एक गाथा विदेशी व्यापारी और उसकी भारतीय प्रेमिका पेरियनायकी की है। माधवी पेरियनायकी की पोष्य पुत्री है। वह वेश्या होने के कारण अपने भविष्य के प्रति अत्यधिक सजग रहती है। इसी कारण माधवी कोवलन को केवल धन प्राप्ति के लिए ही प्रेरित करती है कि सच्चे प्रेम सतीत्व रक्षण के लिए। पान्शामानाइहन के व्यापारिक दाँव–पेंच होते हैं। पहली बार पान्शा पराजित होता है किन्तु अपनी राजनीति सुदृढ़ करने पर व्यापारिक क्षेत्र में पान्शा को सफलता मिलती है। कोवलन द्वारा प्रताड़ित कन्नगी को जब मासात्तुवान की गगन चुम्बी अट्टालिका से निकाल दिया जाता है तब मानाइहन अपनी बेटी से मिलकर सन्यास की घोषण कर देते हैं। अपनी अतुल सम्पत्ति को राज्यार्पण कर देते हैं। इस युक्ति से मानाइहन हार कर भी विजयी हो जाते हैं। महाराज 'चोल' का 'डरैपूर' से बदल कावेरीपट्टणम को राजधानी घोषित करते ही पान्शा और उसकी रूप जीवा प्रेमिका नगर छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। मार्ग में ही दस्युओं द्वारा उनका वध कर दिया जाता है। उनकी संपूर्ण संपत्ति दस्यु हर लेते हैं। इन पात्रों की नियति ही ऐसी होनी थी क्योंकि उपन्यास का लक्ष्य एक विशिष्ट–आदर्श की स्थापना करना है।

उपन्यास में एक कथा और है चेलम्मा की। चेलम्मा अत्यधिक स्वाभिमानी वैश्या है। वह भी माधवी की भाँति किसी एक पुरुष की बँधकर रहना चाहती थी, किन्तु उसकी सामाजिक स्थिति के कारण उसे सदैव दुत्कारा ही जाता रहा वह मानाइहन की नृत्य प्रेमिका है। माधवी की नृत्य एवं संगीत की आचार्या। कावेरी पट्टणम में एक बार बन्दरों का तमाशा भी वह दिखलाती है। कोठी होने पर वह सौभाग्य सम्पन्न नहीं रहने पाई। एक दिन किसी सार्थ के साथ वह तीर्थ यात्रा करती हुई काशी पहुँच जाती है। किसी सन्यासी की मनोयोग से सेवा करती है और इसलिए उसकी अलौकिक औषधि के सेवन से कोढ़ मुक्त होती है फिर अपने संपूर्ण लावण्य के साथ कावेरीपट्टणम में प्रवेश करती है। सब आश्चर्य चकित रह जाते है। गाढ़े समय में वह कन्नगी की सहायता कर कोवलन का उद्धार करती है। चेलम्मा से संबंधित कथा उपन्यास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। नवीन विचार प्रवाह के लिए भी यह कथा अन्य अनेक आयाम खोलती है। उपन्यास का अधिकांश सिद्धान्त पक्ष इसी घटना के माध्यम से उपन्यास के कथा सूत्रों में दिखलाई पड़ता है। इस दृष्टि से उपन्यास कार की कलात्मकता इस कथा में स्पष्ट दृष्टि गोचर होती है। विपरीत धाराओं को मिलाने वाली कथा है।

पान्शा, पेरियानायकी और माधवी संबंधी कथा मुख्य कथानायक और नायिका के लिए विषमता उत्पन्न करती है। इस कारण संघर्ष अपनी चरमावस्था पर पहुँच जाता है। चेलम्मा संबंधी कथा उफनते हुए दूध में छींटे देने का कार्य करती है। इसलिए संघर्ष के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न होता है जिसके कारण कथा के घात–प्रतिघातों में प्रतिस्पर्द्धा के कारण असीम सौन्दर्य निखरता है।

कथा–गठन की एक और कसौटी है कि भरती की घटनाओं को उपन्यास में स्थान न दिया जाय। वैसे नागर जी पर उनके उपन्यासों के आधार पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि वे अपने उपन्यासों में अत्यधिक वर्णन करते है जिसके कारण कहीं–कहीं कथा सूत्र बिखर से जाते है। प्रस्तुत उपन्यास में उनकी प्रवत्ति दिखाई नहीं देती। यदि उपन्यासकार अपने इस मोह को न छोड़ता तो वह अनेक ऐसे वर्णन कर जाता जो कथा के लिए आवश्यक नहीं होते। कहीं पर ऐसी किसी घटना का भी वर्णन नहीं है जो उपन्यास में भर्ती की दिखाई पड़े। हाँ, नागरजी के कुछ अध्येता यह कह सकते हैं कि अध्याय पाँच की कथा व्यर्थ और भर्ती की है। परन्तु इस संबंध में इतना ही निवेदन है कि उक्त कथा के माध्यम से चोल राज्य की आन्तरिक शासन व्यवस्था का दिग्दर्शन कराया गया है जो ऐतिहासिक घटनाओं को विश्वस्त बना देता है। और भावी घटनाओं से संबंधित भी है। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'सुहाग के नूपुर' की कथावस्तु सुगठित है और इसी कारण अत्यधिक पठनीय हो गयी है। कथावस्तु का कलात्मक सौन्दर्य उपन्यासकार की वर्णनों के प्रति वितृष्णा ही कही जायगी।

कथावस्तु में सभी पात्रों के चरित्रों का अंकन अनेक भंगिमाओं के साथ किया गया है। उपन्यास की कथावस्तु का मुख्य चरित्र माधवी है। वह वैश्या पेरियानायकी की पुत्री है। उसके

अनिंद्य सौन्दर्य महत्वाकांक्षा, नृत्य संगीत कला–निपुणता के साथ–साथ अन्य गुणों का भी अंकन किया गया है। माधवी सुहाग के नूपुर प्राप्त कर सामाजिक प्रतिष्ठा की आकांक्षा रखती है। किन्तु सामाजिक यथार्थ का ज्ञान होने पर वह विद्रोहिणी बन जाती है। उसकी दृष्टि में वेश्या जीवन का सत्य है "कोई कहता है, मुझे मानव मात्र से घृणा है, मैं समाज का नाश करती हूँ, कोई यह नहीं देखता कि वैश्या अपने ही संस्कारों में पाली जाती हैं। जो स्त्री किसी भी अन्य गृहिणी की तरह काम काजी और जग संचालन का भार वहन करने योग्य थी, उसे पुरुषों की विलास–वासना मात्र बनाकर समाज में निकम्मा छोड़ दिया जाता है, फिर क्यों न वह समाज से घृणा करे।"[55] यद्यपि माधवी प्रेंम का नाटक नहीं करतीं और कोवलन को पत्नी की तरह प्यार करती है, कोवलन द्वारा कन्नगी को लेकर विदेश चले जाने पर भी– "विरही नारी प्रतिदिन तुलसी मैया को जल चढ़ा दीप बार, यही वर माँगती कि उसके चेट्टियार सकुशल लौटकर आयें।"[56] तथापि वह समाज में कुलवधू जैसा स्थान नहीं प्राप्त कर पाती। "मन से अपना प्राण पति बना चुकने पर भी मैं अधिकार पूर्वक जीवन भर तुम्हें अपना न कह सकुंगी। स्त्री के नैसार्गिक रूप, गुण और मन को पाकर भी उसके अधिकारों से वंचित हूँ। मै स्त्री नहीं वैश्या हूँ। राज पुरुष द्वारा उसे वैश्या बनाने के बाद कहा जाता है "सुहाग के नूपुर की महत्वाकांक्षा से उसके नृत्य के घुँघुरू अब कभी न बौरायेंगे। इस प्रकार अन्त में नारी जाति की समस्त पीड़ा उड़ेलती हुई माधवी कहती है। "पुरुष जाति के स्वार्थ और दम्भ भरी मूर्खता से सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्द्धांग नारी जाति पीड़ित है।"[57] माधवी के चरित्र में जो त्रुटि प्राप्त होती है उसकी ओर संकेत करते हुए डॉ0 शिवनारायण श्रीवास्तव ने कहा है– "यदि वह वेश्या कुट्टनी कला को छोड़ संयम और सहिष्णुता से जीवन यापन करती, हिंसा और हठ पर विजय प्राप्त कर सकती तो कन्नगी, कोवलन और स्वयं उसका जीवन इतना दुखद न बनता।"[58]

कन्नगी के चरित्र में भारतीय कुलवधू का आदर्श पतिव्रता पूर्ण चित्र पाया जाता है। उसमें निहित समर्पण, श्रद्धा विश्वास, धैर्य, दृढ़ प्रेम, गम्भीरता, मर्यादा भाव, तेजस्विता तथा ऋजुता आदि गुण उसको उल्लेखनीय बनाते हैं। कोवलन और माधवी के अनैतिक संबंध को जानती हुई वह उत्तेजित नहीं होती और अपने कुल गौरव का परिचय देती है। "बहन मेरे देव तुल्य पति कुल में सुहाग के नूपुरों से मेरे पैरों को बाँध दिया है। ये घुँघुरू तुम्हारे ही पैरों में शोभा पायेगें।"[59] पिता द्वारा सत्यता जानने का प्रयास करने पर वह कुछ नहीं बोलती है और पिता को उस पर गर्व होता है। "बेटी तुम्हारा शील ही तुम्हारे पित्रृ कुल की यशोगाथा गा रहा है।"[60] कन्नगी द्वारा कोवलन, माधवी और उसकी पुत्री मणिमेखला की सेवा सुश्रूषा, माधवी के षड्यंत्र और कोवलन की निष्क्रियता, 'सुहाग के नूपुर' तक बिकने की स्थिति में भी और पति द्वारा घर से निकाल दिये जाने और क्रूरता पूर्वक पीटे जाने पर भी कन्नगी द्वारा विरोध न किया जाना उसके चरित्र को चरमोत्कर्ष पर ले जाता है। कुल की मर्यादा रक्षा के लिए वह विवश रहती है। नागरजी ने अपने उपन्यास की कथावस्तु में कन्नगी के चरित्र को और अधिक ऊँचाई पर पहुँचाते हुए और कथा को

विकसित करते हुए कन्नगी का नूपुर बेंचने के अपराध में कोवलन को मृत्यु दण्ड का आदेश होने पर कन्नगी अपने सुहाग की रक्षा करती है। "छोड़ दो मेरे पति को, छोड़ दो। वे चोर नहीं हैं। पाण्ड्य राजा के यहाँ अन्याय हो रहा है। ऐसे अन्यायी राजा का शीघ्र ही अन्त होगा। उसकी रानी के पैरों से सुहाग के नूपुर सदा के लिये चले जायेगें। और सत्य जानने पर कोवलन को जीवन दान मिलता है और महाराज भी उसकी प्रशंसा करते हुए कहते है "सती ही अपने पुरुष को बल प्रदान कर सकती है क्योंकि वह दुविधा से रहित है।"[61]

कोवलन चेट्टियार का चरित्रोद्घाटन अन्तर्द्वन्द्व और आत्म कथन द्वारा बड़े आकर्षण ढंग से किया है। कहीं उसका चरित्र शील सम्पन्न, उच्च गुणों से युक्त और व्यापार कौशल में पारंगत, कावेरीपट्टणम के गौरव के रूप में और बाद में वह माधवी और कन्नगी के मध्य द्विविधा के झूले में झूलता रहता है।

नागरजी ने कोवलन के चरित्र के उत्कर्ष और अपकर्ष को अन्तर्द्वन्द्वों एवं आत्मविश्लेषण के माध्यम से अत्यन्त स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक ढंग से उद्घाटित किया है। "कोवलन पुरुष के चंचल और उद्दाम रूप का प्रतीत है, जो पत्नी के शान्त, निश्छल, सहज प्राप्य प्रेम–समर्पण से सन्तुष्ट न हो शिराओं और मन के तनावों में झनझनी उत्पन्न करने वाले, चमक–दमक से पूर्ण असहज–प्राप्य प्रेम की खोज में भटकता है।"[62] नागरजी कोवलन, माधवी और कन्नगी के चरित्रों को एक–दूसरे की सापेक्षता में विकसित करते हुए अपने मूल उद्देश्य में सफल रहे हैं।

मानवीय दुर्बलताओं से ग्रस्त सभी पात्र अपने–अपने गुणों–अवगुणों, मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों, विद्रोह, संघर्ष तथा स्व–उद्देश्यों की प्राप्ति और रक्षा सचेष्ट यथार्थ जगत् के ही पात्र प्रतीत होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण प्रभावशाली पात्र वेश्या माधवी और सती कन्नगी है। ये नारी पात्र अपने–अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए अपने संघर्षों के प्रति ईमानदार बने रहते है। कोवलन द्विविधा ग्रस्त होकर माधवी और कन्नगी के बीच त्रिशंकुवत् अधोमुख लटका हुआ पुरुष पात्र है। पात्रों के ईर्ष्या, प्रतिशोध, क्रोध उन्माद, प्रेम, घृणा आदि मनोभावों की सहज अभिव्यक्ति हुई है। सामाजिक जीवन की विकृतियों, अन्तर्विरोधों तथा भारतीय संस्कृति का सजीवांकन हुआ है। तद्युगीन समाज की व्यापार–स्थिति, व्यवसायियों की अति वैभव–सम्पन्नता, व्यापार हेतु सिकन्दरिया, रोम आदि देशों की सामुद्रिक यात्रा, उत्सव–समारोह, नृत्यकला प्रियता, वेश्याओं का समाज के प्रति घृणायुक्त आक्रोश, कावेरी नदी की बाढ़–विभीषिका ऐश्वर्य–वैभव सम्पन्न कावेरीपट्टणम् के विनाश आदि के माध्यम से तत्कालीन वातावरण का मार्मिक चित्रण हुआ है। कावेरी की भयंकर बाढ़ का दृश्य दृष्टव्य है– "जल के थपेड़े मनुष्य के नाते–रिश्तों को मृत्यु के थपेड़े मानकर छिन्न–भिन्न कर रहे थे। हांथो को हांथ नहीं सूझता था। मृत्यु ही सबकी एक मात्र साथी बन गयी। कुपित प्रकृति के घोर नाद में जीवन का करुण क्रन्दन खो गया था।"[63]

भाषा मिली–जुली और वातावरण प्रस्तुत करने में पूर्णतया सक्षम है। तमिल शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। यथा–कलन्जु (सिक्के), वैत्तिले (पान), पुएल्ला (प्रियतमा), मोदक (सार्थवाह) आदि

किस्सागों–शैली नागरजी के रचना–कौशल की प्रमुख विशेषता है। उपन्यास की कथावस्तु ऐतिहासिक पटल पर यथार्थ की सजीव रेखाओं से चित्रित है। नागरजी की दृष्टि इतिहास की चका चौंध में ही उलझकर नहीं रह गयी है। उन्होंने तत्कालीन समाज के यथार्थ को विशेष रूप से देखने–परखने की चेष्टा की है। ''यदि एक ओर उन्होंने कावेरीपट्टष्णम् के वैभव के लुभावने चित्र खींचे है, बड़े–बड़े राजकीय समारोहों का विवरण दिया है तो दूसरी ओर बड़े–बड़े श्रेष्ठियों के महलों, राज भवनों तथा मन्दिरों के सामने बैठी हुई भिखमंगों की पंक्ति को भी उतनी ही पैनी दृष्टि से देखा है। यदि उन्होने रूप गर्विता नर्तकियों के विलास पूर्ण जीवन के आकर्षक चित्र प्रस्तुत किये है तो किसी समय राज्य की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी और अपूर्व मान सम्मान तथा वैभव भोगने वाली चेलम्मा को दर–दर ठोकरें खाते हुए भी उन्होंने दिखाया हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि नागर जी ने ऐतिहासिक यथार्थ के प्रति पूरी तरह ईमानदार रहने का प्रयास किया है।''[64]

नागरजी ने यदि वेश्या–नारी के जीवन के करुण सन्दर्भों को पूरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है तो कुलवधू की दुःखमय जीवन–स्थितियों को भी पूरी सहानुभूति प्रदान की है। वस्तुतः समूचे उपन्यास में वेश्या या कुलवधू की पीड़ा के माध्यम से नागरजी ने सामाजिक व्यवस्था में कराहती और न्याय की उचित मांग करती हुई नारी की करुण कथा कही है। एक नगरवधू के रूप में पीड़ित होकर समाज से न्याय पाने के लिए असफल संघर्ष करती है और दूसरी घुटन मूलतः नारी–जीवन की घुटन है, जिसे नागरजी ने ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में स्वर्ण युग की चमक–दमक के साथ यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। नागर जी का मुख्य उद्देश्य समाज–व्यवस्था के अन्तर्गत नारी के उचित अधिकारों की मांग से ही सम्बद्ध रहा है।

प्रेमचन्द जी की भाँति नागरजी भी इस उपन्यास के पान्सा, पेरियनायकी और देवन्ती नामक पात्रों को अनावश्यक समझकर उनकी हत्या करवा देते है जिससे अन्य पात्रों के जीवन में कोई नया मोड़ आ सके। उपन्यास की कथा सहज, सरल एवं रोचक है। कथानक की एकात्मकता पाठकीय अभिरुचि को बनाये रखने में सक्षम है। परिस्थितियों के साथ–साथ घटनाएँ घटित होती गयी है। ''कहीं–कहीं कथा की सर्वोदयी परिणति खटकती है। ऐसा लगता है कि लेखक जानबूझ कर यथार्थ जीवन की विकृतियों को गांधीवादी प्रेम से स्निग्ध करके नव निर्माण का प्रयत्न कर रहा है।''[65]

अमृत और विष

यह एक वृहद उपन्यास है। आरम्भ में उपन्यास का एक पात्र रमेश अपनी बहन के विवाह के लिए लच्छू के साथ प्रयत्न शील दिखाई पड़ता है। अन्त उसकी हत्या के षड्यन्त्र से होता है। केशवराय की बारहदरी छात्रसंघ का मुख्यालय बनती है और वहीं युवकों का संगठन जिसमें रमेश,लच्छू, जयकिशोर, हर्रो, छैलू और शामराव गोड बोले आदि पात्रों का परिचय प्राप्त होता है। इसी कथा में भंगेडी पुत्ती गुरु, नर–वेश्या के साथ रंग रेलियाँ करने वाले छैलू के पिता, नगर के प्रसिद्ध गुरु वैद्य गणेश शंकर, अभिजातीय संस्कारों से युक्त रानी के पिता रद्धू सिंह, शहर के

परिष्कृत जुआड़ी लाला बैजनाथ, बारहदरी को हड़पने में प्रयत्नशील रुप्पन लाला और उसका विरोध करने वाले नवीबक्श, उनका पुत्र खोखा आदि भी हैं।

रमेश अपनी बहन के विवाह में अति व्यस्त है बारात आती है पर बारातियों के नखरों से क्षुब्ध रमेश और लच्छू के साथ उनकी कहा सुनी हो जाती है। पिता की निष्क्रियता बारातियों की संकीर्ण मनोवृत्ति और शादी के अन्य अनेक भारों से रमेश का शरीर और मन बेहद थक जाते हैं। इसी समय रद्दू सिंह की पुत्री रानी अपने मर्यादित प्रेम द्वारा रमेश को जीवन यापन का सम्बल प्रदान करती है। प्रेम विवाहों का प्रतिपादन करना और अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा युग–युग से अवरुद्ध भारतीय चेतना और युवा शक्ति को गति एवं कर्मण्यता प्रदान करना उपन्यासकार का लक्ष्य है। रानी अपने पिता रद्दू सिंह, जिनका मन अभिजात्य संस्कारों से अवरुद्ध है, को झंझोड़ने में अपनी सौतेली माँ और मिसेज खन्ना से पर्याप्त सहयोग प्राप्त करती है। अन्ततोगत्वा अक्षत यौन विधवा रानी का विवाह मिसेज खन्ना द्वारा कराया जाता है। नगर भर के लगभग डेढ़ हजार व्यक्तियों का भोजकराकर समाज की अधिकाँश प्रगतिशील और कुसंस्कारों से लड़ने वाली शक्तियों को उपन्यासकार ने एक मंच में एकत्र किया है। समाज को प्रगतिशील बनाने का उपन्यासकार का अपना दृष्टिकोण है। रमेश युवाशक्ति के दृष्टिकोण का उल्लेख अपने भावी ससुर से करता हुआ कहता है– "आज आजाद भारत में इस तरह दो शरीफ युवक–युवतियों को, जो कि बालिग हैं, समझदार हैं, स्वतन्त्र हैं, शरीफ आदमियों की तरह विवाह करके अपना संसार बनाना चाहते हैं, इस तरह अपमानित कैसे कर सकते हैं ?"[66] पुत्तीगुरु इस संबंध को कुछ दिन के उपवास के बाद मान जाते है किन्तु उन्हें उस समय अत्यधिक पीड़ा होती है जब रमेश अपनी नव प्रणीता को पिता के घर में न लाकर नवाब अनवरवली के मकान में किराएदार बनाकर ले जाता है। रमेश अनुत्तरदायी और निर्द्वन्द्व भोग की कामना करने वाला युवक भी नहीं है। फिर भी यह अनुभव करता है कि नवीन घर ही उसके विकास के लिए उपयोगी होगा। क्योंकि वह अपने चिन्तन को समाज चिन्तन से बोझिल हो कुंठाग्रस्त नहीं बनाना चाहता। अपनी तथा रानी की मन और बुद्धि को विकास के लिए अवसर देना चाहता है। इस संबंध में रमेश का विचार है कि "नया चलन चलाकर घर की चहारदीवारी को अब आए दिन धकियाना अच्छी बात न होगी। मैंने बहुत सोंच समझ कर ही एक अलग मकान ले लिया है।"[67] रमेश और रानी के प्रणय से यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास के लिए अत्यधिक मानसिक द्वन्द्व करना पड़ता है।

रमेश एम0 ए0 करता है। इसी बीच गोमती में आने वाली बाढ़ और उस विपत्ति में फँसे हुए नर–नारियों की रमेश द्वारा सेवा का उल्लेख अत्यधिक विस्तृत रूप से नागरजी ने किया है। इसी बात का सर्वेक्षण करते समय रमेश, लाल साहब और वहीदन को कोठी पर एक रात व्यतीत करता है। वहाँ यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि लाल साहब और वहीदन से संबंधित कथा बेमेल और भर्ती की कथा है। गहराई से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि कथाकार यहाँ मुख्य पात्र

रमेश के लिए उन्नति और प्रसिद्धि प्राप्ति के अनेक द्वार खोल देता है। वहाँ कथाविस्तार और कथामोड़ अस्वाभाविक और वर्णन अरुचिकर तक है। नागरजी के सभी आलोचक अनेक वर्णनों की अत्यधिकता पर आपत्ति उठाते हुए सुने और देखे जाते हैं।

उपन्यास की चरम सीमा और घटनाओं में तीव्रता उस समय दीखती है– जब केशव राय की बारहदरी को रुप्पन लाला सिद्धान्त वादिता की आड़ में हड़पना चाहते हैं। युवकों के द्वारा आन्दोलन किया जाता है और इसी कारण युवकों और उनसे सहानुभूति रखने वाली महिलाएँ अनशन करती हैं। शहर में एक क्रान्ति सी आ जाती है। छैलू को छोड़कर सब बन्दी बनाये जाते हैं। छैलू रात इधर–उधर रहकर शामराव गोडबोले के नौकर से मिलकर सभी सम्प्रदायों के धर्म स्थानों मे आग लगवा देता है। यहाँ घटनाओं का क्रम अति तीव्रगति से संचालित किया जाता है। समझौता होता है। रुप्पन की मन लालसा प्रकट हो जाती है। युवको की विजय होती है किन्तु कथ्य की अस्वाभाविकता बनी रहती है। उसमें गहराई नहीं है। उपन्यासकार ने युवा शक्ति का इतना सटीक और तटस्थ भाव से चित्रण किया है कि हिन्दी में अभी तक कोई दूसरा उपन्यासकार करने में असमर्थ रहा है। उपन्यासकार की युवाशक्ति के जागरण में गहरी रुचि है। वे दो श्रेणियों– वृद्ध और युवक–के संघर्ष में युवकों को विजय श्री दिलवाते हैं। क्योंकि भविष्य में उनके साथ चलना है।

हाँ एक बात अवश्य खटकती है कि लच्छू से अनुप्राणित् कथा को प्रारंभ में ही छोड़कर वे रमेश आदि की कथा को लेकर चले हैं। लच्छू की कथा आधे से अधिक उपन्यास खत्म हो जाने पर पुनः उठाई जाती है। अगर दोनों कथाएँ साथ–साथ चलती तो उपन्यास और अधिक रोचक हो जाता। शायद कुछ आलोचक यह आपत्ति उठा सकते हैं कि फिर तीन कथाएँ– प्रथम लच्छू की, द्वितीय रमेश की और तृतीय स्वयं अरविन्द शंकर उपन्यासकार की, समानान्ततर कैसे चल सकती थीं ? यह विचार औचित्य की कसौटी पर ठीक इसलिए नहीं है कि उपन्यास में एकाधिक कथाएँ समानान्तर चल सकती हैं और उसी उपन्यास का कथानक सुगठित और सुव्यवस्थित होगा जहाँ अनेक धाराएँ एक साथ प्रवाहित होकर लक्ष्य प्राप्ति करती हैं। अतः उपन्यासकार किंचित विचार पूर्वक कथा–सृजन करते तो कथानक सुगठित और सुव्यवस्थित हो जाता।

इस उपन्यास में कोई एक कथा न होकर छोटी–मोटी अनेक कथाएँ हैं, जीवन स्थितियाँ हैं, विभिन्न समय और स्थानों के अलग–अलग परिप्रेक्ष्यों में गृहीत दृश्य हैं। लगता है कि जैसे घटना चक्र और परिस्थिति के प्रवाह में विविध आयु, वर्ग, मनः स्थिति के मनुष्यों का जुलूस निकला हुआ है। उनकी बोली बानी, व्यंग्य–विनोद, दुःख–दर्द, आशा–आकांक्षा, विचार–पद्धति, जीवन–रीति, पारस्परिक सम्बन्ध आदि अपनी जीवंतता के साथ हमारे मन पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। व्यक्तियों की इस भीड़ में भी हम प्रत्येक को पहचान लेते है। यहाँ सामान्य परिवारों के कटु–मधुर प्रसंग है। पूँजी पतियों की सर्वग्रासी विस्तारवादी प्रवृत्तियों की संचरण–भूमियाँ हैं, राजनीतिज्ञों के स्वार्थ मिलन और दांव–पेंच हैं। आर्थिक विपन्नता की अश्रु सिंचित अनुभूतियाँ और

वैभव–विलास की जगमगाहट है, पंडो–पुरोहितों, कीर्तनियों की अंधश्रद्धा–उद्रेक की कला है, डाकुओं और पुलिस के गोरख धन्धे हैं, प्रकृति की शान्त स्निग्ध सुषमा और प्रलयंकारी बाढ़ की विभीषिका है। यहाँ दाम्पत्य–स्नेह–विश्वास की शीतल छाया है, वैध–अवैध प्रेम–यौन सम्बन्धों की रंगीनियाँ हैं, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तन बेचने की मजबूरियाँ हैं, साथ ही साथ विलास–वासना की घृणोत्पादक पशु–प्रवृत्तियाँ भी हैं। यहाँ स्नेह सहानुभूति, सेवा–समर्पण के उच्चादर्शों की मोहक प्रति–कृतियाँ हैं और क्षुद्र स्वार्थों से मोहान्ध मनुष्यों की माया भी।''[68] इस विस्तृत कालावधि में अनगिनत घटनाएँ एवं चरित्र भाषा पाते हैं।

उपन्यास में स्वातन्त्र्योत्तर काल की राजनीति के ऊपर हावी बेईमान पूँजीपतियों के द्वारा उठाई गई उठा–पटक, छल–कपट, हिंसा और धन सम्पन्नता के आधार पर संपूर्ण समाज का शोषण दिखलाया गया है। इस वर्ग में टूटे हुए सामन्त, पैसा–पैसा जोड़ने और दूसरों का शोषण करने वाले पशु पुराने रईश, युद्धकाल में पनपे नये व्यापारी, जनता की शोषित देह पर वोट रूपी निर्दयी पैरों को रखकर चलने वाले खद्दरधारी राजनेता, जो देश की कर्मण्यता को नष्ट कर अपनी तिजोरियाँ भरना चाहते हैं और इतने पर भी जिनका पेट नहीं भरता तो विदेशी बैंकों में धन जमा करने वाले मंत्री समाज, राजनीति और साहित्यिक गतिविधियों के द्वारा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं।

इसके साथ ही समानान्तर स्तर पर उपन्यास के भीतर एक लघु उपन्यास और चलता है जिसके लेखक हैं अरविन्द शंकर। अरविन्द शंकर मध्य वर्ग का साधारण ग्रहस्थ है। उसका जीवन असंतोष, विषाद और पारिवारिक कटुताओं से भरा है। उसकी पत्नी माया सती साध्वी है और अपने पति को दैनिक कार्यों में सहयोग करती है। उसकी अपनी संतानों की ओर से घोर निराशा मिलती है। उसका बड़ा लड़का घर से निकल जाता है। छोटा उमेशो आई0 ए0 एस0 बनकर उसी वर्ग की लड़की से विवाह कर लेता है किन्तु नियति उसको आत्महत्या करने के लिए बाध्य करती है। बेटी टी0 बी0 की मरीज होते हुए भी किसी मुसलमान युवक से प्रेम स्थापित कर विवाह करना चाहती है। मामला गर्भपात तक ही रहकर रुक जाता है। ऐसी कटुता पूर्ण स्थितियों में उसकी षष्टीपूर्ति का आयोजन किया जाता है किन्तु विधि की विडम्बना कि कलाकार का साहित्यिक क्षेत्र में अपूर्ण स्थान होते हुए भी ''तन के ठेले पर लदा हुआ यह नारी जीवन का भारी बोझ खींचते–खींचते उसके प्राणों का भूखा अशक्त भैसा अब बेदम होकर जेठ की चिलचिलाती धूप में तपती हुई सड़क पर गिर पड़ा है।''[69] और ''इक्कीस वर्ष की आयु से लेकर अब तक कभी इच्छामय विश्राम नहीं कर पाया।'' इतना होने के उपरान्त भी उपन्यासकार का जीवन संघर्षरत रहता है। षष्टिपूर्ति के बाद जब वह घर लौटता है तो अपने दूसरे उपन्यास के लिए भीड़ में से पात्र चुन लेता है। कुछ पात्रो के जीवन में, अपने जीवन में आए हुए पात्रों की विशेषताओं को आरोपित करता है। जब पाठक इस उपन्यास में तन्मय दिखाई देता है तो तुरन्त वह घोषित कर देता है कि यह तो कल्पित है। इस प्रकार उपन्यास की कथा त्रिवेणी के रूप में

प्रवाहित होती है अर्थात् "एक तो अरविन्द शंकर के जीवन का स्तर दूसरे–उनकी रचना प्रक्रिया में सिरजे गए पात्रों का स्तर, तीसरे–इन दोनों के परिपार्श्व में कलात्मक रूप में स्थापित नागरजी की कथा दृष्टि का स्तर।"[70]

"इन तीनों कथा स्तरों का एक साथ निर्वाह करने और उपन्यास की समग्रता के भीतर दूसरे उपन्यास की समग्रता की रक्षा करना नागर जी का अपूर्व कलात्मक कौशल है।"[71] नागरजी इस उपन्यास में "आधुनिक जीवन की विसंगतियों, विविध पात्रों, उनकी मनः स्थितियों, राजनैतिक दाँव–पेंच, आन्दोलन–अनशन, धर्म, दर्शन, विचार एवं संस्कृतिगत भेद एवं स्वार्थ तथा आस्था के बीच संघर्ष आदि को विशाल चित्र फलक पर स्थापित कर पाए हैं। अनेक दृष्टियों से यही विशेषताएँ इस उपन्यास को 'बूंद और समुद्र' से महत्वपूर्ण बना देती हैं।"[72] उपन्यास स्वातन्त्र्योत्तर भारत के शहरी जीवन की स्वार्थ परता, राधारमण जैसे अशक्त और दलीय राजनीति में पड़े और बुद्धि से दिवालिए राजनीतिज्ञों की मदान्धता, कामातुर प्रौढ़ाओं के आधार पर उन्नति करने वाले युवकों की कुष्ठित आकाँक्षाएँ और इन सब के ऊपर युवकों का प्रबल आक्रोश, जो नवीन मार्ग का अन्वेषण कर राष्ट्रीय जीवन को शुद्ध एवं गौरवान्वित बना देता है, का यथार्थ चित्र उतारा है। इस लिए यह उपन्यास स्वातन्त्र्योत्तर काल में संक्रान्ति कालीन भारतीय परिस्थितियों का दर्पण बन गया है।

एकदा नैमिषारण्ये

उपन्यास के आवरण पृष्ठ पर लिखे अनुसार "कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक, असम से लेकर बंगाल तक जहाँ भी श्रद्धालु व्यक्ति किसी व्रत, उपवास या पुराण को सुनने के लिए दिखते हैं वहाँ कथाओं के प्रसंग में अवध के सीतापुर जिले में आबाद तपोवन, नैमिषारण्य का नाम अवश्य सुना जाता है। कहते हैं, वहाँ चौरासी हजार ऋषियों के सम्मेलन में सूतजी ने लगातार बारह वर्षों तक अनेक पुराण और महाभारत की कथाएँ बाँची थी। बूढ़े–बूढ़ियों और सनातन धार्मियों को परलोक का पुण्य मात्र देने वाली इन कथाओं को पहली बार सही ऐतिहासिक चेतना से जोड़ने वाला एक सांस्कृतिक उपन्यास।"

इस उपन्यास की कथावस्तु के सम्बन्ध में आवरण पृष्ठ पर ही लिखा हुआ है– "कुषाणों एवं यूनानियों की दासता से त्रस्त और विश्रृंखलित भारत के पुनः संगठित होकर एक सशक्त एवं समृद्ध देश बनने की वह प्रेरणा दायक, रंगारंग भारतीय छवियों से भरपूर यह रोचक राष्ट्र कथा..... .....। यह इतिहास कथा उस भावनात्मक आन्दोलन से जुड़ी है जिससे पहली बार भारत की सभी जातियों के उत्तम विचार और संस्कार लेकर तथा ब्राह्मण और श्रमण धर्म का उचित समन्वय करके समूचे भारत को वह एकता प्रदान की जिसके सही और गलत प्रभावों से यह देश आज तक बँधा हुआ है। पुरानी दुनिया में भारत के महत्वपूर्ण स्थान और विश्व व्यापी मानव संस्कृति की रस भीनी छटा ठहराने वाला भारतीय साहित्य में अपने रंग का अकेला यह उपन्यास।"

इसके अतिरिक्त स्वयं लेखक ने अपनी बात के अन्तर्गत स्पष्ट किया है "नैमिष आन्दोलन को वर्तमान भारतीय या हिन्दू संस्कृति का निर्माण करने वाला माना है। वेद, पुनर्जन्म, कर्मकाण्डवाद, उपासनावाद, ज्ञान मार्गों आदि का अन्तिम रूप से समन्वय नैमिषारण्य में ही हुआ। अवतारवाद रूपी जादू की लकड़ी घुमाकर परस्पर विरोधी संस्कृतियों को मिलाकर अनेकता में एकता स्थापित करने वाली संस्कृति का उदय नैमिषारण्य में हुआ और यह काम मुख्यतः एक राष्ट्रीय दृष्टि से ही किया गया था। "वस्तुतः लेखक ने नैमिष आन्दोलन की भावानात्मक एकता वाली समन्वय कारिणी नीति को पूर्ण निष्ठा के साथ यथाशक्ति रोचकता के साथ प्रकट किया है।

'एकदा नैमिषारण्ये' का ऐतिहासिक उपन्यास की दृष्टि से अपना महत्व है। पहली ईस्वी से लेकर चौथी शदी तक का इतिहास 'अंधकार युग' कहलाता है। किन्तु लेखक ने कल्पना के माध्यम से ब्राह्मण सभ्यता के पुनरुदय काल और बौद्धकाल के पराभव को मूर्त करते हुए राष्ट्रीयता को प्रबल स्वर प्रदान किया है। इतिहास के साथ धर्म और संस्कृति के मेल के साथ भारतीय राष्ट्रीयता जुड़ी है। उन्होंने पौराणिक सामंजस्य के साथ सांस्कृतिक धार्मिक आन्दोलन का चित्रण करते हुए, राष्ट्रीय गौरव के साथ अन्तर्राष्ट्रीय और मानवीय एकता की स्थापना का प्रयास किया है।

वैष्णवमुनि नारद और सोमाहुति भार्गव ने अपने ज्ञान तपोबल और समन्वय कारिणी प्रतिभा से देश को एकता के सूत्र में बाँधने का संकल्प लिया। "भार्गव वंश की व्यास–परम्परा ने सैकड़ों वर्षों के कठिन श्रम से प्राचीन ऋषि और राजकुलों की वंशावलियों और उनके सद्धर्मों एवं शुभा चरणों का इतिहास पुराण संकलित किया था। इसके अतिरिक्त अठारह विधाओं, सात सिद्धान्तों, तीन सौ शास्त्रों और सत्तर महा तन्त्रों से सम्बन्धित ग्रन्थों का संग्रह भी मेरे उन पूज्य पुरुखों ने किया था। "त्यक्ता भगवती सीता की स्वर्ण प्रतिमा को प्रतीक सह धर्मिणी बनाकर भगवन् राम ने नैमिषारण्य में राजसूय यज्ञ किया था। अपनी स्वर्ण प्रतिमा को राम के साथ यज्ञ में प्रतिष्ठित देखकर दुःखावेश में माता सीता धरती में समा गयी थी। 'विधुर पंडित जातक–कथा' में मिश्रक वन को नन्दन वन से उपमित किया गया है– 'मिस्सकं नन्दनंवनम्'। नैमिषारण्य इसी मिस्स कारण का एक अनुभाग है, जो कभी नीम सार, मिसरिख, लखपेड़वा जंगल के नाम से प्रसिद्ध था। ऐसी अनुश्रुति है कि कतिपय इलाहाबादी ऋषियों ने ब्रह्माजी से तप के लिए उत्तम और पवित्र भूमि की माँग की। ब्रह्माजी ने एक चक्र प्रदान कर कहा– "जहाँ इस चक्र की निभि (धुरी) पुरानी होकर गिर जाय वही भूमि तपस्या के लिए उपयुक्त है।" इस प्रकार निभि से नैमिषारण्य बना और जहाँ चक्र गिरकर पृथ्वी के गर्भ को फोड़कर पाताल तक धँस गया वहाँ एक जल स्रोत प्रस्फुटित हुआ। वही चक्रतीर्थ कहलाया। नैमिषारण्य गोमती नदी के सन्निकट स्थित है। यह चौरासी हजार ऋषियों की सम्मेलन भूमि और अठारह पुराणों की रचना–भूमि के रूप में प्रसिद्ध है।"[73]

'एकदा नैमिषारण्ये' ऐतिहातिक से अधिक सांस्कृतिक उपन्यास है। यद्यपि लेखक ने चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास का लेखा–जोखा देने की भरपूर चेष्टा की है तथापि यह भी सत्य है कि कुछ ऐसे पात्रों की अवतारणा की गई है, जो उस समय केवल अपनी जनश्रुति परम्परा में ही आते थे। जैसे नारद और सोमाहुति भार्गव। महाराज गणपति भी एक ऐसे ही पात्र है जो आदि काल से लेकर आज तक भारतीय जन–जीवन के श्रद्धा–केन्द्र बने हुए है। भारतीय जीवन के प्रत्येक मांगलिक कार्य के प्रारम्भ में जैसे गिरागुरु गणपति के पूजन से उनका समन्वयकारी महत्व प्रदर्शित होता है, वैसे ही उपन्यासकार ने उन्हें भारतीय राजनीति में समन्वयकारी प्रवृत्ति का भी पुरस्कर्ता, दिखलाने की चेष्टा की है। वे राजनीति निष्णात होते हुए भी युद्ध नहीं, अपितु भारतीय राजनीति में शान्ति एवं एकता चाहते हैं। वे एक साम्राज्य का निर्माण तो चाहते हैं किन्तु रक्तपात से नहीं, परस्पर सौहार्द, साहाय्य और वार्तालाप के आधार पर।

उपन्यासकार गुप्त वंश के अतिरिक्त कुषाण साम्राज्य के अवशेष के रूप में मथुरा जैसी नगरी पर उनका राज्य दिखलाता है। नाग, भार शिव, वाकाटक, लिच्छवि तथा अन्य राज्यों की राजनैतिक गतिविधियों और उनकी शक्ति का उल्लेख कर तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री को बहुत ही कुशल रीति से संजोया है। राजा और नरेशों को राजनैतिक धुरी में रखने के लिए आचार्यों और आश्रमों के कुलपतियों का भी महान योगदान है। इस दृष्टि से मथुरा के बौद्धाचार्य, नैमिषारण्य के सोमाहुति भार्गव, सूत–शौनक जी और प्रचेता, अयोध्या के तांत्रिक गुरु और माँ वाशिष्ठी, लखनऊ के महन्तजी और भारत चन्द्र तथा अति प्रसिद्ध घुमक्कड़ नारद आदि का चित्रण और कल्पना जहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से विश्वसनीय हैं, वहाँ इन कल्पनाओं की वैसाखी के सहारे उपन्यासकार एक विशिष्ट विचार जो सामयिक भारत के लिए अत्यावश्यक है– को देने का महान् प्रयास करता है। समस्त उपन्यास में उपन्यासकार के दो ही विचार अधिक गंभीरता के साथ आते हैं– प्रथम यह कि विशाल भारत राष्ट्र अनेकताओं और विचित्रताओं से युक्त है, इन्हीं विचित्रताओं में परस्पर अविरोधी और विरोधी विचार भी हैं। उन सभी परस्पर विरोध–संघातों की प्रबल और विराट वाहिनी का एकीकरण और समन्वय करना होगा। नारद और सोमाहुति भार्गव इसके लिए अपने जीवन को संकट में डालकर अनेक महासत्रों का सफल आयोजन करते हैं। उन्हीं महासत्रों में 'महाभारत' जैसे जय महाकाव्य का, गिरागुरु गणपति के द्वारा लेखन कार्य सम्पन्न होता है। भगवान वासुदेव की जय कहकर प्रचेता का गीतापाठ होता है। अनेक लोक कथाओं के समन्वय और एकत्र करने के लिए पुराणों एवं भागवत के मूलग्रंथ श्री मद् भागवत की रचनाकर वैष्णव धर्म का प्रचलन किया जाता है। इसी भक्ति सम्प्रदाय के कोने तक प्रचार करते दिखलाई पड़ते है। सोमाहुति का दृष्टि कोण भक्तियोग का राष्ट्रीयकरण करता हुआ स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। वे भक्ति और राष्ट्रीयता का एक ऐसा समन्वय करते हैं कि जिसमें आगामी अनेक शताब्दियों के लिए उत्तम मार्ग प्रशस्त हुआ। वे शंकों और आर्यों के एकीकरण और इसी प्रकार शैवादि सम्प्रदायों को अविरोधी बनाकर समग्र महाराष्ट्र की सुप्त चेतना को जाग्रत करना

चाहते हैं। उनके लिए विभिन्न पूजा पद्धतियां राष्ट्रीय हैं और इसी दृष्टि का सफली भूत भागवती भक्ति के माध्यम से चाहते हैं। सोमाहुति का कथन है– "किसी भी धर्म के अनुयायी बनके अपने प्रभु को प्रणाम करो। वह 'सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति" भार्गव कभी राम की महिमा सुनते, कभी विष्णु, शिव, सूर्य, ऋषभ, भरत, महाबीर बुद्ध का गुणगान करने लगते और सब ओर श्रद्धा की वन्दनवारे बाँधकर फिर केशव वासुदेव का गुणगान करने लगते हैं।"[74] भारत के महान राष्ट्रीय जीवन के लिए ऐसा समन्वय आवश्यक भी हैं क्योंकि उक्त सभी सम्प्रदाय हिन्दू जीवन से ही चेतना और रस लेकर आगे बढ़ते है। उनके लिए समस्त राष्ट्र एक चेतना–परिवार है।

नैमिषारण्य की धर्म–सभा के आयोजन की आवश्यकता का अनुभव लोक मानस को उस समय हुआ जब भारतीय समाज नाना विध जातियों एवं धर्म–सम्प्रदायों में विभक्त था। विभिन्न देशों से आयी हुई जातियों एवं उनकी सांस्कृतिक मान्यताओं तथा देश की प्राकृतिक रचना के कारण क्षेत्रीय आधार पर उत्पन्न विभिन्न धर्म–जातियों के सम्मिलन से जो सांस्कृतिक संक्रमण की स्थिति उत्पन्न हुई उससे राष्ट्र की एकात्मकता के लिए बहुत बड़ा संकट उत्पन्न हो गया था। एक ओर ब्राह्मण संस्कृति कर्म काण्ड एवं पौराणिक कल्पना की क्रोड़ से उत्पन्न वाह्याडम्बर एवं बहुदेवो–पासना के कारण धर्म की तात्विक भावना से बहुत दूर हो गयी थी और दूसरी ओर बौद्ध जैन धर्मो की खण्डनात्मक प्रवृत्ति और नागजाति के प्रभाव से तंत्रमंत्रादि के महत्व–स्थापना से लोक–जीवन एक ऐसी मानसिक स्थिति में पहुँच गया था जहाँ कर्तव्याकर्त्तव्य का निर्धारण कर सकना प्रायः असम्भव था। शैव एवं वैष्णवों के संघर्ष के कारण यह स्थिति और भी विषम हो गयी थी। देश की राजनीतिक शक्तियाँ भी उक्त धार्मिक मंचों से जुड़कर परस्पर टकरा रही थी। इस द्वन्द्व की समाप्ति के लिए देश में एक धार्मिक और सांस्कृतिक अनुक्रम की तलाश करने की आवश्यकता का अनुभव तत्कालीन सुधी समाज को हुआ जिसमें सोमाहुति भार्गव, नारद मुनि, शैव साम्राज्य के गिरागुर गणपति नाग, महात्मा सौति आदि प्रमुख थे। इन धर्म पुरुषों ने नैमिषारण्य की पुण्य भूमि पर चौरासी हजार ऋषियों की धर्म–सभा आयोजित कर वैष्णव धर्म के माध्यम से विभिन्न धर्मों में एकत्व स्थापित करने का ऐतिहासिक संकल्प किया।

उत्तरी भारत में कुषाण और दक्षिणी भारत मे सात वाहनों के राज्य के पतन के पश्चात् समस्त भारत में राजनीतिक विश्रृंखलता उत्पन्न हो गयी थी कुषाण युग के उत्तरार्द्ध में नागराज शक्ति सम्पन्न बन गये। मध्यप्रदेश में विदिशा, पद्मावती और उत्तर प्रदेश में मथुरा, अहिच्छत्रा, सिंहपुर, कान्तिपुरी, कौशाम्बी उनके प्रमुख केन्द्र थे। मथुरा का सम्राट यदु नाग कीर्तिसेन था। अहिच्छत्रा का शासक अच्युत नाग पद्मावती में गणपतिनाग, भवनाग और नागषेण प्रमुख शासक थे। बुंदेल खण्ड और उसके दक्षिण–पश्चिम में वाकाटक वंश के संस्थापक विन्ध्यशक्ति का साम्राज्य था। विन्ध्यशक्ति की मृत्यु के बाद उसका पुत्र प्रवरसेन बाकाटक सम्राट बना। बाकाटक सम्राट का सौतेला भाई पल्लवेन्द्रवीरकूर्च कलिंग का अधिपति था। ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब गुप्त सम्राज्य का उदय हुआ तब भारत की राजनीतिक स्थिति अस्थिर थी।

चन्द्र गुप्त प्रथम इस वंश का प्रथम शक्ति शाली सम्राट था। तदुपरान्त उसका पुत्र समुद्र गुप्त सिंहासना रूढ़ हुआ।

छोटे–छोटे राज्यों में बँटकर देश की अखंडता नष्ट हो चुकी थी। वर्ण व्यवस्था के नाम पर सर्वत्र लूट–खसोट का बोलबाला था। व्यक्तिगत स्वार्थों से पीड़ित ये राजे–महाराजे परस्पर संघर्षरत थे। वातावरण में सर्वत्र युद्ध की काली घटा घिरी थी। ऐसे आसन्न संकट के समय सोमाहुति भार्गव ने भावात्मक सांस्कृतिक एकता का शंखनाद किया। इस धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक अस्थिरता के वातावरण को आधार बनाकर 'एकदा नैमिषारण्ये' की रचना की गयी है। इस उपन्यास के लेखन की पृष्ठभूमि में देश की भावात्मक एकता का प्रश्नप्रेरक रूप में रहा है। नागरजी ने स्वयं इस बात की ओर संकेत किया है– ''उन्हीं दिनों के आस–पास स्व0 जवाहर लाल नेहरू ने भावात्मक एकता का नारा बुलन्द किया। इससे नैमिष की कथा–यूनिवर्सिटी के संबंध में मेरे विचारों को और भी अधिक स्फूर्ति मिली।''[75]

अस्तु भारतीय समाज में नानाविध धर्म सम्प्रदायों, वैदिक–अवैदिक, जैन–बौद्ध, वैष्णव–शैव, कर्मकाण्डवाद, उपासनावाद आदि का समग्रतः समन्वय नैमिषारण्य में सम्भव हुआ। उक्त मत पथों के पारस्परिक मतभेद को नारद मुनि ने एक विनोदी कथा वृत्त के माध्यम से समाप्त करने का प्रयत्न किया। उनका कहना था– ''प्राचीनता में चमत्कार भरने से आत्मविश्वास बढ़ेगा। देव, ऋषि, पितृ आदि, के क्रिया–कलापों को अलौकिक रूप से ही जन मानस में प्रतिष्ठित कीजिये। .. .. दूध, पानी के समान मिले हुए इन बहुदेशीय संस्कारों के समाज को बाँधने के लिए कथाओं में उक्ति–चमत्कार लाना नितान्त आवश्यक है। पूर्वजों के अलौकिक वर्णनों से ही लोक मानस में श्रद्धा प्रतिष्ठित होगी।''[76] परस्पर विरोधी संस्कृतियों को एक–दूसरे में निमज्जित कर अनेकता में एकता की भावना जागृत करने वाली सांस्कृतिक ज्योति नैमिषारण्य में प्रज्जवलित हुई। यह एकता–सम्मेलन मुख्यतः राष्ट्रीय चेतना का प्रतिफलन है। जिस भूमि ने राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए यह आयोजन किया, दक्षिणाखोरों के एकाधिकार को विखंडित करके भावात्मक चेतना का उद्घोष किया, अवतारवाद रूपी जादुई छड़ी के स्पर्शाघात से विभिन्न अवतारों को मात्र एक विष्णु के रूप में प्रस्तुत किया, वह भूमि वस्तुतः पूज्य है।

प्रस्तुत उपन्यास में उपर्युक्त वैचारिक हलचलों से उपजी कल्पनाओं का कथासमुच्चय है। नैमिष–आन्दोलन की भावात्मक एकता वाली समन्वय कारिणी नीति को पूर्ण निष्ठा के साथ जानने और यथा शक्ति उजागर करने का प्रयत्न किया है। इस सम्बन्ध में अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए नागरजी ने लिखा है कि मुझे 'भार शिवों और वाकाटकों के शासन काल में एक महान सांस्कृतिक,सामाजिक आन्दोलन चलाये जाने की बाते पढ़कर नैमिषारण्य के चौरासी हजार संतों वाले मेले की याद आई। सोंचा, हो न हो यह मेला इसी समय जुड़ा होगा। बात को ऐतिहासिकता का सहारा मिला, तो वह क्रमशः जोर पकड़ती रही। .....विष्णु पुराण का गीत– ''गायन्ति देवाः किल गीत कानि, धन्यास्तुये भारत भूमि भागे''–पढ़कर तो मेरी यह धारण

पक्की हो गयी कि चौरासी हजार संतों का पौराणिक सेमिनार कोरा धार्मिक तमाशा या गप नहीं है, उसके पीछे राष्ट्रीय महत्व का कुछ इतिहास भी है।''[77]

वह कौन व्यक्ति या संगठन था, जिसने नैमिष आन्दोलन खड़ा कर भावात्मक राष्ट्रीय एकता के लिए ऐतिहासिक कार्य किया ? इसका मूल कारण क्या था ? कब और क्यों इसकी आवश्यकता पड़ी और उसमें नैमिषारण्य का नाम क्यों जुड़ा होगा ? प्रस्तुत उपन्यास का प्रतिपाद्य इन्हीं प्रश्नों का समाधान करता है।

'महाभारत' के अनुसार प्राचीन भारत में कुलपति की उपाधि उसे मिलती थी जो दस हजार विद्यार्थियों का भरण–पोषण करने का सामर्थ्य रखता हो। भार्गव शुनक की वंश–परम्परा के महार्षि शौनक–नैमिषारण्य में कुलपति के पद पर सुशोभित थे। कुषाणों के राज्य में उनकी स्थिति दयनीय थी। किन्तु, वाकाटकों एवं भारशिवों के राज्यकाल में उन्होंने सूत–परिवार के एक सौति को बुलाया जो कथा बाँचने में पारंगत थे। कुलपति शौनक ने नैमिषारण्य को अपने ढंग का एक अद्‌भुत कथा–विश्व विद्यालय का स्वरूप प्रदान किया, जहाँ अठारहों पुराणों की रचना हुई थी। कुलपति भार्गव शौनक ने अपने महान त्यागी पूर्वज दधीचि की पुण्य स्मृति मे एक कथा–सत्र का शुभारम्भ किया। नैमिष में अयोध्या, वृन्दावन, रामेश्वरम्, बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि सभी पुण्य क्षेत्रों के प्रतीक स्थापित हैं। भारत के सभी तीर्थों का जल लाकर एक पवित्र कुण्ड में मिश्रित किया गया है। केवल तीर्थ राज प्रयाग का जल न आ सका।

नारद और वृन्दावन की वृन्दाओं का प्रसंग, चुंगी अधिकारी प्रंसंग, प्रज्ञा–सोमाहुति भार्गव–प्रसंग, अयोध्या में सरजू मैया तथा इज्या का मिलन–प्रंसग, रेंणुका मंदिर का ध्वंस एवं वन में शत्रुओं द्वारा अइया की हत्या और इज्या का शौर्य–प्रदर्शन, चन्द्रगुप्त और काशी के सेठ धनक का प्रसंग, नागेश्वर राज की आत्महत्या, आन्ध्र प्रदेश के सेनापति विन्ध्य शक्ति, प्रवरसेन, नागषेण और महामंत्री यज्ञ दत्त–प्रसंग, सोमाहुति भार्गव–इज्या तथा भारत चन्द्र–प्रज्ञा का मथुरा में एक साथ निवास करना, मथुरा में भृगुवत्स का सोमाहुति को बन्दी बनाना, सेठ कौरोष आदि के प्रयास से सोमाहुति को मुक्त कराना, यास्मीन और वेश्या शाहगुल–प्रसंग, महास्थविर भृगुवत्स के पापों का भंडाफोड़, सोमाहुति की पद्मावती तथा नैमिषारण्य–यात्रा, प्रवरसेन का चन्द्र गुप्त को युद्ध के लिए ललकारना, यज्ञ दत्त द्वारा वाकाटक महासेनापति नागषेण को पागल बनाना, भारत चन्द, प्रज्ञा, इज्या और सोमाहुति भार्गव के पुत्र प्रचेता की नौका पर शत्रुओ का आक्रमण, इज्या की मृत्यु, प्रवरसेन एवं चन्द्रगुप्त के मध्य युद्ध की सम्भावना, गणपति नाग और सोमाहुति के प्रयास से सन्धि–प्रस्ताव, त्रिपुरा में नारद का गृहस्थ–जीवनयापन आदि इस उपन्यास में संगुंफित विविध घटना–प्रसंगों के नाम हैं।

युद्ध से बचने और सन्धि के लिए वातावरण निर्मित करने की दृष्टि से गणपति नाग कहता है– ''भार्गवी का बलिदान सार्थक हुआ। अब कदाचित् अहिच्छत्रा से लेकर कलिंग तक लाखों प्रचेता मातृ–पितृ–विहीन होने से बच जायेंगे।''[78] सोमाहुति भी चन्द्रगुप्त से कहता है।–

"आपकी देश माता इस समय विवश है। उत्तरी–पश्चिमी सीमा के पार शश सम्राट शापुर और मध्य में वाकाटक प्रवरसेन के शक्ति शाली रहते हुए आप केवल नीति से चलकर ही अपनी शक्ति बढ़ा सकते हैं। स्वामिन्।"[79] महाराज गणपति जी ने चन्द्रगुप्त और समुद्र गुप्त दोनों पर अपने पांडित्य और सहज मैत्री–भाव का प्रभाव डाला। उन्होंने बड़ी ही तटस्थता से दोनों पक्षों की सामरिक शक्ति का उचित मूल्यांकन करके स्वंय महाराजा धिराज के मुख से यह स्वीकार करा लिया कि ससम्मान सन्धि ही सुरक्षा का एक मात्र उपाय है।"[80] उपन्यास के अन्त में सोमाहुति भार्गव अपने पुत्र प्रचेता को नैमिषारण्य की व्यास गद्दी पर आसीन करते है। बसन्त–पंचमी के दिन द्वितीय महासत्र की समाप्ति के उपलक्ष्य में दीक्षान्त समारोह का आयोजन होता है। व्यास प्रचेता पाठ करते हैं–

"धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।।"

तीसरे महासत्र के दीक्षान्त समारोह की योजना बनायी जाती है। भार्गव अपने पुत्र व्यास प्रचेता के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखते हैं और "गायन्ति देवाः किल गीत कानि धन्यास्तुये भारत भूमि भागे" कहकर उपन्यास का समापन होता है।

सोमाहुति–इज्या और भारत चन्द्र–प्रज्ञा के कथा सूत्र ही मूलतः प्रारम्भ से अन्त तक विद्यमान है। अन्य प्रसंग मूलकथा में छोटे–छोटे टुकड़ों की भाँति अनुस्यूत है। कथानक की सरलता, प्रस्तुतीकरण की सहजता, समस्या का स्वाभाविक विश्लेषण, रोचक चरित्रों एवं स्थितियों की उद्भावना आदि विशेषताएँ मूल औपन्यासिक लक्ष्य पूर्ति में साधक बनती है। नागरजी की वैचारिक मान्यता ने कथा–प्रसंगों को कहीं–कहीं उलझाया भी है जिसके कारण वे निष्प्रभावी हो गये है। कथासगंठन में आकस्मिक घटनाओं का भी संयोजन है। मथुरा, अयोंध्या, नैमिषारण्य आदि नगरियों का वर्णनात्मक परिचय दिया गया है। कहीं–कहीं पौराणिक अन्तर्कथाएँ वर्णित हैं यथा–गरुड़ और नाग की कथा, देवर्षि नारद की कथा और आम्रबिन हारीत की कथा।

'एकदा नैमिषारण्ये' ज्ञान, कर्म और भक्ति का वह संगम है जहाँ नागरजी के चिन्तन की गरिमा और भावना के औदात्य की गंगा–यमुना प्रवाहित है। यह उनके सांस्कृतिक चिन्तन की भव्यता का विशाल प्रासाद है जिसमें ज्ञान–विज्ञान, धर्म, अध्यात्म, समाज सभ्यता, संस्कृति, कला, राजनीति आदि की बहुरंगी प्रकाश–रश्मियां दीप्तिमान हैं। इन्हीं के मध्य सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता का स्वर मुखरित है।

उपन्यास में ऐतिहासिक पौराणिक एवं काल्पनिक पात्रों की सृष्टि हुई है। विन्ध्य शक्ति वाकाटक–वंश का संस्थापक, प्रवरसेन विन्ध्य शक्ति का पुत्र क्रोधी, दम्भी एवं महान् विजेता है। चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्त वंश का प्रथम शक्ति शाली सम्राट और भारतखण्ड का उज्ज्वल भविष्य है। वह उभरती हुई राष्ट्रशक्ति का प्रतीक है। चन्द्रगुप्त का पुत्र समुद्र गुप्त महान् तेजस्वी और वीर सम्राट है। वह सम्पूर्ण भारत को विजित कर विशाल साम्राज्य की कल्पना करता है और कालान्तर

में उसे साकार भी करता है। बलाधिकृत नागषेण, शिव साम्राज्य का शीर्ष सम्राट् भवनाग, अहिच्छत्रा का सम्राट अच्युतनाग, भृगुवत्स, महामंत्री यज्ञदत्त, मृगांक दत्त और महाराज गणपति नाग आदि अन्य प्रमुख ऐतिहासिक पात्र हैं।

तक्षक वंशीय, पद्मावती के महामण्डलेश्वर गिरागुरु महाराज गणपति नाग भारतीय सांस्कृतिक एकता के समर्थक हैं। वे धर्मात्मा, विद्वान एवं स्पष्टवादी साधक हैं। सोमाहुति के सांस्कृतिक समन्वय के महान् अनुष्ठान में उनकी गहरी आस्था है। वे कहते हैं– "हम भी आपके साथ ही भारत को राष्ट्रीय शक्ति पुंज–स्वरूप देखना चाहते हैं। हमारे शिव–साम्राज्य की कल्पना में वस्तुतः आप ही का स्वप्न समाया है।"[81] गणपति नाग सांस्कृतिक एकता के लिए प्रयत्नशील हैं। मृगांक दत्त और नागषेण को युद्ध से विरत होने की प्रेरणा देते हुए वे कहते हैं– "इस समय जहाँ तक बने, अपनी शक्तियों को व्यर्थ नष्ट होने से बचाओं। कुशासित, दुर्बल राष्ट्रों को जहाँ तक बने, नीति अथवा माया से जीत कर उन्हें सुसंगठित, सुशासित बनाते चलो। राजतन्त्र वहीं के योग्य व्यक्तियों के हाथों में सौपो। यह मत भूलो कि हम शिव–साम्राज्य के प्रति निष्ठावान् हैं। इसी हेतु से हम सब नागवंशी शासकगण, भारशिव वंश के ऊपर अब इतिहास को गतिशील बनाने का भार सौपेंगें।"[82] नागर जी ने गणपति को गणेश जी के प्रतीक–रूप में प्रतिष्ठित किया है।

पौराणिक पात्रों की कल्पना 'भागवत पुराण' के अनुसार है। ये पात्र वेद पुराण, उपनिषद् एवं धर्म शास्त्र मर्मज्ञ हैं। यदि ये साधु और विद्वान हैं तो कुशल राजनीतिज्ञ भी हैं। ये पुराण कथा वाचक हैं तो तन्त्र–मन्त्र–ज्योतिष के पंडित भी हैं। इनमें यदि ग्रहस्थ हैं तो वैरागी भी हैं। तपोनिधि, वेद–पुराण सम्पन्न व्यास सोमवर्ण के पुत्र सोमाहुति भार्गव एक समन्वयवादी दृढ़व्रती, संयमी, योग विद्या के अखण्ड साधक और पारदर्शी व्यक्तित्व सम्पन्न कथा–वाचक हैं। उनके जीवन का उद्देश्य भारत में सांस्कृतिक ऐक्य स्थापित करना है। उनका अभिगत है– "कोरी लड़ाइयों से यह देश एक न होगा और इस आसेतु हिमांचल व्याप्त भूखण्ड के तप, ज्ञान और सम्पदा की सुरक्षा के हेतु इस समय भारत की एकता अनिवार्य है।"[83] वे बहुधर्मी और बहुजातीय भारत को एक महाभाव से युक्त देखने के पक्षधर थे। नागरजी ने लिखा है– "वे नगर–नगर, गाँव–गाँव, एक–एक तपोवन में, भारत देश के कोन–कोने में इस अति मिश्रित, बहुधर्मी और बहुजातीय समाज को एक महाभाव युक्त देखना चाहते हैं। सनातन संकोच से बँधे जन हृदय को युगानुकूल उसके व्यापक होने के गुण का बोध यदि एक बार करा दिया जाय, फिर वह आप ही अपनी स्फूर्ति से संचालित होकर सही दिशा में बढ़ने लगेगा।"[84]

व्यास सोमाहुति भार्गव ने राष्ट्रीय समन्वय के लिए ज्ञान, कर्म और भक्ति की समन्वित पीठिका निर्मित की और अधर्म से संघर्ष करने के लिए जन–जन को उद्बोधित किया। उनका ज्ञान समस्त विश्लेषण है– "सामाजिक भाव–क्रान्ति का कार्य सम्पन्न हुए बिना कुशल से कुशल प्रशासक भी भारत खण्ड की रक्षा नहीं कर सकेगा और न तुम्हारी अतुल लक्ष्मी ही कोई काम

आएगी। असंगठित, अव्यवस्थित समाज सदा दुर्बल रहता है, भले ही उसके व्यक्तियों में भीम, कर्ण और अर्जुन से महायोद्धा ही क्यों न हों। कलिकाल में संघ ही शक्ति है।''[85] भार्गव ने वैष्णव मुनि नारद और शिव साम्राज्य के गिरागुरु गणपति नाग को नैमिषारण्य के सांस्कृतिक महायज्ञ में आमन्त्रित किया और राष्ट्रीय एकता के लिए उनका सहयोग प्राप्त किया। सोमाहुति का कहना था– ''अनेकता निःसंदेह माननीय है, किन्तु अनेकता मे एकता के दर्शन करने वाला ही श्रेष्ठ श्रद्धावान् होता है। आज फिर श्रद्धा के इस बीहड़ अंधेरे भरे जंगल को महद् भाव युक्त श्रम से रम्य उपवन बनाने का दिन आया है। हम सभी को अपने और लोक–कल्याण के लिए इस समय इस कार्य में लगना ही चाहिए।''[86]

व्यास सोमहुति भार्गव ने प्रत्येक धर्म प्राण नर–नारी को जागृति का मंत्र दिया– ''धर्म प्राण नर–नारी वृन्द सचेत हो, अपनी क्लीवता त्यागें। धर्म को पहचानें और अधर्म का नाश करने के हेतु कृत संकल्प हो जायँ–यतोधर्मस्ततो जयः।''[87] उन्होंने हरि–हर के भेद–भाव को मिटाकर मात्र भागवत् धर्म की स्थापना पर बल दिया, 'सर्वम् विश्वात्मक शक्तियों को एक निष्ठ बनाना ही उनका उद्देश्य है। युगों से पद दलित और शक्ति–विश्रृंखलित भारत भूमि की मुक्ति और उसके महान् व्यक्तित्व की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए सोमाहुति भार्गव ने नैमिषारण्य में महासत्र का आयोजन किया और सांस्कृतिक एकत्व की पताका फहरायी। इस कृति में व्यास का व्यक्तित्व अत्यन्त श्रेष्ठ रूप में अंकित होने के बावजूद वह लोक–मानस में जिस उदात्तता के साथ प्रतिष्ठित है नागरजी, उसे ऊपर उठाने का तो प्रश्न ही नहीं, उसकी समतुल्यता में भी नहीं जा सके है। वस्तुतः लोक–मानस की विशदता को आत्मसात् कर उस विराट् व्यक्तित्व को अपने अन्तस् में समोकर अपनी रचना शीलता के द्वारा पुनस्सृजित कर पाना सरल नहीं था।

वेद–उपनिषद्, पूर्व–उत्तर मीमांसा, स्मृति, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण आदि अनेक शास्त्रों के पण्डित, इतिहास पुराणों के व्याख्याता, राजनीति और व्यवहार शास्त्र के मर्मज्ञ महार्षि नारद जी संगीत और नृत्य के महापंडित और निपुण कलाधर थे।[88] नारद को सामान्यतः ब्रह्मा–पुत्र देवर्षि नारद–रूप में जाना जाता है और उनके आदि पुरुष को ब्रह्मा का मानस–पुत्र बताया जाता है। नारद का प्रिय वाद्य वीणा है और वे हरि का गुणगान करते हुए विचरण करते हैं। नारद का वर्णन प्रायः संगीत, भजन, कलह एवं विद्वता के संदर्भों में मिलता है।

उपन्यास के नारद कण्व वंश के देवव्रत हैं। माता की सर्प–दंश से मृत्यु हो जाने के पश्चात् वे विमाता के भय से घर त्याग कर निकल पड़ते हैं। अपने भार्गव सोमवर्ण की शिष्यपरम्परा में जुड़ जाते हैं। वे घुमक्कड़ प्रकृति के जीव हैं। अपने भ्रमण काल में एक वयोवृद्ध नारद की सेवा करने के बाद उन्होंने नारद गद्दी के पीठाधीश बनकर 'नारद' की उपाधि पायी थी। उपन्यास के प्रारम्भ में ही नारद जी के रसिक व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। वे वृन्दावन की वृन्दाओं के बीच रसिया बने घूमते दिखाई पड़ते हैं। वे वृन्दाओं को श्रीकृष्ण की प्रेमाराधना करने का उपदेश करते हैं और उन्हें भेंट–स्वरूप शालिग्राम देते हैं। तत्कालीन धार्मिक मिथ्याचारों

से क्षुब्ध होकर वे कहते हैं– "संसार के सुख–दुख दोनों ही माया है, मिथ्या है, सुन्दर–असुन्दर दोनों ही रूपों में कुरूप है। इनका त्याग ही मनुष्यता के लिए अपने जीव की द्वन्द्व–मुक्ति का अन्यतम साधन है।"[89]

नारद और भार्गव सोमाहुति परस्पर अनन्य मित्र और राष्ट्रीय एकता के समर्थक हैं। नारद, सोमाहुति के गुरुभाई हैं। नारद के प्रकाण्ड पण्डित्य और चातुर्य पूर्ण नीतियों से सभी राजा–महाराजा प्रभावित हैं। समाज में उनकी पूर्ण प्रतिष्ठा है। वे जन–जन के हृदय में अपने प्रवचन के माध्यम से वैष्णव–भक्ति का संचार करने में सिद्ध हस्त हैं। शैव तथा वैष्णव दोनों ही सम्प्रदाय के अनुयायी सम्राटों का उन्हें समर्थन प्राप्त है।

उपन्यास कार ने इस उपन्यास में अनेक पात्रों की अवतारणा कराई है। प्रत्येक पात्र की अपनी–अपनी विशेषताएं हैं। सोमाहुति उपन्यास का नायक है इसलिए सम्पूर्ण कथा व्यापारों की वह धुरी हैं। "सोमाहुति और कुछ नहीं, केवल उद्देश्य है।"[90] जहाँ वह जाता है, कथा का रथ चक्र भी उसी के साथ घूमता हुआ दृष्टिगत होता हैं। इतना ही नहीं, सभी पात्र उससे संबंधित होते ही गतिशील हो जाते है। माँ वाशिष्ठी उन्हें अत्याधिक स्नेह करती है। महार्षि बाल्मीकि से उनकी खूब छनती है। वे परस्पर स्नेहालिंग ही नहीं होते अपितु एक दूसरे से मिलकर धन्यानुभव करते हैं। सोमाहुति भार्गव अत्यन्त मेधावी हैं। इसलिए नैमिष में कई हजार ऋषियों को एकत्र करने में सफल ही नहीं होते, अपितु उन महाविवेकी और ज्ञानी ऋषियों से भावी भारत के लिए अनेक सुव्यवस्थाएँ दिलवाते हैं। वे भारत के लिए सार्वभौम साम्राज्य की कल्पना कर चन्द्रगुप्त और उसके पुत्र समुद्र गुप्त का साथ देकर आसेतु हिमालय राष्ट्र की कल्पना को साकार रूप देते हुए दिखलाई पड़ते हैं। उन्होंने अन्यान्य मत एवं वैचारिक स्थितियों में समन्वय किया। उनके लिए जितने राम और कृष्ण पूज्य हैं। उतने ही विष्णु, शिव, ऋषभ देव, महावीर और भगवान बुद्ध भी पूजित हैं। उनका जीवन संबंधी दृष्टिकोण उदार और समन्वयवादी है। वे उस काल के मंत्र–दृष्टा ऋषि है।

इज्या और प्रज्ञा दो प्रतीकात्मक नारी पात्र हैं। 'इज्या' का अर्थ होता है–यज्ञ अथवा पूजा। वस्तुतः 'इज्या' इसी भाव में चित्रित है। एक स्थान पर उपन्यासकार इज्या का रेखा चित्र उपस्थित करता है। "इज्या के होठों पर बुझी हुई मुस्कान की एक रेखा खिंच गई। खिसियाये थके स्वर में कहा "अपना गन्तव्य मैं नहीं जानती" सुनकर भार्गव सध गए। एक बार गहरी सतर्क दृष्टि से उसे देखा। बड़ी–बड़ी आँखें ऐसी मानों काँटे में फँसी मछलियाँ हों। सरलता और निश्छलता की छाप यातनाओं से घिरे हुए सुन्दर चेहरे पर भी स्पष्ट झलकती थी।"[91] और इज्या को देखते ही "भार्गव के कलेजे में प्रश्न रूपी नाग पर गुलगुला फूल सा सौन्दर्य भार अतुल होकर नाचने लगा।"

प्रज्ञा अथवा प्रतिभा भारत चन्द अथवा भारत के लिए आवश्यक है। परन्तु प्रज्ञा के साथ पूजा अथवा श्रद्धा समन्वित मेधा ही प्राचीन कहे जाने वाले इस देश के ज्ञान भण्डार की रक्षा

करने में समर्थ हो सकती है। इसीलिए प्रचेता प्रगतिशील चेतना धारणा करने वाले, शिखर चन्द्र अर्थात् शिखरासीन मिलकर ही भारत को ज्ञान के क्षेत्र में सार्वभौम शक्ति बना सकते हैं। इज्या के द्वारा समग्र सनातन भरत संस्कृति की रक्षा हो सकी, अन्यथा भृगुवत्स जैसे पापाचारी के द्वारा सोमाहुति का ग्रन्थागारम् भस्म करवा कर उसको अपार आनन्द तो अनुभव होता ही किन्तु, समग्र संचित सनातन भारतीय सांस्कृतिक ज्ञान गरिमा सदैव के लिए समाप्त हो जाती। 'इज्या' भार्गव के लिए ''चुम्बकीय शक्ति है।''[92]

दोनों ही नारी पात्र कल्पित किन्तु उपन्यास के लक्ष्य प्राप्ति के लिए आवश्यक है। दोनों ही सार्थक और उपन्यास को गति प्रदान करने वाले हैं।

तांत्रिक 'नागेश्वर' की कुटिलताओं से केवल अयोध्या ही नहीं, संपूर्ण प्रान्तर भूमि में निवास करने वाले जन थर्राते थे किन्तु सरयू मैया की चालों से स्वयं नागेश्वर भयभीत रहता है। इन दो उदाहरणों से माँ वाशिष्ठी के महत्व को आँका जा सकता है। उनके आश्रम में कोई भी और किसी के द्वारा भी विरोधोपरान्त भी शरण देती हैं। सोमाहुति को पुत्रवत् प्रेम करती हैं। आजन्म ब्रह्मचारिणी रहते–रहते ''मरुभूमि के समान हो गई हैं क्योंकि ''मातृत्व की वेदना का कभी अनुभव उन्होंने नहीं किया। आजीवन अपनी उर्वरता को वे नकारती रही हैं। परन्तु इतना सब होने के उपरान्त भी ''उनका हृदय 'मैदानों' जैसा व्यापक और विशाल है। वे निःसंदेह खरी तपस्विनी, महापरोपकारिणी हैं। अतः परमपूजनीया हैं। उनका चरित्र अनेक घटना चक्रो के साथ जुड़ा है। वे अनेक पात्रों को अभयदान देकर गतिशील बनाती हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में यद्यपि नागरजी ने अपनी उर्वर कल्पना का प्रचुर प्रयोग किया है तथापि भारतीय इतिहास की बिखरी हुई समिधाओं को एकत्र कर प्राचीन इतिहास की दृष्टि से महान सेवा की है। उपन्यास में स्थान–स्थान पर भाषा विज्ञान, विभिन्न देशों की परम्पराएँ, रहन–सहन, वेषभूषा और भाषा का उल्लेख होता है। उससे उपन्यास के कथा शिल्प और रस परिपाक में बाधा अवश्य पड़ती है, परन्तु सब कुछ मिलाकर उपन्यास का विषय नवीन और उसके माध्यम से प्राचीन भारत तथा पात्रों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने में उपन्यासकार सफल रहा है। उनका यह प्रयास स्तुत्य है।

इस उपन्यास की कथावस्तु पौराणिक राष्ट्रीय और विश्व के अन्यान्य देशों के साथ भारत के प्रगाढ़तम संबधों के सूत्रों के एकीकरण पर आधारित है। भारशिवों और वाकाटकों की शासन व्यवस्था और युगीन परिस्थितियों का चित्रण कर एक महान सांस्कृतिक–सामाजिक आन्दोलन का उल्लेख करना अपना अभीष्ट समझता है जिसमें भागवत धर्म की स्थापना और सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रिया को प्रारम्भ कर भारत भूमि के प्रति निष्ठा और श्रद्धा की कथा हैं।

उपन्यासकार की कथा का फलक अत्यन्त विशाल एवं उदात्त है। वाल्हीक से लेकर सुदूर दक्षिण तक उनकी कथा के अंग है। उस समय के सभी गणराज्य तथा अन्य राज्य व्यवस्थाओं को कथा का उपादान बनाया गया है। कथाएँ इतनी विशाल और विस्तृत हो गई है कि अन्त में

उपन्यासकार उन्हें समेटने में असमर्थ हो गया है। ऐसा लगता है कि उपन्यास के आकार के बढ़ने की आशंका के कारण उपन्यासकार उपन्यास को बहुत शीघ्र समेटने में लग जाता है। जैसे अंधकार होने पर कोई पतंग उड़ाने वाला अपनी पतंग को शीघ्र उतारने के प्रयास में रत हो जाता है और उसे चिन्ता नहीं रहती कि उतारते समय पतंग और उसकी डोर की क्या स्थिति होगी ? अतः कथा सभी दृष्टियों से उचित गति से अग्रसर होते हुए भी अन्त में समुचित और संतुलित व्यवस्था के अभाव में बेडौल और पंगु सी प्रतीत होती है कबंध सी।

निष्कर्षतः 'एकदा नैमिषारण्ये' नागर जी के सांस्कृतिक मंथन की अमूल्य निधि है। इसकी मूल चेतना भावात्मक ऐक्य के माध्यम से 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को सुंपुष्ट करती है। नागरजी की मानवतावादी दृष्टि, व्यष्टिं और समष्टि में सामंजस्य स्थापित कर शाश्वत् मानव धर्म के प्रतिष्ठार्थ संकल्पबद्ध दिखायी पड़ती है। अनेक पौराणिक संदर्भों को उभारकर उन्होंने आर्य सभ्यता–संस्कृति और धर्म की समन्वय कारिणी शक्ति के अन्तर्राष्ट्रीय नाते उजागर किये है। निश्चय ही आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यह उपन्यास भारतीय सांस्कृतिक चेतना एवं भावात्मक एकता के पुनस्सृजन और राष्ट्र के नवनिर्माण का मूल मंत्र सिद्ध होगा।

वस्तुतः उपन्यास का वस्तु विधान सुगठित, मौलिक, रोचक मानव जीवन की समस्याओं की व्याख्या से पूर्ण जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के चित्रण और पात्रों के महत्वपूर्ण और महत्वहीन जीवन तथ्यों के विवेचन से पूर्ण और अनुभूतियों की पुनरावृत्ति से पूर्ण है। रचनाकर का वस्तु विधान प्रसंशनीय है।

मानस का हंस

'सेठ बाँकेमल', 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष' जैसी लोक प्रिय रचनाओं के रचयिता ने प्रस्तुत उपन्यास में तुलसी बाबा का जीवन चरित्रों, किंवदंतियों तथा तुलसी की स्वयं की रचनाओं में प्रस्तुत विचारों के आधार पर लिखा है। जिस प्रकार तुलसी बाबा ने अपने साहित्य में समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपनाया उसी प्रकार नागरजी ने तुलसी के व्यक्तित्व का समन्वययात्मक पहलू पाठको के सम्मुख रखने का प्रयास किया है। समग्र उपन्यास में लेखक तुलसी के जीवन वृत्त से घिरे विवादों से परे कहीं समन्वयात्मक तो कहीं भावात्मक दृष्टिकोण को प्रश्रय देता है। ''प्रस्तुत उपन्यास में तुलसी के जीवन वृत्त और उनकी भावुकता, जो उत्तम काव्य सृजन के लिए परमावश्यक है– के समन्वय का सुन्दर प्रयास है। न तो इसमें इतिहास की शुष्क इति वृत्तात्मकता है–और न तुलसी के काव्य की आलोचक की भाँति विवेचना ही है।''[93] उपन्यासकार ने बड़ी ही चतुराई से इन दोनों की नीरसता और वैज्ञानिकता से उपन्यास को बचाया है। प्रस्तुत कृति तुलसी के जीवन से संबंधित अवश्य है– परन्तु इसमें जीवन वृत्त के साथ–साथ औपन्यासिक तत्वों का समावेश अत्यधिक कुशलता के साथ किया गया है। जीवनी

और उपन्यास में अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा गया है– ''उपन्यासकार मानव जीवन की मीमांसा करता है। वह मानव मन के अन्तस्तल में प्रविष्ट होकर उनकी आन्तरिक अनुभूतियों का विश्लेषण करना है। उपन्यासकार अपने उपन्यास में व्यक्ति के विकास में सहायक, संपूर्ण वातावरण, समाज और देशकाल का चित्रण करता है। जीवनी कार का उद्देश्य भी व्यक्तित्व का विश्लेषण करता है। किन्तु उपन्यास में काव्यत्व होता है, कल्पना द्वारा उपन्यास में सत्य तथा सुन्दर जीवन के दार्शनिक तत्वों को रोचक ढ़गं से उपस्थित किया जाता है, जबकि जीवनी में वास्तविक जीवन के अनुरूप तथ्य निरूपण की प्रवृत्ति रहती है।'' इस दृष्टि से भी प्रस्तुत उपन्यास अपने औपन्यासिक तत्वों के साथ एक जीवन्त कृति है। तुलसी बाबा की जीवनी कुछ कल्पना तथा कुछ किंवदन्तियों के आधार पर गढ़ी गई है। तुलसीकृत रचनाओं से उदाहरण लेकर उसके आधार पर तथ्य निरूपण किया गया है। कहीं तुलसी स्वयं अपनी अतीत–गुहाओं से यवनिका हटाते प्रतीत होते हैं, कहीं लेखक तुलसी का कार्य भार हल्का करने के लिए स्वयं बाबा की जीवन गाथा कहता है।

सार्थक और विशिष्ट कृति चाहे ऐतिहासिक कथा पर आधारित हो चाहे सामाजिक कथा पर, प्रासंगिकता का प्रश्न उससे जुड़ा होता है। प्रासंगिकता (लेखक के) युग की केन्द्रीय चेतना और लेखक की पहचान से प्राप्त होती है। इसलिए बहुत बार ऐसा भी होता है कि समसामयिक विषय वस्तु को लेकर चलने वाला साहित्य इस चेतना की पहचान में चूक जाने के कारण अप्रासंगिक हो जाता है और प्राचीन विषय वस्तु को लेकर चलने वाला साहित्य इस पहचान के कारण प्रासंगिक। अतीत की कथा कभी तो स्वयं ऐसी होती है कि वह हमारे युग की प्रकृति के समीप होने के कारण सहज ही प्रासंगिक हो जाती है, कभी उसे प्रासंगिक बनना पड़ता है। प्रासंगिक बनाने की प्रक्रिया बड़ी जटिल और खतरनाक होती है। इसमें कथा या चरित्र की ऐतिहासिकता की रक्षा भी करनी होती है और उसे नए आयाम भी देने होते है कि वह कथा या चरित्र हमारे बीच का लगने लगे। जहाँ इस समन्वय में दरार पड़ी रचना अविश्वसनीय और प्रभाव हीन होने लगती है। प्रासंगिकता भी कहीं तों युगीन समस्याओं, आकांक्षाओं और संबंधों से संबंधित होती है, कहीं चरित्र की नवीन आन्तरिकता से।

'मानस का हंस' एक सार्थक एवं विशिष्ठ उपन्यास है। इसलिए इसे हम मात्र 'तुलसी' की प्रामाणिक जीवनी के उपन्यास के रूप में पढ़कर संतोष नहीं करना चाहते। हम उन बिन्दुओं की भी तलाश करना चाहते है, जो तुलसी के जीवन पर आधारित इस उपन्यास को ऐतिहासिक दस्तावेज बनने से बचाकर एक ऐसी सर्जनात्मक कृति का रूप दे सके हैं जो आज के पाठक के लिए भी प्रासंगिक है। इसी प्रासंगिकता के लिए लेखक ने 'तुलसी' को वह रूप दिया है जिसे ऐतिहासिक या धार्मिक दृष्टि से स्वीकार्य भी नहीं किया जा सकता। तुलसी के काम और राम के द्वन्द्व को देखकर बहुत से तुलसी भक्त और धार्मिक लोग नाक–भौं सिकोड़ते हैं। और इतिहास की छानबीन करने वाले बहुत से पाठक इसे असत्य भी कह सकते हैं किन्तु 'तुलसी' पर सार्थक उपन्यास लिखने वाले लेखक को यह खतरा उठाना तो था ही। यह बात और है कि भक्तो और

साधकों पर उपन्यास आदि नहीं लिखना चाहिए किन्तु जब उन पर लिखा जायगा जब उन्हें वह मानवीय रूप देना ही होगा जो उन्हें साहित्य के अनेक पाठकों के लिए प्रासंगिक बनाता है।[94]

उपन्यास का प्रारम्भ तुलसी की पत्नी रत्नावली की मृत्यु–घटना के साथ होता है। उस समय गोस्वामी तुलसीदास जी वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके थे। उनसठ वर्ष की दीर्घ कालावधि के पश्चात् गोस्वामी जी ने अपने गाँव राजापुर आकर रत्नावली का दाह–संस्कार किया। उनके साथ राजा भगत, संत बेनीमाधव, कैलाश नाथ, पंडित रामू आदि भी राजापुर आये थे। बेनीमाधव जी को पहली बार गुरु की जन्म भूमि में आने का सुयोग मिला था। इसलिए उन्हें गुरु के ऐहिक जीवन के विषय में सहज उत्सुकता हुई। उन्होंने गोस्वामी जी के सम्मुख अपनी जिज्ञासा को रखते हुए उनसे अपने जीवन वृत्त पर प्रकाश डालने के लिए निवेदन किया। पहले तो गोस्वामी जी ने उक्त विषय में बताने से आनाकानी की किन्तु बेनीमाधव जी के आग्रह करने पर उन्होंने अपने अतीत जीवन के रहस्यों पर धीरे–धीरे प्रकाश डालना शुरू किया। गोस्वामी जी ने कभी अपने प्रारम्भिक जीवन के साथ राजा भगत, बकरीदी काका और कैलाश नाथ के माध्यम से अपने जीवन वृत्त और उस काल की परिस्थितियों पर प्रकाश डलवाया, कभी स्वयं एक–एक घटना का वृत्त प्रस्तुत किया और कभी अतीत की स्मृतियों में डूब कर पूर्व दीप्ति (Flash Back) के रूप में आत्मकथा प्रस्तुत की। उपन्यास का अधिकांश इसी रूप में है।

जिस समय गोस्वामी जी पैदा हुए, वह सम्राट हुमायूँ का काल था। राजनीतिक दृष्टि से देश में अनिश्चितता का वातावरण था। हुमायूँ और शेर शाह सूरी के संघर्ष का आतंक चतुर्दिक व्याप्त था। लूट पाट और खून–खराबे के कारण सामान्य जन घर छोड़कर प्राण–रथार्थ इधर–उधर भाग रहे थे। देश पर अकाल की काली छाया पड़ रही थी। ऐसे ही समय में विक्रमपुर के पंडित आत्माराम दुबे के घर एक बालक का जन्म हुआ जो प्रारम्भ में रामबोला और बाद में तुलसीदास नाम से लोक–विख्यात हुआ। आत्माराम ने ज्योतिष गणना के आधार पर नवजात शिशु को अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्मा हुआ ठहराया और माता–पिता के लिए काल–सदृश बताया। दुर्योग से बालक के जन्म वाली रात में ही उसकी माँ हुलसी का निधन हो गया। दुःखावेश के कारण विक्षुब्ध आत्माराम बच्चे को दासी मुनियों के यहाँ छोड़कर स्वयं घर से निकल पड़े।

यमुना पार की एक बूढ़ी भिखारिन पार्वती अम्मा की वात्सल्य–छाया में राम बोला का बचपन प्रारम्भ हुआ। चार पाँच वर्ष का नन्हा–साबालक राम बोला, गाँव–गाँव, टोले–मुहल्ले में भिक्षा के लिए भटकने लगा। उसे कहीं से भिक्षा मिलती थी और कहीं से दुत्कार। अपमान का घूँट पीते–पीते राम बोला ऊब गया। एक दिन उसने पार्वती अम्मा से कहा– "हमको भीख माँगना अच्छा नहीं लगता है अम्मा! द्वारे–द्वारे रिरियाओ, गिड़गिड़ओ, कोई सुनै, कोई न सुनै, गाली दै। यह रोज–रोज का दुःख हमसे सहानहीं जाता है।"[95] पार्वती अम्मा रामबोला को सांत्वना देते हुए

राम भक्ति के लिए प्रेरित करती थीं। एक दिन जब रामबोला भीख माँगकर घर लौटा तो देखा कि पार्वती माँ भी नहीं रहीं। बालक रामबोला अकेले ही जीवन यापन करने के लिए विवश हो गया। एक दिन उसी गाँव के एक ब्राह्मण पुत्तन महाराज के लड़के से रामबोला का झगड़ा हो गया। फलतः पुत्तन महाराज ने रामबोला की मड़ैया में आग लगवा दी, उसे मारपीट कर गाँव से भगा दिया।

अब दर–दर की ठोकरें खाना और खुले आकाश के नीचे यहाँ–वहाँ रात व्यतीत करना बालक रामबोला की नियति बन गयी। जाति, कुजाति, सुजाति के घरों से माँगें हुए टुकड़े खाते–खाते और अपमान सहते–सहते रामबोला जीवन से इतना ऊब गया कि अन्त में उसने किसी से भिक्षा न माँगने का निश्चय किया। उसने सरयू के पावन तट पर स्थित एक हनुमान–मन्दिर में आश्रय लिया। हनुमान जी का चबूतरा झाड़–पोछकर और आप भी नहा–धोकर हनुमान जी के आगे नतमस्तक होकर उसने कहा– ''अब हम तुम्ही से माँगेगे हनुमान स्वामी, अब किसी के पास नहीं जायेंगे तुम हमारा पेंट भर दिया करो। हम तुम्हारा स्थान खूब साफ कर दिया करेंगे।''[96] इस प्रकार रामबोला महावीर जी के मन्दिर का एक वानर बन गया। बानरों के सरदार ललकऊ के साथ उसकी मित्रता भी हो गयी। किन्तु, वहाँ भी उसे भिखारियों के शोषण का शिकार होना पड़ा। अकस्मात् एक दिन उसकी भेंट बाबा नरहरिदास जी से हुई। उनकी शरण में पहुँचते ही रामबोला भक्ति–पथ का पथिक बन गया। बाबा ने रामबोला का नाम बदलकर तुलसीदास रख दिया और उसे परम रामभक्ति का आशीर्वाद दिया। बाबा ने उसे रामनुजी सम्प्रदाय में दीक्षित भी कर दिया। तुलसी ने काशी के महान् विद्वान आचार्य शेष सनातन की छत्र–छाया में विद्याध्ययन किया और शिक्षा पूरी करने के बाद वह उन्हीं की पाठशाला का अध्यापक बन गया। रामबोला भूत–प्रेत–माया को लोक–प्रपंच मानता था। उसने सोचा– 'जहाँ राम है वहाँ भय कहाँ ? भय ही तो भूत है।' अपने सहपाठी बटेश्वर मिश्र की चुनौती पर एक दिन तुलसीदास को भूत पर राम की विजय प्रमाणित करने के लिए, अमावश्या की अर्द्धरात्रि में श्मशान घाट पर शिव–मन्दिर में शंख ध्वनि के लिए जाना पड़ा– ''चल रे रामबोला, चल आज यह दिखा दे कि तेरा राम–बल अनन्त भूतों से अधिक शक्तिशाली और विशाल है। जय बजरंग।''[97] तुलसी को विजय श्री प्राप्त हुई।

बाबा नरहरि दास का स्वर्गवास हो जाने के उपरान्त गुरुपाद शेष सनातन महाराज तुलसी के अभिभावक हो गये। उन्हीं की स्नेहच्छाया में उनके सहित्यिक जीवन का सूत्रपात हुआ। उस समय तुलसी दास की अवस्था तेईस–चौबीस वर्ष के लगभग थी। वे पाठशाला के आचार्य पद पर सुशोभित थे। विद्वता और व्यक्तित्व की ऋजुता ने तुलसी को काशी के जन मानस में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित कर दिया। एक दिन काशी के एक सेठ द्वारा आयोजित भोज का निमंत्रण पाकर तुलसी पाठशाला के कुछ विद्यार्थी वहाँ गये। रामभक्त मेघाभगत भी इस अवसर पर उपस्थित थे। राम भक्ति–विह्वल मेघा भगत रह–रह कर मूर्छित हो जाते थे और कभी अश्रुपात

करने लगते थे। उनकी मनः शान्ति हेतु तरुणी गायिका मोहिनी ने मीराबाई का एक भजन गाया– 'सुनीरी मैंने हरिआवन की आवाज।' गायिका ने ज्यों ही विराम लिया, तुलसी ने गाना प्रारम्भ कर दिया– 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर बेगि मिलो महराज।' मेघा भगत और सभी उपस्थित भक्तगण भजन की स्वर लहरी में भाव–विभोर हो उठे। किन्तु, तुलसी तो मोहिनी के सौन्दर्य एवं उसकी गायन–कला पर मुग्ध होकर अपना आपा खो बैठे थे।

मोहिनी के सौन्दर्य पर मुग्ध तुलसी अहर्निश विरह–व्याकुल रहने लगे। मेघा भगत के यहाँ तुलसी और मोहिनी का मिलन तथा भाव–भजन–क्रम भी चलने लगा। तुलसी के अन्तस् में राम और काम का द्वन्द्व छिड़ गया था। शनैः–शनैः उनका अन्तः संघर्ष चरम बिन्दु पर पहुँच गया। तुलसी के मित्रगण तथा मेघा भगत भी इस प्रसंग से अवगत हो चुके थे। तुलसी के मानस में कभी–कभी लोक लज्जा का भाव जाग उठता था। उनका स्वगत चिन्तन ध्यान देने योग्य है– "तुलसी तैरी बदनामी फैल चुकी है। दुनियां कहने लगी कि तू रामभक्त नहीं है। 'छिः–छिः, क्या मोहिनी सचमुच मुझे जानबूझ कर अपने आकर्षण–पाश में फँसाना चाहती है ? 'वह चाहे या न चाहे, तू तो फँस ही गया।' नहीं, मैं नहीं फँसा। मेरा मन अब भी राम चरणलीन है। मैं यह कभी नहीं सह पाऊँगा कि लोग–बाग मुझ पर अंगुली उठाकर कहें कि यह किसी अन्य का दास है। यह ग्लानि, यह पश्चाताप मैं कदापि नहीं सह पाऊँगा। हे राम! मुझे इस पाप–पंक में पड़ने से बचाओं। राम, मैं तुम्हारा हूँ और किसी का नहीं।"[98]

लगभग एक मास पश्चात् तुलसी के अन्तः संघर्षमय जीवन की हलचल शान्त हुई। फिर भी, कभी–कभी मोहिनी से उनका मिलन हो जाया करता था। अन्ततः मोहिनी की संरक्षिका बाई की कठोर फटकार ने तुलसी के प्रेम–दर्पण को चकना चूर कर दिया। तुलसी को राम–काम के अन्तर्द्वन्द्व मे जीवन के यथार्थ का बोध हो गया। वे मोहिनी से अन्तिम विदा लेकर तीर्थाटन पर चल पड़े।

तुलसी दास, मेघा भगत और कैलासनाथ मानसरोवर–बदरिका श्रम की तीर्थ यात्रा करते हुए हरिद्वार पहुँचे। उन्हीं दिनों हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली की गद्दी पर हेमचन्द्र विक्रमादित्य सिंहासना रूढ़ हुआ था। कुरुक्षेत्र में भयंकर अकाल पड़ा हुआ था। सर्वत्र अराजकता व्याप्त थी। कैलाशनाथ के आग्रह पर तुलसी और मेघा भगत ने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। पानी–पत के युद्ध में हेमचन्द्र विक्रमादित्य मारा गया। मुगल सैनिकों ने कैलास नाथ और तुलसी को भी दिल्ली के मार्ग में बन्दी बना लिया। मेघा भगत रास्ते में भटक गये। तुलसी अपनी ज्योतिष–विद्या के चमत्कार से बंधनमुक्त हो गये। वे अपने–गुरुभाई नन्ददास की खोज में सिंहपुर ग्राम पहुँचें। नन्ददास उस गाँव की एक नव विवहिता युवती के प्रेम में बावले हो गये थे। तुलसी उन्हें समझा–बुझाकर अपने साथ लेकर मथुरा की तीर्थ–यात्रा पर चले गये।

तुलसीदास काशी, सोरो, अयोध्या, सूकरखेत, चित्रकूट का भ्रमण करते हुए अपनी जन्मभूमि विक्रमपुर पहुँचें। वहाँ उनकी भेट राजा भगत से हुई। तुलसी का बड़ा आदर–सत्कार

हुआ। राजा भगत के व्यवहार से प्रसन्न होकर तुलसीदास ने विक्रमपुर गाँव का नामकरण राजा भगत के ही नाम पर राजापुर कर दिया। राजा भगत के आग्रह पर तुलसी दास कुछ समय तक वहाँ रुके। वे गाँव में जाकर कथा–प्रवचन करते थे। अपनी प्रवचन–कला, ज्योतिष–विद्या तथा आकर्षक व्यक्तित्व के कारण तुलसी जन–जन के लिए श्रद्धेय बन गये। उन्होंने राजापुर में संकट मोचन महावीर की स्थापना की। धूमधाम से उत्सव भी किया। उन्ही दिनों तुलसी हाजीपुर गाँव की चम्मो सहुवाइन और राजकुँवरी की ओर किंचित् आकृष्ट हुए। वे पुनः राम–काम के द्वन्द्व में फँसने लगे। भक्ति रस–यौवन की तृष्णा उनके मन में उथल–पुथल मचाने लगी। उसी बीच राजा भगत ने उनके सम्मुख अपने मित्र दीन बंधु पाठक की इकलौती पुत्री रत्ना से विवाह का प्रस्ताव रखा। तुलसी की सौम्य–प्रतिभा व्यक्तित्व से प्रभावित होकर, दीन बंधु पाठक ने भी उन्हें अपना जामाता बनाने का निश्चय कर लिया था। तुलसी विवाह के प्रश्न पर पहले तो असहमत हुए किन्तु बाद में राजा भगत के विशेष आग्रह पर उन्होंने रत्नावली से विवाह करना स्वीकार कर लिया। तुलसी और रत्नावली विवाह सूत्र में आबद्ध हो गये। तुलसीदास गृहस्थ–जीवन व्यतीत करने लगे। रत्नावली ज्योतिष एवं धर्मशास्त्र की सुपंडिता थी। तुलसी के भी ज्योतिष–ज्ञान का प्रभाव सर्वत्र फैल चुका था। रत्नावली का चचेरा भाई गंगेश्वर, तुलसी की बढ़ती हुई लोक ख्याति के कारण ईर्ष्या करता था। उसने अनेक छल–छन्द किये। अन्ततः तुलसी ने गंगेश्वर को डांट–फटकार कर भगा दिया। समय व्यतीत होने के साथ तुलसी एक पुत्र के पिता बन गये। उनका गृहस्थ–जीवन सुखमय था।

तुलसी दास एक बार रत्नावली और अपने पुत्र तारापति से भेंट करने राजापुर गये। वहाँ गंगेश्वर ने उन्हें अपमानित किया। उसी रात तुलसी और रत्नावली में सुख–दुख की बाते करते हुए परस्पर विवाद हो गया। रत्नावली ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा– "स्त्री और पुरुष में यही तो अन्तर होता है। नारी भले ही कामवश माता क्यों न बने किन्तु माता बनकर वह एक जगह निष्काम हो जाती है और पुरुष पिता बनकर भी दायित्व–बोध भली प्रकार से अनुभव नहीं करता। सचपूछो तो वह किसी के प्रति अपना दायित्व अनुभव नहीं करता। वह निरेचाम का लोभी है, जीव में रमे राम का नहीं।"[99] रत्ना के कटु वचन तुलसी के मर्म को बेध गये। उन्होंने अर्द्धरात्रि की विजनता में पत्नी और पुत्र को सोते छोड़कर वैराग्य–पथ पर प्रयाण कर दिया।

वे चले जा रहे थे पर उन्हें गंतव्य का पता न था। यात्रा के श्रम और मानसिक तनाव के कारण वे चलते–चलते एक गाँव के पास मूर्छित होकर गिर पड़े। एक आदिवासी युवती रामकली ने उनका उपचार किया। तुलसीदास वहाँ से चलकर चित्रकूट निवासी ब्रह्म दत्त नामक एक परिचित व्यक्ति के आग्रह पर वे उन्हीं के घर में एक कोठरी लेकर साधनामय जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ कालोपरान्त उन्हें अपने पुत्र तारापति की मृत्यु का समाचार मिला। इस समाचार से तुलसी का पितृ–हृदय करुणाप्लावित हो उठा। एक दिन राजा भगत रत्नावली के साथ उन्हें

मनाने के लिए पहुँचे। तुलसी अपनी साधना में व्यवधान उत्पन्न होते देख, चित्रकूट छोड़कर अयोध्या चले आये।

अयोध्या आकर वे रामानुजी सम्प्रदाय के एक मठ में कोठारी बन गये। कर्तव्य कर्म का निष्ठापूर्वक पालन करते हुए वे भगवद्भक्ति में लीन हो गये। वे राम घाट पर कथा–प्रवचन करते थे। साधना के प्रभाव से उनके कथा–प्रवचन की रसमयता निरन्तर बढ़ती गयी। शीघ्र ही वे अयोध्या के भक्त–समाज में अत्यन्त लोकप्रिय हो गये। तुलसी की लोक प्रियता से क्षुब्ध होकर अयोध्या के ढोंगी ब्राह्मण, पण्डे–पुजारी, महंत एकजुट होकर उनके विरुद्ध प्रचार करने लगे। उन्होंने तुलसी के विरुद्ध एक युवती के साथ दुराचरण करने का झूठालोक–प्रवाद फैलाने का प्रयास किया। इन दुष्कृत्यों और निन्दात्मक प्रचारों से तुलसी की प्रतिष्ठा पर आँच न आयी।

उन्हीं दिनों अयोध्या से लेकर काशी तक भीषण अकाल पड़ा था। सामान्यजन रोटी–रोटी के लिए मोहताज हो गया था। आर्थिक विपन्नता का लाभ उठाकर तरुणियों का व्यापार करने जैसा दुष्कृत्य भी किया जा रहा था। इन हृदय विदारक दृश्यों को देखकर तुलसी का संवेदनशील मन करुणा से विगलित हो उठा। साम्प्रदायिक विद्वेष की आग भी भड़कायी जा रही थी। फलतः 'रामजन्म भूमि' को लेकर हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष की संभावनाएँ प्रबल हो उठी थीं। तुलसी दास के सत्प्रयत्नों से अकबर के आदेशानुसार हिन्दुओं को राम नवमी के अवसर पर रामजन्मोत्सव मनाने की अनुमति मिल गयी। ऐसे ही समय में लोक–मर्यादा की प्रतिष्ठा और रामभक्ति के प्रचार हेतु तुलसीदास ने दुर्गाष्टमी के दिन 'रामचरित मानस' की रचना का शुभ संकल्प लिया।

जिस समय तुलसीदास जी की कीर्ति अपने चरम शिखर पर पहुँच रही थी उसी समय उनके विरुद्ध एक के बाद एक षड्यंत्र भी हो रहे थे। 'रामचरित मानस' को चुराने का असफल प्रयास किया गया। अन्ततः गोस्वामी जी को अयोध्या छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। वे अयोध्या से काशी चले गये। काशी में उनकी भेंट अपने बाल मित्र पंडित गंगाराम से हुई। गंगाराम के माध्यम से उनका परिचय काशी के जमीदार टोडरमल से हुआ। तुलसीदास जी को 'मानस' की रचना के लिए शान्त वातावरण की तलाश थी। टोडरमल ने हनुमान फाटक पर तुलसी के रहने की व्यवस्था कर दी। काशीवास करते हुए तुलसीदास 'रामचरित मानस' के माध्यम से जन–मानस में भक्ति और भावात्मक ऐक्स का मंत्र फूंकने लगे। काशी में भी तुलसी को विरोधियों से मुक्ति नहीं मिली। उन्हें बार–बार स्थान–परिवर्तन करना पड़ा।

फिर भी, वे कथा–प्रेमी समाज के श्रद्धा–भाजन बने रहे। उनके विषय में अनेक चमत्कारिक कथाएँ नगर में फैलने लगीं। विशालजन समुदाय उनका परम भक्त बन गया। अनेकानेक व्यवधानों को झेलते हुंए गोस्वामी जी ने संवत् 1636 में जेठ की तीज को महाकाव्य का समापन किया।

एक दीर्घ कालावधि के उपरान्त एक दिन अकस्मात् राजा भगत रत्नावली को साथ लेकर तुलसी से भेंट करने काशी आ गये। तुलसी ने रत्नावली से कुशल–क्षेम पूँछी। रत्नावली ने उनसे अपनी चरण–सेवा में रखने के लिए प्रार्थना की। किन्तु, तुलसी ने स्वीकार नहीं किया। राजापुर के लिए प्रस्थान करते समय रत्नावली ने तुलसी से अपनी मृत्यु से पूर्व एक बार पुनः श्रीमुख दिखलाने की कृपा–याचना की। तुलसी ऊहापोह ग्रस्त हो गये। एक ओर पतिव्रता नारी की कातर दृष्टि थी और दूसरी ओर लोक–निन्दा का भय। इस प्रसंग को लेकर उनके विरोधियों ने बड़ा दुष्प्रचार किया। 'रामचरित मानस' की मीमांसा की गयी। तुलसी ने 'रामचरित मानस' की दोहा–चौपाइयाँ सुनाकर जन–जन को वशी भूत कर लिया। काशी के प्रमुख शैव महापण्डित मधुसूदन सरस्वती आदि विद्वानों ने तुलसी की काव्य–प्रतिभा और परम भक्ति को सादर स्वीकार किया। इससे तुलसी के विरोधियों को और भी मनस्ताप हुआ किन्तु कोई उनका बाल बाँका नहीं कर सका।

तुलसीदास अपनी मित्र–मण्डली के साथ अस्सी घाट पर रहते हुए रामभक्ति का उपदेश करते रहे। उन्होंने काशी में रामलीला का आयोजन किया। एक बार विरोधियों के षड्यंत्र से गोस्वामी जी मुस्लिम सिपाहियों द्वारा बन्दी बना लिये गये। किन्तु, टोडर के अहीर वानरों ने कोतवाली पर आक्रमण कर तुलसी को बंधन मुक्त कर लिया। इसी अवसर पर नगर में शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से अकबर के सुबेदार अब्दुर्रहीम खान खाना भी काशी आये थे। रहीम तुलसी से अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने उनसे अकबर की मनसबदारी स्वीकार करने का आग्रह किया। किन्तु तुलसी ने उसे स्वीकार नहीं किया।

उन्हीं दिनों काशी में प्लेग का प्रकोप हुआ। तुलसीदास भी इसके शिकार हो गये और उन्होंने सं0 1680, श्रावण कृष्ण तृतीया की ब्राह्म बेला में नश्वर जगत् से महाप्रयाण कर दिया।

उपन्यास के नायक तुलसीबाबा अपने जीवन काल के अन्तिम वर्ष में आत्मा लोचन कर अपने मानस के हंस द्वारा अपने जीवन के उन अनुभव मुक्ताओं का चयन करते हैं, जो न केवल तुलसी के जीवन का मेरुदण्ड हैं, प्रत्युत उपन्यास के अन्य पात्रों के लिए भी संघर्षमय जीवन की एक मांग को प्रस्तुत करते हैं। यह जीवन संघर्ष केवल संघर्ष के लिए नहीं – इस संघर्ष के परिणाम स्वरूप प्राप्त भगवत् भक्ति तथा आत्म सन्तोष की भावना का चित्रण प्रस्तुत कृति में आकर्षण का विषय है। उपन्यास के प्रारम्भ में महाकवि तुलसीदास का अन्तर अनेक झंझावातों से घिरा है और इसअंतः वृत्ति का साथ देता हुआ प्रकृति–तांडव एक विशेष वातावरण की सृष्टि करता है। पाठक सजग हो जाता है कि कुछ अप्रत्याशित घटने वाला है। तुलसीबाबा की पत्नी मृत्यु शय्या पर पड़ी अपने प्राणधन की राह देख रही है। श्वास प्रिय–दर्शन की आस से चिपके हुए हैं। तुलसी बचनानुसार समय पर पहुँचकर अर्द्धांगिनी की अन्तिम इच्छा को पूर्ण करते हैं। रत्ना पति विमुखा रत्ना अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में सुहाग सिन्दूर से दीप्त अपनी महायात्रा की ओर प्रयाण करती है। नब्बे वर्षीय महाकवि तुलसीदास, सन्यासी तुलसी आयु पर्यन्त माया मोह

से संघर्ष करने वाले महासंत तुलसी अपनी प्रिया के अन्तिम दर्शन कर भाव विह्वल हो जाते हैं। वे अनायास ही अपने परम आराध्य श्रीराम के चरण युगलों में आत्म प्रवंचना से पीड़ित हो पुकार उठते हैं– "हे पभु! तुम्हारी यह माया ऐसी है कि जन्म भर जपतप साधन करते पच मरो तब भी इससे पार पाना उस समय तक कठिन है जब तक तुम्हारी ही पूर्ण कृपा न हो।"[100]

तुलसी बाबा का मन रत्ना में रम जाता है। रत्ना का नवविवाहित रूप स्मृति पटल पर सजीव हो उठता है। रत्ना कुछ बोलती हुई सुनाई पड़ती है। शीघ्र ही रत्ना का विम्ब सीता जगदम्बा का प्रतिबिम्ब बन स्पष्ट होने लगता है। तुलसी को अपनी विरह पीड़ा अपने आराध्य की विरह पीड़ा में एकाकार दृष्टि गोचर होती है। इस प्रकार लेखक कथा की पृष्ठ भूमि तैयार कर देता है। 69 वर्ष के पश्चात् महाकवि तुलसी अपने जन्म स्थान राजापुर लौटे हैं। स्वाभाविक है राजापुर वासियों के हृदय में बाबा से पूछने के लिए प्रश्नावली का निर्मित होना। प्रश्न समूह सजग हो उठता है। तुलसीदास के परिचतों में अनेक व्यक्ति वृद्धावस्था में जर्जरित और कृषिकाया लिए हैं और कई संसार के संघर्षों सें छुटकारा पाकर परलोक वासी हो जाते हैं। वर्षों तक साथ रहने वाला बाल मित्र राजा भी यहां विद्यमान है। यहां तुलसी के जन्म स्थान से संबंधित वाद विवाद में न पड़ते हुए उनका जन्म स्थान राजापुर घोषित करते हुए भी बाबा से राजा को संबोधित करते हुए यह कहलवा देता है। "घर घरैतिन के साथ गया, गांव तुम्हारे नाम से बजता है और रही जन्म भूमि..... वह तो सूकर क्षेत्र में हैं भाई..... यहां से तो कुटिल कीट की तरह माता–पिता ने मुझे जन्म से ही निकाल फेंका था।"[101] प्रस्तुत पंक्तियों से लेखक के दो उद्देश्य सिद्ध हो जाते हैं– एक तो तुलसी के जन्म स्थान के वाद–विवाद से बचकर निकल जाता है तथा समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय देता है और दूसरे उपर्युक्त पंक्तियों को सुनकर शिष्य रामू द्विवेदी, बेनीमाधव आदि का मन बाबा के जीवन के विषय में जिज्ञासु हो उठता है। लेखक कथा सूत्र को आगे बढ़ाने का साधन पा जाता है। राजा और बाबा की बातों में ऐसी पहेली उलझी थी कि जिसे सुलझाए बिना न तो बेनीमाधव जी को चैन पड़ता था न रामू को। दोनों शिष्य ही नहीं पाठक भी सजग हो जाते है। रहस्यों की गुफाओं से अवगुण्ठन हटाने का मन करता है। उधर तुलसी दास अपने पद में मन की अन्तवृत्ति का साक्षात निरूपण करते जान पड़ते है :–

तनु जन्यों कुटिल कीट ज्यो, तज्यों मातु पिता हूँ,
कहि को रोष ,दोष, काहि धौं मेरे ही,
अभाग मो सौं सकुचत हुइ सब छाहूँ।।"[102]

तुलसी दास के जीवन की एक झलक स्पष्ट होती है और उनके शिष्य उनके जीवन चरित से संबंधित घटनाओं को जानने के लिए चिरौरी करते से जान पड़ते हैं। लेखक तुलसी के जीवन के विशेष अनुभवों से अवनिका हटाने का अवसर पा जाता है। बकरीदी दर्जी जो गाँव के

सर्वाधिक वृद्ध व्यक्ति है– तुलसी के जन्म के विषय में बतलाते हैं। यहाँ प्रसंग की स्वाभाविकता बनाए रखने के लिए लेखक बकरीदी से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का चित्रण करना नहीं भूला है। बकरीदी तत्कालीन राजा हुमायूँ तथा शेरशाह के मध्य हुए युद्ध का प्रसंग प्रस्तुत कर जन मानस पर होने वाले अत्याचारों के विषय में बताता है तथा स्पष्ट करता है कि "तब यह विक्रम पुर गाँव पूरी तरह से लुट पिट और खण्डहर बनकर सभ्यता के मानचित्र से मिट गया था .....उस समय बाबा ने वहाँ आकर तपस्या की और संकट मोचन हनुमान को स्थापित किया था। उन्हीं के आशीर्वाद से राजापुर नाम पाकर वह गाँव फिर से बसा था।"[103]

तुलसी के संघर्षमय जीवन का प्रारंभ भी संघर्षमय वातावरण में होता है। अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्मे शिशु 'राम बोला' माता–पिता के लिए काल रूप सिद्ध होते हैं। स्वंय पिता आत्माराम मुनिया दासी को कहते है कि इस अभागे को मेरी आँखों से दूर कर दो और मुनिया कहारिन उन्हें नदी पार अपनी भिक्षुणी सास के घर छोड़ जाती है।

समाज से त्यक्त लोगों में पालित–पोषित तुलसी बाल्यावस्था से राम नाम का सहारा लेकर बचपन के प्रांगण को छोड़ किशोरावस्था की ओर प्रस्थान करते हैं। तुलसी का बचपन का नाम 'रामबोला' था, इसी से उनके हृदय में राम नाम का बीजारोपण हो जाता है। भिखारी रामबोला तरह–तरह से भिक्षा माँगने का प्रयत्न करता है और अपनी एक मात्र सहारा पार्वती माँ के प्रति असीम श्रद्धा का परिचय देता है। बालक रामबोला आँधी पानी से अपनी झोपड़ी एवं पार्वती अम्मा को बचाने का प्रयास करता है और जब हार जाता है तो हनुमान जी की गुहार लगाता है– "तब हम अब का करी ? हमारे पेट भुख है। हम नन्हें से तो हैं हनुमान स्वामी। अब हम थक गए भाई। अब हम अपनी पार्वती अम्मा के लगे जाय के पौढ़ेंगे। दैव बरसै तो बरसा करै। हम का करैं बजरंग बली ? तुम्ही बताओं। तुमसे बनै तो भाई राम जी के दरवार में हमारी गुहार लगाय आओ, और न बनै तो तुम्हूँ अपनी अम्मा के लगे जाय के पौढ़ौ।"[104] अध्याय छः के आरम्भ में बालक रामबोला का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह बहुत ही सजीव बन पड़ा है।[105] जिससे प्रभावित हो डॉ0 रामबिलास शर्मा ने भी लिखा है– "तुमने तुलसी दास के बालक जीवन का ऐसा जानदार वर्णन किया है कि इच्छा होती है– तुमसे कहूँ एक उपन्यास ऐसा लिखों जिसमें सारे प्रमुख पात्र चौदह साल से कम उम्र वाले बच्चे ही हों।"[106] अभागे का करम खाता क्या कभी सरलता से चुकता है ? रामबोला की एक मात्र स्नेह दीप पार्वती अम्मा भी चल बसीं। माता–पिता से उपेक्षित परित्यक्त रामबोला का शैशव लेखक की कुशल लेखनी से सप्राण दृष्टिगोचर होने लगता है। स्वंय तुलसीदास अम्मा के विषय में कहते है– मेरी आदिगुरु परम तपस्विनी पार्वती अम्मा ही थी मानो शंकर भगवान ने मुझे जिलाए रखने के लिए ही जगदम्बा पार्वती को भिखारिन बनाकर भेज दिया था। दरिद्रता में इतना वैभव, दुर्बलता में इतनी शक्ति और कुरूपता में इतनी सुन्दरता मैने पार्वती अम्मा के अतिरिक्त औरो में प्रायः कम ही देखी है।"[107] स्पष्ट है कि तुलसी को राम नाम घुट्टी के रूप में ही पार्वती अम्मा द्वारा पिलाया गया था और

आगे चलकर यही भाव तुलसी के जीवन की धुरी बना। प्रस्तुत प्रसंग द्वारा लेखक इस तथ्य की पुष्टि कर देता है कि तुलसी अपने माता–पिता द्वारा त्याग दिए गये थे और इस तथ्य की पुष्टि स्वंय तुलसी भी अपनी रचनाओं में कर देते हैं।

पार्वती अम्मा का सहारा न रहने के पश्चात् रामबोला का गाँव में रहना कठिन हो जाता है। परेशान रामबोला मार खा–खाकर बार–बार गिड़–गिड़ाकर हनुमान जी से अनुरोध करता है जिस प्रकार हनुमान जी ने पापी रावण की लंका जला दी थी उसी प्रकार दुष्ट गाँव वालों के घर भी धू–धू कर के जला दें। लेकिन भोला मन गाँव के उत्तर की ओर आग की लपटों के उठने की बाट जोहता ही रहा पर हुआ कुछ नहीं। हताश रामबोला घाघरा और सरयू के पावन स्थल पर बने महावीर जी के मन्दिर में शरण लेता है। यहीं पर लेखक बाबा नरहरि से रामबोला की भेंट का चित्रण करता है। तुलसी को रामकथा का आस्वादन भी सोरो में प्राप्त हुआ। सोरों उनके रोम–रोम में बसी हुई थी। सोरों उनकी जन्म भूमि न होते हुए भी दिशा दायिनी नगरी थी। नरहरि से भेंट के पश्चात् तुलसीदास के जीवन को एक नवीन दिशा मिलती है। उनके व्यक्तित्व को निखार का अवसर मिलता है। पार्वती अम्मा द्वारा सिखाया गया रामनाम तुलसी के मन को घेरता है। यही तुलसी के मन में रामनाम के बीज का वपन हुआ–

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहि तसि बालपन, तब अति रहेऊ अचेत।।"

रामबोला बाबा नरहरि से प्रश्न करता है– "अच्छा बाबा। रामजी कैसे हैं ? ..... बड़े सुन्दर होगें।" परन्तु सुन्दर की परिभाषा तुलसी कहाँ से जाने ? यहीं से तुलसी के मन में राम की साक्षात् छवि निहारने की महत्वाकाँक्षा जागृत होती है। नरहरि बाबा सगुण भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं– सौदर्य व्यक्त भी है और अव्यक्त भी। साकार की सीढ़ियों पर चढ़कर तुम निराकार सौन्दर्य को निहार सकोगे।"[108]

महाकवि तुलसी बाबा नरहरि द्वारा ही संस्कारित होते हैं और उनको शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। रथ यात्रा के दिन ब्रह्ममुहुर्त में ही रामबोला का मुण्डन और फिर उपनयन संस्कार हुआ। रामबोला को गायत्री मंत्र की दीक्षा स्वंय नरहरि बाबा ने दी। रामबोला जब भगवान राम को साष्टांग प्रणाम कर रहा था तो तुलसी की एक पत्ती झरकर उनके मस्तक पर पड़ी। उसी समय नरहरि ने रामबोला का नाम करण किया। "आज से इनका नाम 'तुलसीदास' हुआ।"[109]

प्रस्तुत उपन्यास में तुलसी दास जी के स्मृति पटल पर अपने बचपन का एक दृश्य उभरता है। बाबा उसमें खों जाते हैं। परन्तु कुछ ही समय में वर्तमान सजग हो उठता है। हृदय में रामनाम की गूँज निनादित होती है। नब्बे वर्षीय तुलसी ध्यान मग्न हो आत्म विस्मृति अवस्था में पहुँच जाते हैं। यहाँ लेखक तुलसी की मनोदशा का एक सजीव चित्र खींच देता है। लेखक के साथ पाठकों को भी बाबा के मनोरथ में बैठकर उसकी अद्भुत गति का अवलोकन करने का

अवसर मिलता हैं। कुछ पृष्टों में बाबा की यही आत्म विस्मृति अवस्था छाई रहती है। तीन बार उन्हें गहन मूर्च्छा आती है। राम का स्वरूप स्पष्ट है परन्तु मन–मयूर मोहमाया से अभी भी कहाँ विलग हो पाया। मन चाहता है पार्वती अम्मा के दर्शन करना और इस विचार भाव से स्वप्न भंग हो जाता है। तुलसी तड़प उठते है– "यह क्या हुआ राम ?" सारी देह कांपने लगती है पसीना–पसीना हो गई विगलित स्वर फूटा–दीन बंधु दूरि किए दीन को न दूसरी सरन, आपको भले हैं सब आपने को कोऊ कहूँ सबको भलो है राम रावरो चरन।"[110]

प्रस्तुत उपन्यास में अमृतलाल नागर ने 'हनुमान चालीसा' नामक काव्य रचना तुलसीदास कृत सिद्ध की है। इसके लिए एक रोचक प्रसंग की एक झाँकी प्रस्तुत की है। कैलास, गंगाराम, बेनीमाधव आदि आपस में वार्ता करते है। कैलास को गर्व है कि तुलसीदास को बचपन में तुलसिया, रामबोला आदि कहकर संबोधित करने का सबसे पहले उसे ही सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसी के साथ अतीत का एक चित्र और स्पष्ट होता है। स्वंय कैलास ही कहता है– "बारह–तेरह वर्ष की आयु से हम दोनों साथ–साथ पढ़े हैं। राम भक्ति तो मानो इनकी घुट्टी में ही पड़ी है।"[111] बचपन में गुरु शेष सनातन के आश्रम में तुलसी एक बार बीरेश्वर के पिता बटेश्वर नाथ द्वारा बहुत सताए गये थे। उसी प्रसंग की चर्चा करते हुए गंगा राम जी कहते हैं– कि कैसे बटेश्वर ने शमशान में जाकर शिवालय में शंख बजाने का प्रस्ताव रखा और कैसे तुलसी ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। तुलसी राम के अनन्य भक्त थे परन्तु फिर भी किशोरावस्था का भोलामन भूत की कल्पना कर ही लेता है। तुलसी राम का नाम जपते हुए मनः शक्ति करते थे। ऐसी ही अवस्था में "मध्यरात्रि तक हनुमान चालीसा पूरी की। तुलसी ने अब तक के जीवन में यह पहला लंबा काव्य रचा था।"[112] प्रस्तुत प्रसंग द्वारा लेखक एक ओर यह सिद्ध करता है कि "हनुमान चालीसा की रचना स्वयं तुलसी दास द्वारा हुई तथा दूसरी ओर यह भी प्रमाणित करता जान पड़ता है कि रामभक्ति सर्वोपरि है। "भूत पिशाच निकट नहि आवैं, महावीर जब नाम सुनावै।"[113] रामनाम की शक्ति के आगे भूत भी कुछ नहीं कर सकते। यह ठीक है कि लेखक ने भूत के अस्तित्व का खंडन भी नहीं किया है। जब "आई" से आज्ञा पाने के लिए तुलसी पूछते है कि "क्या भूत सचमुच होते हैं" तो "आई" यही उत्तर देती है– "तुमने भूत को नहीं देखा और राम जी को भी नहीं देखा। जिस पर चाहों विश्वास कर लो। मन माने की बात है।" और तुलसी राम पर विश्वास कर शमसान में जाकर आधीरात में शिव मन्दिर में शंख बजा ही आते हैं।

'मानस का हंस' तुलसी की प्रांसगिकता आन्तरिक और बाहरी दोनों रूपों में है। संघर्ष और तनाव, व्यक्ति और समाज दोनों स्तरों पर आज का यथार्थ है। व्यक्ति के स्तर पर वह मानसिक संघर्ष है अन्तर्द्वन्द्व है यानी अपने से अपनी ही लड़ाई है और सामाजिक स्तर पर जड़ समाज से प्रबुद्ध व्यक्ति की, एक वर्ग की दूसरे वर्ग से, परम्परा की प्रगति से, असत्य से सत्य की लड़ाई है। यह लड़ाई कहीं तो सक्रिय रूप धारण कर लेती है और कहीं विक्षोभ अस्वीकृति और घृणा के रूप में ही तैरती रहती है। 'मानस का हंस' में तुलसी के मन में चलने वाला राग और

काम का द्वन्द्व तुलसी के व्यक्तित्व को अधिक मानवीय एवं प्रासंगिक बनाता है। दूसरी ओर उनके जीवन का आर्थिक अभाव, अपमान पूर्ण स्थितियाँ, छोटी जाति की पार्वती द्वारा उनका पालन, पोषण, सतत् भटकाव, धर्म और समाज की विकृत और गलीज वास्तविकताओं का साक्षात्कार, सामाजिक और साम्प्रदायिक रूढ़ियों तथा विडंबनाओं का देश और टकराहट आदि ऐसी परिवेशगत सच्चाइयाँ है, जो आज भी व्याप्त है और जिनका हम साक्षात्कार करते रहते है।[114]

वास्तव में 'तुलसी' इन वास्तविकताओं की प्रक्रियाओं से गुजरते हुए भी उनसे पराभूत नहीं होते। लेखक आज की संघर्ष एवं तनावपूर्ण मानसिक और परिवेशगत सच्चाइयों का निर्वाह करता हुआ भी 'तुलसी' के व्यक्तित्व की मूल ऊर्जा की उपेक्षा नहीं करता, कर भी नहीं सकता। इसलिए तुलसी काम के दंश से पीड़ित तो होते हैं किन्तु 'राम' तक पहुँचने के लिए उनका विवेक बराबर संघर्ष करता रहता है, वह लक्ष्य को पहचानता है। इस लिए काम की प्रक्रिया से पीड़ित होकर भी 'तुलसी' निरन्तर 'राम' की ओर बढ़ते रहते हैं किन्तु यह बढ़ना सीधा बढ़ना नहीं है गिर–गिर कर बढ़ना है और काम के शिकंजे में बार–बार बुरी तरह कसकर, छटपटाकर, उससे थोड़ा सा मुक्त हो जाना एक ओर आज के सही मनुष्य की आन्तरिक वास्तविकता को रूपापित करता है तो दूसरी ओर 'तुलसी' की अदम्य शक्ति को मूर्त करता है। नागरजी इस संतुलन के कारण दोनों प्रकार के अतिवादी खेमों के आक्षेपों के शिकार हो रहे है। फैंशन परस्त आधुनिकता का हिमायती कहता है कि 'मानस का हंस' प्रासंगिक इसलिए नहीं बन सका है क्योंकि इसमें निरन्तर 'तुलसी' का उठना दिखाया गया है।[115]

'तुलसी' के महत् व्यक्तित्व का पुजारी कहता है कि 'नागर'जी ने बेकार में 'तुलसी' को काम के शिकंजे में इतना कस दिया है। यह ऐतिहासिक सत्य नहीं और इससे 'तुलसी' का व्यक्तित्व छोटा हो जाता है। पहले प्रकार के लोगों के उत्तर में कहना यह है कि टूटना तो आज का सत्य है लेकिन वह जीवन का लक्ष्य भी है या काम्य भी है यह नहीं कहा जा सकता। टूटना आज के आदमी की मजबूरी है किन्तु उसका हृदय इस टूटने से उत्पन्न रिक्तता को भरना भी चाहता है। टूटना जितना प्रासंगिक है, रिक्तता को भरने की इच्छा भी उतनी ही प्रासंगिक है। तुलसी प्रासंगिकता के दोनों तकाजों को पूरा करते हैं। दूसरे वर्ग के आक्षेप के दो पहलू हो सकते है– एक तो कि– 'तुलसी' को काम के चंगुल में पड़ा हुआ दिखाना ही नहीं चाहिए, यह ऐतिहासिक सच्चाई के विरुद्ध है। दूसरे यह कि थोड़ा बहुत दिखाना चाहिए था, इतना नहीं। तुलसी के संबंध में प्रसिद्ध किंवदन्तियों तथा उनकी कुछ कविताओं से इस बात के संकेत मिलते है कि 'तुलसी' कभी काम के शिकार हुए थे किन्तु, वे किसी वेश्या के चक्कर में पड़े थे, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। वैसे काम मनुष्य की बहुत बुनियादी वृत्ति है। अनेक साधु सन्यासी इसकी मार खाकर ही सन्यास और ईश्वर की ओर भागे हैं। तुलसी भी बचपन में ही तो साधु हुए नहीं थे, वे निश्चित ही अपनी युवास्था में काम की गहरी संवेदना से गुजरे होंगें। इसलिए 'तुलसी' को काम पीड़ित दिखाना न तो मनुष्य की प्रकृति के प्रतिकूल है, न ही 'तुलसी' के बारे

में प्राप्त ऐतिहासिक संकेतों के। 'तुलसी' के भीतर 'काम' और 'राम' के बहुत ही मार्मिक संघर्ष को दिखाकर 'काम' और 'राम' दोनों की संवेदना को बड़ा जटिल और संक्रान्त रूप दिया गया है किन्तु यह संघर्ष 'रत्नावली' मात्र के संदर्भ में दिखाया जा सकता था, वेश्या का सन्दर्भ ले आना इतिहास और रचना दोनों दृष्टियों से अपरिहार्य नहीं कहा जा सकता।[116]

नागरजी ने 'तुलसी' के जीवन के मार्मिक प्रसंगों को लेकर 'तुलसी' की विविध संवेदनाओं का अंकन किया है। इस प्रसंग में दो बातें दृष्टव्य है–

1. लेखक ने मार्मिक प्रसंगो की उद्‌भावना और संवेदनाओं के चरित्र में 'तुलसी' के काव्य का अधिकाधिक सहारा लिया है। लेखक की 'तुलसी' काव्य की मर्मज्ञता ने उसका बड़ा साथ दिया है। वह तुलसी की कविताओं के भीतर से प्रसंगो और 'तुलसी' की मानसिकता की रचना करता है और इस तरह पाठक के सामने वह मनः स्थितियों और प्रसंग मूर्त होते चलते है जिनमें तुलसी ने अपने काव्यों की रचना की होगी।

2. नागरजी ने 'तुलसी' के जीवन तथा चरित्र के साथ जुडी हुई अलौकिक घटनाओं को लौकिक और मानवीय रूप देने का प्रयास किया है। मरणासन्न रत्नावली के पास 'तुलसी' का लौटकर आना बड़ा ही मार्मिक प्रसंग है।

इस उपन्यास के वस्तु विधान के संबंध में श्री रामदरश मिश्र का कथन सर्वथा उपयुक्त है– '''मानस का हंस' 'तुलसी' के जीवन की कथा कहने का एक नया ढंग निकालता है जो 'तुलसी' के चरित्र को देखते हुए उचित ही है। 'तुलसी' जैसे भक्तों को अपने जीवन की कथा कहने में क्या रस हो सकता था ? लेकिन उनकी जीवनी को अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए उन्हीं के मुख से उनकी कथा कहलवानी भी थी। इसके लिए लेखक ने 'बेनीदास' (जो कि ऐतिहासिक पात्र है) का सहारा लिया है। अपने भक्त बेनीदास के आग्रह से रह–रह कर 'तुलसी' अपने जीवन की कथा सुनाते चलते है। इसमें आवश्यकतानुसार उनके बाल सखा 'राजा भगत' भी योग देते रहते है। 'राजा भगत' की अवतारणा भी इसी उद्‌देश्य से हुई है किन्तु इस सारे कौशल के बावजूद कथा सानुक्रम ही आई है। 'तुलसी' के जीवन में घटित सारी घटनाएँ इतिहास पद्धति से क्रम–क्रम से ही ली गई।''[117]

इस उपन्यास के कथानक पर यह आरोप लगाया जाता है कि ''सत्रहवाँ और कुछ हद तक अठारहवाँ अध्याय 'अजागलस्तन' की भाँति हो गए हैं।'' क्या यह आरोप उचित है। जहाँ तक सत्रहवें अध्याय का संबंध है उसमें उपन्यासकार ने देश की राजनैतिक और आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालने की चेष्टा की हैं। इतिहास कार जिन मुगलों के भारत को धन धान्य से पूर्ण मानते है, उनके सम्मुख उस समय के समाज का दैन्य और विषण्णता का चित्र उपस्थित करने की चेष्टा की गई है। उपन्यासकार तुलसी के मुख से तत्कालीन आर्थिक स्थिति का लेखा–जोखा देकर उसे अत्यधिक विश्वस्त बना देना चाहता है। तुलसी संत बेनीमाधव को सुनाते हुए कहते है– ''कुरुक्षेत्र में उन दिनों बड़ा भीषण अकाल पड़ रहा था दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि सभी

जगह प्रजा त्राहि–त्राहि कर रही थी। खेती विहीन उजड़ा भूखण्ड, रूखी काया फीके कष्ट और चेहरों वाली कंकालवत कायायें में, इधर–उधर डोलती थी। इन्हें देखकर लोग घेरते– "बाबा भूखें है, बाबा रोटी, रोटी।"

अकाल के क्षेत्र में हमने बड़े विषम दृश्य देखे। एक जगह चार–चार मुट्ठी चावल के लिए लोग बाग अपनी जवान स्त्रियाँ, लड़के–लड़कियाँ तक बेच रहे थे। करुण कराहे सुन–सुन कर मुझे बस राम ही राम याद आते थे। मनसे श्रृंगार रस सूख गया था। सर्वत्र करुणा ही करुणा देखकर ऐसा लगता था कि मानो पृथ्वी पर आनन्द का अस्तित्व नहीं है। वह केवल एक शाप मात्र है जिसे पेट में भरे लोग आपस में ही कहसुन लेते हैं।"[118]

"खेती न किसान को, भिखारी कौन भीख, बलि
वनिक कौ बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग, सीद्यमान, सोचबस,
कहैं एक एकन सौ कहाँ जाइ का करी।
वेद हू पुरान कही, लोकहू, विलोकयत
साकरे सबै पैराम रावरे कृपारी।
दारिद–दशानन दबाई दुनी दीन बन्धु,
दुरित दहन देखि 'तुलसी' हहाकरी।
ऊँचे–नीचे करम, धरम अधरम करि,
पेट को ही पचन बेचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम धनश्याम ही ते,
आगे बड़वागिते बड़ी है आगि पेट की।"[119]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज दुर्भिक्ष और महामारी जैसे रोगों से ग्रस्त था। तुलसी ने ऐसी कारुणिक स्थिति का उपर्युक्त दो पदों में ही यथा तथ्य वर्णन किया है। यही नहीं, प्रस्तुत अध्याय में तुलसी एवं नन्ददास की भेंट का भी चित्रण हुआ है। नन्ददास अत्यन्त प्रेमी जीव थे। उनके काव्य तथा जीवन चरित्रों से यह सिद्ध है। उपन्यासकार इस भाव के चित्रण में पूर्ण सफल रहा है। उत्कृष्ट प्रेमी ही श्रेष्ठ भक्त बन सकता है। तीसरी बात यह भी स्पष्ट होती है कि प्रस्तुत अध्याय में तुलसी को ज्योतिषाचार्य सिद्ध करके लेखक ने तथ्य पुष्टि की है। तुलसी एवं अकबर संबंधों पर भी प्रकाश पड़ता है। अठारहवाँ अध्याय नन्ददास की उत्कट प्रेम भावना का उल्लेख करता है। जो किसी भाँति असमीचीन नहीं है। यह अध्याय अपेक्षाकृत लघु भी है और तुलसी दास सत्रहवें अध्याय के प्रारंभ में ही स्पष्ट करते हैं कि "जब जीवन का मूल्यांकन करने बैठा हूँ तो उसे भी सुना दूँगा। जीवन माला की प्रत्येक मंजिल पर मुझे श्रीराम चरणानुराग मिला। अतः कथा मेरी न होकर भक्ति धारा के प्रवाह की ही है।[120] उत्तरोत्तर भक्त तुलसी का व्यक्तित्व निखार को प्राप्त है और इसे चित्रित करना ही लेखक को अपेक्षित है। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त

दोनों अध्यायों का महत्व और भी बढ़ जाता है। तुलसी की काव्य रचना भक्ति भाव से परिपूरित हो समाज के उस अंग के लिए विश्वास एवं आशा का सन्देश संजोए है जो आर्थिक और समाजिक रूप से दीन–हीन था। ऐसे दीन–हीन समाज का यदि चित्रण न किया जाता तो सम्भवतःप्रस्तुत उपन्यास अपना प्रभाव कम कर जाता। अतः सभी दृष्टियों से दोनों अध्याय 'अजागल स्तन' न होकर 'दुग्ध स्तन' ही हैं।

तुलसी, नन्ददास के साथ सोरो चले तो गए पर वहाँ मन न लगा। तुलसी राम भक्त और नन्ददास कृष्ण भक्त। चामत्कारिक रूप से बाबा हनुमान, तुलसी को स्वप्न में आदेश देते हैं कि उन्हें अपनी जन्म भूमि राजापुर में जाकर रहना चाहिए। राजापुर पहुँच कर तुलसी को फिर अतीत के तार सुलझाने का अवसर मिल जाता है। प्रस्तुत प्रसंग द्वारा लेखक विक्रमपुर नामक गाँव का नाम राजापुर कैसे रखा गया, को स्पष्ट करता है। वर्षों पश्चात् शेष सनातन से शिक्षा ग्रहण कर पूरे पंडित होकर तुलसी गाँव लौटते है। राजा भगत तुलसी की कथावार्ता का प्रबंध करता है। तुलसी नए बस रहे गाँव का नाम राजापुर रख देते हैं। राजा भगत ही तुलसी का विवाह पाठक जी की पुत्री रत्नावली से करवा देते हैं। तुलसी विवाह नहीं करना चाहते थे। तुलसी बार–बार अपने मन को दृढ़ करने का प्रयत्न करते हैं– "इसी बात की तो परीक्षा लेना चाहता हूँ। राम कृपा से मैं उस आकर्षण से मुक्त रहूँगा जिससे सारा संसार बँधा है।"[121] परन्तु तुलसी का भविष्य तो कुछ और था। उनका विवाह हो ही गया।

तुलसी अतीत से फिर वर्तमान में लौट आते हैं। बाबा को गिल्टियों में अन्दर से टीस उठती है और वे राम भक्ति में लीन होकर इस पीड़ा को भूलने का प्रयास करते हैं। जब सम्भव दृष्टिगोचर नहीं होता तो पीड़ा को पराजित करने के लिए भी आत्म बल जागा– 'हे पवन तनय' तुम भले ही पीड़ा से मुक्ति न दो, यह तो बता दो कि किस पाप–शाप के कारण यह दुख पा रहा हूँ।

'सेवा जोग तुलसी, कबहूँ कहाँ चूक परे,
साहेब सुभाव कपि साहिबी सँभारिए।'

तुलसी ने सोने का प्रयत्न किया तो कल्पना में रत्ना सजीव हो उठती है। लेखक यहाँ पर तुलसी और रत्ना के आपसी संबंध का चित्रण बडी मार्मिकता से करता है। तुलसी और रत्ना जीवन में केवल चार बार मिलते हैं। परन्तु प्रथम मिलन तो तुलसी के मन में केवल प्रेमानुभूति जाग्रत करने का उपक्रम है। वह तुलसी के अनुसार– 'देखत नैनन की छवि' मात्र है। ऐसा ही तुलसी ने अपने परम आराध्य जनकजा का आरसी– दपर्ण के माध्यम से प्रथम मिलन दिखलाया है।

बाबा रत्ना को अन्त समय तक भी अपने मन से विलग नहीं कर सके। वह बाबा की शान्ति से लहराती मन–गंगा को एक मछली के समान बार–बार चंचल बनाने लगती है। "मैंने कहीं न कहीं उनके प्रति अन्याय अवश्य किया है। उसके अन्त काल में भले ही मैंने उसको पूर्ण

सन्तोष देने की चेष्टा की परन्तु क्या वही मेरे कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है ? रत्ना की कठिन तपस्या की कसक मिट जाती यदि उसके अन्त काल के कुछ अधिक पहले पहुँच जाता। उस समय वह भी हरी–भरी रह लेती तो क्या मेरा कुछ बिगड़ जाता ? पिछले माघ के महीने में दो बार रत्नावली को पास बुला कर रखने की प्रेरणा हुई थी। पर दोनों बार माया प्रबन्ध मानकर मैंने उसे झुटला दिया। मैंने यह क्यों किया ? मै रघुवर के दर्शन करने के लिए कराह रहा हूँ, वह बेचारी मेरे लिए वैसी ही सिसक रही थी। उन सिसकियों को मैंने अनसुना क्यों कर दिया ? राम को मानो मन के मर्म में वहाँ देखने को चूक क्यों गया ?''[122]

बाबा जीवन भर सन्यासी रहे परन्तु जिसकी एक बार बाँह पकड़ी थी, उसको इस प्रकार तिलांजलि देने से बाबा का मन व्यथित और आत्मा में पीड़ा दिखलाई पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाबा का एक–एक शब्द रत्ना से क्षमा याचना कर रहा हो। इस कथन में उनके मर्म का रूदन और आत्मा की कचोट अनुभव होती है। वह इस आत्म पीड़ा के अनुभव के साथ ही रत्ना के साथ अपना हिसाब चुकता कर लेना चाहते हैं।– ''आओ रत्ना आज हम तुम्हारा हिसाब–किताब चुकता कर ही डालें। रत्नावली की शक्ति जब तक पूर्ण रूपेण राम शक्ति न बनेगी तब तक वह मुझे छुटकारा न देगी।''[123] और लगता है कि बाबा के प्राण इस चुकते के लिए ही उनकी देह में उटके हुए थे। परन्तु रत्ना उनका पीछा नहीं छोड़ती। वे तो त्रियाहठ से गठजोड़ के साथ जानकी के चरणों में पहुँच जाना चाहती हैं। बाबा की स्मृति में फिर अपने गृहस्थ के अनेक दृश्य–दृश्य पट पर आने लगे।

रत्ना और तुलसी की भेंट एक बार चित्रकूट में हुई किन्तु वहाँ भी रत्ना तुलसी के चरणों में स्थान न पा सकी। वहीं राजा भगत तारापति के मरने का कुसमाचार तुलसी को सुनाते हैं। परन्तु फिर भी निःसहाय रत्ना को तुलसी न अपना सके। बाबा रत्नावली से कह रहे हैं– ''तुम्हारा आजीवन उपकार मानूँगा रत्नावली! जो दिया है उसे अब मुझ से वापस न माँगों। आज से चन्दन, कपूर आदि झोली का स्वांग भी छोड़ता हूँ। जितना निसंग रह सकूँ उतना ही भला।''[124] कितना करुण दृश्य है। रत्ना तुलसी के चरणों को अपने शोक विह्वल हृदय से निःसृत आँसुओं से प्रच्छालित कर ही रही थी कि सहसा तुलसी ने रत्ना से छल किया और कहा कि ''मैं खड़े–खड़े थक गया हूँ, रत्नावली। मुझे बैठने दो।''[125] बैठने के बहाने तुलसी चित्रकूट से ऐसे भागे कि फिर रत्ना से काशी में ही मिले।

तुलसी और रत्ना से संबंधित सभी प्रसंग बड़े ही मार्मिक और करुण हैं। रत्ना के तुलसी के मिलन के माध्यम से उपन्यासकार ने तुलसी के नारी से संबंधित अनेक प्रश्नों के उत्तर दे जाता है। इन सभी स्थलों का अवलोकन कर पाषाण हृदय भी द्रवित हो जाता है। तुलसी आत्म चिन्तन में अतीत के अनेक धुंधले चित्रों पर से समय की धूल हटाते हैं। रत्ना से भाग कर वे ग्रामीण रामकली के अंक में आ गिरते हैं। जहां रामकली के चरित्र की दृढ़ता तुलसी को

आत्मविश्वास देती है। अब तुलसी को अपनी प्रत्येक पग ध्वनि में राम नाम की गूँज ही सुनाई देती है।

तुलसी को भाषा में 'रामचरित मानस' लिखने की प्रेरणा कैसे मिली ? इस प्रसंग को भी लेखक ने बड़ी चतुराई सें अंकित किया है। तुलसी कभी वर्तमान में झाँकते हैं तो कभी अतीत में। बार–बार अतीत में लौटकर स्वयं तुलसी बेनी माधव की जिज्ञासा शान्त करते हैं। प्रस्तुत प्रसंग के लिए भी ऐसा ही किया गया। तुलसी अतीत में लौट गए। वह मिथिला से काशी पहुँचते हैं। वहाँ से प्रयाग के बीच ही सीतामढ़ी पहुँच जाते हैं, जहाँ उन्हें भाषा मे रामायण लिखने की प्रेरणा मिलती है। "कल्पना सजीव हो उठी। वट के नीचे तापस वेष धारिणी जगज्जननी रामबल्लभ हथेली पर ठोढ़ी टेके हुए बालक लवकुश का धनुष चलाना देख रही हैं। महर्षि वाल्मीकि उन्हें लक्ष्य बतला रहे हैं।[126] सीता माँ स्वप्न में तुलसी को आशीर्वाद देती हैं। सीता माँ ओझल हुई तो कपीन्द्र का आकाश से पृथ्वी तक फैला वृहद् आकार दृष्टिगोचर होता है जो क्रमशः छोटा होता हुआ आदि कवि बाल्मीकि के रूप में स्पष्ट होता है। वे तुलसी को आज्ञा देते हैं। "भाषा में रामायण की रचना कर। इससे तेरा और लोक का कल्याण होगा।"

तुलसी नवीन स्फूर्ति और विश्वास लेकर प्रयाग पहुँचते हैं। वहाँ से अयोध्या। तुलसी ने अपने जीवन काल में अनेक तीर्थों के दर्शन किए। चित्रकूट, प्रयाग, काशी, अयोध्या जगन्नाथ पुरी, वारिपुर, दिगपुर, सीतामढ़ी आदि जैसे तीर्थों का 'तुलसी' ने अपने नेत्रों से अवलोकन किया ही होगा जैसा कि उनके काव्य से स्पष्ट है–

विटप महीप सुर सरित समीप सोहैं,
सीतावट पेखत पुनीत होत पातकी।
वारिपुर दिगपुर बीच विलसित भूमि,
अंकित जो जानकी चरन–जल जात की।"[127]

तुलसी ने 'रामचरितमानस' की रचना दोहे–चौपाइयों में की है। लेखक के अनुसार उन्हें यह प्रेरणा जायसी के 'पद्मावत' को सुनकर मिली। "दोहे–चौपाइयों में रची हुई वह दिव्य प्रेमकथा सूफी महात्मा के सुमधुर कण्ठ से सुनाई जाकर ऐसी मनोहर बन गई थी कि स्वयं तुलसी भी उस रस में बह गए और बड़ी देर तक सुनते रहे। वहाँ से लौटते हुए उनके मन में पहला विचार यही आया कि यदि 'रामायण' रचूँगा तो दोहे– चौपाइयों में ही।"[128] जानकी मंगल की रचना हो चुकी थी। इसलिए स्वयंवर मंडप से ही राम कथा के दृश्य उनके मन में उभर रहे थे। तुलसी निश्चय करते हैं कि "मुझे कथा तत्व मूल रूप से बाल्मीकि रचित 'रामायण' से ही ग्रहण करना चाहिए और अध्यात्म रामायण का प्रतीक तत्व भी इसमें जोड़ना चाहिए।[129]

डॉ0 राम विलास शर्मा के अनुसार–"तुम्हारे उपन्यास के अन्तर्जगत और बाह्य जगत परस्पर जुड़े हैं। 'अन्तर्जामिहुते बड बाहिर जामी है राम' वाली उक्ति यहाँ चरितार्थ होती है। तुलसी की भक्त और कवि वाली साधना उस युग के सामाजिक संघर्ष से जुड़ी हुई है। यह संघर्ष

मूलतः सामन्ती व्यवस्था का अन्तः संघर्ष है। तुलसी पर ढेले फेंकने वाले, उनके घर में आग लगाने वाले वैसे ही हिन्दू थे, जैसे गांधी को मारने वाला गोडसे। यह आन्तरिक संघर्ष कितना विकट है, यह तुम्हीं देख सकते हो। तुलसीदास से जो व्यवस्था टकराई थी, वह अभी चूर–चूर नहीं हुई, 'रामचरितमानस' से चली आती हुई उसी संघर्ष श्रृंखला की एक कड़ी है 'मानस का हंस'।''[130]

''तुमने तुलसीदास को जिन गलियों, मुहल्लों में घुमाया है। संतो, महंतों, फकीरों, कंगालों, रईसों के बीच उन्हें जिस रूप में देखा है। अकाल पीड़ितों एवं महामारी से ग्रस्त नागरिकों की सेवा करते, युवक दल संगठित करते, अखाड़े खुलवाते, लीला कराने के लिए ठठेरे अहीरों के चौधरियों से बतियाते, योजना बनाते दिखाया है, वह परम सत्य है। तुलसी काव्य के अलावा अन्य भाषाओं, विशेष रूप से मराठी काव्य से वह युग सत्य पुष्ट होता है।''[131]

नागरजी ने तुलसी चरित्र की मूल भावनाओं को बहुत ही कुशलता से आरोपित कर रक्षा की है। एक स्थान पर उनकी सर्वजन प्रियता के संबंध में कथन है– ''अयोध्या में एक नया स्वर आया है।''

क्या तुलसी का यह कथन सत्य है कि ''रामायण रचकर मेरी मुक्ति होगी'' वास्तविकता तो यही है कि तुलसी की जगत् प्रसिद्धि का कारण राम चरित्र ही है। इस रचना के कारण वे जन मानस के कंठहार बन गए। स्वयं तुलसी उसे गाकर धन्य हो उठे। उसे सुनकर गवाँर और पंडित समान भाव से रसास्वादन करने लगे। इससे अधिक तुलसी चाहे कवि के रूप मे, चाहे भक्त के रूप मे मोक्ष के अधिकारी नहीं हो सकते थे। तुलसी ने राम का लोक मंगलमय रूप ही देखा। नागरजी ने तुलसी काव्य मे प्रयुक्त सूक्तियों विश्वजनीन सत्यों को इस खूबी के साथ अपने उपन्यास मे निबद्ध किया है कि शैली अधिक गम्भीर और विचार गर्भित हो गई है। इन सूक्तियों के प्रयोग से जहां नागरजी का गद्य परिमार्जित हुआ है, वहाँ तुलसी का वैचारिक पक्ष भी अधिक स्पष्ट हुआ है। अतः दोनों ही दृष्टियों में इसकी महत्ता स्वीकार की जाएगी। माया भी मिल गयी और उसके साथ राम कीर्तन हो गया।[132]

तुलसी अपनी जीवन गाथा के मुख्य अंश सुना निवृत्त हो जाते हैं। उनका उद्देश्य पूरा हो जाता है। तुलसी बाबा बेनीमाधव से कहते हैं ''हमारी जीवनी शायद तुम्हें आस्था के संघर्ष की कथा बनकर प्रेरित करे।''[133] वस्तुतः तुलसी की भक्ति का यही स्वर उनके संपूर्ण साहित्य मे गुंजित है। मुख्यतः 'रामचरितमानस' की रचना इसी आधार पर हुई है।

तुलसी का स्वास्थ्य उनके अन्तिम काल मे और अधिक बिगड़ गया था। शरीर भर मे फुंसियाँ निकली हुई हैं। चार दिन से रात को नींद है न ही दिन को चैन तुलसी ने कवितावली मे इस आशय की कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं–

पॉव पीर, पेट पीर, बाहु पीर, मुँह पीर।
जर्जर सकल शरीर,पीर भई है।

लेखक ने, विनय पत्रिका, के अन्तिम पद की सहायता से तुलसी बाबा का अन्तिम संस्कार किया है। ''मूर्च्छित अवस्था मे तुलसीदास स्वप्न देख रहे थे। हाथ में अर्जी का लम्बा कागज लिए तुलसीदास 'रामजी' के महलों की ओर जा रहे हैं। पहले गणेश जी मिलते हैं, उन्हें प्रणाम करते हैं। फिर क्रमशः शिव–पार्वती, गंगा, जमुना, काशी, चित्रकूट आदि की झलकियाँ एक के बाद एक खुलती ही चली जाती हैं। भीतर की ड्योढ़ी पर खास दरबार के आगे हनुमान जी खड़े हैं। तुलसी उन्हें देखकर प्रसन्न होते हैं और अपनी अर्जी का कागज उनकी ओर बढ़ाते हुए कहते हैं–''इसे राम जी तक पहुँचा दीजिए।'' और श्रावण कृष्ण तीज, जिस दिन रत्नावली जी का देहावसान हुआ था, ठीक उसी दिन तुलसी बाबा भी 'विनय पत्रिका' का अन्तिम पद पूरा करते हैं। राम–लक्ष्मण–जानकी सभी तुलसी बाबा पर कृपालु हो जाते हैं। तुलसी अपनी अथक भक्ति का फल पा जाते हैं–

''विहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लह्यो है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की।
परी रघुनाथ हाथ, सही है।''

और यहाँ संत तुलसी बाबा का स्वर बुझ जाता है। कैलास कवि नाड़ी देखते हैं और तुलसी को धरती पर लेने का आग्रह करते हैं।

राम नाम जस वरनि कै, भयौ चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अब ही तुलसी सोन।।

एक वर्ष पूर्व रत्नावली के देहान्त के पूर्व प्रकृति में जो झंझावात था और तुलसी के हृदय में जो प्रचंड संघर्ष था, आज शान्त हो गया– प्रकृति रो रही थी, सबकी आँखें भी वैसे ही बरस रही थीं। तुलसी बाबा सदैव के लिए अपने आराध्य के चरणों में खों गए थे।

नागरजी ने अपने प्राक्कथन में जिस दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है, प्रस्तुत कृति में उस दृष्टिकोण का पूर्णरूप से पालन हुआ है। तुलसी का लोक धर्मी रूप तथा जनवादी दृष्टि कोण सजीव रूप में चित्रित हुए हैं। उपन्यास की विशेषता यह है कि उपन्यास की कड़ियाँ एक–दूसरे से ऐसे गुंथी हैं कि इनको अलग नहीं किया जा सकता।[134]

हाँ एक बात और नागरजी का इस उपन्यास में वर्णनों के प्रति मोह कुछ कम हुआ है। तुलसी जैसे मायामोह से छूटे नागरजी का उपन्यास साहित्य भी वर्णन मोह को त्यागने में समर्थ हो सका। अपूर्व संयोग है। अगर उपन्यासकार विस्तृत वर्णनों का मोह न त्यागता तो अवश्य ही उपन्यास के दोष पूर्ण बने रहने की संभावना बनी रहती।[135]

रोचकता उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता होती है। नागरजी ने प्रस्तुत उपन्यास में रोचकता की ओर विशेष ध्यान दिया है। एक बार उपन्यास हाथ आने पर केवल संपूर्ण पढ़ जाने पर ही छूटता है। सुधी आलोचकों ने ही नहीं, अपितु सामान्य पाठकों ने भी प्रस्तुत उपन्यास को

अत्यधिक पसंद किया है। इतना ही नहीं, पाठकों की प्रतिक्रियाएँ भी सद्भाव भरी रही हैं। यह उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता का द्योतक है।

अतः कहना न होगा कि 'मानस का हंस' उपन्यास कला, विचार गांभीर्य और भाषा आदि सभी दृष्टियों से नागरजी की एक सफल कृति है। वास्तविकता तो यह है कि नागरजी ने प्रस्तुत उपन्यास लिखकर बाबा का ग्रन्थावतार किया है।[136]

उपन्यास का केन्द्रीय कथांश तुलसी दास का जीवन वृत्त है। सम्पूर्ण कथा मैदानी नदी की तरह जिसमें से अनेक छोटी–बड़ी कथा रस–कुल्याएँ इधर–उधर फूट निकली हैं और तुलसी के जीवन वृन्त रूपी महासिन्धु में विलीन हो गयी हैं। इस विस्तृत कथा में अनेक उपन्यास सूत्र अन्तर्ग्रथित हैं, जिनके विकास में अनेक प्रासंगिक कथाओं एवं अन्तर्कथाओं का सन्निवेश हुआ है। आत्माराम, बाबा नरहरिदास, आचार्य शेषसनातन, मेघा भगत, राजा भगत, कवि कैलास नाथ, गंगाराम, रत्नावली, गंगेश्वर टोडरमल, बटेश्वर मिश्र आदि के कथावृत्त मूल कथा को गति प्रदान करते हुए एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। संत बेनीमाधव, रामू द्विवेदी, गणपति, गंगाराम, बकरीदी काका और राम जियावन के कथा सूत्र तुलसी के उत्तरार्द्ध जीवन से जुड़ते हैं और अन्त तक उससे सम्बद्ध रहते हैं। पार्वती अम्मा, पुत्तन महाराज, अयोध्या के महन्त, गेंदिया, राजकुँवरी चम्मो सहुवाइन, नन्ददास, सूरदास, पंडित दीन बन्धुपाठक, हिरदै अहीर, रामकली, अब्दुर्रहीम खान आदि इस उपन्यास के प्रासंगिक कथा–सूत्र हैं। ये लघु कथाएँ तुलसी के जीवन में उतार–चढ़ाव लाते हुए संघर्ष को जन्म देती हैं। नागरजी ने इन प्रसंगों को यथार्थ मिश्रित कल्पना की ताजगी एवं तथ्यों की प्रामाणिकता से भली प्रकार सम्पुष्ट किया है।

उपन्यास के कथा–संगठन में खूब नाटकीयता है। अतीतोन्मुख दृश्यावली नाटकीयता पूर्ण झटके के साथ वर्तमान से अतीत की ओर घूम जाती है– "उनकी दृष्टि किसी दूरागत दृश्य को देख रही थी। स्मृति लोक में नगाड़े बज रहे थे और अन्धकार क्रमशः उजाले में परिवर्तित होता चला जा रहा था। मनोदृष्टि में हिमाच्छादित कैलास पर्वत और मानसरोवर का परम पावन और सुहावना दृश्य झलका। नगाड़ो की ध्वनि मानों हर–हर कर रही थी।"[137]

'मानस का हंस' प्रश्नोत्तर–शैली में लिखा गया उपन्यास है। पूरी कथा पूर्व दीप्ति (फ्लैश बैक) में चलती है जिसका विकास संस्मरण और स्मृति चिन्तन के माध्यम से होता है। संस्मरण बकरीदी काका और राजा भगत के द्वारा एक–दो स्थलों पर ही तुलसी तथा उनकी भक्त मण्डली–बेनी माधव, रामू आदि की उपस्थिति में सुनाया गया है। यहाँ गोस्वामी तुलसी दास के स्वप्न–स्मृति–चिन्तन की प्रधानता है। स्मृति–चिन्तन के पूर्व नागरजी वातावरण तथा पात्र की मनः स्थिति को पहले से निर्मित कर देते हैं। ये स्मृति चिन्तन मुख्यतः रात्रि बेला में तुलसी के स्वप्न–जगत् में उभरते हैं। तुलसी दास से कथा सुनाने का आग्रह संत बेनीमाधव का है। वे जन्म से लेकर वर्तमान वृद्धावस्था तक तुलसी की जीवन कथा सुनना चाहते हैं। तुलसी दास जी की जीवन कथा लिखकर वे अमर हो जाना चाहते हैं। उपन्यास के कथाप्रवाह को बेनीमाधव दास

और रामू द्विवेदी बीच–बीच में व्याघात पहुँचाते हैं। प्रश्नोत्तोर शैली में रचित होने के कारण कथा–तन्तु टूटते–जुड़ते रहते हैं। अंशतः यह उपन्यास फिल्मीकरण को ध्यान में रखकर लिखा गया है।

नागरजी ने उपन्यास का प्रारम्भ रत्नावली की मृत्यु के साथ दिखाकर अपने वस्तु–संयोजन–कौशल का जो उपयोग किया है वह संवेदनशील पाठक को चमत्कृत कर देता है। वास्तव में रत्नावली तुलसी के साधनामय व्यक्तित्व के केन्द्र–बिन्दु में बैठी हुई है। वह तुलसी की 'काम' से लेकर 'राम' तक की सम्पूर्ण अन्तर्यात्रा में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उनके साथ–साथ रही है। इसीलिए उसके निधन के साथ पूर्व दीप्ति के माध्यम से तुलसी का जो जीवनवृन्त प्रस्तुत हुआ है, उसमें 'काम' और 'अध्यात्म' का संघर्ष चलता रहता है। तुलसी अध्यात्म के पथ पर बढ़ते तो हैं किन्तु, 'काम' उन्हें बार–बार अपनी ओर खीचता रहता है। कभी ऐसा लगता है कि काम के ही आध्यात्मीकरण की गुत्थी को सुलझाने में तुलसीदास पूरी तरह से उलझे हुए है। उपन्यास की कथा पूर्वदीप्ति को पाकर वर्तमान में प्रवेश करती है तब तक तुलसी का काम पूर्णतः अध्यात्म बन चुका होता है। उन्होंने अपने काम–लौह को राम रसायन से सोना बना लिया था। रत्नावली और तुलसी रूपी चक्की के दो पाटों के द्वन्द्व में उनकी लौकिक चेतना का गेहूँ पिसकर भक्ति रूपी मैदा बन गया था। तुलसी काँटों भरी जीवनराह छोंड़कर ठिकाने लग चुके थे। साधना के चरम बिन्दु पर पहुँचकर वे कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति की एकमेकता के साथ सर्वथा राममय बन जाते हैं। नागरजी ने तुलसी की साधनात्मक अनुभूतियों का जो वर्णन किया है वह अत्यन्त रोमांचक होने के साथ स्वयं रचनाकार के जीवनानुभव से जुड़ी हुई सी लगती है। निम्नांकित पंक्तियों से तुलसी की अध्यात्म–साधना की ऊचाइयों का सहज ही अनुमान किया जा सकता है–"उन्हें भाषित हो रहा था कि उनका मन मानो एक गुफा है, जिसके बीचों–बीच दिया जल रहा है। वह गुफा राम–नामी वाद्य–ध्वनियों से गूँज रही है, और वह गूँज बढ़ती ही जा रही हैं। फिर उन्हें लगा कि प्राण मानों उनके नाभिचक्र से नाचते हुए ऊपर उठ रहे है, पंचेन्द्रियाँ अजीब सन सनाहट से भर उठी हैं। सारे राग एक सम्मिलित नाद बनकर उन्हें अपने–आप में लपेटते ही चले जा रहे हैं, नाद चक्कर की तरह उनके मन के चारों ओर नाच रहा है। दीप–शिखा नाद के बवण्डर को नागिन की जीभ बनकर छू लेती है। जैसे ही उसका स्पर्श होता है वैसे ही नादमयी काया आह्लाद की विवश गुद गुदी, कौतूहल और भाव की सनसनाहट से भर उठती है। मन–गुफा के कण–कण से ऐसा रस झरने लगता है कि वह ऊभचूभ हो जाते है।"[138]

'मानस का हंस' के समस्त पात्र मानवीय धरातल पर पूरी यथार्थता के साथ चित्रित हैं। लेखक ने उन्हें उनके परिवेश से भली–भाँति जोड़ा है। सभी पात्र अपना–अपना निश्चित व्यक्तित्व रखते हैं। वस्तुतः नागरजी के पास बहुरंगी पात्रों का इतना बड़ा स्टाक है कि कहीं भी पुनरावृत्ति की गुंजायश नहीं दिखायी पड़ती। कृत्रिमता और चमत्कार–प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी नहीं है। सभी पात्र अपनी–अपनी भूमिकाओं में अत्यन्त सटीक हैं। 'मानस का हंस' में सचमुच ऐतिहासिक एवं

काल्पनिक नर–नारी पात्रों की जीवंत अनुकृतियाँ हैं। ये पात्र निम्न सामाजिक स्तर से लेकर श्रेष्ठ अध्यात्म–जगत् तक फैले हुए हैं। ये अपने व्यक्तित्व के अनुरूप बहिरंग एवं अन्तरंग दोनों ही दृष्टियों से पाठक के मनोजगत् पर अपना अक्स डालते हैं।

उपन्यास के समस्त पात्रों में सर्वाधिक जीवंत भूमिका गोस्वामी तुलसीदास और रत्नावली की है। तुलसी के सहपाठी पंडित बटेश्वर मिश्र काशी के महान तान्त्रिक हैं। भूत–विद्या के साधक पंडित बटेश्वर प्रकृति से निन्दक और ईर्ष्यालु हैं। वह तुलसी के विरुद्ध अनेक बार षड्यन्त्र रचते हैं।

उपन्यास में तुलसीदास, रत्नावली, पंडित आत्माराम, बाबा नरहरिदास, आचार्य शेष सनातन, पंडित गंगाराम, बकरीदी काका, संत बेनीमाधव, टोडरमल, नन्ददास, सूरदास, मेघा भगत, दीन बन्धु पाठक, राजा भगत आदि ऐतिहासिक पात्र हैं। शेष काल्पनिक पात्र अपनी कुरूपता–सुरूपता के साथ चित्रित हैं। सम्पूर्ण कथा में उनका सामूहिक महत्व है।

'मानस का हंस' की दूसरी मार्मिक एवं करुण प्रस्तुति पार्वती अम्मा है। पार्वती अम्मा प्रेम, करुणा, वात्सल्य, दया, ममता की सजीव मूर्ति है।

नागरजी ने 'रामचरित मानस' के कुछ पात्रों को इस उपन्यास में प्रतीक–रूप में प्रस्तुत किया है। 'मानस' की विश्व मोहिनी को मोहिनी–रूप में प्रस्तुत किया गया है। आदिम जाति की युवती रामकली को शबरी बना दिया है। केवटों के चौधरी रामा निषादराज हैं। मंगल, रामू, लठैत अहीर, केवट, भुइहार, तुलसी की वानरी सेना आदि सब मिलकर राम की वानरी सेना की प्रतीति कराते हैं– "कोतवाली पर सारे शरीर में सेंदुर लगाये लाल–लंगोटे धारी अहिर युवा वानर टूट पड़े थे। हरम में ऐसा हाय–तोबा मचा कि बेगम बांदियाँ बेहोश हो गयीं। अफीम की पिनक में गाना सुनते और झूमते हुए कोतवाल साहब की दाढ़ी नुची।"[139] 'मानस का हंस' में शूर्पणखा गेंदिया के रूप में मौजूद है और 'तेज कृसानु रोस महिसेसा' के उदाहरण में रविदत्त तान्त्रिक हैं। वे कुतर्की, वंचक, धींग, धरम ध्वज, धंधक धोरी, मलिन, खल, मिलने मात्र से दुःख देने वाले, उजड़ने पर हर्ष और बसने पर विषाद अनुभव करने वाले वज्र के समान वचन बोलने वाले, 'करतब बायस बेस मराला' बगैरह भी मौजूद हैं जिनकी विशद वन्दना तुलसी ने 'रामचरित मानस' के प्रारम्भ में की है और जिनके बिना कलियुग–कलियुग नहीं हो सकता।"[140]

उपन्यास का देशकाल–वातावरण अत्यन्त सजीव है। युगीन भारतीय समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मध्य कालीन जीवन की धर्मान्धता, शैव–वैष्णव संघर्ष, जाति–पांतिगत भेद–भाव, अनाचार–दुराचार और नारी–व्यापार जैसी विकृतियों को उद्घाटित किया गया है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही 16वीं शताब्दी की राजनीतिक अस्थिरता का संकेत मिलता है। तुलसीदास के जीवन से सम्बद्ध अयोध्या, काशी और चित्रकूट नगरों का वर्णन वहाँ के वातावरण को रूपायित करता है। रात की विजनता में काशी की गलियों का वातावरण निम्नांकित पंक्तियों में कितना जीवंत हो उठा है–"अंधेरी सूनी गलियाँ पीछे छूटती

जाती हैं। शीत के मारे कुत्ते भी इधर–उधर दुबके हुए बैठे हैं, केवल आहट पाकर जहाँ–तहाँ भौं–भौं कर उठते हैं। गलियों में यत्र–तत्र बैठे हुए साँड़ भी तुलसी के चलने की आहट पाकर अथवा शीत की प्रतिक्रियावश अपनी साँसों की फुफकारें–सी छोड़ते हुए मिल जाते हैं। सकरी गलियों में बन्द घरों की दीवारें मानो साँय–साँय बोल रही हैं।''[141] प्रसंगानुसार दोहे–चौपाइयों के प्रयोग ने वातावरण को भक्तिमय बनाने का काम किया है।

''मानस का हंस' की संवाद–योजना न केवल कथ्य को सम्प्रेषित करती है वरन् पात्रों के अन्तरंग चरित्र को अनावृत्त करने में पूर्णतः सक्षम है। इस कृति के संवाद पात्र और परिस्थिति के अनुकूल हैं। इसमें स्वाभाविकता, सरलता, संक्षिप्तता, नाटकीयता आदि गुणों का भी सन्निवेश हुआ है।[142]

'मानस का हंस' की भाषा कथा, घटना, परिवेश, पात्र सभी को जीवंतता प्रदान करने में सक्षम है। वह पात्र और भाव के अनुरूप अपना स्वरूप बदलती रहती है। अवध–क्षेत्र की पृष्ठ भूमि पर रचित होने के कारण इस कृति में अवधी भाषा का निखरा हुआ रूप दिखाई पड़ता है।

''अस्तु, 'मानस का हंस' में नागरजी की औपन्यासिक चेतना अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई पड़ती है। मानवतावाद का जो बीज, उन्होंने अपने सामाजिक उपन्यासों के माध्यम से यथार्थ की भूमि में बोया था वही ऐतिहासिक उपन्यासों में पल्लवित और 'एकदा नैमिषारण्ये' के एकात्मवादी चिन्तन से पुष्ट होकर 'मानस का हंस' में भावना के धरातल पर फलित हुआ है।''[143]

सात घूंघट वाला मुखड़ा

उपन्यास का प्रतिपाद्य विषय अठारहवीं शती के अंग्रेजों और मुगलों का संघर्ष हैं। दिल्ली का मुगल सम्राट शाहआलम वृद्ध और अशक्त था। अंग्रेजों और नवाब मीर कासिम एवं शुजाउद्दौला के मध्य संघर्ष चल रहा था। मीरकासिम की ओर से लड़ने वाले एक फ्रांसीसी सैनिक वाल्टर रेनहार्ड ने अंग्रेजों को गहरी पराजय दी और पटना में एक सौ अड़तालीस सैनिक अफसरों की हत्या कर दी। यही वाल्टर रेनहार्ड आगे चलकर बादशाह को खुश करके सरधना जांगीर का मालिक बना और नवाब समरू के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उपन्यास का प्रारम्भ बशीर खाँ और उसकी प्रेमिका दिलाराम उर्फ मुन्नी के प्रसंग से होता है। मुन्नी बशीर खाँ को अपना सर्वस्व अर्पित कर चुकी हैं। फिर भी, बशीर खाँ उसे नवाब समरू के हाथों दस हजार अशर्फियों के बदले बेच देता है। क्योंकि वह पेशे से व्यापारी है। बशीर खाँ पूरे उपन्यास की गति विधियों का सूत्र–संचालक है। वह शाही राजनीति के हर पहलू पर दखल देता है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही बशीर खाँ उपन्यास के कथ्य को स्पष्ट करता है– ''याद रखो दिलाराम कि सियासत भी पेशेवर रक्कासा होती है। उसके पास दिल नहीं होता और कोई हुस्न की मलिका ऐसी बेदिल सियासत को अपनी चेरी बनाये वगैर तख्तोताज की मलिका बन ही नहीं सकती।''[144] दिलाराम की महत्वाकांक्षा ने शाही महल में कदम रखते ही उसे राजनीति के दलदल में फँसा दिया। भूतपूर्व मुन्नी, भूतपूर्व दिलाराम और वर्तमान मैडम जुआना रेनहार्ड ने वृद्ध

नवाब समरू के शैथिल्य का लाभ उठाकर कूट नीतिक खेल प्रारम्भ कर दिया। एक तरफ उसने नवाब समरू को रिझाकर उससे 'मलिका–ए–हिन्द' पद प्राप्त करने का वचन लिया और दूसरी तरफ टॉमस को भी अपने प्रेम के वशीभूत कर मलिका–ए–हिन्द पद के हेतु वचन प्राप्त कर लिया। वह टॉमस से कहती है– "वह सुकून, जिसे हम तुम मिल कर पाना चाहते हैं टॉमस, तब तक नहीं मिल सकता जब तक कि यह समरू जिन्दा है और उसका जीना तब तक हमारे लिए अजहद जरूरी है। और उसे हमारे हाथ में आ जाने के लिए अब यह जरूरी है कि हम तख्तो–हिन्दोस्तान की हिफाजत में लगें। मुगलों के लिए वह अब महज जुआरी का आखिरी दॉव है। ..... मैं तुम्हें हिन्दुस्तान का शहंशाह बनाकर एक दिन अपने इश्क का सबूत दूँगी। तुम भी वादा करो जानेमन, कि मुझे 'मलिका–ए–हिन्द' बनाओगे वादा करो।"[145] टॉमस और जुआना के हृदय में पल रही सत्ता–लोलुपता अब तक मृग मरीचिका ही बनी रही। जुआना बेगम ने सैन्य–संचालन अपने हाथों में ले लिया। एक बार इन दोनों के षड्यन्त्र की भनक नवाब समरू को मिली। वह क्रोधित हुए किन्तु जुआना के अप्रतिम सौन्दर्य से अभिभूत उनका क्रोध क्षण भर में शान्त हो गया। समरू अपनी बड़ी बेगम साहिबा के पुत्र ज़फर खाँ को हिन्दुस्तान के तख्तोताज का मालिक बनाना चाहता है, किन्तु जुआना हर सम्भव प्रयत्न करके नवाब की आकांक्षाओं पर पानी फेरना चाहती है। बेगम जुआना ने अपनी रणनीति और कूटनीति के बल पर आगरे पर अपना आधिपत्य स्थापित कर मराठों को खदेड़ दिया। उन दिनों वह जोधाबाई के महल में ही रहती थी। एक रात उसका प्रेमी बशीर खाँ उससे मिलने के लिए आया। मिलने की इच्छा न होते हुए भी वह उससे मिली। बशीर खाँ ने एक बहुमूल्य क्रास उसे भेंट स्वरूप दिया। उसने अपने एक चेला लवसूल को उसके आश्रय में छोड़ दिया है। लवसूल एक सुन्दर चतुर नव युवक है। ऐतिहासिक ग्रन्थों में इसी लवसूल का नाम 'लीवायस' मिलता है। लवसूल शहर में पूर्ण अमन कायम करने के बहाने जुआना की दृष्टि में स्वयं को विश्वास पात्र सिद्ध करता है। उसने अपने चातुर्य और नीति–नैपुण्य के बलपर चौधरी खलीफा कालेखाँ को अपने प्रभाव में करके फुल हट्टी के तोताराम और माली चिमणाजी को परस्पर लड़ा दिया। चिमणाजी कंजरों के हाथ मारा गया। तोताराम अपनी रखैल बताशो और कई अन्य स्त्रियों के साथ बन्दी बना लिया जाता है। तोताराम को उसी की दुकान के सामने आधा शरीर जमीन में गड़वाकर कुत्तों से नोचे जाने के लिए छोड़ दिया गया।

नवाब समरू की अट्ठावनवीं सालगिरह के शुभावसर पर दीवाने खाश दुल्हन–सा सजाया गया है। जिन्दगी में उदासीन नवाब समरू के लिए पूरा दिन अवसादमय ही बना रहा। बेगम जुआना समरू ने उनकी प्रिया मुश्तरी की आँखें फुड़वाकर उसे दीवाल में चुनवा दिया। प्रिया की मौत का गम सह न सकने के कारण उसी रात नवाब समरू ने आत्महत्या कर ली। समरू की मौत के पश्चात् बेगम जुआना पश्चाताप की अग्नि में जलने लगी। "बेगम गम की साक्षात् मूर्ति बन गयी थी। खाना–पीना तक छोड़ दिया था। जिस कमरे में समरू की मौत हुई, वह उसी में

आठोयाम पड़ी रहती थी। राज–काज तक छोड़ दिया था।''[146] उन्होंने टॉमस को समरू की जायदाद का प्रबन्धक बनाया और लवसूल उर्फ लब्बू खाँ 'नन्हें–मुन्हें' को सेना का नायब सिपह सालार नियुक्त किया। जुआना बेगम और लवसूल को नवाब की मृत्यु पर अपार दुःख हुआ। जुआना कहती है– ''हमारा और तुम्हारा सरपरस्त चला गया लवसूल। हम यतीम हो गये।''[147] धीरे–धीरे जुआना बेगम अपना दुःख विस्मृत कर पुनः दैनिक जीवन के कार्यों में रुचि लेने लगी। लवसूल और जुआना बेगम के पारस्परिक सहयोग से भारत में ईसाई साम्राज्य का श्री गणेश हुआ। ''धर्म का साम्राज्य जुआना बेगम के द्वारा ही स्थापित होगा और वह बेगम साहिबा के प्रमुख सहयोगी के रूप में सारे ईसाई–जगत् में विख्यात हो जायेगा।''[148] बड़ी बेगम के पुत्र जफर याब खाँ ने अपने को नवाब समरू का उत्तराधिकारी कहकर जुआना और लवसूल के विरुद्ध टॉमस तथा सैनिकों को बगावत के लिए भड़काने का असफल प्रयत्न किया। बेगम साहिबा टॉमस एवं लवसूल को तत्कालीन राजनीतिक स्थिति से अवगत कराती है। उसने गुलाम कादिर के विरुद्ध टॉमस को दिल्ली का मोरचा लेने के लिए भेजा। इधर जुआना लवसूल के प्रेम में बँध जाती है। वह हर पल उसके प्रेम में बेचैन रहने लगती है। एक दिन बेगम जुआना लवसूल, महबूबा और जोजफ के साथ दिल्ली पहुँचती है। उस समय टॉमस और कादिर खाँ के पास सरधना वापस आ जाता है। बशीर खाँ सारी स्थिति से अवगत होकर लवसूल को पुनः जुआना बेगम के पास भेजता है। बशीर खाँ के आदेशानुसार वह जुआना से आज्ञा पाकर वृन्दावन सहजादे जवाँ बख्त, इस्माइल बेग, महन्त हिम्मत बहादुर को लेकर एक विशाल सेना के साथ पहुँचता है। घमासान युद्ध होता है और बेगम जुआना को विजय श्री मिलती है। इस विजय का सारा श्रेय लवसूल को प्राप्त होता है। टॉमस प्रतिशोध की भावना में जलता हुआ जुआना बेगम एवं लवसूल के विरूद्ध बगावत कर देता है। वह सिन्धिया के एक सरदार अप्पा खण्डेराव से सहायता प्राप्त करता है। लवसूल टॉमस को पराजित कर ब्रिटिस राज्य की सीमा में खदेड़ देता है। किन्तु सेना निरंकुश हो चुकी थी और टॉमस को अपना समर्थन देने लगी थी। अतः लवसूल और बेगम जुआना समरू के लिए खतरा उत्पन्न हो गया। लवसूल ने बचने की आशा न देखकर आत्म हत्या कर ली। बेगम समरू ने भी आत्महत्या करने का प्रयास किया, किन्तु बचा ली गयी। इस पराजय का विश्लेषण करते हुए बशीर खाँ बेगम से कहता है– ''तुम्हारी रियासत अब महज तुम्हारा दिल भर ही है दिलाराम। जब उस पर तुम्हारा काबू नहीं तो यह समझ लो कि नवाब समरू की दी हुई रियासत के किसी आदमी पर भी अब तुम्हारा यह काबू नहीं रह गया। दिल के काबू में रहने ही से आलम काबू में रहता है।''[149] टॉमस पुनः आकर बेगम समरू के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है और सेना का समझा–बुझाकर वापस लौट जाता है। वह कहती है– ''प्रेम, विलास और राजनीतिक महत्वाकांक्षी दो अलग–अलग इच्छाएँ हैं, उन्हें एक में बाँधने का प्रयत्न निष्फल होना चाहिए था। जुआना अब एक की होकर रहेगी, एक ही से लौ लगायेगी और वह अब खुदा का बेटा जीजस क्राइस्ट ही होगा। जीजस!''[150]

बशीर खाँ का हर स्थान पर पहुँचना बेगम जुआना को उपदेश देना, टॉमस का खदेड़ा जाना, लवसूल का अचानक प्रवेश और आत्महत्या करना आदि घटनाएँ सत्य ही प्रतीत होती है। "कथानक की पूर्व योजना से जनित कृत्रिमता, संयोग तत्वों, असंगति आदि ने उद्देश्य ग्रहण में बाधा पहुँचाई है। यह प्रसादन का तत्व प्रयोजन पर हावी हो उठा है। कथानक की वासना वलित एवं आकर्षक प्रकृति ने प्रसादन तत्व को जितना उभारा है, सम्बन्धित प्रयोजन तत्व को उतना नहीं।"[151]

नाच्यौ बहुत गोपाल

'नाच्यौ बहुत गोपाल' नागर जी की वह रचना है, जो उन्हे फिर से प्रयोग धर्मो रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित करती है। अपनी रचनाओं में उन्होंने जहाँ पर भारतीय समाज की सांस्कृतिक और सामाजिक महत्त की प्रतिष्ठा की है, वहीं पर उसकी सड़ी गली परंपराओं को भी स्पष्ट किया है। इस रचना में मेहतर जाति और उसके आस–पास बनी हुई दीवार और खोलने आदर्श को प्रस्तुत करने का प्रयास नागर जी ने किया है। एक ब्राह्मण कन्या का पतन, परिवेश की प्रतिक्रिया से संभव हुआ। इसमें मेहतर जाति का यथार्थ–चित्रण अपनी सारी गन्दगियों और यथार्थ को लेकर आया है। एक समाज शास्त्रीय ढंग से नागर जी ने हरिजनों के जीवन के क्रिया कलापों, सवर्णे की मानसिकता के प्रति उनका लगाव आदि को प्रभावी रूप में चित्रित किया है। सवर्णे द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों के कारण यह उपन्यास हरिजनों की युग–युग से चली आती पीड़ा का दस्तावेज बन गया है।[152]

उपन्यास शर्मा जी तथा केन्द्रीय पात्र श्रीमती निर्गुनियों की भेंट वार्ता से प्रारम्भ होता हैं। शर्मा जी निर्गुनियों के समक्ष, उसके अतीत और वर्तमान जीवन को जानने का प्रस्ताव रखते हैं। उनका उद्देश्य मात्र इतना ही नहीं है कि वे मेहतर–समाज के अंतरंग जीवन, इतिहास उनकी धार्मिक–सांस्कृतिक मान्यताओं, रीति–रिवाज, रहन–सहन वेश–भूषा, सुख–दुख, सामाजिक–राजनीतिक जीवन आदि को वर्तमान सन्दर्भों से जोड़कर प्रस्तुत करें वरन् वे सवर्णों के अत्याचार, उनकी गिरती मानसिकता तथा वर्गगत भावना और घृणा–द्वेष को भी पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करने की दृष्टि से सचेष्ट दिखायी पड़ते हैं।

उपन्यास में निर्गुनियाँ के जीवन की विभिन्न छोटी–बड़ी घटनाओं के माध्यम से मेहतर–समाज के अतीत और वर्तमान की झाँकी प्रस्तुत की गयी है। निर्गुनियाँ का जन्म संवत् सोलह में एक ब्राह्मण–परिवार में हुआ था। उसके पिता एक ब्राह्मण महाजन पंडित बटुक प्रसाद के मुंशी थे। शैशवावस्था में ही मातृविहीन हो जाने के कारण निर्गुनियाँ का बाल्य जीवन नाना–नानी के आदर्शों, संस्कारों एवं धार्मिक विचारों के बीच व्यतीत हुआ। नाना–नानी की मृत्यु के पश्चात् उसके पिता ने उसे अपने मालिक पंडित बटुक प्रसाद के हाथों सुपुर्द कर दिया। परिवेशगत उच्छंखलता ने निर्गुनियाँ का रास्ता खराब कर दिया। उसका अनेक व्यक्तियों से यौन–संबंध स्थापित हो गया। बबुवा सरकार, खड्ग बहादुर, बसंत लाल, मसुरिया दीन आदि

उसके प्रेमी थे। अन्ततः उसका विवाह वृद्ध मसुरिया दीन के साथ करा दिया गया। मसुरिया दीन से यौन–तृप्ति न पाकर निर्गुनियाँ मोहना मेहतर के साथ भाग जाती है। मोहना उसे अपने मामू के गाँव ले जाता है, जहाँ निर्गुनियाँ को एक नया समाज और परिवेश मिलता है। भाई के दुर्व्यवहार से मानसिक, शारीरिक रूप से उसे कष्ट अवश्य होता है किन्तु वह स्वयं से ही लाचार है। अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में निर्गुनियाँ परिवेश की प्रतिकूलताओं को झेलने का निश्चय करती है घर की मालकिन भाई की डॉट–फटकार, लात–घूँसा भी खाकर चुप रहती है। वह मोहना के द्वारा भी प्रताड़ित और अपमानित होती है। मोहना कहता है– "अरी, छोड़ बाम्हनों की बात। अब तोतू मेहतर है। हुक्का भरना पड़ेगा।"[153] "जब मेहतर का हाथ पकड़ा है तो साथ भी निभा, बन मेहतरानी।"[154] निर्गुनियाँ को परिस्थितियों से समझौता करने को बाध्य होना पड़ता है। जीवन के इस सत्य के बीच कभी–कभी उसका ब्राह्मण–संस्कार जाग जाता है– "उसकी और मोहना की क्या बराबरी ? वह मेहतर, वह ब्राह्मणी। परम्परागत मान्यताओं के अनुसार वह नीचतम, वह ऊँचतम। पर अब तो पासा पलट चुका है। समाज के उच्चतम तीन वर्णों की पूजनीयाँ श्रीमती निर्गुनियाँ इस समाज में अपने भाग्य और अपने ही मन से एक हीन जन्मा, हीन कर्मा व्यक्ति की वेश्या है।"[155]

मोहना यंग क्रिश्चियन लीग के संचालक कप्तान जैक्सन की बैण्ड कम्पनी का प्रमुख कार्य कर्त्ता है। वह जैक्सन का विशेष कृपा पात्र और विश्वास पात्र भी है। जैक्सन के साथ एक माशूक उर्फ डेविड नामक लड़का रहता था जो वहीदा डाकू के पास से एक हीरे का हार लेकर भाग आया था। मोहना निर्गुनियाँ के साथ क्रिस्मस के अवसर पर जैक्सन के अड्डे पर पाँच–छह दिन के लिए जाता है। वहां उसके एक मात्र मित्र सिकन्दर मसीहा का क्लब घर था। क्रिस्मस के दिन क्लब घर में नाच–गाना होता है। उन्हीं दिनों वहीदा डाकू ने जैक्सन के अड्डे पर आक्रमण कर उसकी हत्या कर दी और एक कुख्यात डाकू के रूप में चर्चा का विषय बन जाता है। जैक्सन डेविड की हत्या के विषय में पूछताँछ करने के लिए आये हुए सब–इन्सपेक्टर बसन्त लाल से निर्गुनियाँ की भेंट होती है। बसन्त लाल एक दारोगा की हैसियत से निर्गुनियाँ को धमकाता है और प्रलोभन देकर उसे अपनी वासना–पूर्ति का साधन बनाना चाहता हैं। मोहना के डाकू बन जाने के पश्चात् निर्गुनियाँ मामू के घर से निष्कासित कर दी गयी। उसे मसीताराम जैसे दयालु–वृद्ध मेहतर की छत्रच्छाया मिलती है। चाचा मसीताराम और गुल्लन चाची से मिलकर निर्गुनियाँ और उसकी पुत्री शकुन्तला का एक परिवार बस गया। गरीब बस्ती में रहते तथा परिस्थितियों के थपेड़े खाते–संघर्ष करते हुए निर्गुनियाँ जीवन यापन रने के लिए एक संघर्ष शील व्यक्तित्व धारण करती है। निर्गुनियाँ दरोगा बसन्त लाल के अत्याचार से विवश होकर आर्य समाज मन्दिर में शरण लेती है किन्तु बसन्त लाल वहाँ भी जा पहुँचा। एक दिन मोहना ने विक्षुब्ध होकर बसन्त लाल की दुर्दशा की। अन्ततः बसन्त लाल अपने दुष्कृव्यों के कारण नौकरी से

निकाल दिया जाता है। मोहना का आदेश पाकर निर्गुनियाँ स्वामीवेद प्रकाशानन्द की सहायता से श्रद्धा नन्द शिशु पाठ शाला खोलती है।

निर्गुनियाँ के पड़ोस के नब्बू नामक एक युवक मोहना को पुलिस द्वारा पकड़वाकर ईनाम पाना चाहता है। किन्तु, मोहना द्वारा उसकी नाक काट ली जाती है। उन्हीं दिनों शहर में हिन्दू–मुस्लिम दंगा हुआ। हिन्दुओं पर अत्याचार देखकर मोहना क्रुद्ध हो जाता है। वह मुसलमान कोतवाल के घर डाका डालता है और मुसलमानों का दमन भी करता है। कुछ दिनों बाद मसीताराम की मृत्यु हो जाती है। निर्गुनियाँ साहस के साथ परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने का प्रयत्न करती है। अपना जीवन पूरी तरह से बदलने की तैयारी में निर्गुनियाँ मनुष्य से यंत्र बन गयी। उसे मेहतर का काम करने में तनिक भी संकोच नहीं होता। वह कहती है– "बनी तो अब पूरी बनकर दिखाला देगी। उसके मन में उस काम के प्रति घृणा नहीं, गन्ध नही, भार नहीं।"[156] बीच–बीच में मोहना निर्गुनियाँ से भेंट करता है। दुर्भाग्यवश एक दिन गुल्लन चाची के भेदियापन के कारण मोहना पुलिस मुठभेड़ में मारा गया। निर्गुनियाँ उस समय गर्भवती थी। छावनी के रिवरेण्ड फादर और डाक्टर अण्डरसन ने उसकी सहायता की। डाक्टर अण्डरसन निर्गुनियाँ तथा उसके बच्चे को अपने घर ले गये और अपने बीबी–बच्चों की भाँति पालन–पोषण करने लगे। वे निर्गुनियाँ की पुत्री शकुन्तला को अमरीका में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजते है। अण्डरसन निर्गुनियाँ के प्रति अपना प्रेम निवेदित करते हुए कहते है– "मैडम निर्गुनियाँ, क्रिश्चेन बन जाओं। मैं तुम्हारी बच्ची को विलायत भेजकर उसकी तकदीर बदल दूँगा।"[157] निर्गुनियाँ का पुत्र निर्गुण मोहन और पुत्री शकुन्तला उच्चशिक्षा प्राप्तकर नौकरी करते है। मूल कथा के साथ शर्मा और निर्गुनियाँ का इण्टरव्यू भी चलता रहता है। निर्गुनियाँ स्वयं भी अपने अतीत जीवन का लेखा–जोखा प्रस्तुत करती रहती है।

मास्टर बसन्त लाल को दारोगा बसन्त लाल बनाकर नागरजी ने निर्गुनियाँ के जीवन की कडुवाहट को अतीव तीक्ष्ण बनाकर उसके व्यक्तित्व को आकर्षक बना दिया है। कथा के उत्तरार्द्ध मे इमरजेन्सी–चिन्तन, साम्प्रदायिक दंगा, बाल्मीकि जन्मोत्सव आदि घटना–प्रसंगों से निर्गुनियाँ का जुड़ाव बड़े कौशल के साथ हुआ है। फिर भी, कहीं–कहीं कथा में गतिरोध उत्पन्न हो गया है। हिन्दू–मुस्लिम दंगें के प्रसंग में मोहना डाकू के द्वारा मुसलमानों पर अत्याचार करवाकर यह संकेत दिया गया है कि साम्प्रदायिक दंगों के पीछे असामाजिक तत्वों और स्वार्थी राजनीतिज्ञों का हाथ रहता है। मोहना के डकैती, हत्या एवं बलात्कार के कृत्य, दंगें में हिन्दुओं की तरफदारी, पाठशाला खोलवाना, गरीबों की आर्थिक सहायता करना और अन्ततः उसकी मृत्यु जैसी घटनाएँ फिल्मीं ढंग की है। मोहना से संबंधित घटनाएँ न उपन्यास में अपना महत्व बना पाती है और न ही पाठकीय सहानुभूति प्राप्त कर पाती हैं, जबकि मोहना प्रारम्भ में अत्यन्त सजीव चरित्र के रूप में उभरा हुआ दिखायी पड़ता है। रिशी देवी और वेदवती के प्रसंग निर्गुनियाँ के संघर्ष तथा

चरित्रि–विकास में सहायक सिद्ध हुए हैं। अलग से उनका कोई महत्व नहीं है। श्वपच ऋषि बाल्मीकि आदि की अंतर्कथाएँ भी उपन्यास के उद्देश्य मे सहायक हैं।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' में मेहतर–समाज के रीति–रिवाजो, धार्मिक मान्यताओं खान–पान, रहन–सहन आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। मेहतरों में हिन्दू–मुस्लिम नहीं, धार्मिक साम्प्रदायिता नहीं– "हमाए यां तो दोनो ही रिवाज चलते हैगें।"[158] मेहतर जाति किन सामाजिक परिस्थितियों के कारण अस्तित्व में आयी, उसकी धार्मिक–सांस्कृतिक मान्यताएँ क्या है आदि प्रश्नों के उत्तर तो दिये ही गये है, साथ ही वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्द्ध की राष्ट्रीय और सामाजिक हल चलों का दिग्दर्शन भी जीवंतता के साथ कराया गया है।[159] नागर जी ने मेहतर–जाति के उद्धार की दिशा में सुझाव–स्वरूप अनेक बातें कहीं है। शिक्षा–व्यवस्था को प्राथमिकता दी है। शिक्षा के द्वारा उनकी जीवन–पद्धति में आमूल परिवर्तन सम्भव हो सकेगा, उनमें स्वाभिमान आयेगा, स्वतन्त्रता की भावना विकसित होगी, आत्म बल बढ़ेगा और परिस्थितियों से जूझने की शक्ति आयेगी। मेहतरों की समस्याओं के साथ नारी–समस्या भी जुड़ी है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' में प्रमुख चरित्र श्रीमती निर्गुनियाँ का है। प्रेम और अनैतिक वातावरण के मध्य जीती हुई निर्गुनियाँ में एक ऐसे क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का विकास हुआ है जिसके बल–बूते पर वह विषम परिस्थितियों से साहस पूर्वक निबटना जानती है। निर्गुनियाँ के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में एक ओर हिमालय सा अटल आत्म विश्वास, निष्ठा, धैर्य–समर्पण है तो दूसरी ओर गंगाजल सी निर्मलता, पवित्रता और ममत्व के साथ ही बाधाओं और सामाजिक विकृतियों को आत्मसात् करने की अद्भुत क्षमता उसके हृदय रूपी पवित्र संगम में हर कोई अपने तन–मन का मैला साफ करता है किन्तु उसका स्वरूप धूमिल होने के बजाय निरन्तर निखरता ही जाता है। वह परम्परा की डोर से बँधे सवर्णो को अपनी उंगली के इशारे पर नचाती रहती है।

जीवन के प्रारम्भिक दिनों में निर्गुनियाँ सेक्सुअल जीवन व्यतीत करती है और पाँच पुरूषों की भोग्या होने के बाद मेहतरानी बनकर अश्लील से अश्लील गालियों की बौछार करने में कोई संकोच नहीं करती। फिर भी, उसके प्रति हमारे हृदय मे घृणा न उत्पन्न होकर सहानुभूति की भावना ही जागृत होती है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर नाना–नानी के पवित्र धार्मिक वातावरण में बचपन बिताकर श्लोकों तथा ऋचाओं से पोषित मानसिकता वाली निर्गुनियाँ जब जीवन के एक महत्वपूर्ण मोड़ पर पहुँचकर झाड़ू–टोकरा उठाककर मेहतरानी बनती है, तब भी वह अत्यन्त सहज लगती है। हाँ, मन कुछ क्षण के लिये स्तब्ध अवश्य हो जाता है। "शरीर सुख पाने की कामना में तबाह हो गयी, लेकिन इसी कामना को चूल्हे की लकड़ियों की तरह समेट कर उसकी आँच में उसने अपने व्यक्तित्व को पकाया है। वह किसी योगी से कम नहीं, ध्यान–धारणा और समाधि सब कुछ उसे अपने ढब और ढंग से सिद्ध है।"[160] नागर जी निर्गुनियाँ के व्यक्तित्व से इतने अभिभूत है कि उन्हे उसमें अप्रतिम सौन्दर्य फूटता दिखायी पड़ता है– "जो कंचन जंघा की बर्फीली

चोटियों पर सूर्योदय के समय और कन्याकुमारी के तट पर सूर्यास्त के समय देखने को मिलता है यही नही, वह सौन्दर्य जो न कुछ माँगता है, न देता है, केवल मन भर देता है।''[161]

निर्गुनियाँ के चरित्र में मोहना मेहतर के साथ भागकर मेहतर बस्ती में प्रवेश करने के साथ क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाता है। मेहतर बस्ती मे पहुँचने पर निर्गुनियाँ को एक नयी दुनियाँ दिखाई पड़ती है जो उसकी पुरानी दुनिया से एकदम अलग है। मामा का स्नेह पाकर भी मामी की डाँट–फटकार खाकर चुप रहना, मोहना के द्वारा बाध्य किये जाने पर मेहतर का काम करना, मोहना का डाकू बनकर फरार हो जाना, दारोगा बसन्त लाल की छेड़–छाड़, जैसी अनेक विध प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य रहकर निर्गुनियाँ साहस और संघर्ष के बल पर अपना मार्ग स्वयं ही बनाती है। देह और मन के द्वन्द्व से जूझते हुए भी वह मोहना से प्रतिबद्ध रहती है।''[162]

पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था के विरोध में आवाज उठाने वाला एक समाज शास्त्रीय उपन्यास है। इसकी समस्या है– आर्थिक जीवन की तलाश का संघर्ष। इसी अर्थ में इसे आर्थिक, संघर्ष प्रधान रचना कहा गया है। रचनाकार ने एक विशाल पारम्परिक अर्थ व्यवस्था का चरमराया ढांचा ही वर्तमान संदर्भ में रखा है। यह एक ओर पद दलित 'मेहतर'–समाज की सामाजिक व्यवस्था का प्रभावी चित्रण करता है तो दूसरी ओर उस समाज के आर्थिक संघर्ष को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है। प्रयोग धर्मी उपन्यास कार 'अमृतलाल नागर' की बहुचर्चित रचना 'नाच्यौ बहुत गोपाल' ई0 स0 1988 में प्रकाशित हुई। परम्परा से हटकर यह उपन्यास लिखा गया है। इस रचना में 'मेहतर समाज' की भाग्य गाथा को अत्यन्त स्वाभाविक एवं प्रभावकारी रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस रचना के विषय में अनेक विद्वानों का यह मत है कि यह उपन्यास न होकर एक सामाजिक विश्लेषण है। आज भी मेहतर समाज में जो रीति–रिवाज, प्रथाएँ एवं मान्यताएँ प्रचलित हैं, उनका सहज चित्रण नागर जी ने इस 'उपन्यास' में किया है।''[163]

प्रारम्भ में परम्परागत आभिजात्य के कारण मोहना का मेहतर पन छुटाकर उसे आभिजात्य बनाने की पूरी निष्ठा के साथ निर्गुनियाँ के अन्तस् का सांस्कारिक पत्नीत्व अपनी जीत के लिए वेश्या बन गया। किन्तु जब निर्गुनियाँ मोहन का गर्भ धारण कर लेती है तब उसका ब्राह्मणत्व समाप्त हो जाता है और उसके लिए– ''मोहन जैसा भी है अब उसका मन मोहन है। वह अपने आपकी मोहन की कह सकती है। मोहन के सिवा अब और किसी पुरूष का अंग–संग वहन न कर सकेगी। जान दे देगी, पर अन्य पुरुष के साथ उसका वैसा सम्बन्ध नहीं हो सकता। वह मोहन की है। मोहन की सन्तान की माँ।''[164] एक पुत्री की माँ बन जाने पर निर्गुनियाँ पूर्णतः मेहतरानी बन चुकी रहती है और बड़े आत्मविश्वास के साथ कहती है– ''पाप, पाप, पाप! मैंने कोई पाप नहीं किया। ये मेरी बेटी पाप की नहीं, अपने बाप की है और अब तो सारी दुनिया यह जान गयी है कि निर्गुन पण्डिताइन निर्गुनियाँ मेहतरानी बन गयी।''[165] यहाँ मेहतरानी निर्गुनियाँ का 'स्व' बोलता है। वह सवर्ण–वर्ग पर करारा तमाचा भी मारती है।

निर्गुनियाँ के माध्यम से नारी–जाति की पीड़ा भी उजागर हुई है। उस पीड़ा का बोध निर्गुनियाँ के आत्मकथन से होता है– "औरत से बढ़कर कोई भी ज्यादा गुलाम नहीं है। मैंने ब्राह्मण भी देखा, मेहतर भी देखा। मरद सब जगह एक हैं, साँसे सब जगह औरत की एक जैसी ही मिट्टी पलीत होती है, मैंने दलितों की समस्या को दोहरे ढंग से भोगा।"[166] एक मैदानी नदी की भाँति निर्गुनियाँ जीवन के कुटिल मार्ग से आगत नाना विध बाधाओं से टकराती, परिस्थितियों से जूझती, अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करती हुई पतन में उत्थान और प्रसुप्ति में जागरण का दर्शन करने वाले एक चट्टानी व्यक्तित्व का निर्माण करती है। "वह सूरज की तरह आकाश को रौंदती हुई ज्वाला के समान दिखलाई पड़ती है। कई पड़ाव आते हैं– मोहना द्वारा डेविड की हत्या, उसकी फरारी, पुराने प्रेमी बसन्त मास्टर का दरोगा बसन्त लाल के रूप में टकराव, मसीता और गुल्लन चाची का संरक्षण, आर्य समाज का दंद–फंद, मोहना से पुनर्मिलन, शकुन्तला और निर्गुण मोहन का जन्म, मोहना की मृत्यु तथा डॉक्टर एण्डरसन द्वारा प्रणय–निवेदन किन्तु निर्गुनियाँ की आँच कभी मद्धिम नहीं होती, बुझती नहीं, और प्रचण्ड होकर धधकने लगती है। मोहना ऊर्जा बनकर उस अग्नि को निरन्तर जलाता रहता है।"[167] नागर जी ने निर्गुनियाँ के रूप में एक ऐसी तेजस्विनी नारी की सृष्टि की है जिसका दूसरा प्रतिरूप हिन्दी–उपन्यास जगत् में मिलना दुर्लभ है। यह नागर जी की अभूत पूर्व उपलब्धि है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' में नागरजी ने पीड़ित शोषित–समाज की गाथा को लेकर औपन्यासिक शिल्प के अन्तर्गत एक नवीन प्रयोग किया है। उपन्यास के केन्द्र में श्रीमती निर्गुनियाँ का चरित्र है। इस चरित्र के माध्यम से लेखक ने प्रेमका चित्र अंकित किया है। यद्यपि निर्गुनियाँ इस उपन्यास की मुख्य नायिका है पर उसके साथ–साथ अन्य कई ऐसे चरित्र इस उपन्यास में आए हैं जो पाठकों के मन पर छाप डालते हैं। इस उपन्यास में निर्गुनियाँ के द्वारा नारी की समस्या और मेहतर समाज के द्वारा दलित वर्ग की समस्याओं को उठाया गया है। श्रीमती निर्गुनियाँ ब्राह्मण कुल में पैदा हुई और ब्राह्मणी से मेहतर बनने की उसकी प्रक्रिया पीड़ा और वेदना को व्यक्त करती है। इस प्रक्रिया में दोनों संस्कारों को भोगते हुए जीवन की ये त्रास दिया आगे चलकर उसके जीवन को अनेक मोड़ देती हैं। वैसे यदि निर्गुनियाँ के जीवन का अध्ययन किया जाए तो ज्ञान होगा कि शैशव काल में नाना–नानी के यहाँ ब्राह्मण संस्कार में पली और पिता के साथ रहते हुए 'काम' संबंधी मूल्यों की अराजकता पूर्ण स्थिति में रही। निर्गुनियाँ के पिता ऐसे वातावरण में रहे जहाँ नैतिक मूल्यों का कोई प्रश्न नहीं था। यहीं पर निर्गुनियाँ को कठिन संघर्ष से गुजरना पड़ा। पिता के साथ रहने के पश्चात् उसने देखा उसके पिता यहाँ पर साधारण नौकर हैं और अपनी स्वामिनी के रखैल हैं। इस स्वामिनी का उल्लेख लेखक ने 'रानी सरकार' नाम से किया है। इसके पूर्व नाना–नानी के यहाँ का जीवन पवित्र और सार्विक था। और सामाजिक परिवेश में न तो कोई मूल्यवान संस्कार था, एक मात्र ऐसा वातावरण जो स्वेच्छाचार से परिपूर्ण था। इस वातावरण का परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए। ऐसे वातावरण में निर्गुनियाँ

कई व्यक्तियों की कामवासना का शिकार बन जाती है। इस वातावरण ने निर्गुनियाँ के जीवन की दिशा ही बदल दी। पंडित बटुक प्रसाद की पत्नी उसकी देह के साथ निर्मम खिलवाड़ करती है। अन्य नये–नये प्रेमियों को फँसाने में निर्गुनियाँ का प्रयोग करती है और जब देखती हे कि निर्गुनियाँ उसके मार्ग की बाधा बन गई है तो वह उसे अत्यन्त निर्ममता से अपने बूढ़े प्रेमी सेठ से विवाह करा देती है। सेठ निर्गुन के पिता से सात साल बड़ा था। इस बेमेल विवाह के पश्चात् निर्गुन के जीवन की वह त्रासदी आरम्भ होती है जो बहुत ही दयनीय है। कहां सोलह वर्ष की निर्गुन और कहाँ पिता से भी बड़ा 'मसुरिया दीन'। निर्गुन जिस वातावरण में रही उसी के कारण उसमें काम वासना प्रतिदिन अधिक होती गई। निर्गुन का कामदग्धमन 'मसुरियादीन' की निर्जीव चेष्टाओं से तृप्त नहीं हुआ। मसुरियादीन ने विवाह के पश्चात अपने घर को एक किले का रूप दिया जिसकी सरहद से बाहर निकलना निर्गुनियाँ के लिए असंभव था। ऐसे कठोर कारागृह से वह एक दिन अवसर पाकर मेहतर मोहना के साथ भाग निकलती है। यहीं से उसके जीवन की दूसरी गाथा प्रारम्भ होती है। 'मोहना' के साथ भागने का निर्णय निर्गुनियाँ ने अचानक नहीं लिया। कई बार 'मसुरिया दीन' की कैद से निकलने का प्रयास किया पर अन्त में यही मार्ग सबसे सुरक्षित लगा।''[168]

मोहन जन्म का ठाकुर, जाति का मेहतर और कर्म का डाकू है। वह अपने व्यक्तित्व की चमक से पंडिताइन निर्गुनियाँ को अपने साथ भगा लाता है, और उसे भंगी का काम करने के लिए विवश करता है– ''जब मेहतर से इश्क किया है तो मेहतरानी बनना भी सीखों, तभी मेरा तुम्हारा निबाह हो सकेगा।''[169] मोहना का मेहतर विजेता अहं सवर्ण–समाज पर थूकता है। किन्तु माशूक डेविड की हत्या करने के बाद जब वह मोहना डाकू के नाम से चर्चित हो जाता है तब वह अपने गिरोह के साथियों से बचाव के लिए ठाकुर जाति का कवच पहन लेता है और मोहना ठाकुर ने नाम से पूरे गिरोह का प्रतिनिधित्व करता है। वह जहाँ डकैती डालता था वहाँ निर्गम बलात्कार की घटना भी घटती थी। उसकी बढ़ती हुई बर्बरता और नृंशसात्मक कृत्यों के कारण सरकार द्वारा घोषित पाँच हजार का इनाम उसके सिर पर मौत बनकर मँडराने लगता है। वह डाकू जीवन की सच्चाई को उद्घाटित करता हुआ कहता है– ''डाँकुओं की उमर मीनार के कँगूरे पर टिकाया गया काँच का गेंद होती है। कब जाने हवा के झोंके से लुढ़ककर चकनाचूर हो जाय। मैं जिस बेदर्दी से लोगों को मरता हूँ उसी बेदर्दी से एक दिन मारा भी जाऊँगा।''[170] मोहना उपेक्षित मेहतर समाज की पीड़ा को सच्चाई से स्पर्श करता है– ''मेहतर साला तो करज में ही तो जनमता है और करज में ही मरता हैगा। आज एक, तो कल दूसरा महाजन नटई दबायेगा। मरना तो है ही।''[171] उसके हृदय में उच्च वर्ग के प्रति घृणा की एक ऐसी तह जम गयी है जो उसकी अहंता में बराबर चुभती रहती है। वह कहता है– ''मेरे बाप साले हरामी की व्याहता ठकुराइन तो कोई और होगी। उससे जो बच्चे पैदा हुए होंगे वह सब साले ठाकुर ही कहलाते होंगे। और मैं कम नसीब उसी हरामी की औलाद उस साले की हबिस की शिकार अपनी अम्मां

के पेट से पैदा होकर मेहतर कहलाता हूँ। मुझे नफरत है इन सब ऊँची कौम वालों से।..... ..मेरा बस चले तो एक दिन छावनी के सारे तोपखानें को इन सरीफ और बड़े आदमी कहलाने वाले जल्लादों की बस्तियों पर लगवा कर इन हिन्दू, मुसलमानों, क्रिस्चेनों को एक साथ धड़ाम–धड़ाम उड़वा दूँ।''[172]

''नागरजी ने मोहना के चरित्र को दो विरोधी रेखाओं से अंकित किया है। एक ओर वह सेठों, अंग्रेज अफसरों आदि को लूटता है दूसरी ओर गरीबों, असहायों विशेषकर मेहतरों की आर्थिक सहायता करता है। वह गरीबों का मसीहा बनना चाहता है।''[173]

मोहना के संपर्क में आने के पूर्व की कथा नागर जी ने पृष्ठ भूमि के रूप में चित्रित किया है। इस कथा में निर्गुनियाँ के जीवन का उल्लेख है और उसके नाना के घर में रहकर पंडिताई वातावरण में उसने जीवन व्यतीत किया था। नाना के घर नित्य पूजा पाठ होता था और वहीं पर उसे संस्कृत की शिक्षा प्राप्त हुई थी। उसकी माँ एक पतिव्रता स्त्री थी। निर्गुनियाँ का अधिकांश जीवन माँ और नाना–नानी के साथ व्यतीत हुआ था। माँ जहाँ एक साध्वी नारी थी वहाँ पिता उसके विपरीत थे। वे अपने मालिक के बेटे की पत्नी के रखैल थे। माँ एक लम्बे अरसे तक बीमार रहकर तपेदिक की बीमारी से चल पड़ी थी। नाना उसके पूर्व ही जा चुके थे। परिणाम स्वरूप न चाहते हुए भी उसके पिता उसे अपने मालिक के घर ले आए। यहीं से निर्गुनियाँ के जीवन का वह परिवर्तन चक्र प्रारम्भ हुआ जिसने उसे कहाँ से ले जाकर कहाँ छोड़ा। किसी स्त्री का चरित्र जीवन में इस प्रकार का मोड़ ले सकता है ? यह निर्गुनियाँ के चरित्र को पढ़कर ज्ञात होता है। अपने जीवन की कल्पना भी निर्गुनियाँ ने न की होगी। जीवन–पथ में उन पड़ावों से गुजरना पड़ा जिसकी कल्पना भी उसने न की थी। माँ की मृत्यु ने निर्गुनियाँ के जीवन को बदल कर रख दिया। जिस समय वह अपने पिता के साथ उनकी स्वामिनी अम्मा के घर आई, उस समय उसने सोचा नहीं था कि अकल्पनीय जीवन के मार्ग में वह चल पड़ेगी।''[174]

स्वामी वेद प्रकाशानन्द जी आर्य समाज धर्म के प्रचारक और वेद मन्दिर के सर्वेसर्वा हैं। 'वे दलितों और दीन–दुखियों के आश्रय दाता हैं।' रिशी देवी और वेदवती देवी उनकी शरणागत चेलियाँ है। निर्गुनियाँ भी उनकी छत्रच्छाया में कुछ दिन रहती है। उनके चरित्र की पूरी झलक निर्गुनियाँ के इस कथन से मिल जाती है– ''अकेले में हम तीनों स्त्रियों की काया पर ठाओं–कुठाओं उनकी हाथ फेरने की आदत हमें बुरी लगके भी बुरी नहीं लगती थी।''[175] डॉ0 एण्डरसन एक शान्ति प्रकृति के दयालु, सज्जन और खुशदिल व्यक्ति हैं। मसीता और मोहना की मृत्यु के बाद निर्गुनियाँ और उसकी पुत्री शकुन्तला को अपने परिवार की भाँति सुख–सुविधा प्रदान करते हैं। उनके हृदय में निर्गुनियाँ के प्रति अत्यन्त आत्मीयता है। वे कहते हैं– ''तुम्हें और मेरी (शकुन्तला) को सुख देना मेरे लिए प्रभु के भजन के समान ही सदा सुखदायी लगेगा।''[176] अपने

हृदय में पल रही प्रेमाभिलाषा को वे एक दिन निर्गुनियाँ से कह देते हैं– "निर्गुन, मेरे साथ अमरीका चलो। मैं तुम्हें पढ़ाऊँगा। तुमसे शादी करके तुम्हें और अपने को सुखी बनाऊँगा।"[177]

तीसवें अध्याय में शर्मा जी और लक्ष्मी प्रसाद जी के वार्तालाप के बहाने नागर जी ने सन् 1977 में भारत में लगी, इमरजेन्सी की बर्बरता और पीड़ित भारतीय जन मानस की छटपटाहट पूर्ण तत्कालीन स्थिति लाई गयी थी, उस समय हममें से प्रायः अधिकांश लोग यह विश्वास नहीं करते थे कि नेहरू की विराट् बौद्धिक छत्रच्छाया में पले हुए उनके परिवार के लोग ही अपनी करनियों में ऐसे नेहरू–विरोधी हो जायँगे। कुपुत्रों जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।"[178]

नागरजी ने इस उपन्यास में पात्रों के बहाने राजनीति, धर्म, समाज आदि गूढ़ विषयों में दिलचस्पी लेते हुए अपने समाज शास्त्रीय चिन्तन को अभिव्यक्त किया है। खद्दर धारी देश भक्तों के समाज में एक 'बहिन जी– भाईजी सम्प्रदाय' बन गया है। 'टोडी बच्चा हाय–हाय' करते समय बहिन जी– भाई जी और सन्नाटा पाके बहिन जी दुलहिन जी और भ्राता जी भर्ताजी बन जाते हैं।[179]

नागरजी की भाषा की खास विशेषता है कि वे वर्गगत पात्रों के लोक–जीवन में प्रयुक्त प्रतिनिधि भाषा की गहराई तक पैठ कर उसे एक विशिष्ट तेवर के साथ प्रस्तुत करने में माहिर हैं। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में यह कला पूरे उत्कर्ष पर है। भाषा पात्रों की मनः स्थिति, विचाराभिव्यक्ति तथा जीवन के प्रत्येक पहलू का स्पर्श करती हुई प्रवहमान है। सभी पात्र अपने–अपने परिवेश से जुड़ते हुए अलग–अलग भाषा का व्यवहार करते दिखाई पड़ते हैं। नागर जी के पास आंचलिक सम्बोधनों, मुहावरों, लोकोक्तियों, प्रतीकों, का इतना बड़ा स्टाक है कि उपन्यास का हर ब्योरा एक दूसरे से अलग और विशिष्ट दीखता है। नागर जी ने मेहतर समाज में प्रयुक्त होने वाली भाषा और बोली को अत्यन्त बारीकी और सहजता के साथ प्रयुक्त किया है। लड्डन की माँ बोलती है– "ऐ मुई, सूप बोले तो बोले पर तू हरजाई बहत्तर छेदवाली चलनी तू भला क्या बोलेगी?"[180] प्रसन्नता की स्थिति में नागर जी के पात्र अत्यन्त रंजक भाषा का प्रयोग करते हैं। मोहना अपनी पत्नी निर्गुनियाँ को दुलारते हुए कहता है– "कोच्छनई, कल मास्टर मोहन अपनी डियर मैडम को बाइसिकिल पर सिटान करके सान से यह गो और वह गो, वन–टू–थिरी फराफर्र।"[181]

इस प्रकार 'नाच्यौ बहुत गोपाल' का प्रत्येक पात्र अपने यथार्थ परिवेश में बंधा हुआ पृथक–पृथक भाषा बोलता है। भाषा रंग विरंगे छोटे–छोटे बल्बों की झिलमिलाती लड़ी की भाँति चमकती हुई अपने रंगों का बोध कराती है और पात्रों के व्यक्तित्व के रेशे–रेशे को छीलकर पाठक के सम्मुख रख देती है, वह चमत्कृत हो जाता है।

ममता कालिया के शब्दों में– "इस उपन्यास की भाषा जिन्दगी से लवरेज, संघर्ष से रगड़ खाती हुई भाषा है। निहायत बोलचाल का अन्दाज, ठेठ–घरेलू शब्द–प्रयोग नागर जी की भाषा की

विशेषता है। मेहतरों की जिन्दगी का पूरा प्रामाणिक तापमान, उनका गाली–गलौज, रीति–रिवाज, रहन–सहन और छौल–धप्पे का माहौल, इस रचना में पारे सा उतर आया।''[182]

'नाच्यौ बहुत गोपाल' का प्रारम्भ इण्टरव्यू के साथ होता है। यह शैली, यद्यपि उपन्यास की रोचकता में वृद्धि करती है, तथापि जब उपन्यास कार इस शैली की ओट में समाज दर्शन, ज्ञान धर्म, योग का विश्लेषण, यहाँ तक कि इमरजेन्सी की चर्चा करने में जुट जाता है तब पाठक सशंकित हो उठता है और कथा की एक रसता का तार टूटने लगता है। इण्टरव्यू के दौरान जब–जब निर्गुनियाँ हमारे सामने आती है तब–तब अपनी मूल मनः स्थिति से विरत होकर एक कृत्रिम परिवेश का निर्माण करने को बाध्य हो जाती है। कहीं वह दार्शनिक विचारक, कहीं समाज शास्त्री, कहीं आन्दोलन का नेतृत्व करने वाली और कहीं समाज सुधारक बनकर मेहतरों के हक की लड़ाई में सहयोग देती है। जब निर्गुनियाँ समाज और राजनीति के खोखलेपन पर भाषण करने लगती है, तब वह अपने व्यक्तित्व से सर्वथा अलग दिखाई पड़ती है।

ऐसा केवल इसलिए हुआ है कि अंशु धर शर्मा के रूप में उपन्यासकार इण्टरव्यू के माध्यम से निर्गुनियाँ को इसी दिशा में प्रेरित करता रहता है। फिर भी, नागर जी ने स्थान–स्थान पर वर्णन, संवाद पूर्वदीप्ति–शैलियों का प्रयोग कर अपने सफल किस्सागो होने का परिचय दिया है। आलोच्य उपन्यास हिन्दी की यथार्थवादी औपन्यासिक कृतियों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह कृति ''अपने मूल कथ्य तथा संदर्भो के प्रस्तुतीकरण में लेखक की सर्जनात्मक प्रतिभा का वह अमूल्य दस्तावेज है, जो आधुनिक हिन्दी उपन्यास के यथार्थ की बंधी–बंधायी परिभाषाओं और सरणियों से कहीं आगे जाकर विघटित होते हुए उन मानदण्डों के क्षेत्र में ले जाता है जहाँ वर्जनाएँ और कुण्ठाएँ नया जन्म पाने को अकुला रही है।''[183]

नागरजी ने इस उपन्यास में निर्गुनियाँ के ब्राह्मण–संस्कारों को जलाकर मेहतरानी बनने के अन्तर्द्वन्द्व को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त किया है। निर्गुनियाँ मेहतरानी बनकर भी अपने पति के प्रति एकनिष्ठ प्रेम की पुजारी है। मोहना के जाने के बाद कठोर साधना में उसने जीवन व्यतीत किया, उसे अधिक साहसी बना दिया। निर्गुनियाँ का व्यवहार अनेक प्रश्न उठाता है। वह अपनी लड़की को ईसाई बनाकर स्कूल की प्रिंसिपल बना देती है किन्तु पुत्र वधू को आर्य समाज में दीक्षित करके ही स्वीकार करती है। स्वयं नागर जी ने उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का चित्रण करते हुए लिखा है–''इस स्त्री की मांसूम मिजाजी, तेजस्विता, वाक्पटुता, इसका ओरिटोक्रेटिक अन्दाज सिमट कर एक तस्वीर बन गया है और इस तस्वीर में कल्पना से उसकी कमर पर बेलन भी रख दिया है।''[184]

नागरजी ने 'इण्टरव्यू शैली' में निर्गुनियाँ के बीते हुए जीवन और घटनाओं को सुनकर उपन्यास को लिपि वद्ध किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि निर्गुनियाँ एक ही समय में वर्तमान और अतीत दोनों स्तरों पर जीती रही। उसके माध्यम से लेखक ने नारी समाज के शोषण और पुरुष के अहं का खुलकर वर्णन किया है। नारी का शोषण हर वर्ग का पुरुष करना

चाहता है। पुरुष अपनी काम वासनाओं की पूर्ति के लिए किसी भी वर्ग की स्त्री को भोग्य बना सकता है। मानवीय जीवन की यह विडम्बना है कि संघर्ष चाहे भूमि के लिए हो या पारस्परिक, अपमान नारी का ही किया जाता है। निर्गुनियाँ के शब्दों में ''नारी पीड़ा का मर्माहत रूप व्यक्त हुआ है, जहाँ दासता ने मनुष्य को पुराने जमाने से लेकर आज तक शिकंजे में जकड़ कर रखा है। कोई मार–मार कर भंगी बनाया जाता है, कोई मार खाकर बेदम बनता है।''[185]

नागरजी ने अपने उपन्यासों में यथार्थ और कल्पना का समन्वय किया है, पर 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में काल्पनिक प्रसंगों का निरूपण करने का अवसर बहुत कम मिला है। मनोविज्ञान और नागर जी का गहरा संबंध है इसलिए 'बाबा जी' जैसे पात्र उनकी रचनाओं में दिखाई देते है। मोहना की मृत्यु पर जिस समय निर्गुनियाँ दुखी होती है और उसका कर्म काण्ड भी करती है, उस समय 'बाबा जी' उसके मन में अलौकिक शक्ति के रूप में अवतरित होता है। निर्गुनियाँ जब–जब अन्तर्द्वन्द्व में फँसी है, 'बाबा' की अलौकिक शक्ति से उसका साक्षात्कार होता है।''[186]

औपन्यासिक कला की दृष्टि से 'नाच्यौ बहुत गोपाल' कलागत विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। उपन्यास की शैली और शिल्प अधिक प्रभावी बनाने में सफल हुए हैं। मेहतर–समाज की अन्तर्गाथा को सवर्ण समाज के सामने रखते हुए वह स्वयं मेहतर बन गए हैं। इस समाज में प्रचलित, गाली, गलौज, मार–पीट तथा कई घटनाओं का उल्लेख इस प्रकार से किया है कि बार पाठक इसे पढ़कर चौंक उठता है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' का महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य उसकी भाषा का प्रयोग है। कई स्थानों पर भाषा वर्ग रूप में अत्यन्त सुदृढ़ है और कई और स्थानों पर जन–सामान्य में प्रचलित है। जन मानस में प्रचलित मुहावरों का प्रयोग हुआ है। कई स्थानों पर अंग्रेजी शब्दों का मिला जुला रूप भी प्रयुक्त हुआ है। हास्य और व्यंग्य के स्थान पर इस रचना में कई बार पाठकों के मन में एक गहरी टीस पैदा होती है। विनोद का स्वरूप इस रचना की संश्लिष्ट भाषा में देखा जा सकता है। इस रचना में रोमांस का भी चित्रण हुआ है, ऐसे स्थानों पर नागरजी की भाषा एक शिल्पकार की तरह पाठकों को अभिभूत करती है। इस उपन्यास में भाषा की रागात्मकता और संवेदनशीलता कई रंगों में मिलती है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' में भारतीय समाज के इतिहास का प्रस्तुतीकरण किया गया है। इसके पूर्व भी इस प्रकार का प्रयोंग हिन्दी उपन्यासों में हुआ है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में इसी तरह की कलात्मकता आई हैं। वास्तव में नागर जी ने एक सरस मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण कर्त्ता बनकर निर्गुनियाँ के चरित्र को उभारा है। उसके अन्तर्मन में बैठकर जिन्दगी की साझेदारी की है। यही कारण है कि वृद्धावस्था में भी निर्गुनियाँ का चरित्र अपनी भव्यता और गरिमा को लिए हुए है। एक मानवतावादी आस्था को लेकर जीने वाला कलाकार सदा उसमें रमता है। इस रचना में लेखक ने भारतीय समाज के वर्तमान स्वरूप की तुलना करते हुए इतिहास को देखा है। हरिजनों के जीवन की आन्तरिक पीड़ा को मेहतरों द्वारा प्रस्तुत किया

गया है जिससे स्पष्ट होता है कि इस समाज के संस्कारों की जड़ता आज भी नष्ट नही हुई है। आश्चर्य की बात यह है कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हरिजन जाति–पाँति के बन्धनों को कांटने के लिए अधिक आगे आए है और अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा अपने संस्कारों को तोड़ने में समर्थ हुए है। निर्गुनियाँ के पुत्र निर्गुन मोहन और पुत्र वधू नीलम द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस रचना में कई स्थानों पर ऐसे प्रसंगों का चित्रण हुआ है, जो पाठकों को वर्तमान राजनीति से जोड़ता है।[187]

समग्रतः 'नाच्यौ बहुत गोपाल' नागरजी की चिरन्तन आस्था सहज मानवीयता और पावन संस्कारों का परिचय है जो निर्गुनियाँ की पीड़ा से निर्मित हुआ है। निश्चय ही यह कृति अपने शीर्षक को सार्थक करती हुई सदियों से चले आए मेहतर वर्ग की पीड़ा को सही ढंग से व्यक्त कर सकी है। इसी अर्थ में यह उपन्यास, उपन्यास न होकर एक सामाजिक सर्वेक्षण है।[188]

खंजन नयन

कृष्ण भक्त महाकवि सूरदास के जन्म तिथि, जन्म स्थान उनके जीवन के संघर्षों तथा तत्कालीन राजनीतिक स्थिति को दर्शाने वाला जीवनी मूलक उपन्यास है। कथानक का प्रस्तुतीकरण इसी आधार पर किया गया है।

उपन्यास का प्रारम्भ सुल्तान सिकन्दर के दूसरे आक्रमण के समय मची हुई मारकाट से प्रारम्भ होता है, यहीं वृन्दावन से लगभग दो कोस पहले पानी गाँव के पास नाव से आती हुई सवारियों को बताया जाता है– ''मथुरा मती जइयो। आज खून की मल्हारै गायी जा रही हैं वाँपे।''[189]

इसी नाव में एक अन्धा नव युवक के रूप में सूरज (सूरदास) की उपस्थिति दिखायी गई है यहीं उपन्यास कार सूरज के जन्माँध होने की पुष्टि करता है सूरदास के ही पदों के आधार पर ''सूर की बिरिया निठुंर है बैठेव जनमत् अन्ध करेव।''[190] इसके साथ ही वस्तु का विकास संलापात्मक शैली में होता है और संवादों के माध्यम से सूर के ग्राम का नाम और जन्म तिथि का पुष्टीकरण किया जाता है। पंडित सीताराम आचार्य सूरज के हाथ की उँगलियों को छूकर पूँछते है–

''कहाँ के निवासी हो बेटा ?''

''भरत भूमिका''

''पछाह से आये हो। ग्राम का नाम 'स' अक्षर से होगा।''

''आप कौन है महाराज ?''

''छोटी आयु में घर त्यागा, फिर सुखमिला, उसे भी त्यागा।''

''आप सर्वज्ञ है, दया करके अपना परिचय दें।''

''मै हाथ रस का निवासी गौड़ ब्राह्मण हूँ। परन्तु, पहले तुम्हारा परिचय पाना चाहता हूँ।''

''मेरा जन्म गोबर्धन के निकट **'परासोली'** ग्राम में हुआ था, किन्तु चार वर्षों की आयु मे गुरू ग्राम के पास 'सीही' चला गया। पिता सारस्वत अपने क्षेत्र में भागवत महाराज के नाम से विख्यात थे। एक समय घर में थोड़ा वैभव भी था, किन्तु नौ बरस पहले जब सिकन्दर सुल्तान अपनी फौजी लूट के लिए दिल्ली से निकला था। तब हमारे ग्राम में भी तबाही मची थी। आधे से अधिक घर तोड़ डाला गया था।''

''क्यो ?''

'''कोसी' के एक यजमान ने जो कि 'सीही' का मूल निवासी था, समृद्धि पाकर अपनी जन्म भूमि में श्री राधा–गोपाल का एक मन्दिर बनवाया। हमारे बाबा जो मूलतः 'परासोली' के निवासी थे, यजमान के आग्रह से सीही आये थे। मन्दिर के साथ सेठ ने हमारे बाबा को एक घर भी बनवा दिया था। हमारा घर मन्दिर का ही एक भाग था, पिछवाड़े बना हुआ।''

''हूँ। तुम्हारा नाम भी तुम्हारे ग्राम के समान ही 'स' अक्षर से ही आरम्भ होता है। क्या नाम है ?''

''सूर्यनाथ। पिता सूर कहते थे, माता सूरज। अब कोई नाम नहीं, बाबा, स्वामी, भगत– यही सब कहलाता हूँ।''

''तुम्हें अपना जन्म संवत् याद है पुत्र?''

''विक्रम संवत पैतीस, वैशाख सुदी पाँच। अब मेरी भी एक जिज्ञासा है महाराज।''[191]

इस प्रकार उपन्यासकार ने बड़े कौशल के साथ सूर का ग्राम, निवास स्थान, नाम, पिता का नाम, जन्मतिथि का अंकन बड़ी सहजता के साथ किया और सूरज के मना करने पर भी पंडित सीताराम का स्नेह उन्हे अपनी ओर खींच ही लाया। यात्रा काल में ही अन्धे सूरज को नया ज्ञान प्रकाश प्राप्त हो गया था। सूर नाव में आक्रमण होने के कारण नदी में डूब गये और उन्हे एक मल्लाह जल से निकालकर अपने घर ले जाता है। कथानक पुनः आगे बढ़ता है, सूर अपने आपको एक अन्धी कोठरी में लेटे हुए पाते है जिसमें चटाई बिछी हुई है, पास में खर्र–खर्र–खर्र खो फुक्क की आवाज आती है सूर समझ जाते है कि यह जमुना जल नहीं है। यहीं लेखक उसी कोठरी में रहने वाले अत्यन्त बूढ़े नागराज का प्रसंग लाकर यह व्यक्त करता है– ''अशक्तता में सहायक मनुष्य के प्रति वह कृतज्ञ और आस्थवान है। कैसी लीला है स्याम। मनुष्य ही नहीं हर

जीव व्यक्त करने में भिन्नता रखते हुए भी भाव में कितना अभिन्न होता है।''[192] सिकन्दर के आक्रमण का संदर्भ देते हुए लेखक ने सिकन्दर सुल्तान की माँ का हिन्दू होना भी व्यक्त किया है। आठ नौ वर्ष की आयु में ही भागवत महाराज के बेटे और शिष्य सूर्यनाथ की दो–चार कस्बों तक चर्चा फैलने लगी थी– ''स्वर में ऐसी मोहिनी है कि जो सुनता है वह उसमें जादू सा बँध जाता है।''[193]

चौथे अध्याय के लगभग अन्त में 'कन्तो' का परिचय सूरज से होता है और यहीं 'फ्लैश बैक' पद्धति का प्रयोग करते हुए उपन्यासकार सूरज के अतीत का स्मरण करा देता है। जब अमीन तेगअली ने उसके लिए ताल किनारे पक्का घर बनवा दिया था। सेवा के लिए दो जवान दासियाँ 'अनारों' और 'सुनैना' रख दी थी। अनारों तो गम्भीर थी। घर गिरस्ती, रुपये टके का हिसाब रखती और सूर स्वामी के अनन्य भक्त और सेवक बूढ़े नटवर सिंह को सारा हिसाब–किताब समझाकर सौंप दिया करती थी। परन्तु सुनैना अल्हड़ थी। गला सुरीला कपड़े पहनाती और दिनों–दिन, धीरे–धीरे उनका दिल भी चुराती जाती थी। क्रमशः उसने सूर स्वामी की उठती–भड़कती जवानी को अपने वश में कर लिया। अन्धा सूरज सुनैना के आगे और भी अन्धा हो गया था।''[194] उन्हीं दिनों अन्धें सूरज की भेंट ज्योतिषाचार्य पंडित सूल पाणि शास्त्री से हो गयी थी । जो महाक्रोधी थे और उस समय अपनी पत्नी और पुत्रों से लड़कर और यह प्रतिज्ञा करके आये थे कि वह अपनी विद्या भले ही राह चलते भिखारी को दे दें किन्तु अपनी पत्नी की कोख से जन्में कुलांगार पुत्रों को कदापि न देगें।

सूरज को ज्योतिषाचार्य जी की कृपा से ज्योतिष का पर्याप्त ज्ञान हो गया था। जमीदार की खोई हुई गायो का पता बताने के बाद सूरज का वैभव बढ़ गया था। सुनैना आयी तो– ''बात यहाँ तक पहुँच गयी कि एक रात सूर स्वामी ने उसे अपना कौमार्य सौंपने का निश्चय कर लिया था। रात को सुनैना जब सूरज की जठ राग्नि को बुझाते हुए अपने स्पर्श से उसकी कामाग्नि को भड़का रही थी तब एकाएक सूरज का स्याम मन बोल उठा। अरे मूढ़ तेरी बाहर की तो फूटी ही हुई है अब क्या भीतर की भी फोड़ेगा ? यह नटिनी आज तेरे सामने नाचती है कल से तुझे नचा मारेगी।''[195]

'कन्तो' जो कालू केवट की फुफेरी बहन है, सूरज के दिल में 'मुर्दे सी सोई सुनैना' को जगा देती है। सूरज को बेचैन कर देती है। सूरज कन्तो के साथ जब नाव में चढ़ता है तभी ''नारी काया ने नर काया से मनमानी छेड़ की। चन्द्र सरोवर पहुँचकर लेखक शरद पूनो की रात में राधे–रानी और बंशीवारे की क्रमशः सखियों और सखाओं सहित की जाने वाली रास लीला का मनो मुग्ध कारी वर्णन करता है। कन्तो सूरज को बताती है कि यह डोंगी उसके बाप की है और इसी में दो–चार सवारियाँ ढोकर वह अपना पेट भर लेती है। वह सूरज को यह भी बताती है कि उसके कुरूप होने के कारण और साथ ही साथ अशुभ होने के कारण ''कोउ मरद मेरे पास नाई

फटके है। सब दुर दुरावै है, घिरना करै है। मेरे म्होणे पै थूक देवै हैं सामी जी। का करूँ।[196] आगे चलकर केशव जी के मन्दिर का भव्य वर्णन है।

कन्तो का साथ सूर स्वामी से निरन्तर बना हुआ है। सूरज मथुरा पहुँचते है। और यही उपन्यास कार मथुरा की व्याख्या "मथ्यंते तु जगत्सर्व ब्रह्मज्ञानेन येन वा, तत्सार भूतं यदस्यां मथुरा सा निगद्यते।"[197] करता है और मथुरा के संबंध में प्रसिद्ध कहावत "मथुरा में मँगता बसै दाता केशव देव। बाम्हन बनिया बाँदरा लूट खान की टेव।"[198] यहीं पर उन्नाव जिले के गढ़ाकोला निवासी रामजियावन (काल्पनिक पात्र) से भेंट होती है।

सातवें अध्याय में सूरस्वामी गोकुल में गोपी की नगरिया के लिए प्रस्थान करते है। यहाँ पर भी सिकन्दर सुल्तान के द्वारा लूट–पाठ का ही हो हल्ला है। सूर स्वामी बलदाऊ बाबा के निवास गोविन्द घाट पहँचते हैं।

आठवें अध्याय में सूरस्वामी के गायन में उनके सुरीले कण्ठ का जादू गोकुल के नर–नारियों के सिरे पर चढ़कर बोलने लगा। रावल गाँव की बस्ती में पहुँचकर सूर स्वामी जन–जनार्दन के प्रेम सिन्धु में बूड़ गये। यहीं लेखक यह भी उल्लेख करता है कि राधा का जन्म रावल में ही हुआ था। बाद में राजा कंस के अत्याचारों के कारण नन्दराय जी और वृषभानुराय ने पारस्परिक सलाह से रावल से दूर नन्द गाँव और बरसाना बसाया था।

अध्याय नौ में सूर स्वामी की भेंट नाद ब्रह्मानन्द जी से दुबारा होती है। सूर स्वामी उन्हें बताते है "मुझे घर त्यागे अब नौ बरस हो चुके गुरु जी।"[199] गोकुल के बाद सूर स्वामी एक हाँथ में लाठी लिए और दूसरा हाँथ पकड़े हुए 'कन्तो के साथ वृन्दावन में राजा सुबल की मण्डली में पहुँचते है। सभा में राजा सुबल सरक कर धीरे–धीरे सभा में बैठी हुई 'कन्तो' से बिल्कुल सटकर बैठ गया। कन्तो ने क्रोधित होकर कहा "परे हट। शबरी रजाई छाट कर हल्की कर दौंऊँगी। चिताय दऊ हूँ।"[200] कुचला हुआ राजा बदला लेने के लिए पेड़ के नीचे अकेले सो रही कन्तो की लाज उघाड़ने का प्रयत्न करता है और उस पर लद जाता है किन्तु कन्तो उसकी गिरफ्त से निकल कर सुबल का टेटुआ पकड़ लेती है। सुबल की घुटी–घुटी चीखें सुनकर थोड़ी दूर पर सो रहे सूर स्वामी और अन्य लोग जाग गये और देखा "कन्तो सुबल की छाती पर सवार होकर उसके गालों पर तड़ा–तड़ तमाचों की मार लगाते हुए राजा का रजो मद उतार रही थी।"[201] इस घटना पर स्त्रियाँ प्रायः सभी कन्तो को दोषी ठहरा रहीं थी। किन्तु कुछ पुरुष वर्ग के लोगों ने कन्तो और सूरस्वामी के चरित्र की प्रशंसा की। उनका कहना था– "खोट राजा में है। एक संत ने इस घटना की निन्दा की। एक दूसरे संत ने कहा कि "कभी–कभी गुण ही दोष माना जाता है।"[202]

सूर स्वामी कन्तो को अपने साथ लेकर प्रस्थान कर देते हैं और उसे सलाह देते हैं कि वह उनका साथ छोड़ दे क्योंकि वह चाहते हैं 'गेहू के साथ धुन न पिसे' कन्तो नहीं मानती और दोनों पुनः प्रस्थान कर देते हैं। सूर स्वामी कन्तो के साथ आगरा और वहाँ से पैदल यात्रियों के

साथ फिरोजाबाद तक की यात्रा कर डालते हैं। शाहजाद पुर से आगे के क्षेत्र में सूखे के कारण रैय्यत तबाह थी। अतः एक स्थान पर कुएं की जगत पर सत्तू सानने के लिए बैठे किन्तु चार भुखमरे आकर सना और बेसना सारा सत्तू छीन ले गये साथ में अंगौछा भी ले गये। इसके बाद दोनों एक गाँव में पहुँचते है और सूरस्वामी वहाँ के लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए एक पेड़ के चबूतरे पर बैठकर भजन गाने लगे। लगभग आधा गाँव उमड़ आया। लोगों से कोदो, सामा मिला खिचड़ी पकाई और खाया किन्तु यहाँ भी दोनों के नाते पर गाँव वालों को शंका थी। दोनों आगे प्रस्थान करते हैं। जल न बरसने के कारण क्वार का महीना होने पर भी गर्मी की प्रबलता है, दूर–दूर तक अकाल की स्थिति है। भोजन नहीं मिलता है। क्वार की कड़ी धूप के कारण बार–बार प्यास लगती थी। दोनों भूखे–प्यासे चतले गये। मार्ग में जो बस्तियाँ मिली, वहाँ भी भोजन तो नहीं मिला अन्धे–अन्धी की जोड़ी को ताने जरूर मिले "सुन्दर गोरे युवक के साथ यह काली बन मानुषी–जैसे मखमल में टाट का पैबन्द।"[203] अगले दिन बहुत तड़के ही ताल में नहाकर ध्यान करने के बाद दोनों फिर चल पड़ते हैं। मार्ग में एक व्यापारी जो पटना जा रहा था उसने इन्हे अपने साथ चलने को कहा। उसने इन्हें लड्डू और मठरी भी खिलाई। पेट भर जाने के बाद व्यापारी के सामान को उठाकर तीनों लोग फिर चल पड़े। आगे चलकर व्यापारी ने खीर, पूड़ी, मलाई और दूध से अपना तथा सूर स्वामी और कन्तो का मन चिकना किया और वहीं से फत्तेपुर की ओर जा रहे दो रथों में सामान रखकर 'तीनों जने' बैठकर साँझ पड़े फत्तेपुर पहुँच गये। फत्तेपुर से एक ऊँट गाड़ी भाड़े पर तय करके दुमंजिली गाड़ी के ऊपर वाले खण्ड पर बैठकर इलाबास पहुँच गये। व्यापारी ने रात भर के लिये दो कोठरियाँ भाड़े पर लेलीं एक कोठरी में व्यापारी तथा दूसरी में कन्तो और सूर ने रात बितायी। यहाँ भी एकान्त में कन्तो और सूरज के शरीर टकराते हैं। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि सूर स्वामी और कन्तो दोनों ही रति–पति अनंग की मार से बावले हो गये किन्तु खपरैल की छत पर बन्दरों की भागम–भाग के कारण "एक पुरानी ईट का टुकड़ा टूट कर नीचे गिरा, बढ़ते मदन वेग पर मानो गाज गिरी"[204] परे हटो। हनुमान जी देख रहे हैं कहकर कन्तो छिटक कर दूर जा खड़ी हुई। सूर स्वामी को बड़ा पश्चाताप हुआ। दूसरे दिन सेठ बनारसी दास से विदा लेकर दोनों अयोध्या के लिये उसी मार्ग से प्रस्थान कर देते हैं जिस मार्ग से बनवास के लिए जाते हुए राम, लक्ष्मण और जानकी अयोध्या से प्रयाग राज आये थे। मार्ग में एक मुसलमान बस्ती में कुछ व्यक्तियों ने दोनों पर ताना कसी की और प्रतिक्रिया में स्थिति उठा पटक तक पहुँच गयी। नूर नामक एक युवक ने सूर का लाठी वाला हाथ पकड़ कर अपनी ओर घसीटा। कन्तो सूर का बॉया हाथ पकड़े हुए क्रोध में आकर कहने लगी "देखूँ तो सही अपनी मइयो कित्तो दूध पियो है जो ले जायेगो मेरे सामी जी को।"[205]

कन्तो ने स्वामी जी का हाथ छोड़कर दोनों हाथों से लाठी पकड़ कर तान करके नूरे पर मारा किन्तु, अन्त में नूर ने कन्तो की टाँग पकड़ कर घसीट ली और कन्तो मुँह के बल गिर पड़ी। फिर उसे ऐसा मारा गया कि वह उठने ही न पायी। ज्यों ही सूरज नूरे की गालियों की

दिशा में आगे बढ़ा कुतबुद्दी नामक युवक ने उनकी कमर पर एक छड़ी मार दी। यहीं वस्तु का चरमोत्कर्ष दिखायी देता है। पाठक अत्यन्त उत्सुकता के साथ परिणाम तक पहुँचने के लिए अधीर हो उठता है।'' सूरज चीखा। चीख सुनते ही कन्तो में जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गई कि पलट कर नूरे को ढकेला और अपने आगे खड़ी हुई छायाकृतियों की ओर झपटी। कुतबुद्दी की दाढ़ी उसके हाथ पड़ी। इतनी जोर से खींची कि मुट्ठी भर बाल नुचकर हाथ में आ गये। कुतबुद्दी जान छोड़कर चीखा। मजबूर सकूर बैठे–बैठे ही चिल्लाने लगा पास–पड़ोस के कुछ लोग आ गये। सबने पकड़ कर कन्तो को घसीटा। नूरे पर खून सवार हो गया था। कन्तो का गला पकड़ कर दबाना शुरू किया। दबाया, और दबाया, और दबाया, यहाँ तक कि कन्तो की सफेद पुतलियाँ और जीभ बाहर निकल पड़ी। चारों ओर के शोर के बीच कन्तो मरी पड़ी थी और नूरखाँ उसकी छाती पर लदा हुआ गला दबाये ही जा रहा था।''[206]

सूरज कोल्हू का बैल बना दिया जाता है। उससे कोल्हू में जुटकर तेल निकालने का कार्य करवाया जाता है। सूर स्वामी को कोल्हू का बैल बने हुए एक पखवारे से अधिक समय बीत जाता है। इसी समय अयोध्या के सेठ उजागर मल अपने पचास सवारों के हुजूम के साथ काशी से लौट रहे थे। इस घटना के बारे में सुनकर वे लौट पड़े और चार बैलों के दाम चुकाकर सूरस्वामी को छुड़ाया। इसके बाद हजार बरसों से भी अधिक पुराने सम्राट विक्रमादित्य द्वारा बनवाये गए मन्दिर के दर्शन करते हैं। यहीं लेखक अयोध्या के अन्य मन्दिरों नागेश्वर नाथ महादेव, जैनों के आदि नाथ भगवान का मन्दिर, बुद्ध भगवान का मन्दिर आदि की चर्चा करता है और बताता है कि प्राचीन कनक भवन के जीर्ण शीर्ण मन्दिर में सीता–राम जी बिराजते हैं। मन्दिर की डोरी, फाटक, दीवारों आदि के विषय में चर्चा करता हुआ श्री सीताराम के दर्शन के लिये चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य द्वारा बनायी गई मर्यादाओं का भी उल्लेख करता है। उजागर मल सेठ और स्वामी जी ने चाँदी के कठघरे में खड़े होकर जड़ाऊ हिंडोले पर अष्टधातु से निर्मित बाल भगवान राम के विराजित मनोहर विग्रह के दर्शन किये।

गायक कवि सूर की प्रसिद्धि टाँडे से लेकर सुरहुर पुर रौनाही तक फैल गयी थी। यहाँ चौरासी मृदंगों की थापों और चौरासी वीणाओं की झनकारों से भरी हुई एक नयी उंमग वाले सूर की कथा सप्ताह भर तक खूब जमकर चली। कोल्हू वाली घटना नये–नये रूपों में किं वदन्तियों के रूप में फैल गयी थी किन्तु ''बृज का अन्धा सूर अवध निवासियों की आँख का नूर बन गया।''[207] अयोध्या में ही सूर की भेंट सूफी फकीर 'दिलखुश शाह' से होती है। दोनो का परिचय होता है जो अत्यन्त अन्तरंगता तक पहुँच जाता है। यहाँ लेखक देश कालानुसार नवचेतना संबंधी विचार वाले एक बयोवृद्ध आचार्य देव नन्दन बाजपेयी का सृजन करता है जो सूर स्वामी को ''एक अनोखे ईश्वरप्रद प्रतिभा पुंज।'' बताते हैं। सूरस्वामी अपने विषय में सेठ उजागर मल को अवगत कराते हुए कहते हैं– ''सेठ जी आँखे न होने पर भी मन मानता तो है नहीं। वह अपनी दृष्टि से ही उस दुनियाँ को देखना चाहता है जो आपको अपनी बाहरी दृष्टि से ही दिखलाई

पड़ती है। जीवनेच्छा किसी भी परिस्थिति में हार नहीं मानती। वह अपनी राह, अपना ढंग निकाल ही लेती है। मैं स्वरों से विभिन्न चरित्रों का आभास पाता हूँ।''[208] अयोध्या से बिदा लेते हुए सूर स्वामी अपने भीतर वाले अव्यक्त ब्रह्म की खोज के विचार से अभिभूत थे। इस समय तक सूर स्वामी यश–अपयश से ऊँपर उठ गये थे। किन्तु उस 'निगोड़ी' को मन से निकालने में वो असमर्थ रहे। अन्तर केवल यही था कि अब वह काम की ज्वाला नहीं, शीतल समीर थी। सूर चिन्तन करने लगते हैं, और स्याम से प्रार्थना करने लगते हैं– ''मैंने कभी हरि, विष्णु, स्याम, राम में भेंद नहीं माना। वेद, उपनिषदों के परब्रह्म आप ही हो अपने इस दीन–हीन जन की लाज रखना। उसे विवेक की दृष्टि देना, मुझ अन्धे की लाठी बनना राम।''[209]

वाराणसी में अयोध्या वाले सेठ की धर्मशाला के तिमंजिले पर अतिथि खण्ड में ठहराया गया। पुद्दन पंडित मथुरा के भगत को बड़े भाव से केशव जी के दर्शन कराने ले गये। लगभग एक वर्ष बाद काशी में सूर के केशव फिर मिले; सूर का ध्यान समाधि तक पहुँच गया है। अब सूर स्वामी का मन राधा–कृष्ण में मिलकर शान्त और सन्तुष्ट हो जाता है। दो–तीन दिन में ही काशी की गली–गली सूर स्वामी का घर हो गई। नित्य ही दिन भर कोई न कोई उनका हाँथ पकड़ कर कहीं न कहीं दर्शन कराने ले जाता। कभी मत्योदरी, कभी कपिल ह्रद् और अनेक देवताओं और अप्सराओं द्वारा स्थापित शिव मन्दिरों का भ्रमण किया। इसी बीच सूर स्वामी से द्वेष करने वाला छिदम्मी (मल्लमार मारतण्ड) सूर स्वामी को स्वर्ग पहुँचाने का षड्यंत्र रचता है और एक व्यक्ति के माध्यम से उन्हें अविमुक्त नाथ के खण्डहर दिखलाने के बहाने से कटारों से युक्त 'करवत' वाले कुएं में गिराने का असफल प्रयत्न किया गया। इस घटना के बाद सूर स्वामी 'करवत प्रथा' के विरुद्ध प्रचार करने लगे। हर जगह सूरस्वामी कहते– ''मुक्ति पाने के लिये आरे से कटवाने, कटारों लगें कुएँ में अपने आप को गिरवाने की इच्छा मनुष्य की सुव्यस्थित बुद्धि से नहीं वरन् कुटिल कुबुद्धि से प्रेरित होकर आ जाती है। देव–देव अविमुक्तेश्वर के नगर को धूर्त लोग अपने आर्थिक स्वार्थवश मुक्ति के नाम पर ठगी फैलाकर कलंकित कर रहे हैं। यह मुक्ति नहीं, बल्कि सच पूछों तो इससे जीव मरकर प्रेत योनि पाता है।''[210] इनमें सबसे प्राचीन देव बनारस, दूसरी यवन बनारस, तीसरी मदन बनारस और चौथी विजय बनारस। इन दो बनारसों को गहड़वाल राजाओं ने अपने–अपने नाम से बसाया था।

सूर अब पूरे उन्नीस वर्ष के हो गये हैं। यह बीसवाँ वर्ष चल रहा है। सूर स्वामी यवन वाराणसी पहुँचते हैं। यहाँ के रहन–सहन से रजो गुण का अनुभव हुआ। यहाँ पर कुछ लोगों ने विशेष कर बख्शी जी ने हिन्दू के ईश्वर का बहुत मजाक उड़ाया– ''इनका खुदा विश्नोई बली राजा सूं भीक मँगने कूँ जाता हैं। इनके खुदा राम की बीबी कूँ रावना चुरा ले जाता है। इनका खुंदा कृष्ना गोपियों के घर से मस्का चुराता है, परायी औरतों सूँजिनाकारी करता है। इनका महादेवा अमल करके नंगा नाचता है। बरम्हा अपनी बेटी का खसम बनता है–हँ हँ हँ।''[211] यह सुनकर सूरज को क्रोध आया किन्तु वह भगवान कृष्ण के समान हथियार न उठाने की प्रतिज्ञा

करके ज्योतिष विद्या को अपना सुदर्शन चक्र बनाकर कहने लगे– "जो अपने सगे भाई के पुत्र को भी अपनी वासना का पात्र बनाने से न चूकता हो और उसकी विधवा माता से भी ऐसे ही घिनौने संबंध रखता हो, जिसने कल ही सरकारी खजाने का सवा लाख रुपया गमन करके उनके लुट जाने का नाटक रचाया हो.....।"[212] अपनी पोल खुल जाने से बख्शी नूर मोहम्मद जो बड़े तेज तर्रार तथा काइयाँ बनते थे, काँपते–काँपते बेहोश होकर ढुलक पड़े। वास्तविकता का पता चलने पर शाह द्वारा बख्शी को प्राण दण्ड दिये जाने का आदेश हुआ किन्तु सूर स्वामी ने कहा दया निधान मेरे कारण इसके प्राण न लिये जाँय।

दस–बारह दिन से सूर स्वामी का समय अधिकतर यवन बनारस में ही बीतता है। मेढू खाँ और उनका पूरा परिवार सूर स्वामी पर निछावर है। नायब सूबेदार की युवा पत्नी की आवाज सूरज को फिर से डिगा देती है। ज्ञानेश्वर महाराज बनारस के प्रसिद्ध भागवत वाचक थे। उन्होंने अपने स्थान पर सूर को शरण दी। इसलिए छिदम्मी गुरु इनसे भी नाराज हो गया। एक दिन ज्ञानेश्वर महाराज गंगा स्नान करने जाते हैं, डुबकी लगाते हैं और फिर निकलते ही नहीं है। प्रातः होने पर ज्ञानेश्वर जी के सहसा लुप्त हो जाने की बात सुनकर आधी काशी में तहलका मच गया चूँकि लोग जानते ही थे कि यह काम छिदम्मी का ही है। खोज बीन के पश्चात् ज्ञानेश्वर जी एक मकान में निश्चेत अवस्था में पाये गए। इस घटना का सीधा संबंध सूर स्वामी से था।, इसलिए उन्हें भी बड़ा क्रोध आया और वे मन ही मन कह उठे– "सनातन काल से पूज्य और पवित्र, ज्ञान और मुक्ति दायिनी इस नगरी में आया था, किन्तु यहाँ मुझे मिली धमकी, प्राणों का भय, अस्तित्व लोप कर दिये जाने की असह मानसिक यन्त्रणा। योगेश्वर की नगरी में मैंने सब कुछ तप की श्रद्धा के साथ सहा किन्तु ज्ञानेश्वराचार्य महाराज की पवित्र देह का यदि एक रोयाँ भी दुखा तो अपनी मथुरा के कोतवाल और तुम्हारी काशी के राजा को दिखला दूँगा कि भक्त का प्रलय ताण्डव कैसा होता है।"[213] इसके पश्चात कई षड़यन्त्रों द्वारा सूर के साथ घटनाएँ हुईं। सूर को एक बालक के द्वारा प्रेत बनाया गया किन्तु उस भ्रम का निवारण भी हो गया। इसके बाद सूर स्वामी की यशोकाया का तेज और भी निखर उठा। सिकन्दर शाह द्वारा जिस गाँव में पड़ाव डाल कर आगरे का विद्रोह कुचलने की योजना बनाई थी, उसका नाम बदल कर सिकन्दरा रख दिया। सिकन्दर शाह लोदी ने आगरे को राजधानी का रूप दे दिया। इसी समय यात्रा करते हुए अन्य सवारों के साथ सूर स्वामी भी 'रुनुकता' के घाट पर उतरे। सूर स्वामी ने इस रेणुका क्षेत्र जमुना जी में एक गोता लगाया। वे उसी नाव से काशी, अयोध्या यात्रा पूरी कर व्रज की ओर लौट रहे थे। इलाबास से यहाँ आते–आते यात्रियों उनके भक्त और प्रशंसक पर्याप्त मात्रा में हो गये थे। सूर स्वामी की मधुर स्वर रूपी जादू की डिबिया खुली तो सारी रुनुकता ही उसमें समाने लगी। लगभग दो वर्षों बाद सूरज यहाँ लौट रहे थे। सेठ गुन्डूमल ने स्वामी जी के लिए गाऊघाट में एक अच्छी सी कुटी बनवा दी। सूर स्वामी वहीं रहने लगे। इसी समय एक भयंकर भूकम्प आने का उल्लेख है जिसमें अगणित क्षति हुई। सैकड़ों गाँव तबाह हो गये। बड़े–बूढे लोग

कहते थे कि इतना भयानक भूकम्प न उन्होंने देखा है और बुजुर्गो से ही सुना है। इस भूकम्प ने केवल रूनकता को छोडकर सारे क्षेत्र को उलट–पलट दिया था। भूकम्प वाले दिन स्वामी जी वहीं थे और उस समय "हरि हरि–हरि हरि सुमिरन करौ" का सामुहिक किर्तन हो रहा था। रूनकता बच जाने का श्रेय सूर स्वामी को मिला और वे देवता की तरह से पूजने लगे।

ग्वालियर ध्रुपद धमार की राजधानी बनी हुई थी। सूर स्वामी वहाँ लगभग दो महीने रहे। लौटते समय आगरे में पता चला की महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य जी एक माह पूर्व आये थे, आजकल गोबर्धन गये हैं। सूर स्वामी उनके दर्शनार्थ गोबर्धन जा पहुँचे। वहाँ 'अन्न कूटोत्सव' में भाग लिया और एक दिन फिर वे अपने मानस लोक से उड़कर 'परासोली' पहुँच गये। लेखक ने यहाँ भी पूर्व स्मृति प्रणाली का सहारा लेकर सूर का मनो विश्लेषण किया है। इस समय सूर तीस बरस का युवा 'सूर स्वामी' बन चुका है किन्तु वह अपने भीतर नन्हें–मुन्हें सूरज को साकार देख रहा है।

बैसाख शुक्ल पाँच, संवत् 1567 विक्रमी। रूनकता में सूर स्वामी के जन्म दिन का भण्डारा हो रहा है। इसी बीच एक युवा तपस्वी सूर स्वामी से भेंट करता है और संवाद के माध्यम से उपन्यासकार एक बार पुनः सूर के जन्मान्ध होने की पुष्टि करता है। वे कहते है– "मेरे पूर्व के पाप जब जन्मते ही मेरी पुतलियों पर मढ़ गये तो भगवान ने कृपा करके मेरी प्रकाश वाहिनी नशें नाक और कान से जोड़ दीं। मैं बादलों के गरज को देखता हूँ और बिजली को सूंघता हूँ।" और "मेरे लेखे तो यह सारा ब्राह्माण्ड ही तरंग मय है। जब एकाग्र मन से संगठित तरंग–शक्ति से जो चाहता हूँ, देख लेता हूँ सुन लेता हूँ। इसमें आश्चर्य की बात है भला?"[214]

यहाँ मैं इस बात का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ कि हिन्दी के अनेक विद्वानों का मत है कि 'सूर ने अपने पदों में जिस प्रकार बाल वर्णन एवं श्रृंगार वर्णन किया है वह जन्मांध सूर द्वारा किया जाना सम्भव नहीं है'– नागर जी ने तपस्वी युवक और सूर स्वामी के संवाद का आश्रय लेकर उनके इस भ्रम का निवारण ही किया है। यहीं सूर के आयु के इकतीस वर्ष पूरे हो जाते है।

सूर महाप्रभु बल्लभाचार्य का शिष्यत्व ग्रहण करते है। महाप्रभु उन्हें मंत्र देते हैं– सहस्रों वर्षों से कृष्ण वियोग जनित ताप क्लेशों से आनन्द के तिरो भाव से पीड़ित मैं, हे भगवान कृष्ण! हे गोपी जन बल्लभ, यह देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण, धर्म, धन, पुत्रादि सह सब कुछ समर्पित करता हूँ। हे कृष्ण! 'मैं आपका दास हूँ' और वहीं से सूर स्वामी 'सूरदास' हो गये। जन्मांध सूर ने दृष्टा की स्वरूप स्थिति पायी। अब सूर को बाहरी आँखों की आवश्यकता नहीं थी, वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीय संवत् 1576 विक्रमी गोबर्धन धारी गोपाल का नवीन मन्दिर बनकर तैयार हुआ। श्री आचार्य महाप्रभु जी पधारे। लोदी की सेनाएँ इधर नहीं आयी और उपन्यासकार तात्कालिक, राजनैतिक स्थिति का चित्रण करने लगता है। बाबर का शासन काल आया। सूर की आयु इक्यानबे वर्ष की हो गयी है अब वे गोबर्धन मन्दिर में ही रहते हैं। गिरिराज की परिक्रमा करते हैं, बाहर की यात्रा

स्थगित हो गयी है। इसी समय गौर वर्ण के जटा–दाढ़ी युक्त तेजस्वी संत हाथ में कमण्डलु लिए हुए एक अगौछा पहने, दूसरा कंधे पर डाले कुटी में आये। नन्ददास ने उठकर उनको 'तुलसी भइया' कहकर उनके चरण स्पर्श किये। तुलसी दास ने सूरदास जी को साष्टांग प्रणाम किया। नन्ददास ने सूरदास बाबा से बताया "ये हमारे गुरु भाई पधारे है बाबा। काशी में शेष सनातन महाराज के चरनन ढिग बैठकै हम दोऊ पढ़े हैं।"[215] सूरदास अब पूर्ण रस सिद्ध कवि और सिद्ध कृष्ण भक्त बन चुके थे। सूरदास का एक सौ पाँचवा जन्म दिन उत्सव पूर्वक मनाया गया। भवन में स्नान किया, मन्दिर गये, मंगला के दर्शन हुए, सदा की भाँति कीर्तन किया और मुख से अन्तिम शब्द निकले "श्रीकृष्णः शरणम मम्। प्राण कोकिला ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर निकल गयी। काया का पिजरा सूना हो गया।"[216]

इस उपन्यास में मुख्य पात्र,नायक–नायिका ही हैं। सूरज–सूर्यनाथ–सूरा–सूर स्वामी–सूरदास का चरित्र उन्हीं के स्वगत चिन्तन से पुष्ट हुआ है। नायिका कन्तो–कान्ता कालू राम मल्लाह की फुफेरी बहन है। वह शरीर से काली होने पर भी मन की उजली है। 'मानस का हंस' की मोहिनी की भाँति अथवा यों कहें कि उससे बढ़कर सूर के आध्यात्मिक विकास में सहायक है। सूर ने स्वयं उसकी प्रशंसा की है। अपने मन मन्थन द्वारा कुछ ही पंक्तियों में उसका सारा चित्र खींच दिया– "मन उस नाते विहीन नाते से जुड़ा था। न स्वकीया थी न परकीया। प्रथम अंग–संग के लोभ वश दोनों आपस में खिचे थे। सूर ने फिर उस लोभ कक्ष पर लौह कपाट जड़ दिया, तब भी साथ न छोड़ा। दीवानी सी मथुरा से ब्रह्माण्ड घाट तक दौड़ी चली आयी। वृन्दावन में राजा सुबल, जब टोली में आयी नई स्त्री की सुख भोग लिप्सा से उसकी ओर बढ़ा, आक्रामक हुआ, तब वह कैसे जीवट से अपना खेल–खेल गयी। मेरे अपराध पर कैसी बेबसी से लचीली हुई जा रही थी। कैसी सफाई से हनुमान जी की आड़ लेकर अपने को बचा गयी। सच तो यह है कि मेरी बात निभा गयी। मैं कच्चा पड़ा, वह नहीं। मैं अपने मन के विविध प्रपंचों में पड़ा, पशु भी बना, किन्तु कन्तो की कान्ति तनिक भी मलीन न हुई। कौन थी वह प्रिया ?"[217]

उपन्यासकार ने संवादों के माध्यम से कथा को विकसित किया है। उनके अन्य उपन्यासों की भाँति प्रवाहित है। छोटे–छोटे संवादों के द्वारा उपन्यासकार ने सूरदास के जीवन संबंधी विशिष्ट प्रसंगों को विकसित किया है। उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल है। स्थान–स्थान पर बृज भाषा का प्रयोग देशकाल एवं वातावरण के चित्रण में किया है। नागराज के विषय में भोला ने बतलाया है–"बड़ो–बूढ़ों और बडो भलो है। वाको भय न करियो, मैं तो रात–विरात यहीं धरती पै पौढ़ रहू हूँ। बस एक कुप्पी बार के रख लूँ और बिल की ओर हाथ जोड़के सो जाऊ हूँ।"[218] वातावरण का चित्रण करते समय नागर जी छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग बड़ी सजीव और सरल भाषा में करते हैं– "सन्नाटा हो रहा है। दूर कुत्तों का शोर है। दाहिनी ओर कहीं बहुत दूर पहरुएँ की हॉक भी कानों में आ रही है। कभी चट–पट की आवाज भी आती है। हवा के बहाव के साथ मरघट से चिरायन्ध के भभके भी कोठरी में प्रेतनी से घुस आते हैं। सासों में घुटन भर

देते हैं।''[219] भाषा में अलंकारों का प्रयोग भाषा को चारुता प्रदान करता है– ''ऊँची उठती हुई रसिया फुहार आदेश की कल से बन्द हो गयी।''[220] ''यह युवती आवें की आग की तरह जो कल से उसके भीतर ही भीतर चाहत के अंगारे सुलगा रही है, भले ही इसमें देवदारू की आग हो जो सुलगने के साथ महकती भी है, परन्तु सूरज चन्दन की शीतल सुगन्ध युक्त अपने हृदय की हवन कुन्डी लेकर स्याम सखा के द्वारे पहुँचेगा।''[221] मुहावरों और सूक्तियों के प्रयोग से भी इस उपन्यास की भाषा को शक्ति मिली है ''दो नावों पर एक साथ पैर रखकर चलेगा तो डूबेगा ही।''[222] ''ढोल के भीतर पोल, पानी–पानी होकर बहचला।''[223] ''सारा गुड़ गुड़ गोबर हो गया, खाते–खाते रबड़ी में सड़ान्ध भरी की चड़ मिल गयी।''[224] एक कहावत का प्रयोग नागर जी ने उपन्यास में कई बार किया है– ''यन्द्री का लड़बड़ा, जिह्वा का फूहड़ा।''[225] तथा ''खों–खों–यन्द्री का लड़बड़ा।''[226]

वस्तुतः 'खंजन नयन' की कथावस्तु भाव और उद्देश्य के निर्वाह में पूर्ण सफल है। इस उपन्यास में कथा लेखन की अनेक विधियों को अपनाया गया है। वर्णनात्मक, नाटकीय, संवादात्मक, पूर्व दीप्ति और मनोविश्लेषणात्मक पद्धतियाँ एक के बाद एक बड़ी सफलता के साथ प्रयुक्त हुई हैं। संक्षेप में नागरजी का यह उपन्यास वस्तु के विभिन्न रूपों प्रारम्भ, विकास और चरम सीमा तथा वस्तु के समस्त गुणों से परिपूर्ण है।

निष्कर्ष

नागरजी के सभी उपन्यासों की कथावस्तु मौलिकता ओर यथार्थ की कसौटी पर खरी उतरती है। उन्होंने यथार्थ मूलक दृष्टि और मस्तिष्क की प्रौढ़ता से समाज के कण–कण में व्याप्त जीवन के अनुभव को कल्पना के माध्यम से अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। जहाँ तक रोचकता का प्रश्न है, उनके वृहद् उपन्यासों 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष' में अपवाद स्वरूप आये हुए कुछ प्रसंगों को छोड़कर अन्य उपन्यासों में वह पूर्ण रूप से विद्यमान है। सम्बद्धता जो वस्तु का एक प्रमुख गुण है वह भी उनके कुछ उपन्यासों को छोड़ कर अन्य सभी उपन्यासों में विद्यमान है। वस्तु का सुगठित होना यद्यपि उपन्यास के लिए महत्वपूर्ण है तथापि कुछ विद्वानों के अनुसार कथा श्रृंखला की सम्बद्धता का अनिवार्य रूप में होना कोई महत्वपूर्ण बात नही है क्योंकि समस्त मानव जीवन एक अनिश्चित एवं अनियोजित गति से प्रवहमान है, अतः क्यों न किसी कथा को योजना बद्ध अथवा श्रृंखला बद्ध करने के स्थान पर उसे स्वाभाविक रूप से अपनी ही गति के अनुसार बहने दिया जाय और उसे अपने भावी रूप निर्माण की स्वतंत्रता दी जाय। नागर जी भी अपनी उपन्यास रचना प्रक्रिया में 'प्लाट' की चिन्ता नहीं करते है' मौलिकता, निर्माण कौशल, सत्यता, मानव जीवन की समस्याओं की व्याख्या, समाज के वर्ग तथा युग के प्रतिनिधित्व का संकेत जीवन के दोनों पक्षों–महत्वपूर्ण और महत्वहीन का मूल्यांकन और कथानक से संबंद्ध अनुभूतियों की पूर्ण अभिव्यक्ति आदि वस्तु के गुणों को दृष्टिगत रखते हुए नागरजी के समस्त विवेच्य उपन्यास सर्वथा सफल हैं।

नागरजी ने कथानक में उत्सुकता लाने के लिए चमत्कार पूर्ण और जासूसी तिलस्मी ढंग के प्रसंगों की अवतारणा करके वस्तु को कौतूहल मंडित कर दिया है। 'बूँद और समुद्र' के 'बाबा राम जी दास', 'अमृत और विष' के साधु बाबा', 'नाच्यौ बहुत गोपाल' के फकीर बाबा तथा 'मानस का हंस' के 'गोस्वामी तुलसीदास' और 'खंजन नयन' के 'सूरदास' आदि के व्यक्तित्व में कुछ इसी प्रकार की रहस्यात्मकता के दर्शन होते हैं। 'अमृत और विष' में पुलिस इस्पेक्टर द्वारा डाकुओं को पकड़ना, 'नाच्यौ बहुत गोपाल' के बहीदा डाकू द्वारा जैक्सन की हत्या, 'मोहना' द्वारा की जाने वाली अपहरण, बलात्कार, डकैती और हत्या जैसी घटनाओं को भी इसी प्रकार का रूप दिया गया है।

उपन्यासों में कथावस्तु को नाटकीय बनाने के लिये नागर जी ने घटनाओं को चित्र मय बनाकर प्रस्तुत किया है। इस प्रकार का चित्रांकन कथानक के विकास में नाटकीयता उत्पन्न करता है। वस्तु का विकास सहज गति से प्रारम्भ होकर विकसित होता हुआ चरम बिन्दु पर पहुँचकर समाप्त होता है।

नागरजी के कथावस्तु की सर्वप्रमुख विशेषता है– जीवन के कटुतम यथार्थ का चित्रण करते समय भी रोमांस की रंगीनियाँ उनके दृष्टि पथ से कभी भी अदृश्य नहीं होतीं। 'बूँद और समुद्र' के अधिकांश पात्र 'अमृत और विष' के सारे समाज में 'शतरंज के मोहरे' का सम्पूर्ण नवाबी परिवेश, 'महाकाल' के जमीदार और बनियाँ तथा भूख के कारण विवश सामाजिक वातावरण, 'सुहाग' के नूपुर' में माधवी जैसी विवश नारियाँ बड़े–बड़े वणिक् राजे महाराजे, कोतवाल आदि, 'नाच्यौ बहुत गोपाल' के जमीदार, समाज की कुछ नारियाँ, पुरुष, नायिका निर्गुनियाँ और नायक मोहना आदि सभी सामाजिक पात्र सामान्य होते हुए भी किसी न किसी रूप में रोमांस और काम से रोमांस और काम से युक्त हैं। 'एकदा नैमिषारण्ये,' 'मानस का हंस' और खंजन 'नयन' के असाधारण पात्र व्यास, तुलसी और सूर जैसे चरित्र के उत्कर्ष स्वरूप भी रोमांस को नहीं छोड़ पाये। 'तुलसी' जीवन के अन्तिम क्षणों तक रत्नावली और मोहनी को तथा सूर, कन्तो को नहीं भुला पाते है। कुछ विद्वान इसके मूल में नागर जी पर फिल्म जगत का प्रभाव अथवा स्वंय नागर जी का रोमांटिक व्यक्तित्व मानते है। मेरी दृष्टि में तो नागर जी ने समाज के प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान इस रोमांस का यथार्थ ही प्रस्तुत किया है, क्योंकि वे काम को मनुष्य ही नहीं प्राणिमात्र की शारीरिक भूख मानते हैं। 'खंजन नयन' में कन्तों के माध्यम से काम भावना की अनिवार्यता की ओर संकेत भी किया गया है– " अरे मन तो बड़े–बड़े देवी–देवतान हू को डिग जाय है, तुम तो बिचारे महात्मा हौ।"[227]

नागरजी ने अपने वस्तु–शिल्प को कलात्मक एवं आकर्षक बनाने के लिए वस्तु के विकास में विविध प्रविधियों को अपनाया। वर्णनात्मक, नाटकीय अथवा संवादात्मक, आत्म कथात्मक, प्रतीकात्मक, इण्टरव्यू, डायरी और समाचार पत्र की कतरने पद्धतियाँ उनके उपन्यासों में उल्लेखनीय हैं। 'मानस का हंस' में तथा 'खंजन नयन' में वर्तमान अनुभवों में अतीत के संस्मरणों

को संजोकर श्रृंखला बद्ध करने के लिए पूर्व दीप्ति प्रविधि का निर्वाह अत्यन्त कौशल के साथ किया गया। तुलसी और सूर के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का अंकन करने के लिए मनोविश्लेषणात्मक प्रविधि का सहारा लिया गया है। 'महाकाल', 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष' 'एकदा नैमिषारण्ये' में विशेष रूप से समीक्षात्मक प्रविधि का प्रयोग किया गया है। 'बूँद और समुद्र' में समाचार पत्रों की कतरने और रेडियों समाचारों को वस्तु के विकास में प्रयुक्त किया गया। 'अमृत और विष' में डायरी पद्धति का प्रयोग दृष्टव्य है। 'एकदा नैमिषारण्ये' में नारद, प्रवचन शैली का प्रयोग करते है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की रचना इण्टरव्यू शैली में करके निर्गुनियाँ के अतीत जीवन के कटु सत्यों का उद्घाटन किया गया है। 'बूँद और समुद्र' में वस्तु का विकास सिलसिले से नहीं किया जाता 'मानस का हंस' में कथा एक पात्र नहीं अनेक पात्र कहते हैं। 'सेठ बाँकेमल' में एक नहीं अनेक कथाएँ चलती है, 'अमृत और विष' में कथा में से कथा और उपन्यास में से उपन्यास निकलता है। 'मानस का हंस' में व्यक्ति के अन्तर्मन का चित्रण करते हुए तुलसी के वर्तमान और भावी जीवन का भी चित्रण है। इसीलिए कथा में घटना क्रम नहीं है। इसमें कथा आदि मध्य और अन्त की विभिन्न स्थितियों से होती हुई विकास नहीं पाती। इसमें कथा वस्तु वर्तमान से अतीत की ओर उन्मुख होती है।

जहाँ तक नामकरण का प्रश्न है 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष,' 'मानस का हंस', और 'खंजन नयन' उपन्यासों का नामकरण क्रमशः 'व्यक्ति और समाज', 'सत् और असत्' अथवा 'सुख और दुख' या 'गुण और दोष' राम, काम, संघर्ष और स्याम, काम, संघर्ष के प्रतीक गोस्वामी तुलसी दास और सूरदास के रूप में किया गया है। 'बूँद और समुद्र' के संबंध में डॉ0 प्रेम भटनागर का कथन बिल्कुल सत्य प्रतीत होता है– ''जीवन सागर में डुबकी लेने वाले कथाकार ने महिपाल, कर्नल, सज्जन, वन कन्या, ताई, कल्याणी जैसे महत्वपूर्ण बूँद रत्न जोड़े हैं। इसमें भारतीय समाज के नागरिक वर्ग का जीवन प्रतीकात्मक महा काव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।''[228]

संकेत सन्दर्भ –

1. खंजन नयन। पृष्ठ–09
2. ,, ,, पृष्ठ–13
3. बूंद और समुद्र। पृष्ठ–09–10
4. ,, ,, पृष्ठ–10
5. महाकाल। पृष्ठ–211
6. ,, ,, पृष्ठ–30
7. ,, ,, पृष्ठ–23
8. ,, ,, पृष्ठ–25
9. ,, ,, पृष्ठ–71
10. ,, ,, पृष्ठ–96
11. ,, ,, पृष्ठ–113
12. ,, ,, पृष्ठ–227
13. ,, ,, पृष्ठ–230
14. ,, ,, पृष्ठ–95
15. ,, ,, पृष्ठ–65
16. प्रकाश चन्द्र मिश्र–नागरः उपन्यास कला। पृष्ठ–62
17. अमृतलाल नागर के उपन्यास–डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी। पृष्ठ–61
18. डॉ0 राम विलास शर्मा–आस्था और सौन्दर्य। पृष्ठ–133
19. विवेक के रंग सं0–डॉ.देवी शंकर अवस्थी– दो अस्थाएँ लेखक राजेन्द्र यादव। पृष्ठ–258
20. सेठ बाँकेमल। पृष्ठ–83
21. ,, ,, पृष्ठ–110
22. डॉ0. दामोदर वाशिष्ठ, उपन्यासकार अमृतलाल नागर। पृष्ठ–131
23. डॉ. सुरेश सिन्हा–हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–240–241
24. नवाबी मसनद की भूमिका। पृष्ठ–02
25. सेठ बाँकेमल। पृष्ठ–365–366
26. डॉ0. सुषमा धवन–हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–66
27. डॉ0 सरोजनी त्रिपाठी–आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास। पृष्ठ–266–267
28. डॉ0 शिव नारायण श्रीवास्तव–हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–433
29. अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–73

30. डॉ0 प्रताप नारायण टण्डन–
हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास। पृष्ठ–339
31. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–113
32. डॉ0 सुन्दर लाल कथूरिया–आधुनिक साहित्यः विविध परिदृश्य वीरेन्द्र नाथ मिश्र का लेख 'सामाजिक संदर्भों का व्यापक आधार फलक'। पृष्ठ–175
33. बूंद और समुद्र (1)उद्दालक ऋषि–पुत्र श्वेतकेतु की कथा। पृष्ठ–99
(2)चार कुत्तों का किस्सा। पृष्ठ–125
(3)राज कुमार और परी की कहानी। पृष्ठ–242–243
34. मिसेज पार्क–पार्लिया मेंट्रीरिटर्न आफ़ ट्रीटीज। पृष्ठ–71–74
35. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी–अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–101
36. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–11
37. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद–डॉ0 त्रिभुवन सिंह। पृष्ठ–532
38. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–121
39. ,, ,, ,, पृष्ठ–223
40. डॉ0 शशि भूषण सिहल–हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ। पृष्ठ–383
41. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–55
42. ,, ,, पृष्ठ–55
43. ,, ,, पृष्ठ–55
44. ,, ,, पृष्ठ–55
45. ,, ,, पृष्ठ–58
46. ,, ,, पृष्ठ–64
47. ,, ,, पृष्ठ–64
48. ,, ,, पृष्ठ–65
49. ,, ,, पृष्ठ–65
50. ,, ,, पृष्ठ–67
51. ,, ,, पृष्ठ–68
52. ,, ,, पृष्ठ–98
53. ,, ,, पृष्ठ–99
54. ,, ,, पृष्ठ–130
55. ,, ,, पृष्ठ–234
56. ,, ,, पृष्ठ–134
57. ,, ,, पृष्ठ–267

58. हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–437
59. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–95
60. ,, ,, पृष्ठ–101
61. ,, ,, पृष्ठ–265
62. डॉ0 रामगोपाल सिंह चौहान, आधुनिक हिन्दी साहित्य। पृष्ठ–259
63. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–255
64. प्रकाश चन्द्र मिश्र– नागर : उपन्यास–कला। पृष्ठ–201
65. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य। पृष्ठ–129
66. अमृत और विष। पृष्ठ–400
67 ,, ,, ,, पृष्ठ–429
68. डॉ0 शिव नारायण श्रीवास्तव– हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–440
69. अमृत और विष। पृष्ठ–34
70. डॉ0 सुरेश सिन्हा– हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–256
71. ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–256
72. ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–256
73. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–69
74. ,, ,, पृष्ठ–325
75. एकदा नैमिषारण्ये, अपनी बात। पृष्ठ–08
76. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–106–107
77. एकदा नैमिषारण्ये– भूमिका। पृष्ठ–08
78. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–53
79. ,, ,, ,, पृष्ठ–548
80. ,, ,, ,, पृष्ठ–550
81. ,, ,, ,, पृष्ठ–366
82. ,, ,, ,, पृष्ठ–361
83. ,, ,, ,, पृष्ठ–463
84. ,, ,, ,, पृष्ठ–473
85. ,, ,, ,, पृष्ठ–329
86. ,, ,, ,, पृष्ठ–427
87. ,, ,, ,, पृष्ठ–292
88. ,, ,, ,, पृष्ठ–04
89. ,, ,, ,, पृष्ठ–17

90.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–51
91.	,, ,, ,,	पृष्ठ–53
92.	,, ,, ,,	पृष्ठ–54
93.	डॉ0 दामोदर वाशिष्ठ– उपन्यासकार–अमृतलाल नागर।	पृष्ठ–89
94.	रामदरश मिश्र–हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा।	पृष्ठ–227–228
95.	मानस का हंस।	पृष्ठ–52
96.	,, ,,	पृष्ठ–57
97.	,, ,,	पृष्ठ–103
98.	,, ,,	पृष्ठ–130
99.	,, ,,	पृष्ठ–252
100.	,, ,,	पृष्ठ–20
101.	,, ,,	पृष्ठ–21
102.	,, ,,	पृष्ठ–24
103.	,, ,,	पृष्ठ–17
104.	,, ,,	पृष्ठ–53
105.	धर्म युग–08 अप्रैल 1973।	
106.	धर्म युग–08 अप्रैल 1973।	
107.	मानस का हंस।	पृष्ठ–58
108.	,, ,,	पृष्ठ–72
109.	,, ,,	पृष्ठ–81
110.	,, ,,	पृष्ठ–84–85
111.	,, ,,	पृष्ठ–105
112.	,, ,,	पृष्ठ–105
113.	,, ,,	पृष्ठ–112
114.	राम दरश मिश्र–हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा।	पृष्ठ–228
115.	,, ,, ,, ,, ,, ,,	पृष्ठ–228
116.	,, ,, ,, ,, ,, ,,	पृष्ठ–229
117.	हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा।	पृष्ठ–230
118.	मानस का हंस।	पृष्ठ–187
119.	कवितावली उत्तर काण्ड।	पृष्ठ–96–97
120.	मानस का हंस।	पृष्ठ–184
121.	,, ,,	पृष्ठ–214

122. मानस का हंस। पृष्ठ–282

123. ,, ,, पृष्ठ–263

124. ,, ,, पृष्ठ–282

125. ,, ,, पृष्ठ–309

126 ,, ,, पृष्ठ–321–322

127. कवितावली, पद। पृष्ठ–138

128. मानस का हंस। पृष्ठ–348

129. ,, ,, पृष्ठ–348

130. धर्म युग,08 अप्रैल 1973।

131. धर्म युग,08 अप्रैल 1973

132. डॉ0 दामोदर वाशिष्ठ–उपन्यासकार–अमृतलाल नागर। पृष्ठ–119

133. मानस का हंस। पृष्ठ–437

134. डॉ0 दामोदर बाशिष्ठ–उपन्यासकार–अमृतलाल नागर। पृष्ठ–125

135. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–126

136. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–126

137. मानस का हंस। पृष्ठ–184

138. ,, ,, पृष्ठ–77–78

139. ,, ,, पृष्ठ–368

140. आलोचना, अंक 28। पृष्ठ–73

141. मानस का हंस। पृष्ठ–104

142. डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी–अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–198–199

143. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–200

144 सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–13

145. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–26

146. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–75

147. सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–80

148. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–83

149. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–112

150. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–115

151. डॉ0 सत्य पाल चुघ, आस्था के प्रहरी। पृष्ठ–131

152. डॉ0अमर जायसवाल, हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन। पृष्ठ–147

153. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–80

154. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–98

155. ,, ,, ,, पृष्ठ–90

156. ,, ,, ,, पृष्ठ–300

157. ,, ,, ,, पृष्ठ–184

158. ,, ,, ,, पृष्ठ–111

159. ,, ,, ,, मुख्य क्वर।

160. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–181

161. ,, ,, ,, पृष्ठ–82

162. डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–206

163. डॉ0 अमर जायसवाल, हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन। पृष्ठ–142–143

164. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–291

165. ,, ,, ,, पृष्ठ–263

166. ,, ,, ,, पृष्ठ–113

167. दस्तावेज, विशेषांक, अक्टूबर 1978। पृष्ठ–28

168. डॉ0 अमर जायसवाल, हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन। पृष्ठ–144

169. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–76

170. ,, ,, ,, पृष्ठ–269

171. ,, ,, ,, पृष्ठ–319

172. ,, ,, ,, पृष्ठ–117

173. डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–209

174. डॉ0 अमर जायसवाल, हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन। पृष्ठ–144

175. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–210

176. ,, ,, ,, पृष्ठ–340

177. ,, ,, ,, पृष्ठ–324

178. ,, ,, ,, पृष्ठ–253

179. ,, ,, ,, पृष्ठ–171

180. ,, ,, ,, पृष्ठ–103

181. ,, ,, ,, पृष्ठ–109

182. मनोरमा, जनवरी 1979 प्रथम पक्ष। पृष्ठ–31

183. अमृतलाल नागर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–356

184. डॉ0 अमर जायसवाल, हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन। पृष्ठ–147

185. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–148

186. डॉ0 अमर जायसवाल, हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन। पृष्ठ–148

187. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–149

188. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–150

189. खंजन नयन। पृष्ठ–09

190. ,, ,, पृष्ठ–13

191. ,, ,, पृष्ठ–13–14

192. ,, ,, पृष्ठ–26

193. ,, ,, पृष्ठ–45

194. ,, ,, पृष्ठ–53–54

195. ,, ,, पृष्ठ–54

196. ,, ,, पृष्ठ–58–59

197. ,, ,, पृष्ठ–74

198. ,, ,, पृष्ठ–75

199. ,, ,, पृष्ठ–102

200. ,, ,, पृष्ठ–109

201. ,, ,, पृष्ठ–110

202. ,, ,, पृष्ठ–113

203. ,, ,, पृष्ठ–119

204. ,, ,, पृष्ठ–120

205. ,, ,, पृष्ठ–123

206. ,, ,, पृष्ठ–123

207. ,, ,, पृष्ठ–131

208. ,, ,, पृष्ठ–139

209. ,, ,, पृष्ठ–138

210. ,, ,, पृष्ठ–151

211. ,, ,, पृष्ठ–156–157

212. ,, ,, पृष्ठ–158

213. ,, ,, पृष्ठ–176

214. ,, ,, पृष्ठ–190

215. ,, ,, पृष्ठ–227

216. ,, ,, पृष्ठ–231

217. ,, ,, पृष्ठ–126

218. खंजन नयन। पृष्ठ–22
219. ,, ,, पृष्ठ–24
220. ,, ,, पृष्ठ–60
221. ,, ,, पृष्ठ–61–62
222. ,, ,, पृष्ठ–43
223. ,, ,, पृष्ठ–51
224. ,, ,, पृष्ठ–56
225. ,, ,, पृष्ठ–70
226. ,, ,, पृष्ठ–120
227. ,, ,, पृष्ठ–120
228. डॉ0प्रेम भटनागर–हिन्दी उपन्यास शिल्प–बदलते परिप्रेक्ष्य। पृष्ठ–295

अध्याय–छह

1. पात्र एवं चरित्रांकन शिल्प।

(क) पात्रों का चयन, निर्माण।

(ख) पात्रों का वर्गीकरण।

(ग) पात्रों का चारित्रिक अनुशीलन।

(घ) नारी–पुरुष।

2. चरित्रांकन शिल्प की विविध भंगिमाएँ।

(क) पात्रों का प्रस्तुतीकरण।

(ख) नामकरण।

(ग) मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन प्रणाली।

निष्कर्ष।

पात्र एवं चरित्रांकन शिल्प

उपन्यास का सीधा संबंध मानव जीवन से है। उपन्यास में जो वस्तु अपना सर्वाधिक प्रभाव छोड़ती है, वह है उसके पात्र अथवा चरित्र। यह सत्य है कि पात्रों का व्यक्तित्व कथानक की सीमा में आबद्ध होता है किन्तु आधुनिक उपन्यासों में पात्रों का महत्व इतना मुखरित हो गया है कि कथानक की सीमा भी टूट गयी है।

'हिन्दी साहित्य कोश' में दी गई परिभाषा के अनुसार– "पात्र कथानक साहित्य का अन्यतम तत्व है। चरित्र वे व्यक्ति हैं जिनके द्वारा कथानक की घटनाएँ घटती हैं अथवा जो उन घटनाओं से प्रभावित होते है इन्हीं व्यक्तियों के क्रियाकलाप से कथानक और कला वस्तु का निर्माण होता है। कथा की कल्पना में ही पात्रों की स्थिति निहित है।"[1] चरित्र के संबंध में **बेवस्टर** का मत है– "मनुष्य जो कुछ है वही उसका चरित्र है।"[2] मनुष्य जो कुछ आज है निश्चित रूप से कल वैसा नहीं रहेगा क्योंकि परिवर्तन और विकास सृष्टि का शाश्वत नियम है। " यह परिवर्तन और विकास व्यक्ति के मूल में होता है। व्यक्ति का मूल उसका अन्तःकरण है। विकासोन्मुख अन्तःकरण ही मूल चरितत्र है। और किसी क्षण विशेष की विकासावस्था है उसका व्यक्तित्व ।"[3]

व्यक्ति–व्यक्ति से भिन्न होता है। फिर भी उनमें कुछ पारस्परिक समानताएं होती हैं–"उपन्यास चरित्र–चित्रण के रूप में अभिन्नत्व में भिन्नत्व और भिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाता है। "[4]

" इस प्रकार चरित्र–चित्रण से अभिप्राय यह निकलता है कि उपन्यास में पात्रों को पर्याप्त मूर्तिमत्ता तथा स्वाभाविकता के साथ चित्रित किया जाय जिससे वे उस क्षण व्यक्तित्व धारण कर ले। यह व्यक्तित्व चरित्र के विकास की विभिन्न अवस्थाओं तथा प्रक्रियाओं का परिणाम है। पात्रों के चरित्र का क्रमिक निर्माण ही उपन्यास की वास्तविक समस्या है। "[5]

"पात्रों का संगतिपूर्ण चरित्र–विकास तथा उनकी पूर्ण प्रतीति कराना उपन्यासकार का प्रमुख कर्तव्य है। रचनाकार अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए अनेक शब्द मूर्तियों की रचना करता है इनके साथ वह नाम तथा लिंग जोड़ता है। उन्हे अनुभव प्रदान करता है उनसे उद्धरण चिह्नों में बात–चीत करवाता है। कदाचित् उनसे एक सा व्यवहार भी करवाता है। यह शब्द मूर्तियाँ ही उपन्यास के पात्र हैं।"[6]

उपन्यास के ये पात्र प्रायः कल्पित होते है किन्तु साथ ही साथ उनमें वास्तविक जगत के पात्रों का प्रतिबिम्ब भी कहीं न कहीं अवश्य होता है। ये पात्र वास्तविक पात्रों से साम्य रखते है।"[7] जिससे उपन्यास की सत्यता और वास्तविकता में सन्देह नहीं रहता। औपन्यासिक पात्र हमारे परिचित से होते हैं क्योंकि उनमें कही न कहीं प्रतिच्छाया दिखायी पड़ती है। इसके

अतिरिक्त वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी रखते हैं क्योंकि वे वास्तवित जगत के विभिन्न व्यक्तियों की विशेषताओं के समन्वित रूप हैं।

औपन्यासिक पात्र वस्तु जगत के आधार पर निर्मित किये जाते है। उपन्यासकार वस्तु जगत के पात्रों से उतना ही अंश लेता हैं, जितना वह अपने पात्रों के व्यक्तित्व में खपा सकें। वह अपने पात्रों से पूर्ण परिचित रहता है और उनके वाह्य तथा अन्तरंग जीवन का विश्लेषण और चित्रण भी करता है। वह कल्पना के माध्यम से व्यक्ति का व्यक्त और अव्यक्त दोनो रूप मूर्त करता है। चरित्र के विकास का कार्य कारण श्रृंखला के रूप में चित्रण करना उपन्यासकार का प्रमुख कर्तव्य है। उपन्यास के पात्रों के चारित्रिक विकास की प्रत्येक दिशा और दशा पूर्व व्यक्त कारणों के अनुरूप स्वाभाविक और सानुकूल होती है। पात्र अधिक व्यवस्थित होते हैं।

औपन्यासिक पात्र यथार्थ से प्रतीत होते हुए भी वास्तविक पात्रों से किन्हीं स्तरों पर भिन्न कोटि के सिद्ध होते हैं। वास्तविक जीवन के पात्र मृत्यु पर्यन्त गतिशील रहते हैं। साधारण व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ–साथ जीवन की गतिविधियाँ भी रहती है, किन्तु उपन्यास में उन्हीं घटनाओं का नियोजन होता है, जो चरित्र–चित्रण में सहायक होती है। उपन्यास के पात्र उन्मुक्त रहते है। साधारण रूप से वस्तु जगत के पात्रों का क्रिया–कलाप तथा स्वभाव सभी दुर्भेद्य रहता है। औपन्यासिक जगत में उनके अन्तर्मन का भी स्पष्ट चित्रण रहता है। वस्तु जगत के पात्र भावुक कम होते हैं। क्रियाशील अधिक। आत्म विश्लेषण का अवसर उनके जीवन में कम ही आता है। औपन्यासिक पात्र अधिक व्यवस्थित रूप में नियमित जीवन जीते दिखाई देते हैं क्योंकि उनके जीवन की गतिविधियाँ सोद्देश्य दिखाई जाती हैं।

उपन्यासों में पात्रों की संख्या कथानक और उपन्यासकार के दृष्टिकोण और कला पर निर्भर है।

पात्रों का चयन–निर्माण

नागरजी के सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, सांस्कृतिक उपन्यासों में उनके विषयानुरूप ही समाज के विभिन्न प्रकार के पात्रों का चयन किया गया है। वर्गगत और विभिन्न समस्याओं के निराकरण हेतु, परम्परावादी या आदर्शवादी आधुनिक विचारधारा वाले यथार्थवादी दृष्टिकोण वाले पात्रों का चयन कर उनका निर्माण किया गया है। नागर जी के उपन्यासों की कथा वस्तु नगरीय जीवन से ही संबंधित है। अतः उसी सामाजिक जीवन वाले विभिन्न वर्गों के पात्रों को उनके उपन्यासों में चयनित और निर्मित किया गया है। इनमें समाज के उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग या दलित वर्ग के पात्रों को भी समान रूप से स्थान मिला है। उच्च वर्ग में बुद्धिजीवी, पत्रकार, जमींदार आदि, मध्य वर्ग में भी ऐसे पत्रकार, साहित्यकार और कलाकार हैं, निम्न वर्ग में प्रायः गरीब और समाज में निम्न जातियों में गिने जाने वाले पात्र हैं । ऐतिहासिक उपन्यासों में

उपन्यासकार की कल्पना का कुछ न कुछ अवश्य विद्यमान रहता है। ऐतिहासिक तत्वों की रक्षा करते हुए उनके पल्लवन में कल्पना का प्रयोग किया गया है । अतः नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कुछ पात्र तो इतिहास सम्मत होते हैं और कुछ काल्पनिक। नागर जी के उपन्यासों में मध्य वर्ग को विशेष स्थान दिया गया है। मध्य वर्ग अपनी झूठी शान, काल्पनिक गरिमा और आर्थिक खोखलेपन के बीच अजीब हारा हुआ सा दिखाई पड़ता है। द्वन्द का सबसे बड़ा शिकार वही होता है और जीवन की असंगतियॉ और काम कुण्ठाएँ वहीं अधिक दिखाई देती हैं । नागर जी ने एक सूक्ष्म पारखी और अनुभव युक्त उपन्यासकार होने के कारण अपने उपन्यासों में ऐसे ही संघर्षशील और सजीव पात्रों का चयन एवं सृजन किया है जो मानव मन को स्पर्श करने में पूर्णतः समर्थ हैं । नागर जी के पात्र समाज में बड़ी आसानी से ढूंढे जा सकते हैं, उनके पात्र बनावटी पात्र नही होते हैं। उनके लिए पात्र रचना हेतु जीवन ही प्रमुख है, परिस्थितियॉ प्रधान हैं और ऐसे पात्र अपनी–अपनी परिधि के अनुकूल अपने विचारों और भावों का विकास करते हैं। नागर जी ने कुछ साहित्यिक पात्रों का सृजन किया है जो सहज प्रवाह से विकास पाते हैं और कुछ पात्र आदर्शवाद की सृष्टि के लिए निर्मित किये गये हैं । ऐसे पात्र लेखक के आदर्शो और सिद्धान्तों के वाहक हैं, जैसे– 'बूंद और समुद्र' के बाबा रामजी दास और 'शतरंज के मोहरे' के दिग्विजय ब्रह्मचारी। नागर जी ने प्रेमचन्द के समान ही व्यक्ति चरित्र को सामाजिक प्रतिबद्धता के लिए उत्तरदायी ठहराया है। इसीलिए नागर जी के पात्र इसी जगत के अच्छाइयों और बुराइयों से युक्त है। ''नागर जी पात्र सृष्टि के विषय में प्रतिनिधि परिस्थितियों में, प्रतिनिधि पात्रों की सृष्टि के समर्थक है।''[8]

नागर जी के उपन्यासों में व्यक्ति और टाइप दो प्रकार के पात्रों का सृजन और निर्माण हुआ है। इनमें पहले प्रकार के पात्रों में 'बूँद और समुद्र' के सज्जन, महिपाल, कर्नल और बाबा रामजी दास प्रमुख पात्र हैं, जो समाज के प्रतिनिधि होकर भी व्यक्ति अधिक हैं, दूसरे प्रकार में राजा साहब, सेठ रूप रतन, सालिगराम जायसवाल, कवि विरहेश आदि पात्र टाइप अधिक हैं, व्यक्ति कम। नागर जी ने अपने उपन्यासों में समाज के विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों को पात्र के रूप में चयन कर उनका निर्माण किया है– ''पुरुष वर्ग में स्वार्थी, दम्भी, शराबी, वेश्यागामी, पत्नी को छोड़कर परस्त्री में रमने वाले ढोंगी, रुपये के बल पर न्याय, धर्म, कला सबको खरीद लेने वाले धनिक, दुर्बल चरित्र वाले बुद्धि जीवी, सुधारक और कलाकार आदि के बड़े ही सजीव चित्र इस उपन्यास (बूँद और समुद्र) में एकत्र है। समाज के अन्धकार पक्ष के साथ–साथ प्रकाश को भी देखने–दिखाने का प्रयत्न किया गया है और इसीलिए इसमें निस्वार्थ, त्यागी एवं परोपकारी व्यक्तियों के चित्र भी अंकित हैं। नारी पात्रों में भी नागर जी ने बहुरंगी सृष्टि की है। आदर्श गृहिणी, वेश्या, पति परायणा, समाज सेविका, राजनीति में रूचि रखने वाली, स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाली, टोना–टोटका, भूत–प्रेत और जन्तर–मन्तर आदि में रमने वाली, पर पुरुष से सम्पर्क रखने वाली, नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाली, रूढ़ियों से ग्रस्त, अतिरिक्त प्रेम एवं वासना में घुटने

वाली, अत्याचार की शिकार बहू, अत्याचार का प्रखर विरोध करने वाली, पुरूष वर्ग की भोगलिप्सा का शिकार बनी, पति तिरष्कृता, आधुनिक फैंशन में भटकने वाली, पति पर अत्याचार करने वाली विवाहिता, प्रेमिका, विधवा, परित्यक्ता, परिस्थिति–वश वेश्या कर्म करने के लिए बाध्य, पारिवारिक पुरुषों द्वारा व्यभिचार की शिकार और कई रूपों में विद्रोहिणी नारी। नागर जी ने विभिन्न मनोवृत्तियों पर चलने वाले स्त्रियोचित दुर्बलता से युक्त पात्रों की सृष्टि की है जो उनकी प्राचीन एवं नवीन जीवन दृष्टि की देन है।

पात्रों का वर्गीकरण

विभिन्न दृष्टियों से पात्रों का वर्गीकरण किया गया है। **1.कथानक की दृष्टि से प्रधान और गौण–** प्रधान में नायक–नायिका और गौण में प्रधान पात्र के सहायक कथानक की गति, वातावरण के निर्माण और परिवर्तन में सहायक।

2. चरित्र विकास की दृष्टि से– पात्रों के दो भेद प्राप्त होते हैं।

1. गतिशील पात्र 2. स्थिर पात्र।

गतिशील पात्र अपने व्यक्तित्व को गतिशील बनाये रखते है अर्थात् यदि आरम्भ में उनका चरित्र दुर्गुणों से भरपूर है तो आगे चलकर वे गुणों से युक्त भी हो सकते हैं अथवा प्रारम्भ में सद्गुणी पात्र भी दुर्गुणों से युक्त हो सकते है। ऐसे पात्र उपन्यास की वस्तु की आवश्यकतानुसार अपना चरित्र परिवर्तित करते रहते हैं।

स्थिर पात्र आरम्भ से अन्त तक एक रूप ही रहते है। ऐसे पात्र प्रायः व्यक्ति नहीं टाइप होते हैं और इसीलिए वे वर्गगत विशेषताओं से युक्त प्रतीकात्मक होते हैं।

3. गुणों के आधार पर–

1. सामूहिक अर्थात् वर्गगत गुणों से युक्त।
2. व्यक्तिगत अथवा वैयक्तिक।
3. मानवीय।

उपर्युक्त वर्गीकरण केवल सुविधा की दृष्टि से किया गया है अन्यथा इसमें कोई विभाजक रेखा नही खींची जा सकती है। "सामान्यतया उपन्यासान्तर्गत पात्र दो विशिष्ट श्रेणियों में बँट जाते हैं..... व्यक्ति प्रतिनिधि पात्र..... वैयक्तिक गुणों से युक्त ऐसे पात्र अन्तर्मुखी उपन्यासों का विश्लेषण करते हैं, दूसरे वर्ग प्रतिनिधि जो एक समूह विशेष की सामान्य प्रवृत्तियों से युक्त होते है और अन्तर्मुखी उपन्यासों को गति देते है। वर्गीकरण के वभिन्न आधार पात्रों को वैविध्य के साथ–साथ विषयैक्यता भी देते हैं। आधारों की भिन्नता के कारण पात्र स्वरूपता की भिन्नता उपस्थित होगी। अतः इसमें सार्वभौमता न तो सम्भव है और न काम्य है। औपन्यासिक पात्रों का वर्गीकरण आधारों की इस भिन्नता का प्रतिफलन होगा।"[9]

4. **लिंग भेद की दृष्टि से**–लिंग भेद की दृष्टि से दो प्रकार के पात्र ही दृष्टिगोचर होते हैं नारी पात्र, पुरुष पात्र।

पात्रों का चारित्रिक अनुशीलन

संपूर्ण औपन्यासिक पात्रों को सामान्य रूप से दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है– नारी वर्ग, पुरुष वर्ग– उपन्यासों में नारी वर्ग का ही चित्रण विशेष रूप से मिलता है। अब हम नागर जी के उपन्यासों के नारी पात्रों के बहुरंग चरित्र का अनुशीलन उनके भिन्न–भिन्न उपन्यासों में पृथक–पृथक करेंगे।

नारी पात्र

एकदा नैमिषारण्यें

उपन्यास के नारी पात्रों में इज्या, भार्गव, प्रज्ञा और सरयू वाशिष्ठी प्रमुख हैं। इज्या कश्यप गोत्रीय महात्मा भूदेव की पुत्री है। इज्या का प्रतीकार्थ है–पूजा अथवा यज्ञ। नागर जी ने इज्या के प्रतीकार्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है–"ऋषि की सुगति इज्या ही है। वही उसकी सुगति और कर्म और शक्ति है।"[10] इज्या के सौन्दर्य–चित्रण द्वारा भी लेखक ने 'इज्या' शब्द को व्यख्यायित किया है– "फूल छड़ी सी देह, गौर वर्ण, आँखें अग्नि और अमिय से भरी बड़ी–बड़ी कटोरियों जैसी उनमें ज्योति रस बनकर छलक रही थी।"[11] सोमाहुति के शब्दों में– "इज्या बालू पर खींची हुई रेखा नही, जिसके ऊपर ज्ञानरूपी हाथ फेरकर उसका अस्तित्व मिटाया जा सके।... .....हर प्रश्न का उत्तर इज्या है, हर भाव जब बिम्ब का रूप धारण करता है तो इज्या बन जाता है।"[12]

बाशिष्ठी–

सरजू मइया को पर्याय से माँ बाशिष्ठी ही कहा जाता है। अयोध्या नगरी में ही उनका सम्मान नहीं है अपितु चन्द्र गुप्त जैसे विजेता और राजनीजिज्ञ महाराज भी उनकी कृपा चाहते हैं। मिलने पर आश्वस्त होते है तान्त्रिक नागेश्वर की कुटिलताओं से केवल अयोध्या ही नहीं सम्पूर्ण प्रान्तर भूमि में निवास करने वाले लोग थर्राते थे किन्तु, सरजू मइया की चालो से स्वयं नागेश्वर भी भयभीत रहता है। इन दो उदाहरणो से माँ बाशिष्ठी के महत्व को आँका जा सकता है। वे सभी की शरण दाता है उनके आश्रम में कोई भी और किसी के द्वारा भी सताया हुआ व्यक्ति निवास कर सकता था। वे प्रज्ञा और उसके पति–भारत को नागेश्वर के विरोध के उपरान्त भी शरण देती है सोमाहुति को पुत्रवत प्रेम करती है। आजन्म ब्रह्मचारिणी रहते–रहते वे मरुभूमि के समान हो गयी है। क्योंकि "मातृत्व की वेदना का कभी अनुभव इन्होंने नहीं किया।" "आजीवन अपनी उर्वरता को नकारती रहीं हैं।" परन्तु इतना सब होने के उपरान्त भी उनका हृदय मैदानों जैसा व्यापक और विशाल है। वे निःसंदेह खरी तपस्विनी, महापरोपकारिणी है। अतः

परम पूजनीया है।'' उनका चरित्र अनेक घटना चक्रो के साथ जुड़ा है वे अनेक पात्रों को अभयदान देकर गतिशील बनाती हैं।

इज्या–

यह नागरजी की काल्पनिक और प्रतीकात्मक नारी सृष्टि है। वस्तुतः उपन्यास में इज्या इसी भाव से चित्रित है। एक स्थान पर नागर जी इज्या का रेखाचित्र प्रस्तुत करते हैं। ''इज्या के होठों पर बुझी हुई मुस्कान की एक रेखा खिंच गई।'' खिसियायें थके स्वर में कहा ''अपना गन्तव्य मैं नहीं जानती।'' सुनकर भार्गव सध गये। एक बार गहरी सतर्क दृष्टि से उसे देखा। बड़ी–बड़ी आँखें ऐसी लगीं मानों काँटे में फँसी मछलियाँ हों। सरलता और निश्छलता की छाप यातनाओं से पिटे हुए सुन्दर चेहरे पर भी स्पष्ट झलकती थी।''[13] इज्या को देखते ही ''भार्गव के कलेजे में प्रश्न रूपी नाग पर गुल–गुला फूल सा सौन्दर्य भार अतुल होकर नाचने लगा।''[14]

सोमाहुति काशी, अयोध्या तथा नैमिषारण्य में महायज्ञ के आयोजन के उद्देश्य से अनेकानेक महानुभावों से भेंट करने जाते हैं। एक रात सहसा उनके मथुरा स्थित आश्रम के ग्रन्थाकार पर आक्रमण हो जाता है। उस समय इज्या अपने प्राणों की चिंता न कर पाण्डु लिपियों की रक्षा करती है, इसलिए समग्र भारती संतति के लिए पूज्य हैं और समग्र ज्ञान की रक्षिका हैं। इज्या भार्गव के लिए चुम्बकीय शक्ति है।''[15]

प्रज्ञा–

प्रज्ञा अथवा प्रतिभा या सदसद् विवेकिनी बुद्धि, भारत चन्द अथवा भारत वर्ष के लिए आवश्यक है किन्तु प्रज्ञा के साथ पूजा अथवा श्रद्धा समन्वित बुद्धि ही प्राचीन कहे जाने वाले इस देश के ज्ञान भण्डार की रक्षा करने में समर्थ हो सकती है। इसीलिए प्रचेता, प्रगतिशील चेतना धारण करने वाले, शिखर चन्द्र अर्थात् शिखरासीन मिलकर ही भारत को ज्ञान के क्षेत्र में सार्वभौम शक्ति बना सकते है। प्रज्ञा के द्वारा समग्र सनातन भरत संस्कृति की रक्षा हो सके अन्यथा भृगु वत्स जैसे पापाचारी के द्वारा सोमाहुति का ग्रन्थागारम् भस्म करवा कर उसको अपार आनन्द तो अनुभव होता किन्तु समग्र संचित सनातन सांस्कृतिक ज्ञान गरिमा सदैव के लिए समाप्त हो जाती। इस उपन्यास के नारी पात्र कल्पित हैं किन्तु उपन्यास के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। दोनो ही सार्थक और उपन्यास को गति प्रदान करने वाले हैं।

बूँद और समुद्र

इस उपन्यास में प्रधान नारी पात्र, वन कन्या के अतिरिक्त कई गौण नारी पात्रों का चरित्राकंन नागर जी की औपन्यासिक कला और चरित्राकंन शिल्प के कौशल को प्रकट करता है। ताई, नन्दो, बड़ी, डॉ० शीला स्विंग, कल्याणी आदि प्रमुख नारी पात्र हैं।

वन कन्या–

अत्याचारों और अनैतिक वातावरण से दूषित परिवार में पालित–पोषित विद्रोहिनी कन्या उपन्यास में नायिका के रूप में चित्रित की गई है। कन्या अपने परिवार के विषैले वातावरण का पर्दा हटाते हुए स्वयं सज्जन से कहती है– "मेरी ताई और माँ में सौत का रिश्ता चलता है।"[16] कन्या के पिता मास्टर जगदम्बा सहाय अपने पुत्र का विवाह पन्द्रह हजार रूपये के लालच में एक ऐसी लड़की से कर देते हैं जिसका केवल ऊपरी भाग स्त्री जैसा विकसित होता है। इसे 'पई' कहा गया है। लेखक ने पात्रों के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया है– "पई क्या है ? प्रकृति का एक मजाक। ऐसी औरत जाहिर में औरत लगकर भी असल में बेमानी होती है। क्या हिजड़ा ? जी हां । फर्क यही है कि उनका ऊपरी हिस्सा नार्मल औरतों की तरह पूरी तौर पर डेवलब्ड होता है।"[17] इस प्रकार के अश्लील एवं घिनौने वातावरण में कन्या का हृदय विद्रोह कर उठा।"कन्या अहंकारिणी है। नैतिकता की शक्ति उसके अहंकार का पोषण करती है। घर के गंदे वातातरण की प्रतिक्रिया स्वरूप उसका बड़ा भाई और आत्मतेज से दीप्त होकर बालिग हुये। अपने विवाह की ट्रेजडी के बाद उसके बड़े भाई तो जिन्दगी से जूझते–जूझते बौरा गये, कन्या ने उनके दिमागी असन्तुलन से भी नसीहत लेकर अपनी नैतिकता को अधिक कसा। हां इतना प्रभाव अवश्य पड़ा कि उसका आन्तरिक विद्रोह अधिक मुखर हो उठा। वह खुले शब्दों में अपने घर के गुरूजनों के कुकृत्यों की उनके मुँह पर निन्दा करने लगी।"[18] कन्या अपनी भाभी की आत्महत्या का कारण अपने पिता को समझती है। न्याय के लिए अपने पिता को जेल तक भिजवाने में कोई संकोच नहीं करती। आधुनिक विचारों वाली कन्या देश और काल की परिस्थितयों से विज्ञ, जागरूक कन्या समाज सेविका बनकर जन कल्याण में तत्पर हो जाती है। उपन्यास की अन्य विद्रोहिणी नारियों ताई, नन्दों और मोहिनी परिस्थिति वश विद्रोह करके भी परिस्थितियों से हार गयीं किन्तु कन्या ने विरोध किया, परिस्थितियों से संघर्ष किया और जीवन को एक नई दिशा दी। कन्या के शारीरिक सौन्दर्य का और उसके व्यक्तित्व का भी उपन्यासकार ने चित्रण किया है। "किसी हद तक अति तक पहुँचा हुआ गोरापान और पानीदार व्यक्तितत्व वन कन्या की विशेषता थी।"[19]

"भूरापन लिए बालों की दो घुंघराली लटें, दोनों कानों पर लटक रहीं थीं। बहुत सुन्दर लगी, बहोत ही सुन्दर।"[20] कन्या लज्जाशीला है। "पुतलियाँ गुलाबी लाज के कच्चे धागों में बँधी अपने आप कानों तक खिंच गयी।"[21] कन्या विचारशील भी हैं। प्रेम के संबंध में अपने विचार व्यक्त करती हुई कहती है कि प्रेम की पहचान बहुत कठिन है किन्तु मैं इतना जानती हूं।" जब कोई व्यक्ति आदर्शो को कर्म से अधिक बातों के सहारे बढ़ाता हुआ दीख पड़े तो समझ लेना कि वह झूठा है।"[22] प्रेम को मनका अभाव मानती हुई वह कहती है "जिस प्रेम पर दुनिया जान देती है मैं उसे मन का एक अभाव मानती हूं। अभाव के सिवा ये और है क्या ? लैला को मंजनू न मिला, मंजनू बिना लैला के रह गया। इसीलिए दुनिया उनके प्रेम के गीत गाती है। मैं पूछती हूँ यही

लैला–मंजनू अगर आपस में विवाह कर पाते तो क्या दुनिया इन्हें अमर प्रेमी मानकर याद रखती।''[23]

कन्या सज्जन से प्रेम अवश्य करती है किन्तु उसका विचार है कि स्त्री और पुरुष को प्रेम भरे एक–दो शब्दों से ही परस्पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए ''स्त्री–पुरुष जीवन में सिर्फ एक ही बार एक–दूसरे को पाते हैं। मेरा इस बात में दृढ़ विश्वास है ओर पाने के लिए उन्हें आपस में अपने आप को अनेक कसौटियों पर कसना होता है। ये जिम्मेदारी का नाता है, रईसों, कलाकारों, मनचलों के दिल बहलाव का खेल नहीं।''[24]

कन्या ईश्वर को मानती है। कहती है।'' मैने कभी इस बात पर सीरियसली विचार तो नहीं किया कि ईश्वर है या नही ? और विचार किया भी तो किसी तर्क से ईश्वर को काट नहीं पाई। अच्छे–बुरे समय में औरों की तरह वह मेरे मन का सहारा भी है। कन्या का चारित्रिक अनुशीलन कराते हुए उपन्यासकार स्वयं कहता है–''उसकी इन उलझनों में एक निजी और गोपनीय उलझन भी पैना काम कर रही थी, अब भी करती है। पैना इसलिए कि अपनी इस उलझन को लेकर आज तक वह किसी के सामने अपना मन खोल नहीं सकी। बड़े भाई से लिहाज के मारे कुछ कहा नहीं जा सकता था और बाहर किसी से भी कहकर वह अपनी नैतिकता, सच्चरित्रता पर आँच नहीं आने देना चाहती थी। आज चौबीस वर्ष की आयु तक कन्या देह से ब्रह्मचारिणी है। यद्यपि संस्कारों ने उसके मनोलोक में अब्रह्मचर्य नहीं फैलने दिया फिर भी वह मदन दहन कर वीत राग तो नहीं ही हो पायी है। उम्र के तकाजे से पुरूप के अंग–संग की सहज स्वाभाविक इच्छा कहीं उसके मन में भूंखी रेंगती थी।''[25]

कन्या बहुजन हिताय–बहुजन सुखाय अपना सर्वस्व न्यौछावर कर समाज सेवा में डूब जाती है। ''वन कन्या भारतीय सुहाग की मूर्तिमती कल्पना।''[26]

संक्षेप में **डॉ0 सुषमा धवन** के शब्दों में हम कह सकते हैं कि ''सज्जन के जीवन के रूपान्तर की मूल वर्तिनी शक्ति वन कन्या का जीवन्त व्यक्तितत्व है। निम्न मध्य वर्ग की एक प्रगतिशील लड़की है जिसे लोग कम्युनिस्ट समझते हैं परन्तु जो वस्तुतः साम्यवादी दल के सदस्यों से ही संबंध रखती है। सत्य एवं न्याय की अडिग आस्था उसके जीवन का आदर्श है। घर के विषाक्त वातावरण और बाहर की स्वार्थपरता ने मानव जाति पर उसके विश्वास को हिला दिया है। साम्यवाद से उसका बौद्धिक लगाव है। उसकी सामूहिक चेतना भी वैयक्तिक दृष्टि से अनुप्राणित है। वह अनुभव करती है कि विभिन्न राजनीतिक दलों का लक्ष्य जनता के नाम पर निजी स्वार्थ सिद्धि करना ही है। राजनीतिक दृष्टि यान्त्रिक बन रही है। जिस व्यक्ति की पीड़ाओं का सामूहिक रूप में दर्शन कर ये राजनीतिक सिद्धान्त बने हैं, उसकी अनुभूति, उसकी तड़प भी अब हमारे मन से निकल गई है। हमारी नजर अब सिर्फ पोलिटिकल रह गई है। कोल्हू के बैल की तरह आदत के कारण चक्कर काटते चले जा रहे हैं। काम कुछ भी नहीं रहा। कन्या उन निस्सार एवं जर्जर रूढ़ियों के प्रति विद्रोहशील है जो मानव विकास में बाधक बनती हैं।''

कन्या की इस उखड़ी हुई मनःस्थिति में उसके जीवन में सज्जन का आगमन उसके मन में एक नया विश्वास जगाता है। सज्जन के प्रति अपने बढ़ते हुए आकर्षण को वह अपने विवेक बल से संयत रखती है और अपने प्रति उसके असंयमित प्रेम भाव पर भी अंकुश रखती है। वह प्रेम को मन का एक अभाव मानती है। अधिकांश काव्य में वर्णित कोरी कल्पना एवं छिछली भावुकता से ओत–प्रोत प्रेमानुभूतियाँ उसकी दृष्टि में प्रवंचना मात्र हैं। कन्या का मन सुलझा हुआ है। उसके विचार ठोस हैं। वह किसी मिथ्या आदर्श की आड़ न लेकर स्त्री–पुरूष संबंध की चरम परिणति विवाह में देखती है। सज्जन के अतीत को वह देखना नहीं चाहती, उसके आज और भविष्य में रुचि रखती है।

कन्या नागर जी के अपने विचारों का प्रतिफलन है। विद्रोही प्रकृति के कारण वह अपने परिवार एवं समाज की नैनिक विकृतियों से विद्रोह करती है। उसका विश्वास घृणित राजनीति और कम्युनिस्ट पार्टी से उठ गया है। अनैतिक वातावरण में दृढ़ इच्छा शक्ति सम्पन्न सच्चरित्र वन कन्या पाठक की आस्था को दृढ़ करती है। सामाजिक क्रान्ति और न्याय के लिए उसका विद्रोह स्वर पाता है और समस्त मानवीय वृत्तियॉ सिद्धान्त और आदर्श उसके सामाजिक दायित्व के उद्‌बोधक हैं। अपनी मानवीय संवेदना, सेवाभावना, असाधारण चरित्र की आन्तरिक निर्मलता के कारण वह शोषित तथा अन्याय पीड़ित नारी वर्ग के लिए क्रान्ति की अग्रदूत है। उसमें निजी आन्तरिक स्फूर्ति और रागों का अबाध प्रवाह भी है। **डा० रघुवंश** ने उसे सामाजिक जीवन के जंगल में उगने वाला व्यक्ति चरित्र कहा है।''[27]

वन कन्या में पुराने और नये जीवन मूल्यों का मिश्रण है। सामाजिक नैतिक मूल्यों से प्रतिबद्ध वन कन्या जागरण की दिशा में जागरूक दिखाई देती है। वह भारतीय नारी की विवशता और समस्या को स्पष्ट करती है–''भाभी का अपराध यही है कि वे औरत हैं और इकनामिकली फ्री नहीं हैं।''[28] वह स्त्री–पुरुष के नैसर्गिक प्रेम संबंध की चरम परिणति पति–पत्नी के सहज रूप में स्वीकार करती है। ''स्त्री–पुरुष जीवन में सिर्फ एक ही बार एक दूसरे को पाते हैं, मेरा इस बात में दृढ़ विश्वास है और पाने के लिए उन्हे आपस में अपने आपको अनेक कसौटियों पर कसना होता है। यह जिम्मेदारी का नाता है, रईसों, कलाकारों, मनचलों के दिल बहलाव का खेल नहीं है।''[29] अपने जीवन में सामाजिक और राजनैतिक विरूपताओं और विषमताओं के प्रति विक्षुब्ध वन कन्या संकट ग्रस्त राजनीतिक दाँव पेंचों का स्पष्टीकरण देती है– ''जनता फुटबाल है। मैच उसी के नाम पर ही हो रहा है। पोलीटिकल पार्टियों के खिलाड़ी ठोकरें भी उसी को लगा रहे हैं। ये इलेक्शन हमारी जनतान्त्रिक समाज व्यवस्था का यही रूप दरशा रहें हैं।''[30]

डॉ० आनन्द प्रकाश त्रिपाठी के शब्दों में– ''वन कन्या व्यक्ति की सामाजिक चेतना को जमाने के लिए दृढ़ संकल्प है किन्तु लेखकीय सहानुभूति पर आश्रित होकर वह अपने व्यक्तित्व की गत्वरता को खो देती है। उसमें उठने वाले तूफान को लेखक ने अपने वैचारिक छद्‌म में

फाँस लिया है। और वह शनैः–शनैः गतिहीन होकर अन्त में एकदम स्थिर हो गयी है। फिर भी वन कन्या आदर्श भारतीय नारी की चेतना का उद्दीप्त चरित्र है।''[31]

वन कन्या नागर जी के उद्देश्य और कल्पना की पूर्ति करती है ''समग्रतः वन कन्या का चरित्र उपन्यास में गतिशील रहा है किन्तु आरम्भ का उसके व्यक्तित्व का तीखा, विद्रोही, तेहे भरा सामाजिक विषमताओं के प्रति क्षुब्ध रूप, सज्जन से विवाह होते–होते शान्त होने लगता है। पहले का अभावों और संघर्षों से भरा जीवन, मध्य वर्गीय चेतना से ऊपर उठकर आकांक्षाओं की तृप्ति बन उसके जीवन को सीधी विश्वास भरी राह की ओर मोड़ देता है, किन्तु निश्चय ही नारी के विद्रोह को उसने स्वर दिये।

ताई– ताई उपन्यास की अस्थिर या गतिशील गौण किन्तु प्रमुख सूत्र धारिणी नारी है। उपन्यासकार ने ताई के चरित्र को रहस्यमय बना दिया है। लेखक ताई का चरित्र भी वर्तमान से अतीत की ओर लाकर अंकित करता है। ताई के माता–पिता बचपन में ही परलोक सिधार गये थे। उस समय वह परिवार में किसी की बच्ची थी जिसे दादा–दादी के अनुचित लाड–प्यार ने हठीली और बड़बोली बना दिया था। जब परिवार में चाचा–चाची की संतान हुई तो लाड–प्यार क्रमशः कम होने लगा। ताई चिड़चिड़ी हो गयी। जैसे–जैसे ताई का अनादर और उपेक्षा हुई उनका अन्तर घृणा से भरता गया। ''लाड से बिगड़ी हुई जबान अन्तर की हिंसा से तीखी हो गयी।''[32] चाची–चाचा ने ताई का विवाह द्वारिका दास से करके अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली। ताई लुटे वैभव की कुल लक्ष्मी बनकर पति के घर आयी। उसके भाग्य से सेठ का सितारा चमक उठा। इससे सेठ को पुत्र प्राप्ति की इच्छा प्रबल हो उठी। किन्तु ताई उन्हें यह सुख न दे सकी। सेठ द्वारिका दास ने दूसरा विवाह कर लिया। लेखक के अनुसार ''जिस दिन उनकी बारात चढ़ी उसी दिन ताई घर छोड़कर चली गई।''[33]

ताई पति के पूर्वजों की हवेली में एकान्तवास करने लगी। हृदय की खीझ और मन के अंधेरे ने ताई के मस्तिष्क को हिंसात्मक भावनाओं से भर दिया। वह इतनी चिड़–चिड़ी और बड़–बड़ी हो गई कि ''अगर ताई के जीवन की बड़ बड़ाहट का रस्सा बटा जाये तो हनुमान जी अपनी दुम–बढ़ा बढ़ाकर थक जायेगें, मगर दुम से रस्सा बड़ा निकलेगा।''[34] इस प्रकार ''तैतीस वर्षों से यह क्रम अविच्छिन्न रूप से चल रहा है। इतने वर्षो में धर्म संरक्षक गो ब्राह्मण प्रति पालक दानवीर राजा बहादुर सर द्वारिका दास अग्रवाल के. सी. आई. ई. की पहली घर वाली जगत ताई बनकर लड़ाका, टोनही, मनहूस आदि उपाधियों से भूषित होकर जमाने भर की छू–छू बन गयी।''[35]

ताई के चरित्र के इस पहलू को देखते हुए कल्पना भी नहीं की जा सकती कि यही ताई बिल्ली के बच्चों को पाकर ममतामयी हो जायेगी। बिल्ली के बच्चों की चिंता वह अपने से अधिक रखती है। वही टोनही ताई अब मि. तारा वर्मा से घृणा करते हुए भी उसका बच्चा जनवाती है, बच्चें की छठी आदि का आयोजन भी धूम–धाम से करती है। ताई के इस आकस्मिक परिवर्तित

रूप को देखकर मि. वर्मा और उनके पति भौचक्के रह जाते हैं। आज उन्होंने ताई के अकल्पनीय रूप के दर्शन किये थे। उन्हे अब भी विश्वास नहीं हो रहा था कि उनके ऊपर तरह–तरह के टोने–टोटके करने वाली, उनसे शत्रुता रखने वाली घृणामयी ताई ही आकार उन्हें इस संकट से उबार गयी। यह निष्काम सेवा, पराएँ के लिए यह प्रेम–भाव ताई में सहसा कहाँ से उत्पन्न हो गया, यह बात उनके लिए एक रहस्य ही बनी रही। घृणामयी ताई उनकी दृष्टि में इस समय देवी थी– रहस्यमयी देवी थी।

उपन्यास कार ताई के शारीरिक गठन का चित्रांकन करते हुए कहता है। ''उभरी हुई हड्डियों वाले लम्बे चेहरे पर कड़ी–कड़ी रेखाएँ और सिकुड़ने उसी तरह गन्दी और मनहूस लगती है जैसे गली की सतह पर अनेक टेढ़ी–मेढ़ी धाराओं में अन्दर की घुटन से उबल कर बहता हुआ नाले का पानी।''[36] तथा ''ताई के काले–काले डन्ठल जैसे दाँत भी चमक उठे।''[37]

ताई का व्यक्तित्व वास्तव में विलक्षण चरित्र की नारी पात्र है। वह जिस पर स्नेह करती है अपना सब कुछ लुटाने के लिए तैयार रहती है। ''मैले कुचैले कपड़े पहने, सदा मनहूस सी लगने वाली ताई, जिनके चारों ओर गालियों, कोसनो, जादू–टोना का माया जाल फैला रहता है, जिन्हे सुबह–शाम छेड़कर बच्चे–बूढ़े और जवान सभी सुख पाते हैं, वह ताई पचास हजार की सम्पत्ति लुटा कर उत्सव मना रही है।''[38] ताई अपने पति पर मूठ फेंक कर वापिस लौटा लेती है और कहती हैं– ''मरन किनारे अब किसी का बुरा नहीं चेतुगीं।''[39]

इसीलिए इतने समय तक लोगों की घृणा का पात्र रहकर अन्त समय में उन्हीं लोगों की जै–जैकार प्राप्त करती है। ''गलियों में दूर–दूर तक टोनही ताई के स्वर्गवास की चर्चा बिजली की तरह फैल गयी। मोहल्ले वाले मृत्यु का समाचार सुनते ही ताई के दरवाजे पर जमा होने लगे। घर के अन्दर औरतों की भीड़ क्रमशः बढ़ने लगी ×××जनता की जबान पर ताई धन्य–धन्य हो रही थी। उनके इधर के कार्य समाज में खूब ही सराहे गये थे। गंगा दशहरे के दिन ताई का देहान्त हुआ। यह बात उनके सीधे स्वर्ग जाने के सुबूत में पेश की जा रही थी। ××× घण्टा घड़ियाल के साथ ताई का विमान उठा। बैण्ड बाजा बजने लगा। मोहल्ले के दो नवयुवक विमान पर मोर्छल डुलाने लगे। ताई का विमान फूलों की तरह लोग उठाये लिये जा रहे थे। जीवन भर ताई को छेड़कर उनकी गालियों से अपना मनोरंजन करने वाले बच्चे, बूढ़े, जवान अन्तिम बार ताई के साथ चले जा रहे थे। आज ताई की लाठी का भय न था, ताई उनके कंधों पर थी, दिलों पर थी, जबानों पर थी।''[40] इसीलिए उपन्यास के प्रबुद्ध पात्र महिपाल द्वारा लेखक कहलाता है–''यार यह औरत भी गजब की करक्टर है।''

डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी के शब्दों में ''कृष्ण की अनन्य भक्त जादू–टोने में विश्वास करने वाली, हिंसा की प्रतिमूर्ति और मानव प्रेम की सम्मिश्रण ताई हिन्दी कथा साहित्य की अनुपम सजीव सृष्टि है, जिसकी गणना होरी और शेखर जैसे पात्रों से की जा सकती है।''[41] डॉ0 राम

विलास शर्मा के शब्दों में "ताई का चरित्र उपन्यास की धुरी है।"[42] ताई को 'भारत माता' की संज्ञा से विभूषित करना नागर जी की भारतीय मानवातावादी जीवन दृष्टि–विशेषकर भारतीय नारी के संदर्भ की संपूर्णता का द्योतक है। ताई भारतीय नारी समाज का प्रति निधि चरित्र है। उसमें कायरता व साहस, सहिष्णुता–असहिष्णुता, संकीर्णता और उदारता, क्रूरता और करुणा की परस्पर विरोधी भावनाएँ मिलती हैं। "वह परस्पर विरोधी गुणों की शाश्वत सृष्टि है। यदि एक ओर समाज एवं मुहल्ले के लोगों के लिए 'निगोड़ों के तनमन में कीड़े पड़े' रोवें–रोवें में कोढ़ हो मरों के पूरे घर की अर्थियाँ साथ–साथ उठे, हैजा हो, प्लेग हो, सीतला खॉय।"[43] गार्भिणी तारा के लिए 'रॉड़ बहुत पेट लिए घूमती है, ऐसे ही कट के गिर जाये, और जमाने भर के लिए 'मरोरे, फुँकोरे, हैजा हो, कीड़े पड़े जैसे वचन उसके मुह से प्रतिक्षण छूटा करते हैं, वहीं दूसरी ओर उसके अंतस के गह्वर में ममत्व, स्नेह, वात्सल्य, करुणा आदि सात्विक भाव भी हिलकोरें लेते हैं, वह बिल्ली के अबोध बच्चों पर अपना अशेष ममत्व उड़ेल देना चाहती है। तारा का प्रजनन करवाती है, राधा–कृष्ण का धूम–धाम से विवाह रचाती है, और सज्जन के विवाहोत्सव पर 'मेरे मन में बड़ी साध रह गई, मेरे भी दोहते होते, किसी का मुंडन कराती, किसी का जनेऊ कराती, मेरे घर टीका आता।"[44] जैसे कथन कहती है।

वस्तुतः ताई पारम्परिक भारतीय संस्कारों में पली नारी है। ताई के संदर्भ में नागर जी की अभिव्यक्ति अति विशिष्ट है।

"ताई का यह चित्र ऑककर अमृतलाल नागर ने हिन्दी उपन्यास को उच्चतम स्तर तक उठाया है।"[45]

नन्दो– यह उपन्यास की गौण और गतिशील नारी पात्रा है। जिसके चरित्र में क्रमशः सद् गुणों के स्थान पर अवगुणों का विकास पाया जाता है। उपन्यासकार इसे भी परिवार के दूषित वातावरण का ही प्रभाव मानता है। नन्दो प्रारम्भ से ही माँ की गोद की अपेक्षा पिता की गोदी में ही घूँमी। पिता का चरित्र अच्छा नहीं था। भभूति, नन्दो को अपनी प्रेमिका के घर भी ले जाते। माँ ने कई बार इसके लिए नन्दो को डाटा भी किन्तु पिता के प्यार के कारण वह नित–नित ढीठ बनती गयी। एक पुर्तानी ने नन्दो को अपनी विवशता का साधन बनाया। परिणाम यह हुआ कि आरम्भ से ही नन्दो को टिकुली, बुन्दी की अपेक्षा सफेद चन्दन की टिकुली लगाना और काँच के बजाय सोने की चूड़ियाँ पहनने का शौक रहता था। "नन्दो का स्वभाव ही ऐसा बन गया था कि वह और सब कुछ बन सकती थी मगर बहुरिया नहीं।"[46] ससुराल में उसकी इन्हीं हरकतों से पति द्वारा उपेक्षा मिली। इस उपेक्षा को सहन न कर वह सदा के लिए अपने पिता के घर चली आई। यहाँ पर ताई के सम्पर्क में आकर वह मनिया को बिधवा सन्तो से फँसवाती है और इसी प्रकार अपनी बड़ी भाभी मोहिनी को बिरहेश के जाल में फँसाती है। जिसके परिणाम स्वरूप बड़ी को बेइज्जत हो घर से निकलना पड़ा।

नन्दो अपना सब कुछ न्यौछावर कर शौक डाट करना चाहती थी। यहाँ तक उसके मन में माँ तक को मारने का इरादा उत्पन्न होता है जिससे वह घर की एक मात्र अधिकारिणी बन जाय। ताई नन्दो के इस इरादे को समझ जाती है और कहती है। "क्यों री! जो तेरी माँ मर जाएँ तो तू इत्ती बखत घर की मलकिन हो जाय, है ना।"[47]

नन्दो के चरित्र के विषय में उसकी माँ स्वयं कहती है। "कुएँ समन्दर की थाह हैं पर नन्दो के पेट की थाह नहीं।"[48] नन्दो और ताई के चरित्रों में यह अन्तर पाया जाता है कि ताई जीवन के अन्तिम समय में उससे घृणा करने वाले लोगों की जय–जयकार प्राप्त कर लेती है लोग उसे देवी समझने लगते हैं। परन्तु नन्दो अन्त तक अमानवीय दुष्कर्मों में संलग्न रहती है। ज्यों–ज्यों वह बडीं होती गई गुणों के स्थान पर अवगुण उसमें भरते चले गये। डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी के शब्दों में– "नन्दो निम्न मध्य वर्गीय अशिक्षित, अन्धविश्वास ग्रस्त नारी का प्रतिनिधि चरित्र है।"

मोहिनी या बड़ी– यह भी उपन्यास की गौण नारी पात्रा है। इसका भी प्रारम्भिक जीवन दोषपूर्ण पारिवारिक वातावरण के कारण ही दुर्गुणों से भर जाता है। सौतेली माँ एवं पिता की अनेक प्रकार की काम–क्रीड़ाओं को देख बड़ी भी आस–पास के बच्चों के साथ बड़ों की पाप क्रीड़ाओं का अभिनय किया करती, फलस्वरूप आयु से पूर्व ही मोहिनी के मन में नारीत्व की भावना जाग्रत हुई। उपन्यासकार के अनुसार– "देह भोग के रूप में नारी जीवन की सार्थकता का पाठ उसने निरे बचपन में ही पढ़ लिया था। ××× उम्र से पहले ही बड़ी के मन में नारीत्व पकने लगा। जवानी का उभार आने से दो–तीन वर्ष पहले ही वह अपनी देह पर गेंद ऐसी छातियाँ देखने के लिए तड़पने लगी। उनके अभाव में उसके अन्दर दिखावट का माद्दा बढ़ा ××× आँखें मूँद कर वह अपने साथ मन चाहे पुरुषों की कल्पना से रमण किया करती थी। अतृप्ति में उसे हिस्टीरिया के दौरे आने लगे।"[49]

ससुराल में भी उसकी दृष्टि छैल–छबीले देवर पर पड़ी किन्तु वहाँ सास का व्यक्तित्व आड़े आया। मोहिनी को अपना पति मनिया अपटूडेट नहीं लगता। उसकी देवरानी और तारा अपने–अपने पतियों के साथ घूँमने जाती हैं, सिनेमा देखती हैं, अच्छा पहनती हैं, अच्छा खाती हैं। मनिया न उसे घुमाने ले जाता है न सिनेमा दिखाने और न कोई श्रृंगार सामग्री ही लाकर देता है। मनिया का पत्नी का प्यार करने का वही बुजुर्गों के जमाने का वर्षों पुराना ढंग है। भंग पीना और पत्नी के साथ संभोग, बस यही मनिया का प्यार है। मोहिनी को इससे संतोष नहीं होता। इसके अतिरिक्त मोहिनी का पति कुछ समय तक एक बिधवा के प्रेम जाल में फँसा रहता है और मोहिनी यह जानती है। यही कारण है कि प्रेम से अतृप्त मोहिनी अवसर पाकर विरहेश के साथ संबंध स्थापित करती है। विरहेश का फिल्मी व्यक्तित्व मोहिनी को बड़ा आकर्षक लगा। घटनाएँ

कुछ ऐसी बनी कि घर वालों ने उसे घर से निकाल दिया और वह विरहेश के हाँथों वैश्या बन गई।

डॉ0 शीला स्विंग– शीला भी उपन्यास की गौण नारी पात्रा है और घर के अभाव पूर्ण वातावरण ने उसे विद्रोहिणी बना दिया और वह स्वतंत्र जीवन बिताने लगी। उपन्यासकार शीला का परिचय देते हुए कहता है– "शीला का बचपन अभावों में गुजरा। उत्तर प्रदेश के ईसाई प्रायः निन्यान्वे प्रतिशत गरीब हैं। उनके बचपन में ईसाइयों की नौकरियाँ प्रायः विलायती मिशनरियों के अधीन थी। शीला के पिता पश्चिमी यू. पी. में एक छोटे से कस्बे में मिशन स्कूल के हेडमास्टर थे। माँ भी पढ़ाती थी। छः भाई–बहनों के परिवार में शीला अपने माता–पिता की तीसरी सन्तान थी। बड़ी गरीबी में दिन गुजारा करते थे। शीला गरीबी से विद्रोह करती। वह हठ पूर्वक फिजूल खर्च थी। पढ़ने और डिवेट में तेज होने के कारण उनका बच्चों में महत्वपूर्ण स्थान था। वे शुरू से अभिमानिनी भी रहीं।घर में कलह तथा बाहर सम्मान पाकर डॉ० शीला के मानस का द्वन्द्व फूटा। उनके बचपन में होने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनों का प्रभाव भी उनके मानस पर खूब पड़ा।"[50] विद्रोही प्रकृति के कारण ही उन्होंने आरम्भ से ही विलायती मिसन की नौकरी न करने का निश्चय किया। इसी कारण से उनके वजीफे बन्द हुए घर का वातावरण उनके लिए अत्यधिक कटु हुआ। यह सब होते हुए भी अपनी प्रबल इच्छा शाक्ति के कारण वे पढ़–लिख कर डॉक्टर बनीं ××× इन पिछले चौदह–पन्द्रह वर्षों में डॉ० शीला स्विंग पूरी तरह स्वतन्त्र और समृद्ध होकर अपनी प्रैक्टिस जमाने में समर्थ हुई। नव जवानी में अपने समाज के एक नवयुवक से उनका प्रेम हुआ था। पाल भी भारतीय संस्कृति का बड़ा हामी था। ××× पाल हैजे का शिकार होकर चार दिन में चट–पट हो गया।"[51]

शीला महिपाल से प्रेम करती है– "महिपाल उनके सूने जीवन का साथी बनकर आया था।"[52]

महिपाल के अपने प्रति प्रेम को देखते हुए भी वह महिपाल की गृहस्थी का सुख नहीं उजाड़ता चाहती। वह कहती है– "महिपाल तुम जिस घरेलू जिम्मेदारियों की वजह से इतना बड़ा त्याग कर रहे हो, मैं उसकी कद्र करती हूँ। तुम अच्छी तरह जानते हो कि मैं कल्याणी की भी कद्र करती हूँ। तुम्हारी गृहस्थी का सुख उजाड़ने में या तुम्हें बदनाम कराने में मुझे सुख नहीं मिलेगा।"[53] शीला अपने व्यक्तित्व का निर्माण स्वयं करती है। तभी स्वतन्त्र रूप से जीने का अधिकार पाती है। पश्चिमी और भारतीय नारी का पूर्ण समन्वय और आधुनिक नारी का आत्म संघर्ष शीला के चरित्र में सजीव हो उठा है।

कल्याणी– कल्याणी उपन्यास की प्रमुख गौण नारी पात्रा है। यह स्थिर चरित्र वाली नारी है। कल्याणी महिपाल की पत्नी है और पूर्णतः पतिव्रता, पतिपरायणा, भारतीय नारी है। महिपाल के साथ उसका विवाह पिता के द्वारा ही तय कर दिया गया था। कल्याणी बिल्कुल देहाती नारी

है। उसकी नस–नस में पति के प्रति प्रेम भरा हुआ है। यद्यपि कल्याणी का बौद्धिक स्तर महिपाल के बौद्धिक स्तर से बहुत नीचे तथापि उसका चरित्र पूर्ण रूप से निष्कलंक है। महिपाल की अपने प्रति रखी जाने वाली भावना से कल्याणी भली–भाँति यह भी जानती है कि उसका पति मुझे पसन्द नहीं करता है फिर भी वह अपने पति महिपाल को पूर्ण सम्मान देती है। उसकी सुख–सुविधा का पूर्ण रूप से ध्यान रखती है। जब भी महिपाल उसकी भोली और धार्मिक, सांस्कृतिक क्रिया–कलापों से असन्तुष्ट या नाराज होता है, तो वह अपने पति को मनाने और उसे प्रसन्न करने की कोशिश करती है।

महिपाल अपनी पत्नी के चरित्र से इतना प्रभावित है अथवा यों कहें कि कल्याणी के चरित्र ने महिपाल पर इतना प्रबल प्रभाव डाल रखा है कि वह पत्नी के समक्ष अपना सिर उठाने में शर्मिन्दगी अनुभव करता है। एक दिन महिपाल रात बहुत देर से घर आता है और अपने को पत्नी की दृष्टि से छुपाना चाहता है। एक चित्रांकन देखिए– "कल्याणी ने फीके स्वर में पूछा– "हियै पौढ़िहौ ?" महिपाल बोला– "लिखब दुइ ठै पान हमैं दै जौतिऊ "बिलहिरा मा धरे है।" पत्नी के कहते ही महिपाल ने तुरन्त कागज छोड़ पान का बिलहिरा उठा लिया और मुँह में चार पान भरकर इस तरह निश्चिन्त हुआ मानो चोरी का माल लेकर भागने वाला चोर डर के इलाके से निकल कर अपनी सरहद में पहुँच गया हो।"[54]

कल्याणी प्राचीन सामाजिक रीति–रिवाजों और धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों को मानने वाली भारतीय ललना है। महिपाल उसे चम्मच से हलुआ खिलाना चाहता है किन्तु कल्याणी नहीं खाती। महिपाल उसे बौड़म कह कर समझाने का प्रयास करता है। इसमें कौन सी छुआ–छूत हो गई। कल्याणी कहती है कि हम तुम्हें नहीं कहते ये– "हम पन्चन का विचार विवेक है।"[55] महिपाल उसे लाड से डाटते हुए चम्मच उसके होंठो से लगाता है तो– "कल्याणी फौरन ही होंठ सिकोड़ कर पीछे हटती हुई दृढ़ किन्तु क्षमा माँगने वाली मुद्रा में बोली– "ना–ना"[56]

वह कहती है–"हमार हिन्दुस्तान क्यार धर्म–जानति हउ कहाँ रहति है ? रसुइयाँ मा। अब हमार भगवान को आप कहिन कि हमार भगवान आय दार–चाउर कै बटलोही ××× द्याखौ हम घर गिरस्ती वाले बाल बच्चेदार हई, तुमका धरम भगवान का अइस न कहें का चही। बड़ा पाप लागत हइ।"[57]

गेहुएँ रंग के ऊँचें कपाल पर बड़ी बिन्दी से दमकता हुआ कल्याणी का श्री युक्त मुख ××× मूर्खता और रूढ़ संस्कारों से हठीली कल्याणी अपनी निष्ठा के कारण इस समय भी बड़ी भली लगी। ××× यह महानता कल्याणी जी की व्यक्तिगत सिद्धि ही नहीं एक परम्परा की सिद्धि है। जिसमें इस देश की नारी का मानस ढला है। यह इस देश की सबसे बड़ी सांस्कृतिक विजय है। कल्याणी की निष्ठा और उसके चरित्र की प्रशंसा लेखक दूसरे पात्र लाला नगीन चन्द्र (कर्नल) द्वारा करवाता है– "देखो जी! यह झूठ रोब मत झाड़ो, इस वक्त, समझे। मैं एक दम

सीरियस मूड में हूँ। इस दम में न तो तुम्हारा हूँ और न तो भाभी का। जो मुझको सच जचेगा वही कहूँगा और मैं फिर कहता हूँ, सारा दोष तुम्हारा है। तुम भाभी जैसी सती के पैर की धोवन भी नहीं हो, साले, इंटलेक्च्युएल चाहे जित्ते बड़े हो।''[58]

कल्याणी की निष्ठा और महत्व को उसका पति महिपाल भी स्वीकार करता है– ''मै जानता हूँ, बल्कि निःसंकोच हरेक के सामने कह भी देता हूँ कि कल्याणी मुझसे अधिक निष्ठ है। मैंने भी सत्रह–अट्ठारह वर्ष एक पत्नी व्रत धारण कर शुद्ध निष्ठा से बिताये हैं। अब भी उनकी (कल्याणी की) बज्र मूर्खता से घोर घृणा करते हुए भी इनके लिए मेरे हृदय में प्रेम भरा पूज्य भाव है।''[59]

कल्याणी के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह पति द्वारा उपेक्षित किये जाने पर भी अपने पति की निन्दा किसी से नहीं सुन सकती। जब एक पड़ोसी स्त्री उसके पति पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाती है तो इसकी चर्चा वह पति से करती है। तो महिपाल पूँछता है कि उन्होंने और क्या कहा तो कल्याणी अपने घर का बड़प्पन धरम और तपस्या पर टिका हुआ बताती है– ''उई का कहँती, उनका द्यखतै हम अदबदाय कै बात चलावा औं कहा कि औरेन का बड़प्पन तो बेइमानी औ लूट विद्या पै टिकत है। हम कहा कि हमरे घर क्यार बड़प्पन धरम औ तपस्या पर टिकत है।''[60]

लाले की पत्नी– यह नारी परिवारों में विघटन कराने की प्रवृत्ति रखने वाली नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। एटम बम की तरह बीच में फूटकर भभूती सुनार के घर को हिरोशिमा बना देती है।

चित्राराजदान– चित्राराजदान आधुनिक फैंशन और नई शिक्षा में निपुण, उन्मुक्त प्रेम का उपभोग करने वाली आधुनिक जीवन में नारी की पैरोबी है।

अमृत और विष

रानी उपन्यास की नायिका, मिसेज खन्ना (बहिन जी), मिसेज माथुर, मिसेज बोस, बतासो बीबी (राधेलाल की पत्नी), माया (अरविन्द की पत्नी), मन्नो (रमेश की बहिन), नन्ही (वरूणा) (अरविन्द की पुत्री), तारा, गोपी, वहीदन मुस्तरी (रन्डी), गेहा– बानो, सहदेई आदि इस उपन्यास की नारी पात्रा हैं।

रानी बाला– कुवर रद्धू सिंह की विधवा पुत्री है। वह विवाह के कुछ ही समय बाद अपने पति को खो देती है। रानी सुन्दर युवती है। रमेश के जीवन में, (जो अभी कुवारा ही है) धवल स्निग्ध ज्योत्सना के निर्मल और उत्फुल्ल यौवन रानी के सुधा समन्वित कटाक्ष, शीतलता प्रदान करते है। रानी मर्यादित प्रेम वाली युवती है, वह रमेश से प्रेम करती है और अन्त में रमेश और रानी का अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न हो जाता है। इसके लिए रमेश को ही नहीं रानी को भी अनेकानेक मानसिक द्वन्द्व झेलने पड़े। इस प्रकार अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन देना ही रानी के चरित्रांकन का उद्देश्य है।

रानी बाला मध्य वित्तीय परिवार की सरल और निश्चल स्वभाव वाली प्रेममयी विधवा युवती है। वह अरविन्द शंकर द्वारा लिखित उपन्यास की नायिका है। बाल–विधवा होने के कारण उसका यौवन कुण्ठा ग्रस्त है। "जवानी का होश सम्भालने के साथ ही उसका मन एक ऐसे डिब्बे में बन्द हो गया था– जिसके तले में जीवन का स्पर्श था और ढक्कन में मृत्यु की घुटन।" उसकी कुष्ठा कभी–कभी विद्रोह का रूप ग्रहण करती है। विद्रोह के क्षणों में रानी स्वयं को क्वारी कन्या ही मानती है। पिता के पुनर्विवाह करने पर वह प्रतिक्रिया व्यक्त करती है– "बाबू ने अपना पुनर्विवाह क्यों किया ? पुरूष के लिए यह पाप क्यों नहीं ?"[61] उसकी यह भावना सामाजिक सम्बन्ध का अति क्रमण करने में असमर्थ है। उसके अन्तस में प्रेम और विवाह का जीवन व्यतीत करने की कामना है। धीरे–धीरे उसकी प्रेमाकांक्षा रमेश के रूप में अपना आलम्बन ढूंढ़ लेती है। प्रणय की प्रगाढ़ता ही रानी को संघर्षमय जीवन की कठिन भूमिकाओं में उतरने की प्रेरणा देती है। अन्ततः पारिवारिक विरोध के बावजूद खन्ना दम्पत्ति की सहायता से उसका विवाह रमेश के साथ हो जाता है।

रानी स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाली नारी है। परिस्थितयों से समझौता करना उसे कथमपि स्वीकार नहीं है। इसीलिए रमेश से विवाह करने के प्रश्न पर वह स्पष्ट नीति अपनाते हुए कहती है– "आप लोग तो बूढ़े हो चुके, इसलिए मुझे अपनी सारी जिन्दगी इज्जत के साथ निभाने की बात को खुद सोचना पड़ेगा। ..... मै अब बच्ची नहीं हूँ।"[62] बुद्धिमत्ता और प्रत्युत्पन्नमतित्व के कारण उसका व्यक्तित्व विशेष प्रभामण्डित हो गया है। वह रमेश की प्रेरणा–शक्ति है। अपने उदात्त व्यक्तित्व के कारण वह उपन्यास की नायिका बनकर नयी पीढ़ी के युवती वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है।

बानो– बानो का चरित्र समाज में "तेज सनसनाहट पैदा करने"[63] वाला और आज के स्वतन्त्र नारी समाज का प्रतीक है। वह अपने प्रेमी से मिलने के लिए रमेश से सहायता पाने में असमर्थ रहती है। वह परम अध्ययन शीला और स्वतन्त्र रहकर अपनी "जिन्दगी का नक्शा आप बनाने"[64] वाली युवती है जो जीवन में "बॉयोलाजिकल अर्जेज (कायिक आवश्यकताओं)"[65] को आवश्यक मानते हुए भी औरत की इस्मत का हौआ अपने साथ नहीं बाँधती। बानो मुक्त अभिसार में विश्वास रखती है और इसी आधार पर वह अपने जीवन को आत्मनिर्भर बनाने की इच्छा रखती है।

उपन्यासकार ने बानों के रूप में समाज की नारी की नवीन आवश्यकता और अनुभूतियों का अनुभव किया है। विधवा विवाह अथवा प्रेम विवाह को वे बुरा नहीं समझते है। आधुनिक समाज को वह केवल धार्मिक रूढ़ि ही मानते है। ऐसा आवश्यक नहीं है। बानो स्वतन्त्र रहना चाहती है किसी की रखैल बनकर नहीं क्योंकि रखैल का ख्याल पुराना है। यहाँ नागर जी, प्रेमचन्द और यशपाल दोनों से आगे दिखाई पड़ते हैं। 'गोदान' की 'मालती' यशपाल के 'झूठा सच' की 'तारा' जहाँ एक पति का त्याग कर दूसरे से बँध जाती है, वहीं 'अमृत और विष' की 'बानो' अपनी कायिक आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए भी आजाद रहना चाहती है।

अपनी जिन्दगी का नक्शा स्वयं बनाकर स्वतन्त्र जीवन की आकांक्षिणी गैहाबानो एक साहसी एवं निर्भीक युवती है। सामाजिक बंधन को तोड़कर वह अपने अभिशप्त जीवन से मुक्त होना चाहती है। उसका स्वतन्त्र प्रेम घुटन एवं नियन्त्रित वातावरण से उबरने के लिए कशमकश करता रहता है। वह कहती हैं– "मै आजाद रहूँगी, पढूँगी। आगे कुछ नौकरी वगैरा तलाश करके अपनी जिन्दगी का नक्शा आप बनाऊँगी।"[66] वह आदर्श पुरूष की व्याख्या करती है– "मेरे आदर्श का मर्द वह औरत या मर्द है जो खुद दिलेर हो और दूसरे की दिलेरी की दाद दे सके।"[67] उसके विचार किसी परम्परावादी के लिए भले ही सहसा स्वीकार्य न हो किन्तु उसके तर्क को सहसा फूँककर उड़ाया नहीं जा सकता। गैहाबानों का चरित्र आधुनिक नारी का चरित्र है।

कुसुमलता खन्ना– कुसुमलता खन्ना (बहिन जी) प्रगति शील समाज सेविका हैं। उनके व्यक्तित्व में वात्सल्य, दया ममता, मानव–प्रेम आदि उदात्त भावों का सामंजस्य हुआ है। समाज–सुधारक के रूप में उनकी प्रगति शीलता का परिचय मिलता है। वे नारी–स्वातन्त्र्य की पक्ष धर हैं। रमेश और रानी का प्रेम विवाह उन्हीं का संरक्षण में सम्पन्न होता है। उनके व्यक्तित्व का खुलापन हर किसी को प्रभावित करता है। रमेश और रानी के प्रणय–प्रसंग पर वे रमेश को समझाते हुए अपने खुलेपन का परिचय देती हैं– "धत्तेरे की, बैकवर्ड हिन्दुस्तानी लड़का कहीं का। प्रेम जैसी पवित्र चीज भला अपने माँ–बाप से छिपानी चाहिए।"[68]

पीड़ित तथा शोषित वर्ग के प्रति बहिन जी के हृदय में अथाह करुणा है। 'पिछड़े मुहल्लों की पिछड़ी हुई लड़कियों और औरतों के लिए वे साक्षात् मसीहा हैं।' नारी समाज के उत्थान की दिशा में अग्रसर श्रीमती खन्ना नयी–पीढ़ी को प्रोत्साहन देती हैं। स्त्री–पुरुष के यौन–सम्बन्ध को लेकर उनका दृष्टिकोण सर्वथा स्पष्ट है– "ऐसी बातें (प्रेम) छिपाई जाने के कारण ही हमारी सोसायटी में इतनी गंदगियाँ फैल रही हैं। मैं उन गंदगियों के मुहाने बन्द कर देना चाहती हूँ। .... ये गन्दगी तभी दूर होगी जब हमारे लड़के–लड़कियाँ झूठी शर्म का ढकोसला तोड़कर खुले आम अपनी दोस्ती को बढ़ावा दें।"[69] किन्तु, प्रेम क्षेत्र में ओछेपन को वे सर्वथा वर्जनीय मानती हैं– "प्रेम के ऐसे रूप को मैं एकान्त ही की चीज मानती हूँ बिल्कुल पूजा ऐसी ही चीज मानती हूँ और उसका दिखाना बेहद–बेहद बुरा लगता है– उतना ही बुरा जितना कि नये हिन्दुस्तान के अपने इन पिछड़े–क्षेत्रों के अन्दर मुझे लड़के–लड़कियों की दोस्ती छिपाना या इसे फौरन ही पाप–चेतना के साथ जोड़ देना बुरा लगता है। हम हिन्दुस्तानी अगर इसे आदर्श बात मानते हैं– और मानते ही हैं–तो हम शर्तिया असभ्य हैं, पापी हैं। किसी भी हालत में हम भले आदमी नहीं हैं, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान।"[70]

माया– माया, अरविन्द शंकर की पत्नी है। उसकी दृष्टि में नारी का सबसे बड़ा धर्म पति–सेवा है। वह धार्मिक विचारों की महिला है। अरविन्द शंकर और माया दोनों ही पारिवारिक समस्याओं से जूझते रहते हैं। आर्थिक अभाव के बावजूद माया की प्रबन्ध–क्षमता समूचे परिवार को समेटे हुए है। अरविन्द शंकर ने उसे अनेक बार 'कुशल गृहिणी' और 'सुशीला' कहा है। पुत्र

की आत्महत्या और पुत्री के अनैतिक सम्बन्ध को जानकर माया का मातृत्व कराह उठता है। पति पर सारी नैतिक जिम्मेदारी थोपते हुए वह कहती है– "उसे पढ़ाउन भेजत बिटिया तौ तुमरी राय, तुमरे विचार रहे, अब हम लड़कन से क्या पूछन जाँय ?"[71] उसका आहत जातिगत संस्कार जाग उठता है– "पर मै मुसलमान से ब्याह नहीं होने देऊँगी अपनी बिटिया का !" उसे अपने सतीत्व पर गर्व है– "देख लेऊँगी मै भी। सती का कलेजा भगवान भी नहीं दुखा सकता।"..... "मेरा मन व्याव से पहले एक दम कोरा रहा और ब्याव के बाद उस पर तुम छा गये। मै अपने बच्चों की माँ वैसे बनी जैसे कि सब आबरूदार मेहरुवे बनती हैगी।"[72] माया के सतीत्व पर मुग्ध अरविन्द शंकर कहता है– "मै स्वीकार करता हूँ कि भारत देश में खास तौर पर और दुनियाँ में आमतौर पर अब भी माया के समान अपने सतीत्व पर अभिमान करने वाली स्त्रियाँ मौजूद हैं, यद्यपि संख्या में इस समय कम हैं पर आदर्श उन्हीं का सर्वत्र पुजता है।"[73] माया का चरित्र परम्परागत आदर्श भारतीय ग्राम्य नारी का चरित्र है।

नागर जी का विश्वास है कि एक नैसर्गिक प्रवृत्ति द्वारा स्त्री–पुरूष पाशबद्ध होते हैं और सृष्टि का विस्तार करते हैं, इसी आलिंगन से मानव एक अद्‌भुत ऐन्द्रिक सुख और मानसिक तृप्ति तथा संतति के द्वारा अपने अस्तित्व और स्वरूप बोध की अनुभूति करता है। इसी कारण उसकी हृत्‌तन्त्री के तार सप्त स्वरों पर आलाप देते हैं। यही सांसारिक मोक्ष है।

अन्य नारी पात्रों का गौण महत्व हैं किन्तु उपन्यास में उनकी उपस्थिति को अनावश्यक नहीं कहा जा सकता।

मानस का हंस

इस उपन्यास में तीन प्रमुख पात्र रत्ना, मोहिनी और रामकली हैं। इन तीनों नारियों का तुलसी के जीवन से गहरा संबंध है।

रत्ना– रत्ना उपन्यास की नायिका है। वही तुलसी की जीवनाधार है। रत्ना दीनबन्धु पाठक की पुत्री है। राजा भगत के माध्यम से उसका विवाह तुलसी से होता है।

रत्ना परम अध्ययनशीला और असाधारण प्रतिभासम्पन्न है क्योंकि तुलसी भी अद्वितीय और असाधारण मेधा वाले और श्रीराम के पावन प्रेम से आप्लावित निश्चल हृदय वाले थे। इसलिए दोनों असाधारण व्यक्तित्व अधिक काल तक साथ–साथ न रह सके। दोनों के अहम टकराए और तुलसी, रतना को छोड़कर विरक्त बन गए।

रत्ना परम सुन्दरी भी थी। इसलिए अधिक समय तक अपने को उससे विलग न रख सके। ओर वे अपनी प्राण बल्लभा रत्नावली से उसके मायके में जाकर मिले। "तुलसी ने रूठी प्रिया को बाहों में भरते हुए उसके मायके में जाकर कहा– देखो प्रिये! तुम भी जानती हो और मैं भी जानता हूँ, मेरी जन्म कुण्डली में संधि के ग्रह हैं, या तो करोड़पति बनूँगा या फिर विरक्त।" रत्ना विरक्त बनने के लिए कहती है–किन्तु तुलसी लालची भँवरे से उसके आस–पास मड़राते रहते हैं। रत्ना का रूप सौन्दर्य तुलसी का माया पॉश बना हुआ है। तुलसी के यह कहने पर कि

यदि तुम न रहो तो मैं पुत्र को किसी को सौंप कर विरक्त हो जाऊँगा। रत्ना तन जाती है और तीखे स्वर में कहती है–"स्त्री और पुरूष में यही तो अन्तर होता है। नारी भले ही कामवश माता क्यों न बने किन्तु माता बनकर वह एक ही जगह निष्काम हो जाती है। पुरुष पिता बनकर भी दायित्व बोध भली प्रकार से अनुभव नहीं करता। वह निरेचाम का लोभी है। जीव में रमें राम का नहीं।"[74]

इस घटना के पश्चात रत्ना अकेली रह जाती है। यद्यपि रत्ना के रहने के लिए राजा भगत ने राजापुर में व्यवस्था कर दी थी। किन्तु हठीली रत्ना अपने बाबुल के घर में कैसे रह सकती। वैरागी हो जाने पर भी तुलसी को गृहस्थ जीवन की झॉकियों का स्मरण होता है, अब भी वह रत्ना को भूल नहीं पाते। रत्ना अपने हठीली होने की बात स्वयं ही स्वीकार करती है "मेरा अहंकार ही मुझे निर्बुद्धि बनाता था। बचपन में मैंने अपने बप्पा का क्रोध, प्यार और खीझ भरे क्षणों में अनेक अवसरों पर सुना। यदि मैं लड़का होती तो इस घर की गद्दी कभी सूनी न होती। उनकी इस बात में मेरे मन में लड़कों के लिए विशेष कर उस लड़के के लिए जो मेरा पति बनकर मुझे इस घर से निकाल कर ले जायेगा एक अनोखी चिढ़ भर दी थी। रत्ना ने वास्तव में तुलसी को श्रीराम के चरणों में प्रस्तुत कराने में पूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।"

तुलसी का यह कथन–"तुमने मुझे रजो भावदिया और सद्भाव भी ××× तुम्हारे बिना मेरा राम चैतन्य मुझे मिल नहीं सकता था। जिस दर्प ने मुझे रामदास बनने का गौरव और तुम्हें भक्ति का प्रसाद दिया उसे अब बुरा न कहो रत्ना। पीड़ा के बिना शक्ति का जन्म नहीं होता।"[75]

इन उद्धरणों से उपन्यासकार कहना चाहता है कि नारी युग–युग से मानव की प्रेरक शक्ति ही नही वरन् उसे प्रभु पद भी दिलवा देती है। तुलसी स्वयं रत्ना से कहते हैं–"तुम इस प्रकृति का एक दिव्य अलंकार बन गई हो। तुम वह मधुर स्रोत हो जिससे मेरे मन में रस का सागर उमड़ता है।"[76]

तुलसी बाबा रत्ना के इन्हीं गुणों से अन्त समय तक उसे अपने मन से विलग नहीं कर सके। वह तुलसी की शान्ति से लहराती मन गंगा को एक मछली के समान बार–बार चंचल–बनाने लगती है। बाबा का मन उसके बिना व्यथित और आत्मा पीड़ित रहती है। रत्ना और तुलसी की भेंट एक बार फिर चित्रकूट में हुई किन्तु फिर भी उसे तुलसी के चरणों में स्थान न मिल सका।

सांख्य दर्शन में प्रकृति को सांसारिक रंग–मंच की सूत्र धारिणी कहा गया है। प्रकृति पुरूष को अपने रूप सौन्दर्य से रिझाकर अपने मन की अदम्य वासना की तृप्ति हेतु नचाती रहती है। रत्नावली प्रकृति रूपा हैं। तुलसी जैसे तार्किक पुरूष को भी छलने में सफल होती है। नारी अपने रूप और मान से पुरुष को बलात् अपनी ओर आकर्षित करती है। इसलिए रत्ना अपने रूप सौन्दर्य से अत्यन्त दृढ़ तुलसी को अपनी ओर आकर्षित किये रहती है। रचनाकार इसीलिए तो

कहता है–''पत्नी ने अपने मानाभिनय से गम्भीरता को जो रस भरा मोड़ दिया वह तुलसी दास के भोले मन को छलने में सफल हुआ। प्रसन्नता उनके चेहरे की कान्ति बन गई। बोले–तुम बड़ी नटखट हो। सूत्रधार की भॉति मुझ कठपुतली को अपनी उँगलियों पर मनमाने ढंग से नचाती हो ××× तुम्हारा आकर्षण ही मेरा राम मार्ग है ××× तुम मिलकर ऐसा दर्पण बन जाती हो जिसमें राम रूप प्रतिच्छवि दिखाई देती है।''[77]

रत्ना, तुलसी को इहलोक और परलोक दोनों सुख देने में समर्थ है। पुरुष प्रकृति के कंधों पर चढ़कर ही अग्नि प्रज्जवलित बन को पार करने के लिए प्रयत्नशील होता है। तुलसी ,रत्ना के रूप सौन्दर्य में बँधकर कुछ समय के लिए राम भक्ति भूल जाते हैं परन्तु रत्ना सांसारिक सुख पाकर भी भगवत् भक्ति को नहीं भूलती। रत्ना तुलसी को 'अस्थि चरम मय देह' की आसक्ति से छुड़ाती है और यही स्मरण बाबा को बार–बार धक्का देकर आगे ठेलता है। रत्ना ऐसी प्रेरक शक्ति है जिसने अंजाने में ही तुलसी को उद्‌बोधन देकर भावी समाज के लिए एक मेधावी समाज सुधारक बना दिया। नारी पुरुष से असंभव कार्य भी करवा सकती है, यदि उसकी अनुभूति में गहराई सत्यता और पवित्रता है। इस प्रकार नागर जी नारी को भगवत् भक्ति के लिए बाधक नहीं, साधक मानते हैं। अतः यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि तुलसी के गरिमामय व्यक्तित्व का निर्माण रत्ना की ही सच्ची अनुभूति से हुआ है।

रत्ना के चरित्र ने ही तुलसी को राम रूप बना दिया। रत्ना के कारण ही तुलसी की तपस्या दिव्य और अलौकिक बन सकी। रत्नावली का चिन्तन ही उन्हें शान्ति प्रदान करता है और वही जीवन की साधना के लिए मार्ग भी प्रशस्त करता है। आज रत्ना जैसी सती साध्वी बुद्धि प्रखरा नारी की ही आवश्यकता है। जो मानव की सुप्त दिव्य शक्तियों को झकझोर कर प्रभु चिन्तन के लिए प्रेरित कर सके।

रत्ना तुलसी के लिए आत्मलोचन रूपिणी अलख नन्दा है, जो तुलसी की चेतना भागीरथी से मिलती है तो आप राम रूपी गंगा बन जाती है।

मोहिनी–

यह रत्ना से भिन्न एक ऐसी नारी है जो अपने रूप सौन्दर्य से पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करती है। जब तुलसी गुरुपाद शेष सनातन के शिष्यत्व में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, उसी समय वहीं पर मेधा भगत के यहाँ मोहिनी के मोह में बँध गये। मोहिनी का रूप सौन्दर्य उनके मन से नहीं हटता था। मोहिनी के स्मरण मात्र से उनके हृदय में स्फूर्ति आती थी। मोहिनी ने भी तुलसी को सांसारिक विरक्ति दिलाने में सहयोग किया। मोहिनी एक वेश्या है। इसकी ओर आकर्षित होने पर तुलसी की बड़ी निन्दा हुई थी। तुलसी अपने मन के भीतर पश्चाताप करने लगे–''यह देखो श्रीराम के चरण कमल छोड़कर वेश्या के तलवे चाटने वाला कुत्ता है।''[78]

कुछ समय के लिए तुलसी मोहिनी को भूलने का प्रयत्न करते हैं और कहते हैं–''नहीं मैने तुमसे प्रेम नहीं किया वस्तुतः तुम्हारे रूप और गायन कला पर आसक्त होकर तुमसे वह अनुभव पाने का अभिलाषी हूँ जिसे पाकर ब्रह्मचारी गृहस्थ हो जाता है। और तुम भी निश्चय ही काम क्षुधावश मुझ पर आसक्त हो। यह प्रेम नहीं तृष्णा है। मैं प्रेम राम से करता हूँ।''[79] जिस प्रकार रत्ना का रूप सौन्दर्य मॉ सीता के सौन्दर्य से मिलकर तुलसी के मन में अलौकिक रूप धारण कर लेता था उसी प्रकार मोहिनी का सौन्दर्य भी तुलसी के मानस पटल पर अन्तिम समय तक उठता रहा।

नागर जी ने उपन्यास के आमुख में तुलसी–मोहिनी प्रसंग में मोहिनी को ही वेश्या कहा है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस पर टिप्पणी की थी–''लेकिन आमुख में सफाई क्यों दी है ? इसमें कोई वेश्या प्रेम (पैसे से खरीदा हुआ शरीर सुख) नहीं है और असफल प्रेम भी वह नहीं है। सफाई देने की कोई जरूरत नहीं थी। आमुख में चर्चा करने से वह रेखांकित सा हो गया है।''[80]

प्राक्कथन में मोहिनी प्रसंग की चर्चा उसे रेखांकित करने जैसा तो है किन्तु लगता है कि नागर जी राम भक्तों को आघात नहीं पहुंचाना चाहते थे इसलिए उन्होंने आलोचना से बचने के लिए यह चर्चा की है। वास्तव में लेखक ने तुलसी, मोहिनी प्रसंग की चर्चा तुलसीकृत काव्य की कुछ पंक्तियों के आधार पर की है । संक्षेप में मोहिनी प्रसंग नारी की प्रेरक शक्ति का ही प्रतीक है।

रामकली–

रत्ना से भागकर वे एक गांव में रामकली के अंक में आ गिरते हैं, वहां भी रामकली के चरित्र की दृढ़ता तुलसी को आत्म विश्वास प्रदान करती है और तुलसी को एक नवीन दृढ़ता प्राप्त होती है।

पार्वती अम्मा–

'मानस का हंस' की दूसरी मार्मिक एवं करुण प्रस्तुति पार्वती अम्मा है। पार्वती अम्मा प्रेम, करुणा, वात्सल्य, दया, ममता की सजीव मूर्ति है। वह राम बोला की शरण दायिनी गरीब बृद्धा है। गरीबी से दबी होने के कारण वह भिक्षा–वृत्ति से जीवन व्यतीत करने के लिए विवश है। उसका व्यक्तित्व दरिद्रता में भी वैभव, दुर्बलता में भी अद्भुत शक्ति और कुरूपता में भी सुन्दरता से मण्डित है। भिक्षुक–जीवन से उद्विग्न राम बोला को सान्त्वना देती हुई वह कहती है–''यह दुख नहीं, तपस्या है बेटा। पिछले जन्मों में जो किये हैं वो इस जन्म में तपस्या करके हम धो रहे हैं कि जिससे अगले जनम में हमें सुख मिले।''[81] पार्वती अम्मा पाठकीय सहानुभूति एवं सद्भावना की पात्र बन गयी है। संक्षेप में ये तीनों नारी पात्रियां पुरुष की प्रेरक स्वरूप चित्रित की गई हैं।

सुहाग के नूपुर

इस उपन्यास में कन्नगी, माधवी, चेलम्मा, पेरिय नायकी। ये सभी पात्र महाकवि इलंगोवन रचित तमिल महाकाव्य 'शिलपद्दिकारम' के आधार पर ऐतिहासिक पात्रों के रूप में चित्रित किये गए हैं।

कन्नगी–

मानाइहन की सुन्दरता में अद्वितीय इकलौती कन्या है। कन्नगी का विवाह कोवलन के साथ होता है। जो 'मासात्तुवान' चेट्टियार का पुत्र है। कोवलन के पिता ने 'सुहाग के नूपुर' मदुरा के अत्यन्त प्रसिद्ध स्वर्णकार से बनवाकर कन्नगी को दिये थे। किन्तु, माधवी, जिस पर कोवलन उसके अद्वितीय रूप सौन्दर्य पर रीझ गया था। कन्नगी को सुहागरात में ईर्ष्यावश वे सुहाग के नूपुर पहनने का अवसर नहीं दिया। यहॉ उपन्यासकार कहता है कि ईर्ष्या नारी का स्वाभाविक गुण है। संस्कारों में पली कन्नगी कोवलन के सम्मुख दीपक के मध्य आलोक में ''गूंगे भविष्य सी खड़ी थी।''[82] क्योंकि कन्नगी स्वयं को पति की दासी मानती है। कन्नगी विनम्रता और नारी के सुलभ गुणों की दिव्य प्रतिमा है। सुहागरात को माधवी के सम्मुख अपमानित रूप में खड़ी हुई भी वह अपने शील को तिलांजलि नहीं देती। उसका शील अचल और अडिग है। झंझावत भी उसे कंम्पित करने में असमर्थ रहते हैं। माधवी जब कोवलन के सम्मुख ही उससे पूछती है कि ''मेरे पति कोवलन जैसे दिव्य श्रृंगारी आत्मा को रिझाने के लिए।''[83] तुम्हारे पास कौन–कौन से गुण हैं ? और अपने नृत्य के घुँघरू उसकी ओर फेंक कर उसे नृत्य के लिए बाध्य करना चाहती है, तब कन्नगी के मुख से निकले हुए शब्द उसके गम्भीर शील के परिचायक हैं– ''बहन ये घुँघरू तुम्हारे ही पैरों में शोभा पायेंगे ××× मेरे तो देव तुल्य पति ने कुल के सुहाग के नूपुरों से मेरे पैरों को बाँध दिया है।''[84]

यहॉ लेखक ने कन्नगी के शान्त और दृढ़ चरित्र का अंकन किया है। यही नारी के दिव्य गुण हैं जिनसे पुरुष आजीवन बंधा रहता है। नारी सुलभ ईर्ष्या और प्रतिक्रिया की भावना लेश मात्र भी नहीं है। संभव है कि कोई यथार्थवादी इस आदर्श को मण्डित चरित्र के संबंध में अन्यथा विचार करे किन्तु उसे यह भूलना नहीं चाहिए कि दक्षिण में सती कन्नगी अपनी पवित्रता, पति परायणता और सन्तुलित व्यक्तित्व के लिए प्रख्यात नारी है। शताब्दियों से परम्परागत पवित्र भावनाएं कन्नगी के चरित्र के इर्द गिर्द पुँजीभूत हो गई हैं। अतः नागर जी के लिए भी यह संभव नहीं था कि महाकाव्य में चित्रित कन्नगी के चरित्र में जरा भी हेर–फेर करते।

कन्नगी वास्तव में 'हीरा' और 'सती' है क्योंकि कोवलन जैसा दर्पयुक्त पुरुष उसका आदर करता है, तभी उसके मुख से उपर्युक्त शब्द निकलते हैं। कन्नगी का चरित्र कोवलन को प्रकाश प्रदान करता है। कन्नगी के पति की सेवा में अपने आभूषणों को भी बेच देती है जो नारी को

सबसे अधिक प्रिय होते हैं। पति के लिए वह अपने ससुर से झूठ भी बोलती है। इसलिए उसका ससुर कहता है–''बेटी तुम्हारा शील तुम्हारे पितृ कुल की यशोगाथा गा रहा है और तुम्हारा असत्य भाषण मेरे कुल की लाज बचा रहा है।''[85] कन्नगी अपने पति की इच्छाओं के प्रति सहज समर्पित थी और अपने जीवन की सार्थकता अपने पति में पा लेती है। वह कोवलन पर अपनी सारी सम्पत्ति न्यौछावर कर सकती है। अपने पति के सुख में अपना सुख मानती है और इसीलिए–''वह साक्षात् देवी है।''[86]

इसीलिए कोवलन भी उसे अपने ''प्राणों से अधिक प्यार करता है।''[87] इतना अवश्य है कि वह अपने दिव्य श्रृंगारी आत्मा वाले पति को माधवी के समान रूठने–मनाने और प्रेमाभिनय आदि से प्रभावित नहीं करती किन्तु वह अत्यधिक सरल, मधुर स्वभाव रखती है। विनम्रता उसकी धरोहर है। 'प्रसाद' की 'देव सेना' के समान वह अलौकिक और दिव्य पारिजात पुष्प है। अतः कोवलन उसे अपनी सहधर्मिणी ही नहीं अपितु मंत्राणी भी मानता है।[88]

कन्नगी लौकिक धर्म को तो मानती ही है, साथ ही उसका विश्वास है कि नारी को जीवन में संस्कारित और मर्यादित रहना चाहिए क्योंकि पुरुष अपना धर्म भूल जाए तो क्या स्त्री भी मर्यादा के बन्धन ढीले कर देगी।''[89] कन्नगी का विचार है कि ''स्त्री के बिना कुलों की परम्परा नहीं बँध सकती।''[90] माधवी के द्वारा अनेक यातनाएँ देने पर भी कन्नगी सुहाग के नूपुरों को माधवी के लिए नहीं उतारती। वे ही नूपुर तो उसके सुहाग के कवच हैं। जो अनेक प्रकार से उसकी रक्षा करते हैं। परन्तु जब पति पुनः व्यापार करने के लिए तैयार होता है तो धन की पूर्ति हेतु वह वे नूपुर कोवलन को दे देती है क्योंकि ये उसके पति की कार्य सिद्धि के लिए ही है।

नागर जी ने लोक विख्यात कन्नगी का चरित्र उच्च और पति परायणा के रूप में अंकित किया है। माधवी धर्म धुरीणा है और इसीलिए तो चेलम्मा उसके ''सुहाग के अचल''[91] रहने का आशीर्वाद देती है। कन्नगी अपने प्रयास पूर्ण और तपःपूर्ण जीवन के कारण ही अन्त में सब कुछ प्राप्त करने में सफल होती है।

नागर जी का प्रतिपादन है कि प्रेम की असंदिग्ध निष्ठा मानव को जीवन में शीतलता और गरिमा प्रदान करती है। निष्ठाहीन व्यक्ति जीवन भर जलता रहता है और अपनी भावनाओं की कोड़ों की मार से प्रताड़ित होता रहता है–''द्विविधा में बंधी हुई स्त्री कभी किसी पुरुष को बल नहीं दे सकती। वह कभी एक भाव में रहेगी कभी दूसरे में। एक निष्ठ सती ही अपने पुरुष को बल प्रदान कर सकती है क्योंकि वह द्विविधा से रहित है।''[92]

माधवी– माधवी उपन्यास की महत्वपूर्ण एवं गतिशील पात्र है। जीवन भर सामाजिक रूढ़ि और थोथी नैतिकता से अपनी सीमित शक्ति से संघर्ष करती रहती है। माधवी पेरियनायकी की पोष्य पुत्री है। वह वेश्या होने के कारण अपने भविष्य के प्रति अत्यधिक सजग रहती है। परियनायकी का विदेशी प्रेमी पान्शा उसे अपनी पुत्री ही समझता है। वह कोवलन की परिणीता होने के लिए जीवन भर प्रयास करती है किन्तु 'नगर की नए नशे शी' और यौवन की सीढ़ियाँ चढ़ती हुई

अनिंद्य सुन्दरी बाला 'सुहाग के नूपुर' पहनने की हौस को पूर्ण नहीं कर पाती। कावेरीपट्टणम के नृत्योत्सव में उसे ''कामदेव का धनुष'' उपाधि से विभूषित किया गया। ''नृत्योत्सव'' में विजयी होने के आठवें दिन कोवलन की कृपा से माधवी कन्या से नारी बन गई।'' कोवलन और माधवी का प्रेम प्रगाढ़ है और उसे माधवी के प्रेम पर पूर्ण विश्वास है।

इतना होने पर भी माधवी की आत्मा उसको कचोटती रहती है। वह अपने प्रिय कोवलन से अपनी आत्मपीड़ा को व्यक्त करती है–''इस लोक में कोई भी इस अभागिन वेश्या के एकनिष्ठ प्रेम पर विश्वास न करेगा, तुम भी नहीं। ऐसे जीवन से मृत्यु लाख गुना अधिक मीठी है।''[93] ''स्त्री के नैसर्गिक रूप, गुण और मन को पाकर भी उसके अधिकारों से वह वंचित है (वह) स्त्री नहीं वेश्या है।''[94] यह विडम्बना उसकी सामाजिक स्थिति की है।

माधवी रूप जीवा होते हुए भी किसी एक पुरुष की होकर रहना चाहती है। जैसे उच्च कुलोत्पन्न अनेक नारियॉ एक निष्ठ होकर जीवन यापन करती हैं। वह कोवलन को पूर्ण रूपेण अपना बनाना चाहती है और स्वयं उसकी बन जाना चाहती है। परन्तु उसे लगता है विवाह के अनैतिक धर्मपाश में बाँधकर कन्नगी उसके जीवन सर्वस्व को बरजोरी हर ले गयी। इसीलिए कन्नगी के प्रति वह हिंसक सा व्यवहार करती है। उसके मन में अतृप्त हौस से संबंधित कुंठा है ''माधवी का रोम–रोम अन्तःकरण की घुटन से जकड़कर विद्रोह करता है। उसके मन में रह–रहकर यह हाय उठती है कि मानाइहन की बेटी क्यों न हुई? अपने मन चाहे पुरुष के साथ उसका प्रणय बंधन विवाह के पवित्र मंत्रों से पूत बनाया जाकर समाज की दृष्टि से शुभ क्यों नहीं माना जा सकता।''[95] इसी भावना को साकार रूप देने के लिए माधवी एक दिन कोलवन के साथ विवाह रचा लेती है। नारी की नैसर्गिक इच्छा की पूर्ति करती है। इस प्रकार 'सुहाग के नूपुरों' को कोवलन से कहकर मँगवाना चाहती है। उसके लिए आजीवन प्रयास करने वाली माधवी अपनी विवशता एवं कोवलन से उत्पन्न पुत्री 'मणिमेखला' के भविष्य की सुरक्षा हेतु अपना सतीत्व और देह राज्याधिकारी को बेचने के लिए बाध्य हो जाती है। घने अंधकार में उसके जीवन भर का स्वाभिमान भी अधिक काला बनकर पापयुक्त हो गया। नियति नटी का क्रूर अट्टहास उसकी भाग्य लिपि को ही बदल देता है।

माधवी कोवलन के प्रति प्रेम 'स्वाभिमान' और पूर्ण विश्वास है। उसके इस प्रेम के कारण मासात्तुवान की मृत्यु, मानाइहन का सन्यास ग्रहण और कोवलन का समग्र विश्व में फैला हुआ व्यापार नष्ट हो गया। देश में आर्थिक संकट अपने उग्र रूप में था। राज्य को यह बात मानाइहन के द्वारा स्पष्ट कर दी जाती है। राजा ने चुनकर एक राज्याधिकारी भेजा कि तुम माधवी के सतीत्त्व को नष्ट कर उसके व्यर्थ अभिमान को तोड़ दो। राज्याधिकारी ने माधवी को राज्यतंत्र की पेचीदगियों में फँसा लिया। वह उसके निकट आती–जाती रही। धीरे–धीरे उसका सतीत्त्व और स्वाभिमान स्खलित हो गया। एक दिन राज पुरुष कहता रहा–''इस नगर में महराज के आदेशानुसार हर कार्य अब सिद्ध हुआ। ताराओं से होड़ लेने वाले पटजीवन को उसकी स्थिति

का ज्ञान भी करा दिया। हः हः यही तुम्हारा दण्ड था प्रिये! चलते समय महराज ने मुझसे कहा था कि कुल वधुओं की प्रतिष्ठा के लिए समाज को नगर बधुओं की आवश्यकता रहेगी। केवल उन्हें उनकी मर्यादा में बांध दो।''[96] अकेली माधवी के सतीत्त्व दर्प को समग्र समाज मिलकर तोड़ना चाहता है। माधवी की छाती पर पुरुष का वज्रपात इसीलिए हुआ। वह हंसने को बाध्य हुई। खान–पान चलता रहा। माधवी की देह पथराई होती चली।''[97] इस स्थिति में आकर ''वह नये जीवन के लिए स्वेच्छा का भाव गॅवाकर निर्लज्ज भाव से प्रस्तुत पड़ी थी। उसके जीवन का नया पुरुष सेज के पास उसी के समान आवरणों से मुक्त खड़ा उतावली से चषक से चपक ढ़ाल रहा था।''[98] माधवी आत्म पीड़ा से कराह उठी। ''यह टूटा दर्प का दमकता महल। ओ! सुहाग के नूपुरों की साध। मर।''[99] वास्तव में सत्य है–''वेश्या के लिए सती बनना बड़ा कठिन है।''[100] एक स्थान पर स्वयं माधवी का अन्तर्द्वन्द्व इस प्रकार प्रकट होता है–''मेरे अन्तर की सती मर, मेरी छलना! दूर हो मणि की माता। मर। मर मेरे रूप, मेरे यौवन के आकर्षण जी, रूप–जीवा माधवी। जी।''[101] वस्तुतः इस रुदन में उन समस्त नारियों का रुदन है, जो पुरुषों की काम पिपासा के कारण समाज में अपमानित और लांछित जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य की जाती हैं। वे इस चक्रव्यूह से असमर्थ अभिमन्यु की भॉति निकलना चाहती हैं परन्तु अपनी सीमित शक्ति के कारण अन्यायी राज्याधिकरण और मदमस्त कामाचारी पुरुषों से घिर कर उनके उछाह और सती बनकर जीने की अतृप्त साध को लेकर संसार से माधवी की भॉति जल प्लावन के समय विक्षिप्त हो सदैव के लिए गूँगी बन सर्वस्व गॅवा देती हैं। अपनी अनेक मणि मेखलाओं को वे मदनोमत्त पुरुषों की केलि क्रीड़ाओं के लिए और विद्रूप जीवन यापन के लिए छोड़ जाती हैं। नियति जितना न कराए, थोड़ा ही है। पुरुष अपने स्वार्थ के कारण उसे छलता है। भोली नारी छली जाती है। इसी शाश्वत भाव को उपन्यास के अन्त में व्यक्त किया गया है–''पुरुष जाति के स्वार्थ और दमन भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग–नारी जाति–पीड़ित है। एकांगी दृष्टि कोण से सोचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर ही सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर ही। इसी कारण वह स्वयं भी झकोले खाता है और खाता रहेगा। नारी के रूप में न्याय रो रहा है महाकवि! उसके आँसुओं में अग्नि प्रलय भी समाई है और जल प्रलय भी।''[102] मानव समाज के समक्ष ईसा की प्रथम शताब्दी में भी यही प्रश्न था और आज भी।

चेलम्मा–

चेलम्मा माधवी की नृत्य संगीत गुरु है। माधवी पर उसका प्रभाव भी है। अनेक बार नगर में चेट्टियारों की जीवन झाँकी देने के लिए विचित्र नाटक रचती है। कोढ़ी हो जाने के बाद उसके रूप पर प्रायः न्यौछावर हो जाने वाले पुरुष नहीं रहे। फिर भी मानाइहन उसको इस समय भी प्रेम करते थे। उसके लिए अलग निवास की व्यवस्था भी करते हैं। माधवी और कन्नगी से वह मातृवत प्यार करती है। चेलम्मा उपन्यासकार के विचारों की सूत्र धारिणी है। उसके चरित्र में

कोई विशेष संघर्ष और उतार चढ़ाव नहीं है। चेलम्मा वर्गगत पात्रों की श्रेणी में आती है। चेलम्मा अधिक स्वाभिमानी वेश्या है। वह भी माधवी की भांति किसी एक पुरुष की बनकर रहना चाहती थी। किन्तु उसकी सामाजिक स्थिति के कारण उसे सदैव दुत्कारा ही जाता रहा। वह मनाइहन की नृत्य प्रेमिका है। कोढ़ी होने पर वह सौभाग्य सम्पन्न नहीं रहने पायी। एक दिन किसी सार्थ के साथ वह तीर्थ यात्रा करती काशी पहुँचती है। वहीं एक सन्यासी की मनोयोग से सेवा करती है और उस सन्यासी की अलौकिक औषधि के सेवन से कोढ़ मुक्त हो जाती है और फिर अपने सम्पूर्ण लावण्य के साथ कावेरी पट्टणम में प्रवेश करती है। सभी उसे देखकर चकित रह जाते हैं कठिन परिस्थिति में वह कन्नगी की सहायता भी करती है। और कोवलन का उद्धार कराती है।

पेरियनायकी–

यह उपन्यास की गौण पात्री है। यह अपने भविष्य की सुरक्षा के लिए पांसा की अंक शायिनी बनती है। उसको वेश्या की व्यावहारिक बुद्धि है और इसी व्यावहारिक बुद्धि के आधार पर वह माधवी को अनेक बार समझाती भी है। वह उसे 'जाड़े की धूप सी' तपस्या के लिए कहती है। जिससे माधवी की नियति चेलम्मा जैसी न हो। चेलम्मा किसी एक पुरुष की होना चाहती थी इस कारण श्वेत केशी महाराज को तिरस्कृत किया। अपने अभिमान के कारण ही भारतीय व्यापारी ने उसे अरब में छोड़ दिया। वह मानती है कि "एक पुरुष के साथ व्यवहार निभाया जाय तो अच्छा है।"[103] किन्तु हे माधवी ऐसा लगता है कि 'कोवलन' तेरे पैरों में 'सुहाग के नूपुर नहीं डालेगा।"[104] वेश्या को धन की आवश्यकता रहती है। एक की बनकर रहने में धन के लिए जोखिम है। अतः "सती होकर भी चैन नहीं और वेश्या होकर भी नहीं।"[105]

शतरंज के मोहरे

इस उपन्यास में नारी पात्रों में चार चरित्र ही प्रमुख हैं। बादशाह बेगम, दुलारी और भुलनी, और कुदसिया बेगम।

बादशाह बेगम– बादशाह बेगम गाजीउद्दीन को शतरंज का मोहरा बनाने में लगी रहती है। और आध्यात्मिक निष्ठा के साथ एक गृहस्थ महिला की भूमिका अदा करती है। उसमें वात्सल्य भावना का सहज उद्रेक दिखाई पड़ता है। यदि वह स्वाभिमानी, धार्मिक और विदुषी महिला है तो अपनी महत्वाकांक्षा, अहं, स्वार्थ लिप्सा, क्रूरता और कुचक्रों के कारण हिंसा की प्रतिमूर्ति भी सिद्ध होती है। उसने हिन्दू रीति–रिवाज से प्रभावित होकर अपने महल में अनेक देवी–देवताओं की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की हैं। उसे ज्योतिष का ज्ञान है। ज्योतिष की गणना करने के उपरान्त ही वह कोई राजनीतिक कदम उठाती है। फिर भी, वह जीवन पर्यन्त राजनीतिक संघर्ष में पिसती रहती है। **डॉ0 सुदेश बत्रा के शब्दों में–** "वस्तुतः उपन्यास के उत्तरार्ध में बादशाह बेगम का चरित्र स्वार्थी, कुचक्री और क्रूर अहंकारिणी के रूप में ही विकसित हुआ है।"[106]

दुलारी–दुलारी एक साधारण सईस रुस्तम अली की पत्नी है। अप्रतिम सौन्दर्य मण्डित दुलारी एक आवारा और विश्वास घातिनी महिला है। इस बात के संकेत उसके प्रारम्भिक जीवन वृत्तान्तों से मिलते हैं। उसके जीवन में पति के लिए कोई स्थान नहीं है। वह जीवन को भोग का साधन मानते हुए पर पुरुषों से यौन संबंध स्थापित करने में कोई संकोच नहीं करती है। शाही महलों में प्रविष्ट होने के पश्चात् उसके जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आता है। उपन्यास के आरम्भ में जहाँ वह सौन्दर्यवती युवती–रूप में दिखाई पड़ती है वही राज प्रासाद में उसका चरित्र गहरी साजिशों तथा उलझनों के बीच विकसित होता है। उसके साजिशपूर्ण व्यक्तित्व की झलक वारिस अली के वार्तालाप से मिलती है। वह कहती है–''हमारी यह सेज आग की भट्ठियों पर बिछी हुई है। मुझे हर वक्त हर घर की खबर मिलनी चाहिए।'' नवाबी अन्तःपुर के कुचक्रों, संघर्षो एवं परिस्थितियों का बोध हो जाने पर वह महत्वाकांक्षा की पूर्ति–हेतु, अपने सौन्दर्य को साधन बनाकर राजनीतिक दॉव–पेंच में लग जाती है। वह नसीरूद्दीन को अपने प्रेम–पाश में बांधकर अपने कृतिम आचरण से बादशाह बेगम को वशीभूत करने में सफल सिद्ध होती है। परिस्थितयों का पर्यवलोकन कर वह अपनी भावनाओं को अव्यक्त रखते हुए उचित समय की प्रतीक्षा करती है और अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर बादशाह बेगम और नसीरूद्दीन हैदर के मध्य मतभेद खड़ाकर नसीरूद्दीन को गाजीउद्दीन के प्रभाव में कर लेती है। अपनी कुशाग्र बुद्धि, व्यवहार कुशलता एवं कूटनीतिक चातुर्य में एक दिन वह अवध के मलिक–ए–जमानियाँ पद पर शोभित होती है। वह अपने पति के साथ भी विश्वासघात करती है। अन्ततः वह पाठकों की दृष्टि में भी घृणा की पात्र बनकर रह जाती है। संक्षेप में दुलारी का चरित्र भयंकर घात–प्रतिघातों से गुजरती हुई राजनीतिक महिला का चित्र है, एक प्रेमिका का चित्र है, मलिक–ए–जमानियाँ का चित्र है। उसके व्यक्तित्व के इन तीनों चित्रों में काफी संघर्ष है– कशमकश है।''[107] उसके चरित्र के संबंध में **प्रकाश चन्द्र मिश्र** का निम्नांकित कथन दृष्टव्य है– ''वह निर्धन है फिर भी महत्वाकांक्षिणी है, वह अनपढ़ है फिर भी राजनीतिक दांव–पेंच तथा कूटनीतिज्ञता में बड़े–बड़े उस्तादों को भी परास्त करने वाली है। उसके चरित्र की यही भूमिकाएँ उसे नाना संघर्षो में डालती हैं और उनमें डूबते–उतराते सफलता की बड़ी से बड़ी सीमा का स्पर्श करते हुए भी अन्ततः वह परिस्थितियों के महासागर में विलीन हो जाती है।''[108] **डॉ०सुदेश बत्रा के शब्दों में**– ''उपन्यास के आरम्भ से अन्त तक छायी रहने वाली पात्रा है दुलारी, जिसका चरित्र विकास उसकी परिस्थितियों में सतत् उतर–चढ़ाव लाता रहता है। ×××× उसका समस्त जीवन महत्वाकांक्षाओं के घात–प्रतिघातों में झूलता रहता है।''[109]

भुलनी– भुलनी बालिका का चरित्र एक सजग भारतीय नारी का चरित्र है, जिसमें आत्म सम्मान हैा स्वाभिमान है, समाज का एक आदर्श है, भारतीय नारी का त्याग–सतीत्व है। वह आस्था विहीन होकर, समाज का व्यभिचार सहकर जिन्दा नहीं रहना चाहती और मृत्यु का वरण कर लेती

है। नईम द्वारा प्रस्तावित विवाह को अस्वीकार करते हुए वह आत्म विगलित स्वर में कहती है– "जमराज से मोर बियाहु होइ चुका महराज। जियें के बदे अपन धरमन छॉड़ब।"[110] भुलनी एक हरिजन बालिका है अपने धर्म से बलात् निष्कासित किये जाने पर बिरादरी के लोग और उसके माता–पिता उसका . स्पर्श तक नहीं कर सकते।" **डॉ०सुदेश बत्रा के शब्दों में**–"हिन्दू समाज की इन रूढ़ियों का मार्मिक दुखान्त चित्रांकन भुलनी के प्रसंग के माध्यम से हुआ है।"[111]

कुदसिया बेगम–कुदसिया बेगम उर्फ बिस्मिल्लाह का प्रसंग एक संक्षिप्त संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। वह एक संवेदनशील एवं कारुणिक नारी पात्र है। वह अत्यन्त सुन्दरी और कत्थक नृत्य में अत्यन्त कुशल है। नवाब नसीरूद्दीन के जीवन की जटिलताओं को सुलझाने का वह पूरा प्रयत्न करती है। वह नवाब से सच्चा प्रेम करती है परन्तु बदचलन होने के आरोप को झेल सकने में अपने को असमर्थ पाकर मृत्यु का वरण कर लेती है, जिससे उसके स्वाभिमान का परिचय मिलता है– "मै इस मक्रोफरेब की भरी दुनियॉ में, जहॉ इन्सान, इन्सान का दिल तक न पहचान सके, एक घड़ी के लिए भी नहीं रहना चाहती।"[112] मृत्यु के पूर्व नसीरूद्दीन के कहे गये शब्द अत्यन्त वेदनापूर्ण है और उसके निश्चल हृदया होने के प्रमाण हैं– "मैं तुम्हारी थी, तुम्हारी रही और तुम्हारी होकर जा रही हूँ। मरते वक्त खुदा की गवाही में मैं तुम्हें यकीन दिलाती हूँ कि मेरे हमल में मेरे साथ जो एक नन्हीं सी जान भी दुनिया देखे बिना ही दुनिया से जा रही है, तुम्हारी ही औलाद हैं। मैं बड़ी साध से तुम्हारे बच्चे की माँ बन रही थी। तुमने मेरा ख्वाब चूर–चूर कर दिया, तुमने अपना मुकद्दर मिटा डाला।"[113]

कुदसिया वेश्या होते हुए भी बुद्धिमती और कृतज्ञ चरित्र वाली नारी पात्र है। वह अत्यन्त निडर रहती है– "खेल में कोई बादशाह और गुलाम नहीं होता।"[114]

वस्तुतः कुदसिया बेगम का चरित्र नारी की मर्यादा का उच्च रूप है।

बीबी गुलाटी– बीबी गुलाटी नामक नारी पात्र का चरित्र अत्यन्त लघु होने पर भी स्वतंत्र चरित्र है। वह एक धार्मिक और बहुत ही सुलझी हुई नारी पात्र है। ज्योतिष का अच्छा ज्ञान उसके चरित्र की एक अतिरिक्त विशेषता। वह बादशाह बेगम की अत्यन्त कृपा पात्री एवं विशिष्ट कलाकार भी है।

कुल्सुम– कुल्सुम एक अनाथ बालिका है। जो दिग्विजय ब्रह्मचारी की भतीजी है। कुल्सुम का चरित्र कुदसिया और भुलनी दो नारी पात्रों के संसर्ग में विकसित हुआ है और उपन्यास में अपनी एक महत्वपूर्ण छाप छोड़ता है। सम्पूर्ण उपन्यास में कुल्सुम का चरित्र पाठकों के लिए करुणा और सहानुभूति का विषय है। उसके चरित्र में उसका उत्थान–पतन, भतीजी, सहेली और बहन के रूप में अंकित है।

सात घूँघट वाला मुखड़ा

जुआना बेगम– इस उपन्यास का सर्व प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्त्रीपात्र है, जो जुआना बेगम, बेगम समरू, मुन्नी, दिलाराम, टॉमसप्रिया, लवसूल प्रिया आदि नामों से अलग–अलग समयों में जानी

गयी है। ये नाम उसके जीवन और चरित्र के विकास का परिचय देते है। उपन्यासकार ने बेगम समरू के विवादित और किंवदन्तियों से पूर्ण किन्तु ऐतिहासिक चरित्र को उद्घटित करने का प्रयास किया है। सर्वप्रथम दिलाराम उर्फ मुन्नी बशीर खाँ के पिता द्वारा क्रय की गयी लड़की है। धीरे–धीरे वह वशीर खाँ से प्रेम करने लगती है और बशीर तथा मुन्नी आपस में विवाह करना चाहते है। वशीर के पिता मुन्नी के व्यक्तित्व को जानते थे। अतः उन्होने बशीर को विवाह न करने की कसम दिलाई और बताया– "वह हुकूमत करने के लिए पैदा हुई है उस पर हुकूमत की नहीं जा सकती।"[115] अतः वह मुन्नी उर्फ दिलाराम को नवाब समरू के हाथों दस हजार अशर्फियों में बेच देता है। बशीर खाँ द्वारा बेच दिये जाने पर बेगम अत्यन्त कठोर बनकर राजनीति के खेल खेलने लगती है। यह उसके व्यक्तित्व की विशेषता ही थी, कि वह नवाब समरू जैसे खूँखार भेड़िये को अपना पालतू कुत्ता बना लिया। वह बहुत सुन्दर भी थी इसीलिए उसने नवाब समरू को अपने मकड़ जाल में नखदन्त विहीन सिंह की भाँति फँसा लेती है। बेगम अपनी कामेच्छाएँ सेनापति टॉमस से तृप्त करती है। दोनों मिलकर नवाब समरू की हत्या करवा देते है। अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने के लिए वह लवसूल या लीवॉयस को भी अपनी सुन्दरता के जाल में फँसा लेती है। वह बड़ी चतुरता के साथ टॉमस और लवसूल दोनों को लालच देती रहती है। उसकी महत्वाकांक्षाएँ बहुत ऊँची है। वह मलिकाए–हिन्द बनने का स्वप्न देखने लगी और दिल्ली बादशाह को विभिन्न प्रकार की सहायता देकर उसने उन्हें भी धीरे–धीरे अपने वश में करने का प्रयास किया। जब गुलाम कादिर खाँ ने दिल्ली पर आक्रमण किया तो इसने जन–धन से बादशाह की सहायता कर उन्हें विजयी बनाया। प्रसन्न हुए बादशाह द्वारा उसे जैबुन्निसा और दुखतरे खास की उपाधियों से विभूषित किया गया। इस सफलता के बाद वह टॉमस और लवसूल में प्रतिद्वन्दिता कराकर टॉमस को राज्य से बाहर खदेड़कर लवसूल से विवाह कर लेती है। किन्तु इस विवाह का प्रबल जन विरोध होने के कारण लवसूल के द्वारा आत्महत्या कर लिये जाने पर बेगम समरू भी विद्रोहियों द्वारा गिरफ्तार कर ली जाती है और एक लम्बी बीमारी के बाद उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है।

जुआना बेगम का कई विशिष्ट व्यक्तियों के साथ शारीरिक सम्बन्ध रहा। और ये सभी कार्य वह केवल अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु करती थी। लेखक ने स्वयं उसके चरित्र को रहस्यात्मक बताया है– "जुआना अब अपने हसीन चेहरे पर तीसरे भाव का मुखौटा चढ़ाने बैठी। दिल की सात तहों के भीतर जुआना अब भी ईमान और इन्सानियत के हुश्न पर मरती है, मगर हठीला होने की वजह से बशीर खाँ से धोखा खाने के बाद उसने अपने को पत्थर की तरह सख्त बनाना शुरू किया।"[116] बेगम समरू एक महत्वाकांक्षी महिला है जो नवाब समरू की बेगम बनने के बाद जुआना बेगम समरू के नाम से प्रसिद्ध हुई। शासन के प्रति निष्क्रिय वृद्ध नवाब समरू से शासनतन्त्र की लगाम हस्तगत कर, टॉमस के साथ मिलकर, नवाब के विरुद्ध षड्यन्त्र रचकर, हिन्दुस्तान की मलिका बनना चाहती है। उसकी हार्दिक महत्वाकांक्षा है– "वह दिन

अवश्य आयेगा जबकि वह टॉमस से विवाह करेगी, उसके जीवन–सागर में आनन्द की हिलोरें उठेगीं। वह सन्तानवती, सुखी, सद्गृहस्थ बनेगी, हजार तरीके से रीझ–रीझकर वह अपने पति परमेश्वर की पूजा करेगी। समरू एक न एक दिन मरेगा ही। वह छप्पन वर्ष का बूढ़ा है। आयु मे वह उससे दुगुने से भी अधिक बड़ा है। जुआना के सुख के लिए उसे मरना ही होगा। अगर अपनी मौत न मरा तो मारा जायगा, घुला–घुलाकर मारा जायेगा।''[117] वह जहरीली नागिन एक दिन नवाब समरू की मौत का कारण बन जाती है। जुआना के इस चरित्र के प्रति हमें घृणा उत्पन्न होती है। किन्तु, जब वह नवाब के गम में व्याकुल होकर कहती है– ''अब जीने की तमन्ना नहीं रही लवसूल। जिसने हाथ पकड़कर एक दिन मुझे दल–दल से उबारा था, वही अब कुएँ में ढकेलकर चला गया। मुझसे नाराज थे तो जान भी मेरी ही लेते, खुदकुशी क्यों की ?''[118] क्षणिक स्तब्धता के बाद परिस्थितिजन्य कातरता और आत्मविवशता के प्रति हमारी अशेष दया, सहानुभूति उसे प्राप्त हो जाती है। वह लवसूल से अपने एकाकी पन पर कहती है– ''हमारा और तुम्हारा सरपरस्त चला गया लवसूल! हम यतीम हो गये।''[119] प्रेम एवं महत्वाकांक्षा ही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। वह कहती है– ''प्यार मैं अब किसी से भी नहीं करती–न खुद से, न टॉमस से, और न उस बूढ़े भेड़िये से, जिसने मुझे दस हजार अशर्फियों में खरीदा था।''[120] किन्तु, अपनी चरित्रगत दुर्बलता के कारण वह टॉमस से विरक्त होकर लवसूल के प्रति आकर्षित होकर अपने को समर्पित कर देती है। उसका यह समर्पण टॉमस की क्रोधग्नि को भड़काने में सहायक सिद्ध हुआ। वह लवसूल की मृत्यु से दुखी होकर आत्महत्या करने के प्रयास में घायल हो जाती है, किन्तु बचाली जाती है। इस घटना के बाद उसे वस्तु–स्थिति का यथार्थ–बोध हो जाता है। वह आत्मविश्लेषण करती हुई कहती है– ''प्रेम–विलास और राजनीतिक महत्वाकांक्षा दो अलग–अलग इच्छाएँ हैं, इन्हें एक में बाँधने का प्रयास निष्फल होना चाहिए था। जुआना अब एक की होकर रहेगी, एक ही से लौ लगायेगी और वह एक अब खुदा का बेटा जीजस क्राइस्ट ही होगा। जीजस!''[121] उसके प्रशासकीय चरित्र की एक झलक उस समय मिलती है जब यह मुश्तरी को जीते जी दीवाल में चुनवा देती है। बेगम समरू कहती है– ''इंसाफ अंधा और बहरा होता है महबूबा! कसूरवार को सजा मिलनी चाहिए। इस नमक हराम ने हमारे शौहर को हमारे खिलाफ करने का जुर्म किया और ऊपर से हमें ही मंगरूरी से आँखें दिखलाती थी।''[122] समरू बेगम का चरित्र नारी की स्वभावगत दुर्बलताओं के मध्य भी चमकता रहता है।

नाच्यौ बहुत गोपाल

इस उपन्यास में प्रमुख रूप से दो ही नारी पात्र है–श्रीमती निर्गुनियाँ, गुल्लन चाची।

श्रीमती निर्गुनियाँ– 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में प्रमुख चरित्र श्रीमती निर्गुनियाँ का है। प्रेम और अनैतिक वातावरण के मध्य जीती हुई निर्गुनियाँ में एक ऐसे क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का विकास हुआ है जिसके बल–बूते पर वह विषम परिस्थितियों से साहस पूर्वक निबटना जानती है। निर्गुनियाँ के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में एक ओर हिमालय सा अटल आत्मविश्वास, निष्ठा, धैर्य–समर्पण है तो दूसरी

ओर गंगाजल सी निर्मलता, पवित्रता और ममत्व के साथ ही बाधाओं और सामाजिक विकृतियों को आत्मसात् करने की अद्भुत क्षमता। उसके हृदय रूपी पवित्र संगम में हर कोई अपने तन–मन का मैला साफ करता है किन्तु उसका स्वरूप धूमिल होने के बजाय निरन्तर निखरता ही जाता है। वह परम्परा की डोर से बंधे सवर्णो को अपनी उंगली के इशारे पर नचाती रहती है।

जीवन के प्रारम्भिक दिनों में निर्गुनियाँ सेक्सुअल जीवन व्यतीत करती है और पाँच पुरुषों की भोग्या होने के बाद मेहतरानी बनकर अश्लील से अश्लील गालियों की बौछार करने में कोई संकोच नहीं करती। फिर भी, उसके प्रति हमारे हृदय में घृणा न उत्पन्न होकर सहानुभूति की भावना ही जागृत होती है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर, नाना–नानी के पवित्र धार्मिक वातावरण में बचपन बिताकर, श्लोकों तथा ऋचाओं से पोषित मानसिकता वाली निर्गुनियाँ जब जीवन के एक महत्वपूर्ण मोड़पर पहुँचकर झांडू–टोकरा उठाकर मेहतरानी बनती है, तब भी वह अत्यन्त सहज लगती है। हाँ, मन कुछ क्षण के लिये स्तब्ध अवश्य हो जाता है। ''शरीर–सुख पाने की कामना में वह तबाह हो गयी, लेकिन इसी कामना को चूल्हे की लकड़ियों की तरह समेट कर उसकी आँच में उसने अपने व्यक्तित्व को पकाया है। वह किसी योगी से कम नहीं, ध्यान–धारणा और समाधि सब कुछ उसे अपने ढब और ढंग से सिद्ध है।''[123] नागर जी निर्गुनियाँ के व्यक्तित्व से इतने अभिभूत है कि उन्हें उसमें अप्रतिम सौन्दर्य फूटता दिखायी पड़ता है– ''जो कंचन जंघा की बर्फीली चोटियों पर सूर्योदय के समय और कन्याकुमारी के तट पर सूर्यास्त के समय देखने को मिलता है। यही नहीं, वह सौन्दर्य जो न कुछ माँगता है, न देता है, केवल मन भर देता है।''[124]

निर्गुनियाँ के चरित्र में मोहना मेहतर के साथ भागकर मेहतर बस्ती में प्रवेश करने के साथ क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाता है। मेहतर बस्ती में पहुँचने पर निर्गुनियाँ को एक नयी दुनियाँ दिखाई पड़ती है जो उसकी पुरानी दुनियाँ से एक दम अलग है। मामा का स्नेह पाकर भी मामी की डाँट–फटकार–मार खाकर चुप रहना, मोहना के द्वारा बाध्य किये जाने पर मेहतर का काम करना, मोहना का डाकू बनकर फरार हो जाना, दरोगा बसन्त लाल की छेड़–छाड़, जैसी अनेक विध प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य रहकर निर्गुनियाँ साहस और संघर्ष के बल पर अपना मार्ग स्वयं ही बनाती है। देह और मन के द्वन्द्व से जूझते हुए भी वह मोहना से प्रतिबद्ध रहती है।

प्रारम्भ में परम्परागत आभिजात्य के कारण मोहना का मेहतर पन छुटाकर उसे आभिजात्य बनाने की पूरी निष्ठा के साथ निर्गुनियाँ के अन्तस् का सांस्कारिक पत्नीत्व अपनी जीत के लिए वेश्या बन गया। किन्तु, जब निर्गुनियाँ मोहन का गर्भ धारण कर लेती है तब उसका ब्राह्मणत्व समाप्त हो जाता है और उसके लिये– ''मोहना जैसा भी है अब उसका मन मोहन है। वह अपने आपको मोहन की कह सकती हैं। मोहन के सिवा अब और किसी पुरुष का अंग–संग वह न कर सकेगी। जान दे देगी, पर अन्य पुरुष के साथ उसका वैसा संबंध नहीं हो सकता। वह मोहन की है। मोहन की सन्तान की माँ।''[125] एक पुत्री की माँ बन जाने पर निर्गुनियाँ पूर्णतः मेहतरानी बन चुकी रहती है और बड़े आत्म विश्वास के साथ कहती है– ''पाप, पाप, पाप ! मैने कोई पाप नहीं

किया, ये मेरी बेटी पाप की नहीं, अपने बाप की है और अब तो सारी दुनिया यह जान गयी है कि निर्गुन पण्डिताइन निर्गुनियाँ मेहतरानी बन गयी।''[126] यहाँ मेहतरानी निर्गुनियाँ का 'स्व' बोलता है वह सवर्ण–वर्ग पर करारा तमाचा भी मारती है।

निर्गुनियाँ के माध्यम से नारी–जाति की पीड़ा भी उजागर हुई है। उस पीड़ा का बोध निर्गुनियाँ के इस आत्म कथन से होता है– ''औरत से बढ़कर कोई भी ज्यादा गुलाम नहीं है। मैंने ब्राह्मण भी देखा मेहतर भी देखा। मरद सब जगह एक है, सांसे सब एक है, सब जगह औरत की एक जैसी ही मिट्टी पलीत होती है, मैंने दलितों की समस्या को दोहरे ढंग से भोगा।''[127] एक मैदानी नदी की भाँति निर्गुनियाँ जीवन के कुटिल मार्ग में आगत नाना विध बाधाओं से टकराती, परिथितियों से जूझती, अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करती हुई पतन में उत्थान और प्रसुप्ति में जागरण का दर्शन करने वाले एक चट्टानी व्यक्तित्व का निर्माण करती है। ''वह सूरज की तरह आकाश को रौंदती हुई ज्वाला के समान दिखलाई पड़ती है। कई पड़ाव आते है– मोहना द्वारा डेविड की हत्या, उसकी फरारी, पुराने प्रेमी बसन्त मास्टर का दरोगा बसन्त लाल के रूप में टकराव, मसीता और गुल्लन चाची का संरक्षण, आर्य समाज में दंद–फंद, मोहना से पुनर्मिलन, शकुन्तला और निर्गुण मोहन का जन्म, मोहना की मृत्यु तथा डॉ०एण्डरसन द्वारा प्रणय–निवेदन किन्तु, निर्गुनियाँ की आँच कभी मद्धिम नहीं होती, बुझती नहीं और प्रचण्ड होकर धधकने लगती है। मोहना ऊर्जा बनकर उस अग्नि को निरन्तर जलाता रहता है।''[128] नागर जी ने निर्गुनियाँ के रूप में एक ऐसी तेजस्विनी नारी की सृष्टि की है जिसका दूसरा प्रतिरूप हिन्दी–उपन्यास जगत् में मिलना दुर्लभ है। यह नागर जी की अभूतपूर्व उपलब्धि है।

गुल्लन चाची– गुल्लन चाची नागर जी की एक खास उपलब्धि है, जो प्रतीक–पात्र के रूप में उभर कर सामने आयी है। अपने बेटे और बहू से झगड़ा कर, मार खाकर अपमानित होकर गुल्लन चाची निर्गुनियाँ से अपने पूर्व जन्म के कर्मो को कोसती हुई कहती है– ''कुछ नहीं। सब करमों के भोग है। भोग न होते तो क्या मेहतर के घर जनम पाती ! जनम भर कठपुतली–से जिओं, सबके हुक्म बजाओं, सब के जूते–लात खाओं। अब बोलो भला, मेरी तीन बीसी से भी दो–चार, आठ बरिस ज्यादा उमिर हो चुकी है। ये भला कोई पिटने की उमिर है मेरी ! अल्ला मियाँ जो न दिखाएँ सो थोड़ा है।''[129] वह मेहतर होना पूर्व जन्म के कर्मो का परिणाम मानती है। शारीरिक संबंध न होने पर भी गुल्लन एक प्रेमिका की भाँति मसीता के प्रति समर्पित है। जब मोहना अपनी पत्नी निर्गुनियाँ के अपमान का बदला नब्बू की नाक काटकर लेता है, तब ममत्व के कारण पुत्र नब्बू की सारी उद्दण्डता को विस्मृत कर, प्रतिशोध की आग में सुलगती हुई गुल्लान चाची मोहना और निर्गुनियाँ का अहित करने का अवसर ढूढ़ती रहती है। मोहना और निर्गुनियाँ के एहसानों के बावजूद वह एक दिन धोखे से पुलिस के द्वारा मोहना की हत्या करवा देती है। गुल्लन अपने स्वार्थ, छद्म नैतिकता और ईर्षयाजन्य कायरता प्रभृति स्वभावगत दुर्बलताओं के कारण एक विश्वसनीय चरित्र के रूप में प्रस्तुत होकर परिवेश की यथार्थता का बोध कराती है।

खंजन नयन

इस उपन्यास में नारी पात्रों में कंतों ही प्रमुख पात्र है, शेष सूरज की माँ दो दासियाँ अनारो और सुनैना और बालिका राधारानी के चरित्र सूर की विभिन्न स्थितियों से प्रसंगानुसार संबंद्ध है।

कंतों– कंतों का चरित्र–चित्रण उपन्यासकार द्वारा एक कुरूप आँखों से विरूप, अविवाहित, निम्न–मध्य वर्ग केवट जाति की युवती के रूप में एक निष्काम प्रेमिका और सूर की सहायिका के रूप में किया गया है। उसका स्वर मधुर कंठ वाला है। वह गाँव की अशिक्षित युवती है और थोड़ा–बहुत गाना भी गा लेती है।

कंतो अपने रूप–रंग और दुखी जीवन के संबंध में सूरज स्वामी को प्रथम परिचय में ही अवगत करा देती है– "अंधी–ध्वन्धी। कालों में भी काली। ऊपर से माता के दाग। या जनम तो बस मार खाइबे और काम करिबे ताई मिलो है। मैं सुख कहाँ जानू।"[130]

कंतो एक सच्चरित्र, निर्भीक एवं साहसी युवती के रूप में चित्रित हुई है। उपन्यास में ऐसे दो अवसर आते है जहाँ उसके इन गुणों की स्पष्ट झाँकी प्राप्त होती है। राजा सुबल द्वारा भजन–कीर्तन की सभा में कई दिनों से उसके साथ छेड़ खानी की जा रही थी। कंतो ने सूर स्वामी को बतलाया कि– "मैंने वातें कहि दीनी है, मैं दुसरीन जैसी नाय। एक दिना वाको हाड़ पाँजर अपनी लाठी से तोड़ दोऊँगी। चिताय दऊँ हूँ पहले से, फिर मती कहियो कि चितायी नाय। ×××× कैसो हू होय। अबकी मोते छेड़खानी करी तो वाकी सारी रजाई निकाल दऊँगी।"[131] राजा सुबल जब सभा में कंतो के पास जा बैठ गया तो– "कंतो ने लाठी उठाई और कड़क कर कहा– "परे हट। सबरी रजाई छाँटकर हलकी कर दऊँगी। चिताय दऊँ हूँ।" प्रतिरोध से उत्पन्न प्रतिशोध वश राजा ने ताक लगाकर रात में, पेड़ के नीचे अकेली और निश्चिन्त सोई हुई कंतो की लाज उघाड़ने का प्रयास किया और उस पर लद गया। कंतो की नींद खुली "अपने को गिरफ्त में पाकर चण्डी बन गई। दोनो बाहों को धरती पर टेक कर पूरी शक्ति के साथ उठी और सुबल का टेटुआ पकड़ लिया। घुटी–घुटी चीखों से जंगल भर गया।" थोड़ी दूर पर स्वामी सो रहे थे जगे। तब तक "कंतो सुबल की छाती पर सवार होकर उसके गालों पर तड़ा–तड़ तमाचों की मार लगाते हुए राजा का रजोमद उतार रही थी।" सूर स्वामी के पूछने पर बोली– "स्वामी जी तुम न बोलो। आज तो मैं एक–एक करके टरौगी। कैतो ये कैतो मैं। आज एक ही रहैगों। नई तो बोल सारे मइया कह के पुकार मोय। आज या राजा सों अपने चरण छुवाकर छोडुगी।"[132]

इलावास से अयोध्या यात्रा के बीच पठानों का एक बड़ा गाँव जिसमें एक भी हिन्दू नहीं रहता था। सकूर खाँ तेली का बैल मर गया था। पन्द्रह दिनों से काम ठप था। मौलवी के लड़के नूर खाँ ने इन दोनों को आते हुए देखा और सोचा यह अन्धा हष्ट–पुष्ट है इसी से कोल्हू के बैल

का काम लिया जाय। सूर के मना करने पर जब नूरे ने लाठी पकड़कर अपनी ओर खींचा तो कंतो क्रोध में पागल हो उठी और– "अंधी कंतो ने स्वमी जी का हाथ छोड़कर नूरे को तान कर लाठी मारी। नूरे कतरा तो गया किन्तु फिर भी पुट्ठे पर कस के पड़ी। नूरे तिलभिलाकर मुँह से भट्टी गालियों का फव्वारा छोड़ते हुए सूर स्वामी को छोड़कर कंतो की ओर झपटा– "अंधी कंतो की लाठी अंधा धुंध घूम रही थी। भद्दी गालियों का कोष उसके पास भी भरपूर था। रणचण्डी सी प्रचण्ड होकर लाठी और जुबान बेलगाम घुमा रही थी। सूर स्वामी मना कर रहे थे। नूरे कतराकर फूर्ती से कंतो के पीछे गया और उसकी टाँग पकड़कर घसीट ली। कंतो मुह के बल गिरी। बस, फिर तो घूँसों लातों की मार ने उसे उठने ही न दिया। अंधे सूरज का मन ज्वालामुखी की तरह लावा उगलने लगा। आव देखा न ताव, नूरे की गालियों की दिशा में आगे बढ़ा। कुतबुद्दी यह समझा कि नूरे को मारने झपटा है, अपनी कड़कदार आवाज में गालियाँ बकता हुआ सूरज की ओर झपटा और कमर पर एक छड़ी मारी। सूरज चीखा। चीख सुनते ही कंतो में जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गई कि पलटकर नूरे को ढकेला और अपने आगे खड़ी हुई छाया कृतियों की ओर झपटी। कुतबुद्दी की दाढ़ी उसके हाथ पड़ी। इतनी जोर से खींची कि मुट्ठी भर बाल नुचकर हाथ में आ गये। कुतबुद्दी जान छोड़कर चीखा। कुछ लोग आ गये सबने पकड़कर कंतो को घसीटा। नूरे पर खून सवार हो गया था। कंतो का गला पकड़कर दबाना शुरू किया। दबाया, और दबाया, और दबाया। यहाँ तक कि कंतो की सफेद पुतलियाँ और जीभ बाहर निकल पड़ी। चारो ओर के शोर के बीच कंतो मरी पड़ी थी और नूर खाँ उसकी छाती पर लदा हुआ गला दबाएँ ही जा रहा था।"[133]

यहाँ नागर जी ने एक फिल्मी चित्र सा उपस्थित कर दिया है जिसमें कंतो की निर्भीकता, साहस और स्वामि भक्ति का चित्रांकन है।

कंतो, सूरज स्वामी के लिए उनकी सोंच के अनुसार प्रारम्भ में भले ही नरक का द्वार लगती है किन्तु, कंतो के निच्छल और समर्पित प्रेम को देखकर वे निश्चित करते है– "कुछ भी हो अग्नि को साथ लेकर तपना ही सच्ची तपस्या है। अंगारों पर चलो और तलुओं पर छाले न पड़े यही तो योग है।" और इसी दृढ़ निश्चय को लिए हुए सूर स्वामी से जब नाद ब्रह्मा नन्द जी पूँछते हैं कि यह स्त्री क्या तेरे साथ है ? सूरज उत्तर देता है– "युधिष्ठिर के साथ श्वान सदेह स्वर्ग गया था, यह तो बृजांगना है, साक्षात् लक्ष्मी का अंश। मुझ अकिंचन पर भाव रखकर यही मुझे अपनी डोगी पर यहाँ लायी है।" नाद ब्रह्मानन्द जी भी प्रभावित होकर कहते है– "अच्छा, इस घास के फूल को ले चल। निधिवन की रेणु में यह भी उग लेगी कुछ दिनों।"[134]

इलावास में कोठरी में हुई घटना के पश्चात् सूर स्वामी के लिए कंतो शीतल बयार बन जाती है। कुछ लोगों कें आक्षेप किये जाने पर वे कहते हैं– "वैसे यह स्त्री ही गंगाजल के समान निर्मल और ब्रह्म कमल के समान सुन्दर है, इसे छठे अंगुल से नापिये।"[135]

कंतो की मृत्यु के पश्चात् कोल्हू के चक्कर से हाथ पकड़कर बाहर निकाले जाने के बाद सूर स्वामी को पहली बार खुलकर कंतो की याद आयी। श्रद्धा से उसी स्थान पर जहाँ उस दिन कंतो का शव पड़ा था, धरती पर बैठ गए। मुट्ठी में मिट्टी उठायी और फूट–फूट कर रो पड़े। कंतो का सराहनीय, निष्काम और श्रद्धास्पद चरित्र सूर स्वामी को चिन्तन के लिए विवश कर देता है। "मन उस नाते विहीन नाते से जुड़ा था जो न स्वकीया थी न परकीया। प्रथम अंग–संग के लोभ वश दोनों आपस में खिंचे थे। सूर ने फिर उस लोभ कक्ष पर लौह कपाट जड़ दिया तब भी साथ न छोड़ा। दीवानी सी मथुरा से ब्रह्माण्ड घाट तक दौड़ी चली आयी। वृन्दावन में सुबल राजा, जब टोली में आई नई स्त्री के सुख भोग की लिप्सा से उसकी ओर बढ़ा, आक्रमण हुआ तब वह कैसे जीवट से अपना खेल खेल गयी। मेरे अपराध पर कैसी बेबसी से लचीली हुई जा रही थी और मेरी बात निभा गई। मैं कच्चा पड़ा वह नहीं। मैं अपने मन के विविध प्रपंचों में पड़ा, पशु भी बना किन्तु कंतो की कान्ति तनिक भी मलीन न हुई। कौन थी वह प्रिया ? भुलावा देकर कहाँ से कहाँ ले आयी ?..... हवा का झोका छूटा है मानो कंतो की सांस छूटी है। हर गंध कंतो की देह गंध है। कहीं पेड़ों पर मीठे पंक्षियों की बोलियाँ सुनाई पड़ जाती है, कंतो का स्वर कानों में घुलकर टीसें जगाता है। पपइया क्यूं बोले कोकिल बानियाँ ..... हॉय कैसी जादू सी आयी और जादू सी ही बिछड़ भी गयी। कहाँ गयी ?"[136] सूर स्वामी को कंतो की याद सताती रहती है। रात बीतने पर प्रातः स्वप्न देखते है और कंतो उनसे कहती है मेरी आँखें तुम हो। रावल राधा रानी की जन्म भूमि कंतो जाने कहाँ से आकर उनका बाँया हॉथ पकड़कर कहती है देखों ये हैं राधे रानी। कोयल कूँकती है, कंतो कहती है, ऊ देखों स्वामी जी राधे रानी तुम्हें बुलावे है। अब मै आंधड़ी–धूँधड़ी नाय रही स्वामी जी, अब तो मेरे भी कमल नयन हैंगे। राधे ठकरानी की चाकरी में हूँ ना। और ठकरानी नेमोय काम दियो है कि तुम्हें निहारू जित्ती निहारू हूँ उत्तोई रीझो हूँ। आप तुम कैसे सुन्दर हो स्वामी जी।

धन्य है नागर जी का चरित्रांकन शिल्प। कंतो का सम्पूर्ण उपन्यास का सम्पूर्ण चरित्र कुछ ही पंक्तियों में चित्रित कर दिया है।

वस्तुतः कंतो का चरित्र वाह्य रूपता से युक्त होते हुए भी आन्तरिक सौन्दर्य की दीप्ति से जगमगा रहा है।

पुरुष–पात्र

नागर जी के उपन्यासों में पुरुष पात्रों के अनेकानेक रूप चित्रित किये गयें है। पिता, पति, श्वसुर, चाचा, देवर, प्रेमी–अविवाहित, प्रेमी–विवाहित, प्रेमी जो दूसरी नारियों से प्रेम करते हैं, राजनीतिक क्षेत्र में विचरण करने वाले पुरुष, राजनीतिक नेता के रूप में भ्रष्टाचार के प्रबल पोषक, सेठ, जिमीदार और इनसे विरोध करने वाले युवा पात्र। इसके अतिरिक्त भी समाज में छिपे रूप में व्यभिचार और दुष्कृत्य करने वाले पात्रों के भी चरित्र है।

पुरुष पात्रों का चित्रण नारी पात्रों के व्यक्तित्व विकास में सहायक होकर अधिक आया है। एक आध पात्र ही ऐसे है जो नारी से प्रेरित होकर भक्ति की ओर अग्रसर होते हैं (तुलसीदास)।

अब नागर जी के पृथक–पृथक उपन्यासों में चित्रित चरित्रों का पृथक–पृथक अनुशीलन किया जायेगा।

महाकाल

पाँचू गोपाल मुकर्जी– पाँचू उपन्यास का नायक है और मध्य वर्गीय समाज का व्यक्ति भी। उसमें अपने संस्कारों के प्रति गहरी निष्ठा है। उसके माध्यम से कथाकार का निजी चिन्तन अभिव्यक्ति पाता है। पाँचू गोपाल अपने व्यक्तित्व से आदर्शवादी, भावुक तथा संवेदनशील है किन्तु, यथार्थ की कठोर शिलाओं से उसका आदर्श दबने लगता है। उसका पिता संस्कृत का विद्वान है। अतः पाँचू भी उसी के अनुरूप एक चिन्तन शील व्यक्ति बन जाता है। उसके समक्ष समस्त गाँव क्षुधा से व्याकुल होकर एक–एक मुट्ठी चावल के लिए तरसता है। भूख के कारण घर के बर्तन और नारियों के लज्जा वसन तक बिक जाते हैं। भूख से मृत्यु होने के कारण गाँव में मुर्दों का ढेर लग जाता है। विवश पुरुष वर्ग, अपने ही घर की स्त्रियों को क्षुधा शान्ति हेतु बेंचने लगता है। स्थिति यहाँ तक पहुँच चुकी है कि मनुष्य कुत्तों और गिद्धों से बदतर हो गये है। पूंजीपति वर्ग के गोदाम चावलों के बोरों से भरे पड़े है। महाजन बनियाँ इस स्थिति में माला–माल हो रहा है। गाँव का जमीदार स्कॉच की बोतलों से और नारी तन से अपनी प्यास बुझा रहा है। उसके परिवार के लोग भूंखे मर रहे है। बड़ा भाई शिबू, दो मुट्ठी चावलों के लिए पत्नी को बेंच देता है। पाँचू की पत्नी मरघट में उसकी प्रतीक्षा कर रही है– यह विरोधी भाव पाँचू की चेतना को शून्यकर देते है और इन भीषण और दारुण स्थितियों से घबराकर वह घर से पलायन कर जाता है।

पाँचू चिन्तन करता है और परिस्थितयों वश स्कूल की डेस्कों को बेंच देता है। किन्तु इसी समय वह अपने ईमान को धिक्कारता है। मोनाई बनियाँ और जमीदार दयाल के स्वार्थ की पराकाष्ठा देखकर सामाजिक वैषम्य और अपनी कायरता पर खीझ उठता है। – "खुदी के लिए सारी दुनियाँ तबाह हुई जा रही है। लेकिन यह खुदी है क्या ? और क्यों है ? अपने अस्तित्व की चेतना को मनुष्य सर्वव्यापी और सामूहिक रूप में क्यों नहीं देखता ? दुनियाँ से अलग रहकर मै अपनी असलियत का अनुभव क्यों कर सकता हूँ। सम्मिलित रूप से, समाज की प्रत्येक क्रिया–प्रतिक्रिया का प्रभाव मुझ पर पड़ता है और मुझे चैतन्य बनाता है। मैं अपने हर अच्छे और बुरे काम को समाज के तराजू पर ही करता हूँ।"[137]

व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है किन्तु जब स्वार्थी शक्तियाँ अपनी सत्ता को सर्वोच्च बनाए रखने के लिए अमानवीयता पर उतर आती हैं तब पाप–पुण्य की सीमा से परे वह संघर्ष करने के लिए कटिवद्ध हो जाता है। पाँचू को विचार आता है कि पाप–पुण्य पेट भरे की लीला है। अकाल पड़ने पर विश्वामित्र ने भी डोम के घर माँस चुराकर खाया था। इस दृष्टान्त से उसकी मानसिक

द्विविधा तो शान्त हो जाती है किन्तु दयाल जिमीदार और मोनाई बनियाँ की उपस्थिति में अपने को कायर समझने लगता है। "पाँचू गोपाल की कटु अनुभूतियाँ उसके अहं का परिमार्जन करने तथा उसकी चेतना को मानवीय बनाने में योग देती हैं। जीवित लड़कियों को आग पर पकाकर भूख की चण्डी को शान्त करना, पुजारी द्वारा गोबर, भूखी जनता का अन्न के गोदाम पर आक्रमण, शवों का गिद्धों द्वारा नोंचा जाना, बलात्कार के लोम हर्षक दृश्य उसके मन में शोषकों के प्रति घृणा भाव जागृत करते हैं।"[138] स्वार्थ में तत्पर सामन्त वर्ग, पूँजी–पति और अफसरों के प्रति आक्रोश पाँचू के आक्रोश को ही प्रकट करता है– "रईसों और अफसरों की दुनियाँ में क्या इन इन्सानों को कोई इन्सान मानेगा। वे इन्हें भूत कहेगे। हालांकि वे खुद मुर्दा इन्सानियत के भूत बनकर हमारे सिरों पर सवार है, हमारी भूख की नींव पर उन्होने अपनी सोने की हवेलियाँ बनवायी है।"[139]

पाँचू एक सद्यजात शिशु को अपनी माता के शरीर के पास असहायावस्था में रोते हुए देखकर द्रवित हो उठता है और उसकी कायरता साहस का रूप ग्रहण कर लेती है। और उसे एक नवीन अनुभव प्राप्त होता है। उसे स्मरण आता है– "घृणा की गति है कहाँ ? विनाश ही में न। तुम्हारा यह अकाल क्या है ? मनुष्य की घृणा हीन ? यह महायुद्ध क्या है ? कौन सा आदर्श है इसमें ? सत्य एक असत्य के साथ संधि करके दूसरे असत्य का नाश करने के लिए युद्ध कर रहा है। मनुष्य इसे राजनीति कहकर अर्ध सत्य का पोषण करता है। अर्द्धसत्य अज्ञान का कारण है। ज्ञान प्रेम का मूल है और प्रेम की गति निर्माण तक–निर्माण तक।"[140] इस नवीन अनुभूति से स्फूर्ति पाकर पाँचू घर लौटने का निश्चय करता है।

'महाकाल' में व्यक्ति की पीड़ा ही समूचे समाज की पीड़ा है। यह पीड़ा पूँजी वादी शक्तियों के घृणास्पद षड्यंत्र का परिणाम है। पांचू की मानवीय चेतना यथार्थ की कटुता में आहत अवश्य होती है, किन्तु निराशा के अन्धकूप में नहीं गिरती।" अविश्वास के वातावरण में जीवन के प्रति विश्वास की इस दृढ़ता ने पति और पत्नी दोनों को अपूर्व धैर्य और बल दिया। स्वयं पांचू को भी अपनी इस बात द्वारा अपने अन्दर अदमनीय,, चिरविजयी, विकासमयी शक्ति का परिचय मिला। प्रलय में सृष्टि के बीजांकुर फूटने लगे।"[141] **डॉ0 सुदेश बत्रा** के शब्दों में "पांचू की मानवीय चेतना व्यापक परिप्रेक्ष्य में समस्याओं की तह तक जाकर विश्लेषण करती है और यथार्थ के एक बारगी पलायन की अवस्था में उसे नवजात शिशु का स्वर भूख और मौत से लड़ने की प्रेरणा देता है और वह विचारों के चौराहे पर खड़ा होकर अकलमन्दता का तमाशा देखना फिजूल समझकर शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह की चेतना लेकर जीवन संघर्ष में फिर प्रवेश करता है। अपनी निश्चल पत्नी की गोद में शिशु को देकर वह नई आस्था, आशा और क्रान्ति के स्वर बुलन्द करता है।"[142]

मोनाई बनिया– उपन्यास का सर्वाधिक सजीव और सशक्त पात्र है। पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला मोनाई हृदयहीन और अत्याचारी है। उसकी नृशंसता समाज के दलित वर्ग को दग्ध

करती रहती है। वह भूखे किसानों की लाचारी का लाभ उठाकर उनकी जमीन खरीद लेता है। वह व्यवसाय का संबंध नैतिकता से नहीं मानता है। इस संबंध में उसकी कर्म सिद्धान्त व्याख्या अलग ही है उसका चरित्र उपन्यासकार की व्यंगात्मक शैली एवं विनोदात्मक, दृष्टि का परिणम हे वो भगवान का भगत है और इसी के सहारे जनता को लूटता रहता है–''जब से कंठी ली, अपनी जान में तो कोई कउनौ पाप किया नहीं मैंने। चीटी को चारा देता रहा हूं। गौ भी है। मन्दिर में ठाकुर जी और गौ माता की सेवा होती है, पुजारी जी को इसी हेतु रखा है। पुजारी जी को तनख्वाह देता हूँ, परब त्योहार के दिन जैसी सरधा है वैसा दान पुन्न भी करता हूँ। सबेरे चार बजे माला भी जपता हूँ। रोजगार धन्धा तो करम है। भगवान जी भी कहते हैं कि करम करो अपना। गाँव वाले भूखे तो जरूर रहे–मुला, साधु भिखारी थोड़ी रहें। हाँ साधु भिखारी द्वार से भूखा लौटता तो सचमुच बड़ा पाप लगता। इसमें क्या? ये तो दुकानदारी ठहरी, सौदा पटा तो दिया, नहीं तो जै राधे।''[143] इस प्रकार मोनाई राम और माया में सामंजस्य स्थापित किये हुए है। वह दीन दुखी अबलाओं का व्यापार भी करने लगा। वह अपने दुष्कृत्यों को धर्म और शास्त्र की दृष्टि में सुकृत्य प्रमाणित करता है–''यूं भूखी मर रही है बिचारी! वैसे कम से कम खाने पहनने को तो मिलेगा। वह सुखी होगी और दो पैसे मुझको मिल जाएँगे। भगवान जी ने अगर इस नये व्यापार में अच्छे पैसे बनवा दिये तो आगे चलकर एक अनाथालय और आश्रम भी खुलवाय दूँगा। यही तो धर्म की महिमा है। 'संसारी जीव माया मोह में' पलके अगर पाप भी कर बैठे तो पराशचित करके पुन्न की नइया में भव सागर के पार उतर जाय। अहा! धन्य हो भगवान जी! तुम्हारी लीला अपरम्पार है। एक ओर तो अर्जुन को उपदेश दीना कि अर्जुन मोह माया में मत पड़े, और दूसरी ओर राजपाट के लिए उससे युद्ध भी करवा दीना। वाह–वाह ऐसा न्याय भगवान जी के सिवाय और कौन कर सकता है?–– हे दीनानाथ! हमारे भी सारथी बन जाओ।''[144]

वास्तव में मोनाई के लिए धर्म और ईमान महत्त्वहीन है। इसका धर्म मात्र पैसा कमाना है, जिसके लिए वह साम्प्रदायिक संघर्ष खड़ा करता है। अपने चमचों से वह कहता है–''सच्ची पूछो तो बेटा, न तो तुम्हारा और नवाब साहब का धरम एक है न मेरा और दयाल का। असली धरम तो तुम्हारा एक ही है। हमारे लिये दयाल और नवाब दोनों ही ससुरे विधर्मी हैं। अरे कलियुग में धरम काहे का। स्वारथ है और स्वारथ हमारा तुम्हारा एक ही है। हमारा स्वारथ इसी में है कि ये बड़े लोग आपस में जूझें और हम तुम मिलकर नफा उठाएँ।''[145]

डॉ0 सुषमा धवन के शब्दों में–''मोनाई केवल अपनी दीनता, मधुरता और छल कपट से धन बटोरने के लिये नये से नये साधन सोंचकर लोगों को अपने स्वार्थ के जाल में फँसाने में सफल होता है। उसके चरित्र द्वारा लेखक ने पूंजीपति वर्ग पर व्यंग्य कसे हैं। उनकी लोलुप वृत्ति का भण्डा फोड़ किया है।''[146] मोनाई बनिया के चरित्र का उल्लेख करते हुए **राजेन्द्र यादव ने ठीक ही कहा**–''नागर जी की रचनाओं के अविस्मरणीय पात्रों में मोनाई का चरित्र जीवंत रेखाओं द्वारा उभरा है। पाँचू के चित्रण में विशेष सफलता न मिलते हुए भी मोनाई (खलनायक) के चित्रण

में श्री नागर को जो सफलता मिली है, वह अपवाद है।''[147] वस्तुतः मोनाई का चरित्रांकन उपन्यासकार की लेखनी से तीक्ष्ण और व्यंग्यात्मक रूप में हुआ है। **डॉ0 सुदेश बत्रा** ने मोनाई के चरित्र को दो मुहाँ और दो रंगा बताते हुए कहा–''एक ओर वह अपने संस्कारों से बँधा है प्रायश्चित भी करता है, गिड़गिड़ाता भी है, जमींदार के पैर भी छूता है, वही मीठी बातों में ही उसकी बनिया बुद्धि दूसरों की विवशता को भी भांप लेती है। इस तरह 'मोनाई' आलोच्य उपन्यास का एक ऐसा पात्र है जो न केवल यथार्थवादी है, अपितु पूरा आदमी है–ऐसा आदमी, जिसकी एक नजर जीवन के यथार्थ पर है तो दूसरी दुनियादारी को पहचानने वाली है।''[148]

जमींदार दयाल– ''गाँव के जमींदार राजा दयाल का विलास वैभव उस मानवीय चीत्कार पूर्ण वातावरण में सफेद कोढ़ के समान चमकता है।''[149]

दयाल सामन्ती व्यवस्था का प्रतिनिधि है। सामंत वर्ग की विलासिता, अहंकार, स्वार्थपरता, अत्याचार आदि उसकी चारित्रिक विशेषताएँ हैं। गाँव के शमशान पर वह लाश का व्यापार करता है। उसकी अहं वृत्ति, विलासिता और स्वार्थ परता चरम कोटि की है। वह मूर्खों की भीड़ पर बिना झिझक के गोलियाँ चला सकता है, लोगों की विपन्नावस्था से लाभ उठाकर उनकी बहू, बेटियों की इज्जत लूट सकता है। चकले कायम कर सकता है तथा शराब और नाच गाने की महफिलें जुटा सकता है।

दयाल और मोनाई के आपसी ईर्ष्या द्वेष तथा स्वार्थगत टकराव के साथ जातीय राजनीति के अंकुर भी दिखाई पड़ते हैं। स्वार्थ लिप्त ईर्ष्या के कारण मोनाई से कहता है–''बनिये भी कभी राजा हो सकते हैं––मगर अब कलियुग मेंतो हो ही रहे हैं। देखो गाँधी जैसा महात्मा वैश्यों में जन्म लेता है। जर्मनी ने वेद चुरा लिए हमारे, नहीं तो आज इस पृथ्वी पर क्षत्रियों का ही चक्रवर्ती साम्राज्य होता।''[150]

दयाल जमींदार का चरित्र, शोषण के ताने–बाने से बुना हुआ सामंत शाही चरित्र है।''नागर जी ने दयाल का चरित्रांकन अपेक्षाकृत स्थूल रेखाओं से किया है–गॉव के मरघट में वह छैला बना घूमता है। उसका अहंकार, राजापन, विलासिता और स्वार्थ अपनी हर प्रतिक्रिया में, व्यंग्य उपस्थित करते हैं। एक ओर वह भूखों की भीड़ पर गोलियॉ चलवाता है, दूसरी ओर मोनाई बनिये को नीचा दिखाने के लिए उनमें चावल बंटवा सकता है, ब्रह्मभोज का आयोजन करवाता है। गांव में अकाल है, लोग दाने–दाने को मोहताज हैं और उसके यहां शराब के दौर चल रहे हैं। उसके चरित्र के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक षड्यन्त्रों का पर्दाफाश किया गया है। यह अकाल प्रकृति जनित नहीं , मनुष्य जनित था जो सत्ताधारियों और पूंजीवादियों के स्वार्थ तले कुचले हुए, रौंदे हुए गरीबों, शोषितों का हाहाकार था। सामन्तवादियों की चारित्रिक प्रवृत्तियॉ, यश और धन लिप्सा, काम लिप्सा उन्हें मदान्ध बनाये हुए थी। अपने लाभ के लिए वह मोनाई से भी विश्वासघात करता है। दयाल और मोनाई के इस संघर्ष के द्वारा लेखक ने लाभ के संदर्भ में होने वाली शोषक वर्गों की आपसी टकराहट को भी गहरी राजनीतिक समझ के साथ चित्रित किया

है।"[151] दयाल हिन्दू धर्म के पतन में भारत का पतन दृष्टिगोचर होता है। महामूढ़ मानवता के प्रति अपार करुणा का स्रोत फूट पड़ता है। पतितों के उद्धार की प्रबल आकांक्षा उसके मन को उत्साहित करती है। दयाल पर नेता बनने की धुन सवार हो जाती है। राजनीति के क्षेत्र में अवतरित होने की महत्वाकांक्षा उसके जीवन में नवीन स्फूर्ति का संचार करती है–" कांग्रेस के टिकट पर भी खड़ा हो सकता हूँ, मगर उसमें जेल जाना पड़ता है। .....हिन्दू महासभा भी ठीक है। नाम का नाम होगा और परम पवित्र सनातन धर्म की रक्षा भी होती रहेगी।"[152] यह इतिहास में नाम पैदा करना चाहते हैं। अपने धन बल और पाँचू गोपाल के बुद्धिबल से उनकी अभिलाषा फलीभूत होगी। मास्टर साहब में राजा रामचन्द्र को कवि बाल्मीकि मिल जाएगा। उपन्यास में गौण पात्रों में केशव बाबू, शीबू और अंग्रेज मिस्टर दास हैं।

केशव बाबू– पाँचू गोपाल के पिता हैं, संस्कृत के शिक्षक हैं उनका चरित्र परस्पर विरोधी विशेषताओं से युक्त है। वह एक आदर्शवादी पिता, विचारशील विद्वान, पंडित और मार्ग दर्शक होने के साथ–साथ कामुक भी हैं। ये पाँचू गोपाल को परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं। उनके पांडित्य का प्रभाव पाँचू के चरित्र में और चारित्रिक दुर्बलताओं का प्रभाव बड़े बेटे शीबू पर पड़ा है। शीबू की पत्नी, पति की वासनात्मक प्रवृत्ति के कारण लज्जा और ग्लानि का अनुभव करती है। शीबू मध्यम वर्गीय दुर्बलताओं का प्रतिनिधि पात्र है। ऊपरी इज्जत बनाए रखने के लिए पत्नी का शोषण करता है वह अपनी पत्नी को बेचना चाहता है। रोके जाने पर वह उसे अपनी सम्पत्ति बताता है–"ये मेरी वस्तु है। मैं इसे बेचूंगा।"[153] इस पर क्षुब्ध होकर पत्नी द्वारा उसे तमाचा भी खाना पड़ता है।

वस्तुतः इस उपन्यास में यथार्थ चरित्रों की सृष्टि हुई है। जो अपनी वर्गगत और व्यक्तिगत विशेषताओं के साथ अंकित हुए हैं।"महाकाल' के लेखक ने अकाल की द्रावक, करुण स्थितियों से पात्रों के आँसू ही नहीं गिराए हैं, उनके विचारों को उत्तेजित कर उपयोगी चिन्तन भी कराया है जिससे इस उपन्यास में भावों के साथ विचारों, मार्मिकता का भी समन्वय हो गया है।"[154] **डॉ0 शिवनारायण श्रीवास्तव के शब्दों में** –"यह उपन्यास महाजन तथा जिमीदार के स्वार्थ चंगुल में कराहती कंकाल शेष जनता का मार्मिक चित्र है।"[155]

सेठ बाँकेमल

यह प्रतीकात्मक नाम पर आधारित उपन्यास है और इसमें 'सेठ बांकेमल' अपने बाँकेपन के साथ एकमात्र अकेला पात्र है।

सेठ बाँकेमल इस उपन्यास की अद्भुत चरित्र सृष्टि है, जो पुरानी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं के विविध परिदृश्यों को अपने बीते हुए जीवन की घटना स्मृतियों के माध्यम से रूपायित करता चलता है। "यह पुरानी पीढ़ी नवयुग की बदलती हुई मान्यताओं को स्वीकार करने में असमर्थ है। अतः अवसर पाते ही सेठ बाँकेमल अपनी भोगी हुई जिन्दगी के बीच पहुँचकर जैसे आगे जीने का सहारा खोज लेते हैं। उनके सामने भविष्य कोई सवाल नही है।

वर्तमान से उन्हें बेहद असन्तोष है। यह तो उनके द्वारा भोगा गया वह शानदार अतीत है, जो उन्हें वर्तमान की सारी विरासत के बीच जीने का सहारा दिये हुए है।''[156] सेठ बाँकेमल चौबे जी के पुत्र को विविध किस्सों के माध्यम से अपने अतीत जीवन की कहानी सुनाते हैं। उनमें प्राचीनता के प्रति अंध भक्ति है। आकाश–पाताल के कुलाबे भिड़ाकर किस्से कहानियाँ गढ़ने की शक्ति है, लोगों को मूर्ख बनाकर लूटने की कला है, नाच–गाने, महफिल, भांग बूटी, कसरत–फसरत, सैर–सपाटे, गुण्डा–गर्दी, प्रेम नैपुण्य, मस्ती फक्कड़पन आदि उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं।'' 'खाओ पियो और मौज उड़ाओ' जैसे सिद्धान्त के प्रति उनकी आस्था है। उनके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष है उनकी प्रगतिशीलता और मानवतावादी दृष्टि। आदर्श मैत्री, दीन दुखियों के प्रति सहानुभूति, विवाह के पुराण पंथी रीति–रिवाज के प्रति विरोध, साम्प्रदायिकता से परे उच्च विचार, और देश भक्ति का भाव उनके स्वस्थ व्यक्तित्व का परिचायक है। वे अपने व्यापारी जीवन में एक सफल और व्यवहार कुशल दुकानदार हैं।

नागर जी ने सेठ बाँकेमल के व्यक्तित्व की सूक्ष्म रेखाओं को उभारने में अपनी पैनी दृष्टि से काम लिया है। राजेन्द्र यादव ने लिखा है–''बाँकेमल तो सचमुच ही अद्वितीय चरित्र है जो हँसते–हँसते अपने युग की प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील, दोनो धाराओं का दिग्दर्शन कराता है। वह पुराने का भक्त है, अपने से चिपका है। गाँव में जाता है तो पनहारिनों से मजाक करने, बगीची में आशिक माशूकी की शायरी करने या अपने ग्राहकों की, यहाँ तक कि लाला मूलचन्द की जेब काटने से नही चूकता। लेकिन एक जगह वह परम क्रान्तिकारी है। मुसलमान बादशाह को ह्रदय से प्यार करता है। गरीबों की शदी के लिए छाती ठोंक कर लड़ने के लिए तैयार हो जाता है। सबके ऊपर उसकी सनकें तो हैं ही। वर्णनात्मक शैली की सजगता की दृष्टि से भारतीय साहित्य के बाहर भी ऐसा मस्त चरित्र मिलना मुश्किल है।''[157]

यदि एक स्तर पर सेठ बाँकेमल निठल्ला, छैला, शोहदा, ठग, फक्कड़, मस्त तथा अपनी ही रंगीनियों में डूबा हुआ व्यक्ति है तो दूसरे स्तर पर वह पूर्ण मानवतावादी यहाँ तक कि प्रगतिशील भी है। व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों भूमियों पर उसका मित्र प्रेम आदर्श है। जितने उत्साह से भावनाओं के तल में डूब कर वह अपने मित्र चौबे जी के क्रिया–कलापों का बखान करता है, उसका अपना महत्व है। गरीबों तथा दुखियों पर वह हजारों रुपया आसानी से लुटा सकता है। उसे उनसे हार्दिक सहानुभूति है।''[158]

नागर जी ने हँसते–हँसते जीवन की कला सिखाई है और साथ ही कुल मर्यादा और परम्परा प्रेम की हँसी भी उड़ाई है। जवानी की 'आशिक मासूकी' में सेठ बाँकेमल और उनके मित्र चौबे जी की रंगीन मिजाजी और फैशन की सजधज अपने में समेटे हुए है–''हाय रे मेरे प्यारे क्या कहूँ तुझसे। देखने लायक फैसन, विसदिन चौबे जी का कामदार मखमली जूता, मखमली पाड की कलकत्ते की चुन्नटदार धोती, चिकन का भरार्टेदार कुर्ता, विसपे भइयो, नीले मखमल पे काम

की हुई बास्केट डाटी, और जोधपुरी साफा लगाकेर चला है मेरा यार अकड़ता हुआ, तो सड़कों पै हटो, बचों होने लगी भइयो, तुझसे झूठ नहीं कहूँ हूँ।''[159]

सेठ बांकेमल युवा पीढ़ी के बलबूते बहुत कुछ कर गुजरने की सोचते रहे होंगे, इसीलिए वे नयी पीढ़ी के मानसिक, शारीरिक और नैतिक ह्रास को देखकर आक्रोश व्यक्त करते हैं। ''आज के लौडों सालों की नसों में खून ही नहीं, पानी दौड़े है पानी। लौंडे थोड़े ही हैं, लौंडियाँ हैं साले। लौंडियाँ रंडियों की तरह ससुरी मांग पट्टियाँ निकाल लीनी और चले सब मूंछ मुड़ा के सिगरेट पीते हुए। बड़ी तोपगी समझते हैं ससुरे।''[160]

अपने समय की वकालत करने वाले सेठ को अपने जमाने की नारी के सतीत्व पर गर्व है और नये युग की नारियों के प्रति आक्रोश–''इसी हमारे भारत वर्ष में औरतें सती होती थीं, तिनको देवी मानके पूजे थे। अपनी इज्जत बचाने के लिए सुसरियाँ आग में जल कर भसम हो जाया करें थीं और अब ये जमाना आय लगा है कि घर के घर में सब औरतें–लड़कियाँ ऐसे–ऐसे बाइस्कोप देख–देख रंडियाँ हुई चली जायँ साली। नई–मैं जेनई कहूँ हूँ के पेले के जमाने में सुद्ध परिवार ही थे, ऐसी कोई वारदातें होईवे नहीं थीं। नई होवें थी जरूर, पर बहुत कम और सो भी बड़ी दबी ढकी, भइयों।''[161]

स्त्रियों के आधुनिक फैशन पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए सेठ कहते हैं–''फैशन है साले, जार्जेट की साड़ियाँ पैनेगी सब, जिसमें साला सब बदन उघाड़ा दीखे। जब ऐसी मते बिगड़ गयी हैं तो हिस्टीरिया न होंगे और क्या होंगे साले? ससुरे लड़के पैदा होवे हैं आज कल? साले चूहे के बच्चे। विस जमाने में माँ–बाप तन्दुरुस्त होवे थे भैयो। औलाद साली पैदा होते ही साल भर की मालूम पड़े थी।''[162]

आज की नई पीढ़ी की रंगीनी को उच्छृंखल बताते हुए वे खीझकर कह उठते हैं–''अब तो जमानाई बदल गया। आज कल की पढ़ी लिखी लड़कियाँ हमारी धौंस थोड़ेई माने हैं। तो बात ये है भैयो, कि साला बाइस कोप चला है, सनीमा जिसमें साले में रोज येई बात बताई जावे हैं किसी भी साले ऐरे गैरे खुशकैट के साथ आँख लड़ाली और जो माँ–बाप भला चाने वाले मना करे हैं, तो विनों की छाती पै सवार हो जावै हैं ससुरी।''[162]

आज का बुद्धिजीवी समाज शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर घुटन और पीड़ा की जिन्दगी जी रहा है। उसमें सेठ बाँकेमल की भांति न तो खूब खाकर डकारें लेने की शारीरिक क्षमता है और न ही आराम करने के लिए फुरसत। सेठ बाँकेमल की जीवन चर्या देखिए– ''सेर भर तो घी पीता जा के। आध सेर दाल, आध सेर चावल, सेर भर आटा और सेर भइयो लाया रबड़ी, भइयो, डाट के। सब कुछ पेट में उतार गये, डकार भी न लीनी। अब सोची, दो घण्टे आराम किया जाए।''[164]

सेठ बाँकेमल राष्ट्रप्रेमी और साम्प्रदायिक एकता के समर्थक हैं– ''जहाँ देखो साला, हिन्दू–मुसलमानों का दंगा हो रहा है वे कहते हैं कि हिन्दू ने मेरी निमाज बिगाड़ दीनौ, वे कहें वे

कि मुसलमान ने मेरी गाय काट डाली। खुश कैट साले। इन फोक्सों को इतनी भी तमीज नहीं आई कि हम तो आपसे में सिर फोड़ रहे हैं और अंग्रेज साले हमारी छाती पर बैठ खून पी रये हैं हमारा।''[165]

वैज्ञानिक युग ने भले ही तोप–बन्दूकों को आविष्कृत कर लिया हो लेकिन सेठ बाँकेमल इन्हें प्राचीन तंत्र–मंत्र के आगे कुछ नहीं समझते हैं– ''तोप बन्दूक क्या है महाराज ? जहाँ एक मंतर पढ़ते तीर फेंका तो देखलो फिर इनका पता भी नहीं चल सकेगा। 'महाभारत' में लिखा है कि नहीं– कैसे–कैसे तीर थे ससुरे कि अगिनि बाण छोड़ दीना, सारा विरमाण्ड खाक हो गया ससुरा।''[166]

प्रकाश चन्द्र मिश्र का कथन है– ''नागर जी ने बड़ी कुशलता से दोनों मित्रों की जिन्दा दिली का परिचय दिया है। उनका कविता प्रेम और कविताई भारतेन्दु युगीन हास्यरस का स्मरण दिलाती है– सावन की बहार है फुहार पड़े भीनी सी.....राजपाट तोरा है।''[167]

डॉ0 सुदेश बत्रा के शब्दों में कहा जा सकता है– ''निष्कर्षतः सेठ–बाँकेमल के रूप में एक पूरा युग, परिवर्तित मानदण्ड, पुराने ढंग, समाज के आचार–विचार और बदलते आचारों के क्षोभ के साथ–साथ देश प्रेम का उत्कट उत्साह एवं कुष्ठा हीन जीवन दर्शन सभी कुछ तो साकार हो गया है। निश्चय ही यह नई पुरानी पीढ़ी के संघर्ष एवं सामाजिक आशयों से युक्त हास्यव्यंग्य की ऐसी अनूठी रचना है जिसमें हास्यव्यंग्य की जमीन पर युग का मानचित्र पूरे रंग रोगन के साथ प्रस्तुत किया गया है।''[168]

बूँद और समुद्र

उपन्यास के सभी पात्र मध्य वर्गीय चेतना के प्रतीक हैं। ''विभिन्न मनोभूमियों पर पलने वाले पुरुष पात्र अपने वैविध्य एवं वैचित्र्य के कारण यथार्थ जगत के पात्र प्रतीत होते हैं। गजक, मूंगफली और कुल्फी बेचने वाले तथा मक्खन की तारीफ करने वाले से लेकर सेक्रेटियेट के बाबू गुलाब चन्द्र मुकन्दी मल, मुहल्ले से लेकर विश्व तक की समस्याओं पर चर्चा करने वाले, कथा वाचक पंडित जी, राजा, सेठ, डॉक्टर, साहित्य प्रेमी, साधु–सन्यासी आदि अनेक वर्गों के प्रतिनिधियों के व्यंजक रेखाचित्र प्रस्तुत करने का यथा साध्य प्रयत्न किया गया है।''[169]

महिपाल– समाज से पराजित व्यक्ति है। गति शील पात्र है। वह विगड़ा हुआ विवाहित रईश है। जो शीला से प्रेम करता है। महिपाल उपन्यासकार भी है, विद्वान भी है और समाज वावद की बात भी करता है, पर इसके साथ ही साथ माता–पिता द्वारा तय की गई शादी से वह क्षुब्ध है। इसी कारण मानसिक रूप से पत्नी से असन्तुष्ट होने के कारण डॉ0 शीला की ओर आकर्षित होता है। पत्नी को पीटकर वह आस्था हीन हो जाता है। वह शीला को भी ठुकराता है। ''कुटुम्ब व्यक्तिगत प्रेम से बड़ी वस्तु है। वैवाहिक कुटुम्ब समाज को सुसम्बद्ध रखने के लिए एक शक्ति शाली परम्परा है।''[170] महिपाल सुन्दर, बलिष्ठ, सहृदय, कलाकार, विद्या व्यसनी, स्वाभिमानी और विद्रोही व्यक्तित्व वाला चरित्र है। वह समाज की मर्यादाओं के आगे झुकता भी है और समाज के

विधि विधान की आलोचना भी करता है– "जब तक हिन्दुस्तान में यह जटिल जाति–भेद रहेगा, हम लाख सुधार करने पर भी 'समाज' को 'मानव समाज' के रूप में प्रतिष्ठित करने में असमर्थ रहेंगे। यह जातिवाद किसी समय भारत की शक्ति और उसके बाद हमारे निरंतर पतन का कारण रहा। हमारी नागरिक सभ्यता महाजनी गणतंत्र की सभ्यता है, जिसका आधार आर्थिक है। जब तक वह पूरी तौर पर नहीं टूटता तब तक जाति विधान नहीं टूट सकता।"[171] वह विचारों से प्रगतिशील है किन्तु जीवन में समाज के परम्परागत संस्कारों से युक्त है।

महिपाल परम्परागत रूढ़ियों का प्रबल विरोधी है। वह अपनी ही जाति के ऊँचे ब्राह्मणों को व्यंग्य करता हुआ कहता है– "बाला पियै प्याला फिर बाला के बाला"[172] वह अपनी लड़की का विवाह उच्च कुल में नहीं कर सकता क्योंकि वह आर्थिक रूप से कमजोर है। "आर्थिक असमर्थता के शेर ने पंजा उठाकर ऐसा थप्पड़ मारा कि उसके साहित्यक वैभव की खाल खिंच गयी।"[173] दहेज प्रथा पर प्रहार करता हुआ कहता है–ये पैसे की दुनियाँ बहुत दिनों तक नहीं रहेगी। आज तो समाज का शासन ही बेइमानों और लुटोरों के हाँथ में है, लोक जीवन की मान्यताएँ वहीं हैं जो वे चलाते हैं। जो इस–इस धाँधली बाजी को समाज की सौभाग्य चमक बताकर अपना खोटा सिक्का चला रहे हैं, वे ये भूल जाते हैं कि करोड़ों भूँखे, बेकार, नंगे उनके पीछे 'मरता क्या न करता' वाली स्प्रिट लेकर पागल जोश के साथ बढ़े चले आ रहे हैं। इन मुट्ठी भर धाँधली बाजों को जलाकर खाक कर देंगे, तब मेरी लड़कियों के साथ ज्ञान रूपी दहेज जायेगा और उसी की कीमत होगी। चोर, साले बदमाश। मेरी गरीबी का मजाक उड़ाते हैं।"[174] महिपाल अपनी पत्नी से असन्तुष्ट होकर चरित्र हीन भी हो जाता है– "महिपाल चरित्रहीन है, कल्याणी उसके इस रूप को भी समझ जाती है।"[175] महिपाल ईश्वर को भी एक अंधविश्वास ही समझता है। महिपाल औरतों के पैसे पर जीने वाला कुत्ता नहीं है। महिपाल अत्यधिक अस्थिर पात्र है। सज्जन के अनुसार– "महिपाल बहुत बड़ा आर्टिस्ट स्कालर होते हुए भी बेहद अस्थिर बुद्धि का है ××× भोलापन महिपाल के करेक्टर की सबसे बड़ी खूबी रहा है।"[176] "महिपाल के मुख से निकली हुई बड़ी–बड़ी बातें केवल बहस के लिए होती हैं, महिपाल उन बातों के सहारे केवल अपने अभावों को ढकता है। वह कभी उन पर अमल नहीं करता।"[177]

उपन्यासकार के अनुसार–"उसे लग रहा था कि मनुष्य के प्रेम से बढ़कर वह जो इस प्रकार लौकिक वैभव को मान रहा है, वह अन्याय है। कार, बंगले, नौकर चाकर और नाना प्रकार के आर्थिक वैभव में सुख और शान भले ही हो परन्तु महत् भावनाओं और विचारों के आगे उनका कोई मूल्य नहीं। अपनी नौजवानी में महिपाल ने न जाने कितनी बार सिद्धान्तों के लिए आर्थिक वैभव को ठुकराया है। उसने सिद्धान्तों के लिए ही अपनी ननिहाल का वैभव छोड़ा। रूप रतन से भी नाता तोड़ा। भाई के विवाह में दहेज न लिया। भाई की उन्नति के लिए अपनी पत्नी के गहने

तक बेंच डालने में उसे कभी कोई मोह नहीं हुआ। वही महिपाल आज आर्थिक वैभव के लिए कौन–कौन महत् सिद्धान्तों का त्याग नहीं कर रहा है। वह कितना पतित हो गया।''[178]

महिपाल पैसे के कारण ही अपने सिद्धान्तों को त्याग कर चोर बना। उपन्यासकार सज्जन और कर्नल इन दो पात्रों के पारस्परिक संवाद द्वारा महिपाल के चरित्र को स्पष्ट करते हैं–सज्जन– ''वह इन्टेलेक्चुअल तो नही मगर बड़ा भावना शील प्राणी है। यूँ पढ़ता भी खूब है। सोचता भी खूब है महिपाल। मगर यह सब होते हुए भी मेरा अनुभव यह कहता है कि उसमें जर्बदस्त उथलापन भी है और उसमें दम्भ, मिथ्याभिमान भी जरूरत से ज्यादा है।'' कर्नल बोला–''यह बात तुम्हारी बिल्कुल ठीक हैगी। मैं यह मानता हूँ, जहाँ तक आदमियत का सवाल हे, भल मंशाहत की बात है वहाँ तुम्हारा उसका कोई कम्पैराइजन ही नहीं हैगा। महिपाल का जी बहुत ओछा, छिछोरा हैगा। ××× महिपाल आज बड़ा ग्रेट आदमी होता, मगर सुभाव के छिछोरेपन की वजह से उसका फ्यूचर सदा के लिए बिगड़ा हैगा।''[179]

आगे चलकर परिस्थितियाँ महिपाल को चोर बना देती हैं।''धन के लोभ ने महिपाल को अनायास चोर बना दिया।''[180] उपन्यासकार महिपाल के इस परिवर्तित चरित्र को परिस्थितियों का ही खेल बताता है–''यह ठीक है कि महिपाल ने पैसे को कभी पैसा नही समझा, सदा अभाव से जूझा, पैसे की इच्छा बनी रही फिर भी उसने पैसे के आगे कभी सिर नहीं झुकाया। यद्यपि धनाभाव से उसका जर्जर अचेतन मन परास्त हो चुका था, तभी तो वह चोरी कर सका। पैसा उसकी सारी शक्ति को खा गया। शादी–ब्याह, मुण्डन–जनेऊ, बच्चों की पढ़ाई, हैसियत को चढ़ा ओढ़, कल्याणी का हठ– सब ने मिलकर क्रमशः उसे आदर्श भ्रष्ट कर दिया।''[181] और चरित्र भ्रष्ट हो जाने के पश्चाताप में ही आत्महत्या कर लेता है।

महिपाल का व्यक्तित्व आहत और विवश चरित्र के रूप में उभरने पर भी प्रभावी है। **डॉ0 प्रेम भटनागर** महिपाल के चरित्र की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं–''आन्तरिक और बहिर्मुखी संघर्ष, महिपाल के धैर्य, संयम और उदान्त गुणों पर कुहरा जमाकर उसे संशय, अवश्विास और अनास्था के पथ पर एकाकी छोड़ देते हैं। महिपाल जल–जीवन के सिंधु में मिली बूँद न होकर बालू पर गिरकर झुलस गयी एक ओस है जिस पर सज्जन ही नहीं उपन्यास का प्रत्येक पात्र मुग्ध है।''[182]

महिपाल अपनी असंतुष्टि में भारतीय समाज की परम्पराओं और रूढ़ियों को तर्क की कसौटी पर कसकर प्रस्तुत करता है–''यह एक पति–पत्नी व्रत का सिद्धान्त विकास नियम का पोषक होकर स्त्री–पुरुष के समाज को थोड़ी देह भोग की चेतना से ऊँचा उठाता है। मैं अनुभव से मानता हूँ कि स्त्री–पुरुष का सेक्सिया नाता स्त्री–पुरुष के सम्पूर्ण जीवन का एक अंग मात्र है। दरअसल होता यह है कि हममें से हर एक अपने लिए एक ऐसा अपोजिट सेक्स वाला साथी खोजता है जिससे उसके बहुत से बिचारों, कामनाओं और आदतों की पटरी बैठ जाय। दुख–दर्द,

हारी बीमारी की रिस्पान्सबिलिटीज से लेकर सुन्दर, नैतिक और आध्यात्मिक धरातल तक वह अपने जीवन साथी के सहारे उठ सके।''[183]

महिपाल अपनी पत्नी की रूढ़िवादिता से परेशान होकर उसे पीटता है और गाली देता है। **डॉ0 रामविलास शर्मा** उसे अराजक संस्कारों वाला व्यक्ति मानते हैं–''धीरता, दृढ़ इच्छा शक्ति, सहनशीलता आदि गुणों का उसमें अभाव है। यद्यपि वह बातें समाजवाद की करता है फिर भी उसके संस्कार अराजकतावादी हैं।''[184] **डॉ0 रघुवंश** महिपाल के आदर्श और उसकी प्रतिभा उसके ओजस्वी व्यक्तित्व की पुष्टि करते हैं। किन्तु उसका, पारिवारिक जीवन उसके आदर्श स्वरूप को खण्डित कर देता है। ''पारिवारिक जीवन की विसंगतियों से उत्पन्न दुर्बलता, अनिश्चय और खीझ उसे पलायावादी बना देती है उसकी साहित्यिक चेतना की अभिव्यक्ति में पौराणिक और आदिम नर–नारी के उद्दाम और मुक्त संबंध से लेकर आधुनिक स्त्री–पुरुष के संबंधों तक का विकास क्रम उसके अपने प्रताड़ित अहं का व्यंजक है।''[185]

उच्च कोटि के लेखक एवं साहित्यकार होने का उसे गौरव प्राप्त है। समाज की समस्याओं के कारण वह मन से विक्षुब्ध है–''वह हिंसा, दांव–पेंच, तिकड़मों से ऊपर उठकर दुनियाँ में समानता और न्याय का राज चाहता है। अपने वर्ग के लोगों से कटकर वह अकेला है। इस अकेलेपन को लेकर वह दिनोंदिन मानसिक झकोलों की दल–दल में बैठता चला जाता है। अभाव के बिच्छू का डंक खाकर वह कभी लाखों की लक्ष्मी और सातों सुखों की कल्पना में अपना जी बहलाता है और कभी इस मिथ्या कल्पना की प्रतिक्रिया में अपने को कोसता हुआ, राम–महावीर, ईसा, गाँधी और प्राचीन भारतीय ऋषियों और संतों के त्याग और तपोनिष्ठा से प्रेरणा लेकर लिखने–पढ़ने के काम में लग जाता है।''[186]

महिपाल की पुरातत्वान्वेषी दृष्टि, वैदिक सभ्यता और संस्कृति का वैचारिक मंथन कर एक नवीन सत्य का उद्घाटन करती है। ''हमें एकायक तड़प कर किसी फैसले पर नहीं पहुँच जाना चाहिए। हार तो मैं तब मानूँगा कि जब हर आमो खास को ज्ञान प्रकाश पाने का पूरा अवसर मिले और उसके बाद भी वह अंध विश्वास कायम रह जाय। मैं नहीं मानता कि जो मैटर जड़ है, वह कभी चेतन नहीं हो सकता। जड़ता में भी चेतना उत्पन्न होती है, मैटर का रूपान्तर होता है।''[187]

''महिपाल के जीवन की दुःखान्त गाथा एक द्विविधा ग्रस्त आत्मा की दुःखान्त गाथा है।''[188]

सज्जन– चित्रकार सज्जन भी विचारों में प्रगतिशील शिक्षित युवक है। वह समाजवादी बनता है किन्तु व्यवहार में एकदम विपरीत है। वह उपन्यास का नायक है। उसमें दृढ़ इच्छा शक्ति का नितान्त अभाव है। वह रूढ़ परम्पराओं को मूल्यहीन जानकर भी उनका विरोध नहीं कर पाता। उपन्यासकार के अनुसार सज्जन ''मझोला, गठीला बदन, खून से झलमलाता खूबसूरत पालिस्ड

चेहरा, ऊँची पेशानी, पस्मीने की शेरवानी, ढीली मोहरी का पजामा पहने, हाथ मे ओर कोट लिए।''[189] बहुत सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व का धनी है।

बैक फ्लेश पद्धति के अनुसार (अर्थात् वर्तमान से अतीत की ओर) उपन्यासकार सज्जन के अन्तरंग एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं का चरित्रांकन कितने कौशल के साथ करता है–''बत्तीस वर्ष की उम्र तक अविवाहित रहने की वजह से उसका काम जीवन अनियंत्रित है। नारी के अन्तरंग संपर्क का मौका कभी–कभी तो दो–दो, तीन–तीन, महीने तक नहीं मिलता और जब कभी ऐसा अवसर आ जाता है तब वह अतिरेक कर देता है। उसके जीवन में तीन तरह की औरतें आती हैं–एक से वह पैसे देकर आनन्द खरीदता है, दूसरी से प्रेमोपहार में रस पाता है और तीसरी वे तमाम औरतें हैं जिनसे केवल शिष्टाचार के ऊपरी नाते हैं।''[190] सज्जन के पिता जमींदार थे, धन की कमी नहीं थी इसीलिए उनका चरित्र बिगड़ गया।''गाँठ के पूरे थे ही, अंधी जवानी की घोड़ी बेलगाम छोड़ दी।''[191]

सज्जन के पिता की मृत्यु के छह बरस बाद माँ का भी देहान्त हो गया। ''सज्जन के मन पर अपनी माँ की एक अमिट छाप पड़ी है। पिता की राह पर न चलने का बचन माँ को देकर उसने अपने लिए एक अन्तर्द्वन्द्व मोल ले लिया। इसी दौरान में बचपन के पनपते हुए उसके चित्रकारी के शौक ने लगन पाई। सीनियर कैम्ब्रिज पास करने के बाद उसने आर्ट्स स्कूल में नाम लिखा लिया ××× पाँच बरस में आर्ट्स स्कूल का डिप्लोमा पास करने के बाद घूमते अनुभव और आनन्द लेते हुए उसके मन में यह सिद्धान्त पनपा कि शादी करना (कम से कम उसके लिए) जरूरी नहीं है और अगर जरूरी है भी तो इन्सान को (उसे) तीस बरस के बाद करनी चाहिए।''[192] सज्जन समाज में होने वाली ट्रेजडीज को अशिक्षा का कारण मानता है। वह बुर्जुआ समाज की बात नहीं करता है क्योंकि ''कबीर बुर्जुआ कल्चर से नहीं आया। सूर, तुलसी, तुकाराम, नरसी, चंडीदास, वगैरा बुर्जुआ कल्चर की देन नहीं, ये जो अपने यहाँ हम तमाम जाट, जुलाहे, चमार, पासी वगैरा संतो का ट्रेडीसन देखते हैं, वे किसी नेशनल करेक्टर के बिना पनप ही नहीं सकते। न पढ़े न लिखे, न किसी ऊँचे समाज में जन्में, फिर भी अपनी पर्सनाल्टी से वे इस घोर रूढ़िवादी देश पर छा जाते हैं। मैं इन लोगों की नैतिक सुन्दरता की बात कर रहा हूँ।''[193]

सज्जन ईर्ष्यालु भी है। वह महिपाल से ईर्ष्या भी करता है। अन्त में साधुओं के उपदेश से उसका मन परिवर्तित होता है। वन कन्या से विवाह के पश्चात् उसमें स्थिरता आती है। वह अपनी सम्पत्ति त्याग कर सेवा मार्ग की ओर उन्मुख होता है। संक्षेप में ''सज्जन दूध का धोया न होने पर भी बुरा आदमी नही है।''[194]

चित्रकार सज्जन की संवेदन शीलता और उपन्यास में उसके कार्यों की भावी रूप रेखा आरम्भ में ही स्पष्ट हो जाती है– ''अपने देश के प्राचीन वैभव–साहित्य, शिल्प, चित्रकला, नृत्य,

संगीत आदि को देखकर सज्जन जितना ही अधिक प्रभावित हुआ है उतना ही वह आज के सामाजिक जीवन में सांस्कृतिक दिवालिये पन का कारण जानने के लिए व्यग्र हो उठा।"[195] **डॉ0 ललित शुक्ल के शब्दों में–** "सज्जन की विरूपता विवेक की अपराधी आत्मा है। सज्जन को नागर जी ने अपनी आधी सहानुभूति और वैचारिक ऊर्जा से गढ़ा है। सज्जन के आत्म मंथन में जिस अस्पष्ट विवेक का आग्रह है, उसे वह स्वयं भी पूरा नहीं कर पाता है। सज्जन लेखकीय निष्ठा उधार लेकर जिन्दा है। उसमें भावात्मक समर्पण से पृथक किसी सामाजिक निष्ठा का आग्रह नहीं मालूम पड़ता है।"[196]

चित्रकार सज्जन सौन्दर्य प्रेमी–कलाकार है। उसकी कला प्रियता और उसके भावी स्वरूप की निर्मात्री स्थितियों का चित्रण उपन्यास में अत्यन्त गाढ़ी रेखाओं से हुआ है। सज्जन स्वतंत्र प्रकृति एवं प्रगतिशील विचारों का वाहक है। उसकी प्रगतिशीलता जीवन में नैतिकता का निषेध करती हुई नितान्त पाश्चात्योन्मुखी है। उसका विवाह विषयक चिन्तन विद्रोह पूर्ण है– "शादी और उसका मारल कोड समाज को उठाने के बजाय गिराते हैं। इन्हें खत्म कर देना चाहिए।"[197] एक अन्य स्थान पर वह कहता है– "मुझे आपके ये सतीत्व और पति भक्ति वगैरह के सिद्धान्त बेबुनियाद और जालिम लगते हैं।"[198] सज्जन के इस स्वतंत्र चिन्तन में उसकी सामन्तवादी मनोभूमि का जुड़ाव है। वह धर्म के प्रति अनास्थावान और राजनीतिक स्तर पर बिल्कुल निष्क्रिय है। "एक ओर वह रूढ़ियों के विरूद्ध है, लेकिन वृन्दावन में जाकर रहस्यवादी बन जाता है। टैली पैथी आदि चमत्कारों में उसे विश्वास है।"[199] उसका जटिल व्यक्तित्व स्वनिर्मित समस्याओं का परिणाम है। जब अनास्था और विश्वास से संपृक्त सज्जन वन कन्या के अप्रतिम व्यक्तित्व से टकराता है तब उसका अन्तस शक्ति अर्जित करना चाहता है। "काफी हद तक जिम्मेदार आदमी होते हुए भी मैं एक जगह विगड़े बच्चे की तरह बेकाबू हूँ। मुझे एक जगह अपने ऊपर विश्वास नहीं है। मैं तुम्हारी शक्ति पर विश्वास करना चाहता हूँ, कन्या। मुझे अपना विश्वास दो।"[200]

डॉ0सुदेश बत्रा के शब्दों में– "सज्जन का चरित्र पूरे उपन्यास पर इतना अधिक छाया हुआ है कि लगता है अपने गुणों–अवगुणों के बावजूद लेखक की भरपूर सहानुभूति उसे प्राप्त है, किन्तु उसका चरित्र अच्छाइयों, बुराइयों के साथ ही सजीव हो सका है। सज्जन अपने समस्त वैभव के पश्चात् भी सहृदय है, परोपकारी है, विनयी है। वैभव स्वरूप उसमें नारी विषयक दुर्बलतायें अवश्य है किन्तु उसमें आत्मविश्लेषण की क्षमता भरपूर है। वह कहीं न कहीं अपनी माँ के उच्च संस्कारों से बँधा है। उसके सभ्य, सुसंस्कृत संस्कार नारी और प्रेम के भंवर में घूमते हुए भी हर बुराई पर विजय पाने की क्षमता रखते है। यही कारण है कि महिपाल की अखण्डता और ईर्ष्या देखकर भी वह स्वयं को संयत कर सकता है और समाज सेवा का कार्य, महिला सेवा मण्डल का पर्दाफाश आदि कार्य वह बड़ी गर्म जोशी से करता है किन्तु कहीं–कहीं ऐसा प्रतीत होने लगता है कि सज्जन स्वयं का स्वतन्त्र अस्तित्व न रखकर लेखक के आदर्शो को ढो रहा है।"[201]

वन कन्या के स्थिर व्यक्तित्व और साधु बाबा की संगति से वह अपनी दुर्बलताओं पर विजय पाता है। लेखक के समाजवादी उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह मध्यवर्ग के लिए सहकारी बैंक की स्थापना करता है, अस्पताल की व्यवस्था करता है, स्त्रियों की शिक्षा, सिलाई, कढ़ाई के लिये प्रबन्ध कन्या के सहयोग से करता है और अन्त तक अपने सद्व्यवहार और विवेक द्वारा नायक की सभी विशेषताओं की पूर्ति करता है।

सज्जन और महिपाल एक ही सिक्के के दो पहलू है। "वास्तव में महिपाल और सज्जन लेखक के व्यक्तित्व के दो रूप है– एक उसका यथार्थ रूप है तो दूसरा आदर्श।"[202]

साराशतः "सज्जन और महिपाल भारतीय मध्य वर्ग के दो अलग–अलग हिस्सों के पूरक चरित्र है। इनकी पूरकता और प्रतिमुखता का द्वन्द्वात्मक स्वरूप पूरे कथा विस्तार में बनता बिगड़ता रहता है। उपन्यास के दोनों चरित्र समाज की यथार्थ परिस्थितियों से निर्मित हैं फिर भी लेखक के द्वारा उनका व्यक्तित्व समाज से अलग उद्भावित है और उसमें उनकी सारी टकराहट उत्पन्न करने की कोशिश के बावजूद यथार्थ के स्तर पर लेखक उसकी कोई आन्तरिक संगत अन्त तक नहीं बैठा पाता।"[203]

कर्नल– नगीन चन्द्र जैन अर्थात् कर्नल उपन्यास का एक अन्य सशक्त पात्र है। वह समाज के अन्याय का विरोध करता है। आदर्शवादी है किन्तु यह आदर्श मौखिक न होकर वास्तविक जीवन में मूर्त भी होता है। वन कन्या को शरण देकर वह रूढ़िवादी समाज का प्रत्यक्ष विरोध करता है। अपने विशिष्ट चरित्र के कारण ही वह उपन्यास के सभी पात्रों पर नियन्त्रण परक प्रभाव रखता है। महिपाल जब अपनी पत्नी कल्याणी से झगड़कर घर से भागता है तो कर्नल ही उसे समझा बुझाकर दोनो में समझौता करवाता हैं। कर्नल बहुत अधिक पढ़ा–लिखा न होने पर भी बहुत अधिक समझदार और गंभीर व्यक्तित्व का धनी हैं। वह निश्छल हृदय और परोपकारी है। यहाँ तक उपन्यास का नायक सज्जन भी कर्नल को मानता है। कल्याणी से समझौते के पश्चात् "उसका हठ इस समय टूट रहा था। सज्जन अपने आप से हार चुका था। इस समय कर्नल के पीछे वह इस तरह सिर झुकाये कमरे से बाहर निकला जैसे कोई प्रबल विद्रोही निरस्त होकर पुलिस की हथकड़ियों में आ गया हो।"[204]

कर्नल सज्जन और महिपाल के जीवन के उतार–चढ़ावों का भागीदार है। वह बुद्धिजीवी न होते हुए भी प्रत्येक बात के सत्य–असत्य पक्ष के खण्डन–मण्डन औचित्य पूर्वक करता है, यद्यपि वह रूढ़ियों में विश्वास नहीं करता फिर भी प्राचीन विश्वासों को तर्क से नहीं काट पाता– "तुमने वह पुतला छूकर अच्छा नहीं किया।"[205] कलाकार सज्जन पर उसका पितृ तुल्य स्नेह है। द्विवधा ग्रस्त महिपाल को वह उचित दिशा निर्देश देता है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित सज्जन के मन में उचित अनुचित का विवेक जाग्रत करता है– "काहे की मोहलत चाहते हो भइया, यातो ओखली में सिर न डालते और अब तो मूसलों की चोट से डरोगे तो मैं कहता हूँ कि क्या कहूं ? सज्जन– मुँह देखी नहीं कह रहा एक जगह महिपाल से ज्यादा मुझे तुम्हारी ईमानदारी में

विश्वास है।''[206] सज्जन और वन कन्या के विवाह के विषय में कर्नल अपनत्व भरा आदेश करता है– बिन्नो से तुम्हारा ब्याह होगा, और जल्दी ही समझे ?''[207] अपनी परोपकारी प्रवृत्ति के कारण उसे समाज के पुराने और रूढ़िवादी व्यक्तियों का आक्रोश भी झेलना पड़ता है। **डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव के शब्दों में–** ''कर्नल के रूप में लेखक ने एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है जो बाधाओं से घबराता नहीं, बल्कि आगे बढ़कर उनका सामाना करता है। रूढ़ियों के उत्पादन के लिए समाज को ऐसे ही व्यक्तियों की आवश्यकता है।''[208]

डॉ0 सुदेश बत्रा के शब्दों में– ''निःसंदेह कर्नल का चरित्र निष्कलंक और विशिष्ट सृष्टि बन पड़ा है। उसकी नैतिकता और सन्तुलन कहीं भी दुराग्रह करते नहीं लगती।''[209] रवीन्द्र कुमार जैन ने कर्नल के चरित्र को महाकवि कालिदास की इन पक्तियों से व्याख्यायित किया है–

'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम।
संतः परीक्ष्यान्यतरत भजन्ते, मूढ़ा पर प्रत्ययनेय बुद्धिः।'[210]

डॉ0 सुषमा धवन के अनुसार– ''गौण पात्रों में कर्नल का चरित्र ऐसा है जिसके जीवन में व्यक्ति और समाज के संघर्ष अथवा सामन्जस्य की समस्या उठती ही नहीं है। उसके जीवन में वैयक्तिक एवं सामाजिक चेतना का समन्वय सहज रूप में ही विद्यमान है। उसका चरित्र दूध का धोया हुआ है। वह जीवन की उन भावनाओं का प्रतीक है जिनका स्वरूप उदात्त है।''[211]

बाबा राम जी– यह भी उपन्यास के सशक्त पात्र हैं। सामाजिक अन्याय के विरोधी व्यक्ति और समाज के समन्वय के प्रबल समर्थक हैं। वे समाज से बहिष्कृत, तृप्त और दुखी लोगों की सेवा करना अपना धर्म समझते है। बाबा राम जी का व्यक्तित्व युग समाज के इस यथार्थ चित्र को प्रस्तुत करने में स्पष्ट हो रहा है– ''जिस देश का इतिहास इतना महिमामय है, वह देश जड़ता और गन्दगी में रहना पसन्द करते हुए आज की भयंकर अगति के रूप में आत्म हत्या क्यों कर रहा है। सैकड़ों सदियों के रहन–सहन रीति–रिवाज, बर्ताव और मान्यताओं को, जो आज भौतिक विज्ञान के युग में एक दम अनुपयुक्त सिद्ध होती है, हमारा समाज अन्धनिष्ठा के साथ अपनायें हुए है। हमारे समाज में आत्म विश्वास ही नहीं रहा। हर युग में जो सुधार आये, जितनें ऐतिहासिक प्रभाव पड़े। उनमें से अधिकतर आज भी हमारे सिर पर बने रखे है। हमारे घरों, गलियों में रमें हुए साधु, वैरागी, फकीर है, चण्डी पाठ करने वाले पण्डित, व्याह–मुण्डन, जनेऊ से लेकर मृतक संस्कार कराने वाले पण्डित, कथा बाँचने वाले पण्डित, शास्त्रार्थ करने वाले पण्डित, भूत झाड़ने वाले ओझा, सयाने, शनीचर का दान लेनें वाले भड्डरी, टोना–टोटका, दहेज, ऊँच–नीच, तैतीस करोड़ देवता, ये बेमतलब दिमाग खराब करने वाली बाते (दकिया नूसी) भरी हुयी है। ××× जन–जीवन, अन्ध विश्वास और भ्रान्तियों से जकड़ा हुआ है ××× इस समय तो ऐसा लगता है कि इस देश में केवल व्यक्ति रहता है, समाज नहीं। व्यक्ति केवल अपने दायरे में रहता, सोंचता और कर्म करता है। ऐसा लगता है जैसे हर एक व्यक्ति एक–एक द्वीप में अलग–अलग हो। आज

का मनुष्य अपने मन में कहीं न कहीं यह अवश्य अनुभव करता है कि वह गलत जा रहा है। इसलिए व्यक्ति अपने को नजर ओट कर हर दूसरे व्यक्ति को गलत बताता है। इससे हुज्जत बढ़ती जाती है। आंतक फैलता जाता है। मनुष्य की यह स्थिति अप्राकृतिक है ×××मनुष्य का आत्म विश्वास जागना चाहिए उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख–दुख में अपना सुख–दुख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है। विचारों के भेद से स्वस्थ्य द्वन्द्व होता है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख–दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट सम्बन्ध बना रहे– जैसे बूँद से बूँद जुड़ी रहती है– लहरों से लहरें। लहरों से समुद्र बनता है। इस तरह बूँद में समुद्र समाया है।''[212]

उनका दृढ़ विश्वास है कि– ''व्यक्ति की चेतना जाग कर ही रहेगी।''[213] बाबा जी कन्या और सज्जन को जनसेवा और समाज सेवा का आदेश देकर उन्हें समाज सेवा में संलग्न कराते हैं।

बाबा राम जी दास गाँधीवादी सर्वोदयी भावना के प्रतीक 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के सिद्धान्त पर विश्वास करने वाले साधु परम्परा में आने वाले, सेवा भाव युक्त, कर्मयोगी, परोपकारी, गम्भीर और दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति हैं। विद्वानों ने बाबा राम जी की तुलना सन्त विनोवा भावे से की है। बाबा ने वर्गवाद के विरोध में सर्वोदय समाज की स्थापना पर बल दिया है। ''बाबा का व्यक्तित्व वास्तव में मध्य कालीन तथा आधुनिक बोध के सम्मिश्रण का परिणाम है। आधुनिकता की चुनौती को परम्परा के सन्दर्भ में स्वीकारने तथा नकारने की परिणति है। इसीलिए वह उपन्यास में पूरी तरह से प्रतिष्ठित नहीं हो पाता है और लेखक की सृजन पक्रिया का अंश नहीं बन पाता है।''[214]

बाबा राम जी का दृष्टिकोण अहिंसावादी तत्वों से निर्मित है। जिसमें गाँधी के मानवतावाद के दर्शन होते है। वह समाजवाद की व्याख्या करते है– ''खरा समाजवादी वही है जो दूसरों के लिए जिए, जिए और जीने दे।''[215] समाज सेवा की भावना के कारण वे पागलों, समाज के बहिष्कृत एवं दुखी व्यक्तियों की सेवा में अपने समय की सार्थकता समझते हैं। ''सेवा करना और सेवा लेना दोनों ही मनुष्य के जन्म सिद्ध अधिकार है।''[216] बाबा की पागल सेवा भावना वास्तव में विक्टर ह्यूगो की मानवतावादी क्षमता की याद दिलाती है। उनका संदेश उनकी क्रान्ति दर्शिता का परिणाम है। नेहरूवाद की परिणति। वे कर्मवादी सन्त है। ''बैठकर खिलाना हमारे सिद्धान्त के विरूद्ध है रामजी। ड्यूटी करें और पेट भर भोजन पावे, इसके लिए उद्योग कीजिए।''[217] 'बाबा रामजी दास' के व्यक्तित्व में आस्था विश्वास का अद्भुत संगम है। उनकी आस्था डिगने की अपेक्षा वैज्ञानिक प्रगति से और अधिक दृढ़ होती है। ''विज्ञान के जो अनुपम रत्न निकल रहें है, मानवता का व्यापक प्रचार हुइके चेतना का जो अमृत निकलेगा वह समस्त लोक को मिलेगा और जौन ये स्वार्थ परता, अनाचार का कालकूट निकल रहा है तौन नीलकंठ परम सेवक है, वो अपनी

ड्यूटी से कभी नहीं चूकते।''[218] बाबा असौंदर्य में भी सौंदर्य देखते है। 'प्रेम बहती धारा की स्थाई परछाई है। बड़ी–बड़ी हलचलों के बावजूद हमें निज के ममत्व को नहीं भूलना चाहिए। ममत्व के साथ न्याय बुद्धि बदल जाती है।''[219]

बाबा के बाह्य व्यक्तित्व में उनका अन्तः सौन्दर्य प्रतिबिम्बित है। उनके कसरती शरीर वृद्धावस्था की झुर्रियों में भी एक अलौकिक तेज चमकता है– ''बुढ़ापा केवल उनके दांत विहीन झुर्रियों पड़े चेहरे पर ही दीखता था, बाकी सारा शरीर फौलाद की तरह ठोस था। वर्ण श्याम होते हुए भी तेजोमय था। उनकी हँसी बच्चे के किलकारी भरे निर्मल हास्य के समान थी, छोटी–छोटी आँखों की काली पुतलियों में अपार स्नेह चमक रहा था।''[220] ''बाबा राम भारत की सधुक्कड़ी परम्परा और भावना का चरित्र है जो गाँधी तथा विनोवा के समान उसमें आधुनिक जीवन का नया संदर्भ विकसित करता है।''[221]

बाबा के व्यक्तित्व की यथार्थता को लेकर विद्वानों ने नागर जी पर अनेक प्रकार के आरोप लगाए है। राजेन्द्र यादव बाबा की चरित्र पुष्टि पर दुख प्रकट करते है–''बाबा राम जी का चरित्र इस उपन्यास में जिस रूप में लाया गया है, वह निहायत आपत्तिजनक है और सन् 1950 में प्रकाशित होने वाले उपन्यास के लिए सचमुच एक कलंक की खोज है। और आरोपों तथा टीका टिप्पणियों का तर्क संगत खण्डन नागर जी द्वारा समय–समय पर प्रस्तुत किया गया है। 'बूँद और समुद्र' प्रकाशित होने पर श्री राजेन्द्र यादव और डॉ0 रामदरश मिश्र ने बाबा रामजी के चरित्र की विश्वसनीयता पर आपत्तियाँ उठाई थीं। जो गलत थीं वह पात्र मेरा कपोल कल्पित नहीं हैं। मैं आज तक स्व0 बाबा रामजी से प्रभावित हूँ। बाबा रामजी यदि मेरे जीवन में नहीं आए होते तो शायद मैं आज मेहतरों से इण्टरव्यू (नाच्यौ बहुत गोपाल के सन्दर्भ में) लेने का काम भी न कर सका होता। उस व्यक्ति ने न जाने कितने रोगियों का पखाना–पेशाब तक साफ करवाकर मेरी वह झिझक मन से निकलवा दी। उनके लिए आदमी पहले आदमी था, उसका जाति वर्ण उनके सामने नहीं आता था। और यह बात मेरे उपन्यासकार को बड़ी सोहाई और बेहद प्रभावित करती है।

'बूँद और समुद्र' का 'बाबा रामजी दास' मेरे जीवन को प्रभावित करने वाला एक सार्थक व्यक्ति था। सन् 1943 में इन बाबा रामजी से मेरा परिचय बम्बई में हुआ था। सन् 50 में फिर अनायास ही बम्बई में ही उनसे भेंट हो गई। मेरे आग्रह से वे लखनऊ आ गए। पागलों को ठीक करने में उनके अनेक प्रयोगों में मैं उनका अस्टिंट रहा। अनेक चरित्रों को सही रूप में पहचानने की ट्रेनिंग मुझे बाबा रामजी के पागलखाने में मिली। स्व को पहचानने की ट्रेनिंग भी किसी हद तक इन्हीं के साथ हुई।''[222]

सुहाग के नूपुर

प्रस्तुत उपन्यास में कथानायक कोवलन और कथा के सहायक पात्रों में मासात्तुवान चेट्टियार और मानाइहन आदि हैं। ये सभी पात्र घात–प्रतिघात एवं व्यवहारिक दृष्टि से सफल हैं

मुख्य पात्र मूल कथा के आस–पास ही केन्द्रित रहता है और अन्य पात्र उपन्यास की कथा के मूलभाव को पूर्णता प्रदान करने में सहायक हुए हैं।

कोवलन– कथानायक कोवलन एक सफल व्यापारी है और कन्नगी जैसी सती–साध्वी का पति है। जीवन के मधुमय बसंत और यौवनश्री के प्रारम्भ से ही वह पेरियनायकी की पोष्य पुत्री तथा साथ ही साथ रूप गुण में अद्वितीय माधवी से प्रेमालाप कर दिव्य श्रृंगारी आत्मा कहलाता है। कावेरी पट्टणम का रसिक रत्न है। माधवी और उसकी माँ उसे शकुन पक्षी कहती है।[223] वह विश्व प्रसिद्ध व्यापारी मासात्तुवान का पुत्र और ऐसे ही प्रसिद्धि प्राप्त व्यापारी मानाइहन का जमाता है। वह अपनी वंश प्रतिष्ठा और व्यापार के प्रति उपन्यास के प्रारम्भ से ही सजग रहता है–"क्योंकि वह माधवी के लिए व्यवसाय अथवा मान प्रतिष्ठा को नहीं त्याग सकता।"[224] उसकी विडम्बना यही है कि कन्नगी और माधवी से साथ–साथ प्रेम करना चाहता है। इतना ही नहीं माधवी से प्रेम व्यापार को वह गोपनीय ही रखना चाहता है। इसी कारण "गर्व भरी प्रसन्नता के बाद वह ग्लानि, क्षोभ और दुख उसे (कोवलन को) मथे डाल रहा था।"[225] अतः मन में अस्थिरता रहना स्वाभविक है। माधवी उसे बार–बार अपनी ओर आकर्षित करती है। इसलिए उसके प्रति "मन में भय और हिचक होते हुए भी माधवी के पत्र और नागरत्ना की बातों ने उसे ऐसा तड़पा दिया कि माधवी से मिले बिना वह रह नहीं सकता था।"[226] इसके पश्चात् रूप जीवा माधवी से ऐसा मिलता है कि अपना संपूर्ण वैभव और मान खो बैठता है।

कोवलन जब माधवी के प्रति किंचित अपेक्षा दिखलाता है तब "माधवी के व्यक्तित्व में निहित कोवलन से प्रगाढ़ प्रेम करने वाली नारी विकल हो प्रिय को मनाने दौड़ पड़ती है।"[227] उस समय कोवलन माधवी को अपने बाहुपाश में बाँध कर आलिंगन कर कह उठता है।–"माधवी! मुझे तुम्हारे प्रेम पर विश्वास है। इसलिए मैं अपने आपको तुम पर निछावर कर चुका हूँ। मेरा मन तुम्हारे लिए एक से दो न होगा।"[228] परन्तु इतना होने पर भी वह "अपने कुल के धवल यश और गौरव को किसी के द्वारा एक क्षण के लिए भी कलंकित होते नहीं देख सकता।"[229] परस्पर विरोधी भावों में दोलायमान कोवलन बहुत समय तक उपन्यास में वायु प्रेरित घास के फूल के समान अस्थिर चंचल रहता है। वह रसिक रत्न होने के कारण सभी निजी व्यक्तियों की मान प्रतिष्ठा से प्रेम करता है। परन्तु "एकै साधे सब सधैं, सब साधे सब जाँय" वाली लोकोक्ति कोवलन के चरित्र के लिए उपयुक्त है। अपनी विलासिता के कारण उसकी आत्मा इतनी दुर्बल हो गई है कि किसी विचार पर वह स्थिर नहीं रह सकता। क्षण में प्रसन्नता और क्षण में रोष उसके चरित्र की विशेषता बन गयी है। ऐसी स्थिति में स्वयं अपने हृदय पर विश्वास नहीं रहा।

भोग और भोजन में विश्वास करने वाला कोवलन जीवन के अन्त में अपने चारों ओर विवशता के चक्रव्यूह में फँसकर भ्रमित हो जाता है। इस प्रकार कोवलन का चरित्र यथार्थ और नियति के अनुसार नहीं है। उसकी आन्तरिक संवेदनाएँ जीवन की बाह्य क्रियाओं से इतनी आक्रान्त हैं कि वह अपनी आवाज सुनते हुए भी विवश है। इस विवशता में ही कोवलन के चरित्र

का यथार्थवादी पक्ष छिपा हुआ है। अतः यह कहना असंगत है कि उपन्यास में कोवलन के चरित्र को ''विषाद जनक बलि दी गई है।''[230] दौर्बल्य, विवशता, अस्थिरता तथा कायरता का चित्रण ही उसके चरित्र को यथार्थ भूमि पर ले आता है।

कोवलन के चरित्र पर अपना मत व्यक्त करते हुए **डॉ0 सुदेश बत्रा कहते हैं**–''कोवलन वेश्या के एकनिष्ठ प्रेम से प्रभावित और मायाविनी रूप से मोहित था तथा कुलवधू की अगाधशील युक्त गरिमा से भयभीत, किन्तु उसके सहज समर्पण के प्रति क्षुब्ध दो भागों में फटने को बाध्य हैं। नारी की प्रतिष्ठा सामाजिक प्रतिष्ठा का मापदण्ड बनकर उपन्यास की कथा वस्तु के ताने–बाने को बुन गई है।''[231] **डॉ0 सत्य पाल चुघ ने** भी कोवलन के इसी चरित्र की ओर संकेत किया है–''महाजनी सभ्यता की दुरंगी नैतिकता माध्वी जैसे सुन्दर सजीव खिलौने से रीझने–रिझाने की रसिकता का एकाधिकार भी चाहती है और कन्नगी की कोख से पुत्र रूप में वंश दीपक पाने का स्वत्त्व भी। इसीलिए वह माधवी के प्रेम पाश में बँधा रहकर भी कन्नगी से विवाह करता है। प्रेम और कर्त्तव्य का यह अलगाव दोनों नारियों और स्वयं उसे दुखी बनाता है।''[232] कोवलन कुलवधू के सौन्दर्य और शील तथ नगर वधू के अप्रतिम सौन्दर्य और ऐन्द्रजालिक प्रेम के मध्य झूलता रहता है।''तुम मेरी सहधर्मिणी हो, मंत्राणी हो, दासी हो। कुलवधू के लिए उचित, शास्त्रकारों के बतलाए हुए हर संस्कार को जब तुमने इतनी भली प्रकार आत्मसात किया तब एक ही बात क्यों भूल गयी प्रिये ? तुम अपना मायावी रूप निखारती देबी, तो मेरे पुरुष के अहं का निर्बुद्ध छिलका उतर जाता।''[233] कोवलन का यही अहं लोक लाज और सामाजिक प्रतिष्ठा सभी को खोकर नष्ट हो जाता है। उसके इस आचरण से उसके पिता का स्वर्गवास हो जाता है और श्वसुर भी परेशान हो जाता है। पत्नी को घर से निकालने के पश्चात् लक्ष्मी भी उससे रूठ जाती है और कोवलन भटकता रह जाता है। **डॉ0 रामगोपाल सिंह चौहान** के अनुसार–''कोवलन पुरुष के चंचल और उद्दाम रूप लिप्सु मन का प्रतीक है जो पत्नी के शान्त, निश्छल, सहज प्राप्य, प्रेम समर्पण से सन्तुष्ट न हो, शिराओं और मन के तनावों में झनझनी उत्पन्न करने वाले चमक–दमक पूर्ण असहज प्राप्त प्रेम की खोज में भटकता है।''[234] माधवी द्वारा ठोकर मारकर बाहर निकाल देने पर भी वह माधवी के प्रति एकनिष्ठ प्रेम को स्वीकार करता है। यही उसके चरित्र को एक साधारण मनुष्य के रूप में चित्रित करता है किन्तु अन्त में मर्माहत होकर और कन्नगी के आश्रय में पहुँचकर उसे कुलवधू की गरिमा का ज्ञान होता है।

डॉ0 सुदेश बत्राा के शब्दों में–''कोवलन के चरित्र का यह उत्कर्ष, अपकर्ष, बड़े मनो वैज्ञानिक और स्वाभाविक स्तर पर प्रस्तुत हुआ है। वह कहीं भी कोई ठोस कदम नहीं उठा पाता किन्तु उसका उच्चकुलोत्पन्न दम्भ सदैव उसे भ्रमित करता रहता है और वह जीवन के कठोर थपेड़े सहते–सहते अपने दम्भ का पर्याप्त दण्ड प्राप्त कर चेतना की समतल भाव भूमि पर पहुँच जाता है।''[235]

अमृत और विष

'अमृत और विष' में उपन्यास के शीर्षक के अनुसार ही विभिन्न संस्कार वाले पुरुष पात्रों का सन्निवेश किया गया है। उपन्यास का कथानक एक सौ दस वर्ष की कालावधि में विकसित है, अतः इस कालावधि के विकासशील पात्रों को दो कोटियों में रखा जा सकता है–उन्नीसवीं शताब्दी के पात्र और बीसवीं शताब्दी के पात्र। उपन्यास के सभी पात्र काल्पनिक हैं। स्वयं नागर जी का कथन है–''उपन्यास के सभी पात्र यथार्थ के प्रतीक होते हुए भी काल्पनिक हैं।''[236]

उन्नीसवीं शती के पात्रों में व्यवहार कुशल व्यापारी 'लाला राधेलाल' जो स्वार्थी और कुटिल भी हैं, अंग्रेज परस्त सुधारवादी आर्य समाजी मास्टर किशोरी लाल, रहस्यवादी दीन मोहम्मद, इस्लाम धर्म के विचारों से ओत–प्रोत संत स्वभाव शेख फकीर मोहम्मद, स्वाभिमानी और आशिक मिजाज व्यापारी सदानन्द, मुनीम समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले गोपाल दास आदि उल्लेखनीय पुरुष पात्र हैं। बीसवीं शताब्दी के पात्रों में अरविन्द शंकर तथा उनके उपन्यास के पात्र आते हैं। ये पात्र समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

रमेश– उपन्यास का नायक और प्रधान पुरुष पात्र हैं। रमेश एक निर्भीक एवं प्रगतिशील तरूण पत्रकार है। उसके व्यक्तित्व का निर्माण तारूण्य सुलभ उत्साह, क्रान्ति भावना, विद्रोह, विद्यार्थी जीवन की उग्रता तथा समाज–सेवा की भावना के सामन्जस्य से हुआ है। वह अन्तर्जातीय प्रेम, विधवा–विवाह करके युवा पीढ़ी के समक्ष एक आदर्श उपस्थित करता हैं। फिर भी वह प्रौढ़ मस्तिष्क का संयत, गम्भीर व्यक्ति नहीं है। उसमें युवकोचित आक्रोश, असंयम और अप्रौढ़ता के दर्शन होते हैं।

रमेश स्वाभिमानी, परिश्रमी किन्तु विद्रोही युवक है। उसके विद्रोह का परिचय छात्र–आन्दोलन और बारहदरी के घटना–प्रसंगों से मिलता है। पूँजी–पतियों के द्वारा बारहदरी हड़पने के प्रश्न पर उसका विद्रोह न्याय संगत तो है किन्तु इस प्रसंग में अपेक्षित गम्भीरता का अभाव दिखायी पड़ता है। उसके स्वगत कथन में आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति के साथ ही बचकानापन है–''मैं अपने पावों पर खड़ा हुआ। 'मैंने' मेहनत से कैरियर बनाया है। तरुण छात्रसंघ की तेजस्वी आत्मा 'मैं' था। बाढ़ में 'मैंने' नेतृत्व दिया। मैं जानता हूँ, समाज क्या है। 'मैं' जानता हूँ समाज के स्वतंत्र होने के माने हैं व्यक्ति की स्वतंत्रता। आज कल मेरे लेख क्या सनसनी ढा रहे हैं–जिसे देखो 'इण्डिपेण्डेण्ट' खरीद रहा है, जिसे देखो 'रमेश' का नाम ले रहा है।''[237]

सम्पूर्ण घटनाक्रम में उसके चरित्र में कतिपय अन्य दुर्बलताएँ भी प्रत्यक्ष हुई हैं। सारसलेक जाने के प्रस्ताव पर रानीबाला इसकी निर्णायिका शक्ति बनती है, क्योंकि वह आत्म निर्णय करने में असमर्थ है। शादी के पश्चात् उसका चारित्रिक विकास मंद हो जाता है। उसके व्यक्तित्व में शैथिल्य स्पष्ट होने लगता है। उसके चरित्र का स्वाभाविक किन्तु दुर्बल पक्ष बानों के सम्पर्क में स्पष्ट होता है। बानो के प्रति उसका आकर्षण नितान्त सौन्दर्य लिप्सा है। उसका मन असंयमित हो जाता है।''

.....बानो उसे अच्छी लगती है। अब तक रानी के प्रति बंधी हुई महीनों की चाहत में तनिक भी ढील न आयी थी पर अब यह विघ्न आया। अब तक बानो की सुन्दरता के बारे में उसे तनिक सा ख्याल तक न आता था पर अब कभी–कभी बेहोशी आने लगी। खुद उसकी भी तबियत होने लगी कि अकेलापन पाए और बानो से आँखे लगाए।''[238] इस रोमांटिक प्रसंग में अपेक्षित गंभीरता का अभाव है।

वैचारिक स्तर पर भी रमेश, रानीबाला, लच्छू, जयकिशोर आदि युवा पात्रों से प्रायः पराजित होता है और उसके मन में युवकोचित क्षोभ, ग्लानि उत्पन्न होती है। उसमें आत्मबल है किन्तु आत्म विवेक पूर्वक निर्णय करने का सामर्थ्य नहीं है।

समग्रतः रमेश वर्तमान युवा–पीढ़ी का प्रतिनिधि चरित्र है।–डॉ0 सत्येन्द्र ने रमेश के चरित्र की सराहना करते हुए बड़ी रोचक टिप्पणी की है–''वह ज्योति का कथानक है जो अपने प्रकाश में अपना मार्ग बनाता है। आँधियों, झपेटों, प्रलोभनों से वह ज्योति लहराती है, फरफराती है पर अपनी धुरी से च्युत नहीं होती। उसकी अविकसित मेधा अनेक तूफानी भूमियों, फिसलपट्टियों धनावृत्तों, कड़कड़ाहटों, विद्युत पातों में होकर यात्रा करती है। वह प्रतिपल–प्रतिक्षण संघर्षरत है, कर्मरत है, कर्मठ और कर्मनिष्ठ हैं। वह जैसे कण–कण पर होकर काँटों–काँटों पर चलकर मानव के निर्माण को पल–पल में जाग्रत करता जाता है।''[239] वस्तुतः वह, कोई ऐसा पात्र नहीं है जो कि पाठकीय संवेदना से इस प्रकार जुड़ गया हो कि उसे भुलाया न जा सके। उसे किसी महान् रचनाकार की महान पात्र–सृष्टि की संज्ञा कदापि नहीं मिल सकती।

लक्ष्मी नारायण उर्फ लच्छू– लच्छू युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है; जिसमें प्रारम्भ में तो कुछ सम्भावनाएँ दिखायी पड़ती हैं किन्तु परिस्थितियों के प्रवाह में पड़कर वह स्वार्थी, विद्रोही, अवसरवादी, एवं पथ भ्रष्ट हो जाता है। उसका चारित्रिक ह्रास 'सारसलेक' पहुँचने पर प्रारम्भ होता है।

परिस्थितियों की प्रतिकूलता की भँवर में पड़कर लच्छू ने खोया ही खोया, पाया कुछ भी नहीं। निम्नलिखित पंक्तियों से उसकी स्थिति सहज ही स्पष्ट हो जाती है।''बिना पेट्रोल की पंचर पहियों वाली मोटर की तरह लच्छू अपने कमरे में निकम्मा पड़ा था। ..... जी में अपने आप ही रह–रहकर घनघोर घुटन का एक अदृश्य बिन्दु से फैलते–फैलते पूरे तन–मन, बुद्धि सभी पर घटाटोप बनकर छा जाती हैं और फिर अनबूझी पीड़ा बरसती, जो समझ की सतह पर लाने का प्रयत्न करने ही अपनी असफलता के रूप में स्पष्ट उभर आती है। इतने दिनों में क्या किया खुशामद, षड्यन्त्र, व्यभिचार और लूट–खसोट। क्या पाया ये मोटर और कुछ हजारों रुपये जो किसी स्थायी आमदनी के अभाव में बिना माली के बाग की तरह शीघ्र ही समाप्त हो जायेंगे। तब क्या होगा ?..... क्या उसने अपने भविष्य की यही तस्वीर बनायी थी ?.....वह जीना चाहता है और अच्छी तरह से जीना चाहता है। 'सारसलेक' में अगर वे औरतें (चुड़ैलें) उसके

जीवन में प्रवेश न करती, तो वह शायद रूस भ्रमण भले ही न कर पाता, मगर सुव्यवस्थित, अपराध–भावनाहीन और निष्ठावान काम काजी व्यक्ति होता।''[240]

चुनावी राजनीति की आँधी में लच्छू का चरित्र कटी हुई पतंग जैसा लगता है। पैसा और अवसरवादिता में उसकी पहचान खो गयी है। इसीलिए वह ''अपने 'समाजवाद' के लिए तन, मन, धन एक लगन से जुट गया। वह सेठानी से आँखें लड़ा रहा है तो पैसा कमा रहा है; सेठ की अर्दली में बारह–बारह घण्टे खड़ा है, या एक टाँग से नाच रहा हैतो पैसा कमा रहा है; खोखा मियाँ के सामने हिन्दुओं को गालियाँ दे रहा है, तो हाजी नबी बख्य के सामने इंसानियत की बातें कर रहा है, सेठानी का इलेक्शन लड़ रहा है– जो कर रहा है वह सिर्फ पैसा और पोजीशन कमाने के लिए। पैसा और पोजीशन! ..... और इनकी सिद्धि के लिए होने वाले संघर्ष की थकन को हरने के लिए और स्त्री और शराब या ताश! और इनकी स्थिति को बरकरार रखने के लिए पैसा और पोजीशन।''[241]

लच्छू और रमेश एक सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक पूरक व्यक्तित्व आज की भटकी हुई युवा–पीढ़ी का प्रतिबिम्ब हैं। दोनों परस्पर विरोधी तथा पृथक–पृथक आकांक्षाओं तथा भूमिकाओं के सूचक हैं। लेखक ने लच्छू को नौजवान भारत का प्रतीक जो कहा है वह सर्वांश में सत्य है–''उसके सामने कुण्ठित नौजवान भारत बैठा था, जो बेकार है, पर अपने कुण्ठित आत्म सम्मान के लिए, जीवन–सुरक्षा के लिए अविवेकी, क्षुद्र और अंधस्वार्थी हो जाता है। ये सभी विकृत विद्रोही भर हैं।''[242]

''लच्छू का चरित्र रमेश का प्रतिरूप है। एक ही वर्ग, समाज, विचारधारा के होते भी लच्छू पारिवारिक परिस्थितयों से अधिक त्रस्त और कुंठित है उसमें अपने परिवार के प्रति किसी प्रकार का मोह या दायित्व नहीं। सामाजिक रूढ़ियों का विरोधी और महत्वाकांक्षी युवक है। उसके चरित्र विकास में होने वाले सक्रिय उतार–चढ़ावों ने उसे अपेक्षाकृत अधिक सजीव और सशक्त बना दिया। कभी वह क्रान्तिकारी और विद्रोही भूमिकाओं में जाता है तो कभी 'सारसलेक' पहुँचकर वासनाओं से घिरे हुए व्यक्ति के रूप में, कभी समाजवादी लक्ष्यों के रूप में आता है तो कभी अवसरवादी लक्ष्यों के रूप में उपन्यास के अन्त तक आते–आते उसका चरित्र पतनोन्मुखी हो गया है।''[243] आगे श्री मिश्र लिखते हैं– ''उसके चरित्र की यह पतनोन्मुखी भूमिका उसे काला बाजारियों के हाँथ की कठपुतली बनाकर अपने ही मित्रों का विनाश करने पर अमादा कर देती है किन्तु अन्त में वह पश्चाताप द्वारा आदर्श मार्ग अपना लेता है। वस्तुतः रमेश और लच्छू आज की नई पीढ़ी में दो परस्पर विरोधी तथा पृथक–पृथक आकांक्षाओं तथा भूमिकाओं के सूचक हैं। रमेश के चरित्र की परवर्ती गतिहीनता अथवा सामान्यता और लच्छू के चारित्रिक पतन द्वारा लेखक ने स्वातन्त्रयोत्तर नयी पीढ़ी की मूल्यहीनता तथ दिशाहीनता की ओर संकेत किया है।''[244]

डॉ0 सुदेश बत्रा के शब्दों में–''इसी चारित्रिक उत्थान–पतन के कारण लच्छू का चरित्र अधिक सजीव और मार्मिक बन पड़ा है। द्वन्द्वपूर्ण प्रभावात्मकता के कारण वह रमेश की सक्रियता

से भी आगे बढ़ गया है। उसकी दिशाहीनता और भटकाव 'बूँद और समुद्र' के 'महिपाल' की तरह मार्मिक है, किन्तु उसकी पीड़ा आज के क्षुब्ध युवा समाज की पीड़ा है। टूटकर जुड़ने की प्रक्रिया है। जीवन की संघर्षशीलता युवको के मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करती है।''[245]

डॉ0 आत्माराम– 'इण्डिपेण्डेण्ट' के संस्थापक डॉ0 आत्माराम, राजनीति और संकीर्ण स्वार्थों से दूर रहने वाले ईमानदार व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तित्व में सहृदयता, उच्च विचार, आदर्शवादिता और व्यवहार चातुर्य का सामंजस्य हुआ है। उनमें आभिजात्य वर्ग का गौरव और अभिमान है। वे नेहरू के अनुयायी हैं। पूँजीवादी पर्यावरण में पलकर भी वे सरल, उदारमना समाज सेवक हैं, फिर भी 'सारसलेक' के उच्छृंखल वातावरण से डाक्टर साहब का अभाव दिखाई पड़ता है। अरविन्द शंकर ने उनके संबंध में बड़ी ही सटीक टिप्पणी की है–''डॉ0 आत्माराम के सहारे मैं एक ऐसे सत्यनिष्ठ, भले और भोले बुद्धिवादी का चित्रण करना चाहता हूँ जो चिराग तले अँधेरे की कहावत को अक्षरशः चरितार्थ करे।''[246]

डॉ0 सुदेश बत्रा के शब्दों में–''डॉ0 आत्माराम के सहयोगी और 'सारसलेक' के कर्मचारी अपनी ही राजनीति में फँसे हुए हैं। 'सारसलेक' में फैला हुआ विकृतियों का वातावरण (चिराग तले अँधेरा) को चरितार्थ करता है। डा0 आत्माराम के भव्य चरित्रांकन में स्पष्ट ही नेहरू के व्यक्तित्व की व्यंजना आभासित होती है।''[247]

उपन्यास में पात्रों का वैविध्य होने के कारण प्रत्येक पात्र को स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्राप्त हुआ है। रमेश के पिता **पुत्तीगुरु** पुरोहिताई करते हैं। अन्धविश्वासी और धर्मभीरु पात्र हैं। एक ओर प्राचीन रीति–रिवाजों को कट्टर समर्थन देते हैं और दूसरी ओर वे बड़े ही भोले और सरल व्यक्ति हैं। वे फक्कड़ और मस्ती भरे व्यक्तित्व वाले भंगड़ हैं। रानी के पिता **ठाकुर रद्दू सिंह** प्राचीन परम्पराओं और शान वाले व्यक्ति हैं। उनका जीवन अभावों से ग्रस्त है, पिता की सम्पत्ति को अपनी विलासी संस्कारों से नष्ट कर कुण्ठित जीवन बिताते हैं। एक ओर अपनी विधवा पुत्री के विवाह का विरोध करते हैं और दूसरी ओर अपनी पुत्री रानी के समान उम्र वाली लड़की से विवाह करते हैं। **लाला रूपचन्द** पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधि हैं, विलासी हैं। **आनन्द मोहन खन्ना** 'इण्डिपेण्डेण्ट' के सम्पादक एवं पारंपरिक रूढ़िवादिता के कट्टर विरोधी हैं। युवा–पीढ़ी को उनका पूरा समर्थन प्राप्त है। रमेश और रानी का अर्न्तजातीय विवाह सम्पन्न कराने में उनकी प्रगतिशीलता का परिचय मिलता है। वे सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में व्याप्त जर्जर मान्यताओं का मूलोच्छेद करने के लिए दृढ़ संकल्प हैं। समग्रतः खन्ना का चरित्र जीवन के समतल पर अग्रसर है, संघर्षो से सर्वथा मुक्त है। **छैलू** उपन्यास में अत्यन्त लघु घटना–प्रसंग से आवृत्त एक विद्रोही युवक है। उसके संघर्षशील एवं विद्रोही व्यक्तित्व की झलक बारहदरी घटना–प्रसंग में मिलती है। वह रूढ़िवादी समाज के विरुद्ध आक्रामक होकर संघर्ष छेड़ता है। उसकी घृणा विध्वंसक रूप धारण करती है। वह रात्रि में पूरे मोहल्ले के मन्दिरों में आग लगाकर पलायित हो

जाता है। फिर भी, छैलू बारहदरी के संघर्ष के दौरान उपन्यास के समूचे युवा पात्रों पर हावी हो जाता है। इस संदर्भ में **डॉ0 धर्मवीर भरती** का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है–''पता नहीं उसके (लेखक के) जाने या अनजाने उनका नायक, उनका साहसी, विद्रोही रमेश पीछे रह गया और उस समस्त घटना–क्रम में अरविन्द शंकर की सारी सहानुभूति ले गया डरपोक, भागने वाला, अनायक या 'ऐण्टी हीरो' छैलू .....।'' **यूसुफ** एक उदार और सहिष्णु मुसलमान है। **हिदायत** एक साफ दिल, ईमानदार, परोपकारी, उदार और मानवतावादी मुसलमान पात्र है। 'अमृत और विष' में **शेख फकीर मुहम्मद, डॉ0 आत्माराम** जैसे त्यागी, परोपकारी, उदारमना व्यक्तितयों के साथ अनेक स्वार्थी, विलास प्रिय और निष्ठुर व्यक्ति भी हैं।

लाल कुँवर बहादुर भोग–विलास में लिप्त, निर्लज्ज, पतित और बिगड़ा हुआ रईस है। उसने अपना सारा जीवन ऐयाशी और अविवेक पूर्ण कार्यों में बिताया। उसकी दृष्टि में जीवन की सार्थकता जिन्दगी का लुत्फ उठाने में है। हिंडोले वाली और अपने पुत्रों के अत्याचार के कारण वह धीरे–धीरे जीवन के प्रति उदासीन हो जाता है। अपने ही शब्दों में–''ये ऐशो इशरत की जिन्दगी, लिफाफिया बड़प्पन, पैसे की रिश्तेदारी से बँधा हुआ झूठा घर, हर झूठा रिश्ता।''[248] जीवन के प्रारम्भिक सुख के दिनों की स्मृति अन्त में मुसीबत की रोजी–रोटी बन जाती है। लाल कुँवर के जीवन की अन्तिम परिणति आत्महत्या में होती है।

अरविन्द शंकर– इस उपन्यास का विचारक, लेखक, समाज–चिन्तक एवं बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है। उसका जीवन संघर्षशील एवं आदर्श सम्पन्न रहा है। अपनी विद्रोही प्रकृति के सम्बन्ध में वह कहता है–''मेरी किशोरावस्था, सारी नौजवानी और जवानी विद्रोह में ही आस्था रखकर बीती है। मुझे अभी तक अपने सुख–दुख में कभी ईश्वर या भाग्य के सहारे की गम्भीर आवश्यकता ही नहीं पड़ी। मुझे दैव या दैव भेदी–दर्शन–धर्म से न तो प्रेम है न नफरत .....।''[249]

राजनीति की दुर्दशा देखकर अरविन्द शंकर का कलाकार साहित्य–सृजन की ओर प्रवृत्त होता है। वे अनेक पुस्तकों की रचना करते हैं। किन्तु, चिन्त्य आर्थिक स्थिति के कारण उन्हें जीवन में रिक्तता दिखाई पड़ती है। उनका आशावाद पलायनोन्मुख होने लगता है। इस संबंध में उनका आत्मालोचन भी है–''क्या मेरा आन्तरिक जीवन इतना कुण्ठित नहीं? क्यों न पिता की लीक पर चलकर मैं भी संखिया या अन्य कोई विष खा लूँ ? यह झूठा आशावाद, यह नवजीवन की प्रतीक्षा अब कब तक करूँ ? सारा जीवन यों ही मन बहलाते–बुझाते बीत गया।''[250]

अरविन्द शंकर के जीवन में कुण्ठा की चुभन, उन्हें अनास्था और पलायन की दहलीज पर पहुँचा देती है। फिर भी, उनके अन्तस् में कहीं आस्था–ज्योति जलती रहती है जो उन्हें प्रतिकूलताओं से संघर्ष करते रहने की प्रेरणा देती है। वे जीवन के यथार्थमय विष का पान कर कर्म क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं। वे कर्म को जीवन का वरदान मानते हैं। उनके जीवन का मूलादर्श **हेंमिंग्वे** का 'बूढ़ा मछेरा' है। उनका दृढ़ संकल्प है– ''जड़ चेतनमय, विष अमृतमय, अंधकार

प्रकाश मय, जीवन में न्याय के लिए कर्म करना ही गति है। मुझे जीना ही होगा, कर्म करना ही होगा। यह बंधन ही मेरी मुक्ति भी है। इस अंधकार ही में प्रकाश पाने के लिए मुझे जीना है।''[251]

उपन्यासकार अरविन्द शंकर एक समाजवादी चिन्तक एवं विचारक है। वर्तमान परिवेश में उसकी प्रगतिशील दृष्टि सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि पहलुओं का विश्लेषण करती हुई नयी–नयी व्याख्याएँ प्रस्तुत करती है। राजनीति से उन्हें गहरी वितृष्णा है। सामाजिक अंध रूढ़ियों, अंधविश्वासों, मृत धार्मिकता, साम्प्रदायिकता, अन्तर्जातीय प्रेम–विवाह, अन्तर्धर्मीय प्रेम–विवाह आदि विविध पक्षों पर उनके वक्तव्य विचारोत्तेजक एवं प्रगतिशील हैं।

अरविन्द शंकर के चरित्र के माध्यम से स्वातन्त्र्योत्तर भारत के विघटन शील मूल्यों को चित्रित किया गया है। स्वतन्त्र भारत का अरविन्द शंकर रूपी लेखक अपनी कुंठाओं और संत्रासों को सहन करने के लिए विवश है–''वह आदर्श वाद के बड़े–बड़े शब्दों को ओंढ़कर आर्थिक संघर्षों से जूझता रहता है। षष्टि पूर्ति समारोह के चिन्तन क्षण अपनी यथार्थ अनुभूतियों में ऊपर के औपचारिक आवरण को भेदकर अरविन्द शंकर की विचार धारा को पैनी कर गए हैं। समारोह में उपस्थित अधिकांश व्यक्तियों ने न उनका साहित्य पढ़ा होगा और न उनके साहित्यिक और पारिवारिक स्थितियों से किसी को कुछ लगाव ही है। राजनीतिक नेता और मंत्री उत्सव की शोभा बढ़ाते हैं।''[252]

अरविन्द शंकर एक प्रतिष्ठित और यश प्राप्त लेखक होते हुए भी अपने जीवन में सर्वथा अशान्त है। स्वतन्त्रतासंग्राम में अग्रणी पंक्ति में भाग लेकर भी वे अपनी ईमानदारी के कारण राजनीति में भाग नहीं ले सके, जबकि उनके अनेक सहभागी झूठ, कपट और फरेब का सहारा लेकर अब राजकुर्सियों पर आसीन हैं। जीवन की परिस्थितियों से असहाय बना अरविन्द शंकर आत्म हत्या तक की बात सोंच लेता है। डॉ0 सुदेश बत्रा अरविन्द शंकर के चिन्तन को यथार्थ का चिन्तन बताते हुए लिखते हैं– ''लेखक का चिन्तन अपने भोगे हुए यथार्थ का चिन्तन है। उसका अब तक का श्रम अनुभवों से मण्डित आन्तरिक उत्साह के कुण्ठित हो जाने से त्रस्त है। अपने अन्तर मन्थन में वह भाग्य, पुनर्जन्म, धर्म, दर्शन आदि का विश्लेषण करता है, किन्तु भावुकता की सभी लहरों को दबाकर वह अपनी बौद्धिकता द्वारा चेतना को ऊर्ध्व स्तर तक ले जाता है ××××× नागर जी का कर्मवाद, अरविन्द शंकर के विष मंथन में अमृत बनकर फूटा है।''[253]

शतरंज के मोहरे

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें कुछ पात्र ऐतिहासिक हैं और कुछ काल्पनिक, गाजीउद्दीन और उसका पुत्र नसीरूद्दीन हैदर प्रमुख पात्र हैं।

गाजीउद्दीन हैदर– गाजीउद्दीन हैदर सहिष्णु तथा शान्त स्वभाव का नवाब था। उसमें कर्त्तव्य निष्ठा तो थी किन्तु आन्तरिक परिस्थितियों के कारण वह असमर्थ दिखाई पड़ता है। बादशाह बेगम (बेगम की पत्नी) के उपेक्षा मूलक व्यवहार अंग्रेजों की छद्म–नीति, आगामीर के प्रभाव तथा शाही षड्यन्त्रों के कारण उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व निष्प्रभावी हो गया है। तत्कालीन विषम परिस्थितियों के सम्मुख उसकी निर्बलता तथा कुण्ठित मनोवृत्तियाँ उसे पराश्रित बनाकर अन्धकारमय भविष्य के गर्त में फेंक देती हैं। उसकी कमजोरियों का लाभ उठाकर विश्वास घाती वजीर आगामीर, अत्यन्त शक्तिशाली बन जाता है। आगामीर को अंग्रेजों से संबल मिलता था, जिसके कारण बादशाह उसका विरोध नहीं कर पाता था। आत्मदग्धहृदय की मूल पीड़ा को सुलखिया के सम्मुख उड़ेलता हुआ गाजीउद्दीन सम्बल पाने की चेष्टा करता है–''मन को दोस्त बनाना ही पड़ता है। दिल को दिल से राहत है। वरना इन्सान बेसहारा हो जाये। सुलखिया, तू मेरा मन बन सकेगी। क्या तू भूल सकेगी कि तू मेरी बाँदी नहीं, मेरा मन है।''[254]

नवाब की आस्था मात्र ईश्वर के प्रति शेष रह गयी है–''या खुदा रहम। या परवर दिगार अंधेरे की इन चक्करदार गलियों से निजात दिला दे, सीधी राह दिखा। अन्धे की लाठी बन। दुनियाँ के सबसे ज्यादह दुखी लाचार इन्सान आलम पनाह गाजीउद्दीन हैदर को पनाह दे।''[255] बादशाह बेगम और वजीर आगामीर के संघर्ष में नवाब शतरंज का मोहरा बन जाता है–''मैं बादशाह का मन नहीं चाहता इन्सान का मन चाहता हूँ। मैं दल–दल से उभर कर सीधी जमीन पर पाँव रखना चाहता हूँ।''[256] इन पंक्तियों में अथाह पीड़ा, आत्मा की छटपटाहट और आत्म विवशता है। लेखकीय सहानुभूति के साथ ही उसे पाठकीय सहानुभूति भी प्राप्त होती है। गाजीउद्दीन के निश्छल चरित्र में बड़ी निरीहता के दर्शन होते हैं।

नसीरूद्दीन हैदर– पिता की अनुकृति होने के कारण नसीरूद्दीन हैदर में पिता की दुर्बलताएँ पुंजीभूत हो गयी हैं। वह स्वयं कहता है–''हम महज आशिक–मासूकों की लड़ाई लड़ना जानते हैं। इसमें वह ताव कहाँ है ? वो तो हमारे खानदान में शुजाउद्दौला और वजीर अली के पास ही रहा।''[257] उसके चरित्र में परस्पर विरोधी तत्वों का समाहार मिलता है। अन्तःपुर के राजनीतिक षड्यन्त्र का शिकार बनकर वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता है। बादशाह बेगम के दाँव–पेंच और पिता गाजीउद्दीन की शोषण–नीति के दो पाटों के बीच में पिसता हुआ द्विविधा ग्रस्त नसीरूद्दीन अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। विषम परिस्थितियों से गुजरता हुआ नसीरूद्दीन का चरित्र एक ऐतिहासिक मोड़ पर आकर दुलारी का साहचर्य प्राप्त करता है। किन्तु, यह साहचर्य उसकी परिस्थितियों के अनुरूप बनकर जीवन को अत्यधिक निष्क्रिय एवं विलासी बनाने में सहायक सिद्ध हुआ। नसीरूद्दीन के आत्मनिर्भर बनने की कोशिश निरन्तर विफल होती रही। संघर्ष के प्रति भयभीत नसीरूद्दीन की आत्म सजगता एवं स्वाभिमान कुंठित हो जाते हैं। वह अपनी दुर्बलताओं के लिए विक्षुब्ध रहता है। दुलारी से वार्तालाप के समय उसका मनस्ताप फूट पड़ता है–''हम सचमुच बादशाह होना चाहते हैं। ''जमाना हुजूर के कदमों में सिर

झुकाता है, बादशाह और किसे कहते है ?'' बहलाओ मत जानेमन। हम अंग्रेजों की शतरंज के बादशाह हैं। हम उसकी चाल पर चलते हैं। मुझे यह खलता है, बेहद खलता है।''[258] कुद्सिया की मृत्यु के पश्चात् नसीरूद्दीन विक्षिप्त–सा रहने लगता है। उसका मानसिक संतुलन सदा–सर्वदा के लिए बिगड़ जाता है। अपने बीते हुए जीवन पर दृष्टिपात करते हुए कहता है–''बादशाह के घर पैदा होकर भी लावारिस रहा, एक सल्तनत के तख्तोताज का मालिक होकर भी फिरंगियों का गुलाम रहा। मेरा कोई अपना न हुआ और मैं किसी का न हो सका।''[259] टूटन और निराशा के साथ ही उसमें आक्रोश भी है।''..... लेकिन अब जमाने की कोई भी मलिका नहीं रहेगी, सिर्फ मालिक रहेगा। मैं तुम सबको खाक में मिला दूँगा।''[260] ''बादशाह समाज का आदर्श पुरूष था, ईश्वर का प्रतिनिधि था। बादशाह मनुष्य था, कमजोर, कमअकल, बेपनाह था।''[261]

विश्वास घात और विलासिता के वातावरण में जन्मे–पले नसीरूद्दीन में जब उचित–अनुचित का विवेक जागा तब उसे वस्तु–स्थिति का बोध हो गया। फिर भी, वह उससे उबर सकने में सफल नहीं हो सका। वस्तुतः नसीरूद्दीन का चरित्र हमें मुगलकालीन विलासी नवाबों की याद दिलाता है। वह पाठकीय सहानुभूति प्राप्त करने में सफल है। जीवन भर का अन्तर्द्वन्द्व ही नसीरूद्दीन के चरित्र का निर्याणक है।

मानवीय दुर्बलताओं से युक्त नवाब नसीरूद्दीन के संकट ग्रस्त व्यक्तित्व के उज्जवल पक्ष का परिचय हमें उस समय मिलता है जब वह कुलसुम को अपना संरक्षण प्रदान करना चाहता है।''..... नहीं, खुदा नहीं है, खुदा झूठ है, खुदा मर चुका है–खैर खुदा न सही, मैं हूँ ; मुझे कहीं से तसल्ली भले न मिले, मगर मैं तेरी जिन्दगी की तस्कीन बनूँगा बेटी।'' दूसरे क्षण आत्मबल के अभाव में उसका साहस खण्डित हो जाता है–''मैं जो कुछ कह रहा हूँ। झूठ कह रहा हूँ। मुझमें किसी की हिफाजत करने की ताकत नहीं। मैं खुद अपनी हिफाजत नहीं कर सकता। यह शाही महल किसी की भी हिफाजत नहीं करते। ..... नहीं मैं तुझे यहाँ नहीं रखूँगा बेटी। ..... पर कहाँ रखूँ मै ? मुझे कोई भी ऐसा वशर नहीं दिखलाई देता जिसमें इन्सानियत की एक किरण हो, जिसके दिल में खुदा रहता हो। यहाँ तो हर शैतान ही का बोल बाला है। और अगर तू अपनी हिफाजत चाहती है तो शैतान के आगे घुटने टेक दे। ..... लोग अपने प्यारों को खुदा को सौंपते हैं। मैं तुझे शैतान को सौंपता हूँ बेटी ..... और अपने आपको भी।''[262]

आगामीर– आगामीर स्वार्थी, षड्यन्त्रकारी और परम महत्वाकांक्षी व्यक्ति है। लम्बा, चौड़ा, काला भुजंग, बाज की चोंच जैसी नाक वाला, रूखे मिजाज और कुशाग्र पैनी बुद्धि वाला यह व्यक्ति अवध का सर्वेसर्वा था। प्रजा उसके व्यवहार से पीड़ित रहती है। उसके मंत्रित्व काल में लूट और अपराधों में अभिवृद्धि होती। वह एक खानशामा से वजीर पद पर पहुँचा। गाजीउद्दीन हैदर से लेकर अंग्रेज अफसर तक उससे भयभीत रहते थे। उसकी स्वार्थपरता की नीति के

कारण अवध के नवाबों से लेकर साधारण प्रजाजन तक के हितों का हनन होता रहा। यद्यपि उसकी स्वार्थ लिप्सा एवं घृणित नीतियों के कारण अवध के जन–धन–बल की अपूरणीय क्षति हुई ; फिर भी, उसने अवध में अंग्रेजी राज्य की स्थापना में कोई योगदान नहीं किया। बहुत सारे दुर्गुणों के बावजूद आगामीर का चरित्र उज्जवल एवं सशक्त है।

हकीम मेंहदी– हकीम मेंहदी का चरित्र अवध के इतिहास पर कलंक का टीका है। शासन–संचालन की अद्‌भुत क्षमता, व्यवहार–कुशलता, कार्य क्षमता, दूरदर्शिता, लोकप्रियता आदि सर्वगुण सम्पन्न होने के बावजूद वह अंग्रेजों का दलाल बनकर देशद्रोही होने का परिचय देता है। प्रजा उसके अत्याचारों से आतंकित होकर इधर–उधर पलायित होने लगती है। न जाने कितनी स्त्रियों ने गोमती, सरयू, गंगा और यमुना में डूबकर मृत्यु का वरण कर लिया। धीरे–धीरे प्रजा में नवाबी शासन के प्रति असन्तोष चरम शिखर पर पहुँच गया और विद्रोह की ज्वाला धधकने लगी। अपने स्वार्थ के लिए सदैव देश और समाज के हित में छुरा भोंकने का काम किया। यहाँ तक कि अपने आश्रय दाता नसीरूद्‌दीन की हत्या करने में उसे संकोच नहीं हुआ।

आगामीर और हकीम मेंहदी अवध के नवाब गाजीउद्‌दीन हैदर तथा नसीरूद्‌दीन हैदर की शासनावधि में महत्वाकांक्षी एवं कूटनीतिज्ञ वजीर थे। इन वजीरों के प्रयत्न से जहाँ अवध की डाँवाडोल सामन्तीय व्यवस्था में स्थिरता आयी वहीं इनके कारण अवध की सल्तनत पतन के गर्त में जा गिरी। दोनों बुद्धिमान, प्रबन्ध कुशल एवं महत्वाकांक्षी हैं, किन्तु एक बिन्दु पर पहुँचकर दोनों की दिशाएँ भिन्न हो जाती हैं। आगामीर का चरित्र बहुत सारी बुराईयों के बावजूद राष्ट्रहित के मार्ग में बाधक नहीं बनता जबकि हकीम मेंहदी अपनी समस्त अच्छाईयों के साथ देश द्रोही सिद्ध होता है।

दिग्विजय ब्रह्मचारी– दिग्विजय ब्रह्मचारी, इस उपन्यास का एक आदर्श एवं अलौकिक चरित्र है। भीष्म–सा त्याग, कबीर की धर्मवादिता, गांधी का मानवतावाद, गीता का आदर्श, क्षत्रियत्व का तेज, प्रजा का शुभ चिन्तक, सन्यासी की विरक्त–भावना जैसे अलौकिक गुणों से निर्मित उसका क्रान्तिकारी अपराजेय चरित्र 'शतरंज के मोहरे' में नागर जी के सूक्ष्म मानवतावादी अन्तर्दृष्टि का प्रतिफलन है। वे विमाता की प्रसन्नता के लिए अपना अधिकार सौतेले भाई को सौंपकर एक विरागी–सा जीवन व्यतीत करने लगते हैं। अंग्रेज अफसर मिस्टर स्मिथ के द्वारा हरिजन बालिका भुलनी पर किये गये अत्याचार से क्षुब्ध होकर उनका क्षत्रियत्व जाग उठता है। वे अत्याचारी के विरुद्ध, जनता को संघर्ष करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं–''धरती को छुड़ाय सकत है रे ?–यू हमार आय रामजी की आय। औ जब तक हम ठाढ़ हयिं, सीना फुलाय कै चलो। अस निसाचरी अन्याय कोऊ क न सहा जाई।''[263] उनकी दृष्टि में ''विचार बड़ा होता है आदमी–बड़ा छोटा नहीं होता। उनके अनुसार पुन्यात्मा या निर्बल जीव की रक्षा करना बड़ा धर्म है।''[264] वे लाल कुँवर सिंह और राजा शिवनन्दन की रक्षा करते हैं। किन्तु, प्रतिदान में विश्वासघात पाकर उनकी आस्था डगमगा उठती है। वे विक्षिप्त होकर चीख पड़ते हैं–''ऐसा क्यों हुआ? पुण्य का फल पाप क्यों

?–विश्वास का फल विश्वासघात क्यो ?–हे सूर्य नारायण! हे बजरंग, तुम झूठे हो। ईश्वर नहीं है, प्रेम नहीं है, आस्था नहीं है–सब मिथ्या है, मिथ्या है।''[265]

ब्रह्मचारी जी प्रत्येक व्यक्ति के सुख–दुख में सहायक बनते हैं। मनुष्य रक्षा, जाति रक्षा से महान है। उनका चरित्र पुरुषार्थ एवं करुणा का अथाह सागर है। **श्री प्रकाश चन्द्र मिश्र के शब्दों में**–''दिग्विजय बह्मचारी के चरित्र में एक साधक जैसी तेजस्विता, एवं ब्राह्मण जैसी पवित्रता, सादगी,सरलता, शान्ति, क्षत्रिय जैसी वीरता तथा प्रचण्डता और ब्रह्मचारी होने के पश्चात् भी उनमेंएक पिता जैसी वत्सलता है।''[266]

नईम– नईम का चरित्र 'शतरंज के मोहरे' में अपनी सहजता और निष्कामता के कारण परम पवित्र है। उसके आदर्श व्यक्तित्व का संघटन ब्रह्मचारी की निष्काम धर्म साधना और भुलनी के सतीत्व एवं बलिदान के समन्वित तत्वों से होता है। प्रारम्भिक दिनों में जब वह दुलारी के प्रणय में उलझकर उसके साथ भाग जाने की योजना बनाता है। वह समाज में अपमानित होकर नहीं जीना चाहता। अतः उसने रुस्तम नगर का परित्याग कर नीलकोठी के मुनीम स्मिथ के यहाँ बावर्ची रूप में शरण ले ली। वहाँ उसकी भेंट ब्रह्मचारी, कुलसुम और भुलनी से होती है। यहीं से उसके चरित्र में ऐतिहासिक मोड़ आता है। दुलारी के द्वारा नाना प्रकार के प्रलोभन दिये जाने पर वह स्पष्ट वादी नीति अपनाता है। वह अत्यन्त सहज भाव से कहता है– ''उसकी जरूरत नहीं, मुझे यकीन है कि तुम एक दिन जरूर खुदा को याद करोगी और उस हालत में मैं जरूर तुम्हारी खिदमत में अंजाम दे सकूँगा, मगर आज नहीं। मुबारक हो तुम्हें यह ख्वाब, यह शानो–शौकत, ये बादशाही। तुम्हारी बड़ी इनायत होगी, अगर मुझे मेरी मड़ैया में भिजवा दोगी।''[267] कर्त्तव्य कर्म के प्रति आस्थावान नईम पुनः कहता है– ''मुझसे बढ़कर अमीर है कौन। शादी शुदा हूँ, बच्चा है, मशक्कत की रोटी खाता हूँ, अपने मालिक का नमक अदा करता हूँ और दीन दुखियों के मालिक की बन्दगी करता हूँ।''[268] वह सच्चाई एवं आत्मविश्वास से प्रेरित होकर परिस्थिति की प्रतिकूलता से संघर्ष करता है। जीवन की कुरूपताओं से जूझता हुआ नईम मानवीय मूल्यों के प्रति निष्ठावान् है।

रुस्तम अली– रुस्तम अली घुटन और पीड़ा में जीवन व्यतीत करने वाला पत्नी शासित चरित्र है। अपनी पत्नी दुलारी के प्रति समर्पित होकर भी उसे पग–पग पर विश्वास घात की दुर्वह पीड़ा झेलनी पड़ती है। वह पत्नी के द्वारा कैद करवा लिया जाता है। ब्रह्मचारी एवं उसके मध्य हुए वार्तालाप से यह विदित होता है कि संसार में वह अकेला दुखी व्यक्ति है, उसकी आस्था खण्डित हो चुकी है। वह कहता है– ''बाबा क्या खुदा है ? इन्साफ है। हक है। ये दुनियाँ क्या यूँ ही चलेगी ? कमजोर यूँ ही पिसते रहेंगे और शहजोर .....।''[269]

मातादीन– मातादीन का चरित्र मार्मिक और प्रेरक है। उसके चरित्र का उद्घाटन भुलनी–स्मिथ प्रसंग से होता है। उसकी मंगेतर भुलनी स्मिथ की वासना का शिकार होने पर आत्मग्लानि के कारण मृत्यु का वरण कर लेती है। भावी पत्नी की मृत्यु का बदला लेकर मातादीन भी मौत के

घाट उतर जाता है। उसका चरित्र अन्याय के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा देता है। कवि **बेनी** और **हजरत सूफी संत कौड़ा शाह** अपने व्यक्तित्व की सूक्ष्म रेखाओं से पाठकों को प्रभावित करने में सफल हैं।

एकदा नैमिषारण्ये

इस उपन्यास के कुछ पात्र पौराणिक हैं और कुछ प्रतीकात्मक हैं जिसमें 'भागवत पुराण' इन पात्रों का आधार है।

सोमाहुति– 'सोमाहुति' उपन्यास का नायक है, इसलिए सम्पूर्ण कथा सूत्रों की वह धुरी है– "सोमाहुति और कुछ नहीं केवल उद्देश्य है।"[270] जहाँ वह जाता है, वहाँ कथा का रथ चक्र भी उसी के साथ घूमता हुआ दृष्टिगत होता है। इतना ही नहीं, सभी पात्र उससे सम्बंधित होते ही गति शील हो उठते हैं। माँ बाशिष्ठी उन्हें अत्यधिक स्नेह करती हैं। ऋषि बाल्मीकि से उनकी बहुत छनती है। वे एक–दूसरे से मिलकर धन्य अनुभव करते हैं। सोमाहुति भार्गव अत्यन्त मेधावी हैं। इसलिए नैमिषारण्य में कई हजार ऋषियों को एकत्र करने में सफल ही नहीं अपितु उन महाविवेकी और ज्ञानी ऋषियों से भावी भारत के लिए अनेक सुख व्यवस्थाएँ दिलवाते हैं। वे भारत के लिए सार्वभौम साम्राज्य की कल्पना कर चन्द्रगुप्त और उसके पुत्र समुद्र गुप्त का साथ देकर आसेतु हिमालय राष्ट्र की कल्पना को साकार रूप देते हुए दिखलाई देते हैं। उन्होंने अन्यान्य मतों एवं वैचारिक स्थितियों में समन्वय किया। उनके लिए जितने पूज्य राम और कृष्ण हैं, उतने ही विष्णु, शिव, ऋषभ देव, महावीर और भगवान बुद्ध भी हैं। उनका जीवन संबंधी दृष्टिकोण उदार और समन्वयवादी है। वे उस काल के मंत्र दृष्टा ऋषि हैं। अपने पिता द्वारा दिए हुए उत्तर दायित्व को गणपति महाराज की सहायता से पूर्ण कर अपने पुत्र प्रचेता को नैमिष आश्रम का कुलपति प्रतिष्ठापित कर भावी समाज के लिए भागवती धर्म की प्रतिष्ठापना सहज में ही कर जाते है। पुत्र को नैमिष कुलपति बनाने के पश्चात् सोमाहुति देश भ्रमण के लिए निकल पड़ते है। जहाँ जाते हैं वहाँ के जन समाज में विष्णु, वासुदेव के प्रति भक्तिनिष्ठा जगाने के साथ ही वे उनके मनों में एक विशाल भारत का सपना भी संजोते जाते हैं। उन्होने भारत की प्रमुख सात नदियों और सात पुरियों को संयुक्त करके श्लोक रचे।"[271]

"लोक कल्याण के लिए शक्ति संगठन, स्वच्छ प्रशासन और सामाजिक अभ्युत्थान आवश्यक है।"[272] ऐसा सोमाहुति का दृढ़ विचार है क्योंकि ऐसे शान्तिमय वातावरण में ही सामाजिक जीवन के संबंध में गहराई से विचार किया जा सकता है।

सोमाहुति भार्गव, इज्या के पूज्य हैं। उस वन कन्या को वे समर्पण कर अपना लेते है। उन्हें प्राप्त कर प्रचेता जैसे अद्वितीय पुत्र को जन्म देकर उपन्यास के मध्य से इज्या अन्तर्धान हो जाती है किन्तु सोमाहुति उसकी स्मृति बहुत दिनों तक नहीं भुला सके। 'इज्या' के सहसा चले जाने के पश्चात् सोमाहुति अपनी लक्ष्य प्राप्ति में लगकर महायज्ञ का आयोंजन कर ही जाते है। शायद इसी कारण उपन्यास कार ने इज्या को सोमाहुति भार्गव के मार्ग से हटाया होगा।

''सोमाहुति भार्गव यद्यपि (देवा) नारद के सहपाठी हैं किन्तु, ज्ञान और संयम में उनसे दो हांथ आगे हैं। नारद अपनी घुमक्कड़ प्रकृति के कारण एक दिन अपने सम्पूर्ण संयम को खो बैठा। आठ सन्तानों के पिता होने के पश्चात् सोमाहुति से प्रबोधित किये जाते हैं। भारतचन्द की विक्षिप्तावस्था को दूर करने वाले सोमाहुति हैं, इसलिए वे उसके गुरु बन जाते हैं। सूत के वे अपने गुरु हैं। उपन्यासकार का यह ध्यान बराबर बना रहता है कि इतने आदर्शो की स्थापना वे जिस व्यक्ति में भर रहे है, वह कहीं देवता न बन जाए। इसलिए उन्होंने भार्गव को इज्या जैसी साध्वी, प्राण बल्लभा की आकस्मिक जल समाधि के अवसर पर अत्यधिक व्यथित और शोक संतप्त सागर में डूबते हुए भी दिखाया है। वे सम्पूर्ण उपन्यास में राजनीति और संस्कृति के रथ को समवेत हाँकने में सिद्ध हस्त रथवान है। उनका चरित्र इन्द्र धनुषी, सप्तवर्णी रंगों से रंजित मनोमुग्धकारी चरित्र है।''[273]

नारद– नारद उपन्यास के एक प्रमुख पात्र के नाते अपनी भूमिका निभाते है। उनके मन की प्रबल आकांक्षा है कि समग्र देश में राज्य समाप्त होकर एक सुदृढ़ साम्राज्य का निर्माण हो। इसके लिए वे गणपति की भाँति शान्ति के पुजारी नहीं है। उनका विश्वास है ऐसे परिवर्तनों के लिए आर्त्तप्रजा तथा आततायियों के मध्य जमकर द्वन्द्व हो क्योंकि ''द्वन्द्वात्मक क्रियाओं को संचालित किये बिना व्यक्ति को जो सिद्धि सम्पदा मिलती है वह उसकी दृष्टि में प्रायः अपना मूल्य खो देती है।''[274] नारद का यह विश्वास है कि ''रक्तहीन शासन परिवर्तनों में यद्यपि सामूहिक रक्तपात नहीं होता पर अनेक व्यक्तियों के बलिदानों के बिना वह सम्भव भी नहीं होता। नये को स्वीकार करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि पुराने के प्रति मनुष्य के मन में अतीव घृणा जाग उठे।''[275] नारद की इच्छा है– ''मैं चाहता हूँ स्वयं उनके मन में शासन परिवर्तन की इच्छा जागे, तभी उनका कर्म जाग सकेगा।''[276]

भारतीय परम्परा में नारद का चरित्र एक घुमक्कड़ व्यक्ति के रूप में मानव आक्रोश और तद् जनित परिणाम को तूल देकर क्रान्ति का बीजारोपण करता रहा है। उपन्यास कार ने भी नारद का ऐसा ही चरित्र अंकित किया है। नारद कभी जगत सेठ कौरोष से मिलकर मथुरा में राज्य परिवर्तन कराते हैं, तो कभी व्यंजनाशक्ति से वार्तालाप करके उसको भारत राष्ट्र के एकीकरण के लिए प्रेरणा देते हैं। नागशक्ति और भार शिव उनसे मार्ग दर्शन प्राप्त करते हैं। भार्गव ऋषि की माँ और प्रिया इज्या के वे अत्यधिक प्रिय पात्रों में से एक हैं, किन्तु जीवन के अन्तिम समय में वे एक रपटीली राह चलकर चरित्र से गिर जाते हैं। आठ संतानों के जन्मदाता होने के पश्चात् ही उनका भार्गव द्वारा उद्धार किया जाता है।

नारद संगीत प्रेमी हैं और उसी संगीत के सहारे वे सारे विश्व में भ्रमण कर मस्त रहते हैं। वे अनेक शास्त्रों के पण्डित हैं– ''इतिहास पुराणों के व्याख्याता और व्यवहार शास्त्र के मर्मज्ञ... .....संगीत और नृत्य के महापण्डित और निपुण कलाधर हैं।''[277]

भार्गव सोमाहुति, नारदजी के व्यक्तित्व से अभिभूत हैं। वे नारद को अन्तर्द्वन्द्व मुक्त होकर राष्ट्रीय जागरण में सक्रिय सहयोग देने के लिए उद्‌बोधित करते है– "हे भक्ति–ज्योति नारद जी। आपके प्रेरणा–प्रकाश में व्यास और बाल्मीकि की महान् परम्परा के विमल साधको ने अनेकबार सत्य पथ का दर्शन किया है। उस पर बढ़ने के लिए अग्रसर हुए है। कर्म के रणांगन में आपकी स्फूर्ति के अश्व जब बिजली से दौड़ते हैं तब असत्य और अकर्मरूपी दस्युओं को न तो आगे बढ़ने का मार्ग मिलता है और न पीछे हटने का ही। आपकी कुशल युक्तियों, चतुर नीतियों और गम्भीर किंवा व्यंग्य युक्त विष बुझे तर्को के बाण उन्हें वहीं का वहीं बीधकर डाल देते है। हे परानुग्रहाकांक्षी, कर्मयोगिन्, हे महाब्रह्मा। बिखरी हुई समिधासी राष्ट्र शक्ति को एकत्र करके अपनी कर्म वह्नि से उसे प्रज्जवलित करो।"[278] इन पंक्तियों में नारद के कुशल तार्किक, नीति–निपुण, कर्म योगी एवं प्रातिभ व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। उनके व्यक्तित्व में नारदीय परम्परा के गुण भी अनुस्यूत हैं। वे स्वयं कहते हैं– "ऋषि–परम्परा में सर्वाधिक माया नारदों ही को व्यापी हैं, मैं भी उससे मुक्त नहीं हूँ।"[279] फिर भी 'नारद' का लोक विख्यात स्वरूप उपन्यास में अपने समग्र रूप में अंकित नहीं हो सका है।

गणपति– महाराज गणपति एक ऐसे ही पात्र हैं जो आदि काल से लेकर आज तक भारतीय जन–जीवन के श्रद्धा केन्द्र बने हुए हैं। भारतीय जीवन के प्रत्येक मांगलिक कार्य के प्रारम्भ में जैसे–गिरा गुरु गणपति के पूजन से उनका समन्वयकारी महत्व प्रदर्शित होता है, वैसे ही नागर जी ने उन्हें भारतीय राजनीति में समन्वयकारी प्रवृत्ति का भी पुरष्कर्त्ता दिखलाने की चेष्टा की है। वे राजनीति निष्णात होते हुए भी युद्ध नहीं अपितु भारतीय राजनीति में शान्ति एवं एकता चाहते हैं। गणपति हृदयहीन राष्ट्र का निर्माण नहीं करना चाहते। वे इस हेतु भावापन्नता की भी आवश्यकता समझते हैं। उनका विश्वास है कि इन्द्रवादी ब्राह्मणों में मस्तिष्क तो अपूर्व था किन्तु, थे हृदयहीन । उन्होंने अपनी हृदय हीनता के कारण अपने द्वारा विजित नाना धर्म, संस्कृति, शील, मानव समाज को परान्मुख कर दिया। भक्तिवादी ब्राह्मण को अब उस मस्तिष्क में हृदय भी जोड़ना पड़ेगा। गणपति महाराज का महत्व सोमाहुति के इस कथन से होता है– "भागवत धर्मी जाति–भेद को नहीं मानते, इसके गोत्र देव गजपति, यज्ञों के अतिपूजित वक्र तुण्ड महाराष्ट्र के विनायक और नररूप नारायण अपने विघ्न हरता नागराज गणपति के प्रति भी अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिए भारतीय गणतन्त्र के प्रतीक रूप में मैं शिव पुत्रगणपति की बन्दना करता हूँ। इसकी पूजा सारा राष्ट्र करेगा। शैव, वैष्णव आदि सभी सर्वप्रथम इस राष्ट्र प्रतीक की वन्दना ही भविष्य में करेगें।"

भारतचन्द्र– प्रकाण्ड तान्त्रिक, योग–विद्या में निपुण भारत चन्द्र आत्म विश्वासहीन अकर्मा, विद्या दम्भी और पलायन वादी हैं। अध्ययन, तप, विरोध, मद्यपान और रति–भोग से समन्वित उग्र स्वरूप ने उन्हें संस्कार हीन नपुंसक बना दिया है। वे भूतकाल की महत्ता और वर्तमान की लघुता से पीड़ित होकर मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में विक्षिप्त हो गये हैं। नागर जी ने भारतचन्द्र को तत्कालीन

विखंडित भारत के प्रतीक–रूप में प्रस्तुत किया है– "जिसने धरती के सोते फोड़कर तुम्हें जल पिलाया, तुम्हारे घर–नगर बसाये, जिसने पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करके ताँबे, सोने और लोहे का विपुल वैभव तुम्हारे लिए परमात्मत्व को पहचान.....वह भारत अब परिस्थिति रूपी शत्रु से पराजित और खण्डित होकर विखरा पड़ा है। पूजा, तप और तेज की होती है। वह नष्ट हुआ तो सब नष्ट हो गया समझो।"[280]

"भारत चन्द्र सचमुच वर्तमान भारत वर्ष के समान ही है। महापण्डित, महामूढ़, साधक, असाधक, कामी, विक्षिप्त, कर्मठ, आलसी, एकता में अनेकता का विकृत प्रतीक है।"[281] आत्म विश्वास के खण्डित होने पर भारत का आत्मालोचन है–"कोल्हू का बैल हूँ। जलमय और जलहीन मैदान हूँ। .....खरी उमंग, खरा आत्म विश्वास कैसे पाऊँ ? यह भी छोड़ दूँ तो मेरा संसार फिर खो जायगा।"[282] ऊहापोह ग्रस्तता उनके व्यक्तित्व को कुण्ठित बना देती है। उनका आत्म कथ्य है– "मैं आस्थावान हूँ किन्तु आस्था से चिढ़ा भी हूँ।, सरल हूँ पर सरलता से चिढ़ गया हूँ उसी के कारण इतने कठिन पापड़ बेलें।"[283] सोमाहुति भार्गव, की प्रेरणा प्राप्त कर ज्ञान, भक्ति और कर्म के समन्वित मार्ग पर अग्रसर भारत चन्द्र में पुनः नव जीवन अंकुरित हुआ। वे चन्द्र गुप्त–शासन के प्रतिष्ठार्थ अपना सहयोग देते हैं। सोमाहुति के सांस्कृतिक महायज्ञ में भारत का भी विशेष योगदान है।

योगिराज नागेश्वर– भारशिवसम्राट के गुरु योगिराज नागेश्वर जी क्रोधी, झक्की, अहंकारी, धूर्त और महान् शिव भक्त हैं। उनके षड्यन्त्र को उजागर कर सरजू वाशिष्ठी कहती हैं– "धूर्त नागेश्वर ने श्रीराम की जन्म भूमि में निरीह इक्ष्वाकुओं का रक्त बहाने की घृणित योजना बनायी है। श्रीरामकोट के दिये चुराने का आरोप लगाकर वह बौद्ध विहारों को ध्वस्त करेगा।"[284] अन्त में अपनी असफलता देखकर नागेश्वर आत्मदाह कर लेता है।

योगिराज नागेश्वर के वाह्य व्यक्तित्व को नागर जी ने अत्यन्त सजीव एवं कलात्मक रेखाओं से चित्रित किया है। "कठिन योगाभ्यास से कसे हुए पुष्ट शरीर वाले, मझोले कद और गेहुएँ रंग के कौपीन धारी, अयोध्यापति महायोगिराज नागेश्वर का व्यक्तित्व निस्संदेह भव्य और आकर्षक था। उनके सिर की अर्द्ध श्वेत जटाएँ रूद्राक्ष और शंख की गुरियों से बँधी हुई थी। ललाट पर भस्म लिपटी थी। कण्ठ में रूद्राक्ष की छोटी–छोटी अनेक मालाएँ पड़ी थीं। उनकी काली–सफेद दाढ़ी, छाती पर लहरा रही थी। मटमैले रंग की पुतलियों में कठोर स्थिरता थी।[285]

उपन्यास के अन्य पुरुष पात्रों में **संत बुरबुज**, पुराण–कथा वाचक **महात्मा सौति उग्र श्रवा**, नैमिषारण्य के कुलाधिपति **शौनक**, सांस्कृतिक एकता के समर्थक जगत् **सेठ कौरोष** एवं **वसु मित्र** तथा भार्गव सोमाहुति के व्यास पीठ के उत्तराधिकारी, इज्या के विद्वान् एवं प्रतिभा सम्पन्न पुत्र **व्यास प्रचेता** आदि आते हैं।

'एकदा नैमिषारण्ये' में विभिन्न मनोवृत्तियों वाले पुरुष पात्रों की अनुपम सृष्टि हुई है। इनमें जगत् विख्यात ऐतिहासिक सम्राट हैं, तो सामान्य प्रजाजन भी हैं, कुशल कूटनीतिज्ञ सेनापति हैं,

तो युद्ध में लड़ने वाले बहादुर सैनिक भी हैं, वेद, पुराण, उपनिषद के उद्भट अनुसंधित्सु हैं तो तन्त्र–मन्त्र, ज्योतिष के ज्ञाता भी, उच्च कोटि के कथावाचक हैं, तो असाधारण विदान् भी, एकात्मक साधक हैं, तो भ्रमण शील ऋषि भी, कुशल राजनीतिज्ञ हैं तो सफल संगठन कर्त्ता भी। इसी प्रकार शत्रु हैं तो मित्र, कट्टर शिवोपासक हैं तो वैष्णव धर्मी साधक, सांस्कृतिक एक्य के समर्थक हैं, तो विद्रोही और दार्शनिक चिन्तक हैं, तो श्रेष्ठ धर्म शास्त्रज्ञ भी हैं। वस्तुतः इस उपन्यास के श्रेष्ठ पात्र नागर जी के गंभीर चिन्तन–मनन एवं मानवतावादी अन्तर्दृष्टि के प्रतिफल हैं।

सातघूँघट वाला मुखड़ा

नागर जी के अनुसार यह उपन्यास "इतिहास नहीं, ऐतिहासिक चरित्र प्रधान उपन्यास है।" अतः इसके पात्र भी ऐतिहासिक ही हैं। इनमें मुगल सम्राट शाह आलम के असक्त होने के कारण अंग्रेजों, नवाब मीर कासिम और सुजाउद्दौला के आपसी संघर्ष चल रहे थे। मीर कासिम की ओर से लड़ने वाले फ्रांसीसी सैनिक वाल्टर रेन हार्ड ने अंग्रेजों को कड़ी शिकस्त दी और पटना में 148 सैनिक अफसरों की हत्या कर दी। अति महत्वाकांक्षी यही वाल्टर, **समरू** के नाम से प्रसिद्ध हुआ और बादशाह को प्रसन्न करके सरधना जागीर का मालिक बन गया। इस उपन्यास में मुख्य पुरुष पात्र नवाब समरू, बशीर खाँ, सेनापति टॉमस, लवसूल हैं।

नवाब समरू– स्वभावगत कमजोरियों के कारण नवाब समरू एक आत्म विवश और शंकालु चरित्र है। उसको वृद्धावस्था में जुआना बेगम जैसी सुन्दर और महत्वाकांक्षी पत्नी मिलती है। बेगम जुआना की महत्वाकांक्षा एवं उसके व्यवहार से क्षुब्ध एवं उद्विग्न नवाब, अपनी जिन्दगी से उदासीन होकर कहता है– "हिन्दोस्तान में मुझे नसीब ने सबकुछ दिया, मगर बीवियाँ–बीवियाँ न रहीं, बेटा कभी बाप का न बना और ये फौज और रियासत ताश के पत्तों–सी मेरे हाथ में रहते हुए भी पराये दाँव की जीत में शामिल हो गये। अट्ठावन बरस की जिन्दगी में योरोप से लेकर यहाँ तक की खाक छानने के बाद इस वाल्टर रेनहार्ड ने आखिर पाया क्या ? टूटी चारपाई पर पैदा हुआ था और सोने के पलंग पर मरेगा, बस इतना ही तो हासिल किया।"[286] अपनी अट्ठावनवीं सालगिरह के शुभावसर पर गम में डूबा हुआ नवाब समरू कहता है– "लवसूल! मैं आज सुबह ही सिर्फ अपना गुजरा हुआ वक्त ही देख पा रहा हूँ। लगता है, आगे का वक्त मेरे लिए चुक गया है।"[287] उसी रात्रि में नवाब समरू आत्म हत्या कर लेता है। ये चरित्र हमें उन मुगल शासकों की याद दिलाता है जो जिन्दगी की लड़ाई में पराजित होकर आत्म हत्या करने को विवश थे।

लवसूल– उपन्यास का मुख्य पुरुष पात्र है लवसूल। वह निर्भय, आत्मविश्वासी, चतुर, ईमानदार, उत्तेजक किन्तु संयम की मर्यादा से बँधा हुआ युवक है। वह उपन्यास में एक पुच्छल तारे की भाँति चमकता, जगमगाता, अपने व्यक्तित्व से सबको प्रभावित करता हुआ, अन्ततः विनष्ट हो जाता

है। लवसूल अपने सुन्दर–आकर्षक व्यक्तित्व से बेगम समरू का विश्वास पात्र बन जाता है। उसके प्रति बेगम समरू के बढ़ते आकर्षण से क्षुब्ध होकर विद्रोही टॉमस उसका प्रतिद्वन्द्वी बन जाता है। टॉमस की ईर्ष्या ही लवसूल की मृत्यु का कारण बनती है। लवसूल अपने जीवन में आत्म सजग, निःस्वार्थी एवं अपने कर्तव्य पर अडिग है। वह टॉमस से कहता है– "मैं अपनी फर्ज–अदायगी ही कर रहा हूँ टॉमस साहब! जिस जहाज पर हम सबके नसीब आगे बढ़ रहे हैं वह जहाज ही डूब जाता है। उसे बचाना हमारा सबसे बड़ा फर्ज है।"[288] उसको सत्ता का लोभ रंच मात्र नहीं है। वह कहता है– "मेरे लिए सियासत के खेल से जिन्दगी का खेल बड़ा है। सियासत के खेल को जिन्दगी में इस तरह से संभालें कि जिन्दगी का खेल अपने–आप में एक फन बन जाए। जिन्दगी हुनर मंदों का खेल है और हुनर मन की खूबसूरती की किरनों से ढ़लता है।"[289] उपन्यास की प्रमुख घटनाएँ और परिस्थितियाँ लवसूल के साथ–साथ उभरती हैं। और उसके साथ समाप्त भी हो जाती हैं। दिल्ली के युद्ध में हारी हुई बाजी जीतने का श्रेय लवसूल को ही मिलता है। टॉमस का प्रेम, लोक–व्यवहार से बँधकर निष्प्राण हो जाता है जबकि लवसूल का प्रेम निःस्वार्थ भावना से युक्त है।

बशीर खाँ– बशीर खाँ उपन्यास का मात्र आरम्भ कर्त्ता और सम्पन्न कर्त्ता बनकर रह गया है। बीच–बीच में वह एक उपदेशक, कूट नीतिज्ञ के रूप में बेगम समरू को सुझाव देता रहता है। वह भूतपूर्व दिलाराम और वर्तमान बेगम समरू का पहला आशिक है। किन्तु, अपने प्यार को वह मात्र दस हजार अशर्फियों के लिए बेच देता है। दिलाराम को समरू बेगम बनाने का श्रेय बशीर खाँ को है। अप्रत्यक्ष रूप से वह उपन्यास की घटनाओं का सृजन करते हुए क्रियाशील रहता है।

मानस का हंस

तुलसीदास– तुलसी उपन्यास के नायक हैं। वह अपने जीवन काल के अन्तिम वर्ष में आत्मालोचन कर अपने मानस के हंस द्वारा अपने जीवन के उन अनुभव मुक्ताओं का चयन करते हैं, जो न केवल उनके जीवन का मेरुदण्ड हैं अपितु उपन्यास के अन्य पात्रों तथा पाठकों के लिए भी संघर्षमय जीवन की एक झांकी प्रस्तुत करते हैं। यह जीवन संघर्ष केवल संघर्ष के लिए नहीं है। इस संघर्ष के परिणाम स्वरूप प्राप्त भगवत् भक्ति तथा आत्म सन्तोष की भावना का चित्रांकन भी है। प्रारम्भ में तुलसीदास का अन्तर अनेक झंझावातों से घिरा है और इसका साथ देता हुआ प्रकृति ताण्डव एक विशेष वातावरण की सृष्टि करता है। तुलसी बाबा की पत्नी मृत्यु शैय्या पर पड़ी अपने प्राणाधार की राह देख रही है। वचनानुसार समय पर पहुँच कर अपनी अर्द्धांगिनी की अन्तिम इच्छा पूर्ण करते हैं। नब्बे वर्षीय महाकवि तुलसीदास, सन्यासी तुलसी, आयु पर्यन्त माया मोह से संघर्ष करने वाले, महा सन्त तुलसी, अपनी प्रिया के अन्तिम दर्शन कर भावविह्वल हो जाते हैं। वे अनायास ही अपने आराध्य श्रीराम के चरण युगलों में आत्म प्रवंचना से पीड़ित हो पुकार उठते है– "हे प्रभु तुम्हारी यह माया ऐसी है कि जन्म भर जप–तप साधन करते, पचमरो तब भी इससे पार पाना उस समय तक कठिन है, जब तक कि तुम्हारी ही पूर्ण कृपा न हो।"[290]

तुलसी के संघर्षमय जीवन का प्रारम्भ भी संघर्षमय वातावरण में होता है। अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्मे बालक 'राम बोला' माता–पिता के लिए काल रूप सिद्ध होते हैं। पिता आत्माराम, मुनिया दासी से कहते हैं कि इस अभागे को मेरी आँखों से दूर कर दों और मुनिया कहारिन उन्हें नदी पार अपनी भिक्षुणी सास के घर छोड़ जाती है। यह बात तुलसी के इस पद से पुष्ट होती है–

तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यों मातु पिता हूँ।
काहे को रोष दोष, काहि धौं, मेरे ही,
अभाग मो सौं सकुचन छुइ सब छाहूँ।

समाज से त्यक्त लोगों में पालित–पोषित तुलसी बाल्यावस्था से राम नाम का सहारा लेकर बचपन से किशोरावस्था में पहुँचते है। भिक्षुक राम बोला तरह–तरह से भिक्षा माँगने का प्रयास करता है और अपनी एक मात्र सहारा पार्वती अम्मा के प्रति असीम श्रृद्धा का परिचय देता है। आँधी–पानी से अपनी झोपड़ी और विशेषकर पार्वती अम्मा को बचाने का प्रयास करता है और असमर्थ होने पर 'हनुमान' जी से प्रार्थना करता है– "तब हम अब का करी ? हमारे पेट भुख है। हम नान्हे से तो हैं 'हनुमान' स्वामी ! अब हम थक गये भाई। अब हम अपनी पार्वती अम्मा के लगे जायके पौढ़ेंगे। दैऊ बरसै तो बरसा करै। हम का करैं 'बजरंग बली' ? तुम्हीं बताओं। तुम से बनै तो भाई, रामजी के दरवार में हमारी गुहार लगाये जाओं और न बनै तो तुमहुँ अपनी अम्मा के लगे जायके पौढ़ौ।"[291]

अध्याय छह के प्रारम्भ में बालक रामबोला का जो चित्रांकन किया गया है। वह बहुत ही सजीव बन पड़ा हैं। जिससे प्रभावित होकर **डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा था–** "तुमने तुलसी दास के बाल्य जीवन का ऐसा जानदार वर्णन किया है कि इच्छा होती है कि तुमसे कहूँ–एक उपन्यास ऐसा लिखों जिसमें सारे प्रमुख पात्र चौदह साल से कम उम्र वाले बच्चे ही हों।"[292]

नागर जी का यह प्रयास रहा है कि तुलसी का जीवन इति वृत्तात्मकता का रूप न ले, इसलिए लेखक तत्कालीन राजनैतिक अवस्था का भी चित्रण करना नहीं भूला है। 'तुलसी' परम संत थे परन्तु फिर भी विरोधियों की कमी नहीं थी। किन्तु उनकी राम भक्ति के समक्ष प्रकाण्ड तान्त्रिक पण्डित 'रविदत्त' भी परास्त हो जाता है। इस प्रसंग के चित्रण से लेखक भक्ति के समक्ष तन्त्र–मन्त्र की शक्ति को निष्क्रिय घोषित करता है। यहाँ लेखक ने चामत्कारिक रूप से तान्त्रिक रविदत्त को चौखट से लाँघते हुए गिरने का चित्र प्रस्तुत कर जहाँ एक ओर 'तुलसी' के राम भक्त होने का प्रमाण प्रस्तुत किया वहीं दूसरी ओर तुलसी के विनम्रता का भी। रविदत्त के गिरने पर 'तुलसी' विनम्रतापूर्वक कहते है– "अरे भईया ! 'बजरंगबली' के मारने के लिए अनेक दुष्ट पड़े है, बेचारे रविदत्त का तो यही एक दोष है कि वह निर्बुद्धि है। बेचारा अपने ही आवेश में गिर कर चुटीला हो गया। राम करे शीघ्र स्वस्थ्य हो जाये।"[293]

तुलसी उच्च कोटि के भावुक भक्त, अति विनम्र हैं। संसार को राममय जान कर दीन–दुखियों के दुख–दर्द को समझकर उन्हें राम भक्ति का संदेश देते हैं। श्रीराम के प्रति अनन्य भक्ति–भाव तुलसी को जीवन भर मोह माया से संघर्ष करते रहने पर ही प्राप्त हो सका। इस संघर्ष को सजीव रूप देने के लिए लेखक ने तुलसी का एक नारी के प्रति आकर्षण भाव भी दिखाया है, इसीलिए उपन्यास कार ने प्राक्कथन में स्पष्ट किया है ! ''उपन्यास में एक जगह मैंने नवयुवक तुलसी और काशी की एक वेश्या का असफल प्रेम चित्रित किया है। वह प्रसंग शायद किसी तुलसीभक्त को चिढ़ा सकता है, लेकिन ऐसा करना मेरा उद्देश्य नहीं है। 'तन तरफत तुम मिलन बिन' आदि दोहे पढ़े हैं, जिनके बारे में यह लिखा था कि वह दोहे तुलसीदास जी ने अपनी पत्नी के लिए लिखे थे। जन श्रुतियों के अनुसार 'गोस्वामी बाबा' उन्हें यह दोहे वाली चिट्ठी भला क्यों भेजने लगे ? ..... 'विनय पत्रिका' में वे अपनी 'मदनवाय' से खूब जूझे है। कलयुग के रूप में उन्हें पद और पैसे का लोभ तो सता ही नहीं सकता, सताया होगा काम वृत्ति ने। मुझे लगता है कि तुलसी ने 'काम' ही से जूझ–जूझ कर 'राम' बनाया हैं। 'मृग नयनी के नयन सर को अस लाग न जाहि' उक्ति भी गवाही देती है कि नौजवानी में वे किसी के तीरे नीम कस से बिंधे होगे।''[294] इसी प्रसंग को लेकर लेखक ने ग्यारह से पन्द्रह तक परिच्छेद रच डाले है। तुलसी एक प्रसिद्ध ज्योतिषी भी थे।

नागर जी ने 'तुलसी बाबा' का जीवन, चरित्रों, किवंदन्तियों तथा 'तुलसी' की स्वयं की रचनाओं में प्रस्तुत विचारों के आधार पर चित्रित किया है। जिस प्रकार 'तुलसी' ने अपने साहित्य में समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपनाया उसी प्रकार नागर जी ने भी 'तुलसी' के व्यक्तित्व का समन्वयात्मक पहलू रखने का प्रयास किया है। समग्र उपन्यास में लेखक तुलसी के जीवनवृत्त से घिरे विवादों से परे समन्वयात्मक और भावात्मक दृष्टि कोण को प्रश्रय देता है– ''प्रस्तुत उपन्यास में तुलसी के जीवनवृत्त और उनकी भावुकता, जो उत्तम काव्य सृजन के लिए परमावश्यक है– के समन्वय का सुन्दर प्रयास है। न तो इसमें इतिहास की शुष्क इतिवृत्तात्मकता है और न 'तुलसी' के काव्य की आलोचक की भाँति विवेचना ही है।''[295]

तुलसी ने 'रामचरित मानस' की रचना दोहो–चौपाइयों में की हैं। उपन्यास के अनुसार यह प्रेरणा 'जायसी' के 'पद्मावत' को सुनकर तुलसी को मिली है। ''दोहे–चौपाइयों में रची हुई वह दिव्य प्रेम कथा सूफी महात्मा के सुमधुर कण्ठ से सुनाई जाकर ऐसी मनोहर बन गयी थी कि स्वयं 'तुलसी' भी उस रस में बह गये और बड़ी देर तक सुनते रहे। वहाँ से लौटते हुए उनके मन में पहला विचार यही आया कि यदि 'रामायण' रचूँगा तो दोहे–चौपाइयों में ही। मुझे कथा तत्व मूल रूप से बाल्मीकि रचित 'रामायण' से ही ग्रहण करना चाहिए और अध्यात्म 'रामायण' का प्रतीक तत्व भी इसमें जोड़ना चाहिए।''[296] तुलसी को अपने जीवन में बड़ी विकट परिस्थितियों से जूझना पड़ा। कोठारी बनते ही विरोधियों के षड्यन्त्र से एक व्यभिचारी स्त्री द्वारा अपमानित किये जाते हैं। इससे पूर्व भी अविवाहित अवस्था में, राजापुर में कथा वार्ता करते समय दो कामुक

स्त्रियाँ उनकी तपस्या भंग करने का प्रयत्न करती हैं। सम्भवतः इसी कारण वे बेनी माधव से कहते हैं– ''एक बात और कहूँ। व्यभिचारिणी स्त्रियों के लिए मेरे मन में ऐसी घृणा बैठ गयी है कि मै प्रतिक्रिया वश स्त्री जाति से ही घृणा करने लगता हूँ।''[297] तुलसी ने समय–समय पर समाज में जगह–जगह राम चरित्र से संबंधित नुक्कड़ नाटकों का आयोजन भी किया। उनकी ख्याति कथावाचक के रूप में पहले ही फैल चुकी थी क्योकि उनका कथा कहने का ढंग अद्वितीय था– ''कहीं वे स्वयं रचित पंक्तियाँ सुमधुर कंठ से गाकर सुनाते तो कहीं संस्कृत ग्रन्थों के कतिपय अंश सुनाकर श्रोताओं को मंत्र–मुग्ध करते। उनके शब्दों से अमृत बरसता था। तुलसी भगत की कथावाचन–शैली ने घाट पर बैठने वाले भिक्षुक कथा–वाचकों को ही नहीं बल्कि अयोंध्या के जाने माने रामायणियों की साख भी गिरा दी।''[298] परिणाम स्वरूप तुलसी का व्यक्तित्व ईर्ष्यालु पण्डितों के लिए चुनौती बन गया और उन्होंने अनेक प्रकार से कष्ट देना प्रारम्भ किया। ऐसे लोगों ने तुलसी को समाप्त करने की योजना भी बनायी। परन्तु 'जाको राखे साइयां मार सके न कोय'। तुलसी ने समाज के श्रेष्ठ एवं चरित्रवान युवकों का संगठन करके समाज सेवा में तत्पर किया। स्थान–स्थान पर अखाड़ों का आयोजन किया और ऐसे युवकों को समाज की रक्षा हेतु कटिबद्ध बनाया।

तुलसी तो संत स्वभाव प्राप्त कर चुके थे और अति विनम्र हो गये थे किन्तु अहंकारी पण्डित वर्ग को तुलसी सह्य नहीं थे। अयोध्या में चोरों ने 'रामचरितमानस' की चोरी की योजना बनायी किन्तु 'हनुमान' के सेवक बन्दरों ने उनकी रक्षा की। तुलसी अयोध्या से परेशान होकर काशी चले आये परन्तु भूतनाथ की नगरी में भी ऐसे लोगो की कमी नहीं थी। यहाँ भी उनकी कोठरी में आग लगा दी जाती है और यही अन्तः संघर्ष 'तुलसी' के काव्य में प्राप्त होता हैं। ''उनका जीवन मानो ठीक चिलबिलाती, दुपहरिया के समान तप्त लपटों से युक्त है।''[299] तुलसी सर्वजन प्रिय थे– ''अयोध्या में एक नया स्वर आया है।''

वस्तुतः तुलसी सम्पूर्ण समाज को राममय बना देना चाहते थे– ''मैं व्यक्ति के भीतर वाली सगुण–निगुर्ण खण्डित आस्था को दशरथ नन्दन राम की भक्ति से जोड़ककर फिर खड़ा कर देना चाहता हूँ। पूरे समाज के साथ राममय होना चाहता हूँ।''[300]

तुलसी का दृष्टिकोण रचनात्मक था। उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं था। 'तुलसी' का चरित्र 'कबीर' के विरोध के रूप में नहीं उनके प्रशंसक रूप में चित्रित है। उपन्यास में स्थान–स्थान पर तुलसी, कबीर की काव्य पंक्तियाँ पढ़ते दृष्टिगोचर होते हैं। तुलसी स्वयं कहते है– ''मैं कबीर दास जी का बड़ा आदर करता हूँ। उन्होंने दूसरों की बुराइयों की तीव्र आलोचना करके अपने को संवारा परन्तु मैं अपनी और समाज की खरी आलोचना करके दोनों को एक निष्ठा से बाँधकर उठाना चाहता हूँ।''[301] तुलसी ने 'रामचरित मानस' में 'ढोल गवाँर शूद्र पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी' भले ही लिखा हो किन्तु यहाँ बाबा ब्रह्म हत्या के पातकी एक भिखारी को शरण देते हुए और उसके पैर धोकर भोजन कराते हुए चित्रित किये गये हैं और उसके

समर्थन में वे कहते हैं– ''मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने भी ब्राह्मण रावण को मारा था। असुर धर्मी अपना वर्ग खो देते हैं, पापी सदा दण्ड के योग्य है।''[302] अपने तर्क को स्पष्ट करते हुए वे कहते है कि यदि किसी कारण वश कोई मनुष्य पाप करने पर बाध्य है तो उसका अर्थ यह नहीं कि वह पापी है। मैं वर्णाश्रम धर्म को मानता हूँ परन्तु, प्रेम धर्म को वर्णाश्रम से भी ऊपर मानता हूँ।''[303]

उपन्यास में तुलसी का चरित्र एक समाज सेवी के रूप में भी चित्रित है। काशी में फैली महामारी में तुलसी ने अपने ही अखाड़ों से नौजवानों को इकट्ठा कर लोगों की सेवा की। काशी की दशों दिशाओं में उन्होंने संकटमोचन हनुमान की प्रतिमाएं स्थापित करवायीं। श्रद्धा और विश्वास ही मनुष्य में आस्था जागृत करने का आधार है और इसी के आधार पर उन्होंने राम भक्ति का उपदेश दिया। तुलसी का स्वास्थ्य उनके अन्तिम काल में बहुत अधिक बिगड़ गया था, 'कवितावली' में यह पंक्तियाँ इस बात का प्रमाण हैं–

पॉव पीर, पेट पीर, बाहुपीर, मुँह पीर, जर्जर सकल शरीर।

मेघा भगत, बेनी माधव, गंगाराम, बाल सखा राजा तथा टोडर सभी अपने–अपने स्थान पर सजीव पात्र हैं।

नागर जी के तुलसी के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अंश 'राम' और 'काम' का अन्तर्द्वन्द्व है, उन्हें जीवन पर्यन्त इसी संघर्ष को झेलना पड़ा। तुलसी का चरित्र सामान्य मनुष्य के संघर्षो के मध्य असामान्य व्यक्तित्व है। **डॉ० आनन्द प्रकाश त्रिपाठी के शब्दों में**– ''तुलसी दास विरक्त होने से पूर्व प्रेमीजीव थे यदि उनके प्रेमी रूप की तुरन्त हत्या करके उन्हे अलौकिकता के दायरे में बाँध दिया जाता तो शायद तुलसी न तुलसीदास होते और न राम मर्यादा पुरुषोत्तम राम कहलाते।''[304] नागर जी ने तुलसी के चरित्र को लौकिक और मानवीय चरित्र के रूप में ही प्रतिष्ठित किया है– ''तुलसी दास के पास अगर नारी सौन्दर्य से इतना अभिभूत होने की क्षमता न होती तो वे पुष्प वाटिका में 'राम' और 'सीता' के प्रथम दर्शन का ऐसा सजीव चित्रण नहीं कर सकते थे 'चकित विलोकति सकल दिशि जनु शिशु मृगी सभीत।' यह सौन्दर्य चित्र केवल कल्पना से नहीं पैदा किया जा सकता। इसके पीछे कवि का गम्भीर जीवनानुभव भी रहा है। बाबा ने स्वयं भी इस सौन्दर्य को अवश्य देखा होगा और जिया होगा। नागर जी ने इस रहस्य को समझा है और तुलसी को इसी समझ के आधार पर चित्रित किया है।''[305] 'मानस का हंस' के तुलसी 'काम' की राममयता को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं– ''मोहिनी का प्रेम क्या मुझे भी राम भक्ति का मार्ग समझा देगा। मोहिनी सुन्दर है गुणवती है। वेश्या होते हुए भी शीलवती है। वह बहुत मोहक है। अन्तस चेतना गूंजी, श्रीराम तेरी मोहिनी से भी कई गुना सुन्दर और मोहक हैं ××× क्या किसी स्त्री से प्रेम किये बिना 'राम' को पाया जा सकता है ? क्या स्त्री ही राम तक पहुँचने का साधन है ? चंचल मन परत दर परत में प्रश्नों से जूझने लगा।''[306]

तुलसी का गार्हस्थ्य जीवन माधुर्य पूर्ण रहा। उनके हृदय में रत्नावली के प्रति अमिट प्रेम और करुणा है। वैराग्य पूर्ण जीवन में भी तुलसी से रत्नावली का मिलन होता रहा और तुलसी ने रत्ना का दाह संस्कार भी सम्पन्न किया। 'मानस का हंस' (तुलसी) सम्पूर्ण जगत को 'सियाराममय' जानकर जाति–पाँति, ऊँच–नीच, वर्णाश्रम, हिन्दू–मुसलमान जैसी दुर्बलताओं को प्रत्येक स्तर पर नकारता है। यही कारण है कि ब्राह्मण, राजपूत, गोप, अहीर, गोंड, कहार, केवट, नाई, जुलाहा, छोटी कौमों के मुसलमान, तंबोली, छोटे–छोटे सौदागर सभी गोस्वामी जी को अपना मानते थे। जन्म भूमि के प्रकरण को लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य संघर्ष के वातावरण में भी वे कहते हैं– ''रामभद्र, आप साक्षी हैं, मैंने इस मस्जिद से अपने मन में कभी कोई दुर्भाव नहीं रखा। पूजा भूमि इस रूप में भी पूज्य है। अब भी वहाँ निर्गुण निराकार परब्रह्म के प्रति ही माथा झुकाया जाता है।''[307]

वस्तुतः नागर जी ने तुलसीदास के चरित्र के समस्त पक्षों को उजागर किया है। उनका बचपन, जन्मते ही माता–पिता द्वारा त्याग, अनेक कष्टों में एक भिखारिन द्वारा पालन–पोषण, अनाथावस्था में सुनी हुई राम कथा का प्रभाव, अध्ययन के समय मेघा भगत और युवक को मोह देने वाली मोहिनी से मोह उनके कथा वाचक और मधुर कंठ से युक्त पाण्डित्य आदि सभी पक्षों का चित्रण है। नागर जी के तुलसी ज्योतिषी भी हैं, सहनशील हैं, विनम्र और विवेक शील भी हैं। वे प्रारम्भ से ही 'बजरंग बली' के उपासक हैं। राम में अटूट श्रद्धा और विश्वास है। नागर जी ने तुलसी के ड्रामा प्रोड्यूसर रूप को भी चित्रित किया है। नागर के तुलसी ने सभी को अपना बना लिया था। तुलसी के गोस्वामी पद के लिए गोस्वामी शब्द के वास्तविक अर्थ को तुलसी के साथ जोड़ा है। गोस्वामी–इन्द्रियों को वश में करने वाले थे। **डा0 सुदेश बत्रा के शब्दों में**–''तुलसी के विराट, बहु आयामी व्यक्तित्व को किन्हीं चौखटों में बन्द कर पाना दुसाध्य है। उनके व्यक्तित्व में भक्ति और कर्म की वैज्ञानिक चेतना भरी हुई है। उन्होंने 'नाना पुराण निगमागम' का पारायण कर ब्रह्म और माया को तार्किक दृष्टि से परखा है।''[308]

मेघा भगत– सज्जन, सहृदय, कला मर्मज्ञ और राम के अनन्य भक्त हैं। भक्ति की तन्मयता में वे कभी मूर्छित हो जाते हैं और कभी करुणाविह्वल होकर अश्रुपात करने लगते हैं। तुलसी के प्रति उनके हृदय में अपार स्नेह एवं श्रद्धा है। वे तुलसी के प्रेरणा स्रोत भी हैं। कवि **कैलाश नाथ** भावुक कवि एवं तुलसी दास के अनन्य मित्र हैं। **राजा भगत** तुलसी की जन्म भूमि विक्रम पुर के अहीर और 'राम' के परम भक्त हैं। वे तुलसी को पग–पग पर साथ देने वाले शुभ चिन्तक और कर्म निष्ठ व्यक्ति हैं। **आत्माराम** तुलसी के पिता हैं। ज्योतिष शास्त्र में निष्णात हैं। **नरहरिदास** तुलसी के धर्म गुरु हैं और रामानुज सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत और कथा वाचक हैं। **आर्चाय शेष सनातन** काशी के प्रतिष्ठित विद्वान एवं तुलसी के आश्रय दाता तथा शिक्षागुरु हैं। **पंडित गंगाराम** उदार और सहृदय व्यक्ति हैं तथा तुलसी के सहपाठी भी हैं। वे तुलसी के संघर्ष मय जीवन में कर्मठ सहयोगी और सच्चे मित्र सिद्ध होते हैं। **संत बेनी माधव दास** तुलसी के शिष्य हैं जो

उनकी जीवनी के लेखक भी हैं। वह एक प्रेमी जीव हैं और तुलसी की ही भाँति उनका जीवन भी 'काम' और 'राम' के संघर्ष से युक्त रहा। इन्हीं को 'मूल गोसाई चरित्र' का लेखक माना गया है। **गंगेश्वर** अहंकारी, लोभी, ईर्ष्यालु, क्रोधी और अत्यन्त दुष्ट स्वभाव का व्यक्ति है। उसे ज्योतिष का ज्ञान भी है। वह रत्नावली का चचेरा भाई है। **पंडित बटेश्वर मिश्र** यद्यपि तुलसी के सहपाठी हैं तथापि तुलसी के विरुद्ध अनेक बार षड्यन्त्र रचते हैं। वह इस समय काशी के महान् तान्त्रिक हैं, भूत विद्या के साधक हैं, स्वभाव से निन्दक और ईर्ष्यालु हैं। **पंडित रविदत्त** भी काशी के अहंकारी, निर्बुद्धि और धर्माचारी तान्त्रिक हैं। यह भी तुलसी के प्रखर विरोधी हैं। **टोडरमल** तुलसी के शुभेच्छु हैं, परम सहृदय व्यक्ति है, काशी के व्यापारी हैं, **सूरदास** और **नन्ददास** दोनों कृष्ण भक्त कवि हैं। **रामू द्विवेदी** तुलसी के परम भक्त एवं सेवक हैं, इनका विवाह संस्कार तुलसी स्वयं सम्पन्न करते हैं।

नाच्यौं बहुत गोपाल

मोहन– मोहन जन्म का ठाकुर, जाति का मेहतर और कर्म का डाकू है। वह अपने व्यक्तित्व की चमक से पंडिताइन निर्गुनियाँ को अपने साथ भगा लाता है, और उसे भंगी का काम करने के लिए विवश करता है– "जब मेहतर से इश्क किया है तो मेहतरानी बनना भी सीखों, तभी मेरा तुम्हारा निबाह हो सकेगा।"[309] मोहना का मेहतर विजेता अहं सवर्ण–समाज पर थूकता है किन्तु, माशूक डेविड की हत्या करने के बाद जब वह मोहन डाकू के नाम से चर्चित हो जाता है, तब वह अपने गिरोह के साथियों से बचाव के लिए ठाकुर जाति का कवच पहन लेता है और मोहना ठाकुर के नाम से पूरे गिरोह का संचालन करता है। वह जहाँ डकैती डालता था वहाँ निर्मम बलात्कार की घटना भी घटती थी। उसकी बढ़ती हई बर्बरता और नृशंसात्मक कृत्यों के कारण सरकार द्वारा घोषित पाँच हजार का इनाम उसके सिर पर मौत बनकर मँडराने लगता है। वह डाकू जीवन की सच्चाई को उद्घाटित करता हुआ कहता है– "डाकुओं की उमर मीनार के कँगूरे पर टिकाया गया काँच का गेंद होती है। कब जाने हवा के झोंके से लुढ़ककर चकनाचूर हो जाय। मैं जिस बेदर्दी से लोगों को मारता हूँ, उसी बेदर्दी से एक दिन मारा भी जाऊँगा।"[310] मोहना उपेक्षित मेहतर समाज की पीड़ा को सच्चाई से स्पर्श करता है– "मेहतर साला तो करज में ही मरता हैगा। आज एक तो कल दूसरा महाजन नटई दबायेगा। मरना तो है ही।"[311] उसके हृदय में उच्च वर्ग के प्रति घृणा की एक ऐसी तह जम गयी है जो उसकी अहंता में लगातार चुभती रहती है। वह कहता है– "मेरे बाप साले हरामी की ब्याहता ठकुराइन तो कोई और होगी। उससे जो बच्चे पैदा हुए होंगे वह सब साले ठाकुर ही कहलाते होंगे। और मैं कमनसीब उसी हरामी की औलाद, उस साले की हबिस की शिकार अपनी अम्मा के पेट से पैदा होकर मेहतर कहलाता हूँ। मुझे नफरत है, इन सब ऊँची कौम वालों से। ..... मेरा बस चले तो एक दिन छावनी के सारे तोप खाने को इन शरीफ और बड़े आदमी कहलाने वाले जल्लादों की बस्तियों पर लगवाकर इन हिन्दू, मुसलमानों, क्रिस्चेनों को एक साथ धड़ाम–धड़ाम उड़वा दूँ।[312]

नागर जी ने मोहना के चरित्र को दो विरोधी रेखाओं से अंकित किया है। एक ओर वह सेठों, अंग्रेज अफसरों आदि को लूटता है, दूसरी ओर गरीबों, असहायों विशेषकर मेहतरों की आर्थिक सहायता करता है। वह गरीबों का मसीहा बनना चाहता है। वह निर्गुनियाँ और स्वामी वेद प्रकाशानन्द को आर्थिक सहायता देकर एक पाठशाला भी खुलवाता है। शहर में हुए हिन्दू–मुस्लिम–दंगे में हिन्दुओं की तरफदारी करके वह अत्याचारी मुसलमानों का दमन करता है। इस तरह वह सामाजिक कार्यों में हाथ बँटाता है।

मसीता राम– निर्गुनियाँ जब मोहना की मामी सुबरतिया के द्वारा ठुकरा दी जाती है, तब मसीता राम ही उसे अपना संरक्षण देता है। वह निर्गुनियाँ से कहता है– "इस बखत तो तेरा बाप हूँ। सरदी में पड़ी यहाँ अकड़ जायेगी। चलो, उठो, मेरे घर चलो।"[313] मसीता राम के हृदय में अपार दया, करुणा पुंजी भूत है। जब निर्गुनियाँ उसका घर छोड़कर जाना चाहती है, तो मसीता राम की आँखों में आँसू आ जाते हैं। वह दया की भीख माँगते हुए कहता है– "बरसों बाद तेरी बदौलत घर में चूल्हा जला। तू चली जायेगी तो इस बूढ़े को भला कौन इस तरह से गरम–गरम खिलायेगा।"[314] "तेरे बिना तो मैं जीते जी मर जाऊँगा। तू मुझसे वायदा कर कि मेरे जीते जी तू कहीं नहीं जायगी।"[315] अन्धेरे में ही जीने की जो आदत पड़ गयी है, यह मसीता राम की ही नहीं अपितु मेहतर–समाज के जीवन की विवशता और सच्चाई है। निर्गुनियाँ मसीता राम की मिट्टी से बनी झोपड़ी की मरम्मत करवाना चाहती है किन्तु मसीता राम दुःख व्यक्त करता हुआ कहता है– "तुम्हारी बात सही है, पर मुसीबत में अपने घर आकर पड़ी हुई अपनी ही कौम–बिरादरी, अपने ही खून और प्यार के नाते–रिश्ते की औरत से मसीता राम पैसा ले ले तो साला हलाल–खोर नहीं हराम खोर हो जायगा। राम जी के दरबार में जा के भला अल्ला मियाँ को मुँह कैसे दिखा सकूँगा? ये नई होगा, बहू।"[316] निर्गुनियाँ जब दरोगा बसन्त लाल के द्वारा बुलाये जाने पर, मसीताराम से अनुमति माँगती है, मसीता भयभीत होकर अनैतिक समाज को बुरी निगाह से देखता हुआ कहता है– "तुझे कुछ मालूम नहीं ना, तभी कहती है कि क्या बिगाड़ लेंगे। अरी खूब सूरत बूटी फुल लौंडों और औरतों को ये साले नाक पै करोली फारम का रूमाल झपट्टा मार के डालते हैंगे और साले दूर–दूर जाने कहाँ–कहाँ काबुल, ईरान, अरब में ले जाकर बेच देंगे हरामी। नहीं, मैं तुझे अकेली नहीं जाने दूँगा।"[317] समाज से भेंट–स्वरूप मिली जन्मजात गरीबी को गले से लगाये, ग्रामीण संस्कारों में फूला–फला, नैतिक मूल्यों के प्रति निष्ठालु, मसीताराम आजन्म अपने संघर्षों के प्रति ईमानदार बना रहता है।

स्वामी वेदप्रकशानन्द– स्वामी वेदप्रकाशानन्द जी आर्य समाज धर्म के प्रचारक और वेद मन्दिर के सर्वेसर्वा हैं। 'वे दलितों और दीन–दुखियों के आश्रय दाता है।' रिशी देवी और वेदवती देवी उनकी शरणागत चेलियाँ हैं। निर्गुनियाँ भी उनकी छत्रच्छाया में कुछ दिन रहती है। उनके चरित्र की पूरी झलक निर्गुनियाँ के इस कथन से मिलती है– "अकेले में हम तीनों इस्तिरियों की काया

पर ठाओं–कुठाओं उनकी हाथ फेरने की आदत हमें बुरी लग के भी बुरी नहीं लगती थी।''[318]

मास्टर बसन्त लाल– नारी शोषक के रूप में प्रसिद्ध है, मास्टर बसन्त लाल। निर्गुनियाँ को भी अपनी वासना का शिकार बना चुके है। निर्लज्ज मास्टर बसन्त लाल, दरोगा बनने के पश्चात् अपने अधूरे वासनात्मक खेल को पूरा करने के लिए, निर्गुनियाँ को पुनः अपने शिकंजे में जकड़ने की कोशिश करता है। एक दिन मोहना के द्वारा उन्हें अपने कुकृत्यों की बड़ी सजा मिलती है। वे नौकरी से भी हाथ धो बैठते हैं। दारोगा बसन्त लाल शासक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जो अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है और गरीबों, असहायों और पीड़ितों का शोषण करता है। यह नागर जी की युगानुरूप यथार्थ चरित्र–सृष्टि है। अन्य शेष पात्र भी अपने गुण–दोषों के साथ प्रस्तुत हुए हैं।

मास्टर जैक्सन– मास्टर जैक्सन यंग क्रिश्चियन लीग के संरक्षक एवं बैण्ड कम्पनी के मालिक हैं। वे समाज के दुखी, निराश, बेरोजगार नवयुवकों के आश्रय दाता हैं, किन्तु उन्हें क्रिश्चियन बना लेते हैं। अपनी चारित्रिक दुर्बलता के कारण जैक्सन पाठकीय घृणा का पात्र है।

माशूक हुसैन– माशूक हुसैन उर्फ डेविड नवाब की रखैल वेश्या–पुत्र है, जिसे वहीदा डाकू लूट के माल में शामिल करके उठा लाया है। डेविड अपनी स्त्रैण प्रकृति, सुन्दरता एवं कोमलता के कारण वहीदा और बाद में जैक्सन की काम वासना को तुष्ट करता है। वह जैक्सन के जीवन में अभूत पूर्व जोश का ज्वार बनकर आता है। जैक्सन मोहन से कहता है– ''आव टुम आपना वाइफ के साठ रहो, हाम अपना वाइफ का साठ मैजर जैफर्सन के घर जाना माँगटा।''[319] जैक्सन का डेविड के लिए 'वाइफ' शब्द का प्रयोग, क्रिश्चियन समाज की उच्श्रृंखलता को उजागर करता है। नागर जी ने इस चरित्र की खोज के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त किया है– ''मेहतर–वर्ग से अपनी अनेक भेटों के दौर में एक अस्सी साल के बुड्ढे से बातें करने पर मुझे मेहतरों के बैण्ड बजाने का काम सीखने के संबंध में जो बहुत कारण मिले थे, उनमें एक यह 'अमरद–परस्ती' का कारण भी खासा उभर कर मेरे सामने आया था। डाकू और बैण्ड मास्टर के रक्षित माशूक डेविड की कहानी मेरी गढ़ी हुई नहीं वरन् सुनी हुई है। इसी तरह सदर के एक महाजन मुनीम नन्दन द्वारा एक युवक मेहतर को अपनी हविशें पूरी करने के लिए मजबूर करने की कहानी भी मेरे सुने हुए खजाने से ही आयी है। बैण्ड का खेल शुरू में मेहतर बच्चों के लिए कहीं पर इस बेईज्जत का खेल भी था। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में इस कारण से मरद परस्ती का चित्रण हुआ है।''[320]

खंजन नयन

यह उपन्यास जन्मांध कवि 'सूरदास' के जीवन पर आधारित है। अतः 'सूरदास' का चरित्र ही इसमें प्रधान पात्र के रूप में अंकित है। इसके अतिरिक्त भागवत महाराज (सूरज के पिता), गोपाल, बासुदेव (सूरज के भाई), स्वामी नाद–ब्रह्मानन्द, भोलानाथ (भोले), पंडित सीताराम आचार्य, लाला हुलास राय, चन्दन सेठ पुद्दन पंडित, छिदम्मी (मल्लमारतण्ड), राम जियावन सिंह आदि

गौण सहायक पात्र हैं। महाप्रभु बल्लभाचार्य और कालू राम मल्लाह के चरित्र भी चित्रित हैं। तुलसीदास, मीराबाई, नन्ददास आदि अन्य कई पात्रों का भी संक्षिप्त उल्लेख मिलता है।

सूरदास– उपन्यास के नायक और जन्म से अंधे। सूरज, सूरस्वामी और सूरदास–यह नाम सूरदास के आध्यात्मिक, चारित्रिक विकास के घोतक हैं। सूर, अंधे सूरज के रूप में चित्रित किये गये हैं। उन्हें अपने अंधत्व पर, गोविन्द पर क्रोध आता है। वे गोविन्द कृष्ण को "किन तेरो नाम गोविन्द धर्‌यो।" कहकर कोसते हैं। सूर का चरित्र उपन्यासकार ने सूर के स्वरचित पदों के आधार पर चित्रित किया है। पिता द्वारा सूरा और माता द्वारा सूरज कहे जाने वाले सूर्यनाथ बाद में सूर स्वामी, भगत और बाबा कहे जाते हैं। सूरज को एक सन्यासीगुरु की कृपा से कुछ मीन मेख बिचारना भी आता है। पंडित सीताराम के साहचर्य में यात्रा काल में ही नया ज्ञान प्रकाश प्राप्त हो गया था। सूरज को अपने अंधे होने का बहुत दुःख है। वह प्रभु को देखने की लालसा भी रखता है और मृत्यु का भय भी। सूर का अंधत्व उन्हें सदैव धिक्कारता रहता है। कभी वह पार्वती माँ से शिवजी से अपनी सिपारस करने के लिए कहता है कि वे उनसे कहें कि– "हे स्वामी नाथ ये अपना तीसरा नेत्र तुम सूरज को दे दो। एक ही आँख से काम चला लेगा बेचारा।"[321] और फिर भगवान को उलाहना भरे स्वर में खरी खोटी सुनाने लगता है– "अरे ये भगवान भी सब एक ही थैले के चट्टे–बट्टे हैं। 'अन्धा बाँटे रेवड़ी अपने आपको दे'। शिवजी असुरों को ही वरदान देते हैं, चाहे रावण हो चाहे भस्मासुर चाहे बाणासुर। इन्हीं सबको वरदान देते हैं। फिर वही दुष्ट इनको सताते हैं। ऐसे ही राम, कृष्ण, विष्णु भगवान बस अपनों का ही भला करना जानते हैं। सुदामा दरिद्री था, उसे इसलिए धन कुबेर बना दिया कि वह मित्र था, साथ पढ़ा था। भरी सभा में चीर बढ़ाकर द्रोपदी की लाज बचायी। अपनी बुआ की पुत्र–वधू की लाज बचाने गये तो कौन बड़ा काम किया। तुरक, पठान आये दिन न जाने कितनी बेचारी अबलाओं की लाज लूटते हैं उन्हें बचाने तो नहीं आते, फिर भला सूरज को आँखें देने क्यों आयेंगे।"[322] सूरज ने आठ–नौ वर्ष की आयु में ही दो चार कस्बों तक अपनी चर्चा फैला ली थी उसके–"स्वर में मोहिनी है जो सुनता है वह उसमें जादू सा बँध जाता है।"[323] सूरज में स्वर का जादू तो है ही शरीर से भी– "लम्बा, दुर्बल, गोरा, नाकलम्बी और सुतवाँ, उभरी हुई हठीली ढोढ़ी, उन्नत कपाल, लहराती हुई घुँघराली लटे जटाओं सी झूल रही हैं। हल्की–हल्की दाढ़ी–मूँछें भी हैं, कान बड़े हैं ××× बड़ी–बड़ी आँखें हैं मगर बेजान।"[324]

यात्रा के समय सूरज जब नाव पर बैठता है, तो नाव खेने वाली एक लड़की कंतो से उसका परिचय होता हैं। सूरज कंतो से इतना धुल–मिल जाता है कि वह उसके प्रति आकर्षित हो जाता है। नागर जी के 'तुलसी' की ही भाँति 'सूर' को भी अपने जीवन में अनेक षड्यंत्रों का सामना करना पड़ा। जिस प्रकार उनके तुलसी मोहिनी, रामकली और रत्नावली के प्रति कामाभि भूत रहे, वैसे ही सूर भी नौ वर्ष की अवस्था में घर त्यागने के पश्चात् अट्ठारह वर्ष की आयु तक

विभिन्न कामिनियों के प्रेम जाल में फँसते अवश्य रहे किन्तु, उन्होंने अपने चरित्र को नहीं खोया। वैभव सम्पन्न दिनों में एक दासी सुनैना ने सूर स्वामी की उठती–भड़कती जवानी को अपने वश में कर लिया था, किन्तु एक रात जब सूर स्वामी ने उसे अपना कौमार्य सौंपने का निश्चय कर लिया था, तभी उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें सचेत किया– ''अरे मूढ़, तेरी बाहर की तो फूटी ही हुई हैं, अब क्या भीतर की भी फोडेगा। यह नटिनी आज तेरे सामने नाचती है, कल से तुझे नचा मारेगी।''[325] सूर स्वामी का कौमार्य सुरक्षित बच गया। कंतो के सम्पर्क में आने से एक बार फिर उन्हें 'मुर्दे सी सोई सुनैना उनके दिल में जाग जाती है'। सूर की बेकली बढ़ जाती है और ''सूरज मन गरम रेत पर पड़ी मछली सा बड़ी देर तक तड़पता रहा।''[326]

'सूर', कंतो के यह कहने पर कि दाऊ ने कहीं है 'कल हमारे यहां आओं'। सूर सबेरे आने का बचन देते हैं और कंतो उन्हें लेने के लिए आती है। कंतो की मीठी आवाज और पंचम स्वर सूर स्वामी का कालेजा काट ले गई। यहाँ फिर सूर स्वामी का 'स्याम मन' सोंचने लगा– ''वह ताल किनारे से कसम खाके चला था। नहीं–नहीं सूरज अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ है। सूर स्वामी की स्थिति कुछ विचित्र प्रकार की होती है और उनकी इस स्थिति ने उन्हें सोंचने के लिए विवश कर दिया– ''हेराम! हे हरि! मृत्यु मुझे समेट क्यों नहीं लेती, अब सहा नहीं जाता। आयुष्य के यह अठारह वर्ष बीत गये पर हुआ क्या न आँखें मिली न तुम मिले, न जीवन का कोई और सुख ही पा सका।''[327] सूर स्वामी आँखें न मिलने के कारण बहुत दुखी रहते हैं। किसी क्षण भगवान पर से उनका भरोसा उठता है और कभी भगवान की महिमा का स्मरण कर उनका विश्वास आश्रय पा लेता है– ''भगवान जब अपने भक्तों की सच्ची भक्ति देख लेते हैं, तो असम्भव भी सम्भव हो जाता है।''[328] और वह निश्चय करते हैं कि उन्हें नयन–सुख मिल जाय, स्याम–सुख मिल जाय, औरत मिले या न मिले क्योंकि 'काम–सुख' से 'नयन–सुख' उत्तम है। रात भर फिर उन्हें मन्मथ मथता रहा। कंतो के आने पर सूरज मन की आध्यात्मिक दार्शनिकता उसका काम दर्शन बनने लगी और वे फिर स्याम को भूल गये। उनका शरीर हरकत करने के लिए तत्पर हो गया, किन्तु, तुरन्त ही अर्थ बोध हुआ और कंतो के स्तन को रसवत् हाथों से मुलामियत के साथ ढ़केलकर परे सरका दिया। सूरज कंतो के साथ उसकी बस्ती के लिए चल पड़ते हैं और सूर के साथ अनुराग और विराग जहाँ एक बार पुनः 'काम' ने अपना तीर चलाया किन्तु सूर इस बार भी बिना कंतो के सहारे ही चल पड़े। नाव बढ़ाते हुए भी नारी काया ने मनमानी छेड़ की। गन्ध की वितृष्णा देह की तृष्णा के आगे मन्द पड़ गयी।''[329] सूरज फिर दृढ़ हो जाते है और कहने लगते हैं– 'स्याम सखा तू ही है मेरो प्रीतम तोको नाय भूलोंगो नाय भूलोंगों। अन्तर्द्वन्द्व झेलते हुए मल्लाहों की बस्ती 'हंसा' पहुँचते हैं। लोगों ने फिर उन्हें आँखों में लिया। केशव जी के दर्शनार्थ जाते हुए फिर सूर का अन्तर्द्वन्द्व मचलने लगता है किन्तु ये तटस्थ रहते है और सोंचते हैं– ''यह युवती आवें की आग की तरह जो कल से उसके भीतर ही भीतर चाहत के अंगारे सुलगा रही है, भले ही उसमें देवदारु की आग हो जो सुलगने के साथ महकती भी है परन्तु सूरज चन्दन की

शीतल सुगन्धयुक्त अपने हृदय की हवन कुन्डी लेकर स्याम सखा के द्वारे पहुँचेगा ××× वह केवल स्याम नाम रटेगा।

सूर स्वमी का मन अब एक निश्चय पर सध गया है और वह कंतो को नरक का द्वार समझने लगता है, किन्तु राधा रानी का स्मरण कर उनका विरोध नारी से नहीं वरन् उसके काम वासना का माध्यम होने से है। फिर वे कामाग्नि पर अपना स्याम मन पकाने लगते हैं। कंतो को लेकर सूर स्वामी की अच्छी खासी पिटाई भी होती है। सूरस्वामी श्री कृष्ण के अनन्य भक्त तो थे ही किन्तु वे राम को भी उसी दृष्टि से देखते थे। वे शकुन विद्या के जानकार थे, अच्छे ज्योतिषी थे, कई सेठों को बतायी हुई उनकी भविष्यवाणियाँ सच सिद्ध हुईं। वाराणसी में बख्शी जी की छिपी हुई करतूत अपने ज्योतिष विद्या के सहारे ही बताई, जिससे वास्तविकता ज्ञात होने पर उसे दण्डित किया गया। सूर स्वामी हृदय से बड़े ही उदार हैं, क्रोधित होने पर भी उन्होने बख्शी को बक्श देने के लिए निवेदन किया– "दया निधान मेरे कारण इसके प्राण न लिये जाँय।"[330] सूर स्वामी ने अब पर्याप्त आध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त कर लिया है। भयानक भूकम्प में भी मऊ घाट में कीर्तन करते हुए रुनकता में रहकर वे 'हरि–हरि–हरि सुमिरन करौ' गाते रहे और वहाँ की बस्ती पर भूकम्प का कोई प्रभाव न पड़ा। अतः सूर स्वामी अब देवता की तरह से पुजने लगे थे। आध्यात्मिक उत्कर्ष पर पहुँचने पर भी अभी सत्य स्वरूप निर्गुण का ध्यान न लगा पाते थे। अब उन्होने त्रिकुटी में ध्यान जमाना आरम्भ कर दिया था। अब उन्हें ध्यान तो मिलने लगा परन्तु अपने ध्यान विग्रह को लेकर भी अभी अपनी ध्येय विषयक सम्पूर्णता को प्राप्त नहीं कर पाये।

सूर प्रज्ञा चक्षु थे, सत्य भाषी थे। युवक तपस्वी को अपनी और कंतो का प्रसंग पूरी सत्यता से बतलाते हैं कि अब मैं अपने को स्याम सखा की एक गोपी मानता हूँ– "एक देवी मेरे पास सकाम प्रेम की इच्छा से आयी थी किन्तु मेरी दृढ़ता देखकर उसका प्रेम तो दृढ़ हुआ पर सकामता निष्काम हो गई। अपने मन प्राणों में मैं उस स्वर्गीया देवी के मन प्राण समोने लगा..... ..... अरे बाबा स्त्री भाव में दावाग्नि, बड़वाग्नि संयुक्त जो प्रचन्ड कामाग्नि प्रज्जवलित होती है, उसे सहन करना मेरे वश की बात न थी ×××मेरा सहज व्यावहारिक संयम ही मेरे लिए अमिट कारगर है। अपनी बात की लाज स्वभाव से मैं स्वयं ही रखूँगा। अपने से स्वयं अपने को आँखें मिलने लायक रखना चाहिए।"[331] अब सूर स्वामी पके खेत बन गये थे और आत्म निवेदन की पात्रता प्राप्त कर चुके थे। महाप्रभु बल्लाभाचार्य से दीक्षा प्राप्त कर सूर स्वामी सूरदास बन गये।

उपन्यास कार ने सूर के चरित्र में कई विशेषताओं को चित्रित किया है। जिनमें उनका शकुन विद्या विशारद और परम प्रकाण्ड ज्योतिषविद रूप पूरे उपन्यास में बिखरा हुआ है। कंतो चौबे जी को उनका प्रथम परिचय देती हुई कहती है–"सामी जी हैं। हमाये मामा के घर आये हते, वहीं से इन्हें केशोराय के दर्शन कराइवे कूँ याँ लायी हूँ। बड़ो चमत्कार है महराज को। सब भूतः भविष्य तो ऐसो बिचारे हैं कि चन्दन मल सेठ की सोना–चाँदी और मेरे कालू दौवा की नाव

बचाय लीनी याने।'' इसके साथ ही चौबे जी के प्रश्न का समाधान भी सूरज ज्योतिष द्वारा तुरन्त कर देते हैं– ''छठे राजा के राज्य में जमना जी में स्नान कर सकेगें आप। अभी तीस–पैंतीस बरस यही दशा रहेगी महाराज।''[332] सूरज स्वामी में तत्काल (वर्तमान) बता देने की भी क्षमता है– ''आप के घर का ही कोई प्राणी आपका निकटतम संबंधी इस समय हथकड़ियाँ पहनकर, नंगे सिर, नंगे पाँव बाजार में से, ले जाया जा रहा है।.....और बताऊँ– उसका नाम 'क' अक्षर से है। परिणाम धर्म पत्नी को शोक होगा।''[333] सूर में यह गुण प्रारम्भ से ही है। माँ की रखी हुई दो सोने की मुहरों का पता बता दीना और अन्य सूर की दैवज्ञय चित्रित है। लाला हुलास राय और चन्दन सेठ के प्रश्नों का तात्कालिक उत्तर भी उनके भविष्य वक्ता व्यक्तित्व का परिचायक है। ''पुरखों के समय में आपके यहाँ रत्नों का धन्धा ही होवै था। दो पीढ़ी पहले ही बदला होगा।'' सूरज स्वामी की इस विलक्षणता से लाला हुलास राय जी का वैभव भारोन्नत मन श्रद्धावश झुक गया। पचपन–साठ वर्षीय खिचड़ी दाढ़ी–मूँछों वाले वयोवृद्ध ने युवक दैवग्य के चरणों में पगड़ी उतारकर दुपट्टे के दोनों छोर हाथों में पकड़ कर प्रणाम किया।''[334] सूर स्वामी के इस गुण का चरित्र इसी प्रसंग में विस्तार पूर्वक हुआ है– ''सूर स्वामी आगे बढ़े। आपके प्रश्न का उत्तर तो मेरे मन में आ गया है परन्तु पहले एक परीक्षा लूंगा। आप दोनों अपने–अपने मन में गंध वाले फूलो का ध्यान करें, जिस फूल की गंध अधिक तीव्र होगी वह कमरे में छा जायेगी।'' कमरे में बेले की सुगन्ध मानो भर उठी। तब सूर स्वामी बोले– ''आप दोनों के मन समान सुगन्ध के उपासक निकले। कारोबार तो अवश्य करो। राज समाज में परिचय बढ़ैगो, लक्ष्मी महारानी सन्तुष्ट मान होयेंगी। बाकी आपके प्रश्न 'करें कि न करें' वाले वाक्याँश से हमें यह भी सूझता है कि यही कारोबार आपको 'अ' अक्षर से आरम्भ होने वाले किसी अन्य स्थान पर भी करना चाहिए ×× हाँ आगरे में करो। वह स्थान अभी बड़ी उन्नति करेगा और वहाँ का काम भी भविष्य में बड़ा काम बनेगा। ×× अभी रुक जाओं सेठ जी चौमासे बाद जाओगे तो सब फतेह होगा।'' लाला हुलास राय भी कुछ पूछना चाहते हैं। सूरज स्वामी उनके प्रश्न करने से पूर्व ही कहने लगते है– ''मैं आपका प्रश्न समझ गया। आपके हाँथ से आगे रेशम का व्यौपार ही अधिक बढ़ेगा। दूसरे व्यौपार आपके मन से धीरे–धीर उतर जायेंगे। बाकी हमारी मानो तो आप भी अपना पैतृक धन्धा भी थोड़ा बहुत आरम्भ कर दें। आपकी तीसरी पीढ़ी में वही फिर से आपके वंश का मुख्य कार–बार हो जायेगा।'' आपका नाती– ''आपका कोई पुरातन पुरखा है। वही फिर से आपके वंश को जौहरियों का वंश बनायेगा। अभी तो बड़ी उन्नति होगी आपके यहाँ। पाँच राजों का अमल बीत जाये फिर देखियेगा।'' हुलास राय के संदेह का निराकरण भी तुरन्त कर देते है– ''आप छठे राजा से सम्मान पाके बैकुण्ठ लाभ करेगे।''[335]

स्वामी इन्द्रजाल भी कर लेते हैं। सेठ चन्दनमल की सात–आठ वर्षीया बेटी मदालसा के हठ पर वे उसे इन्द्रजाल से लुभाते हैं। वे मदालसा से एक साड़ी मँगवाते हैं और उसे

चिन्धी–चिन्धी करके मशाल से जला देते हैं। फिर उसकी राख को पोटली में बँधवा कर मदालसा को दिलवाकर उछालने को कहते हैं। साड़ी के जलजाने से दुखी मदालसा को सान्त्वना देते है कि यह तो कोरा इन्द्र जाल था। "वाह री मैना ! मोको झूठो ही दोख लगावे है, तुम्हारी साड़ी तो तुम्हारी सन्दूक में धरी है, और वास्तव में मदालसा की "साड़ी संदूक में जस की तस झका–झक रखी हुई थी।"[336] सूर स्वामी कंतो का रूप रंग भी अपनी गणित फैलाकर जान लेते है– "समझा। तेरी भी आँखें नहीं हैं। कंतो एक आँख तो है सही पर कछु–कछु कानी है। क्यों, झूठ कहूँ हूँ।"[337]

सूरज काम रूपी विष को श्यामामृत बना देने के लिए दृढ़ संकल्प हैं। सूर के चरित्र का एक गुण और भी चित्रित हुआ है जो उनके साहस और स्पष्टवादिता का परिचायक है। मल्लमारताण्ड की उपाधि से विभूषित छिदम्मी पाण्डे सूर स्वामी से, कथा, उसी के बताये हुए स्थान पर कहने के लिए सूरज स्वामी को धमकी देता है कि "ये नयी चाल की कथा होयेगी और नयी चाल का काम तो विशेश्वर बाबा का यह नन्दी ही करेगा। यह हमने ठान लिया है। आपको चेताय देते है महाराज। सूर उत्तर देते हैं– मुझे चेताने से क्या लाभ मिलेगा पाण्डे जी। छदम्मी स्पष्ट धमकी देता है "नहीं महाराज बताना आप ही को है। काशी, जौन पुर, मिर्जापुर, चुनारई, चार स्थानों पर आप सबसे पहले जदी कहीं कथा बाँचेगे, गायेंगे तो वह हमारे यहाँ। नहीं तो कहीं भी कथा नहीं होयेगी। अच्छा पा लागी।" सूर उत्तर देते है– "सुनिये पाण्डे जी, आप अपना विरूद और मन्तव्य तो सुना चले किन्तु यह भी जान लीजिए कि–(सहसा गाने लगते है) 'श्याम गरीबन हूँ के ग्राहक। दीना नाथ हमारे ठाकुर साँचे प्रीति निबाहत।" हूँ लीजिए, गा भी लिया, आपके यहाँ नहीं गाया। अब जो चाहे, मेरा बना लीजिए। धमकी मैं यमराज की भी नहीं सुनूंगा, जहाँ जी चाहेगा वहीं गाऊंगा। मृत्यु तो एक ही बार आती है ना।"[338] कितना सत्यवेष है। महाप्रभु से दीक्षा प्राप्त कर जन्मान्ध सूर ने दृष्टा की स्वरूप स्थिति पायी। इन्द्रियातीत होकर भी जो समस्त इन्द्रिय बोधों को ग्रहण करता है, वह अन्तर्मन सूर जाग उठा। सूर ने स्वयं के भीतर देखा। माँ के द्वारा, चार–पाँच वर्ष की आयु में स्पर्श दृष्टि से दिखलाए हुए 'सीही' मन्दिर के राधा–गोपाल इस समय प्रत्यक्ष थे। वह उनके नख–शिख, एक–एक रोम तक को देख रहा है। वंशी के स्वर सुन रहा है। कृष्ण–मुख निहारती श्री राधा की चितवनों को देख रहा है। कामधेनु अपनी जिह्वा से गोपाल के चरण चाँट रही है। सब कुछ स्पष्ट और स्वच्छ दिखलाई दे रहा है। अब तक जो सूर निजी था। वह मानो कोटि–कोटि प्राणों की आभा से दीप्त हो गया है। देखने वाले सूर को यह देखने में सहायक बाहरी आँखों की आवश्यकता नहीं थी।

"जिन आँखिन में तब रूप बस्यो, तिन आँखिन से अब देखियें का।"[339]

अपने जीवन के 91वर्ष पूरे होने पर भी वे मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ने और गिरिराज की परिक्रमा करने में समर्थ रहे। नन्ददास तो अन्ततक सूरदास के साथ ही रहे। लेखक ने मेवाड़ की महारानी कृष्णकोकिला मीराबाई और राम के अनन्य भक्त गोस्वामी तुलसी दास से भी उनकी भेंट

करवायी है। 105 वर्ष की अवस्था में 'श्रीकृष्णः शरणम् मम्' कहते हुए प्राण कोकिला, ब्रह्म–रन्ध्र फोड़कर निकल गयी। और काया का पिंजरा सूना हो गया।[340]

2. चरित्रांकन शिल्प की विविध भंगिमाएँ

औपन्यासिक चरित्र–चित्रण की प्रमुख रूप से तीन पद्धतियाँ प्राप्त होती हैं–
1.बहिरंग चित्रण (आब्जेक्टिव) 2. अन्तरंग चित्रण (सब्जेक्टिव) तथा 3. नाटकीय (ड्रामेटिक) चित्रण।

बहिरंग चित्रण के अन्तर्गत विभिन्न प्रणालियाँ प्रचलित हैं–

1. पात्रों के नामकरण द्वारा
2. पात्रो के प्रथम परिचय द्वारा या प्रस्तुतीकरण द्वारा
3. आकृति, वेषभूषा वर्णन द्वारा।
4. स्थित्यंकन तथा क्रियाप्रतिक्रिया द्वारा
5. अनुभाव चित्रण द्वारा।

अन्तरंग चित्रण के अन्तर्गत प्रमुख विधियाँ हैं–

1. अन्तः प्रेरणाओं का चित्रण
2. अन्तर्द्वन्द्व
3. मनोविश्लेषण (क) मुक्त आसंग (ख) वाधकता विश्लेषण (ग) स्वप्न विश्लेषण (घ) निराधार प्रत्यक्षीकरण विश्लेषण (ङ) सम्मोहविश्लेषण (च) प्रत्यवलोकन विश्लेषण।
4. पूर्व वृत्तात्मक प्रणाली।
5. शब्दसह स्मृति परीक्षण।

नाटकीय चित्रण मे प्रमुख विधियाँ हैं–

1. घटनाओं द्वारा 2. संवादों द्वारा 3. उद्धरण शैली द्वारा 4. डायरी शैली द्वारा
5. पत्रात्मक शैली द्वारा।

नागर जी के उपन्यासों में व्यक्तित्व के विविध आयामो का विभिन्न कोणों से टंकण कर समाज के विविध स्तरों पर अपने क्रिया कलापों को अभिव्यंजित करने वाले विविध रंगी चरित्रों की सृष्टि है। पात्रों के व्यक्तित्व को प्रभावी एवं यथार्थ तथा पारदर्शी रंग देने के लिए उनके बहिरंग एवं अन्तरंग पक्षों का उद्‌घाटन किया गया है। वहिरंग विधि के अन्तर्गत पात्रों के नाम धाम, काम तथा सामान्य औपचारिक परिचय, रूपाकार वेषभूषा रुचि–अभिरुचि, स्थिति परिस्थिति, भावानुभाव प्रकाशन आदि का चित्रण होता है तथा अन्तरंग विधि के अन्तरगत पात्रों के मनमस्तिष्क–हृदय की गूढ़ अपार दर्शी सरल–जटिल आन्तरिक वृत्तियों का अनेकानेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक चित्रण आते हैं। नागर जी ने अपने उपन्यासों में उपर्युक्त तीनों पद्धतियों का प्रयोग किया है। नाटकीय

चरित्र–चित्रण विधि तो सामान्य रूप से पाई ही जाती है। सर्वप्रथम मै उनकी वहिरंग चित्रण भंगिमा का उनके विभिन्न उपन्यासों में अनुशीलन करुंगा।

वहिरंग विधि के अन्तर्गत सर्वप्रथम उपन्यास कार पात्रों के नामकरण पर ध्यान केन्द्रित करता है–

(क). नामकरण :– नागरजी ने अपने पात्रों का नामकरण इस प्रकार किया है कि जिससे पात्रों के व्यक्तितव पर सीधा प्रकाश पड़े।

बूँद और समुद्र :– के सज्जन, कल्याणी, बाबा राम जी दास, कर्नल आदि पात्रों के नाम उनके सरल, सात्विक और मर्यादापूर्ण व्यक्तित्व के परिचायक हैं। 'सज्जन' दूध का धोया तो नहीं है फिर भी उसका चरित्र उसके नाम के अनुरूप उसकी सज्जनता का परिचय देता हैं। एक जमीदार परिवार का एक मात्र उत्तराधिकारी होते हुए भी वह वनकन्या के संपर्क में आने पर अपना चरित्र ठोस और नामानुरूप बनाता है। नागर जी ने वनकन्या' और 'सज्जन' को ब्रजयात्रा कराकर उनके चरित्र को तपने का अवसर दिया है। सामान्य रूप से कोई भी युवक किसी युवती के साथ इस प्रकार का स्वतंत्र वातावरण पाकर अपने को संभाल नहीं पाता है किन्तु 'सज्जन' वहाँ अपनी सज्जनता का परिचय देता है। जो नागर जी की दृष्टि का ही परिणाम है। कई आलोचकों द्वारा 'सज्जन' के चरित्रांकन को नागर जी की आग्रही दृष्टि का चित्रण कहा गया है। मैं समझता हूँ यह यथार्थ है। यह परिकल्पना वैचारिक स्तर पर की गई है। सज्जन चित्रकार है, सौंदर्य प्रेमी है और कलाकार भी है। उसकी कला प्रियता, और उसके भावी स्वरूप की निर्मात्री परिस्थितियों का चित्रण उसके नाम को सार्थक करते हैं–''अपने देश के प्राचीन वैभव, साहित्य शिल्प, चित्रकला, नृत्य–संगीत आदि को देखकर सज्जन जितना अधिक प्रभावित हुआ है, उतना ही वह आज के सामाजिक जीवन में सांस्कृतिक दिवालिए पन का कारण जानने के लिए व्यग्र हो उठा है।''[341]

कल्याणी– यद्यपि अशिक्षित एवं रूढ़िवादी विचारों वाली नारी है किन्तु पति परायणा, एक–पतिव्रता, सात्विक और धर्म–कर्म को मानने वाली है। पति को परस्त्री के संपर्क में जानते हुए भी वह उसके प्रति एक निष्ठ है। दूसरे द्वारा पति पर किए गए किसी भी आक्षेप को वह कतई सहन नहीं करती है। पति द्वारा उपेक्षिता एवं प्रताड़ित होने पर भी वह शांत भाव से गृह कार्य को सम्पन्न करती है। पति जब तक भोजन नहीं करता, वह भी नहीं करती। वह परिवार में निरन्तर सामंजस्य बनाए रखने के लिए दृढ़ संकल्प है। कर्नल कल्याणी के चरित्र से इतना प्रभावित है कि वह महिपाल के समक्ष ही कह देता है– ''तुम भाभी के पैर की धोवन भी नहीं हो।'' इस प्रकार 'कल्याणी' पारिवारिक कल्याण करने वाली गृहिणी के रूप में नाम की सार्थकता प्रमाणित करती है।

कर्नल–नगीन चन्द्र जैन उर्फ कर्नल उपन्यास में अपने नाम के अनुरूप ही व्यवहार करता है। जिस प्रकार सेना का कर्नल कठोर, नियन्त्रण रखता है और फिर भी सभी का हितैषी होता है, उसी प्रकार उपन्यास में भी वह एक सेना का कर्नल है जो अत्यन्त चरित्रवान, सहृदय, परोपकारी,

सत्यनिष्ठ एवं भावुक है। अपनी सेना के सज्जन, वन कन्या, कल्याणी आदि सभी पात्रों पर उसका समान अधिकार है। वह कन्या को अपनी छत्रछाया में रखता है। सज्जन को पितृ तुल्य स्नेह प्रदान करता है। कल्याणी के पातिवृत्य की प्रशंसा करता है। महिपाल को उचित दिशा निर्देश प्रदान करता है। वह सबके साथ कर्नल की ही भाँति न्याय करता है। स्पष्ट भाषी है। वह समाज द्वारा उपस्थित की जाने वाली बाधाओं को बड़े साहस के साथ सहन करता है। वस्तुतः कर्नल का नामकरण जीवन की उदात्त स्वरूप वाली भावनाओं का प्रतीक है।

कवि विरहेश– कवि विरहेश का चरित्र–चित्रण भी इसी विधि के अन्तर्गत आता है।

बाबा रामजी दास– अपने नाम के अनुरूप वे बाबा भी हैं, साधु स्वभाव हैं और राम के दास भी हैं। बाबा साधु परम्परा में आने वाले सेवा भाव युक्त कर्मयोगी, परोपकारी, गंभीर व्यक्ति हैं बाबा का व्यक्तित्व संत विनोवा से मिलता–जुलता हैं उनका दृष्टिकोण अहिंसावादी हैं। वे कर्मवादी संत हैं। उनका विचार है– "बैठाकर खिलाना हमारे सिद्धान्त के विरुद्ध है राम जी। ड्यूटी करें और पेट भर भोजन पावें।"[342] वास्तव में बाबाराम जी कपोल कल्पित पात्र नहीं हैं। इस विषय में नागर जी ने स्वयं लिखा है– "बूंद और समुद्र' का बाबा राम जी दास मेरे जीवन को प्रभावित करने वाला एक सार्थक व्यक्ति था।"[343] बाबा राम जी की भाषा भी उनके नामानुरूप ही एक उपदेश्क की वाणी है। "विज्ञान के जो अनुपम रत्न निकल रहे हैं, मानवता का व्यापक प्रचार होइके चेतना का जो अमृत निकलेगा वह समस्त लोक को मिलेगा और जऊ ये स्वार्थ परता, अनाचार का कालकूट निकल रहा है तऊ नील कंठ परम सेवक हैं वो अपनी ड्यूटी से कभी नहीं चूकते।"[344]

इसी प्रकार 'सेठ बाँकेमल' अपने नाम के अनुरूप वास्तव में 'बाँके' हैं। उनमें एक ओर अपने नाम के अनुरूप आकाश–पाताल के कुलाबे भिड़ाकर मौत के किस्से कहानियाँ गढ़कर लोगों को मूर्ख बनाकर लूटना, गाने–महफिल, कसरत–फसरत, सैर–सपाटे, गुण्डा–गर्दी, प्रेम–नैपुण्य, मस्ती, फक्कड़पन आदि गुण हैं और खाओं–पियों और मौज उड़ाओं सिद्धान्त के प्रति आस्थावान हैं। दूसरी ओर आदर्श मैत्री,–दीन–दुखियों के प्रति सहानुभूति, रीति–रिवाज के प्रति विरोध और देश भक्ति का भाव उनके व्यक्तित्व में सम्मिलित हैं। इस प्रकार वह सर्वथा बाँका सेठ है। 'एकदानैमिषारण्ये' की सरजू मइया, इज्या, प्रज्ञा, भारत चन्द्र, भार्गव सोमाहुति तथा 'मानस का हंस' के तुलसी दास, मेघा भगत, पार्वती अम्मा, मोहिनी और रत्नावली आदि पात्रों के नाम तथा 'खंजन नयन' के सूरदास, कंतो, सुनैना, राधा रानी आदि पात्रों के नाम उनके सरल, सात्विक और मर्यादा पूर्ण जीवन के परिचायक हैं। पार्वती अम्मा में माँ का स्नेह, मोहिनी में मोहने की शक्ति विद्यमान है। 'कंतो' कान्ता है, प्रिय है, अन्तः सौन्दर्य से पूर्ण है। सुनैना सुन्दर नेत्रों वाली सुन्दर दासी है जो सूरज को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। किसी–किसी उपन्यास में एक ही पात्र के अनेक नाम सामने आते हैं जिनसे उनका चरित्र–विकास स्पष्ट होता है। 'मानस का हंस' में राम बोला और तुलसी दास, 'सात घूंघट वाला मुखड़ा' में मुन्नी, दिलाराम, बेगम समरू, टॉमस प्रिया और लवसूल प्रिया आदि नाम एक ही पात्र के हैं जो उसके चरित्र–विकास के विविध

सोपानों का बोध कराते हैं। नागर जी भी इस प्रकार के चरित्र विकास क्रम को चित्रित करते हैं– ''जुआना अब अपने हसीन चेहरे पर तीसरे भाव का मुखौटा चढ़ाने बैठी। दिल की सात तहों के भीतर जुआना अब भी ईमान और इन्सानियत के हुस्न पर मरती है।''[345] इसी प्रकार 'खंजन नयन' में भी सूरदास के सूरज, सूर स्वामी और सूरदास उनके सामाजिक और आध्यात्मिक चरित्र विकास के घोतक हैं। सूरज आध्यात्मिक जगत के 'अतल', सूर स्वामी 'वितल' और सूरदास 'सुतल' के परिचायक हैं। सूरज बचपन का चंचल बालक, सूर स्वामी अंधी आँखों से भी जीवन का मर्म भाँप लेता है। लेखक कहता है– ''अयोध्या से विदा लेते हुए सूर स्वामी अपने भीतर वाले अव्यक्त ब्रह्म की खोज के बिचार से अभिभूत थे। उनका श्याम सखा पहली बार गम्भीरता पूर्वक व्यक्त से अव्यक्त बना था। अपने यात्रा काल में पचासों गोष्ठियों, विविध विषयों और विविध रुचियों का परीक्षण करते हुए सूर स्वामी अब यश अपयश से आप ही आप ऊपर उठ गये थे। उन्हें जीना है, अपने ढंग से जीना है। उसके लिए अनुभव प्राप्त करना है और आस्था पूर्ण सही रूप से प्रतिष्ठित करना है। सूर–दृष्टि में उस समय एक मात्र यही संकल्प ज्योति जगमगा रही थी।''[346]

सूर स्वामी के चरित्र–विकास का अगला पग ''अपने प्रेत भ्रम निवारण के बाद मथुरा के स्वामी जी की यशोकाया का तेज और भी निखर उठा। नाम जप अब सांस में अधिक घुलने लगा है। स्मृति और श्रुति को तीव्रतर बनाने के प्रयत्न भी सावधानी से चल चल रहे हैं। राधे गोपाल की तरंगाकृति भी हृदय स्थल में अधिक उभर कर सूर की अन्तर्दृष्टि में आने लगी थी। जब आस्था बढ़ती है तब सब कुछ बढ़ जाता है।''[347] सूर के चरित्र–विकास का अन्तिम पड़ाव महाप्रभु बल्लभाचार्य से दीक्षा ग्रहण करने पर आता है और तब न तो सूर को बाहरी आँखों की जरूरत है और नहीं किसी वस्तु की आवश्यकता।

प्रस्तुती करण

कभी–कभी उपन्यास पात्रों का परिचय स्वयं भी देता हैं। यद्यपि इस विधि का व्यवहार अब धीरे–धीरे कम होता जा रहा है, क्योंकि लेखक द्वारा दिया गया पात्रों का परिचय उनके व्यक्तित्व को विधिवत मूर्तित कर सकने में प्रायः असफल होता है। सफल औपन्यासिक कृति में पात्रों का व्यक्तित्व पाठकीय संवेदना से जुड़कर अपना परिचय स्वयं ही देता है। तथापि नागर जी पात्रों के संबंध में इस पद्धति को भी अपनाते हैं किन्तु, पात्रों के संबंध में अपनी ओर से अपेक्षाकृत कम कहते हैं। वे पात्रों का चरित्राकंन, उनकी आकृति, वेश भूषा वर्णन द्वारा तथा कभी–कभी स्थिति अंकन और अनुभाव चित्रण द्वारा भी करते हैं। 'बूँद और समुद्र' में 'महिपाल' का परिचय देते हुए उपन्यासकार कहता है– ''वह हिंसा, दाँव–पेंच, तिकड़मों से ऊपर उठकर दुनियाँ में समानता और न्याय का राज चाहता है। अपने वर्ग के लोगों से कटकर वो अकेला है। इस अकेलेपन को लेकर वह दिनोंदिन मानसिक झकोलों के दल–दल में पैठता चला जाता है। अभाव के बिच्छू का डंक खाकर वह कभी लाखों की लक्ष्मी और सातों सुखों की कल्पना में अपना जी बहलाता है और कभी इस मिथ्या कल्पना की प्रतिक्रिया में अपने को कोसता हुआ राम, महाबीर,

ईसा, गाँधी और प्राचीन भारतीय ऋषियों और संतों के त्याग और तपोनिष्ठा से प्रेरणा लेकर लिखने–पढ़ने के काम में लग जाता है।''[348] इसी प्रकार 'सज्जन' के विषय में– ''सज्जन के मन पर अपनी माँ की एक अमिट छाप पड़ी है। पिता की राह पर न चलने का बचन माँ को देकर उसने अपने लिए एक अन्तर्द्वन्द्व मोल ले लिया। इसी दौरान में बचपन के पनपते हुए उसके चित्रकारी के शौक ने लगन पायी। सीनियर कैम्ब्रिज पास करने के बाद उसने आर्ट्स स्कूल में नाम लिखा लिया। पिता की मृत्यु के छह वर्ष बाद माँ भी जाती रहीं।''[349] तथा '' बत्तीस वर्ष की उम्र तक अविवाहित रहने की वजह से उसका काम–जीवन अनियमित है। नारी के अन्तरंग सम्पर्क का मौका कभी–कभी तो दो–दो, तीन–तीन महीने तक नहीं मिलता और जब कभी ऐसा अवसर आ जाता है तब वह अतिरेक कर देता है। उसके जीवन में तीन तरह की औरतें आती हैं।– एक से वह पैसे देकर आनन्द खरीदता है, दूसरी से प्रेमोपहार में रस पाता है, और तीसरी वे तमाम औरतें हैं जिनसे केवल शिष्टाचार के ऊपरी नाते हैं।''[350]

नारी पात्रों का प्रस्तुतीकरण भी दृष्टव्य है। 'कन्या' का परिचय देते हुए– 'कन्या' अहंकारिणी है। नैतिकता की शक्ति उसके अहंकार का पोषण करती है। घर के गन्दे वातावरण की प्रतिक्रिया में उसका बड़ा भाई और वह आत्म तेज से दीप्त होकर बालिग हुई।''[351] नागर जी पात्रों की शरीर यष्टि और ब्रह्य वेश–भूषा का उल्लेख कर भी प्रस्तुतीकरण द्वारा चरित्राकंन को रंगीन बनाते हैं। 'बूँद और समुद्र' में 'सज्जन' के रंग रूप और वेश–भूषा का चित्रण– ''मझोला गठीला बदन, खून से झलमलाता गोरा चिट्टा, खूब सूरत पालिष्ड चेहरा, ऊँची पेशानी, पशमीने की शेरवानी, ढ़ीली मोहरी का पाजामा पहने, हाथ में ओवर कोट लिए सज्जन दरवाजे के पास खड़ा था।''[352] 'ताई' के चेहरे का चित्राकंन दृष्टव्य है– ''उभरी हुई हड्डियों वाले लम्बे चेहरे पर कड़ी–कड़ी रेखाएँ और सिकुड़ने उसी तरह गन्दी और मन हूस लगती हैं जैसे गली की सतह पर अनेक टेढ़ी–मेढ़ी धाराओं में अन्दर की घुटन से उबल कर बहता हुआ नाले का पानी।''[353]

छोटी के अपटू डेट फैशन का प्रस्तुतीकरण– ''तीनों में छोटी का फैशन अपटू डेट था– काली धारीदार सुरैया का कुरता, सफैद साटन की सलवार, सफेद सिलून का दुपट्टा, बायें हाथ में कीमती घड़ी, दाहिने में ऊँचें दानों वाला प्लास्टिक का कड़ा, गले में सच्चे मोतियों की कंठी, कानों में मोतियों के टाप्स।''[354]

'वनकन्या' के लिए– ''किसी हद तक अति तक पहुँचा हुआ गोरापन और पानी दार व्यक्तित्व वन कन्या की विशेषता थी ××× भूरा पन लिए बालों की दो घुंघराली लटें दोनों कानों पर लटक रहीं थीं। बहुत सुन्दर लगी, बहोत ही सुन्दर।''[355]

अनुभाव चित्रण– ''पुतलियाँ गुलाबी लाज के कच्चे धागे में बँधीं अपने आप कानों तक खिंच गयीं।''[356] कन्या की उलझनों और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण लेखक ने उसकी प्रकृति का चित्रण विस्तृत रूप से चित्रित किया है। बौद्धिक और भावना मूलक उलझनें कन्या को गहरा विचार

मंथन करने के लिए विवश करती रहीं। "उसकी इन उलझनों में एक निजी और गोपनीय उलझन भी पैना काम कर रही थी, अब भी करती है। पैना इस लिए कि अपनी इस उलझन को लेकर आज तक वह किसी के सामने अपना मन खोल नहीं सकी। बड़े भाई से लिहाज के मारे कुछ कहा नहीं जा सकता था, और बाहर किसी से भी कहकर वह अपनी नैतिकता, सच्चरित्रता पर आँच नहीं आने देना चाहती थी। आज चौबीस वर्ष की आयु तक कन्या देह से ब्रह्म चारिणी हैं। यद्यपि संस्कारों ने उसके मनोलोक में अब्रह्मचर्य नहीं फैलने दिया फिर भी वह मदन दहन कर वीतराग तो नहीं ही हो पायी है। उम्र के तकाजे से पुरुष के अंग–संग की सहज स्वाभाविक इच्छा कहीं उसके मन में भूंखी रेंगती थी। पिता की काम विकृतियाँ, चाची की चरित्र हीनता और स्वयं उसकी सुन्दर जवानी को लालच के प्याले में पाने वाली पुरुष आँखें तथा इन सब बातों के साथ ही इस देश के अनेक आदर्श पुरुषों द्वारा कामवृत्ति के विकार समझने के उपदेश, दबे तौर पर निरन्तर उसे दो सिरों पर खींच कर हैरान किया करते थे। कामेच्छा और काम–दमन की इच्छा दोनों साथ ही साथ उससे उलझती थीं। समाज के अभिशाप सी उसकी स्वर्गीया भावज और प्रवृत्ति के अभिशाप सी उसकी जीवित भावज के दृष्टान्त उसे पुरुष से घृणा उत्पन्न कराते रहते थे। आधुनिक सामाजिक चेतना के अनुसार पाई हुई समझ से भी वह यही अनुभव करती थी कि मानव समाज में पुरुषों ने नारी जाति की दुर्गति कर रखी है। इन सब बातों को लेकर उसके अन्दर का स्वाभिमान पुरुषों के खिलाफ विद्रोह करता रहता था। यद्यपि अब साल दो बरस से, मनमन्थन के प्रभाव से उसने जो सिद्धान्त नवनीत पाया था, उससे वह काफी हद तक शान्त, गम्भीर और सन्तुलित हो गयी थीं। कन्या ने एक तरह से मन ही मन यह तय सा कर लिया था कि यदि उसे कभी अपने ही समान संस्कारी, सिद्धान्तवादी पुरुष मिल गया तो वह विवाह कर लेगी और इसके साथ ही आत्म प्रशंसा का फाटक लगाकर नैतिकता के गढ़ में सुरक्षित रहने वाली अहंकारिणी नारी को–पुरुषों को ओछी और शंका भरी दृष्टि से देखने वाली कन्या को–सज्जन के प्रति अपने मन का बन्धन मानने में झिझक भी होती रही। इसीलिए वह सज्जन को बार–बार बढ़ावा देने और बार–बार रोक देने के लिए अपने आप से विवश थी।"[357]

यहाँ लेखक ने मनोवैज्ञानिक आधार पर कन्या के चरित्र की छिपी हुई मानसिक धारणाओं को खोल दिया है। इस चित्रण से स्पष्ट होता है कि कन्या एक अहंकारिणी आत्म प्रशंसा युक्त, नैतिकता से परिपूर्ण, पुरुषों के प्रति विद्रोहिणी, सच्चरित्र और मर्यादा के कवच से ढकी हुई अविवाहित नारी है जिसने आत्म मंथन से निश्चय कर लिया है कि यदि उसे अपने ही समान संस्कारी और सिद्धान्त वादी पुरुष मिल गया तो विवाह कर लेगी।

'अमृत और विष' में मिसेज माथुर का परिचय– "मिसेज माथुर उससे (लच्छू से) सिर्फ चार ही पाँच साल बड़ी थीं और बहुत सुन्दर न होने पर भी नये फैशन में सजी भजी, रंगी–चुनी कचालू मटर की चॉट जैसी लगती थीं। देखकर लच्छू के मन में पानी भर आता था।"[358] इसी प्रकार "महिला का चेहरा दीवाल पर टंगी तस्वीर से उतरा और हमारी ओर भव्य मुस्कराहट की

खुशनुमाँ कालीन बिछाता हुआ आया, ओठों के लाल किले के फाटक खुले और मरमरी दाँतों की बारहदरी सी झलक उठी। बड़ी शालीनता, मीठेपन, आजाद पन और बेलौंसी के साथ अंग्रेजी में कहा 'मैं तो समझी थी कि आप मेरी खुशी के लिए टोस्ट प्रपोज करने उठे हैं'।''[359] यहाँ लेखक ने महिला की मुस्कराहट, ओठों, दाँतों, मीठी वाणी, शालीनता और उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय रूपक और उपमा अलंकारों के माध्यम से चित्रित कर दिया है।

नागर जी का 'अमृत और विष' औपन्यासिक कला का अप्रतिम उदाहरण है। इसमें अरविन्द शंकर अपना परिचय स्वयं देता है– ''मेरे पिता मास्टर किशोरी लाल बी0ए0 अपने समय के बड़े समाज सुधारक नवीन बाबू माने जाते थे। समय के बेहद पाबन्द और बिलायती पोशाक के शौकीन थे ×× वे ही मिसरोज रैम्प, मेरी माता श्रीमती सौभाग्यवती मन्तो बीबी उर्फ मदलसा देवी को दस रुपये मासिक गुरु दक्षिणा पर पढ़ाने आने लगीं।''[360] इस प्रकार अरविन्द शंकर ने बहुत बड़ा परिचय स्वयं ही दिया है। इसी प्रकार रानी का परिचय रानी ''रद्दू सिंह राठौर की मझली लड़की है। उसकी माँ मर चुकी है। छह वर्ष पहले सोलह वर्ष की आयु में ही वह विधवाँ हो चुकी थी। बीच के दो साल खोकर उसने फिर से पढ़ना आरम्भ किया और अबकी मन्नो के साथ ही साथ इण्टरमीडिएट की परीक्षा दी है। उसका परिवार एक समय बड़ा सम्पन्न था, अब उतनी ही विपन्नावस्था में है।''[361]

'एकदा नैमिषारण्ये' में भी पात्रों का चरित्राकंन, प्रस्तुतीकरण प्रणाली द्वारा प्राप्त होता है। 'एकदा नैमिषारण्ये' में नागेश्वर के व्यक्तित्व का परिचय ''कठिन योगाभ्यास से कसे हुए पुष्ट शरीर वाले, मझोले कद और गेहुएँ रंग के, कौपीन धारी अयोध्यापति महायोगिराज नागेश्वर का व्यक्तित्व निस्संदेह भव्य और आकर्षक था। ललाट पर भस्म लिपटी थी। फटे हुए कानों में स्फटिक के कुण्डल और एक हाथ में लोहे के कड़े–पड़े थे। कण्ठ में रूद्राक्ष की छोटी–बड़ी अनेक मालाएँ पड़ी थीं। उनकी काली–सफेद दाढ़ी छाती पर लहरा रही थी। मटमैले रंग की पुतलियों में कठोर स्थिरता थी।''[362] इसी प्रकार इज्या के सौन्दर्य चित्रण द्वारा उसका चरित्रांकन इस प्रकार किया है–''फूल छड़ी सी देह, गौर वर्ण, आँखें अग्नि और अमिय से भरी बड़ी–बड़ी कटोरियों जैसी उनमें ज्योति रस बनकर छलक रही थी।''[363]

'सात घूंघट वाला मुखड़ा' मे मुस्तरी का प्रस्तुतीकरण उसके रंग रूप, कृश देह और आयु का एक चित्र उपस्थित कर देता है–''खुलते हुए साँवले रंग की बड़ी–बड़ी आँखों वाली पन्द्रह–सोलह वर्ष की फूल छड़ी सी नाजुक देह वाली मुस्तरी इस समय समरू को खुद अपने दिल ही से प्यारी लगने लगी।''[364] अन्यत्र ''खुले बालों गाउन में लिपटी हुई जुआना मुस्कराती हुई कमरे में दाखिल हुई उसकी यह अदा देखकर समरू का गुस्सा यों थमाँ जैसे आग की तेज लपट पर पानी की फुहार पड़ी हो।''[365] यहाँ जुआना का सौन्दर्य समरू के क्रोधरूपी भयानक पशु को दुम हिलाने पर विवश कर देता है। जुआना का परिचय सर्वप्रथम बशीर खाँ के पिता द्वारा

कराया जाता है। ''यह हुकूमत करने के लिए पैदा हुई है। इस पर हुकूमत नहीं की जा सकती है।''[366] यहाँ लेखक ने अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु मुन्नी के इस रूप का परिचय दिया है।

नागरजी ने पात्रों के प्रस्तुतीकरण द्वारा उनकी स्थिति का भी अंकन किया है। उससे उनकी यह कला पाठकों के लिए उत्सुकतापूर्ण बन जाती है–''हुस्न की मलिका मुन्नी उर्फ दिलाराम बन्दूक की सफाई में लगे बशीर खाँ को एकटक देखती रही। उसकी कशिश भरी काली आँखों में एकाएक ठहराव सा आ गया था, जैसे बेतहाशा दौड़ने वाला घोड़ा मालिक के लगाम खींच लेने पर एकाएक ठिठक गया हो।''[367] जुआना के धोखेबाज रूप को पहचान लेने पर वाल्टर का कथन उसके इसी स्वरूप का परिचय देता है। ''कुट्टी कहीं की, तेरे इस बेवफा हुस्न से वह वफादार बदसूरती कहीं ज्यादा अच्छी है जो मुस्तरी ने पायी है।''[368]

'शतरंज के मोहरे' में इसी विधि के अन्तर्गत उपन्यास की नायिका दुलारी का परिचय एक उदास और सतायी हुई नारी के रूप में होता है–''आँगन पार सामने वाले दालान की कोठरी का दरवाजा खुला। चूड़ीदार पजामा, गाढ़े का कुर्त्ता पहने, धानी रंग की मोटी ओढ़नी ओढ़े दुलारी का उदास मुखड़ा झलका। रुस्तम अली की टकटकी बँध गयी। वारिश अली तभी अन्दर आया, सामने दालान में दाहिने हाथ में मेंहदी लगी उंगलियों की चुटकी से ओढ़नी का पल्ला खींचे बड़ी भावज चली आ रही थी। वारिश अली चोरी से, आशिक की हसरत भरी निगाहों से उसे देखता हुआ तेजी से बाहर चला गया। बड़ी–बड़ी नशीली जादू भरी आँखें, बड़ा सुडौल बदन, सिजल नाक–नक्शा–रंग गेहुँआ होने पर भी दुलारी की चढ़ती जवानी ऐसा चुम्बक थी जो मर्दानगी के लोहे को बरबस अपनी ओर खींच लेती थी। नजरें मिलते ही वह पुरुष को मतवाला बना देती थी, बे–ऐब खूब सूरती न पाने पर भी दुलारी मर्द के लिए मुदस्सिम लालच थी।''[369] दुलारी का सौन्दर्य रुस्तम अली को नित्य नया लगता है। ''इतने बरस हो जाने पर भी दुलारी की नजरों से बच नहीं सकता। बगैर नशे के भी वह दुलारी के सामने भी उसी तरह ढल जाता है जिस तरह कि शराब सागर से मीना में ढलती है।''[370]

नागरजी ने कुछ पात्रों का प्रस्तुतीकरण स्वयं किया है भुलनी का प्रथम परिचय देते हुए–''गज्जू बसोर की तेरह वर्ष की बेटी भुलनी अपनी माँ के साथ कोठी में ही काम करती थी। वह लड़की हीन कुल में जन्म लेकर भी बड़ी सुन्दर थी उसकी माँ उसे हरदम बहुत बचाव और निगरानी के साथ रखती थी। भुलनी बड़े साहब की कोठी में सफाई का काम करती थी। कोठी का बड़ा मुनीम स्मिथ बहुत दिनों से इस लड़की को अपनी वासना की खुराक बनाने के लिए प्रयत्नशील था किन्तु उसका बस नहीं चलता था। भुलनी उस लाल मुँह के मोटे अधेड़ साहब को देखते ही दूर से भाग जाती थी।''[371] राजा शिवनन्दन सिंह का परिचय भी उपन्यासकार ने स्वयं ही दिया है–''राजा शिवनन्दन सिंह के पिता बैश वंश के सुप्रतिष्ठित राज कुल के छुटभइये थे, पिता बड़े सीधे साधु प्रकृति के पुरुष थे। उनके जीवनकाल में ही इन लोगों को अक्सर बहुत नीचा देखना पड़ता था। उनके मरने के बाद इन लोगों का हिस्सा भी बहुत कम कर दिया गया।

शिवनन्दन सिंह अपने भाईयों में मझले थे। वे आरम्भ से ही उद्धत थे, राजा तथा उनके दीवान द्वारा किए गए जिन अपमानों को उनके पिता अनदेखा कर जाते थे अथवा उनके बड़े भाई विवश हो जाते थे, उनका जवाब शिवनन्दन सिंह सदा शेर के मुकाबले में ढइया से दिया करते थे। जब बातें तूल पकड़ गई तो एक दिन रात में सबसे बड़े शत्रु बूढ़े दीवान जी के घर में घुस, उसकी नाक काट, माल मता लूट, उसकी सुन्दर नौजवान हाल की ब्याहता चौथी पत्नी को लेकर उड़ गए।''[372] ''बिस्मिल्लाह बानो का प्रस्तुतीकरण दृष्टव्य है–''वहीदन बिस्मिल्लाह बानो नाम की एक नवजवान तवायफ लड़की को जानती थी। नाक–नक्शे, चाल–ढाल, सलीका–समझ, हर तरह से सधी हुई पढ़ी–लिखी कत्थक नाच के हुनर की चतुर जानकार, गला भी बेजा न पाया था, फ़ारसी की गजलें गाती थी।''[373]

'खंजन नयन' में भी इसी प्रकार के चित्रांकन प्राप्त होते हैं। लेखक, पात्र सूर के मुख से स्वयं उनका परिचय मिल जाता है–''मेरा जन्म गोवर्धन के निकट परासोली ग्राम में हुआ था किन्तु चार वर्ष की आयु में गुरु ग्राम के पास सीही चला गया। पिता सारस्वत अपने क्षेत्र में भागवत महराज के नाम से विख्यात थे। एक समय घर में थोड़ा वैभव भी था किन्तु, नौ बरस पहले जब सिकन्दर सुल्तान अपनी फौजी लूट के लिए दिल्ली से निकला था तब हमारे ग्राम में भी तबाही आयी थी।''[374] सूरज की आकृति और शरीर यष्टि का प्रस्तुतीकरण दृष्टव्य है। परिचय लेखक स्वयं ही देता है–''नौकर तब तक लम्बे, दुर्बल, सुन्दर और अन्ध भविष्य वक्ता को लेकर कमरे में आया। लम्बा, दुर्बल गोरा, नाक लम्बी और सुंतवाँ, उभरी हुई हठीली ठोढ़ी, उन्नत कपाल, लहराती हुई घुंघराली लटें जटाओं सी झूल रही हैं। हल्की–हल्की दाढ़ी, मूँछे भी हैं कान बड़े हैं। कितना सुन्दर होता यदि यह आदमी देख भी पाता। बड़ी–बड़ी आँखें हैं मगर बेजान ×× मुख पर दीनता दरशते हुए भी कान्ति थी।''[375] इसी प्रकार कंतो की वाह्य काया का चित्रांकन स्वयं पात्र द्वारा कराया गया है–''अंधी–धुन्धी। कालों में भी काली, ऊपर से माता के दाग। मोय कौन पूछैगो। या जनम तो बस मार खाइबे और काम करबे के ताई मिलो है। मैं सुख कहाँ जानू।''[376] इस कथन से कंतो की जीवन की सारी कटुता भी प्रकट हो जाती है। किसी दूसरे पात्र द्वारा अन्य का परिचय देकर उसकी चारित्रिक विशेषताएँ झलकाने की कला भी दर्शनीय है। कंतो सूर का परिचय देती हुई कहती है–''सामी जी हैं। हमार मामा के घर आये हते।वहीं ते इन्हें केशव राय के दर्शन कराइबे कूँ या लायी हूँ। बड़ो चमत्कार हैगो माराज को। सब भूत–भविष्य तो ऐसा बिचारे हैं कि चन्दन मल सेठ की सोना–चाँदी और मेरे कालू दउवा की नाव बचा लीनी याने।''[377] सूरज के त्रिकालज्ञ भविष्य वक्ता के व्यक्तित्व का परिचय मिल जाता है। रामजियावन सिंह अपना परिचय देता हुआ कहता है–''उन्नाव, गढ़ाकोला के। खेती–पाती रही सब उजड़ि गयीं, धरती लुटि गयी। गाँव कुटुम परवार कछु मारे गये बाकी जहाँ जहिका सीरा समाया वहाँ भागि गए। हम भटकत मांगत हियाँ आय लगे। साँचा क्षत्रिय होइकै भागव उचित नाही, ईते

चाकरी भली। करम भोग नीके रहे, मिल गयी। इनके हियाँ काम पायगे। दस इगाड़ी बरसैं भई। जब मथुरा मइहाँ या सुल्तान की पहिल लूट भई रहय वहिके पहिले ते हम उनके हियाँ काम करि रहे है।''[378] मल्लमारतण्ड छिदम्मी पाण्डे का चरित्र प्रस्तुतीकरण का अनूठा ढंग प्रदर्शित करता है। पुद्दन पंडित उसके चरित्र को बताते हुए कहते हैं–''आप समझते नहीं स्वामी जी, छिदम्मी बड़ा कुचाली है। ब्रामण हुइके सातौ जात की रण्डी–मुण्डी निखिद्द भोजन दारू सब करता है! राम–राम। जहाँ–तहाँ से सुन्नर लड़कन का उड़वाय के जवन हाकिमों से उनके मुँह काले करवाता है। उनका बिचौलिया बन के कमाता है। क्या–क्या कहैं। ब्रामण में एक राक्छस रावण भया दुसरा ये छिदम्मी।''[379]

नागरजी ने पात्रों के चरित्र–चित्रण में पात्रों के प्रस्तुतीकरण के लिए एक अन्य विधि का भी प्रयोग किया है। उसमें उपन्यासकार स्वयं ही एक पात्र बनकर रचना के भीतर कर्त्ता– के रूप में वह अन्य पात्रों के साथ कहीं कंधा मिलाकर चलता है और कहीं भोक्ता भाव से उपस्थित रहता है। ऐसी स्थिति में किसी पात्र के सम्बन्ध में रचनाकार की टिप्पणी विश्वसनीय बन जाती है। इसीलिए उसे पात्रों को निकट से जानने समझने का अवसर मिलता है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में नागर जी स्वयं ही अंशुधर शर्मा के रूप में आदि से अन्त तक उपस्थित रहें हैं। इसीलिए उनका पात्रों से निकट का परिचय होता है। निर्गुनियाँ के सम्बन्ध में उनकी निम्नांकित टिप्पणी से हमें उनके परिचय की गहराई का ज्ञान होता है–''श्रीमती निर्गुनियाँ सामने सोफे पर टाँग पर टाँग चढ़ाए बैठी बिल्कुल मास्टराना अन्दाज पर सवाल पर सवाल कर रहीं थीं। बात कहते हुए मेरी दृष्टि उनकी नजरों पर सधी थी। ठहरी सी नीली पुतलियाँ जिनमें हिप्नोटाइज करने की ताकत है, मेरी दृष्टि का निशाना थीं।''[380] 'अमृत और विष' में अरविन्द शंकर स्वयं निरन्तर उपन्यास के सभी पात्रों के साथ उपस्थित रहते हैं। वे मिसेज माथुर का चित्रांकन करते हैं–''सिर पर डमरू जैसा जूड़ा बाँधे, चटक लाल लिपिस्टिक से अपने पतले होठों को रंगे हुए, गेहुएँ रंग की एक सींक सलाई सी युवती ने दरवाजा खोलकर एक बार सिर से पैर तक लच्छू को लय से घूरकर देखा–'हूम डू यू वान्ट ?' पूँछते हुए उसका साड़ी का पल्ला बायें कन्धे से फिसला, जिसे उसने कमर पर हाथ रखकर सिर्फ वहीं तक घिरने दिया और दाहिने हाथ उठाकर अपने डमरू नुमा जूड़े के ठीक लगे हुए काँटों को अपने चटक रंगे हुए नाखूनों वाली उंगलियों से ख्वामह–ख्वाह दबाने लगीं।''[381] इस प्रस्तुतीकरण से लेखक आधुनिक फैशनवाली चंचल उमा माथुर का एक चित्र सा उपस्थित कर देता है। इसी प्रकार मिस्टर माथुर का प्रस्तुतीकरण ''मिस्टर माथुर गाउन और पजामा पहने झील के सामने वाले बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठे हुए कोई किताब पढ़ रहे थे।''[382] मिसेज माथुर का एक और चित्र ''मिसेज माथुर एकटक उसकी ओर देख रहीं थीं। उनकी आँखों में ठीक वैसी ही चमक आ गयी थी, जैसे किसी दूकान में खूबसूरत खिलौने को देखकर किसी बच्ची की आँखों में लालच भरी चमक आ जाती है।''[383] 'सात घूंघट वाला मुखड़ा' में मुन्नी उर्फ दिलाराम के सौन्दर्य को लेखक ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है। ''नई बेगम का हुस्न

बेमिसाल है। जहाँगीर की नूरजहाँ और शाहजहाँ की मुमताज महल की सुन्दरता के बारे में तो बस सुना भर है लेकिन समरू की इस नई बेगम को देखकर लगता है कि सिरजनहार इस हुस्न को रचकर फिर खुद ही ऐसा रीझ गया होगा कि उसे दीन–दुनियाँ की सुध ही बिसर गयी होगी।''[384] जनरल वाल्टर रेनहार्ड (समरू) जुआना के सौन्दर्य से अभिभूत हो जाता है। उपन्यासकार लिखता है–''सौन्दर्य की कोमलता और कठोरता, नारी का समर्पण और नर का आरोपण यदि जनरल को एक साथ कहीं दिखलाई देता है तो जुआना ही में है। वह सामने चली आ रही है। जनरल को लगता है जैसे आँगन में चमकने वाले सूरज की रोशनी इस हुस्न के आफताब के आगे मन्द हो गयी हो।''[385]

अनुभाव चित्रण के द्वारा भी पात्रों का चरित्रांकन प्रस्तुतीकरण द्वारा किया गया है। बशीर खाँ द्वारा नजर भिजवाने पर उसे देखकर जुआना के अनुभावों का चित्रण ''रूमाल में लिपटे हुए सोने के जड़ाऊ डिब्बे में पन्ने का बना हुआ बालिश्त भर लम्बा एक क्रास रखा था, उस पर महात्मा ईसा की सोने की मूर्ति जड़ी हुई थी। ईसा के सर, हाथो और पैरों में मानिक यूँ जड़े गये थे मानों लहू की बूंदे टपक रही थीं। मूर्ति बहुत ही सुन्दर थी। उसे लेने के लिए जुआना बेगम कुर्सी छोड़कर खड़ी हो गयी। मूर्ति को दोनों आँखों और छाती से लगाया। एक शमा दान पास लाने की आज्ञा दी। फिर मूर्ति को देखने में तन्मय हो गयी। उनके चेहरे की कठोरता गायब हो चुकी थी।''[386] चौधरी तोताराम लवसूल के कथन से अनेक अनुभावों का चित्र बन गया है– ''तोताराम की आँखों में कटाव आया, तलवे की मालिश में हथेली ने जोर दिखलाया, हुक्के की गुड़गुड़ाहट थम गयी ×××× चौधरी की आँखों में घृणा की बिजलियाँ कौंध उठी। सीधा होकर बैठ गया। दाहिना हाथ भुजंग काले रौबीले चेहरे की रौनकदार मूँछ पर और बायाँ हाथ उसकी जांघ पर थाप देने लगा, बहुत दबाते हुए भी आवाज में दहाड़ने का ढंग बराबर बना रहा। चौधरी ने कहा, 'किस साले बम्हन–के ने अपनी मैयो का दूध पिया हैगा कि मेरे कारखाने में अपना दखल जमावे। उस साले कढ़ी चट्टे को लातों के भात का बरमभोज दे दूँगा।''[387]

'शतरंज के मोहरे' में दासी मुनिया का चित्रांकन अप्रतिम है। उसकी उम्र साठ–पैंसठ बरस हो रही है किन्तु फिर भी उसे लगता है कि अभी उसकी उम्र क्या है–''इतनी उम्र हो जाने पर भी मुनिया अपने आपको नन्हीं–मुन्हीं ही मानती है। सफेद बालों पर मेंहदी, हाँथों में मेंहदी, आँखों में सुरमा, टिकली, मिस्सी, कानों में इत्र की फुरहरी, धानी दुपट्टा, गुलाबी कुर्त्ता, सर पे झुमका, कानों में करनफूल, नाक में बुलाक, गले में तौंके, बाहों में जोसन, हाँथों में कड़ें और चूड़ियाँ, उंगली–उंगली में अंगूठियाँ, अंगूठों में आरसे, पाँवों में कड़ें–छड़ें झांझ, गरज, कि मुनिया अपने ख्याल से उम्र के पैंसठवे साल में जवानी की देहरी चढ़ रही थी।''[388]

नागरजी ने चित्रांकन की अत्यन्त नवीन, **मनोवैज्ञानिक प्रणाली** को प्रायः सभी उपन्यासों में प्रयुक्त किया है। अन्तरंग विधि के अर्न्तगत किये गये अनेक प्रयोगों में से यह प्रणाली अपना

विशिष्ट–शिल्प रखती है। पात्रों के अन्तरंग व्यक्तित्व को मनोवैज्ञानिक पृष्भभूमि में रखकर उनकी आन्तरिक प्रेरणा और द्वन्द्व का चित्रण करना इस प्रणाली की प्रमुख विशेषता है। आज व्यक्ति के चरित्र का चित्रण सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में किया जाने लगा है। इसी कारण व्यक्ति एक ओर खुलकर अपने वास्तविक रूप में आया है तो दूसरी ओर उसके सहज प्रतीत होने वाले व्यवहार के पीछे भी मनोवैज्ञानिक कारण ढूंढ निकालने के कारण वह अधिक दुरूह और जटिल मनोवृत्ति का प्रतीत होने लगा है।

मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण में ऐसे पात्रों को प्रस्तुत किया गया है जो विरोधी प्रवृत्तियों के परिणाम स्वरूप अधिक जटिल और असाधारण प्रतीत होते हैं। मानो उनकी कुण्ठाओं, ग्रन्थियों, विवशताओं तथा विकृतियों के चित्रण के कारण ये पात्र भी स्पष्ट नहीं हैं। मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण के माध्यमों से जिन पात्रों का निर्माण हुआ है वे अधिक विकासशील हैं।

महाकाल

इस उपन्यास की समस्त पृष्ठभूमि मनोवैज्ञानिक आधार पर निर्मित है। उपन्यास का नायक भी इसी पृष्ठ भूमि में चित्रित है। लेखक ने उपन्यास के प्रारम्भ में स्पष्ट कर दिया है कि यह कहानी किसी चरित्र विशेष की नहीं है प्रत्युत व्यक्ति के प्रति व्यक्ति की संवेदना की कहानी है। 'पाँचू' का सारा चरित्र इसी प्रणाली से ही चित्रित किया गया है। जब 'पाँचू' भी कई दिनों तक भूखा रहता है, 'पाँचू स्कूल में अकेला खड़ा है और देखता है कि स्कूल के फर्नीचर को दीमक खाये जा रहे हैं। इन दीमकों को देखकर उसे समाज के उन दीमकों का भी ध्यान आ जाता है जो स्वार्थवश निरीह जनता को धीरे–धीरे अन्दर ही अन्दर भूख से खोखला बना रही हैं। इस समय वह अपनी ईमानदारी को लेकर डगमगाने लगता है। उसे अपने घर की "आबरू चली गयी तो लाख का आदमी खाक का।"[389] उसके समक्ष कई दृश्य आते हैं, कई पात्र भूखों मर जाते हैं। मुनीर की पत्नी ने अपनी आबरू बचाने का लाख प्रयत्न किया परन्तु, भूख ने उसे भी विवश किया जिसका परिणाम यह हुआ कि आबरू भी गयी। बच्चों और पति के भूखे रहते हुए वह स्वयं अपना पेट भरने के लिए विवश हो गयी। "आत्मा सोने लगी स्वार्थ जागने लगा।" इस प्रकार के दृश्य देखकर पाँचू की इच्छा हुई कि स्कूल की डेस्कें क्यों न बेंच दी जायें ? किन्तु, वह फिर सोंच में पड़ जाता है और यहाँ उसके मानसिक द्वन्द्व का सफल चित्रण लेखक द्वारा हुआ है। पाँचू की "आत्मा कह रही थी यह चोरी है, पर आत्मा के इस उपदेश पर इस समय झुंझलाहट आ गयी। वह खायेगा क्या? उसका परिवार भूखा रहेगा ? यह आदर्श, धर्म, पाप, पुण्य सब पेट भरे की लीला है।"[390] उसने मन ही मन तर्क देकर अपने को समझाया–"दरअसल यह चोरी ही नहीं, दीमकें लग गयी हैं। अगर डेस्कें वगैरा ज्यादा दिन स्कूल में रहीं तो तमाम स्कूल को खा जायेंगी। इन डेस्कों को न बेंचने से सैकड़ों रुपये की स्कूल बिल्डिंग नष्ट हो जायेगी और पाँचू फर्नीचर बेचने के लिए तैयार हो गया, जानते हुए भी कि वह चोरी कर रहा है।"[391]

कुत्ते–बिल्ली की मौत से भी बदतर मनुष्य की मौत देखकर पाँचू की बुद्धि में विचार आता है कि कुत्ते–बिल्ली भी मरते–मरते अपनी पूरी आवाज और ताकत से इसका विरोध करते हैं पर मुनष्य बोल नहीं सकता। भूख के अनेक वीभत्स दृश्य देखकर पाँचू का सिर शर्म से झुक जाता है और फिर वह सोचने लगती है "यह बच्चा जी जाय। माँ के मर जाने के बाद भी यह बच्चा जीवित रहा, क्या यह घटना जीवन के सत्य को सिद्ध नहीं करती ?"[392] पाँचू का हृदय संवेदनशील हुआ और उसमें आत्म विश्वास जागृत हुआ–"मानव हृदय में जिस स्वार्थ रहित प्रेम और कर्त्तव्य का आभास मुझे इस बच्चे द्वारा मिला है मुझे इस कर्म में बदलता है। रोटी लेनी है, अपना जीने का अधिकार सुरक्षित करना है।"[393]

बूँद और समुद्र

प्रस्तुत उपन्यास में एक मुहल्ले को भारत के जन–जीवन का प्रतीक मान उसमें जीने वाले विभिन्न श्रेणियों के व्यक्तियों का चित्रण किया गया है। इन पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का मनोवैज्ञानिक आधार लेकर ही लेखक ने संक्रान्ति कालीन समाज का चित्रण किया है। कुछ पात्र अपनी हीनावस्था से उबरने का प्रयास तक नहीं करते और अपने समाज विरोधी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। कुछ बुद्धिजीवी पात्र युग–चेतना को अपने में समाहित करते हुए समाज विरोधियों का विरोध करते हैं। इस उपन्यास में प्रायः सभी प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को चित्रित करने के लिए उनके पारिवारिक वातावरण का पूरा विवरण देना लेखक आवश्यक समझता है क्योंकि मनुष्य का प्रत्येक व्यवहार किसी न किसी मनोवैज्ञानिक कारणों से ही होता है। ताई, 'नन्दों, 'मोहिनी', 'तारा', 'सज्जन', 'महिपाल', 'शीला', और 'वनकन्या' आज की चारित्रिक विशेषताओं का आधार मनोवैज्ञानिक ही है। ताई के माता–पिता बचपन में ही स्वर्ग सिधार गये थे। परिवार में वह अकेली बच्ची थीं जिसे दादा–दादी के अनुचित लाड–प्यार ने हठीली और बड़ बोली बना दिया था। जब परिवार में चाचा–चाची की सन्तान हुई तो लाड–प्यार क्रमशः कम होने लगा। तब ताई की चिड़चिड़ाहट बढ़ी। ××× जैसे–जैसे परिवार में ताई का अनादर होता गया, वैसे–वैसे इनका अन्तर घृणा से भरता गया। ताई का विवाह द्वारिका दास से कर दिया गया। ताई को कोई पुत्र न हुआ। सेठ द्वारिका दास ने दूसरा विवाह कर लिया और ताई घर छोड़कर चली गयीं और अपने पति के पुरखों की हवेली में अकेली रहने लगी। हृदय की खीझ और अन्तर्मन के अन्धेरे ने 'ताई' के मस्तिष्क को हिंसात्मक भावनाओं से भर दिया। 'ताई' के चरित्र में परिवर्तन का कारण भी मनोवैज्ञानिक है। सन्तान न होने के कारण अब वही 'ताई' बिल्ली के बच्चों को पाकर ममता से भर उठीं। अब उसे अपने से अधिक चिन्ता बिल्ली के बच्चों की हो जाती है। 'तारा' वर्मा से घृणा करते हुए भी 'ताई' उसका बच्चा जनवाती है।

नागरजी ने 'ताई' के चरित्र को यह मोड़ मनोवैज्ञानिक आधार पर ही दिया है। जब बाबा राम जी और सज्जन जैसे अच्छे पुरुषों का सहयोग मिला तो उसके अन्तर का भी परिवर्तन हुआ।

'सज्जन' की पत्नी 'वन कन्या' को वह सौ तोला सोना देती है और राधा के विवाह का आयोजन कर बाबा राम जी के कृष्ण को दहेज में हजारों की सम्पत्ति दान कर देती है। हृदय का यही परिवर्तन पति पर फेंकी गयी 'मूठ' वापस लौटा लेती है और 'ताई' के परिवर्तन के साथ–साथ "जनता की जबान पर ताई धन्य हो रही थी। उनके इधर के कार्य समाज में खूब सराहे गये थे। गंगा दशहरे के दिन ताई का देहान्त हुआ, यह बात उनके सीधे स्वर्ग जाने के सबूत में पेश की जा रही थी।"[394]

'नन्दो' का चरित्रांकन भी परिवार के दूषित वातावरण के कारण मन पर पड़े हुए प्रभाव को ही चित्रित करता है। माँ के डाटने–डपटने पर भी पिता के अनुचित प्यार ने नन्दो को ढीठ बना दिया। लेखक कहता है– "नन्दो का स्वभाव ही ऐसा बन गया था कि वह और सब कुछ बन सकती थी मगर बहुरिया नहीं।"[395] अपने इसी आचरण के कारण पति द्वारा उपेक्षित वह पिता के घर में आकर रहने लगी। ताई के सम्पर्क में आकर वह अनेक दुष्कृत्य करती है। उसका इरादा अपनी माँ को मारकर घर की एकाधिकारिणी बनने तक हो जाता है। नन्दो की माँ उसके विषय में स्वयं जानती है– "कुएँ, समन्दर की थाह है, पर नन्दो के पेट की थाह नहीं।"[396] नन्दो के चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

'मोहिनी' भभूति सोनार की पुत्र वधू है और उसका त्रुटिपूर्ण वासनात्मक चरित्र का कारण भी सदोष पारिवारिक जीवन है। लेखक कहता है "देह भोग के रूप में नारी जीवन की सार्थकता का पाठ उसने निरे बचपन में ही पढ़ लिया था।"[397] सौतेली माँ और पिता की काम–क्रीड़ाओं को देख बड़ी भी आस–पास के बच्चों के साथ बड़ों की काम–क्रीड़ाओं का अभिनय किया करती। फलस्वरूप आयु से पूर्व ही बड़ी के मन में नारीत्व की भावना जागी। मोहिनी को अपना पति अपटूडेट दृष्टिगोचर नहीं होता। इन्हीं सब कारणों को लेकर मनोवैज्ञानिक प्रभाव ने अवसर मिलते ही 'विरहेश' के साथ भगा दिया।

'कन्या' के परिवार का वातावरण अत्यन्त दूषित है वह स्वयं बताती है– "मेरी ताई और माँ में सौत का रिश्ता चलता है। कई कारण और हैं जिनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव 'कन्या' के हृदय को विद्रोह से भर देता है– "कन्या अहंकारिणी है, नैतिकता की शक्ति उसके अहंकार का पोषण करती है। घर के गन्दे वातावरण की प्रति क्रिया स्वरूप उसका बड़ा भाई और वह आत्म तेज से दीप्त होकर बालिग हुए। अपने विवाह की ट्रेजडी के बाद उसके बड़े भाई तो जिन्दगी से जूझते–जूझते बौरा गए, कन्या ने उनके दिमागी असन्तुलन से भी नसीहत लेकर अपनी नैतिकता को अधिक कसा। हाँ इतना प्रभाव अवश्य पड़ा कि उसका आन्तरिक विद्रोह अधिक मुखर हो उठा। वह खुले शब्दों में अपने घर के गुरुजनों के कुकृत्यों की उनके मुह पर निन्दा करने लगी।"[398]

'शीला स्विंग' के विषय में उपन्यासकार कहता है "शीला गरीबी से विद्रोह करती है। वे हठ पूर्वक फिजूल खर्च थीं, आरम्भ से ही विद्रोहिणी थी।"[399] शीला के घर के अभाव भरे वातावरण

ने उसे विद्रोह करने के लिए बाध्य किया। विलायती मिशन की नौकरी नहीं की। उनके वजीफे बन्द हो गए किन्तु– "यह सब होते हुए भी अपनी प्रबल इच्छा शक्ति के कारण वे पढ़ लिखकर डॉक्टर बन गयीं।"[400]

'सज्जन' के मन पर भी पारिवारिक वातावरण का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा। कलाकार होने के नाते वह सफलता और कीर्ति प्राप्त करने में सफल हुआ, चित्रों के प्रति बढ़ती हुई लगन ने उसमें स्वार्थ की भावना उत्पन्न की। इस स्वार्थ की दृष्टि से वह मन ही मन नारी को अक्सर इस्तेमाल में आने वाली चीज, मनोरंजन और दैहिक स्फूर्ति देने का साधन मानने लगा। जाहिर में ओढ़ी गयी चेतना के तौर पर हिन्दी, विलायती आदर्शों की बड़ाई करते हुए वह भी नारी को बड़ी–बड़ी उपमाओं से सजाता था– "आज उसी ऊपरी कल्चर की काई एकाएक हट गयी। एक स्त्री पर होने वाले अत्याचार और कारुणिक परिस्थिति में उसकी मृत्यु हो जाने से सज्जन के मन की ईमानदारी जोश के साथ उबल कर बाहर आयी और इसी ईमानदारी के प्रकाश में जब उसने अपने आपको जगदम्बा सहाय की खूब सूरत लड़की के प्रति वासना विकार से ग्रस्त देखा तो अपने प्रति उसकी लज्जा का ठिकाना न रहा।"[401] यहाँ लेखक ने सज्जन की ईमानदारी, नारी के प्रति उसकी भावना तथा वासना और तज्जन्य लज्जा का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

'सज्जन' ने अपने को इस विकार से ग्रस्त देखा और लज्जित होकर वह अपने दिल को 'वन कन्या' की ओर से अलग करने का प्रयास करता है। नागर जी ने 'सज्जन' के इस स्थिति में पड़े हुए दिल की अजीव स्थिति का चित्रण किया है। "यह दिल भी अजीब गोरख धंधा है। पहले पहल जब वह अपने आपसे कतराना शुरू करता है तब अपनी चतुराई पर गर्व करता है। जब वही चतुराई भय का कारण बनती है, तब उससे भागता है और भय, जब बिगड़े साँड़ की तरह रंगेदना शुरू करता है, तब अपने बचाव के लिए तेज भागते–भागते उसके अणु–अणु बिखरने लगते हैं। इससे भयग्रस्त होकर जब बेतहासा भागने लगता है तो अपनी ही भूल भुलैया मे टकरा–टकराकर पागल हो जाता है। ×× अगति के खूँटें में बँधा, नये नाथे गए जंगली भैंसे की तरह उसका मन मुक्त होने के लिए फुफकारें छोड़ रहा था।"[402]

महिपाल दहेज प्रथा को लेकर और सवर्णो में भी ऊँच–नीच, अमीर–गरीब आदि परिस्थितियों को लेकर अपनी भाँजी की शादी में आर्थिक असमर्थता के कारण उसका मन आक्रोश से भर उठता है और वह पैसे वालों के प्रति अपने मन में खीझ उठता है। "ये पैसे की दुनियाँ बहुत दिनों तक नहीं रहेगी आज तो समाज का शासन ही बेईमानों और लुटेरों के हाँथ में है लोक जीवन की मान्यताएँ वहीं है जो वे चलाते है। जो इस–इस धाँधली बाजी को समाज की सौभग्य चमक बताकर अपना खोटा सिक्का चला रहे है, वे यह भूल जाते है कि करोड़ो, भूखों, बेकार और नंगे उनके पीछे, 'मरता क्या न करता' वाला स्प्रिट लेकर पागल जोश के साथ बढ़े चले आ रहे है। इन मुट्ठी भर धाँधली बाजों को जलाकर खाक कर देगें तब मेरी लड़कियों के

साथ ज्ञान रूपी दहेज जायेगा और उसी की कीमत होगी। चोर, सारे बदमास। मेंरी गरीबी का मजाक उड़तें है।''[403] क्रोध में मनुष्य की वाणी कभी–कभी रुक–रुक जाती है और वह एक–एक शब्द को रुक–रुक कर दो–दो, तीन–तीन कह जाता है, साथ ही क्रोध किये जाने वालों के प्रति अपशब्द भी निकल जाते है। यहाँ जो इस–इस धाँधली बाजी और चोर साले बदमाश क्रोधित व्यक्ति की भाषा को चित्रित करते है। पत्नी के साथ झगड़ाकर महिपाल घर से चला जाता है और दो दिन तक वापस नहीं आता। कर्नल के समझाने पर वह कर्नल के साथ घर लौटता है। इस समय उसकी मनः स्थिति का चित्रांकन देखिए– '''घर से मुँह चुराकर' दो दिनों तक सन्यास और विलास के झूले पर अपने अतृप्त अनबुझे विद्रोही मन को झुलाकर कर्नल के साथ वह उसी प्रकार लौट रहा है जैसे घर से रूठकर भाग जाने वाला लड़का गिरफ्तार होकर लौट रहा हो।''[404]

'शीला' के बिदा होकर आते हुए शीला ने सूनी पथराई हुई दृष्टि से इसे देखा था। उस समय भी दोनो की व्याकुलता का कितना भव्य चित्रण है। ''महिपाल को ऐसा लगा मानो पहाड़ की सुरंग में न दिखलायी पड़ने वाला विकल झरना बह रहा है। उसका मन खमोंशी के इस्पाती संदूक मे अपने को बन्दकर हुड़क–हुड़क उठा।''[405]

'महिपाल' घर वापस आ जाता है। कल्याणी ने सकरुण दृष्टि से पति को देखा और तब उसे कैसा लगा कितना मनोवैज्ञानिक चित्रण– ''महिपाल उस दृष्टि का सामना नहीं कर पाया। उसे आज का समझौता अब तक रह–रह कर अखर रहा था। इस समय अकेले में कल्याणी के सम्मुख वह कुछ–कुछ उसी प्रकार अनुभव कर रहा था जैसे हारे हुए राजापुर ने विजेता सिकन्दर के सम्मुख किया होगा।''[406]

'महिपाल' को मनुष्य के प्रेम से बढ़कर लौकिक वैभव को मानना बड़ा बुरा लग रहा था। उसकी इसी मानसिक स्थिति का सच्चरित्रांकन लेखक के शब्दों में– ''उसे लग रहा था कि मनुष्य के प्रेम से बढ़कर वह जो इस प्रकार लौकिक वैभव को मान रहा है, वह अन्याय है। कार–बँगले–नौकर–चाकर और नाना प्रकार के आर्थिक वैभव में सुख और शान भले ही हो परन्तु महत् भावनाओं और विचारों के आगे उनका कोई मूल्य नहीं। अपनी नौजवानी में महिपाल ने न जाने कितनी बार सिद्धान्तों के लिए आर्थिक वैभव को ठुकराया है। उसने सिद्धान्तों के लिए ही अपनी ननिहाल का वैभव छोड़ा। रूप–रतन से भी नाता तोड़ा। भाई के विवाह में दहेज न लिया। भाई की उन्नति के लिए अपनी पत्नी के गहने तक बेच डालने में उसे कभी कोई मोह नहीं हुआ। वही महिपाल आज आर्थिक वैभव के लिए कौन–कौन महत् सिद्धान्तों के त्याग नहीं कर रहा है। वह कितना पतित हो गया है।''[407]

नागरजी ने संवादों के द्वारा भी एक पात्र द्वारा या दो पात्रों द्वारा अन्य पात्र का चरित्रांकन की पद्धति अपनायी है। महिपाल की बुद्धि और भावना शीलता के विषय में सज्जन और कर्नल दोनों अपने–अपने तर्कों द्वारा पुष्टि करते हैं। सज्जन का कथन है– ''वह

इन्टेलेक्चुयल तो नहीं, मगर बड़ा भावना शील प्राणी है। यों पढ़ता भी खूब है, सोचता भी खूब है महिपाल। मगर यह सब होते हुए भी मेरा अनुभव यह कहता है कि उसमें जबर दस्त उथलापन भी है और उसमें दम्भ, मिथ्या अभिमान भी जरूरत से ज्यादा है।'' कर्नल ने कहा– ''यह बात तुम्हारी बिल्कुल ठीक हैगी। मैं यह मानता हूँ, जहाँ तक आदमियत का सवाल है, भलमनसाहत की बात है, वहाँ तुम्हारा–उसका कोई कम्पैराइजन ही नहीं हैगा। महिपाल का जी बहुत ओछा–छिछोरा हैगा। मगर भाई देखों सज्जन। मेरा यह सिद्धान्त रहा हैगा कि मुसीबत में पड़े दुश्मन के लिए भी जान लड़ा देनी चाहिए। महिपाल तो अपना यार है, इतना पुराना। पोंगा वामन हैगा सुसरा अब उसका क्या करें ? मैं तुमसे झूंठ नहीं कहता बिन्नो। महिपाल आज बड़ा ग्रेंट आदमी होता, मगर सुभाव के छिछोरेपन की वजा से उसका फ्यूचर सदा के लिए बिगड़ा हैगा।''[408]

सज्जन ने कहा– ''यहाँ मैं तुमसे मतभेद रखता हूँ कर्नल ! यह काम महिपाल की छिछोर बुद्धि नहीं कर रही। यह काम उसका खूब सोंचा हुआ, अर्थ भरा और स्पिरेटेड मूड का है। वह अपने पैसे के अभाव की वजह से मुझ से बेहद जलता रहा है। ××× मैं तुमसे सच कहता हूँ कर्नल। महिपाल का चरित्र अब पहले से बहुत गिर गया है। शीला के साथ संबंध तोड़कर अपनी पत्नी के लिए जो ये वफादार बना है तो उसमें भी कुछ गहरा विचार ही है उसका।''

कर्नल बोलता है– ''नहीं वह तो मेरी आँखों देखी बात हैगी, सज्जन। इसके साले की बारात में जब इसकी और शीला की बदनामी की बात उड़ी कि डॉक्टर शीला का पैसा खाता है, तो उस पर घर में लड़ाई भई। यह घर छोड़कर शीला के यहाँ रहने को चले गए। फिर, खैर, कल्याणी जी आई, मैं इसे शीला के यहाँ से मोटर पर अपने साथ लाया। मेरी नजरों से कुछ नहीं छिपा भया है।''[409]

इस प्रकार उपर्युक्त वार्ता द्वारा महिपाल का सम्पूर्ण चरित्र–चित्रण हो गया है।
महिपाल के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लेखक ने उसका सम्पूर्ण चरित्र सुनिश्चित कर दिया है। ''यह ठीक है कि महिपाल ने पैसे को कभी पैसा नहीं समझा। सदा अभाव से जूझा, पैसे की इच्छा बनी रही फिर भी उसने पैसे के आगे कभी सिर नहीं झुकाया। यद्यपि धनाभाव से उसका जर्जर अचेतन मन पैसे के आगे परास्त हो चुका था। तभी तो वह चोरी कर सका। पैसा उसकी सारी शक्ति को खा गया। शादी–व्याह, जनेऊ–मुण्डन, बच्चों की पढ़ाई, हैसियत की चढ़ाओढ़। कल्याणी का हठ–सबने मिलकर क्रमशः उसे आदर्श भ्रष्ट कर दिया।''[410] लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि एक आदर्श व्यक्ति पैसे के अभाव में और विशेष कर पत्नी के विरोधी मनोभाव के कारण उसे आदर्श भ्रष्ट होने पर विवश कर देते हैं। व्यक्ति के अचेतन मन पर परिस्थितियों का प्रभाव भी उसे पथ भ्रष्ट कर देता है।

सात घूंघट वाला मुखड़ा

प्रस्तुत उपन्यास में बेगम समरू और नवाब समरू के चरित्र मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन प्रणाली के सुन्दर उदाहरण हैं। 'बेगम समरू', मुन्नी उर्फ दिलाराम बशीर खाँ के पिता द्वारा खरीद कर लायी गई थी। मुन्नी बशीर खाँ से हार्दिक प्रेम करने लगी थी। किन्तु, बशीर खाँ ने जब उसे बेचने का निश्चय कर लिया, उस समय दिलाराम की अन्तर्दशा देखिए–

''दिलाराम ने झटके से सिर उठाकर बशीर खाँ को देखा। आँसुओं का दरिया बाँध फोड़ कर उमड़ पड़ा। बशीर खाँ के पैरों पर अपना सर पटकते हुए बोली– ''तो इस घर से निकाले जाने के वक्त मैं इन्हीं कदमों पर अपना सर पटक–पटक कर मर जाऊँगी। मैं तुम्हें छोड़कर हरगिज नहीं जाऊगी। हरजिग नहीं, हजगिज नहीं।''[411]

बेंचे जाने की असलियत ने दिलाराम को, उसके दिल को आन्दोलित कर दिया। उसके मानसिक आन्दोलन और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण दृष्टव्य है–''दिलाराम के दिल का कोना असलियत की भट्टी में तप–तप कर पिघल और ढल रहा था। कल शाम जब उसकी बांदी और सहेली महबूबा ने उसे बताया कि बशीर खाँ ने दस हजार सोने की अशर्फियों पर उसका सौदा पक्का कर दिया है तो उसकी भोली–भाली मन की दुनियाँ में एकाएक प्रलय सी आ गयी थी। उसका सपनों का संसार पानी के बुलबुलों की तरह एकाएक गायब हो चुका था। कल शाम से लेकर अब तक वह एक पल नहीं सोई है। बशीर खाँ से मिलने के लिए रात भर बावली हवा के झोकों सी इधर–उधर घर भर में डोलती रही है।'' उसके मन में अनेक प्रकार के विचार उठते रहते हैं– ''कहाँ तो वह सोंचती थी कि सकूर खाँ के मरते ही वह बशीर खाँ की बीवी बन जाएँगी। समझती थी कि सकूर खाँ का लालच ही बशीर खाँ की बेवशी है, मगर बशीर अपने बाप से बड़ा लालची निकला। उफ! पिछले पाँच वर्षों में इसने कितना ढोंग किया मुझसे। मैं हर पल उससे ठगी गई। मेरा हर सच झूठ निकला! दिलाराम रात भर तप–तप कर जिस नये होश को पाती रही थी उसके पीछे एक धोखा था मगर तब भी अपने टूटे दिल के सहारे साँसें पालती रही थी कि बशीर खाँ उससे नजरें मिलाते हुए फिर उसका हो जाएगा, सोने की अशर्फियाँ विलायती नवाब को लौटा दी जाएँगी। मगर वह आखिरी धोखा भी कल आँखों के सामने से हट चुका। जिस बशीर खाँ को देख–देख कर उसका मन हरदम हरकता रहता था, वही अब दिलाराम को फूटी आँखों नहीं सुहा रहा है। वह आदमी ही क्या जिसे दिल की कद्र न हो। इन्सान का दिल दुनियाँ की सारी दौलत से कहीं ज्यादा कीमती है। इस लालची ने मेरे दिल की कदर न की। बड़ा धोखे बाज निकला।''[412]

मुन्नी को अब अपने भविष्य के लिए देखना है। उसी प्रसंग में उसे उसकी स्मृति में पिछले दिनों की यादें आने लगीं और फिर वह अपने बिचारों पर दृढ़ हो जाती है–''सौतेले भाई के अत्याचारों से मजबूर होकर जब अपनी माँ के साथ मेरठ से चली थी तब फूट–फूट कर रोई थी। अपना शहर, अपनी गली, पास–पड़ोस की हमजोलियाँ, वह अपने आंगन का नीम का

पेड़–उस वकत उसके किशोर मन में प्रेम और वियोग की यही परिभाषा थी। लेकिन वह सब छूटा, डाकुओं के हाथों में पड़कर माँ भी किस्मत ने छुड़वा दी। मन के बड़े–बड़े मोहों से मुन्नी जब मोरचे हार चुकी थी तो यह बशीर खाँ का विछोह भला उनके आगे क्या है। मगर आज इसको छका कर ही जाऊँगी। 'इन्सान के भेष में छिपे हुए जानवर को ही साबित करके जाऊँगी।''[413]

कहीं–कहीं इस उपन्यास में भी नागर जी ने एक पात्र के मानसिक विचारों द्वारा दूसरे पात्र का चरित्रांकन इसी प्रणाली के अन्तर्गत किया है। दिलाराम समरू के चित्र को झील में माँद बनाकर रहने वाले इस विलायती भेड़िये को आखिर किस तरह से मैं अपने बश में करूँगी महबूबा, यह तो बशीर खाँ और उसके अब्बा मरहूम से कहीं ज्यादा बेदिल और खूँखार नजर आ रहा है।''[414] इसी प्रकार जनरल रेनहार्ड ने जब देखा तो उसकी सख्त आँखों में जुआना को देखते ही तरावट आ गयी। लेखक ने जुआना में अप्रतिम सौन्दर्य तो देखा ही कोमलता और कठोरता भी देखा–''सौन्दर्य की कोमलता और कठोरता, नारी का समर्पण और नर का आरोपण यदि जनरल को एक साथ कहीं दिखलाई देता है तो जुआना में। वह सामने चली आ रही है जनरल को लगता है जैसे आंगन में चमकने वाले सूरज की रोशनी इस हुस्न के आफताब के आगे मन्द हो गई हो। पिछले चार वर्षो में जुआना ने जनरल के अन्दर वाले खूँखार भेड़िये को कम से कम अपने वास्ते पालतू कुत्ता बना लिया।''[415] जुआना ने टॉमस को भी अपने सौन्दर्य से पालतू कुत्ता बना लिया। टॉमस कहने लगा ''जब तक जिऊँगा मुस्तैद रहुँगा''। टॉमस के इस वाक्य का जुआना पर क्या प्रभाव पड़ा ? मनोवैज्ञानिक चित्रण करता हुआ मुन्नी, दिलाराम या जुआना अपने मन में सोचने लगती है– ''मुन्नी–दिलाराम–जुआना अब दूसरों की बेकसी से अपना श्रृंगार करेगी, उसके लिए अपनी बेकसी की झलक–पलक भी अब किसी को दिखलाना मुहाल है। औरत जब दूसरे की बन जाती है तो अपनी नहीं रह जाती, इसलिए जुआना के अन्दर वाली औरत अब दूसरों को अपना बनायेगी और अपनी ही बनी रहेगी, सिर्फ अपनी। सिर्फ अपनी।''[416]

जुआना की होशियारी और छलना भाव तथा घृणा और फरेब आदि से पूर्ण मानसिक सोंच का चित्रण देखते ही बनता है, ''जुआना में फिर से जीवन का कसाब आ गया था। अब तक बशीर खाँ के प्रति उसकी तीव्र घृणा ही उसकी अन्तर शक्ति बनी हुई थी। नई स्थिति में ढकेली जाने से ही उसने अपनी जीवनेच्छा के लिए जो फरेब साधा था वह अब उसे आगे नहीं ले जा सकता। अपने जीवन–पुरुष के रूप में समरू केवल धोखे की टट्टी था। वह अपनी इस मजबूरी को जानती थी। टॉमस को उसने बशीर खाँ के घर से यहां आने के बाद नये मालिक को रिझाने के लिए सहारे के रूप में स्वीकार किया था। वह सहारा भी धीरे–धीरे जितना ही प्रबल बनता गया उतनी ही प्रबलता से उसे अपने से बांधने के लिए 'दिलाराम' से जुआना बनने वाली उसके भीतर की होशियार औरत ने अपना प्रेम का जादू फैलाया था। उस जादू में जो वह खुद भी फँसकर अपने को छलने लगी थी, मगर पर्दा–दर–पर्दा मन की किसी तह में वह जानती थी कि

वह एक छलावा भर ही है। ऊपरी तौर पर वह जिसके नाम तक से नफरत करती थी उसी बशीर खाँ से उसे दरअसल प्यार था। नौ बरसों के बाद देख लेने की इच्छा पूरी होते ही आज वह खूब समझ गई है कि उसे केवल बशीर खाँ से प्यार है, लेकिन वह प्यार उसे अब कभी नहीं मिल सकेगा। जो सुलभ है, वह केवल प्यार का नाटक भर ही है। उसे उतने ही से सन्तोष करना होगा। मन की घृणा दूसरों को खाते–खाते अन्त में खुद अपने को ही खा जाएगी। इसलिए अगर अपनी सुरक्षा के लिए उसने समरू के साथ वह नाटक साधा है तो कामसुख के लिए उसे टॉमस से भी वैसा ही नाटक साध लेना चाहिए। मन में भले बशीर खाँ रहे, जैसा खुदा रहता है मगर तन में टॉमस को अब बाँध ही लेना होगा। उसके बिना अब दूसरी गति नहीं। थोड़ी ही देर में मन तेजी से नाचकर स्थिर हो गया।''[417]

अपने अन्तिम समय में जब बागी फौजी सिपाहियों ने उसे गोली मारकर उसके बेहोश होने पर उसे बांध लिया है, जब उसे होश आता है, तब भी वह आँखें मीचे पड़ी रहती है। अट्ठारह घण्टे बीत जाते हैं। भूख–प्यास, चिलचिलाती धूप, बागियों की गालियाँ इन किसी का असर बाकी नहीं रह गया था। इस समय उसका आत्म विश्लेषण और पश्चाताप उसके समस्त जीवन का लेखा–जोखा प्रस्तुत कर देता है। ''परिस्थितियों और भावनाओं के घूँघट दर घँघट उठते–उठते जुआना के सम्मुख अब यह सत्य स्पष्ट हो गया कि मनुष्य की इच्छा केवल एक ही होती है, उसे दोहरे–तेहरे अनेक रूप देने की क्रिया गलत नहीं लेकिन उस अनेकता की एक रूपता अनिवार्य शर्त है। प्रेम–विलास और राजनैतिक महात्त्वाकांक्षा दो अलग–अलग इच्छाएँ हैं, उन्हें एक में बांधने का प्रयत्न निष्फल होना ही चाहिए था। जुआना अब एक की होकर रहेगी, एक ही से लव लगायेगी और वह 'एक' खुदा का बेटा जीजस क्राइस्ट ही होगा। जीजस।''[418]

जनरल वाल्टर रेनहार्ड का चित्रांकन भी उपन्यास में कई प्रसंगों में मनोवैज्ञानिक चित्रण–प्रणाली द्वारा किया गया है। टॉमस और जुआना के पारस्परिक आकर्षण और सम्भावित षड्यन्त्र को समझ कर नवाब समरू अत्यन्त क्रोधित होते हैं। इस समय उनकी मानसिक और शारीरिक स्थिति को अनुभावों द्वारा व्यक्त किया गया है– ''जनरल वाल्टर रेनहार्ड साहब क्रोध में बार–बार दांत पीसते हुए कमरे में बेचैनी से चहल कदमी कर रहे थे। बीच–बीच में आँखें यों चमक उठती थीं जैसे बरसाती आकाश में बिजली–चमकती है। ××× जनरल की बावली चहल कदमी काफी देर तक होती रही, मानों पिंजरे में अचानक बन्द हो जाने वाले शेर को अपनी नयी स्थिति भयंकर रूप से तड़पा रही हो ×× फौरन ही छोटी बेगम साहिबा को बुला लाने का हुक्म दिया लेकिन जुआना बेगम साहबा उस वक्त गुस्ल फरमा रहीं थी। उन्हें जनरल साहब का संदेशा पहुँचा दिया गया है। जवाब सुनकर जनरल साहब ने दांत पीस लिये थे और छोटी बेगम साहबा के लिए जहरीली नागिन, खूबसूरत बला, और इसी तरह का कोई घृणा भरा शब्द अपनी विलायती जबान में

भी कहा था।''[419] यहाँ नवाब समरू के स्थायी भाव, क्रोध, घृणा तथा अनुभाव और संचारी भावों का चित्र खड़ा कर दिया गया है। क्रोध में दांत पीसना, बेचैनी से चहल कदमी करना और जहरीली नागिन, खूब सूरत बला इत्यादि शब्दों का प्रयोग उनके मानसिक स्थिति को रेखांकित कर रहे हैं।

जुआना के प्रति नवाब समरू के विचारों का चित्रण भी उनकी मानसिक उलझन प्रकट करता है। ''यह औरत अब तो मेरे लिए एक पहेली बन गयी है। एक बार शक हुआ था कि जुआना मुझे धोखा देकर टॉमस से किसी किस्म की साठ–गाँठ कर रही है। लेकिन मेरा हर गोयन्दा हर बार जाँच–पड़ताल के बाद मुझे यही इत्मीनान दिला जाता है कि जुआना और टॉमस की मुलाकातों में भी सिर्फ मेरा ही जिक्रे खैर होता है।–– कुछ समझ में नहीं आता आखिर में यह औरत चाहती क्या है और इसकी वजह से टॉमस ने मेरी हुक्म उदूली क्यों की।''[420]

शतरंज के मोहरे

इस उपन्यास में गाजीउद्दीन हैदर, बादशाह बेगम और नसीरूद्दीन हैदर सभी का चरित्रांकन मनोवैज्ञानिक प्रणाली द्वारा किया गया है।

नवाब गाजीउद्दीन हैदर बादशाह होते हुए भी अपने को नितान्त अकेला महसूस करता है। उसे टिमटिमाता हुआ चिराग, लाल–लाल जलता सुतारा सभी उसके सुकून में जलन का अहसास कराते हैं। तारों भरी रात, छल–छल करती नदी, गुम्बद मीनारें सब उसे ख्वाब लगती हैं। बादशाह का घुटता हुआ मन खुलना चाहता है और वह सुलखिया से अपने मन की बात कहने के लिए आतुर है। वह सुलखिया से पूछता है–''मन को दोस्त बनाना ही पड़ता है। दिल को दिल से ही राहत है वरना इनसान बेसहारा हो जाय। सुलखिया तू मेरा मन बन सकेगी ? खामोश मन नहीं चाहता, बोलता मन चाहता हूँ। मैं बादशाह का मन नहीं चाहता इनसान का मन चाहता हूँ। मैं दल–दल से उबर कर सधी जमीन पर पाँव रखना चाहता हूँ। क्या तू यह भूल सकेगी कि तू मेरी बाँदी नहीं मेरा मन है ?''[421]

गाजीउद्दीन हैदर एक रात बड़े ही दुखी थे क्योंकि उनके बिरूद्ध अनेक प्रकार के षड्यन्त्र किये जा रहे थे। इस समय गाजीउद्दीन अपने दुःख–दर्द की उलझनों में चक्कर काट रहे थे ।नागर जी ने उनकी इन उलझनों को मनोवैज्ञानिक ढंग से उभारा है– ''गाजीउद्दीन हैदर इस रात बड़े ही दुखी थे। उनकी पत्नी उनकी शत्रु थी। उनका बेटा उनसे और वे अपने इकलौते बेटे से नाराज थे। उनके पोते को लेकर शहर में शर्मनाक चर्चा फैली थी और वे यह तय ही नहीं कर पा रहे थे कि मुन्ना जान को अपना मानें या न मानें। किसके कहे पर विश्वास करें ? उनका कोई अपना न था। यों कहने को हजार थे पर कोई जाँनिसार न था, कोई गमगुसार न था। लाखों जानों का मालिक, करोड़ों का धनी अपने आपको एकदम अकेला महसूस कर रहा था। वह महसूस कर रहा था कि उसके कदमों से साँप लिपटे हैं और उसके चारों ओर लपलपाती जीभें निकाले खूँख्वार भेड़िये खड़े हैं।

गोमती पार दूर से दिये से टकटकी लगाये बादशाह अपने दर्द की उलझनों में उसी बिन्दु–शून्य–अपने–आप में पीड़ा को लय कर एक नयी गति पाता है। गति दोनों ही दिशाओं में होती है, या भँवर से छूटकर दर्द में डूब ही जाता है और या अन्तर की उछाल से चेतना का स्पर्श मिलता है। गाजीउद्दीन डूबना नहीं चाहते हैं जिसके सहारे दर्द की अँधेरी भूलभुलैया में भी उन्हें राह मिलती रहे– और राह ही नहीं मिल रही है। गाजीउद्दीन जानना चाहते हैं कि साजिश कहाँ–कहाँ है, बादशाह बेगम ही क्या अकेले उनके खिलाफ साजिश में हैं। आगामीर नहीं, अंग्रेज नहीं, उनके दरबार के कुल अमीर–उमरा नहीं, कौन नहीं ?– उनके राज्य का कौन–सा ऐसा व्यक्ति है जो उनके खिलाफ षड्यन्त्र नहीं कर रहा ?

बाहर बरामदे में कुत्ते के भौंकने की आवाज आयी। कुत्ता लगातार भौंक रहा है। उसका भौंकना उनके सुकून को तोड़ रहा है। उन्हें ऐसा महसूस होता है जैसे जख्म को कोई बार–बार उँगली से कोंच रहा हो। कुत्ता लगातार भौंक रहा है। परेशानियों में यह एक नयी परेशानी और जुड़ रही है; क्या यह कुत्ता भी जिसे वो इतना प्यार करते हैं, उनके खिलाफ साजिश में शरीक है ? क्या यह भी अवध का तख्तो ताज चाहता है ?..... या खुदा रहम! या परवर दिगार अँधेरे की इन चक्करदार गलियों से निजात दे, सीधी राह दिखा– अन्धे की लाठी बन– दुनिया के सबसे ज्यादा दुखी लाचार इनसान आलम पनाह गाजीउद्दीन हैदर को पनाह दे! उसे तेरी रहमत के साये की जरूरत है। – कुत्ता लगातार भौंक ही रहा है, क्या हो गया है इस कुत्ते को ? मेरी मुसीबत के वक्त क्या यह अदना जानवर भी मेरे सामने शहजोर बनना चाहता है ? सुलखिया दरोगा को बुला।''[422]

यहाँ बादशाह गाजीउद्दीन हैदर के अन्तर्जगत के अविश्वास, एकाकीपन और सभी पर अपने अविश्वास का चित्रण उसके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करता है।

नसीरूद्दीन हैदर भी गाजीउद्दीन हैदर की भाँति सभी के प्रति निराश, कुंठाग्रस्त एवं मनःस्ताप से पीड़ित व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। वह अपने को अंग्रेजों की शतरंज का बादशाह समझता है, वह अपने मनस्ताप का उद्घाटन करता हुआ मलिकए– जमानियाँ की गोद में सिर रख के आँखें बन्द किये हुए उससे कहता है– ''हम सचमुच बादशाह होना चाहते हैं, बहलाओं मत जानेमन। हम अंग्रेजों की शतरंज के बादशाह हैं। हम उसकी चाल पर चलते हैं। मुझे यह खलता है, बेहद खलता है।''[423] नसीरूद्दीन हैदर को अपने पुंसत्व पर भी संदेह है। मुन्नाजान को दुलारी, नसीरूद्दीन का पुत्र नहीं बताती है क्योंकि उसका चेहरा नसीरूद्दीन से बिल्कुल नहीं मिलता। दुलारी मोहम्मद अली को नसीरूद्दीन का पुत्र बताती है और प्रमाण में कहती है कि मोहम्मद अली का नाक–नक्शा, रंग, उसकी आदतें तक हूबहू आपकी तस्वीर पेश कर देती हैं। नसीरूद्दीन का मन दुलारी की बातों से भटक जाता है और वह कहता है– ''खुदा जाने सच क्या है। मैं तो कभी–कभी खुद यह भी अहसास नहीं कर पाता हूँ, मैं जिन्दा हूँ या मुर्दा ?''[424]

नसीरूद्दीन अपनी जन्म दात्री माता को लेकर शंका युक्त था। वह अपने प्रत्यक्ष पुत्र मुन्नाजान और दैवी माया से उत्पन्न कैवाँजाह के सम्बन्ध में भी शंका युक्त था। उसे पूर्ण रूप से किसी बात पर भरोसा नहीं होता था– "उसे हरदम यही महसूस होता है कि उसका कोई नहीं, सब उसे ठगते हैं। इसीलिए वो सनक गया। उसका भोला–भाला सहज विश्वास करने वाला हृदय सनक के बावजूद विश्वास किये बिना रह नहीं पाता और इसी वजह से रोज अपने लिए एक नयी मुसीबत खड़ी कर लेता है। चूँकि मुसीबत से कतराना चाहता है इसीलिए परिस्थितियों के प्रति लापरवाही बरतता है और लापरवाही जब उसके लिए दुनियावी घुटन पैदा कर देती है तो कमजोरों के प्रति क्रूर हो उठता है। नसीरूद्दीन का मन खुद उसके लिए ही एक तेज भँवर है जिसमें से कभी वह उबर नहीं पाता।"[425]

नसीरूद्दीन हैदर श्रीमती रिकेच और उनके पति के इस्तीफा देकर चले जाने के बाद ऐसा महसूस करने लगा कि वह बिल्कुल अकेला हो गया है। कौशल के साथ प्रस्तुत किया है– "वह तो कहिए कि बादशाह सलामत का जी दुख या सुख में कभी एक ठाँव निचला नहीं बैठ सकता वरना वे पागल हो गये होते। फिर भी जब घुटन सिमट आती है। नसीर की अनुभूति बड़ी तेज हो जाती है, तब वह बावला हो जाता है। उसे आज तक कभी यह समझ में न आ सका कि जिन्दगी की असलियत क्या है, प्यार किसे कहते हैं ? भरोसा कैसे मिलता है ? बचपन में जैसा माँ ने कहा वैसा किया, जवानी में पिछले ग्यारह बरसों से जैसा दुलारी ने चलाया वैसा चला–अपनी तरफ से उसने दोनों को पूरे समर्पण के साथ अपना मन दिया। और उन दोनों ने भी ..... हाँ, उन दोनों ने भी कम से कम हजारों बार यह विश्वास तो दिलाया ही था कि वे नसीरूद्दीन हैदर पर अपनी जान तक कुर्बान कर सकती है; पर नसीरूद्दीन कभी जी भरकर इस पर विश्वास नहीं कर सका। सपने में जो अनुभूति सच होकर प्रभावित करती है, वही जागने पर झूठी हो जाती है; ठीक इसी तरह नसीरूद्दीन भी जब कभी अपनी स्वाभाविक बहक–भरी बेहोश रोजमर्राह से चौंककर जागता है तो उसका होश दिल की धड़कनों में सिमटकर बार–बार कहता है–यह सब झूठ है, ये सब खुद गरज़ हैं। तुम्हारा कोई नहीं।"[426] नागर जी ने हिंसक पशुओं के क्रिया कलाप द्वारा भी चरित्र परिवर्तन की मनोवैज्ञानिक प्रणाली का आश्रय लिया है। आदमखोर घोड़े और चीते की लड़ाई का प्रसंग लाकर उन्होंने नसीरूद्दीन के चरित्र में एक नयी आशा और उत्साह भर दिया है– "दूसरे चीते के हारने पर नसीरूद्दीन का मन घोड़े की बहादुरी पर निछावर हो गया। और इस इच्छा में मन की तसवीर भी बदल गयी। विजयी आदमखोर अब उसे बादशाह बेगम के समान नहीं वरन् अपने समान लग रहा था। उसे हैरत थी कि एक घोड़े ने दो चीते मार भगाये; उसे इस बात की खुशी भी थी। वह भी इसी तरह अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रुओं को मार भगायेगा। अपने विरोध में सिर तानने वाली शक्ति को यों ही पछाड़ देगा। बादशाह बेगम–उसकी सर्वाधिक प्रबल शत्रु–अब कोठी फ़रह–बक्श में यों कब्जा किये बैठ न पायेंगी; बादशाह इस अदमनीय उच्चैः श्रवा आदमख़ोर की तरह बादशाह बेगम के जबड़े तोड़

देगा।''[427] नागर जी ने इसी प्रणाली के अन्तर्गत पात्रों के चरित्रोंद्घाटन के लिए एक अन्य विधा का भी सहारा लिया है। किसी गायक या गायिका द्वारा कोई गीत या गजल सुनाये जाने पर दूसरा पात्र अपनी मनः स्थिति के अनुसार उसे बार–बार सुनना चाहता है, मानों वह उस गीत या गजल को अपने ही उद्गार मान बैठा हो। नसीरूद्दीन सब ओर से निराश है, उसे अब किसी का विश्वास या सहारा नहीं रह गया है। कत्थक नृत्य में निपुण 'नूना' ने अमीर की एक गजल का एक शेर छेड़ा जिसे नसीरूद्दीन ने बहुत पसन्द किया क्योंकि उसकी मनः स्थिति अब वैसी ही हो गयी थी–

''कहने को यूँ जहाँ में हजारों हैं यार दोस्त।
मुश्किल के वक्त एक है परवर दिगार दोस्त।।''[428]

दिग्विजय ब्रह्मचारी, राजा शिवनन्दन सिंह द्वारा विश्वास घात किये जाने के कारण नाजिम द्वारा बन्दी बना लिये जाते हैं और अन्धे तहखाने में कैद कर दिये जाते हैं। इन्हीं राजा शिवनन्दन सिंह को कैद से छुड़ाने के लिए ब्रह्मचारी जी ने अपनी जान की बाजी लगा दी थी। दिग्विजय सिंह सदैव पूजा–पाठ, धर्म–कर्म, कर्तव्य–निर्वाह और पुन्य कमाते रहे। आज जीवन की इन विषम परिस्थितियों में उनका मनस्ताप तो उबलता ही है उन्हें लगता है कि धर्म, सुकर्म, पूजा–पाठ सब मिथ्या हैं– ''अंधेरे में टकटकी बांधकर आँखें खोये पन में टँगी रह जाती थी, सोये हुए ज्वाला मुखी की तरह देह थिर हो जाती जिसमें अनायास बीच–बीच, उद्दाम उत्तेजना का विस्फोट हो उठता था, वे बार–बार हिल उठते थे। उनके अन्दर का अन्धा क्रोध तहखाने की दिवालों से अपना सिर फोड़–फोड़ लेता था। दिग्विजय ब्रह्मचारी अपने ही को लहू–लुहान कर लेते थे। ऐसा क्यों हुआ ?– पुण्य का फल पाप क्यों ?– विश्वास का फल विश्वास घात ?–हे सूर्य नारायण! हे बजरंग, तुम झूठे हो। ईश्वर नहीं है, प्रेम नहीं है, आस्था नहीं है– सब मिथ्या ही मिथ्या है।''[429]

खंजन नयन

नागर जी ने इस उपन्यास में 'सूर' के चरित्रांकन में स्थान–स्थान पर मनोवैज्ञानिक प्रणाली का आश्रय लिया है। 'सूर' का चरित्र–चित्रण उनके चाहे जिस मानसिक स्तर का हो, उपन्यास में, अधिकांश में इसी प्रणाली का उपयोग किया गया है। पं. सीताराम जी की बातों में सूरज का मन करुण और भारी हो गया। अन्धे सूरज को उजाला पाने की प्रबल इच्छा है और इसी को लेकर उसे सोलह–सत्रह दिन पहेल की सांझ उसकी स्मृतियों को झकझोरने लगती है और वह क्रोध एवं करुणा भरे स्वर में श्याम को उलाहना देने लगता है– ''किन तेरों नाम गोविन्द धर्‌यो।'' गुरु सन्दीपन का पुत्र शोक ताप हरने के लिए तुमने असम्भव को सम्भव कर दिखलाया, यमलोक से उनके प्राण छुड़ा लायें। मित्र सुदामा का दुःख दारिद्रय छुड़ाया, द्रोपदी की लाज बचायी। और मैंने तुम पर इतना–इतना भरोसा किया, इतनी–इतनी स्तुति चिरौरियाँ की, किन्तु

"सूर की बिरिया निठुर होई बैठेव जनमत अन्ध करेव।"[430] यहाँ सूर के मानसिक स्तर और उसके मनोलोक में मथते हुए भयंकर महनामथ का सजीव–चित्रण है।

सूर अन्धे होने के कारण सदैव दुखी रहता है, इसीलिए कभी–कभी उसके मन में यह सोंच उभरती– "सांसत के जीने से मरना ही भला है। श्याम सखा, तेरी जन्म भूमि में, तेरी कालिन्दी में डूब कर मरना ही जीवन है।"[431]

यमुना में नाव से जल में गिरकर किसी तरह बच जाने के पश्चात् सूरज अपने को एक नई जगह में अपने को अकेला पाता है। वहाँ भी जब वह कुछ न पाने के कारण चकराकर बैठ जाता है तो उसे झुंझलाहट होती है और आँखें न होने के कारण उनके अन्तरमन में खीझ उठती है– "खड़े होने के प्रयत्न में बीच ही में झकोला खाकर बैठ गया। भय के कारण से सूरज अवश्य मुक्त हुआ है किन्तु भय से नहीं। पानी के थपेड़ों की मार और विवश रहने का अनुभव उसकी स्मृति में इतना तीव्र है कि मन अब भी उसके प्रत्यक्ष झकोले झेल रहा है। जब उठ न सका तो चकराकर बैठ जाना पड़ा। सूरज को बड़ी झुझलाहट आयी। आँखें नहीं हैं, चलो, इस बेवशी को इतने बरसों में सह लिया परन्तु अब खड़ा न हो सकूँ, चल न सकूँ तो बोलो, यह कैसे सहा जायेगा। श्याम सखा ?"[432] मनोभावों और बेवशी का एक चित्र सा उपस्थित हो जाता है।

नागर जी ने सूर के स्वरचित पदों की पंक्तियाँ 'सूर' के मुख से ही समय–समय पर परिस्थितयों के अनुसार कहलवाकर उनके चरित्र का उद्घाटन किया है–

"प्रभु तुम दीन के दुख हरन।

श्याम सुन्दर मदन मोहन बान असरन सरन।।"[433]

यहाँ सूरज के भयाक्रान्त मन की स्थिति का ज्ञान कराने के साथ–साथ इन पंक्तियों की प्रभावात्मकता भी बढ़ गई है।

नागर जी ने अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से भी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर 'सूर' का चरित्रांकन प्रस्तुत किया है। सूरज स्वयं ही प्रश्न करता है और स्वयं ही समाधान भी–

'यह क्या तुमने अच्छा किया ?'

'बुरा क्या किया ?'

'झूठ बोले।'

'लेकिन भोले ने कहा कि सच था।'

'संयोग से सच निकला, पर तुम तो झूठ बोले थे।'

'यह पानी के ऊपर तैरते हुए तेल–सा झूठ नहीं था श्याम। उपकार के दूध में थोड़ें से पानी की मिलावट भी थी।'

'और जो तुम्हारा यह झूठ किसी की मृत्यु का कारण बन गया ? तब कौन पाप का भागीदार होगा ?'

'भोले मुझे विश्वास दिला गया है।'

'विषयी, लोभी और निर्बुद्धि व्यक्ति का विश्वास ? सूरज तेरी भीतर वाली भी फूटी हुई हैं।'

'भीतर ही भीतर तिलमिलाहट होने लगी। क्या मैंने होम करते हाथ जलाए ? उपकार की भावना से उपकार किया ?'[434]

जब मनुष्य कोई कार्य करता है और अपने उस कार्य पर उचित अनुचित होने पर संदेह पनपता है, तब व्यक्ति की यही मानसिक स्थिति होती है, यहाँ 'सूरज' उचित या अनुचित का निर्णय करने में स्वयं को असमर्थ पा रहा है।

इसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्वात्मक चरित्र–चित्रण 'भोले' के विषय में 'सूरज' का अन्तर्मन अनेकानेक दुविधाएँ व्यक्त करता है। यहाँ एक ओर 'सूरज' अपने चमत्कारों के प्रति और श्याम सखा के प्रति भक्ति को लेकर 'सूरज' के मन में उचित और अनुचित को लेकर झंझावत उठ रहा है–''इस संसार में न कोई बुरा ही बुरा होता है और न भला ही भला। भले–बुरे गुण सभी में हैं। मैं क्या भला हूँ ? सब समझे हैं कि भगवान के चरणों में लीन रहूँ हूँ, भक्त हूँ।

'ढोंगी हो।' श्याम मन बोला।

'सूरज मन धक्का खा गया।' श्याम सखा फिर बोलाः

'तुम्हें मेरा ध्यान ही कब रहता है, बस यही सोचते रहते हो कि अपने अन्धेपन की विवशता को मिथ्या अन्तर्दृष्टि के चमत्कारों से कैसे चमकाऊँ और लोग मुझे स्वामी जी, भगत जी कहकर पूजते रहें।'

'मेरी बेबशी को घायल न करो श्याम, जीना तो है ही; पेट है। शक्तिहीन व्यक्ति को कौन पूछता है।'

'पण्डित सीताराम तुम्हें हाथरस ले जाने को कहते थे। एक सुघड़ सजातीय कन्या से तुम्हारा ब्याह उई कराने को कहते थे। सुख से घर बसाकर बैठते और अपनी दैवज्ञयता से पेट पालन किया करते। तब क्यों कहा था, गुरु जी, यह अन्धा श्याम को देखना चाहता है। ढोंगी!''[435] सूरज का मन अपराध भावना से गल गया। तीखी सुईयाँ सी चुभने लगीं और मन में निराशा के घन टकराने लगे, जीने की प्रबल इच्छा जागी और अन्धे सूरज की इस अपराध भावना को अभिव्यंजित करने के लिए उपन्यासकार ने 'सूर' के पद का आश्रय लिया–

''प्रभु, मेरे गुन अवगुन न बिचारौ।
की जै लाज सरन आए की, रवि सुत त्रास निवारौ।।
जोग जज्ञ जप तप नहिं कीन्हौ, वेद विमल नहिं भाख्यौ।
अति रस लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं, अनत नहीं चित राख्यौ।।''[436]

'सूरज ध्यान में देख रहा है। उसके मन में न देख पाने की टीस है। वह देखता है कि आले में पार्वती जी बैठी हैं। ''सूरज प्रायः इसी आले के नीचे बैठा करता और तरह–तरह की बातें सोचता। कक्का कथा में सुनाया करते हैं ..... कुपुत्रों जायेत क्वचिदपि माता कुमातान भवति– मैया मैं तो तेरा जनम–जनम का पूत कपूत हूं, पर तू तो कुमाता नहीं है। मुझे एक ही आंख दे

दे। मैं देखूं तो सही ये दुनिया कैसी है ? चांद–सूरज कैसे होते हैं। धूप, चांदनी, बरखा, बदरिया ये सब कैसे होते हैं। हाय मैया तू कितनी अच्छी है मेरी जगदम्बा। ..... अब तू कहेगी कि सूरे मैं माता कुमाता नहीं हूं पर तेरे लिए मैं आंख कहां से लाऊं। सब जीवों की अपनी–अपनी आंखें हैं उनमें से किसी की आंख निकालकर तुझे दे दूं। ये भला अन्याय नहीं होगा। हां होगा, तो जरूर ..... जैसे मेरी आंखें नहीं है और मैं दुःखी हूं वैसे ही जिसकी आंख निकाली जाएगी वह दुखी होगा बेचारा। मैया के तो सभी बेटे हैं। अच्छा, पर एक काम कर सकती हैं। शिवजी के पास तो तीन नेत्र हैं, भला उन्हें तीन नेत्रों का अब क्या काम है ? तीसरा नेत्र उन्होंने कामदेव को भस्म करने के हेतु खोला था, अब तो वह भस्म भी हो गया। पार्वती मैया शिवजी से कहें कि हे स्वामीनाथ ये अपना तीसरा नेत्र तुम सूरज को दे दो। एक ही आँख से काम चला लेगा। बेचारा। 'कहो मैया कहो। भोलानाथ से कहो। कहो।' थोड़ी देर आशा भरी उमंगों के घोड़े दौड़ते रहे फिर उदासी छा गई। अरे ये भगवान भी सब एक थैली के चट्टे–बट्टे हैं। अंधा बांटे रेवड़ी अपने आप को देय। शिवजी असुरों को ही वरदान देते हैं, चाहे रावण हो चाहे, भस्मासुर, चाहे वाणसुर। इन्हीं सबको वरदान देते हैं। फिर वही दुष्ट इनको सताते हैं। ऐसे ही राम–कृष्ण, विष्णु भगवान बस अपनों का ही भला करना जानते हैं। सुदामा दरिद्री था, उसे इसीलिए धन कुबेर बना दिया कि वह मित्र था, साथ पढ़ा था। भरी सभा में चीर बढ़ाकर द्रोपदी की लाज बचाई। अपनी बुआ की पुत्रवधू की लाज बचाने गए तो कौन बड़ा काम किया। तुरक पठान आये दिन न जाने कितनी बेचारी अबलाओं की लाज लूटते हैं, उन्हें बचाने तो नहीं आते, फिर सूरज को आंखें देने भला क्यों आएंगे।''[437]

नागरजी ने सूर की अन्तःप्रेरणाओं के द्वारा भी उनके चरित्र को उभारा है– ''अरे मूढ़! तेरी बाहर की तो फूटी ही हुई हैं अब क्या भीतर की भी फोड़ेगा। यह नटिनी आज तेरे सामने नाचती है, कल से तुझे नचा मारेगी।''[438] अन्धे सूरज ने सुनैना के क्रिया–कलाप के कारण अथवा मदन मार के कारण स्वार्जित घर का त्याग कर दिया था किन्तु, कन्तो के संयोग ने एक बार फिर से उसके मन में बेकली बढ़ा दी। लेखक ने कितने मनोवैज्ञानिक ढंग से सूर के चरित्र को अंकित किया है– ''इस कालू केवट की बहन कन्तो ने सूरज के दिल में मुर्दे सी सोई हुई सुनैना को जगा दिया है। बेकली बढ़ गई है। न इस करवट चैन मिले न उस करवट। श्याम मन तो चुटकी लेकर चुप्पी साध गया, पर सूरज मन गरम रेत पर पड़ी मछली सा बड़ी देर तक तड़पता रहा।''[439]

नागरजी ने पात्रों के व्यक्तित्व को चित्रित करने के लिए और उनके स्वरूप बोध कराने के लिए सूक्ष्माति सूक्ष्म अनुभवों और परिवेश को इस प्रकार बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव से अंकित कर दिया है कि पाठक के हृदय में उसका एक चित्र अंकित हो जाता है। सूरज अपने अतीत में खो जाता है और उसे राधा–कृष्ण की रास लीला का स्मरण हो जाता है– ''ये चन्द्र सरोवर है। यह देखो बाजनी शिला है। बजाओ तो बेटा! ढम ढम ढम! इसी का नगाड़ा बजता था यहाँ। शरद पूनो की

रात को सोने की थाली जैसा चन्द्रमा आकाश में दमके, तब यह अठकोने चंद्र सरोवर का जल भी ऐसा चमकता है कि मानो पूनम का चंद्र परासौली की धरती पर ही उतर आया हो। इतते राधे रानी अपनी सखियान संग, उतते बंसीबारौ, अपने सखान संग–आएं। दोनों ने दोनों को देखा, ठगे से खड़े रह गए। बाएं चंद्र सरोवर दाएं युगल मुख चंद्र। परासौली की अनुपम शोभा के आगे गगन बिहारी चंद्र की शोभा फीकी पड़ गई। मस्ती में आके सखा सखियों ने व्रजचन्द्र– चंद्रिका को घेर लिया। रास होने लगा। बाजनी शिला बजने लगी। डंडे से डंडे टकराकर सखी–सखा नाचने लगे।''[440]

'सूरज' कंतो के साथ भगवान केशव राय के दर्शन करने जा रहा है। किन्तु कन्तो असमय रसिया सुनाकर सूरज के मन को काम विकृत करना चाहती है। किन्तु 'सूरज' उसे यह कहकर रसिया बन्द करवा देता है कि हम लोग दर्शन करने जा रहे हैं। उपन्यासकार अन्तः प्रेरणा द्वारा 'सूरज' के चरित्र की दृढ़ता अंकित करता है– ''यह युवती आंवे की आग की तरह जो कल से उसके भीतर ही भीतर चाहत के अंगारे सुलगा रही है, भले ही इसमें देव दारु की आग हो जो सुलगने के साथ महकती भी है, परन्तु 'सूरज' चन्दन की शीतल सुगन्ध युक्त अपने हृदय की हवन कुण्डी लेकर श्याम सखा के द्वारे पहुंचेगा।''[441]

'सूरज' के मन में एक साथ एक घुटन–न देख पाने की सदैव बनी ही रहती है– ''मन में अनवरत हलचल तो होती ही रहती है फिर भी वह इस समय अपेक्षाकृत शान्त और सन्तुष्ट है। आज उसकी वर्षों पुरानी साध पूरी हुई है। मन में जाने कितनी आकांक्षाएं हैं। मन आकांक्षाओं का गेंद है। ऊंचे उछालों और फिर दोनों हांथों
से लपक लो। मैं अन्धा उछाल तो सकता हूं पर उसे लपक कर हांथों में कैसे ले सकूंगा ? मेरे लिए साधो का गेंद उछालना ही मूर्खता है।'' और फिर लेखक पात्र की मनः स्थिति के अनुकूल जय देव की कुछ पंक्तियां उद्घृत कर देता है–

''पश्यति दिशि दिशि रहसि पवन्तम्
तदधर मधुर मधूनि पिवन्तम्
नाथ हरे सीदति राधा वास गृहे।''.[442]

'सूर' 18 वर्ष का नवयुवक है उसका मन काम बिकार से ग्रस्त तो होता है किन्तु, फिसलता नहीं क्योंकि उसका लक्ष्य है, उसे आंखें मिले और वह श्री हरि के दर्शन करे– ''नगण्य सेगण्यमान होने तक इन 18 वर्षों की जीवन यात्रा में उसने क्या चाहा और क्या नहीं चाहा, क्या पाया और क्या नहीं, पाया, इसके हिसाब का विस्तृत खर्रा उसके मन के सीमा हीन मैदान में खुलता ही चला गया। अंगूठे के गड्ढे को भरकर पी जाने वाले अगस्त्य की तरह 'सूरज' की अन्तर्दृष्टि ने केवल एक ही सागर का घूंट भरा है। आँखें मिलें। वह केवल हरिकृपा से ही प्राप्त हो सकती हैं।''[443]

कंतो का जादू तो सूरज पर है ही किन्तु वह उसे जब राधा–रानी के रूप में सीता–पार्वती के रूप में देखने लगता है तो उसका यह विचार कि 'नारी नरक का द्वार है', तिरोहित हो जाता है। नागर जी ने 'सूरज' के मन की इन्हीं उलझनों को उसके चरित्र में रूपायित किया है। यहा अन्तर्द्वन्द एवं अन्तः प्रेरणा दोनों ही 'सूर' के मन को उलझा–सुलझा रही हैं–''मन अब एक निश्चय पर सध गया है। वह निश्चय एक निर्मल नीरा नदी के समान है और सूरज उस पर खड़ा होकर चल सकता है। उठने के लिए हाथ धरती पर टेका, पड़े सिक्के छू गए। कंतो छोड़ गई। .....कंतो ? कोई नहीं। नरक का द्वार नारी। परन्तु राधारानी भी तो नारी है, सीता पार्वती भी नारी हैं। राधे श्याम सीताराम गौरीशंकर– नारी से मुक्त कौन है ? सच पूछो तो विरोध नारी से नहीं वरन् उसके काम वासना का माध्यम होने से है।

मन फिर उलझा–अर्थात गुड़ खाएं पर गुलगुलों से परहेज करें। ये कैसे हो सकता है ? हो क्यों नहीं सकता। काम वह अंडा है जिससे मन रूपी पक्षी प्रकट होता है। उस मन रूपी पक्षी के दो पंख होते हैं, कल्पना और विचार। इन पुष्ट पंखों वाले पक्षी को निःसीम आकाश में उड़ने दो। उसे दबाने या घृणित अपराध मानकर कुचलने का प्रयत्न मत करो। 'दाबि न मारिबा, खाली न राखिबा या जानिबा अगिन का भवेम्' काम को दबाओ मत, वह काया रूपी चूल्हे में जलती हुई अग्नि है, उस पर कुछ पकाओ। क्या पकाओगे ?–श्याम मन।''[444]

अन्तः प्रेरणा द्वारा चरित्रांकन की अनेक झाकियां उपन्यास में दिखायी देती हैं। 'सूर' चेतना के बिखरे अंगारों को एकत्रित कर भाव की फूंक प्रज्जवलित करता है– ''ज्ञान की सहजता सहज में ही नहीं मिलती सूर ! चेतना के बिखरे अंगारे जब एक जगह समेट कर भाव की फूंक से चेताए जाते हैं, तब लौ उठती है। या देवी सर्व भूतेषु चेतनेत्यभिधीयते। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः। वह विष्णु प्रिया, विष्णु माया, बुद्धि, निद्राक्षुधा, तृष्णा, शांति, भ्रांति, कांति, क्षमा, उपेक्षा, जाति, वृत्ति, शक्ति आदि नाना रूपों में हमारे भीतर निवास करती है। वह जीवन ऊर्जा ज्ञान बनकर जब सिमटती है तभी उसमें सहजता भी आती है। 'जागती जोत तपै निसिवासर एक बिना मन एक न मानै।' जप ही साधे जा सूरज, इसी से तेरा सहज ज्ञान बोध जागेगा फिर तेरा श्याम सखा हंसता हुआ तेरे पास दौड़ा चला आएगा। तू उसका है, वह तेरा हो जाएगा।''[445]

इसी प्रकार यवन वाराणसी में बक्शीजी ने हिन्दुओं के ईश्वर, विष्णु, राम, कृष्ण, महादेव और ब्रह्मा की खिल्ली उड़ाई और निन्दा भी की। सुनकर 'सूरज' को क्रोध आया किन्तु अन्तःप्रेरणा द्वारा वे अपने क्रोध को शांत कर लेते हैं– ''सूरज की अंधी सफेद पुतलियों में भी भीतर के क्रोध की ललाई सी आ गयी। क्रोध नहीं सूरे! मूर्ख और दम्भी से तू तर्क करके पाएगा क्या ?''[446] नागरजी ने मनोवैज्ञानिक प्रणाली के अन्तर्गत एक नयी पद्वति का प्रयोग भी किया है इसमें पात्र के मनोभावों का और तर्कों का दृश्यांकन कराने के पश्चात् पात्र को ईश्वर के प्रति समर्पित कर देते हैं– ''खाते–पीते, कहीं दर्शन करने जाते समय वह बराबर यह अनुभव करते हैं कि उनके एक व्यक्तित्व में दो व्यक्तित्व फूट आए हैं– एक नारी एक नर। वह नारी बोलती नहीं;

केवल उनकी भीतर की आंखों में आंखें डाले अपने नर को अहर्निशि देखती रहती है। उसके देखने का अर्थ क्या है, यह सूर के मन में अभी स्पष्ट नहीं। यह किसी निरर्थक भावावेश की स्थिति तो नहीं ? कभी–कभी मन ऐसे छलावे के अन्तर्दृश्य प्रस्तुत करता है जो उसे बहकाकर रसातल तक में ढकेल सकते हैं। भोले भ्रमों की भूलभुलैया में कई बार वह भटक चुका है। .... 'हे राम, मर्यादा पुरुषोत्तम, तुम तो मेरे श्याम सखा की भांति लीलामय नहीं। हंसी में भी छलकपट नहीं करते, सहज शीलवान् हो। मैं इस समय तुम्हारे कनक भवन की भांति ही जर्जर हूं। एक झटके में ही टूटकर बिखर भी सकता हूं। हे सीतापति, अयोध्यापति, रघुपति, तुम जानते हो भाव से मैंने कभी हरि, विष्णु, श्याम, राम में भेद नहीं माना। वेद–उपनिषदों के परब्रह्म परमेश्वर आप ही हो। अपने इस दीन–हीन जन की लाज रखना। उसे विवेक की दृष्टि देना। मुझ अंधे की लाठी बनना राम!''[447]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'खंजन नयन' 'सूर' के मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन की विविध झांकियों की प्रदर्शनी है।

अमृत और विष

नागर जी ने प्रायः अपने सभी उपन्यासों में पात्रों के चरित्र–विश्लेषण के लिए मनोवैज्ञानिक पद्धति का आश्रय लिया है। पात्रों के अन्तरंग व्यक्तित्व को मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में रखते हुंए उनकी अन्तः प्रेरणा और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करना इस प्रणाली की मुख्य विशेषता है। इस उपन्यास में भी अरविन्द शंकर के अतिरिक्त भी कई अन्य पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को मनोवैज्ञानिक प्रणाली द्वारा उद्घाटित किया गया है।

'रमेश' और 'रानीबाला' के प्रेम–प्रसंग में 'रानी' की अन्तः प्रेरणा का चित्रण अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है– ''विवाहित युगल जोड़ी की रस्म को देखते हुए वातावरण के संस्कारों से आबद्ध, अपने वैधव्य की चेतना से रुद्ध और पिछली रात के नव–जीवन स्पर्श से पुलकित 'रानीबाला' का मन स्वयं अपने ही संस्कारों की आकर्षण शक्ति से दोनों सिरे पर चिपक गया। उसके मन में अनायास ही उपजी यह पुलकमयी आस्था कि वह मन से अपनी सखी की भाभी है, चेहरे पर कान्ति बन कर छा गयी। वह विधवा है, दूसरी जाति की है यह चेतना भी मन में बराबर उसी तरह बनी रही जैसे कि पूनो की चाँद की होती है।''[448]

रानी की लाज, पुलक और स्फूर्ति आदि अनुभावों के साथ मनोवैज्ञानिक चित्रण देखते ही बनता है– ''आश्वस्त होकर रानी ने एक बार फिर नजर उठाकर रमेश को देखा, वह अपलक मुग्ध नयनों से उसे ही देख रहा था। बड़ी लाज, बड़ी पुलक और स्फूर्ति एक साथ ही उमड़ी, पलकें झुकीं और फिर उठीं, इस बार आँखों में आकर्षण, मुग्ध होकर खेल रहा था। चार आँखों की टकटकी बँध गयी। वातावरण बिसर गया, भय और लाज गयी, अपना अस्तित्त्व ही लुप्त हो गया, केवल पारस्परिक आकर्षण का अनन्त सौन्दर्य ही वहाँ तन–मन में उजागर था।''[449] यहाँ 'रमेश' और 'रानी' के अनुभावों के प्रकटीकरण और प्रेमाकर्षण की एक जीवन्त झांकी प्रस्तुत हो

गयी है। नागर जी के इस चित्रांकन में मुझे 'तुलसी' के पुष्प वाटिका प्रसंग की यही स्थिति स्मरण हो आती है–

''भये बिलोचन चारु अचंचल।

मनहु सकुचि निमि तज्यौ दृगंचल।।''

इसी प्रसंग में एक अन्य उदाहरण में नागर जी ने 'रमेश' और 'रानी' के अन्तर की प्रसन्नता व्यक्त करते हुए लिखा है–''सीढ़ी पर रमेश की आवाज आयी– 'रानी' को बिजली का करंट छू गया। उद्दाम प्रसन्नता चेहरे पर छलक आयी। दरवाजे की ओर दौड़ी। गोपनीय आह्लाद, दृष्टि के धनुष पर तीर सा चढ़कर छूटा और 'रमेश' के नयन प्राणों को बीध गया। दूसरे ही क्षण उसका होश सम्भल गया, जोश की गंगा को बनावटी नहर से बहाकर ऊँचे स्वर में बोला।''[450]

नागरजी ने पात्रों के आन्तरिक निराशा और बुझेपन को भी इसी प्रणाली के अन्तर्गत चित्रित किया है। रद्दू सिंह की मनहूसियत और निराशा का क्रोध भरा चित्रण– ''शत्रोहन साले को इतना घमण्ड हो गया है कि चलते समय शिष्टाचार तक न दिखलाया। हे ईश्वर, इस साले का घमण्ड नीचा करना, कभी मेरी बेरी में भी फल लगाना।''[451]

नागरजी ने 'उमा माथुर' और 'लच्छू' के प्रसंग में नारी और पुरुष के मनोविज्ञान को बडे ही कौशल के साथ उद्घाटित किया है– ''नारी के आक्रामक पौरुष ने उसके संकोच जड़े पौरुष को झटका दिया। जीवन में पहली बार उसे किसी नारी का एकान्त साथ मिला था। पिछलें कई वर्षों से मन में हिलोंरे लेती हुई प्रेम कामना जो स्वयं आक्रमक होना चाहती थी, जो किसी प्रेमिका के लाज संकोच से लड़कर उसे जीतना चाहती थी, अब तक एक बार भी अपना दाँव न पाकर इस समय स्वयं ही एक फाहशा औरत के हत्थे चढ़ी जा रही है। उसे अच्छा नहीं लग रहा, मगर अच्छा भी लग रहा है। यूनिवर्सिटी में पढ़ा हुआ मनोविज्ञान उड़े–उड़े दिमाग के लिए अड्डाबन रहा है, युग का मनोविश्लेषण सिद्धान्त 'पर्सोना', 'अनीमा', 'ईगो' तोता रटन्त पहाड़े की तरह हर सांस के साथ उठ रहा है– उसके 'पर्सोना' (चेतन व्यक्तित्व) पर उमा के 'अनीमा' (स्त्री का पौरुष या पुरुष का नारीत्व) का आक्रमण उसके लिए बड़ा लज्जा जनक है, जबकि होना यह चाहिए था कि उसका 'अनीमा' उमा के 'अनीमा' के प्रति आकर्षित होगा। यह उसकी 'पर्सोना' बुद्धि का तकाजा हैं। विपरीत अवस्था में उसका 'ईगो' (अहम) चुटीला हो रहा है। मगर 'पर्सोना', 'अनीमा' और 'ईगो' के निरर्थक पहाड़े से भी अधिक उस पर 'उमा' का पहाड़ लदा जा रहा है। और अभी वह इस खेल को जानता नहीं।''[452]

नागरजी ने उपन्यास मे अरविन्द शंकर के चरित्र–चित्रण में उसकी अन्तः प्रेरणा के इस प्रकार उभारा है। देखिए–

''फिर भाग्य ! अरविन्द शंकर ! यह शब्द आज कल जाने अनजाने तुमसे चिपका ही रहता है, क्या भाग्य वादी हो गये ?..... मेरे मन, तूने टेढ़ा सवाल पूछ लिया। मैं फैशनेबुल हेकड़ी के साथ भाग्यवाद के सिद्धान्त को नकार तो अब हरगिज

न सकूंगा। ऐसा लगता है कि जीवन के पीछें कोई महाविधान है। और यह भी मैं मानता हूँ कि मनुष्य अपना भाग्य बदल सकता है, नया भाग्य बना सकता है..... और वह भी उसी महानियम के अन्तर्गत ही.....।"[453]

अन्तः प्रेरणाओं द्वारा चरित्र को उभारने का एक दृश्य और देखिए। अरविन्द शंकर का मन प्रेरणाओं से भरपूर तो है ही उसका अन्तर्द्वन्द्व भी उभर कर आ गया है– "आरती किसकी करूंगा ? उसकी, जिसके अस्तित्व को मैंने अपने समय की प्रगतिशील सामाजिक और बौद्धिक मान्यताओं की निष्ठा सहित पूरी जवानी भर अस्वीकार किया है– वह, जो कि इधर सात–आठ वर्ष से मेरे मन को अक्सर झकोले दे देकर अपना ध्यान दिलाना चाहता है और जिसे मैं अपने पूर्वाग्रहों के कारण अब तक शंका की दृष्टि से देखता हूँ, उस अलौकिक चेतना..... पर बह्म की आरती उतारूँ ? न। यह साहित्यिक का मन है, इसे धोखा देना ठीक नहीं। जो माने सो पूरे मन से माने, अधूरे से क्या माने।"[454]

नागरजी ने पात्रों के व्यक्तित्व को चित्रित करने के लिए अनुभावों और अन्तः प्रक्रियाओं को भली–भाँति उभारा है। केवल घुटन, खीझ अथवा आत्मग्लानि जैसे भावों को ही नहीं प्रेम, रस और सौन्दर्य के द्वारा भी पात्रों के चरित्र को रूपायित किया है। 'रमेश' के यह पूछने पर कि क्या तुमने अपने हसबैण्ड को तो देखा था ?, "रानी का सारा मुख मण्डल ही सुहाग बिन्दी–सा चमक उठा। मुस्कराकर आँखों से आँखें मिलाकर भाव मग्न होते ही हल्की शोखी की अदा मे बोली : "अपने हसबैण्ड को तो देखा है, उस लड़के को नहीं देखा था।" और कहकर उसने रमेश की तृप्त प्यासी आँखों को अपनी रस मग्न आँखों में बरजोरी डुबो दिया। रमेश उल्लास में अपना आपा खोकर उसके पास बढ़ आया और उसके चेहरे को दोनो हाथों से बाँधकर चार आँखों की एक लय में बँधे हुए रसान्दोलन की सौन्दर्य भरी उत्तेजना के साथ बोला : "तुम देवी हो– एन्जिल–माई बिलवेड एन्जिल।"[455] एक अन्य उदाहरण में कायिक अनुभावों का विलक्षण चित्रण तो अद्वितीय बन पड़ा है। प्रेम भाव का यह अनोखा मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण है– "वो बीच–बीच में कभी चाय का डिब्बा, कभी शक्कर का डिब्बा, कभी प्लेट प्यालियाँ, कभी दूध का बर्तन उनके यथा स्थानों से उतार कर मेज पर रखती है, और यह सब करते हुए हर बार किसी न किसी बहाने आँचल या हाथ का स्पर्श भी हो जाता है। कभी इनकी, कभी उनकी भुन भुनाहट, कभी मेज पर उगलियों की तबले सी थिरकन, कभी संकोच मुक्त, आनन्द मग्न आँखों का मिलना और मुस्कुराना– इन्हीं सब में बिन बतियाए, लाख–लाख बातें हो गयीं। पल्ला सिर से ढलक कर सरकता हुआ सिर्फ एक ही कन्धे पर रह गया, मगर लाज न आयी, रमेंश की मस्ती में भी कोई अतिरंजना न आयी, उनकी सहजता उस समय उनके पूर्णकाम मन का परिचय दे रही थी।"[456]

'तुलसी' की "गिरा अनयन नयन बिनु बानी" सहज रूप से स्मरण हो आती है। पुत्ती गुरु की चिड़–चिड़ाहट कितने मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यंजित हुई है– "ये सब तुम्हारे ही कुकर्मों के लक्षण हैंगे। पहले तो लड़के को छूट दे देकर बिगाड़ दिया और अब हमसे कहने आयी हौगी कि

रा–रमेश नहीं आऽय। तुम तो कह के छूट गयीं और यहाँ हमारे ऊपर घोरा तिघोरा विपत्ति आन पड़ी ससरी। जाओं, तुम सब लोग हमारे घर से निकल जाओ इसी बकत। अब साला बीबी–बच्चों का मोह ही नहीं पालुंगा। तुम सबकों त्यागता हूँ। का तब कान्ता कसते पुत्रः, संसारोऽयमतीव विचित्रः स्साला।''[457]

अन्तः प्रेरणा के प्रदर्शन द्वारा चरित्रांकन का एक अन्य उदाहरण जिसमें लज्जा भरी प्रसन्नता, कृतज्ञता का भाव और सन्तोंष आदि भावों का प्रकटी करण देखिए– ''रानी के अँसुआए मुख पर लाज भरी पुलक की बिजली दौड़ गयी। उसने अपने आपको पहली बार सुमित्रो के अत्यधिक निकट पाया। कृतज्ञता में उसने सुमित्रो की बाँह पर अपना गाल रखकर भावाभिभूत हो आँखें मीच लीं और उसकी बन्द आँखों से तृप्ति के वेदना रंजित आँसू बहकर सुमित्रो की बाँह को नम करने लगे।''[458]

रमेश की ईश्वर के प्रति आस्था–अनास्था के भावों को भी उभारते हुए नागर जी ने 'तुलसी' की उक्तियों का सहारा लेते हुए प्रार्थना, धर्म भावना, खीझ और विद्रोह तथा खिन्नता का चित्रण कितनी सुन्दरता से किया है– ''पूजा करते हुए उसके मन में आस्था–अनास्था के भाव बड़ी तेजी से आते–जाते चक्कर मारते रहे– क्या यही वह शक्ति है, जो मुझे या किसी को पास या फेल कर सकती है, सुख या दुःख दे सकती है ? गोस्वामी जी के कथनानुसार जिस विधाता के हाथ हानि–लाभ, जीवन–मरण, यश–अपयश देने की शक्ति है, वह यही पत्थर है ? लेकिन न दिखलायी पड़ने वाली वस्तु का भरोसा क्या ? ..... ये आकाश जो दूर से नीला–नीला चमकता है, इसमें कितने रंग भरे पड़े हैं, जो हमें आँख से नहीं दिखलायी देते। ××× 'कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड निकाया' वाली अर्धाली की व्याख्या ××× आधुनिक विज्ञान के प्रकाश में कितनी सच थी। तब हे देव, हे देवाधि देव ! तुम मुझे पास करा दो। फर्स्ट डिवीजन एक बार फिर टाप कर जाऊँ। ××× एक बार मेरे भी हाथों में वह शक्ति आए जिससे स्वप्न पा– रूप चन्द, चोर बाजारिया, करोंड़पति मेरे सम्मुख दो कौड़ी का व्यक्ति सिद्ध हो जाय।.....नीच!... .....नीच!.....नीच!.....नीच!''[459]

गैहाबानो की घुटन और तड़पन का मनोवैज्ञानिक चित्रण देखिए। गैहाबानो को बाहर जाने को नहीं मिल रहा है। वह जवान हो चुकी है। अपने कालेज जाने के समय वह बाहर की चहल–पहल देख लेती थी किन्तु– ''अब वह भी नसीब नहीं। उसका अब क्या होगा ? बानो अपने सूनेपन को दिन भर नमाजों और कुरान शरीफ की आयतों से बुझाया ही करती थी। मगर उम्र और अरमान शक्तिशाली गुण्डे की तरह बरबस अपनी ओर घसीट ले जाया करते थे। दिन के सूने पन में खुदा और रातों की सूनी सेज में सनम का ध्यान चुम्बक के दो सिरों की तरह अपनी–अपनी जगहों पर अटल मौजूद रहते थे।''[460]

नागरजी ने अरविन्द शंकर की आत्माभिव्यक्ति को उसके जीवन की फूटन की व्यंजना के साथ मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है– "तन के ठेले पर लदा हुआ यह जीवन का भारी बोझ खींचते–खीचते मेरे प्राणों का भूखा अशक्त भैंसा अब बेदम होकर भी जेठ की चिलचिलाती धूप में तपती हुई सड़क पर गिर पड़ा है, नियति की चाबुकों से उत्तेजित होकर भी अब उसमें उठने की ताब नहीं रही। अब सदा के लिए मेरी आँखें मिच जायँ, मैं लकड़ियों पर सो जाँऊ।"[461]

वस्तुतः नागरजी ने इस उपन्यास में भी मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन प्रणाली की कई झाँकियाँ प्रस्तुत की है जो अत्यन्त भव्य, प्रभावी और रोचक बन पड़ी है।

सुहाग के नूपुर

'सुहाग के नूपुर' में प्रकृति तत्वों को सहायक बनाकर माधवी, कोवलन और कन्नगी तीनों के मनोभावों को उनकी चारित्रिक विशेंषताओं के साथ प्रस्तुत किया गया है।–

माधवी– "सूर्य का तेज आत्मसात कर जैसे यह संध्या सतरंगी हो रही है, वैसे ही तुम्हें पाकर मेरा आनन्द–क्षितिज भी रंग–बिरंगा हो रहा है।"

कोवलन– "हाँ– विष तुमने पिया था– माधवी, पर मरा मेरे संस्कारों का देवता..... ....यह देखों क्षितिज के उन सिन्दूरी बादलों में तुम्हारे विष की ही साँवली पट्टियाँ पड़ रही हैं।"[462]

कन्नगी– "अस्त होते हुए सूर्य के रंगों को चुराने का साहस ये निर्बल, निकम्मे बादल भी कर लेते हैं। इन रंग–बिरंगे बादलों की सुन्दरता पर तो सब रीझते हैं, सूर्य की विवशता पर कोई आँसू नहीं बहाता।"[463]

इसी प्रकार चेलम्मा के इस प्रश्न पर– "क्योंरी, तुझे जाड़े की धूप सुहानी लगती है या बरसात के बाद क्वार की ?" प्रश्न से माधवी के कपाल पर सिकुड़ने पड़ गई। माधवी ने कहा, "यह क्यों पूँछती हो मौसी ?" चेलम्मा ने कहा "बूढ़ी हो गई हूँ न, मेरी समझ भी बूढ़ी हो गई कदाचित, इसीलिए पूँछा।" चेलम्मा उसे बताती है कि "बेटी धूप सी तपो पर जाड़े की धूप सी, जो सबके लिए सुहानी होती है, प्रखर ताप अच्छा नहीं होता । जीवन भर क्वार की धूप सी तपकर में अब इस भेद को पहचान पाई हूँ।" यहाँ चेलम्मा की वेदना फूट पड़ती है। उसे अपने पराभव पर कचोट लगती है– यह तो न कहूँगी कि कचोंट नहीं लगती। अब झूठ किसलिए बोलूँ।.....परन्तु अब मुझे कुछ नहीं होता माधवी ! कलेजा पक–पककर पत्थर हो गया।"[464]

नागरजी ने माधवी के मनस्ताप को उसके इस कथन से बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से एक ही वाक्य में स्पष्ट कर दिया है। "कितना अच्छा होता मौसी, यदि हम इस विपत्ति में न पड़कर कुलीनों के समान ही जीवन का व्यवहार कर पातीं ?"[465]

प्रकृति के माध्यम से माधवी की हूक, वेदना, अन्तर–ज्वाला और तपन का कितना मनोवैज्ञानिक चित्रण है– "और माधवी के पिछले दो वर्ष घटनाओं के तीव्रता से घटने, सिमटने,

घटाटोप होकर गरजने, घुमड़ने, उसके नयनों में अनवरत बरसात बनकर बरसने में दिन, महीने और पल–पल पहाड़ बन बीते थे। उसके मन में न तो अब हूक की लपटें ही उठती थीं, न आँखों में आँसू ही आते थे। वेदना के ये प्रतीक अब माधवी के लिए निरर्थक हो गए थे। ज्वाला और अन्तरस्थ हो चुकी थी, रोयाँ–रोयाँ कोयले की तरह सुलगता था। तपन इतनी अधिक बढ़ चुकी थी कि अब मालूम ही नहीं होती थीं।''[466]

माधवी की अन्तदर्शा प्रकृति से बिल्कुल मिल जुलकर उसी के समान हो गई है। ''बाध्य होकर अपने आप में ही बातों को पचा लेने की आदत सी डाल लेने के बाद भी, बातों के रूप में विसर्जन कर लेने के उपरान्त भी, मन की वे बातें इतनी बच जाती थीं कि वह कभी–कभी रात में ऊँचे चौबारे वाली छत पर चुप–चुप चढ़ चन्द्र ताराओं को साक्षी बनाकर प्रिय के प्रति अपनी बातों को वायु मण्डल में लय कर देती थी। पद्यगान मानव जीवन के व्यक्तित्व का लालित्य है, परन्तु गद्य भाषण उसके जीवन का अनिवार्य कर्म बन्धन है, माधवी कभी–कभी इस परिस्थिति में पड़कर व्याकुल बावली हो जाती थी।''[467]

नागरजी ने प्रसंगानुसार माधवी के क्रोध का चित्रण भी किया है। नागरजी ने प्रकृति के भयंकर रूप के साथ माधवी के हृदय, प्राण और रोम–रोम को उसके अन्तर भावों से बाँध दिया है। बादलों की भयंकर गर्जन जिस प्रकार धरती, महल और अन्य वस्तुओं को कम्पित कर देती है, वैसे ही माधवी का व्यक्तित्वांकन बड़ा स्वाभाविक बन पड़ा है। ''सहसा बादलों की भयंकर गड़गड़ाहट से धरती, महल, राजपुरुष की चित्र सारी, सेज, माधवी का हृदय, प्राण रोम–रोम थरथरा उठे। वह नये जीवन के लिए स्वेच्छा का भाव गँवाकर जड़ निर्लज्ज भाव से प्रस्तुत पड़ी थी। ..... सहसा बिजली जोर से कड़क उठी। माधवी की आँखें मुँद गई, आँखें मुँदी रहीं, तीखे घूँट उतरते रहे, और उसका कलेजा चीरकर नमक भरते रहे– 'यह टूटा तेरे दर्प का दमकता महल! ओ सुहाग के नूपुरों की साध, मर! मर!'। माधवी को चक्कर आ गया। हठ से फिरे सात फेरे मन के धधकते यज्ञ कुण्ड के चारों ओर चकरघिन्नी से नाच उठे। कुण्ड की धधकती ज्वाला भय–शीत से ठिठुर गई। तभी कड़क कर बिजली टूटी, उसे लगा, वही उसका शरीर बेध गई।''[468]

इससे भी अधिक ''इतने वर्षों में पहली बार आज अपने सतीत्व की हत्या हो जाने पर हर ऊहापोह से मुक्त हो, अपने आपको वह वेश्या अनुभव कर रही थी।'' नहीं, वह मर कर क्या करेगी ? अभी उसकी जवानी हरी–भरी है, अब भी अपने सुन्दर सलोने रूप से प्रबल मोह है। अभी उसकी लालसाएँ हरी–भरी हैं, वह जिएगी.....मेरे अन्तर की सती, मर! मेरी छलना, दूर हो! मणि की माता, मर! मर! मेरे रूप, मेरे यौवन के आकर्षण, जी! रूप जीवा माधवी, जी!''[469] प्रकृति ने उद्दीपन के रूप में अपना प्रभाव डाला, खोई खड़ी माधवी लड़खड़ाई और गिर गई। भले ही माधवी ने जीना चाहा हो किन्तु नागर जी ने उसके हृदय के हाहाकार, व्याकुलता, सतीत्व

नष्ट होने की बेचैनी, उसके अन्तर्द्वन्द्व और अन्तः प्रेरणा को उभार कर एक सजीव चित्र खड़ा कर दिया है।

नाच्यौ बहुत गोपाल

नागरजी ने अपने इस उपन्यास में भी पात्रों का चरित्रांकन मनोवैज्ञानिक प्रणाली द्वारा किया है। उपन्यास की प्रधान नारी पात्र निर्गुनियाँ के चरित्र का मनोवैज्ञानिक पक्ष अनेक स्थानों पर मनो भावों के फैलने–सिकुड़ने और इसके कारण उसके थरथराहट से भरजाने का एक चित्र– "महरी मुस्कुराई, कहा– आपके अफसर इस दम हमारी अफसर बेगम के तलवे चॉट रहे होंगे। घूँघट में छिपे निर्गुनियाँ के छिपे भाव फैले–सिकुड़े, और इस क्रिया में वह थरथराहट से भर गई।"[470]

नागरजी ने निर्गुनियाँ के मनोभावों को उकेरते हुए उसके अन्तर–मन्थन को प्रकट कर दिया है। दारोगा बसन्त लाल के इन शब्दों ने "आज हम अपनी दो–दो माशूकों को अपनी बाहों में भर के जहांगीर बादशाह के दिल की रंगीनियों को महसूस करना चाहते हैं।" उस पर क्या प्रभाव डाला ? देखिए–

"निर्गुनिया सहम गई, कुछ वितृष्णा–सी भी हुई। यह भी सच है कि पिछली रात से उसका भीतर वाला मादक तत्व विकार की मथानी से मथ रहा था। यह भी सच है कि एक पुरुष से बँधे रहने की अपनी इच्छा के बावजूद वह अपने मन की तह–दर–तह कहीं यह भी सोचकर आई थी कि बसन्त लाल यदि पहल करेगा तो वह इन्कार नहीं करेगी, हालांकि इस इच्छा को स्पष्ट रूप से स्वयं अपने सामने भी प्रकट करने से हिचकती है। जिस काम–वासना ने उसे हर तरह से बबार्द कर दिया उससे वह दूर से दूर भागना चाहती है, पर भाग नहीं पाती। उसके मन में अपना एक ही प्रकार का इस्तेमाल, अपनी एक ही सार्थकता जीवन का एक मात्र अर्थ बनकर जुड़ गई है। बहाने–बहाने से मन में उमग कर उसके भीतर मादक और सुखद (लोभ–भरी) उत्तेजना भरने लगती है। विवेक–बुद्धि बिजना डुला–डुलाकर उसके इस विकार को ठण्डा करना चाहते हैं: वह ठण्डा होता भी है, पर फिर बिना बहाने के गर्माने लगता है। इन दिनों बिना कहे, निराधार छोड़कर चले जाने वाले मोहन से उसे फिलहाल कुछ चिढ़ है। वह उधर से मन हटाती है तो उसकी रति–लालसा विचारों में बसन्तू का सहारा ले लेती है। कल रात से विकार की मक्खी के पांव फिर जम गए हैं। विवेक–वर्जनाओं के पत्थर तले जो गुड़ छिपा–दबा कर रखा गया है, वह पत्थर के तपने पर पिघल कर बाहर निकल पड़ता है। मक्खी उसी मिठास पर जमी है। मिठास लेते–लेते मानो उसके पांव गुड़ में गड़ गए थे, और वह गुड़ था बसन्त लाल दारोगा उर्फ मास्टर जी। वही गुड़ और मिठास पाने का क्षण आया था, और वह उसके लिए तैयार भी थी। पर बसन्तू 'जहांगीर' बनकर दो–दो औरतों से खेलेगा, यह सुनते ही

उसका मन सिमट गया है। निर्गुनियाँ ने अब तक अपने जीवन के सारे निर्लज्ज सुखद क्षण किसी एक के साथ ही एकान्त में बिताए थे। वह कैसे सह लेगी। यह निर्जज्जता! लेकिन निर्लज्जता उसके सामने साकार आकर खड़ी हो गई है।''[471]

नागरजी पात्रों के चरित्र को वाह्य संघर्षों के साथ–साथ उनके अन्तर्द्वन्द्वों से गुजरता हुआ चित्रित करते हैं, ऐसे चित्र अत्यन्त सजीव और मार्मिक हो गए हैं। निर्गुनियाँ के टूटे हुए मन को उसका अन्तर्द्वन्द्व परिस्थितियों के प्रति सजग बनाता है– ''जो हुआ सो हुआ .....अब इस मेहतर जून से छुटकारा लूं, भले वेश्या बन जाऊं। बसन्तू किस्मत से ही मिला है। मास्टर से उसे कभी प्यार भी था। पांच पुरुषों द्वारा भोगी जाने पर वह अपनी दृष्टि में भी अब सती नहीं रही थी। मोहना गया तो जाने दो। उसने एक सुख देकर सैकड़ों दुख भी दिए हैं। बसन्त लाल के जरिए एकाध कोई मोटा सेठ फंसा लूगी और फिर उसे अपने जादू से ऐसा बांधूंगी कि यह जनम निभ जाएगा। उससे न निभेगा तो कोई और मिल जाएगा। वेश्या तो हूं ही, वेश्या! लेकिन वेश्या के अन्दर मातृत्व भी पनप रहा है। ऊंह, यह सब ढकोसला है। रंडी को मां की तरह कोई इज्जत न देगा। वह हर हाल में रंडी ही रहेगी। अम्मां के घर में भी तो उसके माता बनने की सम्भावनाएं उदित हुई थीं.....भूत और वर्तमान के दो मर्म बहुत देर तक मन के तराजू पर तुलते रहे। निर्गुनियाँ करवटें बदलती रही। अभागी को किसी भी करवट चैन न मिलता था। ××× उसे चैन नहीं था। एक जान बसन्तू में, एक जान मोहन में, एक अपने में, अपने गर्भ में ..... लाख दुःख देने के बावजूद, तात्कालिक क्रोध के बावजूद, मोहना निर्गननियाँ को अपने मन के बहुत पास लगता था। यह सच है कि मोहन ने निर्गुनियाँ के ब्राह्मणत्व पर अपना मेहतरत्व लादा, उसकी अहंता को कुचल–कुचल कर धूल में मिला दिया, पर बसंन्त लाल दारोगा तो उसे कुछ भी नहीं बना पाया। बसन्त लाल अपने ढंग का था, निगोड़ा। पैसों के लिए अम्मां की सेवा करता था, और तृप्ति के लिए मेरी देह चिचोड़ता था; वह भी अम्मां से पाई हुई रिश्वत के तौर पर। हाय, इस देह के भोग ने ही उसे जीवन के सारे नारकीय भोग भुगवा दिए! .....निर्गुनियाँ चेत! उबर! नाना से कथा में कितनी बार सुना था– मन के मिथ्या मोह प्राणियों को अपने लुभावने मायाजाल में फंसाकर नचाते हैं। हर सुन्दर फूल एक न एक दिन मुरझाता है और सुन्दर है केवल मेघ श्याम मन मोहन, अखंड, अछेद अभेद, अनन्त श्रीराम। ..... भाग चल निर्गुनियाँ! उछाला मिला है। उद्धार कर ले अपना! जा, भाग जा यहां से! भाग! भाग! लेकिन कहां भागे ? उसके जीवन में तीन बार तीन तरह की दुनियायें बदल चुकीं। पर तन–मोहन को छोड़कर अभी मनमोहन के ध्यान में मजा नहीं आता। मन अभी तन का गुलाम है, अपना स्वामी नहीं बना।''[472]

मानस का हंस

'मानस का हंस' में विनय पत्रिका के पदों के आधार पर तुलसी के अन्तः संघर्ष के अनमोल क्षणों को संजोकर नागरजी ने तुलसी के मनोव्यक्तित्व का ढांचा खड़ा किया है।

'रामचरित मानस' की पृष्ठभूमि में भी तुलसी की मनोछवि अंकित करने में भी उन्हें 'विनय पत्रिका' के तुलसी की सहायता लेनी पड़ी है। 'मानस का हंस' में तुलसी स्वयं स्वीकार करते है कि– ''मानस में, विनय पदों में , कवितावली और दोहों में अपनी अनेक रचनाओं में मैंने अपने जीवन की अनुभूतियां ही तो समर्पित की हैं।''[473] तुलसी के अंतिम समय के मनोलोक की झांकी प्रस्तुत करते हुए मनोवैज्ञानिक प्रणाली द्वारा चरित्रांकन दृष्टव्य है– ''उनकी दृष्टि किसी दूरागत दृश्य को देख रही थी। स्मृति लोक में नगाड़े बज रहे थे और अंधकार क्रमशः उजाले में परिवर्तित होता और सुहावना दृश्य झलका। नगाड़ों की ध्वनि मानो हर–हर कर रही थी।''[474]

तुलसी की मनोदृष्टि में प्रिया रत्नावली का अन्तिम रूप दर्शन मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन प्रणाली का एक अभिनव रूप प्रदर्शित करता है– ''ध्यान में प्रिया का अंतिम रूप दर्शन था और मनोदृष्टि में चार आँखें एक–दूसरे में लीन होकर आनन्द मग्न थी। सीताराम! सीताराम!''– रत्ना का स्वर है। कहाँ से आ रहा है ? सबेरे धरती पर दिखलाई पड़ती अर्धांगिनी माया की तरह विलुप्त है। धरती पर टिकी हथेली उठाकर गोद में बाएं हाथ की खुली हथेली पर आ जाती है। दोनों भौहों के बीच बाबा के ध्यान बिन्दु से उनका सूक्ष्ममन जुगुनू सा उड़ता हुआ प्रकट होता है और सीधा दिये की लौ में समा जाता है। उनकी अन्तर्दृष्टि में लौ लघु से विराट होती जाती है। उनकी कल्पना में पूरा कमरा अनन्त विद्युत प्रकाश से ऐसा जगमगा जाता है, मानो कमरे का फर्श और दीवारें ईट चूने की न होकर मणि जटित हों।''[475] मोहिनी के प्रति प्रेमासक्ति को लेकर तुलसी के मन के बिम्बों को उभार कर उनकी अन्तः प्रेरणा का कितना सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। उनके मन की लज्जा और ग्लानि का चरित्रांकन– 'कहाँ जा रहा है रे राम बोला! हीरा छोड़कर काँच की चमक ने लुभाया है ? सोचकर आँखें भर आयीं। कल्पना में विराजी सीताराम की छवि ऐसे हिल रही थी जैसे पानी मे परछाई, और उस परछाई के तल में एक और स्पष्ट प्रतिबिम्ब था जो तुलसी की भावना के अनुसार भय से कांप रहा था। ×××× छल है। छल है। चेत रे मन, चल इस नगरी मे तुझे वह वस्तु नहीं मिलेगी जिसे तू चाहता है। ××× चल रे मेघ, कहीं और बरस, इस नगरी में सबके मन पत्थर हैं। ××× नहीं–नहीं राम, अब लोकेषणा में नहीं फंसूगा। यह नारी के रूप के समान भले ही कितनी लुभावनी क्यों न हो, पर विष है विष।''[476] कितनी कुशलता के साथ तुलसी को अन्तः प्रेरणाओं को मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के साथ उकेरा गया है।

वस्तुतः 'मानस का हंस' तुलसी, रत्ना और मोहिनी के मनोवैज्ञानिक, चरित्रांकन से भरा पड़ा है।

एकदा नैमिषारण्ये

'एकदा नैमिषारण्ये' में इज्या और सोमाहुति के प्रथम मिलन का स्मरण उनके मानसिक सोच को प्रदर्शित करता है– "सोमाहुति आज भी अपना और इज्या का वह पहला क्षण भूल नहीं पाए हैं। अपने कक्ष में लेटे–लेटे, उस क्षण की स्पष्ट झलक के तराजू पर जब से उन्होंने प्रज्ञा के चुम्बन को तोला तो भाव खुल गया। जो अनुभूति इज्या की चुम्बकीय शक्ति से हुई थी, वह प्रज्ञा से कदापि नहीं होती। केवल एक प्रकार का आकर्षण मात्र है। 'आश्वस्त हो मन।' तू निष्पाप है। तेरे लिए, तेरी इज्या के अनेक अर्थ हैं। प्रज्ञा का केवल एक ही उजागर अर्थ है। किन्तु उजागर होते हुए भी वह रहस्यमय है, और आकर्षण केवल उस रहस्य के प्रति ही है।.....रही तुम्हारी भारत के प्रति अनायास कठोरता–वह रहस्य नहीं है। वह अप्राकृतिक अथवा असुन्दर भी नहीं है; चिन्तनीय भी केवल काव्य की दृष्टि से ही हैं। चाहो तो अपनी प्रिया की निष्ठुरता को अपने उलाहने भरे अधीर शब्दों से सँवार लो। सोच कर चेहरे पर मुस्कान आ गयी।"[477] यहां नागर जी ने इज्या और प्रज्ञा की चारित्रिक विशेषताओं को सोमाहुति के चिन्तन द्वारा उद्घाटित किया है और सोमाहुति की अन्तः प्रेरणा का भी चित्रण हो गया है।

भारत के पिता महन्त श्री वसुनाग के अन्तर्द्वन्द्व का प्रकाशन बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है– "रथों के घोड़े दोड़ने लगे। कल प्रातः काल की दुर्घटना होने से पहले तक वृद्ध महन्त या उनकी पुत्रवधू की कल्पना में भी यह बात न आई होगी कि आठ पहर में उनका घर ही उजड़ जायगा। एक कुल दीपक ने ही कुल में आग लगा दी। पला–पोसा, दादा और माँ के जीवनाधार, अपने ही नन्हें–मुन्ने की जान पिता के द्वारा एक चमड़े की थैली में बन्द करके लाये गये क्रुद्ध सर्प ने थैली का मुँह खुलते ही ले ली, फिर उस सर्प के फन पर भी छुरा फिर गया। .. .. फिर प्रज्ञा के महाशोक वश आत्महत्या करने के प्रयत्न से महन्त जी के घर का कलंक उजागर हो गया। एक निर्दोष वृद्ध, एक सती युवती पर अचानक इतना बड़ा दुर्भाग्यपात्। लेकिन भारत–उसका भी भला क्या दोष है ? उग्र अध्ययन, उग्र तप, उग्र विरोध, पराजय, उग्र मद्यपान और उग्र रतिभोग ने उसे संस्कार क्षीण नपुंसक बना दिया है। भारत अपने भूत काल की महत्ता और वर्तमान की लघुता से पीड़ित, प्रचण्ड अन्तर्द्वन्द्व से त्रस्त, जर्जर हो रहा है। यह संसार दुःखमय है। अपने–पराये किसी को देखो, कोई भी दुःख से मुक्त नहीं। संयम, नियम, व्यायाम, प्राणायाम, यज्ञ कर्म, प्रचण्ड अध्ययन, मनन आदि संस्कारों की सुदृढ़ चारदीवारी में पलने वाले, महात्मा सोमवर्ण के पुत्र, हुतात्मा अग्नि वर्ण के अनुज व्यास सोमाहुति का जीवन भी इन भौतिक दुःखों की पीड़ा से अलिप्त नहीं। वासुदेव, पीड़ा हरो प्रभु, जन मन को अपने आलोक से सँवारो।... ....."[478]

निष्कर्ष

अमृतलाल नागर अपने युग के मूर्धन्य उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों का उद्देश्य चरित्र–चित्रण मात्र ही नहीं है। समाज की समस्या लेकर उसका निराकरण करने के उद्देश्य से

चरित्र–चित्रण समस्या निरूपण में साधन होकर आया है। उन्होंने विविध समस्याओं के निरूपण हेतु पात्रों का निर्माण किया है। 'बूँद और समुद्र' समाज के बुनियादी यथार्थ की रीढ़ पर खड़ा है। उसने आज के मनुष्य के भीतर उठते हुए भावगत, विचारगत, परिवर्तनों, संक्रान्तिकालीन मूल्यों, राजनीतिक दलों की विभीषिकाओं से त्रस्त होती हुई मानवता को पहचान कर समाज और व्यक्ति की विसंगतियों को तीव्र यथार्थवादी दृष्टि से देखा है। समाज के विविध चरित्रों और उनके संबंधों की गाढ़ी पहचान होने के कारण इसके सारे पात्र अपनी–अपनी सार्थकता प्रमाणित करते हैं। वन कन्या, शीला स्विंग, ताई, नन्दो, मिसेज वर्मा आदि नारी पात्र जहाँ हमारे समाज के अनेक नारी रूपों का उद्घाटन करती हैं, वहीं सज्जन, महिपाल, कर्नल, बाबा रामजी दास, लाला जानकी शरण, सालिगराम, जगदेव सहाय, रूप रतन और शंकर लाल सेठ तथा कवि विरहेश जैसे पुरुष पात्र हमारे समाज के विभिन्न रूपों में चित्रित हैं।

'महाकाल' के जमींदार, राजा दयाल, सामंती व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं। मोनाई बनिया, पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके लिए धर्म और ईमान का कोई महत्व नहीं है। केशव बाबू, शीबू और उसकी पत्नी, पार्वती मां सभी का अपना पृथक–पृथक व्यक्तित्व है।

'सेठ बाँकेमल' उपन्यास की अनोखी चरित्र–सृष्टि है। इस चरित्र का व्यक्तित्व उपन्यासकार की सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण दृष्टि का परिचायक है।

'शतरंज के मोहरे' में कुछ तो ऐतिहासिक पात्र हैं और कुछ काल्पनिक। ऐतिहासिक पात्रों में भी उनके चरित्रांकन के लिए कल्पनाओं का सहारा लिया गया है। गाजीउद्दीन हैदर और नसीरूद्दीन हैदर दोनों ही एक–दूसरे के प्रतिबिम्ब हैं, इन दोनों में ही मानवीय कमियाँ उनके व्यक्तित्व को स्खलित करते हैं। आगामीर बहुत ही चतुर खिलाड़ी है, षड्यन्त्रकारी और महत्वाकांक्षी है, स्वार्थी और कुशाग्र बुद्धि भी है। हकीम मेंहदी को अवध के इतिहास पर कलंक के टीके के समान चित्रित किया गया है। यद्यपि उसमें कार्य क्षमता, दूरदर्शिता, व्यवहार कुशलता आदि समस्त गुण हैं तथापि अंग्रेजों का दलाल बनकर उसका चरित्र देश–द्रोही के रूप में चित्रित हो जाता है। दिग्विजय बह्मचारी का चरित्र आदर्श पूर्ण और अलौकिक है। नागरजी ने अपने प्रतिनिधि के रूप में त्याग, आदर्श, मानवता, क्षत्रियत्त्व और सन्यासी की छवि अंकित की है। उसका चरित्र किसी क्रान्तिकारी से कम नहीं है।

नारी चरित्रों में बादशाह बेगम और दुलारी दो ही प्रमुख पात्र हैं। बादशाह बेगम में एक ओर वात्सलय भाव हैं तो दूसरी ओर वह अपने स्वाभिमान के प्रति किसी को भी प्रश्रय नहीं देती। राजनीतिक कुचक्र की ये दोनों नारी पात्र सूत्रधार हैं, दोनों ही अहंकारिणी और राजनीतिक महत्वाकांक्षा से युक्त हैं। बीबी गुलाटी, भुलनी और कुलसुम के चरित्र भी अलग–अलग छवि रखते हैं। इसके अन्य पात्र शिथिल, आदर्शहीन लगते हैं।

'सुहाग के नूपुर' के पुरुष पात्रों में मासात्तुवान और मानाइहन तथा कोवलन और पाँसा के चरित्र गुणों और अवगुणों से युक्त हैं, जो मानवीय दुर्बलताओं से ग्रसित किन्तु संघर्षशील और

उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सजग प्रतीत होते हैं। नारी पात्रों में माधवी और कन्नगी क्रमशः नगर वधू और कुलवधू के रूप में अपने–अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हुई अपने लक्ष्य के प्रति सजग हैं।

'अमृत और विष' के पुरुष पात्र विभिन्न संस्कार वाले हैं और नारी पात्र भी अपने–अपने संस्कारों के प्रदर्शक हैं। उपन्यास में लेखक ने चरित्रों को दो वर्गो में विभाजित किया है। प्राचीन और नवीन। सभी पात्र तत्कालीन समाज का अनुशरण करने वाले हैं। नवीन पीढ़ी के पात्रों में अरविन्द शंकर और उनके उपन्यास के अन्य पात्र हैं, जो समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। नारी पात्रों में रानी बाला मध्य वित्तीय परिवार की विधवा युवती है और अरविन्द शंकर द्वारा लिखित उपन्यास की नायिका भी है। वह स्वतंत्र व्यक्तित्व वाली नारी पात्र है, उसमें प्रत्युत्पन्नमति की प्रचुरता है और इस प्रकार वह नवीन पीढ़ी की युवती वर्ग की प्रतिनिधि है। कुसुमलता खन्ना जो बहिन जी के नाम से प्रसिद्ध हैं एक प्रगतिशील विचारों वाली समाज सेविका हैं। माया अरविन्द शंकर की अर्धांगिनी है, वह पति परायणा और धार्मिक विचारों की महिला है। 'अमृत और विष' अनेक स्वभाव संस्कार की नारियों का जमघट है, पति को परमेश्वर मानने वाली अरविन्द शंकर की पत्नी माया, पति के प्रति निष्ठा रखते हुए भी उसकी कायरता पर प्रहार करने वाली पुत्ती गुरु की पत्नी। अन्तर्जातीय प्रेम–विवाह रचाकर मर्यादित जीवन व्यतीत करने वाली रानी बाला। समाज सुधार का बीड़ा उठाते हुए कुसुमलता खन्ना, पति से क्षुब्ध किन्तु नैतिकता का निर्वाह करने वाली रद्धू सिंह की पत्नी सुमित्रो, पति को अपमानित कर पिटवाने वाली, महत्वाकांक्षिणी ठकुरानी, पर पुरुषों से यौन संबंध रखने में प्रवीण उमा माथुर, आर्थिक विपन्नता के कारण बनी सोसायटी गर्ल गोपी, नौकरों से शारीरिक संबंध रखने वाली श्रीमती बोस, तवायफ वहीदन बेगम, स्वतंत्र एवं निर्भीक जीवन व्यतीत करने वाली साहसी गैहा बानो जैसी विविध नारियों का चरित्रांकन करने में लेखक को पूर्ण सफलता मिली है।

'सात घूंघट वाला मुखड़ा' ऐतिहासिक उपन्यास है। इसके प्रमुख पुरुष और नारी पात्र सभी एक से बढ़कर एक चालाक और कूटनीतिज्ञ हैं। नवाब समरू जो योरोप से लेकर हिन्दुस्तान तक सबको बेवकूफ बनाकर नवाब है, अन्त में जुआना बेगम द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है और जुआना बेगम की भी अन्त में वही दशा होती हैं।

'एकदा नैमिषारण्ये' ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यास है। अतः इसके कुछ पात्र पौराणिक हैं और कुछ काल्पनिक। इज्या, प्रज्ञा और भारत जैसे पात्र प्रतीकात्मक हैं। इस उपन्यास के शेष पात्र नागरजी के गम्भीर चिंतन, मनन एवं मानवतावादी अन्तर्दृष्टि के प्रतिफल हैं।

'मानस का हंस, ''रामचरितमानस' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास का जीवन–चरित्र है। गोस्वामी तुलसीदास और रत्नावली अपने आदर्श स्वरूप के कारण सभी के श्रृद्धेय हैं। दोनों का व्यक्तित्व पारस्परिक सापेक्षता में संभव हुआ है। तुलसीदास के जीवन के सम्पूर्ण घटनाक्रम में

गौण पात्रों का विशेष महत्व है। मेघा भगत श्रीराम के अनन्य भक्त हैं, वे तुलसी के प्रेरणा स्रोत भी हैं। मोहिनी, राज कुँवरी आदि नारी पात्र भी अपनी चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करते हैं।

'खंजन नयन' महाकवि सूरदास के जीवन पर आधारित उपन्यास है। इसमें सूर के जीवन की प्रामाणिकता उनके कुछ पदों तथा कुछ किवंदन्तियों के आधार पर सिद्ध हो गई है। सूर भी अपने जीवन काल में तुलसी की भाँति 'काम और श्याम' से जूझते हुए अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

नागरजी के उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टिकोण को लेकर चलने वाले पुरुष पात्र और कुछ आदर्शवादी पात्र भी मिलते हैं। विद्रोही नारी पात्रों की भाँति नागर जी के उपन्यासों में विद्रोही पुरुष पात्र भी हैं। ये पुरुष पात्र समाज निर्पेक्ष नहीं कहे जा सकते क्योंकि उनका दृष्टिकोण रूढ़िवादी समाज व्यवस्था के विरोध में नई समाज व्यवस्था की स्थापना करता है। जहां नारी का विद्रोह, प्रेम विवाह तथा पुरुष संबंधों को लेकर है, वहीं पुरुषों का विद्रोह विशेष रूप से वर्तमान व्यवस्था से है। जहां कहीं प्रेम और विवाह का विरोध मात्र वैयक्तिक दृष्टिकोण के कारण हैं, वहां व्यक्ति विद्रोही न होकर विशिष्ट बन जाता है। 'अमृत और विष' का रमेश परिस्थितयों से ऊपर दृढ़ संकल्प वाले पात्रों में से है।

नागरजी ने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर भी पुरुष पात्रों का निर्माण किया है। व्यक्ति के अंतरंग का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर चित्रण उपन्यास में अपनी सम्पूर्ण सजीवता के साथ मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में उभर कर सामने आया है।

नागरजी के प्रायः सभी उपन्यास मानव जीवन के अत्यधिक निकट हैं। मानव सहज नहीं दुर्भेद्य है। अतएव उसके जीवन की जटिलताएँ उपन्यास में भी साकार हो कर आई हैं। इसी से नागर जी के उपन्यासों का विषय क्षेत्र अत्यधिक व्यापक और विस्तृत हो गया है। समाज के उपेक्षित अस्पृश्य जातियों के व्यक्ति भी उपन्यास की कथा का आधार बने हैं। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' इसका ज्वलंत उदाहरण है।

पात्रों के नए रूप इस बात के प्रतीक हैं कि लेखक का पात्र निर्वाचन क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण ने ऐसे पात्रों को प्रस्तुत किया है जो विरोधी प्रवृत्तियों के परिणाम स्वरूप अधिक जटिल और असाधारण प्रतीत होते हैं। मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण के माध्यम से सृजित पात्र अधिक विकासशील हैं।

नागरजी अद्‌भुत चरित्र सृष्टा हैं। उनके पात्र अपनी जीवंतता के कारण अपना मार्ग स्वयं बनाते हैं। उनमें चेतना और सक्रियता है, इसीलिए वे जीवन संघर्ष में प्रतिकूलताओं से पीछे नहीं हटते हैं। नागरजी पात्रों के अन्तरंग चित्रण में स्वयं सामने नहीं आते। जीवंतता के कारण पात्र अपना परिचय स्वयं दे देता है। कारण यह है कि उनका कोई भी पात्र नकली नहीं है, सभी पात्र परिवेश में आसानी से मिल जाते हैं। नागर जी के उपन्यासों में पात्रों की जितनी विविधता है उतनी हिन्दी के किसी अन्य उपन्यासकार के उपन्यासों में नहीं है।

नागरजी पात्रों के चरित्र–चित्रण में सर्वथा सफल हुए हैं। हिन्दी उपन्यास में चरित्र–चित्रण की प्रायः सभी विधियों को अपने उपन्यासों में अपनाया है। चरित्र–चित्रण का सीधा संबंध मानव जीवन से है और मानव जीवन सतत् विकासशील है। मानव, मन अन्तरंग परिस्थितियों से प्रेरित रहता है। इसीलिए परिस्थितियों की जटिलता और परिवर्तनशीलता उसके अन्तरंग को गति देती है। मानव अपनी विविधताओं के साथ उपन्यास में सदैव आएगा और नूतनता का समावेश भी होता रहेगा।

संकेत सन्दर्भ–

1. हिन्दी साहित्य कोश। पृष्ठ–447
2. Webster-new International Diationary of English language. Pag-461
3. रणवीर रांग्रा–हिन्दी उपन्यास में चरित्र–चित्रण का विकास। पृष्ठ–27
4. प्रेमचन्द–कुछ विचार। पृष्ठ–38
5. W.H. Hudson-An Interodurtion to This study of Literature. Pag-148
6. E.M. Forstor Aspectro of the Novel . Pag-44
7 Henry Janes-The art of fiction. Pag-09
8. डॉ0 सुदेश बत्रा–अमृलाल नागर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत। पृष्ठ–310
9. आलोचना : उपन्यास विशेषांक, अंक 13। पृष्ठ–143
10. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–262
11. ,, ,, ,, पृष्ठ–30
12. ,, ,, ,, पृष्ठ–521
13. ,, ,, ,, पृष्ठ–53
14. ,, ,, ,, पृष्ठ–53
15. ,, ,, ,, पृष्ठ–54
16. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–260
17. ,, ,, ,, पृष्ठ–131
18. ,, ,, ,, पृष्ठ–260
19. ,, ,, ,, पृष्ठ–124
20. ,, ,, ,, पृष्ठ–125
21. ,, ,, ,, पृष्ठ–129
22. ,, ,, पृष्ठ–197
23. ,, ,, पृष्ठ–205
24. ,, ,, पृष्ठ–205
25. ,, ,, पृष्ठ–260
26. ,, ,, पृष्ठ–485
27. डॉ० रघुवंश–माध्यम–मई 1965। पृष्ठ–105
28. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–56
29. ,, ,, पृष्ठ–207
30. ,, ,, पृष्ठ–132

31. अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–89

32. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–11

33. ,, ,, पृष्ठ–12

34. ,, ,, पृष्ठ–03

35. ,, ,, पृष्ठ–12

36. ,, ,, पृष्ठ–10

37. ,, ,, पृष्ठ–528

38. ,, ,, पृष्ठ–539

39. ,, ,, पृष्ठ–563

40. ,, ,, पृष्ठ–566–567

41. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी–अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–86

42. आस्था और सौन्दर्य। पृष्ठ–138

43. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–10

44. ,, ,, पृष्ठ–373

45. डॉ0 राम विलास शर्मा–आस्था और सौन्दर्य। पृष्ठ–141

46. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–167

47. ,, ,, पृष्ठ–312

48. ,, ,, पृष्ठ–161

49 ,, ,, पृष्ठ–65

50. ,, ,, पृष्ठ–482–483

51. ,, ,, पृष्ठ–483–484

52. ,, ,, पृष्ठ–484

53. ,, ,, पृष्ठ–492

54. ,, ,, पृष्ठ–99

55. ,, पृष्ठ–102

56. ,, ,, पृष्ठ–102

57. ,, ,, पृष्ठ–102

58. ,, ,, पृष्ठ–272

59. ,, ,, पृष्ठ–273

60. ,, ,, पृष्ठ–477

61. अमृत और विष। पृष्ठ–183

62. ,, ,, ,, पृष्ठ–297

63.	अमृत और विष।	पृष्ठ–493
64.	,, ,, ,,	पृष्ठ–496
65.	,, ,, ,,	पृष्ठ–496
66.	,, ,, ,,	पृष्ठ–550
67.	,, ,, ,,	पृष्ठ–553
68.	,, ,, ,,	पृष्ठ–178
69.	,, ,, ,,	पृष्ठ–178–179
70.	,, ,, ,,	पृष्ठ–179
71.	,, ,, ,,	पृष्ठ–673
72.	,, ,, ,,	पृष्ठ–673
73.	,, ,, ,,	पृष्ठ–674
74.	मानस का हंस।	पृष्ठ–289–290
75.	,, ,, ,,	पृष्ठ–262
76.	,, ,, ,,	पृष्ठ–245
77.	,, ,, ,,	पृष्ठ–270–271
78.	,, ,, ,,	पृष्ठ–148
79.	,, ,, ,,	पृष्ठ–176–177
80.	धर्म युग, अप्रैल 8–1973।	
81.	मानस का हंस।	पृष्ठ–53
82.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–87
83.	,, ,,	पृष्ठ–94
84.	,, ,,	पृष्ठ–95
85.	,, ,,	पृष्ठ–101
86.	,, ,,	पृष्ठ–151
87.	,, ,,	पृष्ठ–153
88.	,, ,,	पृष्ठ–154
89.	,, ,,	पृष्ठ–161
90.	,, ,,	पृष्ठ–161
91,	,, ,,	पृष्ठ–224
92.	,, ,,	पृष्ठ–265
93.	,, ,,	पृष्ठ–64
94.	,, ,,	पृष्ठ–65

95.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–73
96.	,, ,,	पृष्ठ–253
97.	,, ,,	पृष्ठ–250
98.	,, ,,	पृष्ठ–251
99.	,, ,,	पृष्ठ–251
100.	,, ,,	पृष्ठ–248
101.	,, ,,	पृष्ठ–254
102.	,, ,,	पृष्ठ–267
103.	,, ,,	पृष्ठ–48
104.	,, ,,	पृष्ठ–48
105.	,, ,,	पृष्ठ–49
106.	अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त।	पृष्ठ–133
107.	राम अवध शास्त्री–शतरंज के मोहरेः एक दृष्टि।	पृष्ठ–82
108.	नागरः उपन्यास कला।	पृष्ठ–189
109.	अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त।	पृष्ठ–132–133
110.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–159
111.	अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त।	पृष्ठ–133
112.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–320
113.	,, ,,	पृष्ठ–320
114.	,, ,,	पृष्ठ–285
115.	सात घूंघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–08
116.	,, ,, ,,	पृष्ठ–79
117.	,, ,, ,,	पृष्ठ–34
118.	,, ,, ,,	पृष्ठ–81
119.	,, ,, ,,	पृष्ठ–80.
120.	,, ,, ,,	पृष्ठ–36
121.	,, ,, ,,	पृष्ठ–115
122.	,, ,, ,,	पृष्ठ–67
123.	नाच्यौ बहुत गोपाल।	पृष्ठ–181
124.	,, ,, ,,	पृष्ठ–82
125.	,, ,, ,,	पृष्ठ–291
126.	,, ,, ,,	पृष्ठ–263

127. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–113
128. दस्तावेज–विशेषांक, अक्टूबर 1978। पृष्ठ–28
129. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–199
130. खंजन नयन। पृष्ठ–52
131. ,, ,, पृष्ठ–108
132. ,, ,, पृष्ठ–110
133. ,, ,, पृष्ठ–123
134. ,, ,, पृष्ठ–101
135. ,, ,, पृष्ठ–111
136. ,, ,, पृष्ठ–126
137. महाकाल। पृष्ठ–163
138. डॉ0 सुषमा धवन – हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–63
139. महाकाल। पृष्ठ–68
140. ,, ,, पृष्ठ–217
141. ,, ,, पृष्ठ–250
142. अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–59
143. महाकाल। पृष्ठ–145–146
144. ,, ,, पृष्ठ–176
145. ,, ,, पृष्ठ–185
146. हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–64
147. आलोचना–वैलूमचार, 1954–55 हिन्दी के सामाजिक कथानायकों का विकास। पृष्ठ–46
148. अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–60
149. डॉ0 शिवनारायण श्रीवास्तव–हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–429
150. महाकाल। पृष्ठ–127
151. प्रकाश चन्द्र मिश्र–नागर का उपन्यास साहित्य। पृष्ठ–69
152. महाकाल। पृष्ठ–128
153. ,, ,, पृष्ठ–242
154. डॉ0 सत्यपाल चुघ–आस्था के प्रहरी। पृष्ठ–18
155. हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–375
156. प्रकाश चन्द्र मिश्र–नागर उपन्यास कला। पृष्ठ–76

157. आलोचना, 4–1964, राजेन्द्र यादव का लेख–हिन्दी के सामाजिक कथा नायकों का विकास। पृष्ठ–48
158. प्रकाश चन्द्र मिश्र–नागर उपन्यास कला। पृष्ठ–79
159. सेठ बाँकेमल। पृष्ठ–62
160. ,, ,, पृष्ठ–43
161. ,, ,, पृष्ठ–100
162. ,, ,, पृष्ठ–55
163. ,, ,, पृष्ठ–105
164. ,, ,, पृष्ठ–05
165. ,, ,, पृष्ठ–84
166. ,, ,, पृष्ठ–42
167. नागर उपन्यास कला। पृष्ठ–78–79
168. अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–70
169. डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी–अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–79
170. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–496
171. ,, ,, पृष्ठ–556–557
172. ,, ,, पृष्ठ–105
173. ,, ,, पृष्ठ–105
174. ,, ,, पृष्ठ–105
175. ,, ,, पृष्ठ–107
176. ,, ,, पृष्ठ–448
177. ,, ,, पृष्ठ–497
178. ,, ,, पृष्ठ–537
179. ,, ,, पृष्ठ–564
180. ,, ,, पृष्ठ–576
181. ,, ,, पृष्ठ–577
182. हिन्दी उपन्यास शिल्प –बदलते परिप्रेक्ष्य। पृष्ठ–30
183. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–95
184. आस्था और सौन्दर्य। पृष्ठ–142
185. माध्यम–मई, 1965।
186. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–100

187. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–18
188. डॉ0 सुषमा धवन–हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–70
189. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–75
190. ,, ,, पृष्ठ–86
191. ,, ,, पृष्ठ–87
192. ,, ,, पृष्ठ–88
193. ,, ,, पृष्ठ–133
194. ,, ,, पृष्ठ–366
195. ,, ,, पृष्ठ–07
196. डॉ0 ललित शुक्ल–'दिशाओं के परिवेश, मध्यवर्ग का विस्तार और अन्तरविरोध' शीर्षक लेख–सुरेन्द्र चौधरी। पृष्ठ–185
197. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–94
198. ,, ,, पृष्ठ–94
199. डॉ0 राम विलास शर्मा–आस्था और सौन्दर्य। पृष्ठ–143
200. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–498
201. अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–78
202. डॉ0 सुषमा धवन–हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–67
203. डॉ0 रघुवंश–माध्यम मई, 1965।
204. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–277
205. ,, ,, पृष्ठ–17
206. ,, ,, पृष्ठ–377
207. ,, ,, पृष्ठ–376
208. हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–432
209. अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–83
210. हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और संरचना। पृष्ठ–144
211. हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–76
212. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–582–583
213. ,, ,, ,, पृष्ठ–583
214. डॉ0 इन्द्रनाथ मदान–आज का हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–68
215. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–567
216. ,, ,, पृष्ठ–264
217. ,, ,, पृष्ठ–566

218. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–261

219. ,, ,, पृष्ठ–566

220. ,, ,, पृष्ठ–222–223

221. डॉ0 रघुवंश–माध्यम मई, 1965।

222. दस्तावेज अंक 2–जनवरी 1979 में प्रकाशित नागर जी का पत्र। पृष्ठ–10–11

223. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–17

224. ,, ,, पृष्ठ–58

225. ,, ,, पृष्ठ–59

226. ,, ,, पृष्ठ–59

227. ,, ,, पृष्ठ–63

228. ,, ,, पृष्ठ–64

229. ,, ,, पृष्ठ–64

230. डॉ0 सुरेश सिन्हा–हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–254

231. अमृत लाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–110

232. आस्था के प्रहरी। पृष्ठ–101

233. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–140

234. आधुनिक हिन्दी साहित्य। पृष्ठ–259

235. अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–113–114

236. अमृत और विष, कथनीय।

237. अमृत और विष। पृष्ठ–617

238. ,, ,, पृष्ठ–533

239. डॉ0 सत्येन्द्र–नया दौर। पृष्ठ–235

240. अमृत और विष। पृष्ठ–679

241. ,, ,, पृष्ठ–638

242. ,, ,, पृष्ठ–700

243. प्रकाश चन्द्र मिश्र–नागर उपन्यास कला। पृष्ठ–147

244. ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–149

245. अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–101

246. अमृत और विष। पृष्ठ–120

247. अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–103

248. अमृत और विष। पृष्ठ–504

249. अमृत और विष। पृष्ठ–45
250. ,, ,, पृष्ठ–67
251. ,, ,, पृष्ठ–716
252. डॉ0 सुदेश बत्रा–अमृतलाल नागरःव्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–93
253. ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–94
254. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–69
255. ,, ,, पृष्ठ–69
256. ,, ,, पृष्ठ–69
257. ,, ,, पृष्ठ–322
258. ,, ,, पृष्ठ–234
259. ,, ,, पृष्ठ–388–389
260. ,, ,, पृष्ठ–350
261. ,, ,, पृष्ठ–312
262. ,, ,, पृष्ठ–326
263. ,, ,, पृष्ठ–145
264. ,, ,, पृष्ठ–156
265. ,, ,, पृष्ठ–206
266. नागर उपन्यास कला। पृष्ठ–185
267. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–230
268. ,, ,, पृष्ठ–227
269. ,, ,, पृष्ठ–230
270. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–51
271. ,, ,, पृष्ठ–558
272. ,, ,, पृष्ठ–549–550
273. दामोदर वाशिष्ठ–उपन्यासकारःअमृतलाल नागर। पृष्ठ–84
274. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–291
275. ,, ,, पृष्ठ–271–272
276. ,, ,, पृष्ठ–272
277. ,, ,, पृष्ठ–04
278. ,, ,, पृष्ठ–399
279. ,, ,, पृष्ठ–406

280. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–50–51

281. ,, ,, पृष्ठ–534

282. ,, ,, पृष्ठ–390

283. ,, ,, पृष्ठ–390

284. ,, ,, पृष्ठ–84

285. ,, ,, पृष्ठ–68

286. सात घूंघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–74

287. ,, ,, ,, पृष्ठ–74

288. ,, ,, ,, पृष्ठ–76

289. ,, ,, ,, पृष्ठ–79

290. मानस का हंस। पृष्ठ–20

291. ,, ,, पृष्ठ–53

292. धर्म युग–8 अप्रैल, 1973।

293. मानस का हंस। पृष्ठ–105

294. आमुख। पृष्ठ–04

295. डॉ0 दामोदर वाशिष्ठ–उपन्यासकारः अमृतलाल नागर। पृष्ठ–89

296. मानस का हंस। पृष्ठ–348

297. ,, ,, पृष्ठ–334

298. ,, ,, पृष्ठ–342

299. डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी–अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–118

300. मानस का हंस। पृष्ठ–363

301. ,, ,, पृष्ठ–374

302. ,, ,, पृष्ठ–378

303. ,, ,, पृष्ठ–386

304. अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–187

305. आलोचना–अंक 28। पृष्ठ–80

306. मानस का हंस। पृष्ठ–141–142

307. ,, ,, पृष्ठ–302

308. अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–168

309. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–76

310. ,, ,, पृष्ठ–269

311. ,, ,, पृष्ठ–319

312.	नाच्यौ बहुत गोपाल।	पृष्ठ–117
313.	,, ,,	पृष्ठ–157
314.	,, ,,	पृष्ठ–201
315.	,, ,,	पृष्ठ–201
316.	,, ,,	पृष्ठ–164
317.	,, ,,	पृष्ठ–167
318.	,, ,,	पृष्ठ–210
319.	,, ,,	पृष्ठ–119
320.	दस्तावेज–अंक 2, 1979।	पृष्ठ–10
321.	खंजन नयन।	पृष्ठ–39–40
322.	,, ,,	पृष्ठ–39–40
323.	,, ,,	पृष्ठ–45
324.	,, ,,	पृष्ठ–48
325.	,, ,,	पृष्ठ–54
326.	,, ,,	पृष्ठ–56
327.	,, ,,	पृष्ठ–53
328.	,, ,,	पृष्ठ–55
329.	,, ,,	पृष्ठ–57
330.	,, ,,	पृष्ठ–159
331.	,, ,,	पृष्ठ–192
332.	,, ,,	पृष्ठ–62–63
333.	,, ,,	पृष्ठ–31
334.	,, ,,	पृष्ठ–49
335.	,, ,,	पृष्ठ–49–50
336.	,, ,,	पृष्ठ–51
337.	,, ,,	पृष्ठ–52
338.	,, ,,	पृष्ठ–143
339.	,, ,,	पृष्ठ–198
340.	,, ,,	पृष्ठ–234
341.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–07
342.	,, ,,	पृष्ठ–566

343. दस्तावेज–अंक 2, जनवरी 1979 में प्रकाशित नागरजी, पत्र। पृष्ठ–10–11

344. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–261

345. सात घूंघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–132

346. खंजन नयन। पृष्ठ–140

347. ,, ,, पृष्ठ–177

348. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–100

349. ,, ,, पृष्ठ–88

350. ,, ,, पृष्ठ–86

351. ,, ,, पृष्ठ–360

352. ,, ,, पृष्ठ–75

353. ,, ,, पृष्ठ–10

354. ,, ,, पृष्ठ–72

355. ,, ,, पृष्ठ–124–125

356. ,, ,, पृष्ठ–129

357. ,, ,, पृष्ठ–260–261

358. अमृत और विष। पृष्ठ–209

359. ,, ,, पृष्ठ–220

360. अमृत और विष (पंचम संस्करण 1982 और छठा संस्करण 1986)। पृष्ठ–47

361. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–85

362. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–68

363. ,, ,, पृष्ठ–30

364. सात घूंघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–36

365. ,, ,, ,, पृष्ठ–37

366. ,, ,, ,, पृष्ठ–08

367. ,, ,, ,, पृष्ठ–08

368. ,, ,, ,, पृष्ठ–84

369. शतरंज के मोहरे (पांचवाँ संस्करण 1984)। पृष्ठ–14

370. ,, ,, ,, पृष्ठ–29

371. ,, ,, ,, पृष्ठ–106

372. ,, ,, ,, पृष्ठ–137

373. शतरंज के मोहरे (पांचवाँ संस्करण 1984)। पृष्ठ–201
374. खंजन नयन। पृष्ठ–14
375. ,, ,, पृष्ठ–48
376. ,, ,, पृष्ठ–52
377. ,, ,, पृष्ठ–63
378. ,, ,, पृष्ठ–77
379. ,, ,, पृष्ठ–153
380. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–16
381. अमृत और विष। पृष्ठ–185
382. ,, ,, पृष्ठ–185
383. ,, ,, पृष्ठ–186
384. सात घूंघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–19
385. ,, ,, ,, पृष्ठ–26
386. ,, ,, ,, पृष्ठ–48
387. ,, ,, ,, पृष्ठ–72
388. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–36
389. महाकाल। पृष्ठ–30
390. ,, ,, पृष्ठ–79
391. ,, ,, पृष्ठ–79
392. ,, ,, पृष्ठ–227
393. ,, ,, पृष्ठ–220
394. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–566
395. ,, ,, पृष्ठ–167
396. ,, ,, पृष्ठ–161
397. ,, ,, पृष्ठ–161
398. ,, ,, पृष्ठ–260
399. ,, ,, पृष्ठ–484
400. ,, ,, पृष्ठ–483
401. ,, ,, पृष्ठ–88
402. ,, ,, पृष्ठ–88–89
403. ,, ,, पृष्ठ–105
404. ,, ,, पृष्ठ–268

405.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–268
406.	,, ,,	पृष्ठ–275
407.	,, ,,	पृष्ठ–537
408.	,, ,,	पृष्ठ–564
409.	,, ,,	पृष्ठ–565
410.	,, ,,	पृष्ठ–577
411.	सात घूंघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–09
412.	सात घूंघट वाला मुखड़ा (प्रथम संस्करण 1968)।	पृष्ठ–11
413.	,, ,, ,,	पृष्ठ–14
414.	,, ,, ,,	पृष्ठ–19
415.	,, ,, ,,	पृष्ठ–26
416.	,, ,, ,,	पृष्ठ–34
417.	,, ,, ,,	पृष्ठ–56–57
418.	,, ,, ,,	पृष्ठ–155
419.	सात घूंघट वाला मुखड़ा (प्रथम संस्करण 1968)।	पृष्ठ–35
420.	,, ,, ,,	पृष्ठ–36
421.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–53
422.	,, ,,	पृष्ठ–49–50
423.	,, ,,	पृष्ठ–172
424.	,, ,,	पृष्ठ–176
425.	,, ,,	पृष्ठ–177
426.	,, ,,	पृष्ठ–205–206
427.	,, ,,	पृष्ठ–264
428.	,, ,,	पृष्ठ–258
429.	,, ,,	पृष्ठ–152
430.	खंजन नयन।	पृष्ठ–13
431.	,, ,,	पृष्ठ–17
432.	,, ,,	पृष्ठ–20
433.	,, ,,	पृष्ठ–26
434.	,, ,,	पृष्ठ–29
435.	,, ,,	पृष्ठ–35
436.	,, ,,	पृष्ठ–36

437.	खंजन नयन।	पृष्ठ–39–40
438.	,, ,,	पृष्ठ–54
439.	,, ,,	पृष्ठ–56
440.	,, ,,	पृष्ठ–46
441.	,, ,,	पृष्ठ–61–62
442.	,, ,,	पृष्ठ–68
443.	,, ,,	पृष्ठ–70–71
444.	,, ,,	पृष्ठ–71
445.	,, ,,	पृष्ठ–154
446.	,, ,,	पृष्ठ–158
447.	,, ,,	पृष्ठ–128
448.	अमृत और विष।	पृष्ठ–104
449.	अमृत और विष (छठा संस्करण)।	पृष्ठ–86
450.	,, ,, ,,	पृष्ठ–111
451.	अमृत और विष (छठा संस्करण)।	पृष्ठ–126
452.	,, ,, ,,	पृष्ठ–195
453.	,, ,, ,,	पृष्ठ–210
454	,, ,, ,,	पृष्ठ–214
455.	,, ,, ,,	पृष्ठ–267
456.	,, ,, ,,	पृष्ठ–268
457.	,, ,, ,,	पृष्ठ–289
458.	,, ,, ,,	पृष्ठ–292
459.	,, ,, ,,	पृष्ठ–315
460.	,, ,, ,,	पृष्ठ–479
461.	अमृत और विष (छठा संस्करण)।	पृष्ठ–34
462.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–136
463.	,, ,,	पृष्ठ–136–137
464.	,, ,,	पृष्ठ–40–41
465.	,, ,,	पृष्ठ–42
466.	,, ,,	पृष्ठ–133
467.	,, ,,	पृष्ठ–134
468.	,, ,,	पृष्ठ–251

469.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–254
470.	नाच्यौ बहुत गोपाल।	पृष्ठ–178
471.	,, ,, ,,	पृष्ठ–179–180
472.	,, ,, ,,	पृष्ठ–165–166
473.	मानस का हंस।	पृष्ठ–26
474.	,, ,,	पृष्ठ–162
475.	,, ,,	पृष्ठ–27
476.	,, ,,	पृष्ठ–129
477.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–54
478.	,, ,,	पृष्ठ–61

अध्याय–सात

1. संवाद शिल्प।

(क) संवादों के गुण।

(ख) संवादों के कार्य।

(ग) संवादों का वर्गीकरण।

2. संवाद शिल्प का अनुशीलन।

निष्कर्ष।

संवाद–शिल्प

कथोपकथन या संवाद उपन्यास का एक प्रमुख तत्व है। पात्रों की क्रियाओं को और उनके चरित्र को नाटकीय और प्रभावी बनाने की दृष्टि से उपन्यास में संवादों का अत्यन्त महत्व है। संवाद कथानक को नाटकीय मोड़ देने और कथानक को मनोरंजक बनाने में सहयोग करते हैं। उपन्यास में वर्णन, चिन्तन और विश्लेषण के लिए भी संवादों का विशिष्ट स्थान है। वास्तव में वातावरण और पात्रों की मनोवैज्ञानिकता के साथ–साथ उनकी विचार प्रक्रियाओं का सारा दारोमदार संवाद पर ही निर्भर होता है।

1. संवादों के गुण

क. उपयुक्तता।

ख. अनुकूलता।

ग. सम्बद्धता।

घ. स्वाभाविकता।

ड. संक्षिप्तता।

च. उद्देश्यपूर्णता।

नागरजी ने अपने उपन्यासों में प्रयुक्त संवादों में इन गुणों का पूर्ण ध्यान रखा है। अब हम क्रमशः उनके उपन्यासों में प्रयुक्त संवादों में इन्ही गुणों का अन्वेषण करेंगे।

क. उपयुक्तता–

यदि एक ओर उपयुक्त संवाद किसी विशेष स्थल पर चमत्कार की सृष्टि कर सकता है तो दूसरी ओर अनुपयुक्त संवाद उसमें दोष उत्पन्न कर देता है। इसीलिए उपन्यासकार संवाद को चमत्कार सृष्टि का महत्वपूर्ण माध्यम मानकर उसका उपयोग करता है। संवाद उपन्यास की घटना, अवसर तथा वातावरण के उपयुक्त होना चाहिए।

'बूँद और समुद्र' में कन्या के पिता कन्या की भाभी के साथ जो छिपा हुआ व्यभिचार करते हैं और जिसके कारण कन्या की भाभी को आत्महत्या करने पर– इस घटना के उपयुक्त शीला और सज्जन का संवाद ऐसी घटनाओं के कारणों पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं। पीछे अपनी जगह पर बैठी हुई शीला बोली– "यह सही है, ऐसी ट्रेजडीज यहाँ सैकड़ों होती हैं, मगर करना क्या चाहिए ? आखिर इनका इलाज क्या है ?" सज्जन बगैर सोचे ही सोचने वाला मुह बनाकर बोल उठा– "ये सब शिक्षा की कमी की वजह से है। हमारी जनता बहुत बैकवर्ड है।"

"शिक्षा? ह्वाट शिक्षा ? कैसी शिक्षा ? समाज को आखिर क्या सिखाया जाय जिससे कि ऐसे क्राइम्स एक दम से बन्द हो जाय।" डॉ0 शीला यह कहते हुए सोच में डूबने लगी।

"गवर्मेंट उनको एजूकेशन दे। उन्हें समझाया जाय कि मानवता क्या है ? हियूमन वैल्यूज क्या हैं ?"

"मगर आप उनको समझाइएँगा कैसे ? आपके पास साधन क्या है ?"

महिपाल ने सज्जन की बात काटी।

"क्यों ? गवर्मेंट टीचर्स् अपाइन्ट करे। आर्ट और कल्चरल फंक्सन कराए। कुछ ऐसे स्त्री पुरुष भी रखे जायँ जो घर–घर जाकर लोगों को सफाई, रहन–सहन के कायदे समझाएँ, उनकी दिमागी सतह को ऊँचा उठाए।"[1]

समाज में विवाहों के अवसर पर बाराती लोग लड़की पक्ष वालों को किन–किन समस्याओं में डाल देते हैं ?– मन्नो की शादी में बारात आ गई है। यथाशक्ति उनके जनवासे के लिए प्रबन्ध किया गया है फिर भी उनके नखरे देखने–सुनने योग्य हैं–

"कहिए साहब, क्या हुकुम है ?"

"अबे हुक्म के गुलाम, यही इन्तजाम है ? हम लोग यहाँ नहीं रह सकते। आखिर यंग जनरेशन और ओल्ड जनरेशन को एक साथ रखने का क्या तुक है ? हमारा अलग इंतजाम कीजिए।"

"असल में आज के दिन इतनी बरातें हैं कि हमें दूसरा जनवासा नहीं मिल सका–"

"तब फिर बारात बुलाने की आवश्यकता ही क्या थी ? शादी पोस्ट पोन कर देते।"

"राजकिशोर! भई या तो दूसरी जगह हम लोगों का अरेंजमेंट कराओं, वरना कम से कम मैं तो इसी वक्त स्टेशन चला जाऊँगा।"

"सुन रहे हैं न आप ? अनलेस एण्ड एन्टिल आप इन लोगों के लिए कोई सुटेबुल अरेंजमेंट नहीं करते तब तक मैं शादी के किसी भी काम में शरीक नहीं होऊँगा, बतलाए देता हूँ।"

"राज किशोर जी को आप लोग क्षमा कर दीजिए। हमारे बस में होता तो आप लोगों को ये शिकायत करने का अवसर ही न दिया जाता।"

"खैर, तो ठीक है। आपके बस में अरेंजमेंट करना नहीं है, तो न सही, कम से कम यहाँ से चले जाना तो हमारे बस में है ही। मैं अपने फ्रेण्डस् को नाराज नहीं कर सकता।"[2]

बादशाह बेगम की नसीरूद्दीन से अनबन हो चुकी है। कम्पनी सरकार ने बादशाह बेगम को उनके खर्च के लिए धनराशि दिये जाने के आदेश पर दस्तखत करने के लिए मुंशी इल्फत हुसैन आए हुए है। इस घटना से सम्बद्ध संवाद दृष्टव्य है–

"क्या है राजा ?"

"गुलाम खिदमत में कुछ अर्ज करना चाहता है।"

"जिल्ले सुभानी से कुछ अर्ज करने की इजाजत चाहता हूँ।"

"अर्जी पेश हो।"

"हुजूर, रेजीडेंट बहादुर के मीर मुंशी आए हैं।"

"मैं मुबस्सिर खां की बेटी को अपनी मंजूरी से एक छदाम भी न दूंगा, गालिब जान।"

"साहबे आलीशान का हुक्म टाला नहीं जा सकता आलम पनाह। आप बादशह हैं मगर हम लोग तो मुलाजिम हैं सरकार, जैसे आपके वैसे कम्पनी बहादुर के। हुजूर, रेजीडेंट बहादुर ने अभी मुझे बुलाकर यह हुकम दिया है कि जिल्ले सुभानी की मंजूरी हासिल करूँ।"

"अगर मैं मंजूर न करू ?"

"कम्पनी सरकार के नुमाइंदे की सिफारिश नजरअंदाज नहीं की जा सकती जहांपनाह।"

"तू मुझे हुक्म देने आया है ?"

"मेरी क्या मजाल है हुजूर, हुक्म तो मीर मुंशी इल्फाक हुसैन सुनाने आए हैं।"

"एक अदना अहलकार मुझे हुक्म सुनायेगा ? कोई है ? गिरफ्तार करो इस बत्तमीज को। कमीने, नमक हराम, वह दिन भूल गया जब तुझे मैंने पिंजरे में लटका कर रखा था ?"[3]

जुआना अब वाल्टर रेनहार्ड की बेगम है। कुछ दिन बाद उसका पहले प्रेमी बशीर खाँ जिसने जुआना को वाल्टर के हाथ बेच दिया था– जुआना से भेंट करने के लिए पहुँचता है। इस प्रसंग से सम्बन्धित संवाद देखिए–

"आपसे कुछ अर्ज करना चाहती हूँ बेगम साहिबा, इजाजत है ?"

"कहो।"

"आज बहुत दिनों बाद मुन्नी कहकर पुकार लू आपको ?"

"पुकार लो।"

"और 'तुम' भी कहूँ ?"

"जो मर्जी में आए कहो, एक तेरे सिवा मेरा इस दुनियां में मेरा है ही कौन ?"

"इसी भरोसे पर मैंने तुझसे पूछे बगैर एक आदमी को पनाह दी है मुन्नी, और तुमसे उसकी मुलाकात करा देने का वादा भी किया है। मगर नाराज न होना, भले ही मेरा सर कलम करवा लेना, पर मेरी बात की लाज रखना। बस, यही कहना चाहती थी।"

"कौन है वह ?"

"बशीर खाँ।"

"क्यों आया है यहाँ ?"

"एक सौगात लेकर।"

"टॉमस को खबर है ?"

"उन्होंने ही मुझसे मिलाया था।"

"बीती जिन्दगी की सूरतों से मुझे नफरत है। बशीर खाँ से खास तौर पर। मैं उससे मुलाकात नहीं करूँगी।"[4]

अंशुधर शर्मा निर्गुनियाँ के यहाँ मेहतर बस्ती में उनसे भेंट के लिए पहुँचते है। उनसे सम्बद्ध संवाद–

श्रीमती निर्गुनियाँ और उनके आयुष्मान पुत्र श्री निर्गुण मोहन आमने–सामने थे। मां ने हँसकर कहा "आज मैंने एक बड़े आदमीका धरम बिगाड़ने का पूरा षड्यन्त्र किया है मोहन। पण्डित जी को मेहतर के घर से खिला पिला के भेजूंगी।"

मैंने हँसकर कहा "आप का बेटा पी.आई.बी. अधिकारी है, खाते हुए एक फोटो भी खिंचवाकर छपवा दीजिएगा। आपके षड्यन्त्र से मेरा जातीय गौरव ही बढ़ेगा।"[5]

नृत्य–उत्सव प्रतियोगिता में माधवी और ललिता में टक्कर थी। दोनों की नृत्य कलाओं पर शास्त्रीय समालोचन चलता रहा। महाराज निर्णायकों के एक मत न होने के कारण कोई निर्णय न दे सके केवल राज्य प्रोत्साहन देने की बात कही, पुरुस्कार किसी को नहीं दिया जाएगा।

"देव, आज्ञा प्रदान करें। सभा के सम्मुख श्रीमन् महाराजाधिराज की पुनीत सेवा में इस निर्णय के विरुद्ध अपनी आपत्ति अति विनम्र भाव से प्रस्तुत करना चाहती हूँ।"

"आज्ञा है।"

माधवी ने कहा, "नृत्योत्सव के इतिहास में यह पहली बार ही ऐसा अवसर आया है जब महाराज अपना निर्णय स्थगित कर रहे हैं। हम बालिकाओं के लिए तो यह किसी प्रकार भी हतोत्साहित होने की बात नहीं, किन्तु कावेरी पट्टणम् के गुणीजनों एवं रसिकों के लिए यह कलंक की बात होगी कि वे नदियों और समुद्रों के पार दूर–दूर देशों तक विख्यात श्रीमन् महाराजाधिराज को, अपना मतैक्य न होने के कारण उचित न्याय देने की प्रेरणा न दे सके। बालिका की चपलता और वाचालता को क्षमा करें देव, क्या कावेरी पट्टणम् की नृत्य बालाएँ अब इतनी सुकुमार हो गई हैं कि एक बार नृत्य करके ही थक जायँ, वे अपने मान्य निर्णायकों को पुनः निर्णय देने का अवसर भी न दे पाएँ ? देव आज्ञा दें तो मैं फिर से नृत्य करने को तैयार हूँ और उस समय तक नाचती रहूँगी जब तक कि निर्णायक एकमत नहीं हो जायेंगे।"

महाधर्माधिकारी बोलने लगे, "इस बालिका की बात न्यायोचित है महराज, दोनों नर्तकियों को साथ–साथ नृत्य करने का अवसर एक बार और दिया जाय।"[6]

"खंजन नयन' में, तत्कालीन् वातावरण से सम्बद्ध संवाद दृष्टव्य है। हाथरस के पण्डित सीताराम गौड़ और सूरज की वार्ता तत्कालीन् वातावरण की स्पष्ट झलक देती है–

पण्डित सीताराम– "मेरे लिए रात में मथुरा में ठहरने की समस्या होगी। बस्ती में प्रवेश करना कठिन है और घाटों पर रात में उल्लू बोलते हैं।"

"कोई नहीं रहता गुरू जी ?"

"बहुत से घाटों पर साधु और गौमाता के कटे सिर टंगे हैं। कहीं जादू–टोने का भय उत्पन्न करके यहां आओगे तो चोटी कट जायेगी, दाढ़ी कट जायेगी,–घाट बन्द कर दिए हैं। स्नान, पूजा, यज्ञ, कीर्तन सब कुछ लोप हो चुका है। हे हरि।"

"सभी घाटों पर नहाने की मनाही है गुरू जी ?"

"पिछले वर्ष से विभ्रान्त घाट से यह प्रतिबन्ध हट गया है। एक दाक्षिणात्य ब्राह्मण युवक के तेज से यह चमत्कार सम्भव हुआ। पर अब भी बहुत से लोग भय के कारण नहीं जाते।"

"भय कैसा ?"

"किसी यवन तान्त्रिक ने वहां ऐसा यंत्र टांग रखा था कि उसके नीचे होकर निकलने वाले प्रत्येक हिन्दू की शिखा कट जाती थी और उसे बलात् दूसरे धर्म का मान लिया जाता था किन्तु श्री बल्लभ भट्ट के आत्म बल ने उस यंत्र को निस्तेज कर दिया। वहां बैठकर उन्होंने भागवत भी बांची।"[7]

तुलसी और मोहिनी की प्रथम बार भेंट होने पर उनका यह वार्तालाप दोनों के स्वभाव और स्तर का द्योतक है–

मोहिनी बाई ने हँसकर कहा, "आपका स्वर तो सरोवर का कमल है, पण्डित जी, कल से मेरे कानों में भी अब तक गूँज रहा है।"

तुलसी लजा गए, बैठते हुए बोले– "आप जैसी शास्त्र निपुण, कुशल गायिका के आगे भला मेरी हस्ती क्या है। एक भिखारिन की गोद में पला, उसने जो भजन सिखा दिए वही जानता हूँ। फिर थोड़ा स्वर का अभ्यास पूज्यपाद गोलोकवासी नरहरि बाबा ने करा दिया था।"[8]

संवाद अवसरानुकूल है।

नारद और युवक चुंगी अधिकारी का यह संवाद तत्कालीन् साधुओं और स्त्रियों के चारित्रिक पतन का उद्घाटन करते हैं जो उपन्यास की कथा वस्तु का एक अभिन्न अंग है–

जिन दासियों ने तुम्हें ऐसी निलज्जताई दिखाई उन्हें ये पता भी नईं है के उन्होंने तुमसे कुछ बुरा ब्यौहार किया। ह्याँ पै तान्तरिक साधुओं का राज हैगा। वो सब ऐसी ही बातें करें और समझे हैं। हमाए इन्दल पत में अब एकाध दो घर ही ऐसे बचे होंगे जहाँ की लुगाइयाँ अपने भतार की सच्ची होवें तो होवें। यहाँ की लुगाइयाँ खुलेआम साधुओं से रमण जोग साधे हैं। इन तन्तिरियों के तो धरम में ही लिखा है कि चाम के चाम में परवेश करने से कोई दोख नहीं होता।"

"नारायण– नारायण! ××"

"वरण की बात पूछो तो महराज ? इस्तिरियों को सबसे उत्तम काम सुख जो दे सके, उसी का वरण सबसे शिरेष्ठ हे। याँ पे निरबल पुरुष ही शूद्दर होवे हैगा महराज। और वैसे तो बिरामण का बेटा बिरामण, मेरी जात क्या किसी से कम हैगी।"[9]

ख. अनुकूलता–

संवाद कथानक का विकास तथा पात्रों का चित्रण करता है। अतः उसके उपर्युक्त गुण उपयुक्तता का सम्बन्ध घटना औचित्य से है। संवाद पात्रों का चित्रण भी करता है। इसलिए यह आवश्यक है कि वह विविध पात्रों के स्वभाव के अनुकूल हों अन्यथा उनके चरित्र विकास की दृष्टि से संवाद का महत्त्व नहीं होगा। पात्रों के सामाजिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक स्तर के अनुकूल होना भी संवाद के प्रमुख गुण हैं। 'बूँद और समुद्र' में संवादों का यह गुण आवश्यकतानुसार स्थान–स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। 'बूँद और समुद्र' के पात्र अपनी विविधता लिए हुए हैं, इसीलिए उनका चरित्र भी बहुरंगी है। शिक्षित वर्ग के पात्र शिक्षित भाषा का प्रयोग और अशिक्षित वर्ग गाँव की अनपढ़ भाषा का प्रयोग करते हैं। कल्याणी ग्रामीण–अवधी का प्रयोग करती हैं और कन्या तथा शीला स्विंग अंग्रेजी मिश्रित भाषा का प्रयोग करती हैं। महिपाल अपनी पत्नी के साथ पत्नी की ही भाँति घर की बोली–बोलता है–

महिपाल ने चम्मच में हलुवा भरकर उसकी तरफ बढ़ाया। कल्याणी बोली– "हम न खाब।"

"काहे ई मा छूत हुई गई ? बौड़म। अरे चउका नाम के याकु कमरा मा न खावा बैइठिकै, बइठका नाम के दुसरे कमरे मइहाँ खाय लिहा। ईमा कौन बुराई आय गई ? बताओ ?"

"तौ हम तुमका थ्वारौ कहित हयि। बाकी हम पंचन का विचार विवेक है।"

"अइसी की तइसी तुम्हार विचार विवेक की। खाओ।"[10]

इस संवाद में महिपाल और कल्याणी के बौद्धिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर का भी पता चलता है।

तुलसी को उदास देखकर मामा जी बोले– "जान पड़ता है मेघा के छूतहे रोग ने हमारे राम बोला को भी ग्रस लिया हे। अबे फिर कहता हूँ इस भगत बाजी की चकल्लस में मत पड़ो। यों कहने सुनने की बात और है पर व्यवहार की दृष्टि से देखा जाय तो भगवान की भक्ति और पर नारी प्रेम में पड़कर मनुष्य की एक ही से दशा होती है, वह निकम्मा हो जाता है।"

नन्ददास सुनकर हँस पड़ा, बोला– "धृष्टता क्षमा करें मामा, जान पड़ता है आपने कभी न कभी पर नारी से अवश्य प्रेम किया होगा, अन्यथा ऐसे गहरे भेद की बात भला आप क्यों कर बतला सकते थे।"

मामा हँसने लगे, कहा– "अबे गाँव नहीं गया पर कोस तो गिने हैं। बताए देता हूँ बेटों, यदि दुनियाँ में सफल होकर रहना चाहते हो तो इन दो बातों पर कभी गम्भीरता पूर्वक अमल न करना।"[11]

रानी और रमेश के इस संवाद में उन दोनों के स्वभाव और स्तर का पता तो चलता है ही साथ ही रानी की मम्मी और उसके पापा का चरित्र भी मुखरित होता है–

"अरे, वो तो मैं जानता हूँ। मम्मी जी मुझे कई बार पापा जी के सामने छेड़ चुकी हैं।"

''मुझे भी क्या छोड़ देती हैं। मगर ऐसी औरत होना मुश्किल है।''

''इसमें कोई शक नहीं। दोनों पति–पत्नी अपना जवाब नहीं रखते। आजकल ईश्वर की दया से पापा जी मुझसे बड़े खुश हैं। परसों जो मैंने शरणार्थी कैम्पों की रिपोर्ट लिखकर दी थी, उससे बड़े खुश हुए। कहने लगे चाहो तो अच्छे जर्नलिस्ट बन सकते हो।''

''हाँ, तुम्हारे जाने के बाद ही इन्होंने मम्मी जी से यह कहा था कि इस लड़के को चांस देना मैं अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझता हूँ। तुम्हारी बड़ी–बड़ी तारीफें की– बड़ा परोपकारी है, बड़ा मेहनती है, बड़ा इन्टेलीजेण्ट है– मैं खड़ी–खड़ी गुटर–गुटर सुनती रही।''[12]

पेरियनायकी ने कोवलन के आने पर माधवी के मानाभिनय को देखकर उसे झिड़कते हुए कहा–

''अपना सौभाग्य मान कि तुझे देव तुल्य स्वामी मिले। अनेक जन्मों की तपस्या रात–दिन की अनवरत प्रार्थना ही––''

''पत्थर की मूर्ति की प्रार्थना के फूलों का मोह ही क्या, मूल्य ही क्या ? देवता होते तो मेरी प्रार्थना के प्रभाव से एक क्षण के लिए मुझसे विलग न होते।'' वाक्य के अंतिम अंश कहते–कहते मानवश माधवी का गला रुक गया। ××× ''पत्थर की मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा करने वाली ही जब अविश्वास करेगी तब उसे और कौन पूजेगा माधवी ?''

व्यंग्य कटाक्ष करते हुए माधवी ने कहा– ''क्यों नई पुजारिन ला तो रहे हो।''[13]

सुलखिया और गाजीउद्दीन का निम्नांकित संवाद मानसिक स्थिति के कितना अनुकूल है–

''बोलो क्या कहना चाहती हो ?''

''हुजूर किस बात से डरते हैं ?''

''डर अपनी इन्तहा पर पहुंच चुका है सुलखिया! शरीफ इंसान दुनियां में सबसे ज्यादा अपनी बे आबरूई से डरता है। गाजीउद्दीन हैदर उस डर को भी पार कर गया है। क्या तुम यह कहा सकती हो सुलखिया कि इन दिनों को बारदात से लोग मेरे बारे में भला–बुरा न कहते हों।''

''कहते हैं जहांपनाह।''

''दुनियां में शरीफ आदमी जिन बातों से डरता है क्या मैं उनके लिए बदनाम नहीं हो चुका ?''

''जरूर हुए।''

''और क्या यह बादशाहत झूठी नहीं?''

''झूठी है बन्दानवाज! आप अंग्रेजों के, आगामीर के, अपने हर अमले आमिल के खिलौने हैं, आप खुद अपने भी खिलौने हैं जहांपनाह।''[14]

जुआना और वाल्टर का यह संवाद भी उनके व्यक्तित्व और घटित घटनाओं के अनुकूल ही है–

"तेरा यार, वह जिसके साथ तूने कल रात बितायी थी।"

"नवाब साहब वजह फरमाते हैं, कल रात ख्वाब में खुद हुजूर ही मेरे साथ थे।"

"मेरे सामने झूठ बोलने की कोशिश न करो जुआना। मैं उम्र भर कभी किसी पर यकीन नहीं कर सका था, खुदा जाने क्यों यह समझ बैठा कि तुम भरोसा करने के काबिल हो।"

"वाल्टर, देखती हूँ कि इधर अरसे से तुम्हारे मन में एक चोर बैठा है और तुम उसकी वजह से मुझे और टॉमस को गलत समझने की जिद कर रहे हो।"[15]

जुआना और नवाब समरू दोनों की चतुरता के अनुकूल ही संवादों का सृजन हुआ है।

अल्ला और श्रीकृष्ण सम्बन्धी निम्नांकित संवाद तत्कालीन् वातावरण के सर्वथा अनुकूल है, उस समय मुसलमानों के समक्ष हिन्दुओं की बड़ी दुर्दशा थी। हिन्दू लोग अल्ला के खिलाफ बात भी नहीं कर सकते थे–

"एक ग्वाला तो अवश्य होगा वहां।"

"कौन ?"

"कृष्ण भगवान।"

"भाजि गए वोंऊ। अल्ला ने मारी लात वो जाय पड़े गुजरात। ह ह ह।"

"अल्ला ने तो हमें आपको लात मारी है। बहुत मुट मर्द हो गए थे हम लोग। श्रीकृष्ण तो स्वयं अल्ला हैं, उन्हें कौन मारेगा।"

"अरे भगत जी, यहाँ कही सो कोऊ बात नाय। सब अपने है बाकी काहू मौलवी मुल्ला के अगाड़ी मती कहियो। फांसी पै लटका दिए जाओगे।"

"फाँसी च्यो पड़ेगी ? कोई बुरी बात तो कही नई याने।"

"ये हमाई तुमाई सूधे सच्चे मन की बात नाय है बाबा। इनके काजी मुल्लान कौ या बात भौत बुरी लगै कि कोऊ इनके धरम को और अपने धरम को बरोबर बतलावै। एक पण्डत कौ याही बात पै सूली चढ़ाय दियो हतो।"[16]

संवाद में पात्रों के अनुकूल स्थानीय भाषा का प्रयोग और तत्कालीन परिस्थितियों की झलक प्राप्त होती है।

भार्गव शौनक और भार्गव सोमाहुति का निम्नांकित संवाद कथावस्तु के पूर्णरूप से अनुकूल है–

"हां। पुण्य तो यह सरस्वती के तट पर नैमिषीय तीर्थ में ही तुम्हारे माता–पिताओं के दर्शन हुए थे। और अब इतने वर्षो के बाद नैमिषारण्य में तुम्हें देख रहा हूँ।"

"यह निष्षक वन ही वह नैमिषारण्य है ?"

"हां, काल के प्रभाव वश वह प्राचीन नाम अब लुप्त प्राय हो चला है। यहीं के महासत्र से लौटते समय अनेक ऋषि कुल सरस्वती तट पर जिस जगह बसे, उसका नाम नैमिषीय तीर्थ रख लिया गया।.....किन्तु तुम तो व्यास जी के कनिष्ठ पुत्र हो ना।"जी हां, परलोकवासी अग्नि वर्ण मेरे ज्येष्ठ भ्राता थे। नैमिषीय पर तब आपका शुभागमन हुआ था, तब मेरी माता के कथनानुसार भाई पाँच वर्ष के थे, किन्तु अब वे नहीं रहे।"

"हाँ पुत्र सुन चुका हूँ। आततायी महाक्षत्रप की हत्या का प्रयत्न करने के अपराध में उस बेचारे को शूली दे दी गयी थी। हा हन्त, आर्या भार्गवी को कितना दुःख भोगना पड़ा।"

"आर्या मुझसे कहती है सोमाहुति, आवश्यकता पड़ने पर तुम भी उसी प्रकार हँसकर प्राण देना जैसे तुम्हारे भाई ने दिये थे।"[17]

ग. सम्बद्धता–

संवाद के माध्यम से लेखक जिन बातों को कह रहा हो या कहना चाहता हो, उनमें कथानक तथा पात्रों से किसी न किसी प्रकार का प्रत्यक्ष पारस्परिक संबंध अवश्य होना चाहिए।

नागरजी के उपन्यासों में संवादों के यह गुण अपनी पूर्णता के साथ दृष्टिगोचर होते है। 'बूँद और समुद्र' सामाजिक उपन्यास होने के कारण उपन्यास की कथावस्तु और पात्र सभी समाज से ही सम्बंद्ध हैं। अतः इस उपन्यास में जहाँ–जहाँ भी पात्रों का घटनाओं और वातावरण का संवादों द्वारा चित्रण है, वहाँ उनकी इनसे सम्बद्धता असंदिग्ध है। विवाह एक सामाजिक परम्परा है। अतः समाज में इसका अनिवार्य महत्व है। विवाह पर विचार करते हुए महिपाल और शीला का निम्नांकित संवाद देखिए–

महिपाल– "मेरी शादी असफल रही, जैसे आम तौर पर माता–पिता द्वारा तय की गई शादियाँ होती हैं। हमारे अस्सी फीसदी घरों में ऐसी शादियाँ जीवन भर के कर्ज की तरह निभायी जाती हैं। नतीजा यह होता है कि पति, कहीं पत्नी और कहीं पति–पत्नी दोनों ही एक–दूसरे के पीठ पीछे व्यभिचार करते है।"

शीला– "सिर्फ ऐसी ही शादियों में क्यों ? लव मैंरिजेज में भी यही होता है। जब तक नये–नये रूमियों और जूलियट रहे, दोनों में बड़ा प्रेम रहा, फिर या तो तलाक या आपस में दगाबाजी– यही रास्ते रह जाते है। मै भी इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि शादी का रिवाज इंसानों में धोखा–धड़ी, झूठ और अत्याचारों को जगाता है। इसे हटा दीजिए, औरतों को आर्थिक रूप से आजाद कर दीजिए, फिर देखिए, औरत–मर्द के रिश्ते कितनी जल्दी नार्मल हो जायेगें।"[18]

'अमृत और विष' भी सामाजिक उपन्यास है। अतः इसमें संवादों के माध्यम से उपन्यास की कथा वस्तु के अनुरूप छिपे हुए प्रेम संबंधों को एक सामाजिक बुराई मानते हुए खुले आम दोस्ती का बढ़ावा देने संबंधी विचार दृष्टव्य है–

"चौक हो या दिहात, हिन्दुस्तान भी अब बदल कर ही रहेगा। तुम नहीं समझ सकते जी, ऐसी बाते छिपायी जाने के कारण ही हमारी सुसाइटी में कितनी गन्दगियाँ फैल रही है। मै उन गन्दगियों के मुहाने बन्द कर देना चाहती हूँ।"

"ये गन्दगियाँ आज की तो हैं नहीं–"

"तुम क्या जानो ये गन्दगियाँ आज ही की हैं। और बीते हुए कालों की बुराइयों को भी अपने अन्दर समेटे हुए हैं। कल तक या तो बलात्कार होते थे या चोरी छिपे के पाप। और करने वालों की चेतना में वे पाप के रूप में ही रहते थे। मगर आज उस पाप को प्रेम कहकर नकली पालिश से चमकाया जाता है। ये गन्दगी तभी दूर होगी जबकि हमारे लड़के–लड़कियाँ झूठी शर्म का ढकोसला तोड़कर खुले आम अपनी दोस्ती को बढ़ावा दें।"

"लता, तुम्हें लन्दन में हाईड पार्क की वह शाम याद है, जब हमने घूमते हुए एक–दो नहीं, लगातार चार–पाँच ऐसे नौजवान जोड़े देखे थे, जो बेंचों पर बैठे या गलबहियाँ डाले पेड़ों की कतार के किनारे से गुजरते हुए दस–दस कदम पर रुक कर आपस में एक–दूसरे के बावले चुम्बन ले रहे थे। तब तमुने....."

"हां, तब मैंने जो कहा था, वो याद है। प्रेम के ऐसे रूप को मैं एकांत ही की चीज मानती हूँ, बिल्कुल पूजा ऐसी ही चीज मानती हूँ और उसका दिखावा मुझे बेहद–बेहद बुरा लगता है– उतना ही बुरा जितना कि नये हिन्दुस्तान के अपने इन पिछड़े क्षेत्रों के अन्दर मुझे लड़के–लड़कियों की दोस्ती छिपाना या फौरन ही पाप चेतना के साथ जोड़ देना बुरा लगता है। हम हिन्दुस्तानी अगर इसे आदर्श बात मानते हैं– और मानते ही हैं– तो हम शर्तियाँ असभ्य हैं, जाहिल हैं, पापी हैं। किसी भी हालत में हम भले आदमी नहीं हैं, चाहे हिन्दू हों या मुसलमान।"[19]

कोवलन के पिता मासात्तुवान को इससे हार्दिक कष्ट पहुँचा कि कोवलन कन्नगी को लेकर माधवी के निवास पर गया था। इस बात की पुष्टि के लिए वे अन्तःपुर जाकर एकान्त में कन्नगी से पूँछते हैं–

"बेटी! तुम मेरे लिए कोवलन से अधिक मूल्यवान हो। वर्षों से इस सूनी पड़ी हवेली का उजाला हो तुम। मुझे श्वसुर नहीं पिता समझ कर सच–सच बतलाओ। कोवलन कल रात तुम्हें कहीं बाहर ले गया था ?"

कन्नगी का चेहरा यथावत् निर्विकार, शान्त रहा किन्तु झूठ बोलते हृदय का कम्पन स्वर में सिसक ही पड़ा, ..."न.....हीं अ अप्पा!"

"तुम घर पर ही थीं ?"

"जी हाँ।"

"और तुम्हारा पति भी ?"

"जि.....जी!"

मासात्तुवान ने कहा– "बेटी तुम्हारा शील तुम्हारे पितृ कुल की यशोगाथा गा रहा है और तुम्हारा असत्य भाषण मेरे कुल की लाज बचा रहा है। मानाइहन दोनों तरह यश के भागी हुए, परन्तु मुझ अभागे ने जाने ऐसा क्या पाप किया जिसके फलस्वरूप यह कुलांगार जन्मा।"[20]

यहाँ उपन्यास की कथा वस्तु और पात्रों से सम्बद्धता स्पष्ट झलक रही है।

इमरजेन्सी का समय है संजय गाँधी की क्रूरता चल रही थी। इस संबंध में यह संवाद देखिए–

"अच्छा! अमां ये लड़का तो बड़ा मुंह फट और बद्तमीज निकला!"

"वह बेताज का बादशाह है। उसकी आँखों के इशारों पर सूर्य उदय और अस्त होता है। वह भला किसी को क्या समझता है! राष्ट्रपति की बोलती बन्द कर दी और तुर्कमान गेट उजाड़ डाला। ओह! कैसा निर्मम प्रहार था। मैं पूछता हूँ कि ब्रिटिश सरकार क्या इस असुर–सरकार से अधिक अत्याचारी थी ? आखिर इस इमरजेन्सी का कभी अन्त होगा कि नहीं ?"

"सफेद पोंशों के लिए शायद हो जाय, लेकिन सदियों पहले जिन दुर्बलों को दास बनाकर अपने सिरों पर मालिकों का मल ढोने के लिए पीढ़ी दर पीढ़ियों तक के लिए बाध्य किया गया था, वह दमन तो अब भी समाप्त न हो सकेगा। मनुष्य जाति अपने आदिम संस्कारों का बोझ किसी न किसी परिवेश में अब तक ढो रही है। इसके सिलसिले का अन्त अभी भी नहीं हुआ।"

"मैं नहीं मानता दोस्त! हर अत्याचारी का अन्त होता है और यह तानाशाही भी एक–न–एक दिन समाप्त होकर ही रहेगी।"[21]

इस संवाद में मेहतरों की समस्या उपन्यास की कथा वस्तु से सम्बद्ध है और इमरजेन्सी के समय का वातावरण भी अंकित हो गया है, साथ ही संजय गाँधी के निर्मम कार्य और क्रूरतापूर्ण चरित्र से भी सम्बद्ध है।

जुआना बेगम और वाल्टर रेनहार्ड का यह संवाद भी कथा वस्तु और पात्रों से सम्बद्ध है–

"मैंने समझा कि वह हुक्म मेरे वास्ते नहीं है।"

"हाकिम का इंसाफ सबके लिए बराबर ही होता है। तशरीफ ले जाइए। आज के दिन हम किसी भी दगाबाज की सूरत नहीं देखना चाहते।"

"मेरे लिए मौत इस इल्जाम से बेहतर होती, आज के मुकद्दस दिन आपके मुबारक हाथों से मारी जाऊँ तो मुझे जन्नत नसीब हो जाएं।"

"दगाबाजों के लिए दो ज़ख ही बेहतर मुकाम है आप यह न भूलिए बेगम साहबा, कि वाल्टर रेनहार्ड ने इन सत्तावन वर्षों में यूरोप से लेकर हिन्दुस्तान तक की खाक छानी है। उसे धोखा देने वाला इन्सान आज तक दुनियां में पैदा ही नहीं हुआ, हसीन कुतियों की तो फिर बिसात ही क्या है। चली जाओं यहाँ से, वरना....।"[22]

नईम और दिग्विजय ब्रह्मचारी का यह संवाद, कथानक और पात्रों से पूर्ण रूप से सम्बद्ध है–

"कैद में थे ?"

"जी हां, तेरह बरस बाद आज मैंने पहली बार दुनियां देखी है।"

"क्यों पकड़े गए थे ?"

"क्यों ?" "इसलिए कि मेरी बीबी को बादशाह की मलिका बनना था। बाबा, क्या खुदा है ? इंसाफ है ? हक है ?"[23]

मोहिनी और तुलसी का यह संवाद, पात्रों और कथानक से पूर्ण सम्बद्ध है– तुलसी हंसे, कहा– "अब मेरा और तुम्हारा मन अलग तो रहा नहीं मोहिनी!"

"कम से कम मैं तो यही अनुभव करती हूं। अच्छा उठिए, भोजन कर लीजिए। असुर का राज्य है। यह सारे दास–दासी उसी के हैं, मैं शीघ्र से शीघ्र आपको लेकर यहाँ से निकल जाना चाहती हूँ।"

"हम कहाँ जायेंगे ?"

"काशी राज्य की सीमा से बाहर, जहाँ उस्मान खां का शासन न हो।"

"पानी सब जगह है एक ही, फिर एक सिरे की शक्तिशाली तरंग को दूसरे सिरे पर तरंगें उठाते देर नहीं लग सकती। मैं अपने प्राण देकर भी तुम्हारे शक्ति सम्पन्न संरक्षक से तुम्हें मुक्ति नहीं दिला सकता।"[24]

सूरज और पण्डित सीताराम का यह संवाद उपन्यास के नायक सूरदास से सम्बद्ध तो है ही तत्कालीन् परिस्थितियों का चित्रण भी करता है–

"आप सर्वज्ञ हैं, दया करके अपना परिचय दें। "

"मैं हाथरस का निवासी गौड़ ब्राह्मण हूं। परन्तु पहले तुम्हारा परिचय पाना चाहता हूँ।"

"मेरा जन्म गोवर्धन के निकट 'परासोली' ग्राम में हुआ था, किन्तु चार वर्ष की आयु में गुरु ग्राम के पास 'सीही' चला गया। पिता सारस्वत अपने क्षेत्र में भागवत महाराज के नाम से विख्यात थे। एक समय घर में थोड़ा वैभव भी था, किन्तु नौ बरस पहले जब सिकन्दर सुल्तान अपनी फौजी लूट के लिए दिल्ली से निकला था, तब हमारे ग्राम में भी तबाही मची थी आधे से अधिक घर तोड़ डाला गया था।"[25]

इस संवाद में सूरदास के जन्म–ग्राम–परासोली और बाद में उनके सीही चले जाने का और सिकन्दर सुल्तान के आक्रमण का भी वर्णन आ गया है।

घ. स्वाभाविकता–

उपन्यास में संवाद का समावेश स्वाभाविक रूप से और आवश्यकता के अनुसार होना चाहिए। ऐसा नहीं प्रतीत होना चाहिए कि कोई संवाद बल पूर्वक उपन्यास में ठूसा गया है। संवाद का यह गुण उसमें तभी आ सकता है जब उसका विषय कृत्रिम अथवा गढ़ा हुआ न हो। घटना स्थल पर सहसा अनेक आवश्यक अनावश्यक पात्रों का इकट्ठा हो जाना और टालू

संवाद उसमें स्वाभाविकता नहीं आने दे सकता। संवादों में इस गुण की दृष्टि से भी नागर जी के उपन्यासों के संवाद सर्वथा सफल हैं।

सज्जन– "मैं सिर्फ उस समाज की बात नहीं कर रहा जिसको आप बुर्जुआ कहती हैं। कबीर बुर्जुआ कल्चर से नहीं आया। सूर, तुलसी, तुकाराम, नरसी, चण्डीदास वगैरा बुर्जुआ कल्चर की देन नहीं, ये जो अपने यहाँ हम तमाम जाट, जुलाहे, चमार, पासी बगैरा संतों का ट्रेडीशन देखते हैं वे किसी नेशनल करेक्टर के बिना पनप ही नहीं सकते। न पढ़े न लिखे, न किसी ऊँचे समाज में जन्में, फिर भी अपनी पर्सनाल्टी से वे इस घोर रूढ़िवादी देश पर छा जाते हैं। मैं इन लोगों की नैतिक सुन्दरता की बात कर रहा हूँ।"

कन्या– "मैं इससे इन्कार नहीं करती हूँ, मगर यह जरूर कहती हूँ कि हमारे सामाजिक ढांचे में जरूर ही कोई ऐसी विरोधी धारा भी पनप रही है, जो इस तमाम नैतिक सुन्दरता की आँख फोड़ देती है।"[26]

कन्नगी और कोवलन के इस संवाद में कितनी स्वाभाविकता है–

"अप्पा के निधन से चिन्ताओं के मेघ ने आपके मन को ऐसा घेर रखा है कि दिन में भी रात का भ्रम होता है। आप किसी प्रकार अस्थिर या अधीर न हों स्वामी।"

"नहीं; यूं मैं किसी प्रकार अस्थिर या अधीर नहीं हूं। मुझे अपने काम में, घर में, लोक–व्यवहार में रस मिलता है। पर यह सब करते–करते मन इन सबसे विद्रोह भी कर उठता है। सोंचता हूं कि यह वाणिज्य व्यवसाय, राज–समाज के नियम विधान, सभ्यता के ये सारे बन्धन न होते तो हम भी पशु–पक्षियों की भाँति स्वच्छन्द होते। यदि सब कुछ अनियमित होता तो कितना सुन्दर होता।"[27]

रानी और रमेश का निम्नांकित संवाद स्वाभाविकता से पूर्ण हैं। कहीं भी जबरदस्ती का समावेश नहीं दिखाई देता है–

"आज सबेरे हम डर गए थे। कल शाम नई अम्मां यहां आई थीं। कहने लगीं कि बाबू और दीदी को हमारा यहां रहना नहीं सुहाता। कहते हैं इससे घर की इज्जत जाती है।"

"इसमें इज्जत का क्या सवाल है ? मन्नो के व्याह में चार–पाँच दिन जब तुम हमारे यहां रही थीं तब ?"

"हां, आज सुबह मैंने दादी से यही कहा तो कहने लगीं, वहां की बात न्यारी थी। शादी व्याह का भरा पूरा घर था और फिर बापू का नाम लेकर कहा कि पाधा जी इज्जतदार आदमी है–"

"और बहनजी, खन्ना साहब, जिनकी सारे शहर में देश–विदेशों तक में इज्जत है ?"[28]

मुहसानुद्दौला और गाजीउद्दीन हैदर के मध्य हुए इस संवाद में कहीं भी किसी प्रकार की अस्वाभाविकता नहीं दिखाई देती है–

"बैठो बरखुरदार। अच्छे हो ?"

"हुजूर के इकबाल से अच्छी तरह हूँ।"

"किसी खास काम से आना हुआ है ?"

"हुजूर नानी अम्मां ने जिल्ले सुभानी की खिदमत में अपने आदाब पेश किए हैं और मुबारक बादियाँ भेजी हैं।"

"किस लिए ?"

"सूरज गुरुब होने से दो घण्टे पहले अल्लाह ताल ने मुझे मामूंजाद भाई बख्शा है। नाना हुजूर दादा हुए।"

"यें मोहरें अपनी नानी अम्मां को लौटा देना। फिर कभी आना बरखुरदार! हम इस वक्त मशरूफ हैं।"[29]

'नाच्यौ बहुत गोपाल' में निर्गुनियाँ और मोहना के संवाद में सरलता और स्वाभाविकता झलकती है–

"न सह पाने पर क्या करोगी ?"

"मैं अपनी जान दे दूंगी।"

"कैसे ?"

"फांसी लगाकर।"

"मैं कागज–पिन्सिल देता हूँ। तुम्हें यह लिखकर देना होगा कि मैं अपनी मर्जी से फांसी लगा रही हूँ। इसमें और किसी का कसूर नहीं है।" ×× "लिखो।"

"क्या लिखूं ?"

"यही कि तुम अपनी मर्जी से फांसी लगा रही हो।"

"जब लगाऊँगी तब लिख दूंगी।"[30]

जुआना और नवाब समरू का यह संवाद भी अत्यन्त स्वाभाविकता पूर्ण है–

"समझ गया तुम इस वक्त मुझे टॉमस का मन्तर पढ़ाने आई हो।"

"नहीं, मैं अपने उस्ताद से पढ़ा हुआ मन्तर ही खुद अपने उस्ताद को याद दिलाने आयी हूँ। मेरी इस बेअदबी को तुम्हें माफ करना होगा।"

"नादान हो जुआना, सियासत की शतरंज अभी तुम्हारी समझ में न आ सकेगी। मैं टॉमस से सख्त नाराज हूँ कि उसने अपने सुझाव के लिए मुझसे इंकार पाकर अब तुम्हें उकसाया है।"[31]

तुलसी और राजा भगत का यह संवाद कितना स्वाभाविक है–

"आपकी जलम भूमि कहां है महाराज ?"

"यहीं, विक्रम पुर गाँव में।

"यहां ?"

"हा भाई, पर जन्मते ही यह स्थान मुझसे छूट गया था।"

"पण्डित आत्माराम।"

"अरे तो आप ही हैं जो मूल नक्षत्र में जन्में रहे ?"

"आपने ठीक प्रहचाना।"[32]

युवक तपस्वी और सूरस्वामी के मध्य होने वाले इस संवाद में बड़ी ही सरलता और स्वाभाविकता है–

"हाँ तो आप किस प्रकार से देखते हैं ?"

"मेरे पूर्व के पाप जब जन्मते ही मेरी पुतलियों पर मढ़ गए तो भगवान ने कृपा करके मेरी प्रकाश वाहिनी नसें नाक और कान से जोड़ दीं। मैं बादलों की गरज को देखता हूँ और बिजली को सूँघता हूँ।"

"आप की बात भले ही विनोद जगाती हो परन्तु कहीं पर मन को बाँधकर प्रेरणा भी देती है। अन्ततः देखने–सुनने, सूँघने, छूने और स्वाद लेने वाला हमारे भीतर कोई और है।"

"इन पंचेन्द्रियों के अतिरिक्त और भी सूक्ष्मेन्द्रियाँ हैं।"

"हाँ, जिनसे छठी इन्द्रिय अर्थात् मन बनता है।"[33]

ङ. संक्षिप्तता–

संवाद का संक्षिप्त होना उपन्यास की प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करता है। लम्बे संवाद अस्वाभाविक और उबाऊ होते हैं। छोटे संवाद परिस्थितियों का का परिचय देने की दृष्टि से अधिक सफल सिद्ध होते हैं। नागर जी के उपन्यासों में छोटे–छोटे संवाद अपनी प्रभावोत्पादकता के साथ प्रयुक्त हुए हैं।

कल्याणी और महिपाल के मध्य होने वाला यह संवाद अत्यन्त संक्षिप्त है और उसकी घरेलू परिस्थिति का तथा कल्याणी और महिपाल के चरित्र को भी उद्घाटित करता है।

कल्याणी– "हियैं पहुढ़ियौ ?"

महिपाल बोला– "लिखब, दुई ठै पान हमैं दै जउतू।"

"बिलहिरा मा धरे हैं।"[34]

'शतरंज के माहरे' का निम्नांकित संवाद संक्षिप्त होते हुए दिग्विजय ब्रह्मचारी के आदर्श एवं मानवता के द्योतक हैं–

"क्या चाहिए " सन्यासी ने पूछा।

नरकंकाल– "पानी।"

सन्यासी "अन्दर आ जाओ भाई।"

नरकंकाल– "मैं– मुसलमान हूँ बाबा।"

सन्यासी– "मैंने जाति नही पूछी। अन्दर आओ।"[35]

कन्नगी और कोवलन का यह संवाद अपनी संक्षिप्तता को लिए हुए दोनों की चारित्रिक विशेषताओं पर भी प्रकाश डालता है।

कोवलन– "कन्नगी मैं महीनों से घर नहीं आया, तुम्हें कोई संदेश तक न भेजा, एक बार भी तुमने मुझे उलाहना नहीं दिया, एक बार भी यह न पूछा कि कहा रहे क्या करते रहे ?"

कन्नगी गम्भीर हो गयी तनिक रुक कर शान्त स्वर में कहा– "आप जो करते होंगे वह कल्याणकारी होगा, जहां रहते हैं पुण्य भूमि होगी।"

कोवलन कन्नगी के शान्त भाव से चिढ़ गया, बोला– "तुम पतथ्र हो कन्नगी! तुम्हें सचमुच दुख नहीं हुआ ? तुम जानती हो ना कि मैं इतने दिनों तक कहां रह गया था।"

"घर के हर प्राणी के संबंध में जानकारी रखना गृहणी का धर्म है और मैं पत्थर भी नहीं हूँ।"

"तब फिर ? तुमने एक बार भी मुझे नहीं टोंका।"

"विज्ञजन स्वयं सोंच विचार कर कार्य करते हैं, फिर क्यों टोकती ?"[36]

रानी और रमेश का निम्नांकित संवाद संक्षिप्त और पारस्परिक प्रेम को प्रकट करता–

"यह कि हमारी किस्मत अच्छी है, हमारा निर्णय अनुकूल मानसिक स्थिति में होगा।"

अन्तिम निर्णय क्या होगा ?"

"यही कि खन्ना साहब और बहिन जी हमें भाग्य से मिले हैं और उनका सहारा छोड़ना हमारे लिए बड़ा ही घातक होगा।"[37]

'नाच्यौ बहुत गोपाल' में निर्गुनियाँ और उसकी सास का निम्नांकित संवाद में उसकी विवशता कितनी कुशलता के साथ अभिव्यक्त हुई है–

"काहे का काम होता है तेरे यहां।"

"अनाज गल्ले का।"

"मां, बाप तेरे क्या करते ?"

"मर गये।"

"बाप भी, मां भी दोनों ?"

"जी हां।"

महबूबा और जुआना का यह संवाद कितना स्वाभाविक और संक्षिप्त है–

"तुमने किससे यह जानकारी हासिल की ?"

"टॉमस साहब की खिदमतगार 'मेरी' से।"

"उनकी कोई शादी शुदा विलायती बेगम भी है ?"

"जी नहीं, बेगम साहबा। ××× "[38]

मेघा भगत और तुलसी का यह संक्षिप्त संवाद तुलसी का परिचय कराता है–

"कौन हैं तुम्हारे गुरु ?"

"परमपूज्यपाद, आचार्यपाद शेष सनातन जी महाराज।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"राम बोला, तुलसी।"[39]

पण्डित सीताराम और सूरज का यह संक्षिप्त संवाद सूरदास के नाम और जन्म संवत् का परिचय देते हैं–

"क्या नाम है ?"

"सूर्य नाथ। पिता सूरा कहते थे, माता सूरज। अब कोई नाम नही; बाबा स्वामी भगत–यही सब कहलाता हूँ।"

"तुम्हें अपना जन्म संवत् याद है पुत्र ?"

"विक्रम संवत् 35 बैशाख सुदी 5। अब मेरी भी एक जिज्ञासा है महराज।"

"पूछो।"

"आपने मेरा मुख या मस्तक रेखा देखकर मेरी लग्न विचारी थी ?"

"नहीं। स्वर से। त्वचा के स्पर्श से।"[40]

भारत और सोमाहुति का यह संवाद संक्षिप्त होते हुए भी पात्रों का परिचय देता है और कथानक का विकास भी कराता है–

"पर भाई, शिव हो या स्वयं वासुदेव नारायण, शक्ति बिना सभी फीके हैं।"

"हू! आप सुविचारक हैं। कहा से पधारना हुआ आपका ?"

"नैमिषारण्य से।"

"वहीं निवास है ?"

"मेरा निवास इस समय एक ऐसे स्वप्न में है जो अभी साकार नहीं हुआ।"[41]

च. उद्देश्यपूर्णता–

प्रत्येक संवाद सोद्देश्य होना चाहिए। उद्देश्य रहित संवाद फीके और अनावश्यक प्रतीत होते हैं। वास्तव में संवाद को या तो पात्रों के चरित्र का चित्रण करना चाहिए या कथानक के विकास में सहायक होना चाहिए। अतः संवाद या तो किसी पात्र की किन्हीं विशेष परिस्थितियों में मानसिक प्रतिक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत करें या घटना विषयक जटिलताओं का परिचय दें। संवाद दो विरोधी पात्रों की मनःस्थिति की थाह लेने के लिए और भावी घटना के उद्देश्य से भी प्रयोग होते हैं।

नागरजी ने अपने उपन्यासों में संवादों का प्रयोग करते हुए उद्देश्यपूर्णता का सदैव ध्यान रखा है। 'बूँद और समुद्र' के संवाद पात्रों की मनःस्थिति और तज्जन्य वैचारिकता से बड़ी सहजता के साथ जुड़ते हैं।

लाला नगीन चन्द और महिपाल के इस संवाद से कल्याणी के चरित्र की विशिष्टता प्रकट होतीहै। नागर जी ने दो पात्रों के संवाद द्वारा एक तीसरे पात्र के चरित्रांकन का कौशल प्रदर्शित किया है–

लाला नगीन चन्द (कर्नल) ने दबंगियत से उठकर कहा– ''देखो जी! यह झूठा रोब मत झाड़ों, इस वक्त, समझे। मैं एकदम सीरियस मूड में हूँ इस दम मैं न तो तुम्हारा हूँ और न भाभी का। जो मुझको सच जचेगा वही कहूँगा। और मैं फिर कहता हूँ, सारा दोष तुम्हारा है। तुम भाभी जैसी सती के पैर की धोवन भी नहीं हो साले, इंटलेक्चुअल चाहे जित्ते बड़े हो।''

महिपाल ने सिर उठा तमक कर कहा– ''मैं जानता हूँ, बल्कि निःसंकोच हरेक के सामने कह भी देता हूँ कि कल्याणी मुझसे अधिक निष्ठ है। मैंने भी 17–18 वर्ष एक पत्नी व्रत धारण कर शुद्ध निष्ठा से बिताएं हैं। अब भी इनकी (कल्याणी की) बज्र मूर्खता से घोर घृणा करते हुए भी इनके लिए मेरे हृदय में प्रेम भरा पूज्य भाव है।''[42]

लेखक ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करते हुए कल्याणी और महिपाल के चरित्रांकन का उद्देश्य अत्यन्त कौशल के साथ प्राप्त किया है।

माधवी और कोवलन का यह संवाद माधवी को अन्तर्वेदना और साथ ही साथ कन्नगी के प्रति उसकी ईर्ष्या व्यक्त करवाने के उद्देश्य में लेखक की पूर्ण सफलता को प्रमाणित करता है–

माधवी बोली–''मेरे अन्तर में आँसुओं की जैसी गहरी बाढ़ आ रही है, उसके सामने लाखों प्राणियों का दुख भी ओछा है। कावेरी की बाढ़ में मरने वालों को नगर समाज की, महाराज की, तुम्हारी, सबकी समवेदना मिलेगी और मैं अभागी अपने अन्तर के आँसुओं में डूबी जा रही हूँ। इसे कोई देख भी न पाएगा।''

कोवलन सुनकर चिढ़ गया, बोला– ''तुम्हारी इस कुट्टनीलीला में मेरे लिए कोई आकर्षण नहीं रह गया माधवी! पुरुष किसी स्त्री को इहलोक में जो कुछ भी दे सकता है उससे अधिक मैंने तुम्हें दिया है। इस नगर के वैभव स्वरूप अपने पिता और श्वसुर की प्रतिष्ठा तक तुम्हें सौंप दी, व्यवसाय वाणिज्य सौंप दिया। कलंक और लोक निन्दा ओढ़ी। तुम्हें अब भी संतोष नहीं हुआ ?''

''छप्पन पकवानों से भरे थाल में सब रस हों, केवल नमक न हो, प्राणियों के सुन्दर से सुन्दर रूप विधाता बनाए और उनमें प्राण न डाले, राजा हो, पर उसका राज्य न हो, तो कैसा लगेगा ? मैं वेश्या के घर बिकी और पली, यह तो तुम्हें अब तक याद है, पर मेरे एकान्त प्रेम को तुम भूल गए। कितनी अभागी हूँ मैं! प्रतिक्षण अपने प्राण होम कर भी मैं तुम्हारी दृष्टि में सती न हुई! तुमने जो मूल्य चुकाया, सो मैंने माना, परन्तु उस मोल वस्तु जो पायी––''

''वह कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, परन्तु मेरे जीवन को शान्ति न दे पाई।''

माधवी चिढ़ उठी, बोली– ''हां, हां, अशान्ति, अमंगल, अविशाप तो मैं ही हूँ, मानाइहन की बेटी तो मानो साक्षात् वरदायिनी देवी है। हाय रे भाग्य!''[43]

गाजीउद्दीन हैदर और सुलखिया के इस संवाद में गाजीउद्दीन का अन्तस्ताप मुखरित हो रहा है जिसे उभारना ही लेखक का उद्देश्य है–

''सुलखिया।''

''आलीजांह।''

''मन जानती हो किसे कहते हैं ?''

''हम साएं को, जहांपनाह!''

''लेकिन इस हम साएं को छूना अक्सर गुनाह भी होता है। मन की दोस्ती खतरनाक है।''

''मगर मन से दोस्ती किए बगैर किसी का भी गुजारा हुआ है, जहांपनाह ?''

''हूँ।'' ''मन को दोस्त बनाना ही पड़ता है। दिल को दिल से ही राहत है वरना इंसान बेसहारा हो जाएं। सुलखिया, तू मेरा मन बन सकेगी ?..... खामोश मन नहीं चाहता बोलता मन चाहता हूँ। मैं बादशाह का मन नहीं चाहता, इंसान का मन चाहता हूँ। मैं दल–दल से उबर कर सधी जमीन पर पांव रखना चाहता हूँ। क्या तू यह भूल सकेगी कि तू मेरी बांदी नहीं मेरा मन है ?''[44]

निर्गुनियाँ और बसन्तलाल के निम्नांकित संवाद में निर्गुनियां का व्यंग्य उसके आक्रोश को व्यक्त करता है–

''सच बोलो, खड्ग बहादुर ने क्या मोहना के हाथों तुम्हें बेचा था ?''

''नहीं।''

''तब फिर तुम उसके पास कैसे पहुँची ?''

''जैसे आपके पास पहुंची थी।''

''ये गहने जो तुम्हारी पोटली में कल निकले, कहां से लाई थी ?''

''गहने मेरे हैं। मेरी माँ–नानी के हैं। मैं अपने हिजड़े पति के घर से निकलते समय उन्हें साथ लाई थी।''

''ये तुमने क्या किया निर्गुन, एक मेहतर के साथ ..... ''

''पचासों ब्राह्मण, ठाकुर, बनिए, खत्रिय, कायस्थ और मुसलमान जब इन मेहतरानियों के साथ बदकारियां करते हैं तब आपको बुरा नहीं लगता ?''

''मर्दों की बात और है। पर तुम..... इतने उच्च कुल की तुम ?''

''हाँ मैं!'' ''जब बारह बरस का अकाल पड़ा था तो भूखे विश्वामित्रजी ने सुपच के घर घुसकर कुत्ते के मांस की चोरी की थी। मुझ अकाल की मारी ने भी अगर ऐसा पाप.....''

''चुप करो, शर्म नहीं आती तुम्हें ? ब्राह्मण के घर में जन्म पाकर.....''

''ब्राह्मण?'' निर्गुनियां व्यंग्य से मुस्कराई।[45]

लवसूल और जुआना बेगम के मध्य हुआ यह संवाद, जुआना के चरित्र को स्पष्ट करता है–

"मैं पत्थर का बेजान पुतला नहीं हूं हुजूर। मेरे सीने में भी एक अरमान भरा दिल धड़कता है। पिछले चार रोज से हर वक्त बावले सवाल उठा करते हैं। अब इम्तहाने वफा न दे पाऊंगा। अपनी जान दे देना इससे कहीं ज्यादा आसान काम है।"

"आखिर हुजूर आप मुझसे चाहती क्या हैं ?"

"क्या चाहती हूं, सुनोगे ? मैं तुम्हें अपने आपको पूरी तरह से सौंप देना चाहती हूं। दिलोजान से तुम पर निसार हूँ और तुम्हारी हो जाना चाहती हूँ।"

"यह आप सच फरमा रहीं हैं बेगम साहिबा ?"

"जुआना–कहो प्यारे! तुम्हारे सामने अब मैं बेपनाह हूं। यह लुका–छिपी का खेल अब मुझसे खेला नहीं जाता।"[46]

'अमृत और विष' का निम्नांकित संवाद यूनिवर्सिटी के वर्मा जैसे प्रोफेसरों के चरित्र और उनके प्रति रमेश जैसे युवकों का आक्रोश दिखलाना ही इस संवाद का उद्देश्य है–

"तो वर्मा यो ही कब कोर्स कम्पलीट करवाते हैं ? उन्हें यूनिवर्सिटी की पोलटिक्स से फुर्सत ही कब रहती है ? लड़के साले फेल हों या पास हों।"

"हां, एक–आध–दो लौड़ियों की फिक्र जरूर कर लेते हैं। अब की ऊषा पण्डित ही फस्ट आएगी रमेश! तुम साले यहां पढ़–पढ़ के मरे जाते हो।"

"इस वर्मा के बच्चे ने अगर लौंड़िया बाजी के फेर में मेरी पोजीशन खराब की तो मैं भी मैकू को पचास रुपए चटा के साले की नाक ही कटवा दूंगा और ऐसी साफ करवाऊंगा कि साला प्लास्टिक सर्जरी भी न करवा सके।"

"अरे यार क्या खुराफात बकते हो ? गुरू हैं आखिर हम लोगों के, कुछ तो भारतीय संस्कृति का ध्यान रखो।"

"सब साली भारतीय संस्कृति है। हम लोगों को सोलह दूनी आठ पढ़ाने के लिए भारतीय संस्कृति और अपने लिए हराम की तनखाह और ऐश। मैं तो सच कहता हूं रमेश कि ऐसे प्रोफेसरों के लिए अमरीका की 'कू क्लक्स क्लान' जैसी संस्था खोलनी चाहिए। किसी लौड़िया बाज की खोपड़ी तोड़ कर युनिवर्सिटी के लान में उसकी लाश फेंक दी जाय, किसी को पेड़ से उल्टा टांग दिया जाय, किसी के नाक–कान काटे जाय–तब ये लोग काबू में आएंगे। साले हम पर 'इन्डिसिप्लिन' का चार्ज लगाते हैं और आप ही 'मोस्ट इन डिसिप्लिण्ड' स्वार्थी और कमीने हैं।"[47]

यहां नागरजी ने आज–कल के लड़कों की दोस्ती में बोली जाने वाली भाषा 'यार', 'साले', 'साला', 'साली' आदि शब्दों का प्रयोग पात्रानुकूल किया है। नवयुवकों के झुंझलाहट भरे आक्रोश को भी व्यक्त किया गया है।

रत्नावली राजा भगत के साथ तुलसी के दर्शनार्थ काशी पहुंचती हैं। वह वहां रहना चाहती है किन्तु तुलसी की विनम्र किन्तु दृढ़ मनाही के कारण वह उनकी बात स्वीकार कर लेती है और वापस होते समय वह तुलसी से कहती है–

''जा रही हूँ!''

''रो रही हो रत्ना ?''

''संतोष के आंसू हैं।''

''अब न बहाओं देवी, नहीं तो मेरे मन का धैर्य और संतोष बँट जाएगा। सेवक का धर्म कठिन होता है।''

''जाती हूँ। एक भिक्षा और माँग लूँ ?''

''मांगो।''

''मेरी मृत्यु से पहले एक बार मुझे अपना श्री मुख दिखलाने की कृपा करें।''

''बचन देता हूँ, आऊंगा।''[48]

इस संवाद में रत्ना और तुलसी की मनः स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण संवाद की सोद्देश्यता प्रकट करता है।

'खंजन नयन' में युवा तपस्वी और सूर का संवाद जहां एक ओर कंतो और सूर के चरित्र का उद्घाटन करता है वहीं सूर की श्याम के प्रति निष्ठा भी व्यक्त करता है–

''आपके प्रति उस देवी की प्रेम सिद्धि क्या कम थी जिसने अपने आपको सकाम से निष्काम बना लिया ?''

''मेरी और मेरी कांता की अस्मिता अब दो भागों में नहीं बंटी हैं। वृन्दावन के इस प्रयोग के बाद तो हम सब एक हैं। सूरज–कंतो, मेरा तप, सूरज सूरस्वामी–मेरी बुद्धि, और सूर श्याम मेरी शक्ति है। यह मेरी प्रकृति की मौलिक शक्तियां हैं।''

''कंतो को अपने साथ तपो शक्ति किस लिए माना ?''

''देख रहा हूं कि तुम भी इसी पथ के पथिक हो, देर–सबेर से वहीं पहुंचोंगे। अतः तुमसे खुलकर ही बात कहूंगा। एक बार मैं भी उस स्त्री के साथ बलात्कारी उन्माद में आ गया था। तब उसने हनुमान जी का ध्यान दिलाकर मुझे सचेत कर दिया। वृन्दावन में अपने कान्ता भाव से सोंचते हुए, मैंने उसका मन पाया। प्रेमी के लिए कितनी शुभ–चिंतना होती है। चाहती तो मेरे क्षणिक उन्माद में मेरा तपो भंग कर देती। मेरे लिए उसका प्रेमतप फलीभूत हुआ। तब से कलेजे में उसका तपोभाव लिए डोलता हूँ। कान्ता मेरे मन के नन्दन वन की अनुपम शोभा है।''[49]

निम्नांकित संवाद कथावस्तु की उद्देश्य पूर्णता सिद्ध करता है–

"हां वत्स, यह भार तुम्हें वहन करना ही है। तुम्हारे गोलोकवासी पिता के समान मेरी भी इच्छा है कि मेरे जीवन काल में एक बार इस पवित्र नैमिषारण्य में फिर से द्वादश वर्षीय महासत्र हो जाय।"

"इस बार एक लाख श्लोकों की महाभारत संहिता का पाठ ही इस महा सत्र का उद्देश्य होना चाहिए। आर्य पितृव्य! हमारे चिर वन्दनीय पुरखों ने उसे समस्त ज्ञान का विश्वकोष बना दिया है।"[50]

2. संवादों के कार्य–

उपन्यास में संवाद का समावेश निम्नांकित उद्देश्यों या कार्यों के लिए होता है–

क. कथानक का विकास करनाः–

संवाद के द्वारा उपन्यासकार अपने कृति में वर्णित घटनाओं या दृश्यों में सजीवता लाता है और उनके संगठन से कथानक का विस्तार करता है। संवाद को प्रत्यक्षतः कथानक के सूत्र से संबन्धित होना चाहिए। इसके अभाव में कथानक की क्रम बद्धता नष्ट हो जाती है तथा विविध घटनाओं में किसी प्रकार के सामन्जस्य के अभाव में असंगति प्रतीत होने लगती है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में संवादों को इस कार्य को सदैव ध्यान में रखा है। इसीलिए उनके संवाद कहीं भी असंगत नहीं लगते। उदाहरणार्थ–

'बूँद और समुद्र' में सज्जन और महिपाल का निम्नांकित संवाद कथानक का विकास तो करता ही है उनके धर्म विषयक असन्तोष को भी प्रकट करता है–

महिपाल– "मेरे हाथ में दो दिन के लिए शासन आ जाएं तो ये जितने धर्म की बात करने वाले हैं, सबको चौराहों पर जूतों से पिटवाऊं। ढोगी, मक्कार।"

सज्जन हंसा बोला– "होगा–होगा, जाने दो उस्ताद। आखिर इन धर्म वालों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?"

महिपाल बोला– "इनकी अन्धी कट्टरता पूरी जिन्दगी को निहायत ही गैर इन्सानी नजर से देखती है।"[51]

'सुहाग के नूपुर' में कथानक के विकास हेतु प्रयुक्त कन्नन और कोवलन का यह संवाद दृष्टव्य है–

कोवलन– "बड़ी चतुर है यह स्त्री, पाँच गुट्टों में भिखारी का भाग्य छीन ले गयी।"

"कन्नन ने हँस कर कहा–"और वह जो मेरे मित्र का मन हर ले गई ?"

"चतुर पुरुष हाट में हिरती–फिरती धन लक्ष्मी और यौवन लक्ष्मी को महत्त्व नहीं दिया करते मित्र, वे उस लक्ष्मी का ही वरण करते हैं जो उनके घर में स्थाई रूप से आती है।"

"साधु, यह वचन होन हार पुरुष के ही योग्य है।"[52]

"फिजूल की बातें रहने दो। तुम जानते हो कि मलिकए–जमानियां के दिलो जिस्म का असली मालिक कौन है। खैर अब काम की बात पर आओ। होश सम्हालो, हमारी यह सेज आग की भट्ठियों पर बिछी हुई है। मुझे हर वक्त हर घर की खबर मिलती रहनी चाहिए।"

"खातिर जमा रखो, कोई शाही महल, किसी भी रईसो उमरा का महल तुम्हारे आदमियों से खाली नहीं। दाइयों, पालकी कहारों से लेकर हर घर के दरोगा दीवान तक तुम्हारा दम भरते हैं। मैं भी तुम्हारा दम भरता हूँ। तुम्हारे लिए नहीं, अपने लिए।"

"मैं जानती हूँ। तुम ईमानदार हो, साफ कह देते हो, इसी से मुझे तुम पर भरोसा भी होता है, फिर भी इस वक्त खास तौर पर चौकन्ने रहने की जरूरत है। बादशाह बेगम, आगामीर दोनों ही अपने–अपने वास्ते उसी चारे पर दांव फेंकेगे जो कि तुम्हारा है। उनका जाल भी वही है जो तुम्हारा है। हर महल के नौकर बांदियां हर तरफ से रिश्वत की भरमार पाकर सबसे दगाबाज हो जाएँगे। खबरें मिलने का जरिया सही और मजबूत होना चाहिए।"[53]

इस संवाद का समावेश कथानक के विकास के साथ–साथ नवाबी महलों के वातावरण और पात्रों के गुणों को भी उद्घाटित करने के लिए किया गया है।

'अमृत और विष' में रमेश की बहन के विवाह के प्रसंग में निम्नांकित संवाद देखिए–

लच्छू ओर रमेश एक सेठानी के यहां बारात की व्यवस्था हेतु पहुंचते हैं–

"अरे, कौन ?"

"हम हैं दादी, लच्छू।"

"अरे कौन लच्छू ?"

"बाबू सतनारायण के लड़के। औ पुत्ती गुरु के लड़के भी आए हैं।"

"अरे तो ऊपर चले आओ बेटा, तुमरे लिए कोई रोक–टोक है भला।"

"नई दादी, इस बखत तो बड़े झंझट में हैं। इसकी वजह पुत्ती गुरू की बिटिया का ब्याह है।"

"किसका ? पन्नो का या मन्नो का ?"

"देखा! दादी हमारी कहीं आती–जाती न होंवे पर खबर सब रखती हैं। मन्नो का ब्याह है दादी, फरुखाबाद से बारात आ रही है।"

"चलो अच्छा है लड़का क्या करत हैगा ?"

"पार्शल बाबू है दादी, उसके बाप भी रेल गोदाम के बड़े बाबू हैं।"[54]

कितनी सरलता और स्वाभाविकता के साथ यह संवाद, कथानक के पात्र को पकड़कर विकसित कर रहा है।

बशीर खाँ और दिलाराम का निम्नांकित संवाद, कथानक का विकास करने के साथ–साथ पात्रों के चरित्र और उनके आक्रोश को मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्त करता है–

"हौसला अफजाई के लिए बहुत–बहुत शुक्रिया, मगर यह मेरी बात का जवाब न था मैं जानना चाहती हूँ कि तुम्हारे अन्दर वाले मुनाफाखोर दरिंदे ने मेरी कितनी कीमत आँकी ?"

"अपने इस चाँद से मुखड़े की कीमत खुद ही आंक लेती। मैं समझता हूँ कि कम–अज–कम दस हजार अशर्फियों से नीचे तो इसका सौदा हो ही नहीं सकता। मैंने समरू के आदमी टॉमस से आज इतनी ही अशर्फियां लेकर आने को कहा है। मेरा ख्याल है दोपहर तक वह अशर्फियां और डोला लेकर आजाएगा।"

"खुद गरज! दगाबाज।"[55]

'नाच्यौ बहुत गोपाल' का निम्नांकित संवाद जो अशुंधर शर्मा और मजीद के बीच प्रश्नोत्तर शैली में समावेसित है, मेहतरों के यहां होने वाली शादियों के विषय में जो कि उपन्यास के कथानक के मुख्य सूत्र को विकसित करता है, जानकारी देता है–

"तुम लोगों के यहां शादी कैसे होती है ? निकाह होता है या भांवरे घुमायी जाती हैं ?"

"निकाह नहीं होता हैगा हुजूर, भंवरियां ही घुमायी जाती हैं।"

"पण्डित आता है ?"

"जी हाँ! पर वो लगन भर ही बांचता है ब्याह नहीं कराता।"

"तब भांवरें कौन फिरवाता है ?"

"बस यों ही फिरवा दिए जाते हैं, गाँवों में कहीं–कहीं नाई भी फेरे फिरवाते हैगे।"[56]

'मानस का हंस' का निम्नांकित संवाद तुलसीदास और रत्नावली का यह संवाद दोनों के प्रगाढ़ नातों को तो स्पष्ट करता है, उनके मानसिक, चारित्रिक गुणों को भी स्पष्ट करता है। कथा सूत्र को विकसित करता है–

"और मेरा तुम्हारा नाता ?"

"मेरे तुम्हारे नाते को जग जानता है। हम तो चाखा प्रेम रस पतिनी के उपदेश।"

"मुझे त्यागने के बाद तुम्हारा यह बखान खोखला है।"

"सियाराम का पुजारी अपने मानस की नारी शक्ति को भला कभी त्याग सकता है ? तुम्हारे कारण मेरी लड़खड़ाती हुई राम शक्ति अंगद का पांव बन गई।"

"मेरे सहज हठ को तोड़कर तुमने अपना हठ बढ़ाया।"

"रत्ना हम दोनों चक्की के दो पाटों की तरह हैं। इनके द्वन्द्व के बिना हम दोनों की लौकिक चेतना का गेहूँ पिसकर भला भक्ति रूपी मैदा बन सकता था। ××× तुम्हारी सुन्दरता ने मुझे इस जीवनमें जैसा नाच–नचाया वैसा अपने बालपने के उस विरह चक्र में भी नहीं नाचा था। ××× कई बार जी चाहा कि घर लौट चलूँ और तुम्हारी इन आँखों की छाया तले अपना जीवन शेष कर दूँ।"

"फिर चले क्यों नहीं आए ?"[57]

पण्डित सीताराम और सूर का निम्नांकित संवाद उपन्यास के कथानक को विकसित करते हुए सूर का परिचय और उनका आत्मविश्लेषण भी प्रस्तुत करता है–

''घर कब छोड़ा ?''

''दस वर्ष पहले।''

''क्यों, बतलाने में कोई आपत्ति है ?''

''नहीं। एक प्रकार की मिथ्या लज्जा भर है। ..... भाईयों के कुचक्र और पिता के अविचारवश वह घर मेरे लिए जंगल की आग जैसा दाहक बन गया था। बड़ें भाई ईर्ष्यावश चाहते थे कि मैं गाना और काव्य रचना छोड़ दूं। भोले पिता उनकी बातों में आ गए। मैंने घर त्याग दिया।''

''सन्यासी घर छोड़ने के बाद मिले थे ?''

''जी हां, जिस रात घर छोड़ा उसी रात।''

''उनका सत्संग कब तक मिला ?''

''लगभग दो बरस।''

''फिर वे चले गए ?''

'नहीं, मैं ही चला आया।''[58]

भार्गव सोमाहुति की माता और नारद का यह संवाद कथानक को विकसित करने में सहायक है–

''भला आया। ..... आ तो गया मेरे लाल! तुझे देखकर आँखें तो जुड़ा सकीं। अब दोनों गुरु भाई मिलकर अपने पूर्वजों का ऋण चुकाओ। सोमा तुम्हें बहुत याद करता था। उसके मन में बड़े–बड़े स्वप्न और शुभ संकल्प हैं ..... '' ××

''अच्छा देवा, अब मैं रसोई मण्डप में जाऊँगी। इज्या अभी पाक विद्या में निपुण नहीं हुई ठेठ प्रकृति कन्या है।''

''अय्या ये देवी इज्या कहां से आयी ? कौन है यह ?''

''संयोग।''[59]

यहां उपन्यास की एक प्रमुख नारी पात्रा की जानकारी संवाद के माध्यम से कथानक को विकसित करती है।

ख. पात्रों की व्याख्या करनी–

संवाद के संबंध में कथानक और पात्रों से समान रूप से महत्वपूर्ण होते हुए भी पात्रों से विशेष होता है। पात्रों के संवादों के माध्यम से जो विचार प्रकट

होते हैं वे पाठक को उनके प्रति पाठक का नैकट्य प्रकट कराते हैं। कथोपकथन के द्वारा लेखक पाठकों को अपने पात्रों के विषय में विविध जटिल परिस्थितियों तथा अन्तर्द्वन्द्व संबंधी इतना प्रत्यक्ष बोध कराता है, जो अन्य किसी माध्यम से संभव नहीं। संवाद द्वारा लेखक अपनी कृति के चरित्रों की व्याख्या करता है और उन्हें विकास की ओर अग्रसर करता है। इस प्रकार के कतिपय उद्धरण नागर जी के उपन्यासों से दिए जा रहे हैं।

कल्याणी और महिपाल के इस संवाद में कलयाणी की पति निष्ठा और उसके प्रति निच्छल प्रेम का निदर्शन है– ''यूं बिछाय देई ? तुम्हार कउनौ काम .....''

''बिछाय देओ, यू का आय ? बेसन क्यार हलुवा ?

''बड़कऊ बहुत रोज ते कहत रहे कि अम्मा हिलुवा बनाओ– हिलुवा बनाओ, तउ हम कहा कि नमकीन मइहाँ दही बरौ बनाय लेई।''

''ये तो बिल्कुल गरमा–गरम मामला है। ..... वाह! अच्छा बना है।''

''बिजली वाले इसटोव पै गरम किहा है अबहीं। तुम सबेरे थरिया सरकाय कै चले गैव, हमार दिन कइस बीता है ..... ।''[60]

यहां कल्याणी के मन का कष्ट उभर आया है।

'सुहाग के नूपुर' में पाप नाशन और महालिंगम् का यह संवाद जहां महालिंगम की ईर्ष्या व्यक्त करता है वहीं कोवलन के भाग्यशाली होने तथा लक्ष्मी और सुख्याति से पूर्ण चरित्र का उद्घाटन भी–

''अहो! पाप नाशन, तुम भी ? तब तो निश्चय ही आज सूर्य पश्चिम से उदय होने वाला है।''

''क्या करता है ? तम्बी आ रहा है। स्वागत के लिए न आता तो अप्पा और अम्मां दोनों को क्षोभ होता। और तुम किसके लिए आए हो महालिंगम् ?''

''स्वयं नये सार्थवाह कोवलन के लिए।''

''बड़ा भाग्यशाली है यह कोवलन भी, चेट्टि पुत्रों में इस समय सिरमौर माना जा रहा है। भाग्य तो देखो, धन के साथ–साथ परदेश से सुख्याति की गठरी भी बांध कर ला रहा है।''

''और यहां भी उसके लिए लक्ष्मी वरमाला लिए खड़ी है। भाग्य इसको कहते हैं!''

''मैंने तो सुना था कि मानाइहन की कन्या का संबंध तुमसे होने वाला है। कल अचानक सुना कि ..... ''

''मैं किसी की दासता नहीं कर सकता। मानाइहन चेट्टियार चाहते थे कि उनकी पुत्री से विवाह करने वाला पुरुष फिर किसी ओर आँख उठाकर भी न देखे।''

''ठीक ही तो कहते हैं। कन्नगी सुन्दरता में अद्वितीय है। उसे पाकर फिर किसी और की चाह क्यों रहे ?''[61]

नागर जी ने इस संवाद में बड़ी कुशलता के साथ कन्नगी की अद्वितीय सुन्दरता की पुष्टि भी कर दी है।

'शतरंज के मोहरे' में गाजीउद्दीन और सुलखिया के निम्नांकित संवाद में गजाउद्दीन के कमजोर चरित्र और उसकी असमर्थता तथा मानसिक व्यथा का उद्घाटन हुआ है–

''शाहे अवध की सरकार में कौन सी बेईमानी नहीं होती ?''

''तुम हमें फिर कुएं में ढकेल रही हो सुलखिया, हम यह नहीं सुनना चाहते।''

''मन की बात है हुजूर, किसी पराएं की नहीं जो बुरी नियत से कही गई हो।''

''क्या तुम इस बात को जोर देकर कहती हो ?''

''क्या हुजूर को खुद नहीं मालूम ?'

''ठीक–ठीक मालूम नहीं, पर महसूस जरूर करता हूं। शाही निजाम में खराबी न होती तो अंग्रेज हमारे ही घर में आकर हमारे मालिक क्यों हो जाते।''[62]

''अमृत और विष' में अरविन्द शंकर और एक आधुनिक महिला का यह संवाद आधुनिक फैशनेबुल और स्वच्छन्द यौन संबंधों वाली महिला का सजीव चित्र उपस्थित करता है–

''मादाम, श्रीमती, जो कोई भी हो वो आपको डाइनिंग रूम में देखकर– और इस समय भी मेरी धारणा यही बँधती है कि आप एक सम्पन्न और सम्भ्रान्त कुल की महिला हैं–''

''और मैं भी आपकी भद्रता पर पूरा भरोसा करके ही यहां आने की हिम्मत कर सकी हूँ। औरत के कलेजे के भीतर एक और भी कलेजा होता है। अगर वहां तक मुझे आपकी सज्जनता पर भरोसा न हो गया होता, तो मैं अपनी मजबूरी में आपसे भीख माँगने न आती।''

''मजबूरी में यानी प्रॉक्सी (एव जी) – ''

''ओः तुम तो एक बात की कविता ही समाप्त किए दे रहे हो और अगर तुम गद्य ही में सुनना चाहते हो तो सुना– शराब–औरत, शराब–मर्द–एक–दूसरे की रूह को ताजा करने के लिए जरूरी है। भद्र और समझदार स्त्री–पुरुषों में अच्छी शराब और अच्छे साथी के चुनाव की एक नाजुक खयाली और होती है, बस! सो, कम आन माई स्वयंवर पुष्प।''

''वहाँ क्यों– यहीं! उस कमरे को अपने नियमित मित्र की स्मृतियों से ही भरा रहने दो।''

''इस खयाल में ताजगी है– तुम जाओ, मेरा अटैची केस उठा लाओ।''[63]

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' का यह संवाद दिलाराम को निर्भीकता और उसकी दूरदर्शिता को उद्घाटित करता है–

''हुस्न और अक्ल के जादू से हर दरिंदा बस में आ जाता है मुन्नी, फिर तुम्हें इसका खौफ क्यों हो ?''

''खौफ ? नहीं महबूबा, यह मेरा होश है जो नए माहौल में पूरे फैलाव के साथ अपने आपको महसूस करना चाहता है।''

''कुछ भी कह लो मगर यह नए पन का डर है जो तुम्हारे नाजुक दिल में थरथराहट भर रहा है।''

''दिलाराम डरना नहीं जानती। वह सिर्फ अपने औरत होने की वजह से कहीं बेबशी जरूर महसूस करती है। और उसकी बेबसी को भांप कर कोई उसे जोरो जुल्म से दबाने के लिए ललच न उठे, इस सबग से वह हर वक्त खबरदार जरूर रहना चाहती है। यह पता लगाओ महबूबा कि मेरा होने वाला यह शौहर महज लिबास ही से हिन्दोस्तानी हुआ है या मजहबों मिजाज से भी ?''[64]

वास्तव में संवाद दिलाराम के हुस्न और अक्ल का उद्घाटन कर रहा है।

निर्गुनियाँ और अंशुधर शर्मा का निम्नांकित संवाद निर्गुनियाँ के जातीय स्वाभिमान और उसकी मानसिक पीड़ा को व्यक्त करता है–

''आपने अपनी बात में मुझे और मेहतर जात को अलग–अलग क्यों कर दिया बाबू जी! अब तो मैं मेहतर हूं और आप लोगों की जात से अपनी जात को ऊँचा समझती हूँ।''

''आपने पिछली बार मुझे बतलाया था और मैंने उस बात को लिखा भी है, जब आप की ममियां सास ने आपको सुअर का मांस पकाने के लिए कहा था ..... ''

''आप तो बड़े–बड़े वकीलों के भी काटते हैंगे बाबूजी। यह सच है कि तब मैं ब्राह्मणी थी, मांस–मछली की बात तो दूर मैंने अपने हाथ से प्याज–लहसुन तक नहीं छुआ था।''[65]

''मानस का हंस' में तुलसी को एक प्रकाण्ड ज्योतिषी सिद्ध करने वाला यह संवाद–

''वह माल कौन ले जाएगा ?''

''किसी बहुत ऊँचे घराने का आदमी।''

''उसकी औलाद क्या होगी ?''

''लड़का। वह राजा बनेगा।'

''क्या उससे या उसकी माँ से मेरी फिर कभी मुलाकात होगी ?''

''मां से कभी नहीं किन्तु बेटे से होगी। न होती तो अच्छा होता।''

''क्यों ?''

''लड़ाई के मैदान में या तो वह आपकी हत्या करेगा या आप उसे मारेंगे।''[66]

'खंजन नयन' में सूर के अन्तर्द्वन्द्व को उनमें और उनकी अन्तरात्मा को संवाद कराकर चित्रित किया गया है। यहां नागर जी ने एक अनोखी संवाद योजना प्रस्तुत की है–

''कैसे जुडू प्रभु ? चाह है पर राह नहीं जानता।''

''उद्देश्य कोई भी हो, धन, स्त्री, ईश्वर की प्राप्ति। पहले आकर्षण होगा फिर आशक्ति। घोर आशक्ति चाहिए और यह आशक्ति जब व्यसन बन जाएगी तब तुम और श्याम अभिन्न हो जाओगे।''

''वह आशक्ति कैसे हो ?''

"सेवा कर।"

"मैं जनम का अंधा–"

"बाहर ही से तो अंधा है। हथेली रगड़कर अपने श्याम का ध्यान करता है कि नहीं– अधूरा ध्यान।"

"अधूरा कैसे प्रभु ?"

"अरे मूरख राधे बिना श्याम आधे। दोनों मिलकर ही आखण्ड रसमय तत्व के रूप में नित्य प्रतिष्ठित है।"

"अभी हाल ही में मेरे मन में भी यह विचार आया था। पर–"

"डरता है मूर्ख, माँ से डरता है ?"

"मैने अज्ञान वश सदा उनकी उपेक्षा की।"[67]

सोमाहुति और भारत का निम्नांकित संवाद भारत का परिचय देता है और साथ ही साथ उसके व्यक्तित्व का उद्घाटन भी करता है–

"ना ना, यह मिथ्या भ्रम है। खेल तो समाप्त होगा ही क्योंकि प्रज्ञा हर लोक में अपनी समस्थिति चाहती है। स्वप्न में भला यह कौन दे सकता है उसे।"

"मै दे सकता हूँ।"

"आप देंगे ?" "तब आप इन लोकों को कदापि नहीं पा सकते।"

"क्यों ?"

"पति के रहते परायी स्त्री को कुछ देने वाले आप होते कौन है ?"

"अहो! तो आप ही प्रज्ञा पति भारत चन्द्र है।"

"पति ? ..... था।"

"अब ?"

"अब मैंने मुक्ति का वरण कर लिया है।"[68]

ग. लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करना–

संवाद लेखक के उद्देश्य को प्रकट एवं स्पष्ट करता है बहुत से स्थलों पर लेखक अपनी बात को पात्रों के माध्यम से बदलवाना चाहता है। वहां संवाद ही उसके सहायक होते है। नागर जी ने अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए अपने विचारों के प्रकट करने के लिए अपने उपन्यासों में ऐसे संवादों का समावेश किया है। सज्जन और कन्या के इस संवाद में श्रद्धा के प्रतीकों के विषय में लेखक अपना मन्तव्य स्पष्ट करता है–

सज्जन बोला– "आखिर हम इन श्रद्धा प्रतीकों को क्यों पूंजे ? यों श्रद्धा भी शक्ति है, पर वह शक्ति गलत जगह पर क्यों इस्तेमाल की जाती है ?"

कन्या बोली– "बात तो ठीक है, पर ....."

"हाँ, तुम जो सोंच रही हो, वही बात मेरे मन में भी है। यह प्रतीक अब ज्ञान और अंध विश्वास दोनों ही के ऐसे अनेक प्रयोगों से जुड़ गए है कि उनसे अब हमारा दूसरा ही नाता हो गया है।"

कन्या ने कहा– "नहीं, मैं कह रही थी कि शिव हो या मुण्डमाल धारण करने वाली शक्ति, या हनुमान, भैरव आदि हो, ये सब दरअसल अब उन चामत्कारिक दंत कथाओं से बल पाकर जन विश्वास में जम चुके है, जो बड़े पुराने जमाने से समय–समय पर रची गई थीं। अनजानी विपत्तियों से रक्षा पाने के लिए यह देवता अब एक सहारा हैं। यद्यपि गलत सहारा हैं ××× शिव, हनुमान, राधाकृष्ण, दुर्गा आदि प्रतीक महज श्रद्धा को झलकाने के माध्यम बन जाते हैं।"[69]

'शतरंज के मोहरे' में नवाबी वातावरण में धन का अपव्यय किस प्रकार होता था इसे स्पष्ट करने के लिए निम्नांकित संवाद का समावेश–

"अजी बादशाह क्या करें, इनके नाम पर शाही खजाने से हर महीने खर्च तो निकलता ही है, फिर ये खांए चाहें इनके रखवाले। साहबे आलम आम तौर पर घुड़ सवारों के साथ तो निकलते नहीं इसलिए अस्तबल के दारोगा ने उन पर खर्च करना फजूल समझा और नाप रखने लगा। यह मान भी जाएंगे तो भी इनके नाम पर खर्च लेकर फूँका जाएगा।"

"अरे ई की का पूछत हौ भइया! आसफुद्दौला केरे जमाने केर घोड़ा आजौ खर्चु पावति है। हांलाँकि घोड़ा अउर मलिक दनौ मरि चुके हैं। सआदत अली खाँ केरी बागन के बैल बिकाय गे, रकम खवइया रकम खायेगें, अउरू अब हींउ महिनवारी खर्चु वसूल करति हैं। गाजीउद्दीन है दर क्यार कुतवा याक राति भँउकति रहै, तउ भइया! रखवारू कहि दिहिसि कि यहिका गरमी चढ़िगै है। एक सेरु गुलकन्द यहिका रोज खवावा जाय तौ ठीक होह जाय। चलौ यहि के बहाने एक नवा सिग्गा खुलिगा, अब कम से कम आगे आवै वाले तीनि–चारि बादसाही जमाने तक कुत्ता केरे नाँव पर कोई न कोई रकम खातै रही।"[70]

वहीदन का यह संवाद लेखक के इस उद्देश्य को स्पष्ट करता है कि तमाम सामाजिक बुराइयों का एक मात्र कारण दौलत का कुछ ही लोगों में इकट्ठा हो जाना है–

"जहीन हो, खुदा न खास्ता तुम्हारे बालिग बच्चे और तुम्हारी बीबी तुम्हारी आदतों से ऊब कर तुम्हें घर से निकाल भी देगें तो कमा खाओगें।"

"हाय, क्या बात कह गई वहीदन ! इतने दिनों में इस सैलाब से नहीं घबराया, जितना कि तुम्हारी इस बात से।..... मगर खैर ये तुमने सच कहा कि कमा खाऊँगा। बिगड़ा रईस जिन आदतों से बिगडता है उन्हीं से नयों को बिगाड़ भी सकता है। मगर हां, तुमने अपना सच नहीं बतलाया ?"

"अरे बड़ी हल्की–फुल्की सी बात है जी। सच ये है कि दौलत का कुछ थोड़े से लोगों में इकट्ठा हो जाना ही हमारी इन तमाम खराबियों की जड़ हैं। इंसान के पास दौलत उतनी ही चाहिए, जितना कि दाल में नमक होता है।"[71]

जुआना टॉमस के सिपाहियों द्वारा मरणासन्न स्थिति में पकड़ कर लायी जाती है इस अवसर पर उसे याद आता है कि उसने दिल को मुल्क और फर्ज से बड़ा मान लिया था और यही लेखक का उद्देश्य है–

"शुक्र गुजार हूँ, पर मुझे मरने दिया होता तो तुम्हारी और भी ज्यादा मसकूर होती।"

"इस मुल्क में अभी बहुत से दुश्मन हैं, मौत को जिनकी तलाश। आपकी जान अपने मुल्क के लिए वेशकीमत है।"

"मुल्क! हां, यही मैं भूल गई थी। मैंने अपने दिल को अपने मुल्क और फर्ज से बड़ा मान लिया। मैने मुनासिब सजा पाली।"[72]

'सुहाग के नूपुर' में नागर जी ने महाकवि इलंगोवन और माधवी के संवाद का समावेश कर अपना मन्तव्य इस प्रकार स्पष्ट किया है–

"सारा इतिहास सच–सच ही लिखा है देव ! केवल एक बात अपने महाकाव्य में और जोड़ दीजिए– पुरुष जाति के स्वार्थ और दम्भ भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग–नारी जाति–पीड़ित है। एकाकी दृष्टिकोण से सोंचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर ही सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर ही। इसी कारण वह स्वयं ही झकोले खाता है और खाता रहेगा। नारी के रूप में न्याय हो रहा है महाकवि! उसके आँसुओं में अग्नि प्रलय भी समायी है और जल प्रलय भी।"

"तुम माधवी हो ?"

"मै नारी हूँ– मनुष्य समाज का व्यथित अर्धांग।"[73]

'नाच्यौ बहुत गोपाल' मे अंशु धर शर्मा और निर्गुनियां का निम्नांकित संवाद भी लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करता है–

"अच्छा, एक प्रश्न और पूंछू ?"

"पूछिए।"

"आप श्रेष्ठतम वर्ण से वर्ण जाति विहीन समाज तक के जीवन को देख चुकी है। बतलाइए, कौन वर्ण श्रेष्ठ है ?"

"आजादी सुतन्त्रता का वरण ही उत्तम है। मैंने तो नसीब की मार से मेहतरानी बन के ये सीखा बाबू जी कि दुनियाँ में दो पुराने से पुराने गुलाम है– एक भंगी और दूसरी औरत। जब तक ये गुलाम है, आपकी आजादी रुपये में पूरे सौ के सौ नये पैसे भरं झूठी है।"[74]

रत्नावली और तुलसी के इस संवाद में लेखक ने स्पष्ट किया है कि सियाराम रूप ही नर–नारी के व्यक्त–अव्यक्त रूप का अनंत प्रतीक है। पति–पत्नी के सरस वार्तालाप में लेखक का यह मन्तव्य दर्शनीय है–

"सुन्दरता मेरे रूप में है या तुम्हारे लोभ में ?"

"पहले तुम बताओं, चन्द्रमा और चाँदनी में कौन सुन्दर है ?"

"तुम्हीं जानों, मेरे लिए यह प्रश्न अविचारणीय है।"

"क्यों ?"××× "मै अभी मरी नहीं जा रही हूँ कविराज, केवल एक यथार्थ सत्य का निरूपण भर किया था मैंने। मनुष्य का रूप, प्रकृति की शोभा सब नश्वर है। फिर ऐसे आधार पर टेंका देने से लाभ ही क्या जो विश्वास का ठोसपन न लिए हो ?"

"सच है टिकने वाला तो सियाराम रूप ही है। सच है वह नर–नारी के व्यक्त–अव्यक्त रूप का अनंत प्रतीक है। उसी का लोभ अनंत और अजर है।"

"तो उन्ही के प्रति अपना लोभ बढ़ओं। मुझे घूर–घूर कर क्यों सताते हो।"[75]

'खंजन नयन' का यह संवाद लेखक के इस उद्देश्य की पुष्टि करता है कि सूरदास ने भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर कृष्ण लीला के पदों की रचना की थी–

"देखा सूर ?"

"हां प्रभु !

"तुम्हें श्रीमद् भागवत के संस्कार पहले ही मिल चुके हैं किन्तु वे तुमने कथा भाव से सुने और सुनाए। मैं तुम्हें दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका मात्र सुनाता हूँ। इसमें श्री कृष्ण की समस्त लीलाएं समय आने पर तुम्हारे कवि मानस में स्वतः स्फूर्त हो उठेंगी। पुष्टि मार्गीय भक्तों का आरूढ़ भाव ही भगवत सेवा के लिए होता है। मैं तुम्हे प्रभु लीलाएं देखने और बखानने का आदेश देता हूँ।"[76]

प्रचेता और नारद का यह संवाद लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करता है। यह संवाद समुद्र गुप्त के चरित्र और कथानक के उद्देश्य को स्पष्ट करता है–

"अनेक देवों को एक नारायण के अवतारों और अनेक भूखण्डों को एक देश का रूप देने वाला जो आर्य सत्य आप दोनों महापुरुषों की कृपा से आज पुनः स्थापित हो रहा है उसे एक बार गहरी जड़े जमा लेने दे, तो भविष्य में कभी यह भी संभव हो जाएगा। आज तो विखराव को समेटकर संगठित करना ही राज धर्म है। समुद्रगुप्त जो कर रहे है, वह कभी स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने भी किया था ×× सैनिक दृष्टि से समुद्रगुप्त ने कहीं भी अनावश्यक क्रूरता अथवा दमन नीति नहीं बरती है।"

"बेचारे दक्षिण वालों को मार–मार कर उनका सोना लूट लाया और अब परमेश्वर परम वैष्णों सम्राट बनने जा रहा है, फिर भी कहते हो कि क्रूरता नहीं बरती । छिः !"

"काका क्या हम लोगों ने एक भी ऐसी सूचना पायी है कि समुद्रगुप्त ने दक्षिण की किसी भी जाति को दबाया है ? उन्होनें दम्भी, सत्ताधीशों और सम्भ्रान्त लुटेरों से उनका वैभव छीनकर दक्षिण से उत्तर तक की प्रजा को दान किया है। समुद्रगुप्त ने चोलों, कंगों, कदम्बों आदि की सुनीतियों को फिर से प्रोत्साहन दिया है। यही नहीं, वाकाटको और पल्लवों की श्रेष्ठ नीतियों को भी मान लेने में वे नहीं हिचके। समुद्रगुप्त शासक के रूप में ही ऐश्वर्य भोगते है। वे श्री राम के चरण चिन्हों पर चलकर व्यक्तिगत रूप से पूर्ण संयम निष्ठ जीवन बिता रहे है।"[77]

घ. इच्छित वातावरण की सृष्टि–

संवाद के द्वारा लेखक अपनी इच्छानुकूल वातावरण सृष्टि कर लेता है। इसके लिए वह अन्य किसी माध्यम का आश्रय नहीं लेना चाहता किन्तु कभी–कभी उसे वर्णनात्मक शैली का सहारा अवश्य लेना पड़ता है। नागर जी के उपन्यासों में इस प्रकार के संवाद प्रायः मिलते है। कुछ उदाहरण देखिए–

कोवलन और माधवी के निम्नांकित संवाद द्वारा लेखक ने आक्रोश एवं तनाव भरा वातावरण उपस्थित कर दिया है–

"चेट्टियार, तुम मेरी ही आँखों के सामने मेरी दासी को अंक में लेकर खेलों..... ....."

"खेलुंगा। तुम भी तो मेरी दासी हो ! तुम्हें अपना अस्तित्व भूलकर मेरे दर्प पर पैर रखने का साहस कैसे हुआ माधवी ! तूने मेरे खिलौने को मारा क्यों ? नागरत्ना मैं तुझे आदेश देता हूँ कि इस माधवी को दो लातें मार कर निकाल दे। ××× बड़ा घमण्ड हो गया है तुझे ! मुझसे दर्प की होड़ लेती है। दासी! हाट में बिकने वाली गुड़िया! ..... छिः, मैं तुझसे प्रेम करने लगा! तुझसे! तेरे पास से ओछे संस्कारों की सड़ांध आ रही है ..... दूर हट।"[78]

'शतरंज के मोहरे' में भुलनी और नईमउल्ला का यह संवाद कितना करुणापूर्ण वातावरण उपस्थित करता है–

"ऊहुँ।"

"सिर दाब दूं ?"

"न। .....सुनो।"

"माफ कइदेव।"

"किसलिए भुलनी ?"

"तुमका बहुत दुःख दिया।"

"पगली हो, सो जाओं।"

"सुनो।"

"क्या है ?"

"यूं परान हमार कइ से निकसै ? भगवानौ हमार नाही सुनत है।"[79]

'अमृत और विष' में भी आवश्यकतानुसार ऐसे संवादों का प्रयोग किया गया है। जिनमें लेखक इच्छित वातावरण की सृष्टि करने मे पूर्णतः सफल रहा है।

रमेश और रानी का निम्नांकित संवाद कितना रसमय और अपनत्व भरा वातावरण प्रस्तुत करता है–

"बहन जी कहां है ?"

"मीटिंग में गई है।"

"तुम्हारा कारबार अच्छा चल रहा है ?"

"हूं– ऊ ..... मेरा सी.टी. का फार्म कब लाइएगा ?"

"लाओंगे कहों, तब जबाब दूंगा।"

"मुझसे न कहा जाएगा।"

"तब फिर मैं जवाब भी न दूंगा।"

"न दीजिए।"

"कब तक जवाब न मांगोगी ?"

"जब तक आप न देंगे।"

"तुम बेर–बेर मुझे आप–आप कहकर मेरे साथ दुश्मनी करो और मै जवाब दूं, ऐसा उल्लू नहीं हूं।"

"तो फिर कैसे है ?"

"क्या ?"

"अपने से पूंछों न, तुम्हीं ने तो मुझे काठ का उल्लू बना दिया है।"[80]

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' में लवसूल और टॉमस के मध्य हुआ यह संवाद भी पारस्परिक तनाव पूर्ण वातावरण उपस्थित करता है–

"देना होगा तो वह कागज मैं खुद बेगम साहिब की नजर करूंगा।"

"वह कागज तुम्हें मुझे देना होगा।"

"वह कागज उन हाथों में हरगिज नहीं सौंपा जा सकता जिन पर अपने आखिरी वक्त में नवाब साहब को तनिक भी भरोसा नहीं रह गया था।"

"खामोश, अपनी हैसियत समझकर बात करो। यह मत समझो कि समरू के दिए हुए उस कागज के टुकड़े से तुम जागीरें सरधना के मालिक बन गए हो।"

"जिसके मन में असली चोर होता है वही दूसरों के दिलों में उसकी तलाश करने का ढोंग भी रचता है।"

"चोर तुम हो लवसूल....."

"मैंने चोरी जरूर की थी लेकिन अपना ईमान कभी नहीं छोड़ा था, और आपको तो समरू साहब ने मेरे मुंह पर दस बार बेईमान कहा था।"[81]

निर्गुनियां और नब्बू का संवाद करुणा और शोक का वातावरण उपस्थित कर देता है–

निर्गुन ने पूछा– "कहो नब्बू भइया! बड़े उदास हो।"

"हां भौजी! मोहना भइया मारे गए।"[82]

'मानस का हंस' में तुलसी बेनीमाधव को अपना जीवन चरित्र बताते हुए मेघा भगत और उनके मध्य होने वाले संवाद में उन्हें बताते हैं–

"मेघा भाई यदि हम लोग युद्ध में फंस भी गए तो आपको वहां से किसी सुरक्षित स्थान पर हटा देंगे। हमारे कवि जी के अन्दर वीर भाव जागा है, इनका हौसला बढ़ना ही चाहिए।"

"होतव्यता होकर ही रहती है। चलो जो दुख झेलना बदा है वह तो झेलना ही पड़ेगा। हम सोंचते थें कि यदि उससे बच जाते तो अच्छा था।" ××× "कुरुक्षेत्र में उन दिनों बड़ा भीषण अकाल पड़ रहा था, दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि सभी जगह प्रजा त्राहि–त्राहि कर रही थी। खेती विहीन उजड़ा भूखण्ड, रूखी काया, फीके कष्ट और चेहरों वाली कंकालवत् कायाएं इधर–उधर डोलती थीं।"[83]

यहाँ मुगल कालीन् वातावरण की इच्छित सृष्टि तुलसी के मुख से करायी गई है। 'खंजन नयन' के प्रारंभ में ही लेखक ने संवाद के माध्यम से तत्कालीन् वातावरण को इच्छित रूप प्रदान किया है–

"मथुरामती जइयो। आज खून की मल्हारें गायी जा रही हैं वां पे।"

"आखिर बात क्या हुई भैयन ?"

"सुल्तान के राज में मार काट के काजे कभी कोऊ बात होत है भला? त्यौहार कौ दिना, हमारी मां–बहन के माथे कौ सिन्दूर आग की लपटो सौं उठ रयौ है चौराए–चौराएं पै....."[84]

3. संवादों का वर्गीकरण–

संवादों में अर्थवत्ता, व्यंजनाभिव्यक्ति, मनोभावों के स्पष्टीकरण, स्वाभाविक प्रवाह, रोचकता और सार्थकता तथा पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कर नागर जी ने अपने उपन्यासों में संवादों का समावेश किया है। इस दृष्टि से उनके संवादों को अति संक्षिप्त, संक्षिप्त और मध्यम विस्तार वाले और दीर्घ तथा नाटकीय, समवेत, एकल अथवा स्वगत संवादों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

क. अति संक्षिप्त संवाद–

छोटे–छोटे शब्दों और वाक्यों की व्यंजना लेखक के अभिव्यक्ति कौशल को प्रकट करती है।

'अमृत और विष' का यह संवाद–

"तुम्हारी शादी हुई है ?"

"अभी नई।"

"किसी मुसलमान लड़की से शादी करोगे ?"

"जब उसकी शोहबत से ही परहेज नहीं तब भला शादी से क्यों इंकार करुंगा ? दिलाते हो कोई उम्दा माल ?"[85]

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण–

रमेश ने पूछा– "तुमने खाना खा लिया ?"

"आपने ?"

"जानती तो हो।"

"तब फिर मेरा भी यही समझ लीजिए।"[86]

नपे–तुले शब्दों में पारस्परिक अनुराग का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है।

ख. संक्षिप्त संवाद–

'सुहाग के नुपूर' में माधवी और कोवलन का निम्नांकित संवाद वातावरण और प्रकृति में मनोभावों के आरोपण द्वारा पात्रों के चरित्रांकन एवं पारस्परिक आन्तरिक प्रगाढ़ता, उल्लास, पीड़ा और प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाला है–

"माधवी सूर्य का तेज आत्मसात् कर जैसे यह संध्या सतरंगी हो रही है, वैसे ही तुम्हें पाकर मेरा आनन्द क्षितिज भी रंग–बिरंगा हो रहा है।"

"कोवलन–हाँऽऽ।.....विष तुमने पिया था माधवी, पर मरा मेरे संस्कारों का देवता! .....यह देखो क्षितिज के उन सिंदूरी बादलों में तुम्हारे विष की ही सांवली पट्टियां पड़ रही हैं।"[87]

"सात घूँधट वाला मुखड़ा' का यह संवाद कितना अभिव्यंजनात्मक है–

"वह चाँद के दाग को देख रहे हो न ?"

"जी हुजूर।"

"इसका दाग तो हर एक को दिखलाई पड़ जाता है, पर क्या तुम यकीन करोगे बरखुरदार, कि दाग सूरज में भी होते हैं। यह राज मुझे बहुत बड़े आलिम ने बतलाया था।"[88]

ग. मध्यम विस्तार वाले संवाद–

'मानस का हंस' का निम्नांकित संवाद इस वर्ग में दृष्टव्य है–

गुरु जी बोले– "हमने सुना है कि तुमने अपनी व्याख्यान कला से पार्थिव और अपार्थिव के बीच में प्रेम रज्जु का लक्ष्मण झूला निर्मित कर दिया है।"

"आप मुझसे ये न कहें। सब कुछ आप ही का प्रसाद है और स्वर्गीय बाबा जी के दिए हुए संस्कार हैं। मैं तो आपका अनुचर मात्र हूं।"

"विश्वेश्वर तुम्हें अपने इष्टदेव के प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ वितरक बनाए। महामृत्युंजय तुम्हारी रक्षा करे। सर्वत्र विजयी हो, सिद्ध हो।"[89]

'नाच्यौ बहुत गोपाल' का निम्नांकित संवाद भी दृष्टव्य है–

"मेरे हाथ का बनाया खाना खा लेंगे ?"

"आसान सवाल है।"

"मेरे साथ एक थाली में खा लेंगे ?"

"अगर आवश्यकता पड़ी तो निःसंकोच।"

"जैसे समाज की लेडियों के साथ कभी पार्टियों में पीते होंगे वैसे मेरे साथ भी पी सकेंगे ?"

"क्यों नहीं।"

"एक गिलास में ?"

"वह उम्र अब बीत गई।"

"मैंने सोंचा शायद हुजूर ने मेहतरानियों से इश्क लड़ाने के लिए ही यह लबादा ओढ़ा हो।"[90]

घ. दीर्घ विस्तार वाले–

नागर जी ने दीर्घ विस्तार वाले संवादों की भी योजना की है किन्तु इन संवादों में स्वाभाविकता, रोचकता और सार्थकता अनवरत बनी रहती है। ऐसे संवाद कथानक के विकास में सहायक ही हुए हैं। सज्जन और चित्रा का निम्नांकित संवाद नारी जीवन की विषमता, पुरूष के स्वार्थ और चित्रा की आन्तरिक पीड़ा व्यक्त करने के लिए सृजित किया गया है। इसमें छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग कर सजीवता उत्पन्न की गयी है–

"अपने भविष्य के बारे में तुम्हारा क्या प्लान है ?"

"जब तक तुम पैसा दोगे, तब तक किसी प्लान की जरूरत नहीं। उसके बाद कोशिश करुंगी कि किसी और से मेरे खाने खर्चे का सिलसिला बंध जाये।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद फिर कोई और नया।"

"लेकिन तुम पुरानी हो जाओगी। तब क्या करोगी ?"

"अपने आखिरी प्रेमी को जहर देकर खुद फाँसी पाने का सपना बरसों से देख रही हूँ।"

"कितनी क्रूर हो तुम। मैं तुमसे नफरत करता हूं।"

"तुम प्रेम ही कब करते थे, जो तुम्हारी नफरत से डरूं ? मुझे किसी से प्रेम मिला ही कब, जो मैं उसकी कद्र करूँ।"[91]

'सुहाग के नूपुर' का यह विस्तृत संवाद माधवी के मन की भड़ास, क्रोधाग्नि, झुंझलाहट और मन की पीड़ा को व्यक्त करता है–

"बन्द कर ये साज–संगीत! तोड़कर फेंक दे इस वीणा को .....और इन निगोड़ें घुँघरुओं को भी कल समुद्र में फेंक आना..... अब इस नगर में सुहाग के नूपुरों की महिमा बढ़ गई है।" ××× "क्यों न बढ़ेगी सुहाग के नूपुरों की महिमा। रूप जीवाएँ भी जब घरेलू स्त्रियों की महिमा गाने लगीं तब.....कोवलन चेट्टियार तो पुरुष हैं.....वे क्यों न लुभा जाएँगे ? उनके घर में तो आज नये–नये सुहाग के नूपुर आए हैं....."

"तू व्यर्थ ही मेरी बातों का बुरा मान गई बिटिया। तूने व्यर्थ ही झूठी आशा बाँधी, अपने–आप को इतना दुःख दिया।..... सदा के लिए यह बात गाँठ में बाँध ले बेटी कि कुलीन पुरुष चाहे कितना भी विलासी हो, अपने घर की स्त्री को कितनी ही घृणा की दृष्टि से क्यों न देखे, परन्तु एक जगह वह उसे हम लोगों से बड़ा मानता है।"

"मैं उस बड़प्पन को चूर–चूर कर देना चाहती हूँ। पुरुष के साथ सात भाँवरे फिर लेने से ही स्त्री को समाज में प्रतिष्ठा का दीवारी स्थान मिले, यह मैं सहन नहीं कर पाती।"

"अब तो तू पागलों–जैसी बातें करने लगी। अरे दुनिया में सदा से सतियाँ भी रही है और वेश्याएँ भी। भगवान् ने जिस योनि में जन्म दिया है उसी का धर्म निभाना चाहिए। हमें घर की औरत को चारदीवारी के अन्दर ही जलाना चाहिए।"

"और आप बीच चौराहे जलना चाहिए, क्यों न ?"

"वेश्या दूसरों को जलाने के लिए जन्म लेती है, आप जलने के लिए नहीं, यह याद रख। जो आप जलती हैं, वह मूर्ख होती है, जैसे वो निगोड़ी चेलम्मा है। बेटी, जलना सच्चे प्रेमियों के ही भाग में लिखा होता है.....प्रेम–नाटक करने वाली का लपटों से भला लगाव ही क्या ?"

"प्रेम का नाटक.....नहीं, मैं कोवलन से स्त्री की तरह प्यार करती हूँ, प्रेम का अधिकार नहीं छोड़ सकती।"[92]

ङ. नाटकीय संवाद–

नाटकीय संवादों से चरित्र की सहज व्याख्या हो जाती है क्योंकि पात्रों के परस्पर संवाद उनकी मनः स्थिति, क्रोध, प्रेम आदि भावनाओं को मुखरित कर देते हैं। कथा को अप्रत्याशित मोड़ देकर अभिव्यक्ति को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए नागर जी ने नाटकी संवादों का समावेश किया है। ऐसे संवाद स्वयं ही अप्रकट घटनाओं को प्रकट कर देते

है। 'एकदा नैमिषारण्ये' का नारद और सोमाहुति का निम्नांकित संवाद, नारद और सोमाहुति की स्वभावगत भिन्नता के साथ–साथ उनकी अन्तरंग मित्रता और गहन आध्यात्मिकता का स्पष्ट संकेत देता है–

"नारद–बुद्धि द्वन्द्व से खिलाना चाहती है मुझे ?"

"भक्त कब द्वन्द्व से रीता है सखे ?"

"सच है, परन्तु एक समय वह निश्चय ही उस स्थिति को पा लेता है, जब उसमें और उसके आराध्य में कोई अन्तर नहीं रहता।"[93]

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' का यह संवाद भी दृष्टव्य है–

"दौलत ही का सवाल तो इस वक्त हमारी मुन्नी को चैन नहीं लेने दे रहा है।"

"क्यों ?"

"ऐसे पूछते हो कि मानो तुम्हें दिल्ली में पता ही न चला होगा।"

"किस बात का ?"

"मेरे सामने ज्यादा बनो मत बशीर मियां ! दिल्ली की लड़ाई का खर्च उठाया किसने ? हमारी बेगम साहिबा ही ने तो। शाही खजाने में तो तांबे का एक टका भी नहीं था। मगर बादशाह का भला करने जाकर मुन्नी ने खुद अपने ही लिए इस वक्त मुसीबत मोल ले ली है।"[94]

च. समवेत संवाद–

नागर जी ने अपने उपन्यासों में ऐसे संवादों का प्रयोग भी किया है जिनमें दो पात्रों से अधिक पात्र भाग लेते है। ऐसे संवादों को ही समवेत संवाद कहा जाता है। इन संवादों का प्रयोग प्रायः वहीं हुआ है जहां लेखक किसी वातावरण या किसी विवाद अथवा किसी विषय पर अपने विचारों को व्यक्त करना चाहता है। ऐसे संवाद भी संक्षिप्त और अत्यन्त दीर्घ संवादों का रूप ले लेते है।

'अमृत और विष' का निम्नांकित संवाद समवेत संवाद होने के साथ–साथ पात्रों के अन्तः बाह्य चरित्र को भी स्पष्ट कर रहा है। पात्रों का बोलने का और उनकी भाषा ही उनका परिचय दे रही है–

लाला रूप चन्द विफर उठे, वाक् संयम कुछ टूटने लगा, बोले– "राजनीतिक सब साले चोट्टे होते हैंगे।"

अग्रवाल जी छूटते ही बोले– "जी हां, धरम के नाम पे पब्लिक को भड़का के माल हड़पने वाले साहूकार बड़े ईमानदार होते हैं।"

"और तुम नहीं हो साहूकार के बेटे, तुम्हारे समधी राधारमन नई हैं क्या ? तुम्हाएं जन संघ में–"

एक अन्य व्यक्ति– "अरे हाँ–हाँ रूपचन्द्र जी, भगवान ने बहुत दै दिया आपको। समझ– लीजिए कि ये नयी सड़क भी आपके घर तक लक्ष्मी लाने के वास्ते ही बन रही है।"

ब्रज किशोर– "और नहीं तो क्या, इन्होंने सड़क की योजना ही अपने लिए बनवायी। हरी किशन दास साथ थे, मेयर, डिण्टी मेयर–"

"तो तुम क्यों जलते हो ब्रिज किशोर, अरे मेरी तो ऐसी कोई खास रिश्तेदारी भी नहीं, औ तुम्हारे तो सगे जीजा है हरी किशन दास। क्यों नहीं मिला लिया तुमने ? मैं–मैं सब जानता हूँ, ये जलन इस बात की है आप लोगो को, कि सड़क की योजना मैंने बनवाई है।"

"रुप्पन, तबेले में लतिहाउज अच्छी नहीं। अब तुम बच्चे नहीं हौगे, पचासा पार कर गए। किससे–किससे लड़ाई मोल लेओगे ? बनिये का बेटा, हमाए बाप कहा करते थे कि जो सबर छोड़ै तो बसर छोड़ै। जहां तक बन पड़ा, तुमको भगवान ने जित्ता दिया हैगा, उत्ता लै लेओ। बाकी सबर करौ।"[95]

'बूँद और समुद्र' का एक उदाहरण भी इस वर्ग में दृष्टव्य है। इसमें नागर जी ने ईश्वर सम्बन्धी विचारों को पात्रों के माध्यम से विस्तृत संवाद के रूप में समावेशित किया है–

बाबा राम जी दास बोले– "इस समय वैसा ही समुद्र मंथन हुइ रहा है, जैसा कि पुराणों में लिखा है। **दैवी और आसुरी विचार धारा मन समुद्र को मथ** रही है। जो अनुभव हैं, वही रत्न हैं। भावना ही अमृत है। और विष भी है। वही लक्ष्मी है रंभा भी। मन ही उच्चैश्रवा घोड़े के समान आत्मा की अति चंचल सवारी है। और वही ऐरावत हाथी के समान गुरु गंभीर सवारी भी है। आत्मा ही ब्रिम्हा, विष्णु, महेश है। ब्रिम्हा के रूप में वह अनुभव की सृष्टि करता है, विष्णु के रूप में अपनी सृष्टि की श्री को ग्रिहण करता है और शिव के रूप में निस्काम जोगी बन सर्जन और पालन के अहंकार का नाश करता है। तथा सृष्टि और उसकी श्री को सदा एक रूप बनाकर अपने में लय किए रहता है। सो हम तो आत्मा के शिव रूप में स्रिद्धा रखते हैं राम जी, हमारा ये अटल विस्वास है कि इस मन मंथन से विज्ञान के जो अनुपम रत्न निकल रहे हैं, मानवतावाद के व्यापक प्रचार हुइ के चेतना का जो अमृत निकलेगा वह समस्त लोक को मिलेगा। और जौन ये स्वार्थपरता, अनाचार का कालकूट निकल रहा है तौन नील कंठ परम सेवक हैं, वो अपनी ड्यूटी बजाने से कभी नहीं चूकते।"

महिपाल ने प्रश्न किया– "आपने शिव का साक्षात्कार किया है ? किसी ने किया हो तो वैज्ञानिक रूप में सिद्ध करे। ये अंट–संट अन्ध विश्वास नये युग में नही चलेगा। भारत इन खोखले आध्यात्मिक प्रतीकों से हजारों साल तक ठगा जा चुका है। नया युग ईश्वर रूपी असत्य को सदा के लिए जड़ मूल से उखाड़ फेंकेगा। ईश्वर, ईश्वर, ईश्वर। ×× ईश्वर है क्या कोरा भय। और उसकी माया है घोर अंधकार। ईश्वर के चरणों में लुक छिपकर जान बचाने वाली वृत्ति और उसके कुसंस्कारों से जकड़कर ही जन जीवन आज तक अविकसित रह गया। पंगु अहंकार

ने अपने अविकास को भी ईश्वरीय मर्यादा देकर सुशोभित और सुसज्जित किया। धर्म–कर्म, दुनियादारी, आबरू–लोकलाज, जग–हँसाई आदि खुराफात मान्यताओं को इसी साले ईश्वर और धर्म के नाम पर समाज में प्रतिष्ठित किया गया है। लुक छिपकर चाहे जो करो, पैसे वाले हो तो चाहे जो पाप करो, बस दुनियादारी निबाह लो। आबरू, लोक लाज और जग हँसाई की ओर से अपनी किले बंदी रखो। बेईमान ससरे। ईश्वर पूँजी पतियों का सबसे बड़ा सहायक और ढकोसला है। इसके नाम पर मनुष्य आज तक गुलाम बनाकर रखा गया है।''

सज्जन ने कहा– ''ईश्वर क्या है ? यह तो नहीं जानता लेकिन मनोवैज्ञानिक पहलू से यह जरूर सोचता हूँ कि इंसान के स्वभाव की गढ़न में ईश्वर भीरुता का बीज किसी न किसी अंश तक उसके **इंसटिंक्ट** को सही तौर पर गाइड किया करता है।''

नागर– ''बहुत से ऐसे हैं, जो गुलामी की भावना को या किसी भी प्रकार के भय को ईश्वर मानने से इंकार करते हैं। अलक्षित परमशक्ति की ओर से एक बार नाता जुड़ जाने पर इंसान के मन में ज्ञानार्जन की वृत्ति अपने आप खुलकर काम करने लगती है। मैं ईश्वर और ज्ञान में कोई भेद नहीं मानता हूँ।''[96]

छः– एकल अथवा स्वगत संवाद–

कुछ समीक्षको ने नागर जी के उपन्यासों में पात्रों के स्वगत कथन, चिंतन और अन्य मनोभावों के उद्‌घाटन में भी संवादों के एक रूप की गणना की है। वास्तव में यह पद्धति तो मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन प्रणाली ही है, फिर भी 'नाच्यौ बहुत गोपाल', 'मानस का हंस', 'सुहाग के नूपुरं' और 'शतरंज क मोहरे' तथा 'खंजन नयन' के कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिनमें स्वगत चिन्तन से पात्रों की व्यथा, दीनता, अन्तर्द्वन्द्व और अन्तः संघर्ष की अभिव्यक्ति होती है। 'खंजन नयन' में तो उपन्यास कार ने सूर के आत्म मंथन के रूप में मन और मस्तिष्क से जोड़कर दो पात्रों सूर– और श्याम का सृजन कर संवाद का रूप दे दिया है–

सूरज का मन उलट–पलट होने लगा। श्याम मन ने पूछा–

''यह क्या तुमने अच्छा किया सूरज ?''

''बुरा क्या किया ?''

''झूठ बोले।''

''लेकिन भोले ने कहा था कि सच था।''

''संयोग से सच निकला, पर तुम तो झूठ बोले थे।''

''यह पानी के ऊपर तैरते हुए तैल सा झूठ नहीं था श्याम। उपकार के दूध में थोड़े से पानी की मिलावट भी थी।''

''और जो तुम्हारा यह झूठ किसी की मृत्यु का कारण बन गया ? तब कौन पाप का भागीदार होगा ?''

''भोले मुझे विश्वास दिला गया है।''

''विषयी, लोभी और निर्बुद्धि व्यक्ति का विश्वास ? सूरज तेरी भीतर वाली भी फूटी हुई है।''[97]

संवाद शिल्प का अनुशीलन

पात्रों के संवाद कथा को सहज रूप से गतिमय बनाते है। सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत पात्रों के वार्तालाप से उपन्यास का सम्पूर्ण परिवेश क्रियाशील हो उठता है। सजीव, हास्य व्यंग्य पूर्ण और प्रत्युत्पन्न मति संवाद पात्रों की मानसिकता चित्रित करने के साथ ही साथ पाठकों को भी आकर्षित करते हैं। मध्यवर्गीय और अशिक्षित पात्रों के संवाद उनकी भाषा और स्तर के अनुरूप उनके चरित्रांकन में सहायक होते है।

'बूँद और समुद्र' के सवांद पात्रों की मनःस्थिति के अनुसार उतार–चढ़ाव से युक्त हैं। परिस्थिति परिवर्तन होने पर एक ही पात्र अलग–अलग ढंग से वार्तालाप करता हुआ दिखलाई पड़ता है। आवश्यकतानुसार समाज के शिक्षित वर्ग के बीच वह साहित्यिक, खड़ी बोली और यत्र–तत्र गम्भीर दार्शनिक शैली में संवाद करता है और घर में अथवा अशिक्षित लोगों के बीच में वह उन्हीं के बीच बोले जाने वाली साधारण बोल–चाल की बात करता है। अंचल विशेष में निवास करने वाला पात्र अपने संवादों में आंचलिक शब्दों का ही प्रयोग करता है, कहीं–कहीं लखनऊ नगर की ही ग्रामीण और नगरीय भाषा का मिश्रित प्रयोग किया गया है। वस्तुतः इस उपन्यास के संवाद मनोवैज्ञानिक और नाटकीय है, संवादों की भाषा पात्रों के अनुरूप सरस, मनोरंजक, हास्य–व्यंग्य, चिंतन प्रधान, सरल एवं सरस है। संवादों में अंग्रेजी, उर्दू और संस्कृत भाषाओं का प्रयोग भी पात्रांनुकूल ही किया गया है।

'शतरंज के मोहरे' के संवाद भी पात्रों की मनः स्थिति और उनके अन्तर्द्वन्द्व को रूपायित करने के साथ–साथ वातावरण की सृष्टि करने और कथा को गतिशील बनाए रखने में पूर्ण रूपेण समर्थ है। इसके संवादों में मार्मिता, स्वाभाविकता, सहजता विद्यमान है। संवादों का समावेश पात्रानुकूल भाषा में ही किया गया है।

'अमृत और विष' के संवाद अत्यन्त सटीक और संक्षिप्त हैं। पात्र, वातावरण एवं प्रसंगानुसार उपयुक्त एवं स्वाभाविक ढंग से संवादों का प्रयोग किया गया है। कथानक और पात्रों से सम्बद्धता बनी ही रहती है। भाषा कहीं साहित्यिक है कहीं संस्कृतनिष्ठ है, कहीं अग्रेंजी मिश्रित है और कहीं सरल बोल–चाल की है। कहने का तात्पर्य है कि संवादों में पात्रानुकूल ही, भाषा का प्रयोग किया गया है। नाटकीयता का समावेश और कथा का रसात्मक और स्वाभाविक रूप इसके संवादों की विशेषता है।

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' का संवाद शिल्प आकर्षक पात्रों की मनः स्थिति तथा उनके क्रिया–कलापों और घटनाओं को उद्घाटित करता है।

'एकदा नैमिषारण्ये' के संवाद, पौराणिक भाषा लिए हुए साहित्यिक और संस्कृतनिष्ठ भाषा से युक्त है। नारद एवं सोमाहुति जैसे पात्रों के संवाद दार्शनिक एवं काव्यात्मक लालित्यपूर्ण भाषा से ओत–प्रोत हैं। इस उपन्यास के पात्र उपनिषद तन्त्र–मन्त्र तथा ज्योतिष के उद्‌भट विद्वान हैं। अतः उनके संवादों की भाषा गम्भीर और दार्शनिक चिन्तन से युक्त है, विचार–विमर्श और चिन्तन की स्थिति में विद्वान पात्रों के संवाद तर्क पूर्ण एंव गम्भीर भाषा से युक्त हैं। इस उपन्यास के संवाद कथा विकास, चरित्र प्रकाशन, वातावरण की सृष्टि, कथा का विकास एवं लेखक के उद्‌देश्य की पूर्ति करने में पूर्णतः समर्थ हैं। नाटकीयता का समावेश और प्रसंगानुसार दीर्घ संवादों का प्रयोग भी है। स्वगत तथा स्मृति चिन्तन का संवाद–शिल्प भी प्रशंसनीय है। सौति एवं नारद के संवाद प्रश्नोत्तर शैली में है। उपन्यास के विद्वान पात्रों के संवाद तर्क सम्मत एवं विद्वतापूर्ण हैं।

'मानस का हंस' का संवाद–शिल्प कथ्य को तो सम्प्रेषित ही करता है, साथ ही पात्रों के अन्तः चरित्र को उद्‌घाटित करने में भी पूर्णतः समर्थ है। उपन्यास के संवाद पात्र और पारिस्थिति के अनुकूल हैं और कथानक के विकास में स्वाभाविक रूप में सहायक हैं। संवादों के सभी गुणों का इनमें सन्निवेश है। कहीं–कहीं संक्षिप्त और अत्यन्त दीर्घ संवादों का भी प्रयोग मिलता है। स्वगत संवाद तो स्थान–स्थान पर मिल जाते हैं, यद्यपि ऐंसे कथन अत्यन्त दीर्घ है फिर भी अरुचिकर नहीं है। इस उपन्यास के संवादों की संक्षिप्तता पात्रों की मनःस्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में पूर्णतः समर्थ है। संवादों की भाषा पात्रानुकूल, सरल सरस, गहन अनुभूतियों को साकार करने में समर्थ एवं नाटकीय है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' का संवाद शिल्प विभिन्न रंगों से युक्त है। श्री अंशुधर शर्मा और निर्गुनियां के इण्टरव्यू प्रसंग में उपन्यास का सवांद शिल्प वास्तव में अपनी विशिष्टता से पाठकों को आकर्षित करता है। इसके संवाद पात्रों की मनःस्थिति, वातावरण, भावाभिव्यक्ति एवं चरित्रांकन की दृष्टि से अद्वितीय हैं। संवादों में सहज, पात्रानुकूल और बोल–चाल की भाषा सर्वत्र प्राप्त होती है। उपन्यास में निर्गुनियां की विवशता और व्याकुलता और उसके सुख–दुःमय जीवन के गहरी रेखा खींचने में संवाद पूर्णतः समर्थ हुए हैं। स्वगत कथन की दृष्टि से भी इस उपन्यास के कथन संवेदनशीलता और अन्तरद्वन्द्व को चित्रित करने में समर्थ हुए हैं।

'सुहाग के नूपुर' में संवादों के सभी प्रकार–संक्षिप्त, दीर्घ, समवेत और नाटकीय आदि तथा स्वगत कथन सहज रूप से प्राप्य हैं। पात्रों के जीवन के उतार–चढ़ाव, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व, प्रेम, ईर्ष्या–द्वेष, क्रोध आदि को उद्‌घाटित करने वाले संवाद आवश्यकता और प्रसंगानुसार आकर्षण के केन्द्र बिन्दु बनकर पाठकों को अपनी ओर स्वाभाविक रूप से आकर्षित करते हैं। संवादों की भाषा पात्रानुकूल, गभीर और सारगर्भित है।

'खंजन नयन' के संवाद भी, संवादों के गुणों–सम्बद्धता, उपयुक्तता, संक्षिप्तता, अनुकूलता, स्वाभाविकता और उद्‌देश्य पूर्णता आदि से पूर्णतः युक्त हैं। इसके संवाद कथानक का विकास करने, पात्रों की व्याख्या करने, लेखक को उद्‌देश्य को स्पष्ट करने तथा इच्छित वातावरण की

सृष्टि करने में सर्वथा समर्थ हैं। संवादों की भाषा पात्रों के अनुकूल ब्रज, ठेठ ग्रामीण, अवधी और साहित्यिक तथा दार्शनिक है। संवादो के वर्गीकरण की दृष्टि से सभी वर्ग के संवाद उपन्यास में यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं।

निष्कर्ष

उपन्यास में संवादों का समावेश, उपन्यास की सफलता में चार चाँद लगाते है। कथानक के विकास, पात्रों के चरित्रांकन, परिस्थितियों के चित्रण और उद्देश्य की कलात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से नागर जी के सभी उपन्यास सफल सिद्ध हुए है। संवाद कथानक के विकास में सहायक हैं और भरती के संवाद कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होते। नागर जी के उपन्यासों में विविध वर्ग के अनगिनत प्रकार के पात्र है, फिर भी संवादों में उनकी भाषा, उनके विचारों और मानसिक स्तर के अनुसार ही संवादों का सृजन–शिल्प वास्तव में प्रशंसनीय है। संवाद शिल्प की विशेषता के रूप में नागर जी का अभिव्यंजना पूर्ण संवाद सृजन अद्वितीय है। नाटकीय संवादों में उनकी अभिव्यक्ति का प्रभाव स्वतः परिलच्छित होता है।

संक्षेप में नागर जी के उपन्यासों का संवाद शिल्प प्रचलित मान्यताओं को आदर देते हुए भी सर्वथा नूतन और मौलिक उद्भावनाओं से परिपूर्ण है। नागर जी का संवाद शिल्प पात्रों के चरित्र प्रकाशन के अनुकूल है और निजीपन से परिपूर्ण है।

निष्कर्षतः डॉ0 सुदेशबत्रा के शब्दों में– ''कहने की आवश्यकता नहीं कि नागर जी के उपन्यासों का संवाद–शिल्प उपन्यासों को गत्वर और नाटकीय बना गया है। यही कारण है कि नागर जी के उपन्यासों में संवादों का निखरा हुआ रूप तो मिलता ही है, वे सशक्त, सम्बद्ध, उद्देश्य पूर्ण, नाटकीय, ध्वन्यात्मक और प्रभावी बन पड़े है। लेखक के मन्तव्यों के हर रंग को इनके पात्रों के वार्तालाप ने मूर्त किया है।''[98]

संकेत संदर्भ–

1. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–91
2. अमृत और विष (छठा संस्करण)। पृष्ठ–66
3. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–291
4. सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–46
5. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–37
6. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–27
7. खंजन नयन। पृष्ठ–10
8. मानस का हंस। पृष्ठ–118
9. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–11–13
10. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–101–102
11. मानस का हंस। पृष्ठ–129
12. अमृत और विष, (छठा संस्करण)। पृष्ठ–269
13. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–62
14. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–53–54
15. सात धूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–84
16. खंजन नयन। पृष्ठ–81
17. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–22–23
18. बूँद और समुद। पृष्ठ–93
19. अमृत और विष, (छठा संस्करण)। पृष्ठ–159
20. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–100–101
21. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–252
22. सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–83
23. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–310
24. मानस का हंस। पृष्ठ–154
25. खंजन नयन। पृष्ठ–14
26. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–133
27. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–142
28. अमृत और विष, (छठा संस्करण)। पृष्ठ–264
29. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–46
30. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–91–92
31. सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–26–27

32.	मानस का हंस।	पृष्ठ–192
33.	खंजन नयन।	पृष्ठ–190
34.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–99
35.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–310
36.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–153
37.	अमृत और विष, (छठा संस्करण)।	पृष्ठ–265–266
38.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–21
39.	मानस का हंस।	पृष्ठ–115
40.	खंजन नयन।	पृष्ठ–14
41.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–49
42.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–272–273
43.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–211
44.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–52–53
45.	नाच्यौ बहुत गोपाल।	पृष्ठ–151
46.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–127–128
47.	अमृत और विष, (छठा संस्करण)।	पृष्ठ–301
48.	मानस का हंस।	पृष्ठ–355
49.	खंजन नयन।	पृष्ठ–192–193
50.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–27
51.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–195
52.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–18
53.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–156–157
54.	अमृत और विष, (छठा संस्करण)।	पृष्ठ–64–65
55.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–14
56.	नाच्यौ बहुत गोपाल।	पृष्ठ–26
57.	मानस का हंस।	पृष्ठ–213
58.	खंजन नयन।	पृष्ठ–15
59.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–42
60.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–101
61.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–10
62.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–54
63.	अमृत और विष (छठा संस्करण)।	पृष्ठ–206

64.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–20
65.	नाच्यौ बहुत गोपाल।	पृष्ठ–86
66.	मानस का हंस।	पृष्ठ–174
67.	खंजन नयन।	पृष्ठ–86
68.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–50
69.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–551
70.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–91
71.	अमृत और विष (छठा संस्करण)।	पृष्ठ–285–286
72.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–156
73.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–267
74.	नाच्यौ बहुत गोपाल।	पृष्ठ–343
75.	मानस का हंस।	पृष्ठ–235–236
76.	खंजन नयन।	पृष्ठ–198
77.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–571–572
78.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–97–98
79.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–121
80.	अमृत और विष (छठा संस्करण)।	पृष्ठ–167–168
81.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–102
82.	नाच्यौ बहुत गोपाल।	पृष्ठ–338
83.	मानस का हंस।	पृष्ठ–164–165
84.	खंजन नयन।	पृष्ठ–09
85.	अमृत और विष (छठा संस्करण)।	पृष्ठ–378
86.	,, ,, ,, ,,	पृष्ठ–86
87.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–149
88.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–98
89.	मानस का हंस।	पृष्ठ–117
90.	नाच्यौ बहुत गोपाल।	पृष्ठ–16–17
91.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–354
92.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–90–91–92
93.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–392
94.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–146
95.	अमृत और विष (छठा संस्करण)।	पृष्ठ–367

96. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–245–246

97. खंजन नयन। पृष्ठ–29

98. अमृतलाल नागर के उपन्यासः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–317

अध्याय–आठ

1. देशकाल–परिवेश–प्रस्तुतीकरण–शिल्प।

   (क) प्राकृतिक परिवेश।

   (ख) राजनैतिक परिवेश।

   (ग) सामाजिक परिवेश।

   (घ) ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवेश।

2. अमृतलाल नागर के उपन्यासों में कालगत धारणा।

   (क) काल का स्वरूप।

   (ख) काल के विभिन्न आयाम।

   (ग) काल का प्रस्तुतीकरण–शिल्प।

   निष्कर्ष।

देशकाल–परिवेश–प्रस्तुतीकरण शिल्प

उपन्यास की विविध घटनाओं, उनके विविध पात्रों तथा उनके क्रिया कलापों और विभिन्न परिस्थितियों में उनकी प्रतिक्रियाओं को एक पाठक तब संभावित या किसी सीमा तक यथार्थ समझता है, जब वह देखे कि उसकी पृष्ठ भूमि किस सीमा तक देशकाल का सही वातावरण और लेखा–जोखा प्रस्तुत करती है। यह तथ्य उपन्यास के कथानक तथा पात्रों दोनों के लिए समान रूप से सीमाएँ निर्धारित करता है, जिनका अतिक्रमण करने से कृति असत्य बन जाने का भय रहता है। यदि उपन्यासकार देश काल का बन्धन नहीं मानेगा तो उसकी कृति में किसी युग की सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण मिलना संभव नहीं होगा। देशकाल के अन्तर्गत किसी भी देश या समाज की सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों, रहन–सहन, आचार–विचार, रीति–रिवाज, परंपराएँ, कुरीतियाँ या विशेषताएँ आदि का चित्रण किया जाता है।

वातावरण की सृष्टि उपन्यास को स्वाभाविक और सजीव रूप प्रदान करती है। वस्तु को, धार्मिक, एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यानुसार रूपायन हेतु पृष्ठभूमि को ऐसे रंगों से भरा जाता है कि जिन्हें देखते ही वस्तुफलक अपना आभास दे दे। उपन्यासकार का कौशल प्रस्तुत युग का सजीव परिप्रेक्ष्य उपस्थित कर देता है। परिवेशीय सौष्ठव स्थान और समय की उपयुक्तता का आकांक्षी होता है। देशकाल का चित्रण ऐतिहासिक उपन्यासों की वस्तु को सापेक्षता और सामाजिक उपन्यासों को स्थानीय रंगत दे जाता है। पात्रों की वेशभूषा, भाषा एवं घटनाओं का चित्रण रंगत से साम्य रखता है। देश काल के औचित्य के संबंध में **डॉ0 गुलाब राय ने लिखा है–** "देशकाल के चित्रण में सदा इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे स्वयं साध्य न बन जाए। जहाँ देश काल का वर्णन अनुपात से बढ़ जाता है, वहां उससे जी ऊबने लगता है। लोग जल्दी–जल्दी पन्ने पलट कर कथा सूत्र को ढूढ़ने लग जाते हैं। देशकाल का वर्णन कथानक को स्पष्टता देने के लिए होना चाहिए न कि उसकी गति में बाधा डालने के लिए।.....देशकाल वातावरण का बाहरी रूप है, वैसा ही यह काम करने लग जाता है। प्राकृतिक चित्रण भी उद्दीपन, रूप में पात्रों की मानसिक स्थिति या मूड को निश्चित करने में सहायक होते हैं। प्रकृति और पात्रों की मानसिक स्थिति का सामंजस्य पाठक पर अच्छा प्रभाव डालता है और उपन्यास में काव्यत्व ले आता है, जैसे किसी के मरते समय दीपक का बुझ जाना, सूर्य का अस्त हो जाना अथवा घड़ी का बन्द हो जाना वातावरण में अनुकूलता उत्पन्न कर शब्दों को एक विशेष शक्ति प्रदान कर देता है।"[1]

अमृतलाल नागर के समस्त उपन्यासों में परिवेश, बिम्बों में बँधा हुआ है। इसके लिए प्रतीकात्मक, भाषात्मक और चित्रोपम कलाओं का आश्रय लिया गया है। यही कारण है कि नागर जी का परिवेश–विम्बीकरण शिल्प अतिरिक्त प्रभाव छोड़ता है। नागर जी के उपन्यासों में लखनऊ की सभ्यता, संस्कृति, स्थानीयता के गाढे रंगों ने, उन्हें आंचलिक बना दिया है किन्तु वास्तव में नागर जी आंचलिक उपन्यासकार नहीं कहे जा सकते। नागर जी के अधिकांश उपन्यास सामाजिक हैं और ऐतिहासिक उपन्यासों में मुगुल शासकों की समकालीन सभ्यता और संस्कृति का चित्रण है। परिवेश प्रस्तुतीकरण, नागर जी के उपन्यासों में निम्नांकित स्थितियों के अनुसार प्राप्त होता है:–

(1) प्राकृतिक परिवेश (2) राजनैतिक परिवेश (3) सामाजिक परिवेश (4) ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवेश। सर्वप्रथम नागर जी के उपन्यासों में प्राकृतिक परिवेश का अनुशीलन किया जा रहा है।

(क) प्राकृतिक परिवेश : प्राकृतिक परिवेश से तात्पर्य है, पात्रों, स्थान, वातावरण और घटनाओं आदि को प्रकृति के उपादानों के सहयोग से सचित्र उपस्थित करना।

बूँद और समुद्र

छोटे–छोटे व्यंजक व्यौरों के द्वारा वातावरण के चित्रण में नागर जी अद्वितीय हैं। इनके कला नैपुण्य का संस्पर्श पाकर गलियाँ बोल उठती हैं, मुहल्ले जाग उठते हैं। पुरानी हवेली, पीपल का पेड़, उसके नीचे का चबूतरा, नदी का किनारा आदि अनेक स्थान प्राकृतिक परिवेश पाकर हमारे मानस पटल पर चित्रित हो उठते हैं। 'बूँद और समुद्र' का यह वर्णन दृष्टव्य है :– "कटी–फटी पतंगो, मकड़ी के जालों, घोसलों, चिड़ियों, गिलहरियों और पीपल के दानों से लदा अनगिनत इन्सानों के चंचल मन समूह सा हरहराता हुआ घना पीपल कई सदियों से मुहल्ले का साथी है। आज के बड़े बूढ़ों के बचपन तक यह पेड़, गंगे भूरिये के भाड़ का पीपल कहलाता था। मगर वह दीवाल जो किसी समय गंगे भूरिये का वैभव थी अब बाबू छेदालाल इंश्योरेंस– ऐजेंट की मिल्कियत है। म्यूनिस पैलिटी के रजिस्टर के अनुसार उस मकान का नम्बर इस समय 420 है जो सही तौर पर बाबू छेदालाल की ख्याति में चार चाँद लगाता है।"[2]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के नगरों की गन्दगी का चित्रण भी प्राकृतिक परिवेश में अलंकृत भाषा में दृष्टव्य है। यह परिवेश चित्रण उपन्यास के प्रारम्भ में ही उपन्यास की विषय वस्तु का परिचायक भी है:– "पवित्रता और आत्मा की सफाई का बड़ा दम भरने वाले भारत वासियों की गंदगी और फूहड़पन, जगह–जगह कूड़े के ढ़ेर बनकर सदा की तरह चमक रहा है। घर का कूड़ा निकाल कर गली में छितराना, दो मंजिले से छोटे बच्चों के पाखाने की पोटली बनाकर गली में फेंकना आदि सांस्कृतिक कार्य नित्य के नियम से प्रारंभ हो चुका है। आज की विशेषता के तौर पर नल के पास वाला नाला भी भीतर से घुट जाने के कारण टूटे मेन होल से

उबलकर गली की सतह पर अनेक टेढ़ी–मेढ़ी धाराओं में बहता हुआ, गली को बदबू से सड़ाकर लोगों को स्वराज की निंदा करने के लिए नया बहाना दे रहा है।''[3] इस चाक्षुष बिम्ब के माध्यम से उपन्यासकार ने यह स्पष्ट संकेत दिया है कि स्वराज़ से जनता संतुष्ट नहीं है।

इसी प्रकार उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र 'ताई' के व्यक्तित्व के मूल्यांकन हेतु भी लेखक ने प्रकृति के उपादानों का ही आश्रय लेते हुए प्राकृतिक परिवेश का चाक्षुष बिम्ब खड़ा कर दिया है:– ''उभरी हुई हड्डियों वाले चेहरे पर कड़ी–कड़ी रेखाएँ और सिकुड़ने उसी तरह गंदी और मनहूस लगती हैं जैसे गली की सतह पर अनेक टेढ़ी–मेढ़ी धाराओं में अन्दर की घुटन से उबल कर बहता हुआ नाले का पानी।''[4] यहाँ ताई स्थानीय रंगत से साम्य रख रही है।

स्थान और समय की उपयुक्तता से पूर्ण प्राकृतिक परिवेश के अन्य उदाहरण भी चाक्षुष बिम्ब का चित्र उपस्थित कर रहे हैं। नागर जी की अपनी भाषा और अप्रस्तुत विधान इसमें चार चाँद लगा रहा है– ''कुप्पी–दिये, लम्प, लालटेन और बिजली के सम्मिलित प्रकाश में टिमटिमाती हुई सैकड़ों सदियों के इतिहास की जीती जागती रिसर्ज सामग्री सी फैली हुई, गलियों में गुजरते हुए राजा बहादुर के मन में परिचय–अपरिचय के मिश्रभाव आ जा रहे थे।''[5] स्थानीय प्राकृतिक परिवेश के साथ राजा बहादुर का आन्तरिक चित्रण भी झलक दे जाता है।

ताई के मकान का वर्णन प्राकृतिक परिवेश में संगुंफित चित्र आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है– ''सीलन भरी दहलीज, छोटा सा दालान, सामने आँगन में लाल टेन और कुछ चीजें रखी हैं, दाहिनी तरफ के दालान में चूल्हे की लपट, निगाहों को खींचती है।''[6] प्राकृतिक परिवेश में कितना मनोमुग्धकारी प्राकृतिक वर्णन– ''फागुन की रात आयी। सरोवर के किनारे बसे फूलों की सुगंधिभार से लदे मदमाते विरवों ने चाँद को अपनी गुइयाँ के साथ घर आने का न्यौता दिया हवा वसंत को बहालाई। अबोलों की नृत्य भरी चंचलता सोमरस के धनुष पर पैने शरों की तरह दशों दिशाओं को बेधने लगी। बाँहों से बाहें जकड़ कर पुरुष की शक्ति और नारी के सिंगार में दान की होड़ लग गई। धरती पर संगीत ने जन्म पाया।''[7]

सिनेमा हाल में विरहेश और बड़ी के अदृश्य खेल को भी नागर जी देख लेते हैं। हाल में अँधेरा होते ही विरहेश का चेस्टर कुछ इस तरह सँभला कि उसका थोड़ा सा भाग बड़ी के बाएँ घुटने पर भी पड़ गया। चेस्टर के नीचे सुरंग बनाकर विरहेश का दाहिना हाथ बड़ी के घुटने तक पहुँचा। बड़ी का बांया हाथ धीरे–धीरे सरक कर मना करने गया तो गिरफ्तार हो गया, उँगलियों की हाँ ना चलने लगी।''[8] कितना भी अँधेरा हो, सुरंग हो, दृश्य तो सजीव होकर चक्षुओं के समक्ष नाच उठता है। साथ ही बड़ी और विरहेश के चरित्र को स्पष्ट करता है।

वर्णनों को स्थानीय रंग देने वाले प्राकृतिक परिवेश पूर्ण यह 'रात' और बाजार के दृश्यांकन स्थानीय स्थिति को भी व्यक्त कर रहे हैं– ''नये साल के नये दिन की रात इस तरह जगमगा रही है, मानो कोई सताई हुई वेश्या अपने मन की पीड़ा को मन ही में कसकर पेट के

ग्राहकों को रिझाने की खातिर पूरे साज सिंगार के साथ अपने छज्जे पर बैठी हो। ××"बाजार उन आबरूदार लोगों के घरों की तरह की चहल–पहल और रौनक से भरा है जिनमें कर्ज लेकर शादी जनेऊ आदि जीवन के उत्सव मनाए जा रहे हैं, जहाँ ऊपरी तड़क–भड़क, हँसी–खुशी और कह कहों के अन्दर चिन्ता धू–धू कर जल रही है। ×× चौराहों के चारों ओर बसें, मोटरें, ताँगे, इक्के, रिक्शे, साइकिलें और पैदल भीड़ अनवरत क्रम में बँधी हुई इस तरह गतिमान है जैसे किसी दिवालिए सेठ की मिल चल रही हो।"[9] भीतरी सामाजिक दशा का चित्रण प्राकृतिक परिवेश का आश्रय लेकर निखर उठा है।

अमृत और विष

'अमृत और विष' में बाढ़ का दृश्य पाठक के मानस पटल पर उसकी यथार्थ स्थिति को स्पष्ट कर देता है। यह बाढ़ प्राकृतिक है और इस अवसर पर उपन्यास का नायक 'रमेश' जिस प्रकार बाढ़ ग्रस्त लोगों की सुरक्षा और सेवा में, अपने प्राणों की बाजी लगाकर, तत्पर है, उसके चरित्र विश्लेषण में सहायक है– "नदी के नैसर्गिक रूप से बढ़ आए हुए किनारों पर पब्लिक का मजमा सबेरे से जुट गया था। डालीगंज वाले रेल के पुल पर, आर पार तक भीड़ लगाकर उसके थरथराते हुए खंभों पर अस्थिरता की सन सनाहट लिए हुए, भी सैकड़ों लोग दिन भर खड़े रहते थे। पुल के कुछ ही नीचे पानी का हड़कंपीनाद ऐसा लगता था मानो कोई विकराल दैत्य भरपेट भोजन करने के बाद संतुष्टि की डकारें ले रहा हो।"[10]

पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन में नागरजी अप्रस्तुत वातावरण को प्राकृतिक परिवेश में संपृक्त करते हुए इतने कौशल के साथ कार्य लेते हैं कि बस पाठक तुरन्त उस ओर आकर्षित हो जाता है। 'अमृत और विष' में 'लच्छू' की मानसिक स्थिति का चरित्रांकन देखिए– "बिना पेट्रोल की पंचर पहियों वाली मोटर की तरह लच्छू अपने कमरे में निकम्मा पड़ा था। भम्भड़ भरे व्याह–कारज के बाद जैसे हिसाब–किताब की विधि मिलायी जाती है, उसी तरह गहरी उदासी के **रेगिस्तान** में रह–रहकर उसका ध्यान अपने पीछे छोड़े हुए पद–चिन्हों पर जाता था। आज **सुबह** से यही दशा है, जी में अपने आप ही रह रहकर **घनघोर** घुटन एक अदृश्य बिन्दु से फैलते–फैलते पूरे तन–मन–बुद्धि सभी पर **घटाटोप** बनकर **छा जाती** है और फिर अनबूझी पीड़ा **बरसती**, जो समझ की सतह पर लाने का प्रयत्न करते ही अपनी असफलता के रूप में स्पष्ट उभर आती है।"[11]

सुहाग के नूपुर

'सुहाग के नूपुर' में कावेरी नदी की बाढ़ का वर्णन उसकी भयंकरता का बोध कराता है: "पानी बढ़ता ही जा रहा था। बड़े–बड़े तोरणों के बीच से गिरी हुई हवेलियों के बीच से पानी पागल सा दौड़ रहा था। दौड़ती धाराओं के लिये गिरी हुई हवेलियाँ और घिरी हुई गलियाँ

भूल–भुलैया सी बन गईं थीं। पानी उनमें पागल सा चक्कर काट रहा था। जगह–जगह भयंकर भँवरें पड़ रहीं थीं। पानी उठ रहा था। खड़ी हवेलियों में मोरियों और द्वारों के संदो से पानी भरता चला जा रहा था।''[12]

दक्षिण भारत के सुदूर अतीत व समाज एवं वहाँ की संस्कृति का चित्रण 'सुहाग के नूपुर' में चित्रित है। उपन्यास का प्रारम्भिक वातावरण उस काल की स्थिति का बोध कराता है। प्रकृति के माध्यम से वातावरण का चित्रण कितना सजीव और आकर्षक बन बड़ा है– ''ब्राह्म मुहूर्त में ही कावेरी पट्टणम के नौका घाट की ओर आज विशेष चहल–पहल बढ़ रही है। सजे बजे सुन्दर बैलों वाले शोभनीय रथों, पालकियों और घोड़ों पर, नगर के गण्यमान चेट्टियार, प्रौढ़ और युवक कावेरी नदी के नौका घाट की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। रथों की खड़ खड़ाहट, बैलों की मधुर घंटियाँ, घोड़ों की टापें, सारथियों, मशालचियों की हाँक–गुहार पौ फटने से पूर्व धुँधलके को अपनी गूँज से चौंधियाने लगी। रथों, घोड़ों आदि के साथ–साथ राज पथ पर दूर–दूर तक दौडती दिखाई देती मशालें, ऐसी लगती हैं, मानों आकाश पर सूर्य देवता का आना–जान, तारे भय कम्प से स्खलित हो धरती पर मुँह छिपाने चले आए हों।''[13]

'माधवी' की प्रसन्नता एवं साथ ही एक वेश्या के इष्ट का अंकन नागर जी ने प्राकृतिक परिवेश का आश्रय लेते हुए 'चकवा–चकवी' के उदाहरण को जोड़कर कितनी कुशलता के साथ किया है– ''अपने घर के ऊपर वाली दालान में चारों ओर सुनहरे रुपहले पिजड़ो में रंग विरगें पंक्षियों को देखती हुयी माधवी मगन मन डोल रही थी; इस उस पक्षी को चहकाकर उनकी चहक सुनती थी। सहसा चकवे के बड़े पिंजरे के पास आयी, उसके माथे पर बल पड़ गए। दर्प युक्त स्वर के पुकारा–नागरत्ना।'' ''क्या है छोटी स्वामिनी ?'' नागरत्ना ने पान दान छोड़कर माधवी के पास आते हुए पूछा। ''तूने चकवा–चकवी को फिर एक पिंजरे में कर दिया ?'' आँखें नीचे झुका विनय से अधिक उसका अभिनय साधकर वह बड़े भोलेपन से बोली– ''आपने मना तो किया था छोटी स्वामिनी.....यों एक में रहते हैं तो भोर होते ही पास–पास आ जाते हैं। इन्हें अलग रखते हुए मेरा कलेजा कचोटता है। एक तो ईश्वर ने ही इन्हें रैन विछोहा दिया है, दूसरे हम भी–'' ''दम्पती का वियोग ही वेश्या का इष्ट है। कल से इन्हे आमने–सामने अलग–अलग पिजरें में देखना चाहती हूँ। सुना ?'' माधवी के स्वर में शासन का तेज था।''[14]

प्राकृतिक परिवेश का प्रयोग नागरजी ने वातावरण की सृष्टि के लिए बड़े कौशल के साथ चित्रित किया है। कोवलन के आगमन के स्वागत में उद्यान भवन की भव्य सजावट का वर्णन कितना सजीव हो उठा है– ''यह उद्यान भवन, ग्रीक शिल्प का नमूना था। पाँसा ने इसे बड़ी लागत से बनवाया था। स्वदेश रोम से बड़ी–छोटी अनेक मूर्तियाँ, चाँदी और सोने की थालियों में अंकित सुन्दर चित्र, अरब के गलीचे आदि बड़े व्यय से मँगाकर भवन को सजाया था। जलवायु के अनुकूल ढल जाने वाले नाना देशों के पशु–पक्षी मनुष्यों के मनोरंजन के लिए यहाँ जगह–जगह पिंजरों, कठ घरों में सुरक्षित रखे गए थे। नौका विहार के लिए एक छोटी सी झील

भी बनी थी। सब कुछ चार दीवारी से घिरा हुआ था जिसके चारों ओर चार भव्य फाटक थे, एक समुद्र तट की ओर खुलता था।''[15] इसी प्रकार कोवलन और कन्नगी के प्रणय बन्धन समारोह में नृत्य समारोह के लिए निर्मित मण्डप का नयनाभिराम वर्णन दृष्टव्य है– ''नृत्य समारोह के लिए हवेली के निकट अनुपम शोभा युक्त विशाल एवं नयानाभिराम पन्दल (ताड़ की पत्तियों की बनी चटाइयों का मण्डप) सजाया गया था। केले के थम्भों, फूलों और पत्तों की बन्दनवार, रंगीन वस्त्रों के चँदोए, बड़े ही आकर्षक रूप से सजाए गए थे। सगे–सम्बन्धियों, मान्य अतिथियों, आदि के लिए उत्तम आसन बिछे हुए थे। मुख्य मण्डप स्वर्ण और रजत दण्डों पर खड़ा किया गया था। यहाँ बन्दनवारों में भी रत्नों का ही उपयोग किया गया था, यहाँ तक कि बड़े–बड़े दीपाधार और तूण्डवळक्क (लटकाए जाने वाले दीपक) भी ठोस सोने के रत्नों से जड़े थे। मुख्य मण्डप में वर–वधू के लिए एक अत्यन्त सुशोभित स्वर्ण–सिंहासन रखा गया था।''[16]

नागरजी ने परिवेशीय सौष्ठव को सजीवता देने के लिए स्थान और समय की उपयुक्तता का ध्यान रखते हुए पात्रों के चरित्र को किस प्रकार चित्रित किया है– ''वर्षा की झड़ी टूटने का नाम न लेती थी। सहसा बादलों की भयंकर गड़गड़ाहट से धरती, महल, राजपुरुष की चित्रसारी, सेज, माधवी का हृदय, प्राण, रोम–रोम थरथरा उठे। वह नये जीवन के लिए स्वेच्छा का भाव गँवाकर जड़ निर्लज्ज भाव से प्रस्तुत पड़ी थी। उसके जीवन का नया पुरुष सेज के पास उसी के समान आवरणों से मुक्त खड़ा उतावली से चषक–पर–चषक ढाल रहा था। सहसा बिजली जोर से कड़क उठी। उसकी लपलपाहट चित्रसारी में कौंध गई। माधवी की आँखें मुँद गई। सहसा उसकी गर्दन को झटके से उठाया गया। एक हठीले हाथ ने चषक उसके होंठों से अड़ा दिया। आँखें मुँदी रहीं, तीखे घूँट उतरते रहे, और उसका कलेजा चीरकर नमक भरते रहे– 'यह टूटा तेरे दर्प का दगकता महल! ओ सुहाग के नूपुरों की साध, मर! मर!' माधवी को चक्कर आ गया। हठ से फिरे सात फेरे मन के धधकते यज्ञ कुण्ड के चारों ओर चकर घिन्नी–से नाच उठे। कुण्ड की धधकती ज्वाला भय–शीत से ठिठुर गई। तभी कड़क कर बिजली टूटी; उसे लगा, वही उसका शरीर वेध गई।''[17]

नागरजी ने वातावरण के सृजन के लिए प्रकृति के कठोर भयंकर रूप का वर्णन भी किया है– ''आकाश पर बिजली का अनोखा खेल अनवरत रूप से आरम्भ हुआ। बरसों में भी ऐसी गाज नहीं गिरी थी; दाहिनी और बाईं ओर से बिजली के अजगर एक–दूसरे पर टूटने के लिए लपके, उनके बीच का आकाश व्यापक लपलपाहट और धड़ धड़ बदलने के लिए लौटे और फिर झपट कर गुथ गए। उनकी टकराहट का महा भंयकर तुमुल नाद धरती–आकाश में भर गया; दिशाएँ देर तक गूँजती रहीं और वह गूँज समाप्त भी न हो पाई थी कि नई बिजलियाँ कड़ कड़ा उठीं। बिजली सारे आकाश में नाचती फिर रही थी। बादलों का गर्जन अविराम गति से होने लगा था। वायु के सनाके लम्बी सून खींचने लगे; उसके प्रचण्ड वेगशाली झोंकों से धरती उड़ी–उड़ी जा रही थी। बरसात की झड़ियाँ पैनी बर्छियों–सी बिंध रही थीं।''[18]

शतरंज के मोहरे

'शतरंज के मोहरे' ऐतिहासिक उपन्यास है, अतः तत्कालीन नवाबी शासन के ह्रास शील जीवन, अस्त–व्यस्त शासन व्यवस्था, के बीच पीड़ित जनता की दयनीय दशा का चित्रण करने के लिए तथा उपन्यास के उद्देश्य को प्रकट करने हेतु, उपन्यास के प्रारम्भ में ही प्राकृतिक परिवेश का चित्रण कर भावी घटनाओं का संकेत दिया गया है– "काले भूरे बादलों के घनघोर घेराव से आकाश घुट रहा था। धरती पर उसकी मनहूसियत फैल रही थी। नाजिमी सेनाओं की आहट से गाँव की हवा तक को साँप सूँघ गया था।"[19] राजधानी 'लखनऊ' को प्राकृतिक परिवेश में बाँधते हुए उसका तत्कालीन सुन्दर चित्रण देखते ही बनता है। अप्रस्तुत विधान से संयुक्त यह चित्रण नागर जी जैसे भाषा के जादूगर द्वारा ही संभव हो सका है– "साढ़े पाँच मील के घेरे में अवध के नवाब, वजीरों तथा प्रथम बादशाह अबुलमुजफ्फर मुईजुद्दीन शाहे जमा गाजीउद्दीन हैदर की राजधानी लखनऊ अवध की **हरी भरी धरती पर** बसी हुई ऐसी सुन्दर लगती है, मानों धानी दुपट्टे के पल्ले पर किसी अलबेले हुनर मन्द ने जरदोबी का नायाब **गुलदस्ता** काढ़ दिया हो। नवाब आसफुद्दौला इमारते बनवाने के ऐसे ही शौकीन थे। दूर से ही मीनारों और गुंबदों से सजा हुआ शहर नजरों को जादू–सा बाँध लेता है। शहर का पश्चिमी हिस्सा आबादी से गँजा हुआ है।"[20]

इसी प्रकार शाहे अवध की मानसिक स्थिति का चित्रण प्राकृतिक परिवेश के साथ– "ढाई घड़ी रात बीत चुकी थी। परिन्दे–परिन्दे तक सुख की नींद सो रहे थे। जबकि शाहे अवध को न इस करवट चैन मिल रहा था न उस करवट।"[21] एक और अत्यन्त आकर्षक चित्र दर्शनीय है– "गाजीउद्दीन उसी तरह खामोश एक डग आगे बढ़े। सुलखिया **वेजान तस्वीर** से **जानदार साया** बन गयी। अपने आकाए–आलम के साथ कदम साधकर चलने लगी। दोनों गोमती की ओर वाले दरवाजे के पास आए। **रात तारों से सजी हुई थी। नदी की लहरें अकसर टकराकर खामोशी में संगीत पैदा कर रही थी। तारों की रोशनी में पानी और आसमान एक से चमक रहे थे।**शाहे अवध को अब वो दूर टिमटिमाता हुआ चिराग जो इस गहरे शुकून में जलन का एहसास कराता है– बादशाह सलागत का हुक्म चूँकि उसे तुरन्त बुझा नहीं सकता था, लिहाजा वे आड़ ले पश्चिम की ओर मुँह करके खड़े हो गए। तारों भरीरात, छल–छल करती नदी, कालिख में रंगे उस पार के दरख्तों के अधगोल घेरे गुम्बद, मीनारें, पास खड़ी हुई सुलखिया सब कुछ एक ख्वाब था।"[22] गाजीउद्दीन हैदर के मानस की छट पटाहट का अंकन प्राकृतिक परिवेश पाकर कितना सजीव हो गया है। कितनी कुशलता के साथ लेखक ने उनकी मानसिक हलचल को प्रकृति के साथ जोड़कर उभारा है।

अवध की सुहानी धरती का प्राकृतिक चित्रण– "आम, सेमल, महुआ और इमली के पेड़ों से छायी हुई धरती ऐसी सुहावनी सुखदायिनी लग रही है जैसे किसी पुण्यात्मा का व्यक्तित्व अपने ही सुन्दर गुणों की छाया से शोभित हो निखर और फल रहा हो। अवध की भूमि अपनी अमराइयों

से सफला है। ×× गाँव के दक्षिण में एक बड़ी झील है। उसके तीन ओर घनी अमराइयाँ है। कुछ यहाँ के व्यापारियों, दूकानदारों ने लगाई हैं और कुछ पुराने ठाकुरों के वंशजों की मिल्कियत हैं। पुराने पेड़ों के आम के पास नये पेड़ बढ़ रहे हैं।''[23] राजा शिवनन्दन सिंह का मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन प्राकृतिक परिवेश के साथ :– ''सूर्य भगवान गढ़ी की दीवाल के नीचे उतर गए थे। पेड़ों पर बसेरे के लिए आने वाले पंछियों का कलरव पूरे जोर पर था। चिड़ियाँ डालों पर थीं, कुछ उनके आस–पास ही बैठने के लिए मॅडरा रही थी, कभी एक झुण्ड के बैठने पर दूसरा झुण्ड फर फराकर उड़ता, आकाश में एक हल्का सा चक्कर लगा फिर बैठने का प्रयत्न करता। उनमें हल्का सा संघर्ष भी होता, पर इस समय सब थके थे। विश्राम चाहते थे। इसलिए धीरे–धीरे व्यवस्था होने लगी, पंख से पंख जोड़ डालों पर पंछी बैठने लगे। मैदान में तख्त पर बैठे राजा शिवनन्दन सिंह भी भांग के गहरे नशे में रक्त रंजित दृष्टि से टकटकी बाँधकर यह दृश्य देख रहे थे, हुक्के की निगाली पर उनका हाथ थमा हुआ था।''[24]

नाच्यौ बहुत गोपाल

इस उपन्यास का प्रारम्भ ही प्राकृतिक परिवेश से होता है। परिवेश का चाक्षुष बिम्बी करण एक अपूर्व ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मेहतर बस्ती, जो उपन्यास का प्रमुख केन्द्र है का चित्रण एक मानचित्र जैसा प्रस्तुत किया गया है :– ''ऊचें टीले पर बने मंदिर के चबूतरे से देखा तो सारी बस्ती मुझे अपनी वर्ण माला के 'द' अक्षर जैसी ही लगी। शिरो रेखा की तरह सामने वाली गली के दाहिनी ओर से मैंने प्रवेश किया था। 'द' की कंठ रेखा वाली गली सुलेख में लिखे अक्षर की तरह ठीक शिरो रेखा के बीच में न होकर उसके बाएँ शिरे पर है। वहाँ से करीब–करीब 'द' के घुमावदार पेट की तरह ही नगर महापालिका की ओर से बनवायी हुई कालोनी है, सामने मैदान है। और यह टीला, जिस पर मैं इस समय खड़ा हूँ, वह यों समझिए कि 'द' अक्षर की घुंड़ी जैसा ही है। इसके बाद टीले की ढलान पर एक छोटा सा मकान और उसके साथ ही बाड़े से घिरी हुई शाक–सब्जियों की एक खासी लम्बी पट्टी उस सारी बस्ती को 'द' की शक्ल दे देती है। 'द' माने दमन। प्रकृति ने मानों इस बस्ती के कपाल पर ही 'दमन' शब्द लिख दिया है।''[25]

इसी प्रकार एक दृश्य और देखिए– ''शाम का समय था, अभी साढ़े चार भी नहीं बजे थे। मगर महावट की बदली घिरी हुई थी। इसलिए अंधेरा घना था। मैं चाय वगैरा पीकर एकदम छुट्टी के मूड़ में बैठा हुआ था। इतवार के दिन शाम से ही मेरा ड्राइंगरूम सिनेमा घर बन जाता। पास पड़ोस के बच्चे, औरतें सभी टी.वी. पर फिल्म देखने के लिए आ जाते है।''[26]

'नाच्यौ बहुत गोपाल' में प्राकृतिक परिवेश का प्रायः अभाव है।

खंजन नयन

सांस्कृतिक और जीवनी परक उपन्यास होने के कारण इस उपन्यास में पात्रों की मनोदशा, घटनाओं की पृष्ठभूमि और वातावरण सृजन के लिए प्राकृतिक परिवेश का आश्रय भाषा

की अलंकृत शैली में स्थान–स्थान पर प्राप्त होता है। अतीत का स्मरण करते हुए अंधे सूरज की यादों में सोलह–सत्रह दिन पहले की वह सांझ उजागर हो गई जब– "पीपल के पेड़ के तने से टिका बैठा था। चिड़ियाँ ऊपर अपनी–अपनी जगहों के लिए आपस में लड़कर भयंकर शोर कर रही थी। अंधे सूरज के मनोलोक में भी उजाले का अधिकार पाने के लिए भयंकर महनामथ हो रहा था। क्रोध रंजित करुणा के स्वर मुखर हो उठे थे "किन तेरो नाम गोविन्द धर्‌यो।" गुरु सांदीपनि का पुत्र–शोक–ताप हरने के लिए तुमने असंभव को संभव कर दिख लाया यमलोक से उनके प्राण छुड़ा लाए। मित्र सुदामा का दुःख दारिद्रय छुड़ाया, द्रोपदी की लाज बचाई– और मैंने तुम पर इतना–इतना भरोसा किया, इतनी–इतनी स्तुति चिरौरियाँ की, किन्तु "सूर की बिरिया निठुर ह्वै बैठयो जनमत अंध कर्‌यौ।"[27]

नागरजी ने घटनाओं को प्राकृतिक परिवेश में लपेटते हुए स्थान और समय का सम्यक ध्यान रखते हुए चित्रोपम भाषा में अंकित किया है– "हवा अपेक्षाकृत मन्द पड़ गयी। घटाएँ और फहराने लगीं। घुमड़ने टकराने लगीं, बिजली कड़क उठी। पानी झमाझम बरस पड़ा। नाव हंसा घाट से बस कुछ ही दूर थी। एकायक नाव बीच धारा में खड़ी दो नावों से घिर गयी। दो बड़ी नावें घाट से भी ललकारें लगाती झपटती हुई आगे बढ़ी। ×××× माल और सवारियों वाली आक्रमण ग्रस्त नाव में भूडोल आ रहे थे। नाव की सवारियाँ अस्त–व्यस्त हो गई। कोई कहीं, कोई कहीं। जवानों के हांथ में लाठियाँ और जुबानों पर चुनौतियाँ। औरतों बूढ़ो के साथ में बेवसी, गिड़गिड़ाहटें और आर्त्तनाद। ऊपर से वर्षा और घन गरज। एक आक्रामक नाव के लुटेरे इस नाव पर आ चुके थे। इस नाव के बचे खुचे लड़के मैदान छोड़कर पानी में कूद गए। छप छपा, छपा छप।"[28]

यहाँ लेखक ने बादल घिरने, झमाझम बरसा होने का प्राकृतिक दृश्यांकन कर नाव के आक्रमण ग्रस्त होने और डूबने की भावी घटना का संकेत कर दिया है।

स्थान वर्णन भी प्रकृति के सहारे किया गया है– "सन्नाटा हो रहा है। दूर कुत्तों का शोर है। दाहिनी ओर कहीं बहुत दूर पहरुए की हाँक भी कानों में आ रही है। कभी चटचट की आवाज भी आती है। हवा के बहाव के साथ मरघट से चिरांयंध के भभके भी कोठरी में प्रेतनी से घुस आते हैं। सासों में घुटन भर देते हैं। कुसमय नींद खुल गई।"[29]

नागराज और अंधे सूरज से सम्बद्ध प्रसंग भी पूर्णरूप से प्राकृतिक परिवेश से निबद्ध है। विषधर भी मनुष्य के साथ वैसा ही व्यवहार करता है जैसा मनुष्य उसके साथ। उपन्यास में प्रकृति वर्णन भी उद्दीपन के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सूरज के मानस पटल पर इसी प्रकार का एक प्राकृतिक चित्र उभरता है– "यह चन्द्र सरोवर है। यह देखो वाजनी शिला है। बजाओं तो बेटा, ढम–ढम–ढम। इसी का नगाड़ा बजता था यहाँ। शरद पूनों की रात को सोने की थाली जैसा चन्द्रमा आकाश में दमके तब यह अठकोने चन्द्र सरोवर का जल भी ऐसा चमकता है कि

मानों पूनम का चन्द्र परासोली की धरती पर ही उतर आया हो। इतते राधेरानी अपनी सखियान संग, उततै वंशी वारौ, अपने सखान संग–आए। दोनों ने दोनों को देखा। ठगे से खड़े रह गए। बाएँ चन्द्र सरोवर दाएँ युगल मुख चन्द्र। परासोली की अनुपम शोभा के आगे गगन विहारी चन्द्र की शोभा फीकी पड़ गयी। मस्ती में आके सखा सखियों ने व्रजचन्द्र चन्द्रिका को घेर लिया। रास होने लगा। बाजनी शिला बजने लगी। डंडे से डंडे टकराकर सखी–सखा नाचने लगे।''[30]

सूरज की मानसिक स्थिति भी सौन्दर्य को लेकर प्रकृति के विचार दर्शन में टिकी हुई है– ''उसे अब एकायक आभास हुआ कि श्याम सखा तो परम सुन्दर होगा। स्रष्टा, सर्वशक्तिमान, सर्वसत्ताधिपति पुरुष सब कुछ है। माना जिसे वह अपनी सब कुछ मानता है, उस प्रकृति की सुन्दरता इतनी अनन्त है कि जब–जब पुरुष देखता है तब–तब प्रकृति की नई छटा, नई छवि ही उसे दिखलाई देती है।''[31]

वातावरण की सृष्टि के लिए प्रकृति वर्णन का इस उपन्यास में स्थान–स्थान पर बाहुल्य है। कहीं राधारानी, कहीं श्रीराम और कहीं श्रीराधा कृष्ण के अनुपम चित्र उकेरे गए है। राधा–कृष्ण के महारास का वर्णन तो एक सजीव चित्र ही उपस्थित कर देता है– ''चन्द्रसरोवर वैशाखी चाँदनी और बसन्ती बयार। उतर कर कुण्ड के जल से आचमन किया, सिर पर छींटे दिये और तट पर बनी बुर्जी पर बैठ गए। सूरदास दिव्य दृष्टि से देखने लगे– आकाश पर देव गणों के रत्नाजटिल विमान ही विमान दिखाई दे रहे हैं। चतुर्थी का चन्द्रमा मानो उसकी आड़ से बचने के लिए ही सरोवर में उतर आया है। सरोवर के एक ओर गन्धर्व गण तरह–तरह के वाद्यों के साथ भगवान का निर्मल यशोगान कर रहे हैं। रास प्रारम्भ होता है। सोने के बीच में जैसे नीलमणि की शोभा होती है वैसे ही गोरी गोपियों के बीच में श्याम सुहा रहे है। तरह–तरह की हस्त मुद्राएँ बनाकर भाव बतलाते हुए, जब वे थिरक–थिरक कर नाचती हैं तो देखते ही बनता है। गीत की तानों से अखिल विश्व गूंज रहा है। नृत्य में तेजी आ गई है। जैसे कोई बालक अपने ही प्रतिबिम्ब से खेल रहा हो। इसी प्रकार किशोर श्याम के साथ किशोरी राधिका उनसे अभिन्न होकर रास क्रीड़ा में मग्न हैं। सूरदास की टकटकी लग जाती है। बन्द आँखों में वह दिव्य युगल समा जाता है। परासोली की रासभूमि और सूर की चिदभूमि एक हो जाती है।''[32]

इसी प्रकार ब्रजभूमि का प्राकृतिक और मानवीय तथा नैतिक गुणों से परिपूर्ण वहाँ के नर–नारियों की विशेषताओं का चित्रण प्राकृतिक परिवेश से ऐसा अनुस्यूत है कि उन्हें पृथक किया ही नहीं जा सकता– ''बारह बनों और चौबीस उपवनों वाली ब्रजभूमि, जहाँ पहुँच कर मनुष्य अपने राग–अनुराग, काम–क्रोध, भय, ईर्ष्या द्वेषादि सभी भली बुरी बृत्तियों को श्रीकृष्णार्पित करके उनकी अविराम लीलाओं में रम जाता है, जहाँ के नर नारी बड़े सरल और प्रेमल हैं, उनके बीच पहुँच कर यह अनुभव होता है कि पराये लोगों में नहीं वरन् अपने ही स्नेही कुटुम्बी जनों के बीच में आ गए हों। बानी ऐसी मधुर कि मन मोहे। डेढ़ हाथ का घूँघट काढ़कर भी ब्रजांगनाएँ इतनी स्वतन्त्र हैं कि क्या मजाल उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई उन्हें अपनी ऊँगली से छू सके या दबा

सके। पुरुष भी मस्त, मेहनती, लड़वैये। कोई किसी से दबने वाला नहीं, पर प्रेम के आगे सभी नत हैं। यह परम प्रेमी, रसिक नट नागर लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और उनकी हृदय स्वामिनी राधा रासेश्वरी रसेश्वरी की प्रिय लीला भूमि है। युगल छवि की अमिट स्मृतियों से यहाँ के कदंब महक भरे मादक पवन से लेकर धूलि के कण–कण तक स्वतः मुखरित हो उठते है।"[33]

संक्षेप में 'खंजन नयन' प्राकृतिक परिवेश से आद्यन्त सम्पृक्त है।

मानस का हंस

उपन्यास का प्रारम्भ ही प्राकृतिक परिवेश से मण्डित है–

"श्रावण कृष्ण पक्ष की रात। मूसलाधार वर्षा, बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की कड़कन से धरती लरज–लरज उठती है। एक खण्डहर देवालय के भीतर बौछारों से बचाव करते सिमट कर बैठे हुए तीन व्यक्ति बिजली के उजाले में पलभर के लिए तनिक से उजागर होकर फिर अंधेरे में विलीन हो जाते हैं। स्वर ही उनके व्यक्तित्व के परिचायक है। "बादल ऐसे गरज रहे हैं मानो सर्वग्रासिनी काम क्षुधा किसी संत के अन्तर आलोक को निगलकर दम्भ भरी डकारें ले रही हो। बौछारें पछतावे के तारों सी सन सना रही हैं। बीच–बीच में बिजली भी वैसे ही चमक उठती है जैसे कामी के मन में क्षण भर के लिए भक्ति चमक उठती है।"[34] यह परिवेश उत्सुकता के साथ–साथ तुलसी के व्यक्तित्व का परिचय भी देता है और उपन्यास की कथावस्तु का आभास भी।

इसी प्रकार तत्कालीन् वातावरण का वर्णन भी प्राकृतिक परिवेश में अवगुण्ठित है और भावी घटना का संकेत भी।

"पेड़ों के झुरमुट के पीछे छिपकर खड़े हुए लग–भग सौ सवां सौ बहादुर उत्तर दिशा की ओर देख रहे हैं। उस दिशा में लगभग कोस भर की दूरी पर एक विशाल जंगल जल रहा है। लड़वइयों की गरज हुंकार कानों के पर्दे फाड़ रही है और उससे भी अधिक हजारों मनुष्यों का आर्त्तनाद भरा कोलाहल इन बहादुरों के चेहरों पर निराशा, क्षोभ और जोश की उड़न पर छाईयाँ डाल रहा है। कोई किसी से बोल नहीं रहा। मिलने पर आँखें प्रश्नों के उत्तर में प्रति प्रश्न ही झलकाती हैं। आवाजें सुन–सुन कर इन लड़वइयों में किसी–किसी का ध्यान बरबस अपने हथियार, लाठियों, भालों और तीर–कमानों पर जाता है। कलेजों से हताश निसांसे ढल पड़ती है।"[35] मुगलों के आक्रमण का परिचायक है यह प्राकृतिक पृष्ठ भूमि।

तुलसी के बाल जीवन में जब वे चार–पाँच वर्ष के राम बोला थे उस समय का भी दृश्य प्राकृतिक परिवेश से युक्त है– "झोपड़ियों के मान दण्ड से भी हीनतम आठ–दस छोटी–छोटी झोपड़ियों की बस्ती के लिए यह तूफान प्रलय बनकर आया था। अधिकांश झोपड़ियां या तो उड़ गईं थीं या फिर ढही पड़ी थीं। भिखारियों के टोले में सभी अपने–अपने राजमहलों की रक्षा करने के लिए जूझ रहे थे। उन्हीं में से एक कोने पर बना पार्वती अम्मां का घास–फूस और ढाक के पत्तों का राजमहल भी ढहा पड़ा था। बहुत से ढाक के पत्ते और गली हुई फूस टट्टर में से

निकल चुकी थी। उसके बचे–खुचे भाग के नीचे पार्वती अम्मां कराह रहीं थीं। उनकी गृहस्थी के मटके, कुल्लड़ फूटे पड़े थे।"[36]

प्राकृतिक चित्रण का परिवेश देखिए–

"अन्धेरी–सूनी गलियां पीछे छूटती जाती हैं। शीत के मारे कुत्ते भी इधर–उधर दुबके हुए बैठे हैं, केवल आहट पाकर जहां–तहां भौं–भौं कर उठते हैं। गलियों में यत्र–तत्र बैठे हुए सांड भी तुलसी के चलने की आहट पाकर अथवा शीत की प्रतिक्रियावश अपनी सांसों की फुफकारें–सी छोड़ते हुए मिल जाते हैं। संकरी गलियों में बन्द घरों की दीवारें मानो सांय–सांय बोल रही हैं। एक जगह पर छत्त के नीचे एक सांड पूरी गली घेरे हुए पड़ा था। घने अन्धेरे में वह तुलसी को दिखलाई न पड़ा। वह जैसे ही आगे बढ़ा तो ठोकर खाई। पैर लड़खड़ाया और वह बैल पर ही गिर पड़ा। शंख की नोक बैल के शरीर में चुभी और उसने फुंफकारते हुए अपने सींग इधर घुमाए। तुलसी घबरा गया। बैल भी घबराकर उठने का उपक्रम करने लगा। उसकी पीठ पर गिरे हुए बालक की घबराहट इस कारण से और भी बढ़ी। भूत भले न हो पर भूतनाथ के इस नन्दी ने यदि आक्रमण कर दिया तो तुलसी की जान की खैर नहीं। इस भय ने सुरक्षा की भावना तीव्र कर दी। बैल के पिछले पैरों के पूरी तरह उठने के पहले ही वह फुर्ती से फिसल पड़ा और फिर घुटनों तथा बांयें हाथ के पंजे के बल पर उठकर वह तेजी से भागा। अपने भय के भाग जाने पर पशु वहीं का वहीं खड़ा रह गया। आगे थोड़ी ही दूर पर गली समाप्त हो गई, खुला मैदान आ गया, तुलसी की सांस में सांस आई।"[37]

तुलसी के व्यक्तित्व को प्राकृतिक परिवेश से अप्रस्तुत विधानों के द्वारा कितना रमणीय रूप दिया गया है–

"उसी समय आकाश में बादल गड़गड़ा उठते हैं, मानो राम किंकर तुलसी दास का जयघोष कर रहे हो। बिजली बार–बार कड़क उठती है, मानोराम की भक्ति माया के अंधकार को मिटा रही। पानी ऐसे बरसता है कि जैसे भक्त के मन में अविरल राम रस धारा बहती है।"[38]

प्राकृतिक परिवेश प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से 'मानस का हंस' नागर जी की सर्वाधिक सफल कृति है।

ख. राजनैतिक परिवेश–

तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था आदि का चित्रण तथा राजनैतिक दलों और उनके क्रिया कलापों का उल्लेख राजनैतिक परिवेश के अन्तर्गत आते हैं। नागर जी के विभिन्न उपन्यासों में तत्कालीन राजनैतिक परिवेश का चित्रण अत्यन्त सजीव एवं रोचकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार के चित्रण वस्तु के विकास, पात्रों के क्रिया कलाप आदि को लेकर किये गये हैं।

एकदा नैमिषारण्ये

नागरजी के इस उपन्यास में तत्कालीन राजकीय व्यवस्था और तत्कालीन जातियों और उनके पारिवारिक झगड़ों की संबंद्धता का चित्रण किया है। सभी राजाओं में जातिगत अहम था– "शकों और कुषाणों ने इस देश की सामाजिक व्यवस्था को जानबूझ कर छिन्न–भिन्न किया है। महाक्षत्रप बनस्पर ने चुन–चुन कर यहाँ के ब्राह्मण और क्षत्रिय वंशियों का नाश किया था। उसने नये ब्राह्मण, क्षत्रिय वर्गो की सृष्टि की थी, हीन जातियों के क्रूर पुरुषों को राज्याधिकारी बनाकर उनके सामने सवर्ग लोगों को नित्य प्रति अपनी नाक रगड़ने के लिए बाध्य किया। विदेशी कुषाण राजा चाहे बौद्ध बनकर आये या शैव बनकर, हमारे समाज को तोड़ने में उनकी नीति एक जैसी रही। सामाजिक अस्थिरता लाने में सभी वैदिक–अवैदिक मतों, अचिंतक स्वार्थियों और कुटिल शासकों का हांथ रहा है।"[39] ये विदेशी लुटेरे और हत्यारे भी हो गये। इनके विरुद्ध मगध के राजा 'चन्द्र गुप्त' राज्य विस्तार का प्रयत्न करने लगे, लेकिन, मद्र और इच्छवाकुओं के गोत्र के होने पर भी ब्राह्मणों के एक वर्ग ने उन्हें म्लेच्छ घोषित किया। दक्षिण में सातवाहन और चोलों का राज्य था। जाति और धर्म के नाम पर लड़ने वाले सब राजाओं और गणतन्त्रों को कैसे जोड़कर राष्ट्रीयता लायी जाये– "कार्तिकेय पूजक वीर योधेय गण स्वतन्त्रता के दो पक्षधर हैं, परदेश को प्यार नहीं करते।– दूसरे सुन्दरता के अनोखे पुजारी कठ और सौभूत आदि गण है, जो अपने राष्ट्र में व्यक्ति की सत्ता को ही नकारते है।"[40]

सब राज्यों और गण राज्यों के धार्मिक भेंद भावों को दूर करके सारे देश को एक ही धार्मिक चेतना में गूथकर भागवत धर्म ने बाहरी आक्रमणों से बचाने के लिए राष्ट्रीय दृष्टि के विकास का प्रयत्न किया। धर्म के पनपने और सांस्कृति विकास के लिए देश का संपन्न होना आवश्यक है। अतेव महाभारत तथा अन्य पुराणों में राजनीति के साथ आर्थिक व्यवस्था की भी विस्तृत चर्चाएँ मिलती है। उस समय राज्यों और समाज में व्यापार संपन्न वैश्य वर्ग का प्रबल हांथ था। वह अपने दांव–पेंच के द्वारा जीवन में उथल–पुथल कर देते थे। इसीलिए सोमाहुति स्पष्ट कहते हैं– "संपन्नता के बिना आस्था उत्पन्न नहीं होती, किन्तु संपन्नता प्राप्त करने के हेतु भी कर्म की आस्था तो जगानी ही पड़ती है।"[41] एक अन्य स्थान पर– "भूमि राजा की है, खेत किसान का, राम कृपा से जब धरती सोना उगलेगी तब राजा और प्रजा दोनों का ही घर भरेगा।"[42]

बूँद और समुद्र

इस उपन्यास में स्वतन्त्रता के पश्चात की राजनैतिक गतिविधियों नेताओं के क्रिया कलापों आदि का चित्रण राजनीतिक परिवेश में किया गया है।

भारतीय मताधिकार की व्यर्थता पर व्यंग्य प्रहार करते हुए नागर जी कहते है– "वोट डालने के अतिरिक्त राजनीति और कोई अर्थ नहीं रखती। और वोट मेल–मुलाहिजे में की जाने वाली कार्यवाही मात्र थी, वोट देने का अधिकार स्त्री के लिए वर्तमान सामाजिक परिस्थिति में

नपुंसक की पत्नी के समान था।''[43] यहाँ नागर जी ने वोट प्रणाली के प्रति अपने मन की खीझ और घृणा एक साथ उड़ेंल दी है।

हमारे देश का दुर्भाग्य रहा है कि हमने ईमानदार लोगों की अवहेलना की। नेता–गण अपनी–अपनी पार्टियों और अपने–अपने स्वार्थो के लिए किस प्रकार नेतागीरी करते है। उनके प्रति उपन्यासकार की भावना देखिए– इन नेताओं को वे चमर गिद्ध कहते हैं–

''काँख–कूँख कर उन्होंने भी माइक्रोफोन नीचा करवा कर अपनी नेतागीरी झाड़ी, जिस प्रकार सम्राटों के दरवार में विदूषक हँसी का साधन बनता था उसी प्रकार जनता के दरबार में 'नेता' और 'प्रतिष्ठित' आज मजाक के साधन हैं। विदूषक तो किसी हद तक कल्याणकारी है, परन्तु यह चमर गिद्ध वर्ग तो किसी काम का भी नहीं।''[44]

काग्रेंस, कम्युनिस्ट और जनसंघ सभी राजनीतिक दल वोट पाने के लिए अनेक प्रकार के गन्दे और घिनौने हथकन्डे अपनाते है, कोई अपने प्रचार के लिए नुमाइश का आयोजन करवाता है, तो कोई समाचार पत्रों द्वारा अथवा पोस्टरों द्वारा एक–दूसरों के चरित्र हनन का प्रयास करते है। ''ये लोग जहाँ सुई नहीं समाती वहाँ फावड़ा चलाने की कोशिश करते हैं।''[45] उपन्यासकार का यह मत है कि इस राजनीतिक माहौल के लिए केवल समाज ही नहीं व्यक्ति भी दोषी है।–

''व्यक्ति और समाज दोनों ही दोषपूर्ण हैं, जब तक समाज नहीं बदलता व्यक्ति बेचारा क्या करेगा ? चरित्र का चरित्र पर प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति द्वारा समाज का निर्माण होता है और समाज द्वारा व्यक्ति का पोषण। व्यक्ति और समाज के समन्वय का यही मूलभूत आधार है।''[46]

नागरजी आज के लोक जीवन में फैले अविश्वास का कारण भी राजनीतिक पार्टियों को मानते है।

''राजनीति जिस रूप में आज प्रचलित है, वह तनिक भी प्रगतिशील शक्ति नहीं है। राजनीति केवल दाँव–पेंचों का अखाड़ा है। मानव हित के आदर्श से ही व्यक्तिगत अहंकार के कारण राजनीति के खिलाड़ियों की बुद्धि, चतुराई और कार्य कुशलता बहक गयी है। वर्तमान राजनीति का जन्म साम्राज्यवाद से हुआ है। इसी साम्राज्यवादी नीति से औद्योगिक पूंजीवाद को शक्ति प्राप्त हुई है, उस शक्ति और जनहित का बैर स्वाभाविक है, साम्राज्य शाही चाहे पूंजीवाद की हो, राष्ट्रवाद, जातिवाद, धर्मवाद की हो, सर्वथा गलत है। देश के पुराने नये इतिहास के अनेक उदाहरण इस बात को सिंद्ध करते है।[47] इसी के आगे वह लिखते हैं कि आज के सभी राजनीतिक दल एक से एक बढ़कर बेईमान हैं और वही इस देश को बरबाद करने के जिम्मेवार है। ''आज इस देश में क्या कांग्रेस, क्या सोसलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, जनसंघ, हिन्दू महासभा आदि जितनी भी राजनीतिक पार्टियाँ हैं– सब अधिकांश में एक–एक से बढ़कर बेईमान क्षुद्र आकांक्षाओं वाले जाल–साज और मगरूरों द्वारा अनुशासित हैं। आदर्श और सिद्धान्त तो महज शिकार खेलने के लिए आड़ की टट्टियाँ है। इनका आपसी संघर्ष अधिकतर व्यक्तिगत है।

इस देश की प्रतिक्रियावादी राजनैतिक शक्तियाँ भारतीय परंपराओं को केवल रूढ़ियों में देखती हैं। तथा कथित प्रगति शील शक्तियाँ भी अपने देश को केवल रूढ़ियों में ही पहचानती हैं। उसकी प्रगतिशील परंपराओं की जानकारी उन्हें नहीं है या बहुत कम है। वे सारी प्रगतिशील परंपराओं को केवल विदेशों में ही देखती है। विदेशी परंपरा को वे यहाँ की परिस्थितियों पर जबरदस्ती लादना चाहती हैं।''[48]

लेखक राजनीतिज्ञों को ही जन–जीवन में अन्ध–विश्वास और भ्रान्तियों को फैलाने वाला मानता हुआ बुद्धिवादियों से आशा करता है कि वे देश को इस स्थिति से निकालने में सहयोग करें।

''जन–जीवन अन्ध–विश्वास और भ्रान्तियों से जकड़ा हुआ है। ऐसी दशा में बुद्धिवादी भला चुप बैठ सकते हैं, आज वे भी पूंजी और व्यक्ति सत्ता वादी वातावरण से प्रभावित होकर जनता को भरमाने में ही योग देते रहेंगे। क्या किसी को भी आज अपने देश से प्यार नहीं ? देश की परंपरागत अनेक सृजनात्मक शाक्तियों पर अभिमान नहीं ?''[49]

उपन्यास की नायिका कन्या जब अपने पिता का विरोध करती है और अपनी मृत भाभी के प्रति न्याय की माँग करती है तो उसे साम्यवादी पार्टी की सदस्या घोषित करके बेइज्जत किया जाता है, यहाँ तक कि उसका पिता जगदम्बा सहाय उसके पीछे गुण्डे लगा देता है। सज्जन के चित्रों की प्रदर्शनी भी जानकी शरन एवं सालिगराम की राजनैतिक चाल के अतिरिक्त कुछ नहीं लगती। इसीलिए कन्या इस प्रजातन्त्र में विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के विषय में अपना मत स्पष्ट करती है। –''एक बात जो अर्से से मेरे मन में चुभती थी, वह आज की घटना से मेरा समाधान बन रही है। आज एकाएक मुझे ऐसा लगा कि जैसे फुटबाल का मैच होता है, राजनैतिक पार्टियों का संघर्ष भी हू बहू वैसा ही है। जनता फुटबाल है, मैच उसी के नाम पर हो रहा है। पोल्टिकल पार्टियों के खिलाड़ी ठोकरें उसी को लगा रहें हैं। ये इलेक्शन हमारी जन तान्त्रिक व्यवस्था का यही रूप दर्शा रहें हैं।''[50]

शतरंज के मोहरे

इस उपन्यास में अवध के नवाब जनता से अपने जागीर दारों द्वारा वसूली करवाया। करते थे। इनसे नगरों और गाँवों में प्रजा पीड़ित हो उठती थी, जनता को बेगार में पकड़ लिया जाता था। फसलों को वीरान करना, बहन–बेटियों की इज्जत लूटना उनकी आदत बन गई थी।– गन्ने के खेत में पीलवान अपने हाँथियों को धँसाने लगे, दूसरे खेतों की ओर घोड़ों के झुण्ड बँटे, बैलों के रखवाले और चूल्हें जलाने के लिए लकड़ी की तलाश में निकले, सिपाहियों ने बाहरी बस्ती के घरों पर छापामारा, सिपाही, पीलवान, शाईस और शाही बैलों के रखवाले, महमूद गजनवी और नादिर शाह बनें अकड़ के मारे आसमान में अपना रुख मिलाते घुड़कते और धकियाते थे।''[51]

यही कारण था कि स्थिरता और राजनैतिक सुव्यवस्था के लिए जनता ने राजा और नवाबों का साथ न देकर अंग्रेजों का साथ दिया। इस काल के नवाबों के वैभव पूर्ण जीवन तथा नंग नाच, वेश्याओं के प्रति उनकी अनन्य भक्ति का चित्रण कर ढलते हुए नवाबी ऐश्वर्य का जो राजनीतिक चित्र इस उपन्यास में खींचा गया है, वह अत्यन्त ही सजीव है। नवाबों की साही सम्पत्ति, उत्तराधिकारी के अभाव में अंग्रेजी कम्पनी की घोषित हो जाती थी। अंग्रेजों की यह ऐसी साम्राज्य वादी नीति थी कि बिना लड़े, बिना खून खराबी के भारत–भूमि यूनियन जैक के नीचे आती चली जा रही थी। विलासिता में डूबे रहने के कारण देशी राजा और नवाब अपना पुन्सत्व खों बैठने के कारण सन्तान हीन हुआ करते थे। इस बहुत बड़ी समस्या की ओर इस उपन्यास में नागर जी ने संकेत किया है। नसीरूद्दीन ऐसी ही सन्तान होने के कारण अपनी अकर्मण्यता और विलासिता के कारण राज–पाट खों देता है। बेगमें राज माता बनने के लिए किसी भी दासी पुत्र को अपना पुत्र घोषित कर दिया करती थीं। यह भी सत्य है कि दासियों के गर्भ में भी नवाबों का ही वीर्य पलता था। ऐसे अवसरों की खोज में अंग्रेजों के भारतीय जासूस सक्रिय रहते थे इसीलिए भारतीय महलों को अंग्रेज अपने अधिकार में करने मे सफल हुए।

अमृत और विष

इस उपन्यास में स्वातन्त्र्योत्तर काल की राजनीति के ऊपर हावी बेईमान पूंजीपतियों के द्वारा उठाई गई उठा–पटक, छल–कपट, हिंसा और धन संपन्नता के आधार पर सम्पूर्ण समाज का शोषण दिखलाया गया है। इस वर्ग में टूटे हुए सामन्त, पैसा जोड़ने और दूसरों का शोषण करने वाले पशु जैसे पुराने रईस, युद्ध काल में पनपे नये व्यापारी, जनता की शोषित देह पर वोट रूपी निर्दयी पैरों को रखकर चलने वाले खद्दर धारी राजनेता जो देश की कर्मण्यता को नष्ट कर अपनी तिजोरियाँ भरना चाहते हैं और इतने पर भी जिनका पेट नहीं भरता तो विदेशी बैंकों में धन जमा करने वाले मंत्री, समाज राजनीति और साहित्यिक गति विधियों द्वारा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं।

उपन्यासकार ने भारत के शहरी जीवन की स्वार्थ परता, राधा रमण जैसे दलीय राजनीति में पड़े और बुद्धि से दीवालिये, राजनीतिज्ञों की मदान्धता, प्रौढाओं के आधार पर उन्नति करने वाले युवकों की कुण्ठित आकांक्षाएँ और इन सबके ऊपर युवकों का प्रबल आक्रोश जो नवीन मार्ग का अन्वेषण कर राष्ट्रीय जीवन को शुद्ध एवं गौरवन्वित बना देता है, का यथार्थ चित्र उतारा है। इसलिए यह उपन्यास संक्रान्ति कालीन भारतीय परिस्थितियों का दर्पण बन गया है।

भारत के लिए ब्यूरोकेशी को उपन्यासकार अभिशाप मानता है। नौकरशाही मशीन का लग–भग प्रत्येक पुर्जा भ्रष्टाचार के दल–दल में पूर्ण रूप में फँसा हुआ है, चारो ओर सब अनुभव करते हैं किन्तु असमर्थ हैं। स्वतन्त्रता के बाद भारत में तो इसकी इन्तिहा हो गयी। राष्ट्र के शीर्षस्थ नेता बूढ़े और दरिद्र भारत का सर्वागीण विकास करने वाली व्यूरोक्रेटिक मशीन के पास आते ही धराशायी हो जाती है। डॉ० आत्माराम को उपन्यासकार ने ऐसे ही व्यक्तियों में से

दिखलाया है, जो बड़े ही पवित्र और पूर्ण ईमानदारी के साथ योजनाएं बनाते हैं कि भारत का शिक्षित युवक बेकार न रहे और लघु उद्योगों को चलाकर भारत को संपन्न बनाएँ किन्तु दूसरी ओर सेन जैसे व्यूरोकेट के महत्व पूर्ण पुर्जे योजनाओं को सफल नहीं होने देते।– "डॉ० सिद्धान्त निश्चित करते हैं, उनके आधार पर सेन योजनाएँ बनाते है। उन योजनाओं को फैलाने वाले उसे मनमाने ढंग से चलाते–फैलाते हैं। डॉ0 सुझलाते हैं, मुट्ठियाँ बाँधते हैं। शब्दों की आग बरसाते हैं। आत्माराम किसी नई सैद्धान्तिक, तात्विक, अन्तर्राष्ट्रीय मानवीय महत्व की गुत्थी सुलझाने में रम जाते हैं। इस बीच में उनकी पुरानी प्रेरणाएँ लावारिस औलादों की तरह आवारा होकर जिस–तिस रास रंग में बहकने, भटकने लगती है। अमृत विष बन जाता है। डॉ0 अपनी उत्तमोत्तम प्रेरणाओं की ऐसी मौतें देखकर बीतराग हो चले है।"[51]

इसी प्रकार भारतीय नागरिक ने सरकार के झूठे और थोथे वायदों से परेशान होकर वीतरागी प्रवृत्ति अपना ली है। नौकर शाही के कुछ अन्य कारणों से आज इस जगत जननी कहलाने वाली भारत वसुन्धरा पर म्रियमाण प्रजातन्त्र भू पर पड़ा हुआ दिखलाई देता है।

मानस का हंस

इस उपन्यास में नागरजी 'तुलसी बाबा' के मुँह से ही तत्कालीन राजनैतिक अवस्था का वर्णन करवाते हैं। 'तुलसी' अपने यजोपवीत का वर्णन करते हैं। वे चित्रकूट से प्रस्थान कर काशी की ओर जाते हैं। मार्ग में मानवीय अत्याचारों के प्रतिस्वरूप एक मनुष्य को पेड़ से लटका हुआ पाते हैं, शायद अत्याचारियों ने उसे फाँसी दी थी। इसी प्रकार एक स्त्री दम तोड़ती हुई पृथ्वी पर गिर जाती है, इस हृदय विदारक दृश्य को देखकर तुलसी कहते हैं–

"अकबर शाह के समय में थोड़ा– बहुत सुशासन आया था, अब वह भी समाप्त हो गया। शासक दिल्ली में रहता है। उसे नित्य सोंना–चाँदी, हीरे–जवाहरात चाहिए, स्त्री और धन की लूट का नाम ही कलिकाल है। सारे पाप यहीं से आरम्भ होते हैं। हम जब पहली बार गुरु परमेश्वर के साथ यहाँ आये थे तब तो और भी बुरी दशा थी।"[53] यहाँ लेखक मुगल कालीन राजनैतिक अव्यवस्था का कारुणिक चित्र प्रस्तुत कर कथा में स्वाभाविकता लाता है, क्योंकि कोई भी मनुष्य देश काल की स्थिति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । फिर असाधारण प्रतिभा संपन्न भक्त 'तुलसी' से राममय संसार के दुख–दर्द कैसे छिपे रहते। देश की राजनैतिक अव्यवस्था एवं राजा के द्वारा प्रजा पर होने वाले अत्याचारों को देख 'तुलसी' का भावुक हृदय रो उठता है।

उपन्यास के सत्रहवें अध्याय में लेखक ने देश की राजनैतिक और आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है। इतिहासकार मुगुलकाल को धन धान्य से पूर्ण मानते हैं किन्तु वास्तव में वैसा था नहीं। उस समय के समाज का दैन्य और विषण्णता का चित्र उपस्थित करने की चेष्टा की गई है। जो तत्कालीन राजनीतिक स्थिति को अत्यधिक विश्वस्य बना देता है। तुलसी बेनीमाधव को सुनाते हुए कहते हैं–

"कुरुक्षेत्र में उन दिनों बड़ा भीषण अकाल पड़ रहा था दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि सभी जगह प्रजा त्राहि–त्राहि कर रही थी। खेती विहीन उजड़ा भूखण्ड, रूखी काया, फीके कंठ और चेहरों वाली कंकालवत कायाएं इधर–उधर डोलती थीं।"[54]

स्पष्ट होता है कि उस समय का राजतंत्र, जनता की रक्षा करने में असमर्थ था।

नाच्यौ बहुत गोपाल

इस उपन्यास में भी वर्तमान राजनीतिक स्थिति को अभिव्यक्ति मिली है। लोक तंत्रात्मक रूप, लोक तंत्र के मूल्यों को विघटित कर चुका है। "इस डिमॉक्रेसी में साहब बस पूछिए नहीं, अंधेर मच गया है। काम करने की योग्यता किसी में हो या न हों, मगर किसी का चमचा बनना आवश्यक है।"[55]

देश की पतित अवस्था देखकर बाबू जय प्रकाश नारायण जैसे नेताओं ने व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन की माँग के साथ सम्पूर्ण क्रान्ति का नारा दिया। काँग्रेस शासन के विरुद्ध एक आन्दोलन खड़ा हो गया। सरकार ने अपनी पकड़ ढीली देखकर 'आपात काल' की घोषणा कर विरोधी दलों के हजारों नेताओं को आन्तरिक सुरक्षा कानून के अन्तर्गत जेलों मे डाल दिया। प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी के बीस सूत्रीय कार्यक्रम तथा उनके पुत्र स्वर्गीय संजय गाँधी के पांच सूत्रीय कार्यक्रम को देश में लागू किया गया। प्रेस और समाचार पत्रों पर सेंसर शिप लगा दी गई। इमरजेंसी की काला छाया का संकेत देखिए– "उपचेतन पर सेंसर लगाने वाले चेतन को जब बेहोश कर दिया जाता है, तब भीतर वाले मन की तहों में दबी हुई कुंठित पीडाएँ सहसा होश में आ जाती हैं। आज–कल इमरजेंसी के दिनों में ठीक ऐसा ही देश मानस में भी हो रहा है। प्रेस के वर्तमान सेंसर ने जबान काट ली है। लेकिन न बोल सकने वाले मन ने शेष नाग की जिह्वाओं की तरह अपनी असंख्य जबानें लपलपा ली हैं।..... आजकल की इमरजेंसी के दिनों में तो मैं किसी भीम के आने की कल्पना ही नहीं कर सकता, जो इस प्रेस सेंसर रूपी राक्षस को मार डालेगा। इस देश के सारे भीम और अर्जुन जेलों में बन्द हैं। उनकी आवाज बाहर नहीं आ सकती। उनके हाथ पैर इस समय ईसामसीह की तरह कीलों से गड़े हैं।"[56]

आपातकाल के दिनों में देश में संजयगाँधी का बड़ा आंतक था। "वह बेताज का बादशाह है। उसकी आँखों के इशारों पर सूर्य उदय और अस्त होता है। वह भला किसी को क्या समझता है। राष्ट्रपति की बोलती बन्द कर दी और तुर्कमान गेट उजाड़ डाला। ओह ! कैसा निर्मय प्रहार था। मैं पूछता हूँ कि ब्रिटिश सरकार क्या असुर–सरकार से अधिक अत्याचारी थी ? आखिर इस इमरजेंसी का कभी अन्त होगा कि नही ?"[57]

सात घूँघट वाला मुखड़ा

उपन्यास की वस्तु 18 वीं शदीं के मुगलों तथा अंग्रेजों के संघर्ष का चित्र उपस्थित करती है। अंग्रेजों, मीर कासिम तथा शुजाउद्दौला के परस्पर संघर्ष की जय–पराजय में भारतीय

राजनीति बिल्कुल अस्थिरता की स्थिति में थी। उपन्यास में केवल उपर्युक्त तीन शक्तियों के संघर्ष का चित्रण है। वह मीर कासिम की ओर से अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ा और पटना में धोखा देकर दावत में बुलाए गए 148 अंग्रेज योरोपियन अफसरों की हत्या कर डाली। महत्वकांक्षी वाल्टर आगे चलकर 'समरू' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बादशाह को प्रसन्न करके उसने 'सरधना' की जागीर प्राप्त की और उसका स्वामी बन गया। उपन्यास की कथा वस्तु नवाब समरू के व्यक्तिगत एवं राजनीतिक जीवन को प्रभावित करने वाली बेगम समरू से संबंध रखती है। बेगम समरू के दायित्व काल की घटनाओं को ही उपन्यास का विषय बनाया गया है। तथा इन्हीं कुछ घटनाओं से कथानक गतिशील हुआ है।

बेगम समरू के चरित्र के माध्यम से राजनीतिक परिस्थितियों को अभिव्यक्त किया गया है। इस राजनीतिक उठा पठक में देह व्यापार, नारी–क्रय–विक्रय अपनी पराकाष्ठा पर थे। जुआना बेगम बशीर खां के पिता द्वारा खरीदी हुई एक कश्मीरी लड़की मुन्नी उर्फ दिलाराम बशीर खां से प्रेम करने लगती है और उससे विवाह करना चाहती है किन्तु बशीर उसे धोखा देकर दस हजार अशर्फियों में बेच देता है। जिस विचार सूत्र को उपन्यास में सिद्ध किया गया है उसे बशीर उपन्यास के प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देता है– ''याद रखो दिलाराम, कि सियासत भी पेशेवर रक्कांसा होती है। उसके पास दिल नहीं होता है। और कोई हुस्न की मलिका ऐसी बेदिल सियासत को अपनी चेरी बनाए बगैर तख्तोताज की मलिका बन ही नहीं सकती।''[58] उस समय के राजनीतिक दाँव–पेंच बताता हुआ वह उससे आगे कहता है– ''याद रखो मुन्नी सियासत लेन देन से ही काबू में आती है। उसे अपनी मर्जी के मुताबिक चलाने वाले को बहुत सी बातों में अपनी बहुत सी मर्जियों को नजरअंदाज भी करना होता है। अपना दिल तोड़ने के लिए तुम भले ही मुझसे नफरत करो, मगर दिल तोड़ने का मेरा अहसान मत भूलो।''[59]

बशीर खाँ द्वारा दिल तोड़े जाने पर नवाब समरू की पत्नी बनकर वह राजनीतिक खेल प्रारम्भ करती है। नवाब समरू जैसे खूँखार विदेशी भेड़िए को अपने सौन्दर्य एवं प्रतिभा से अपने वश में कर लेती है। सारी दुनिया को धोखा देने में कुशल समरू, बेगम के अद्वितीय सौन्दर्य और उसकी चालाकियों के मकड़जाल में फँस जाता है। बेगम समरू अनुभव करती है कि अंग्रेजों के भय से मुगल शहंशाह के दुश्मनों को भड़काना उचित नहीं है। वह दिल्ली के तख्त को मजबूत करना चाहती है। वह नवाब समरू से शाह जमाना का साथ देने को कहती है ताकि वह एक दिन दिल्ली के तख्तोताज का मालिक बन सके। नवाब समरू भी बेगम की राजनीतिज्ञता को स्वीकार करता है और कहता है– ''सियासती शतरंज में मुझे नई चाल सिखलाने वाली पहली सख्सियत तुम्हारी ही है जुआना। मैंने अब तक अपने लिए बहुत चाहा और सोचा था। हैरत है कि अँग्रेज यही चाहते हुए सियासत में हर कदम आगे बढ़ रहे हैं और हमने कभी गौर तक नहीं किया।''[60]

बेगम समरू (जुआना) के राजनीतिक चरित्र के माध्यम से उपन्यासकार ने तत्कालीन षड्यन्त्रपूर्ण राजनीति का पर्दाफाश तो किया ही है साथ ही यह भी प्रतिपादित किया है कि जो राजनीति को दिल से अधिक महत्त्व देते हैं, उनका हाल जुआना जैसा ही होता है। देश को शासित करने के लिए दिल पर शासन करना और उसे नियंत्रण में रखना अनिवार्य है। बशीर खाँ का यह कथन उपन्यासकार के मन्तव्य को स्पष्ट करता है– "तुम्हारी रियासत महज अब तुम्हारा दिल भर ही हैं दिलाराम। जब उस पर ही तुम्हारा काबू नहीं, तो यह समझ लो कि नवाब समरू की दी हुई रियासत के किसी आदमी पर भी अब तुम्हारा वह काबू नहीं रह गया। दिल के काबू में रहने ही से आलम काबू में रहता है।"[61]

राजनीति की गोपन प्रकृति के संबंध में कहा गया है– "सियासत का खेल पर्दा दर पर्दा सात फाटकों में बंद होकर खेलना चाहिए ताकि इस हांथ की खबर उस हांथ को भी न लगे।"[62]

(ग) सामाजिक परिवेश–

एकदा नैमिषारण्ये

सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत इस उपन्यास में आर्यों की वर्ण व्यवस्था और सामाजिक अराजकता पर अधिक विचार हुआ है। राजनीतिक परिवेश के अन्तर्गत कहा जा चुका है कि शक और कुषाणों ने क्षत्रिय और ब्राह्मण वंशियों को मार–मारकर हीन जातियों को अधिकार देकर क्षत्रिय बनाया। हठ योगी आदि तान्त्रिक अपनी कामना सिद्धि के लिए पूरे समाज को नष्ट कर रहे थे। नारद सोचने लगे–

"अनास्था से अनैतिकता और सामाजिक विघटन उत्पन्न हो रहा है। समाज को विश्रंखलित करने हेतु, स्त्री–पुरुषों को काम संबंधों की खुली छूट दे देना ही सामाजिक चेतना को लोप करने की पहली सीढ़ी है।"[63] समाज में नर्तकी, वेश्याओं को केवल स्थान नहीं मिला बल्कि वे लवण शोभिका की तरह दाँव–पेंचों में भाग भी लेने लगीं। कुछ राजनीतिक कारणों से और कुछ वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध जाने पर वर्ण च्युत हो जाती थीं। इन्द्रप्रस्थ की यह दुर्दशा है कि विष्णु दत्त के पराजित होकर भाग जाने पर स्त्रियाँ दासी हो गयीं और खुले आम संबंध स्थापित हो गये। पुरी का अधिकारी चाण्डाली के गर्भ से उत्पन्न निरायण का पुत्र है। यहाँ–

"इस्तिरियों को सबसे उत्तम काम सुख दे सके उसी का वरण सबसे शिरेष्ठ है। याँ पै निरबल पुरुष ही शूद्दर होवे हैगा।"[64] बनवासी डुम्ब जाति के लोगों को जिनके पूर्वज बाल्मीकि थे, अस्पृश्य माना जाता था। भागवत धर्म के प्रचारक सोमाहुति जातिवाद का विरोध करके उसका आतिथ्य ग्रहण करते हैं। ब्राह्मणों का एक वर्ग निकम्मा होकर श्राद्ध तर्पण के भोज के लिए व्याकुल है, तो दूसरा वर्ग मिथ्या अहंकार में मग्न था। किसी ब्राह्मणी का बलात्कार करने के लिए इच्छवाकु वंश के युवराज– "राजनीतिक शक्ति के रूप में परम तेजस्वी त्र्यरूणि चांडाल होकर वन में गया और वशिष्ठ राज्य के संरक्षक

बनकर बिना मुकुट के महराज बन गये।"[65] "इन्द्र ने जब भरत गोत्रीय क्षत्रियों को परास्त करके उनके कुलों को छिन्न–भिन्न होने पर बाध्य किया तो वे यत्र–तत्र अनेक क्षत्रिय कुलों में भटक कर खो गये। अनेक वेश्यावृत्ति प्रधान हो गये।"[66] दिवाकर, पृथ्वी पुत्र शाण्डिल्य गोत्रीय ब्राह्मण पिता एवं शूद्र माता की संतान थे। लेकिन उन्होंने "ऐसा ज्ञान अर्जित किया कि आज वे काशी के प्रायः सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण, अब्राह्मण विद्वानों के द्वारा एक सा आदर पाते थे।"[67]

राजनीतिक कारणों से ब्राह्मणों के अहम के कारण समाज में वर्ण व्यवस्था एवं जाति–पाँति के जो भेद–भाव और अराजकता फैल रही है, उसका विरोध करते हुए भार्गव सोमाहुति सच्चे ब्राह्मणत्त्व की व्याख्या करते हुए कहते हैं–

"यदि जाति ब्राह्मण हुआ करती राजन! तो अप्सरा पुत्र वशिष्ठ भी ब्राह्मण न मानें जाते। दासी पुत्र कवश और ऐल्यूस आदि को क्या हम वह पूज्य भाव देते ? भगवान वेदव्यास मल्लाहिन के गर्भ से जन्मे थे और पराशर चाण्डाली के पुत्र थे। जाति इनमे से एक के भी ब्राह्मणत्व प्राप्त करने में बाधक न बन सकी। ज्ञान, कर्म और धर्म को भी मैं ब्राह्मण नहीं मानता। ज्ञान और धर्म अपने पूर्व कर्मानुसार सभी को प्राप्त हो सकता है। क्षत्रियों में भी अनेक धर्म ज्ञानी पुरुष हुए हैं, दान, धर्म शीलता वैश्यों और शूद्रों में प्रायः देखने को मिल ही जाती है। ब्राह्मण मनुष्य की वह दृष्टि है जो काया और मानवीय चेतना के विभिन्न भेदों की दीवार हटाकर विशुद्ध सत्य को देखती है।"[68] तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति संस्कार हीनता को व्यक्त कर रही थी। तो उसी में से नारद, सोमाहुति आदि संतों ने नये पौराणिक धर्म, नयी मानवता और नूतन संस्कृति के विकास का सफल प्रयास किया है।

यहाँ सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत ही पारिवारिक जीवन के संबंध में भी कुछेक झलकियाँ उपन्यास में प्राप्त हो जाती हैं। इज्या और सोमाहुति के प्रेम में काया कर्षण, स्वच्छन्दता, भावना और सात्विकता का सम्मिलित रूप प्रकट होता है। सोमाहुति कहते हैं–

"काम की प्रवृत्ति में मिलन, सृजन और आनन्द ये तीनों गुण होते हैं। हमारे मन अपने दोनों छोरों पर एक ही तत्व के होते हैं, भले ही उनका भाव–बोध अलग–अलग हो, पुरुष और प्रकृति तत्वों के मिलन और सृजन से उत्पन्न आनन्द का बोध क्या हमें इस समय अपनी पूर्णता में प्राप्त नहीं हुआ ? प्रिये!"[69] संस्कार हीन दासों में मुक्त काम संबंधों को देखकर नारद को एक झटका सा लगा किन्तु वे कहते है–

"प्रेम में सब कुछ शुद्ध हो जाता है।" इज्या का जीवन, व्यवहार और लठैतों से आत्म रक्षा तत्कालीन समाज में नारी के व्यक्तित्व और शक्ति रूप को प्रकट करता है। माँ बाशिष्ठी भी यह सिद्ध करती है कि उस समय नारी भी राजनीतिक गति विधियों में भाग लेती थीं।"[70]

सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत ही उस समय के धार्मिक परिवेश पर भी विचार कर लेना असंगत न होगा क्योंकि धर्म और समाज एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं।

उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक परिवेश का यथार्थ चित्र अंकित किया गया है। समाज में धर्म के नाम पर जो अत्याचार हुए हैं देश और समाज में जो विभाजक तत्व पैदा हुए हैं, जो अराजकता फैली है, उनकी ओर संकेत करते हुए सच्चे धर्म या भागवत धर्म का प्रतिपादन किया गया है। संदर्भ के अनुसार वैदिक काल से आती हुई धार्मिक परंपराओं का भी उल्लेख है। उस समय के ऋषि, मुनि या तपस्वी साधु–संतों के नाम और उनके आश्रम, तीर्थ स्थान, तीर्थ यात्राएँ, धार्मिक वातावरण के स्वरूप को व्यक्त करती हैं। धार्मिक सम्प्रदायों में शैव, वैष्णव, हठ योग, त्रान्त्रिक, नाग साधु, शक्ति आदि की चर्चा है। सभी अपने सम्प्रदाय को ही सर्वश्रेष्ठ मानते थे। देवी–देवताओं के संबंध में भी मतभेद था–

''यजुर्वेद के अनुसार 'श्री' और 'लक्ष्मी', विष्णु की पत्नियां हैं। शाक्तों के अनुसार 'श्री', शिव की शाक्ति है। 'लक्ष्मी' कहीं 'वरुण' की पत्नी के रूप में वर्णित हैं, तो कहीं 'इन्द्र' या 'कुबेर' की पत्नी के रूप में। 'तारा' के रूप में वह 'तार्की' शक्ति है।''[71] नारद इन सबको सम्मिलित करते हुए पौराणिक दृष्टि सामने रखते हैं–

''शक्ति के अनेक रूप और नाम हैं। हम 'श्री' और 'लक्ष्मी' को अब से एक रूप मानेंगे, हिरण्य गर्भा 'श्री', प्रकृति अब हिरण्य गर्भ पुरुष की अर्द्धांगी है।''[72]

उस समय धर्म के संबंध में प्रायः पाँच दृष्टिकोण मिलते हैं।

1. वैदिक परंपरा के मंत्र दृष्टा श्रृंगी, फूंगी आदि ऋषि जिनका दृष्टिकोण तात्विक है।
2. रूढ़ धार्मिक परंपरा का समर्थक कर्म काण्डी ब्राह्मण वर्ग, जो अहंकारी या और स्मृतियों के नियमों का पालन न करने पर समाज बहिष्कार करता था।
3. देशी–विदेशी साम्प्रदायिक धर्म के समर्थक, जिनका दृष्टि कोण भी संकीर्ण था और जो अपने सम्प्रदाय का ही हठ पूर्वक आग्रह करते थे।
4. शूद्र वर्ण, संकर लोगों का समुदाय, जो जाति–भेदों को न मानकर ज्ञान और सच्ची धर्म साधना में रत रहता था।
5. सोमाहुति, नारद, शौनक आदि जो समन्वय के द्वारा पौराणिक या भागवत धर्म की स्थापना करना चाहते थे। धार्मिक साधना मार्गों में ज्ञान, कर्मयोग, भक्ति तन्त्र–मन्त्र, वामाचार आदि सभी का उपन्यास में उल्लेख है।

उस समय की सामाजिक, धार्मिक स्थिति में एक महत्वपूर्ण अंश वेदों से दूर रखे गये शूद्रों, चाण्डालों, वर्ण संकरों आदि में सच्ची धार्मिक भावना का विकास है। दिवाकर, ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता का पुत्र है, परन्तु–

''दिवाकर जी के आश्रम में प्रायः ऐसे विद्वानों को स्थान मिला था जो ब्राह्मण न होने के कारण अन्य गुरू कुलों में सामाजिक दृष्टि से श्रेष्ठ स्थान नहीं पाते थे। प्रायः चार–पाँच सौ वर्षों से जब से सम्राट पुण्य मित्र शुंग के काल में ब्राह्मण धर्म का

पुनरुत्थान हुआ तब से ब्राह्मणों में राजमद के कारण दम्भ की मात्रा कुछ विशेष हो गई थी।''[73] दिवाकर के– ''आश्रम में प्रायः ऐसे ही विद्वान और छात्र अधिक थे, जिन्हें अब्राह्मण माना जाता था। इसके अतिरिक्त उन्होंने पार्श्व नाथ पंथी और अचेलक, श्रावको, हीन यानी, बज्र यानी, बौद्धों, पाशुपतों, तमिलनाडु के आलवारों, आजीविकों आदि भारत के प्रायः सभी मतों और दर्शनों का सदा बहार मेला अपने यहाँ लगाया था। काशी–सारी दुनिया से बँधी थी और दिवाकर आश्रम का एक अनोखा वैभव था। इसलिए दुनिया के लोग यहाँ आते रहते थे।''[74]

तत्कालीन सामाजिक स्थिति में बौद्ध धर्म पतन की ओर जा रहा था– ''हुविष्क बिहार में आज बौद्ध नहीं 'मार' (कामदेव) बैठा है, उस पतित ने पाप के प्रचार और प्रसार का मानो ठेका ही लिया है। स्त्री जाति का शील सुरक्षित नहीं रहा।''[75] उस समय तक 'शिव', 'राम' और कृष्ण के मन्दिर बने और विधिवत् पूजा होती थी। सोमाहुति ने दक्षिण निवासी हीन जाति के परम शिव भक्त व्यक्ति के गोत्र 'देव गण' को प्रतीक रूप में स्वीकार करते हुए कहा– ''इनके गोत्र 'देवगण' को गजपति पक्षों के अति पूजित वक्र तुण्ड महाराष्ट्र के विनायक और नर रूप नारायण अपने विघ्न हरता नागराज गणपति के प्रति भी अपनी श्रृद्धा व्यक्त करने के लिए मैं भारतीय गणतन्त्र के प्रतीक के रूप में शिव पुत्र गणपति की वन्दना करता हूँ। इनकी पूजा सारा राष्ट्र करेगा। शैव वैष्णव आदि सभी सर्व प्रथम इस राष्ट्र प्रतीक की बन्दना ही भविष्य में करेंगे।''[76]

बूँद और समुद्र

नागरजी का यह उपन्यास सामाजिक उपन्यास है और उत्तर भारतीय जन–जीवन से संबंधित है। पूरे उपन्यास में मूलरूप से सामाजिक परिवेश ही चित्रित किया गया है। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के कुछ वर्ष बाद लिखा गया यह उपन्यास दो विरोधी विचारों के द्वन्द्व को चित्रित करता है। एक ओर आदिम युग के संस्कारों, परंपराओं और रूढ़ियों तथा निराधार कथाएँ हैं, तो दूसरी ओर नये युग की सुधारवादी और प्रगतिशील विचार धाराएँ। एक को दूसरे पर विजय प्राप्त करने की बलवती इच्छा है। इसी आधार पर नागरजी ने इस उपन्यास में एक मुहल्ले को भारत के जन–जीवन का प्रतीक मानकर उसमें रहने वाले विभिन्न श्रेणियों के व्यक्तियों का चित्रण किया है। उपन्यासकार इसी संक्रान्ति कालीन समाज का चित्रण करता है, कुछ व्यक्ति अपनी हीनावस्था से उभरने का प्रयत्न तक नहीं करते और अपने समाज विरोधी दृष्टिकोण का परिचय देते हुए कुछ बुद्धिजीवी समाज विरोधियों का विरोध करते है और यहीं विचारों का द्वन्द होता है। विचारों के इस द्वन्द्व को लेखक विकास का प्रतीक स्वीकार करता है–

''विचारों में भेद हो सकता है, विचारों के भेद से स्वस्थ द्वन्द होता है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी।''[77]

पात्रों के क्रिया–कलाप, विचार एवं भावनाएँ समाज की सारी सामाजिक स्थितियों को स्पष्ट कर देते हैं।

उपन्यासकार ने समाज के विभिन्न वर्गों को दृष्टिगत रखते हुए एक वर्ग में विरहेश, ताई, नन्दो, वनकन्या के पिता जगदम्बा सहाय, बड़ी, छोटी और तारा आदि को प्रतीक बनाया है और दूसरे वर्ग में सज्जन, महिपाल, कन्या एवं कर्नल प्रतीक के रूप में रखे गये है। एक तीसरे वर्ग में जानकी शरन, राजा जी, सालिगराम को रखा गया है जो राजनीति की आड़ मे अपना उल्लू सीधा करने का प्रयास करते हैं। उपन्यासकार ने विभिन्न पात्रों की पारिवारिक परिस्थितियों का पूरा विवरण देकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य पर उसके पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है। तत्कालीन समाज में होने वाले टोना, टोटका आदि का चित्रण ताई और नन्दों जैसे नारी पात्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया है। समाज में विरहेश जैसे प्रेम के दीवाने और आवारा किस्म के व्यक्ति भी पाये जाते हैं। कुछ ऐसी स्त्रियाँ जो समाज में रहकर ही दूसरी स्त्रियों का शोषण करवाती है। 'नन्दो' इस प्रकार की एक नारी पात्र है। जो 'ताई' के साथ मिलकर 'मनिया' को विधवा 'सन्तो' से फँसवाती है और अपनी बड़ी भाभी 'मोहिनी' को 'विरहेश' के जाल में फँसा देती है। यहाँ तक कि 'नन्दो' अपनी माँ को मार कर घर की एकाधिकारिणी बनना चाहती है। इसी प्रकार उपन्यास की नायिका 'कन्या' के परिवार का वातावरण भी बहुत विषैला था। किन्तु उसने अपनी नैतिकता के बल पर आगे चलकर यहाँ तक कि अपने पिता को अपनी भाभी की आत्म हत्या का कारण मानते हुए वह उन्हें जेल भिजवाने तक में भी कोई संकोच नहीं करती। इस प्रकार समाज के दो नारी वर्ग जिनमें 'कन्या' देश और काल की परिस्थितियों से विज्ञ और जागरुक बनकर, समाज सेविका बनकर जन कल्याण में संलग्न हो जाती है और दूसरे वर्ग की ताई, नन्दो और मोहिनी अपनी परिस्थितियों से विद्रोह न कर सकीं और हार गई।

पुरुष पात्र भी तत्कालीन् सामाजिक और पारिवारिक वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते हैं। 'महिपाल' का बचपन ननिहाल में बीता, जब तक माँ जीवित रहीं तब तक तो सब ठीक रहा। उसके पश्चात् वह अपनी उपेक्षा प्राप्त कर और वहाँ के दूषित वातावरण से ऊब गया। तत्कालीन् जमीदारों और ताल्लुकेदारों की समाज में किस प्रकार की गति विधियाँ थी, उपन्यासकार ने महिपाल के ननिहाल की जमीदारी फ़िजा को चित्रित किया है–

"ताल्लुकेदारी फिजा में मदक, चरस, गाँजा, शराब, मारपीट, अत्याचार, व्यभिचार, रण्डी बाजी, अप्राकृतिक मैथुन आदि तरह–तरह की गन्दगियाँ देखकर वह दिन–रात तपता रहता है।"[78]

तत्कालीन समाज में विशेषकर ब्राह्मणों में ऊँच–नीच ब्राह्मण होने और अधिक देहज लिये जाने की समस्या का भी चित्रण 'कल्याणी' और 'महिपाल' के पारिवारिक बात–चीत में प्रकट हो जाता है। 'कल्याणी' अपनी पुत्री का विवाह उच्चकुलीन ब्राह्मण (बाला के शुकुल) के परिवार में करना चाहती है किन्तु, आर्थिक अभाव के कारण 'महिपाल' इससे सहमत नहीं होता। वह उच्च कुलीन ब्राह्मणों के विषय में व्यंग्य करता हुआ कहता है–

"बाला पियें प्याला और फिर बाला के बाला।"[79] इसी दहेज पर कटाक्ष करता हुआ वह कहता है–

"आज तो समाज का शासन ही बेईमानों और लुटेरों के हाथ में है। लोक जीवन की मान्यताएँ वहीं हैं जो ये चलाते हैं। जो इस–धाँधली बाजी को समाज की सौभाग्य चमक बताकर अपना खोटा सिक्का चला रहें, वे ये भूल जाते है कि करोड़ों भूँखे, बेकार और नंगे उनके पीछे 'मरता क्या न करता' वाली स्प्रिट लेकर पागल जोश के साथ बढ़े चले आ रहें हैं। इन मुट्ठी भर धाँधली बाजों को जला कर खाक कर देंगे तब मेरी लड़कियों के साथ ज्ञान रूपी दहेज जायेगा और उसी की कीमत होगी। चोर, साले, बदमाश, मेरी गरीबी का मजाक उड़ाते हैं।"[80]

समाज में अधिकांश जनता "हम तो बच्चों बुड्ढे हो गये यही सब देखते–सुनते। खून के आँसू रोके दुनियाँ अपने दिन काट रही है।"[81]

लेखक की दृष्टि जन–जीवन में फैले धार्मिक आडम्बरों को देखने में भी नहीं चूकी है। गोकुल द्वारे में भितरिया जी और जलघड़िया जी में जो वार्तालाप होता है उससे स्पष्ट है कि धर्म के नाम पर केवल ढकोसला और अनैतिकता ही शेष रह गये हैं। सदियों से चले आ रहे अर्थहीन, रीति–रिवाजों एवं अन्ध–विश्वासों पर भी उपन्यासकार ने आक्रोश व्यक्त किया है–

"हमारा देश विचारों एवं रीति–रिवाजों का एक महान अजायब घर है। सैकड़ों सदियों के रहन–सहन रीति बरताव और मान्यताओं को, जो आज भौतिक विज्ञान के युग में एक दम अनुपयुक्त सिद्ध होती हैं, हमारा समाज अन्ध निष्ठा के साथ अपनायें हुए है। हर युग में जो सुधार आये, जितने ऐतिहासिक प्रभाव पड़े, उनमें से अधिकतर आज भी हमारे सिर पर बने रखे हैं। हमारे घरों, गलियों में रमें हुए साधु, बैरागी, फकीर, चण्डीपाठ करने वाले पण्डित, व्याह, मुण्डन, जनेऊ से लेकर मृतक संस्कार तक कराने वाले पण्डित, कथा बाँचने वाले ओझा, सयाने, शनीचर का दान लेने वाले भड्डरी, टोना–टोटका, दहेज, ऊँच–नीच, तैंतीस करोड़ देवता– यह बेमतलब दिमाग खराब करने वाली दकियानूसी बातें भरी हुई है। इनमें अन्ध विश्वास जमा होने के कारण हमारे समाज में आत्म विश्वास ही नहीं रहा।"[82] भारतवर्ष की आधे से अधिक जनता उपर्युक्त अन्ध–विश्वासों में दृढ़ विश्वास रखती है। परन्तु ऐसा नहीं कि सुधार हो ही नहीं रहा है कुछ नव युग नेता स्त्री–पुरुष अन्ध–विश्वासों का घोर विरोध भी करते है। जैसा कि कहा जा चुका है वस्तुतः यह काल दो विरोधी विचारों का संक्रमण काल है, इसी युगीन समाज की यथार्थ रूप रेखा उपन्यासकार ने प्रस्तुत की है।

लेखक समाज का अर्थ किसी वर्ग विशेष से नहीं जोड़ता है। वह इसका संबंध व्यक्ति से मानता है इसीलिए उपन्यास के अन्त में लेखक अपना मन्तव्य प्रकट करता हुआ कहता है–

"इस समय तो ऐसा लगता है कि इस देश में पृथ्वी पर केवल व्यक्ति रहता है, समाज नहीं। व्यक्ति केवल अपने दायरे में रहता, सोंचता और कर्म करता है। ऐसा लगता है जैसे हर व्यक्ति एक–एक द्वीप में अलग–अलग रहता है।

आज का मनुष्य अपने मन में कहीं न कहीं यह अवश्य अनुभव करता है कि वह गलत जा रहा है। इसलिए व्यक्ति अपने को नजर ओटकर हर दूसरे व्यक्ति को गलत बताता है। इससे हुज्जत बढ़ती जाती है, आंतक फैलता जाता है। मनुष्य की यह स्थिति अप्राकृतिक है।"[83]

'महिपाल' व्यक्ति और समाज के अलगाव से अपने जीवन संघर्षों से ऊब कर आत्म हत्या कर लेता है। उसके शव के पास मिले पत्र में इसी व्यक्ति और समाज के पृथकत्त्व को लेकर कुछ वाक्य लिखे थे–

"व्यक्ति–व्यक्ति अवश्य रहे, पर उसके व्यक्तिवादी चिन्तन में भी सामाजिक दृष्टिकोण का रहना अनिवार्य हो। मैं अकेला भी हूँ पर बहुजन के साथ में भी हूँ। दुख–सुख, शान्ति–अशान्ति आदि व्यक्तिगत अनुभव हैं, पर ये समाज में प्रत्येक व्यक्ति के हैं। अतएव हमें यह मानना चाहिए कि समाज एक है, व्यक्ति तो अनेक हैं। सूर्य, चन्द्रमा, धरती सब एक–एक है, भले ही अनेक तत्वों से इनका निर्माण हुआ हो।"[84] उपन्यासकार कामना करता है "सुख–दुख में व्यक्ति से अटूट संबंध बना रहे – जैसे बूँद से बूँद जुड़ी रहती है, लहरों से लहरें। लहरों से समुद्र बनता है। इस तरह बूँद में समुद्र समाया है × × × × व्यक्ति की चेतना जागकर ही रहेगी।"[85]

अमृत और विष

यह उपन्यास भी पूर्णतः सामाजिक उपन्यास है। समाज की विभिन्न समस्याओं को चित्रित कर उनका समाधान प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य है। उसने समाज में व्याप्त कुरीतियों, गलत परंपराओं, भ्रष्टाचार एवं व्यभिचार आदि का अनुभव प्रस्तुत किया है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही उपन्यास का नायक 'रमेश' अपनी बहन के विवाह की तैयारियों में संलग्न है। बारात आती है और तब उसे बारातियों के नाज–नखरे तथा गाली गलौज का सामना करना पड़ता है। बारातियों और समधियों से प्राप्त अपमानों के तीर लेखक की स्मृति के तर्कश से निकल और कार्य संकल्प के धनुष से छूट कर लेखक की कल्पना में विध गये।

सामाजिक जीवन में विवाह का प्रमुख महत्व होता है। इसलिए उपन्यासकार ने इस पर अपनी गहरी दृष्टि डाली है। उस समय की महंगाई और आर्थिक, सामाजिक विपन्नता का चित्र देखिए–

"भैया पौने दो सेर का आँटा मिल रहा है। सेठों, रिश्वत खोरों की बात छोड़ दो वर्ना किसका अच्छा दिन जा रहा है, आज के जमाने में। घर–घर मटियारें चूल्हें है, अपनी–अपनी धोतियों में सभी नंगे है।"[86]

काम नारी–पुरुष का अभिन्न अंग है, बिल्कुल भूँख–प्यास की भाँति। 'लच्छू' इसी के सहारे अपनी उन्नति करना चाहता है, वह न चाहते हुए भी केवल अपनी उन्नति के लिए 'मिसेज माथुर' और इसी प्रकार की, बड़े अधिकारियों की विवाहिता नारियों से जिनकी कामेच्छा की पूर्ति अपने पतियों से नहीं होती और वे नित्य–प्रति, नये–नये युवकों की तलाश में रहती हैं– से शारीरिक संबंध बनाता है। लेखक का विचार है कि "औरत–मर्द का मिलना शारीरिक जरूरत है। भूँख–प्यास की तरह 'सेक्सुअल अर्ज' (कामेच्छा) भी एक कुदरती और शारीरिक जरूरत है और उसे पूरा ही करना चाहिए।"[87]

समाज में ऐसे भी प्रकरण मिलते है जो नारी–पुरुष के अवैध शारीरिक संबंधों को प्रकट करते हैं। समाज में इसी वृत्ति के कारण बड़े कहलाने वाले लोग अपनी ऐसी सन्ताने दुनियाँ में छोड़ जाते हैं। मनुष्य इतना पतित हो गया है कि वह पगली और भिखारिन स्त्रियों को भी नहीं छोड़ता, घरों में प्रति–दिन चौका,बरतन करने वाली नौकरानियाँ भी ऐसे काम लोलुपों का शिकार होती है–

"छिः ये बड़े लोग अपनी काम वासना के निमित्त से कितने आवारा पिल्ले–पिल्लियाँ, हर पीढ़ी में दुनिया को अपने निरर्थक अर्थ से प्रेरित होकर भौंकने और काटने के लिए छोड़ जाते हैं। लेकिन क्या ये अवारा संताने अकेले बड़े लोग ही छोड़ते हैं ? छः, सात दिन पहले गोला गंज के फुट पाथ पर एक पगली भिखारिन सरे आम बच्चा जन रही थी और पब्लिक तमाशा देख रही थी। कुछ लोग पगली के प्रति सदय थे और उस आदमी को कोस रहे थे जिसने नव जन्मा को उसके गर्भ में प्रतिष्ठित किया। किसे दोष दिया जाय। वैध–अवैध सभी तरह की सन्ताने अधिकतर स्त्री–पुरुषों की भोगेच्क्षा वश ही पैदा होती हैं।"[89] डॉ0 आत्माराम जो इस समय बहुत बड़े आदमी हैं वह भी अवैध सन्तान ही हैं।

उपन्यासकार ने अन्तर्जातीय विवाहों पर भी दृष्टि डाली है, जो प्रायः प्रेम विवाहों पर ही आधारित होते हैं। 'रानी' का विवाह लेखक की इसी दृष्टि का परिचायक है। इस अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा उपन्यासकार युग–युग से अवरुद्ध युवा शक्ति को और भारतीय चेतना को गति एवं कर्मण्यता प्रदान करना चाहता है। आज समाज का चिन्तन और उसके अनुरूप मन कुछ संस्कारित हुए हैं। 'रानी' अपने पिता 'रद्धू सिंह' जिनका मन अभिजात्य संस्कारों से युक्त है, को झंझोड़ने में अपनी सौतेली माँ और मिसेज खन्ना से पर्याप्त सहयोग प्राप्त करती है। 'रानी', 'कुँवर रद्धू सिंह' जो क्षत्रिय हैं और 'रमेश' ब्राह्मण है। 'मिसेज खन्ना' द्वारा अक्षत यौन विधवा 'रानी' का विवाह कराया जाता है। नगर भर के लग–भग डेढ़ हजार व्यक्तियों का भोज कराकर समाज की अधिकांश प्रगतिशील और कुसंस्कारों से लड़ने वाली शक्तियों को उपन्यास कार ने एक मंच में एकत्र किया है। समाज को प्रगतिशील बनाने का उपन्यासकार का यह अपना दृष्टिकोण है। 'रमेश' युवा शक्ति के दृष्टिकोण का उल्लेख अपने होने वाले श्वसुर से करता हुआ कहता है–

"आप आजाद भारत में इस तरह दो शरीफ युवक–युवतियों को जो कि बालिग हैं, समझदार हैं, स्वतंत्र हैं– शरीफ आदमियों की तरह विवाह करके अपना संसार बनाना चाहते हैं, इस तरह अपमानित कैसे कर सकते है।"[89]

आज का नव युवक प्राचीन परंपराओं में बँधकर नहीं चलना चाहता क्योंकि इससे व्यक्ति के विकास में बाधा पड़ती है। 'रमेश' इसीलिए सोंच समझ कर अलग मकान ले लेता है।

उपन्यासकार ने समाज में युवकों की विजय और उनकी शक्ति का बड़े ही तटस्थ भाव से चित्रण किया है। सम्भवतः हिन्दी में अभी तक कोई दूसरा उपन्यासकार यह करने में असमर्थ रहा है। लेखक युवा शक्ति के जागरण में अत्यधिक रुचि रखता है। इसीलिए वृद्ध और युवक के संघर्ष में युवकों को विजय श्री दिलवाता है क्योंकि भविष्य को युवकों के साथ ही चलना है।

इस उपन्यास में युवा वर्ग के आक्रोश, परिवर्तनशीलता की तीव्र अकुलाहट, भावनाओं और आकांक्षाओं का तीव्र संघर्ष इतने सूक्ष्म अध्ययन के साथ यथार्थ परिवेश में चित्रित किया गया है जो परम प्रसंशनीय है। समाज में रुप्पन लाला जैसे व्यक्ति भी हैं जो धर्म और संस्कृति का नारा लगाकर समाज को अपने भ्रष्ट आचरण से गुमराह करते है। किन्तु, अब उनके दिन भी लद चुके हैं। दूसरी ओर 'लाला' बैजनाथ एक सभ्य किन्तु अनैतिक रूप से पैसा कमाने वाले व्यक्ति के रूप में चित्रित है। इसीप्रकार रोटी–रोटी को मोहताज होने पर भी अपने आभिजात्य संस्कारों को छोड़ने में असमर्थ 'रद्दू सिंह' जैसे व्यक्ति भी हैं। डा0 'आत्माराम' प्रतिकूल परिस्थितियों में विजय की कामना रखने वाले व्यक्ति हैं। इसीलिए लेखक ने उन्हें 'आला इन्सान'[90] और 'ब्लू ब्लड'[91] (आभिजात्तीय वंश संस्कार) कहा है। समाज में 'बानो' जैसी "तेज सनसनाहट पैदा करने"[92] वाली और आज के स्वतन्त्र नारी समाज की प्रतीक है। वह स्वतंत्र रहकर अपनी "जिन्दगी का नक्शा आप बनाने"[93] वाली युवती है। वह जीवन में "बायोलोजिकल अर्जेज"[94] (कायिक आवश्यकताए) को मानते हुए भी नारी की अस्मत का हउवा अपने साथ नहीं बाँधती। वह मुक्त अभिसार में विश्वास करके अपने जीवन को आत्म निर्भर बनाने वाली युवती है। नारी के इस रूप में उपन्यासकार ने समाज में नारी की नवीन आवश्यकताओं और अनुभूतियों का अनुभव किया है। नागर जी आधुनिक समाज में स्त्री का किसी की रखैल बनकर रहना पसन्द नहीं करते अन्य उपन्यासकारों ने जहाँ आज की नारी को एक पति का त्याग कर दूसरे से बँध जाना दिखाया है वहीं नागरजी की यह नारी अपनी कायिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भी स्वतन्त्र रहना चाहती है और यह व्यभिचार की सीमा में भी नहीं आता।

उपन्यासकार युग–युग के कुण्ठा जनित जीवन को फूँक और जलाकर नारी को स्वच्छन्द एवं परंपराओं से मुक्त देखना चाहता है, क्योंकि समय की गति को उसका कर्त्ता भी नहीं रोंक सकता। "घड़ी अगर वक्त बताने से इन्कार कर दे तो क्या वक्त रुक जायेगा ?"[95]

नागरजी समाज में व्यक्ति और समाज को संयुक्त रूप में ही देखते हैं–

"अंधेरे –उजाले को अलग–अलग न करके संयुक्त रूप में ही देखना चाहिए। जैसा कि वह वस्तुतः है– वह एक है–दो नही।"[96] समाज में सुख–दुख आते जाते रहते हैं किन्तु मनुष्य को कर्म करते रहना चाहिए। "जड़ चेतन मय, विष–अमृतमय, अधंकार–प्रकाशमय–जीवन में न्याय के लिए कर्म करना ही गति है। मुझे जीना ही होगा। कर्म करना ही होगा। यह बंधन ही मेरी मुक्ति भी है।"[97]

नाच्यौं बहुत गोपाल

'नाच्यौ बहुत गोपाल' में नागरजी ने पीड़ित–शोषित समाज की गाथा को लेकर औपन्यासिक शिल्प के अन्तर्गत एक नवीन प्रयोग किया है। इस उपन्यास में एक ओर पद दलित मेंहतर समाज की सामाजिक व्यवस्था का प्रभावी चित्रण है, तो दूसरी ओर उस समाज के आर्थिक संघर्ष के सार्थक अभिव्यक्ति मिली है। उपन्यास में मेंहतर समाज की भाग्य–गाथा को अत्यन्त स्वाभाविक एवं प्रभावकारी रूप में प्रस्तुत किया गया है। मेंहतर समाज के जिन रीति–रिवाज, प्रथाओं एवं मान्यताओं का चित्रण है वह आज भी उस समाज में प्रचलित हैं।

उपन्यास के केन्द्र में 'निर्गुनिया' का चरित्र है, जिसके माध्यम से प्रेम का चित्र अंकित किया गया है। 'निर्गुनिया' द्वारा नारी की समस्या और मेहतर समाज के द्वारा दलित वर्ग की समस्याओं को उठाया गया है। 'निर्गुनिया' ब्राह्मण वंश में पैदा हुई और ब्राह्मणी से मेहतर बनने की पीड़ा और वेदना को व्यक्त करती है। दोनों संस्कारों को भोगतें हुए जीवन की ये त्रासदियाँ आगे चलकर उसके जीवन को अनेक मोड़ देती हैं।

अनमेल विवाह और काम वासना की अतृप्ति ने और साथ ही घर के भीतर कैद रखने की कठोरता 'निर्गुनिया' के जीवन को बदल देती है। वातावरण और परिस्थिति मानव जीवन को विवशकर देती है। नागरजी ने भारतीय समाज की सामाजिक महत्ता की प्रतिष्ठा के साथ–साथ उसकी सड़ी–गली परंपराओं को भी स्पष्ट किया है। उपन्यास में समाज शास्त्रीय ढंग से हरिजनों के जीवन के क्रिया कलापों, सवर्णों की मानसिकता के प्रति उनका लगाव आदि को प्रभावी रूप में चित्रित किया गया है। "सवर्णों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों के कारण यह उपन्यास हरिजनों की युग–युग से चली आती पीड़ा का दस्तावेज बन गया है।"[98] नागरजी ने 'निर्गुनिया' के वर्तमान और अतीत के माध्यम से नारी समाज के शोषण और पुरुष के अहम का खुलकर वर्णन किया है। नारी का शोषण हर वर्ग का पुरुष करना चाहता है। पुरुष अपनी काम वासनाओं की पूर्ति के लिए किसी भी वर्ण की स्त्री को भोग्या बना सकता है, नारी जीवन बहुत विडम्बना पूर्ण है क्योंकि संघर्ष चाहे जिस प्रकार का हो अपमान नारी का ही होता है।

शतरंज के मोहरे

प्रस्तुत उपन्यास लखनऊ के शासन को केन्द्र में रखकर उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय समाज में होने वाली उथल–पुथल को चित्रित करता है। उपन्यास के शीर्षक को सार्थक करते

हुए लेखक ने तत्कालीन लखनऊ के बादशाह 'गाजीउद्दीन हैदर' का पुत्र 'नसीरूद्दीन' बादशाह की बेगम का पुत्र न होकर एक दासी का पुत्र था। बेगम ने उसे अपनी ओर मिलाकर बादशाह से अपनी कटुता का परिचय दिया किन्तु एक समय 'नसीरूद्दीन' और बेगम में शत्रुता हो गई। बादशाह की मृत्यु के पश्चात् 'नसीरूद्दीन' बादशाह बना। उसमें तथा बादशाह बेगम में शक्ति परीक्षण होता रहा। रानियों के स्थान पर दासियों की प्रभुता स्थापित हो गई। षड्यन्त्र ब्यूह बनते बिगड़ते रहे। बादशाह दूसरों के हाँथ में शतरंज का मोहरा बनकर जीवन–यापन करता रहा। लेखक ने तत्कालीन राज–परिवारों और समाज में उत्पन्न घबराहट, अव्यवस्था और स्वार्थ परता का सजीव चित्र उपस्थित किया है। इस काल की उदासी और अन्धकार के बीच दिग्विजय ब्रह्मचारी जैसे कुछ पात्रों का सृजन कर पीड़ित प्रजा की सामूहिकता और एकता के लिए प्रयास करवाया है। यह सामूहिक एकता एक उभरती हुई शक्ति थी, बाद में यह एक विराट जन चेतना के रूप में विकसित हुई, किन्तु इस जन चेतना का संवाहक ब्रह्मचारी इसके लिए अनेक यातनाएँ सहता है।

इस प्रकार उपन्यासकार ने इस काल के फलक पर पात्रों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक जीवन और मानव चरित्रों के चित्र अनेक आयामों के बीच उद्घाटित किये हैं।

मानस का हंस

'मानस का हंस' में सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत वर्णाश्रम एवं जाति व्यवस्था विषयक विवेचन प्राप्त होता है। तुलसी ने अपने जीवन में सभी जातियों को संगठित करने का प्रयास किया। इसी क्रम में उन्होंने काशी में विभिन्न वर्णो एवं जातियों के व्यक्तियों से रामलीला का आयोजन करवाया। उपन्यास के आमुख में लेखक ने अपनी प्रेरणा के संबंध में लिखा है– ''गोसाई जी द्वारा आरम्भ की गई रामलीला से संबंधित बातें सुनते–सुनते एकायक मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि तुलसी बाबा ने किसी एक स्थान को अपनी राम लीला के लिए न चुनकर पूरे नगर में उसका जाल क्यों फैलाया ? कहीं–कहीं राजगद्दी, कहीं नक कटइया, अलग–अलग मुहल्लों में अलग–अलग लीलाएँ कराने के पीछे उनका खास उद्देश्य क्या रहा होगा ?''[99]

तुलसी के जनवादी दृष्टिकोण को आमुख में स्पष्ट करते हुए नागर जी कहते है– ''रूढ़ि पंथियों से तीव्र विरोध पाकर यदि ईसा आर्तजन समुदाय को संगठित करके अपने हक की आवाज बुलन्द कर सकते थे, तो तुलसी भी कर सकता था। समाज संगठन कर्त्ता की हैसियत से सभी को कुछ न कुछ व्यावहारिक समझौते भी करने पड़ते हैं। तुलसी और हमारे समय में गाँधी जी ने भी वर्णाश्रमियों से कुछ समझौते किए पर उनके बावजूद उनका जनवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। तुलसी ने वर्णाश्रम धर्म का पोषण भले ही किया हो, पर संस्कार हीन, कुकर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को लताड़ने में वे किसी से पीछे नहीं रहे। तुलसी का जीवन संघर्ष, विद्रोह और समर्पण–भरा है। इस दृष्टि से वह अब भी प्रेरणा दायक है।''[100]

तुलसी का जन्म जिन परिस्थितियों में हुआ और फिर भिक्षुणी पार्वती के यहाँ पालन–पोषण हुआ, उससे वे अपने को उपेक्षित, परित्यक्त मानकर भी भिक्षावृत्ति को बुरा अनुभव करते थे। सबसे अधिक ठेस उन्हें तब लगती थी जब "मेरे ब्राह्मण–संतान होने और मेरे दुर्भाग्य की बातें सुना–सुनाकर वे मेरे प्रति सहानुभूति जगाया करती थी। यह बात आरम्भ से ही मेरे स्वाभिमान को धक्के मारती थी। बड़ी कठिन तपस्या थी यह।"[101]

एक अन्य स्थान पर भी तुलसी की सेवा भक्ति तथा जाति–वर्ण व्यवस्था संबंधी विचार को व्यक्त किया गया है– "हिन्दू–मुसलमान, अमीर–गरीब में कोई भेद नहीं, सबकी जाति और वर्ग एक है। वे आर्तजन हैं, उनके तन–मन नाना बाधाओं से पीड़ित होकर घबरा उठे हैं। उन्हें सहारा और प्रेम चाहिए। तुलसी, राम का खास गुलाम अथक भाव से राम जनों की सेवा करता रहा।"[102]

उपन्यासकार ने तुलसी के जीवन चरित्र के माध्यम से ब्राह्मण जाति की रूढ़िवादिता तथा पाखण्ड को एक ब्राह्मण–पुत्तन महराज के लड़के के साथ गुल्ली–डंडा खेलते हुए दिखाया है। पुत्तन रामबोला को निम्न जाति का समझकर उन लड़को के साथ खेलने से मना करते हैं। "फिर ईके साथ खेलै लगे, ऐं। ससुर नीच जात भिखारी, जिसकी देह से बास आती है, उसके साथ ब्राह्मण–छत्री के बेटे खेलते हैं, जो है सो हजार बार मना किया ससुरों को।"[103] तुलसी निर्भीकता से कहता है– "हम रोज नहाते हैं महाराज। हम भी ब्राह्मण के बेटा....."[104] पुत्तन महराज रामबोला के साथ बड़ा अत्याचार करते हैं। उसको गाँव से निकाल देते हैं और पुनः दिखाई देने पर हड्डी पसली तोड़ देने की धमकी भी देते है।

बाबा नरहरि दास के भक्तों को उनकी जाति का पता न था। भक्त जन उन्हें ब्राह्मण कहते थे और विरोधी हनुमान वंशी डोम। उन्होंने कभी अपनी जाति नहीं बताई। वे कहते थे– "पानी की कोई जात नहीं होती, जो रंग मिलाओं, वह उसी रंग का हो जाता है।"[105] 'रामचरित मानस' की चौपाई 'ढोल गवाँर शूद्र पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी' को लेकर तुलसी की बड़ी आलोचना हुई। इस उपन्यास में उसके विपरीत तुलसी को एक ब्रह्म हत्या के दोषी भिखारी को शरण देकर, उसके पाँव धोकर अपने कटोरे में भोजन कराते हुए चित्रित किया गया है। तुलसी ने यह कार्य तद्युगीन समाज एवं धर्म के विरुद्ध किया तथा अकाट्य तर्कों द्वारा इसका समर्थन किया।

शूद्र भिखारी ब्राह्मण दातादीन की हत्या के विषय में बताता है– "ई हमारी जवानी की बात है तो उन्हें हमारी घरवाली पर इश्क मिल गया। हम चुपाय रहे पंचो, सबल से निबल कैसे बोले। फिर हमारी बिटिया बड़ी भई, उहौ पर हक जमावै का जतन किहिन, तब का कहैं पंचो, हमका क्रोध आय गया। करोध में हमारी उँगलियाँ तनिक सखत पड़ गईं। उनका गला दब गया।"[106] इसे सुनकर तुलसी कहते हैं– "वह जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी कर्म से अधम था। तुम्हारी जगह और भी कोई व्यक्ति होता तो वह आवेश में ऐसा काम कर सकता था। खैर, अब तुम जाओ, कहीं दूर देश निकल जाओ। समझ लो कि तुम नया जन्म पा रहे हो। राम–राम

जपो। मेहनत मजूरी करो और जीवन में जो खोया है उसे फिर से पा लो।"[107] ब्रह्म हत्या के विरुद्ध तुलसी अकाट्य तर्क प्रस्तुत करते हैं– "मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने भी ब्राह्मण रावण को मारा था। असुर धर्मी अपना वर्ण खो देता है। पापी सदा दण्ड के योग्य है।"[108]

तुलसी के माध्यम से उपन्यासकार जाति एवं वर्ण व्यवस्था के संबंध में कहता है– "जाति–पाँति, वर्ण–वर्ग आदि सब कुछ अपनी जगह पर ठीक है, पर एक जगह मनुष्य केवल मनुष्य होता है। घर–घर में एक राम रमते हैं।"[109] जब कभी तुलसी से जाति–पाँति संबंधी प्रश्न किया जाता है वे कहते हैं– "अरे आप बड़े ना समझ हैं, इत्तीसी भी बात नहीं जानते कि गुलाम का गोत्र भी वही होता है, जो उसके साहब का गोत्र होता है।"[110]

जब युवा मण्डली तुलसी से अपनी जाति के संबंध में ऊटपटांग प्रश्न करती है तो वे केवल इतना ही कहते हैं– "धूत, अवधूत, रजपूत, जुलाहा, जो जिसके मन में आवे जी भरके कहें। मुझे न किसी की बेटी से अपना बेटा ब्याहना है और न किसी की जाति बिगाड़नी है। तुलसी अपने राम का सरनाम गुलाम है। बाकी और जो जिसके मन में आए, कहता फिरे।"[111]

इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में मुगलकालीन समाज एवं संस्कृति का जीवन्त प्रस्तुतीकरण है। सोलहवीं शताब्दी का भारत विविध सम्प्रदायों–हिन्दू–इस्लाम–बौद्ध–जैन–शैव–वैष्णव–शाक्त आदि के पारस्परिक टकराव के कारण संघर्ष–स्थल बना हुआ था। इन संप्रदायों की अपनी अलग–अलग धर्म संबंधी मान्यताएँ एवं विचार सरणियाँ थीं। तुलसी ने अपने साहित्य को सद्भावना एवं सांस्कृतिक एकता का मंच बनाया।

महाकाल

प्रथम महायुद्ध का प्रभाव भारतीय समाज पर बुरे प्रभाव के रूप में आया। देश का शिक्षित मध्यवर्गीय व्यक्ति बेकारी का शिकार होकर अनिश्चय और विद्रोह में आ गया। मजदूरों और किसानों की आर्थिक स्थिति लड़खड़ा गयी, अपने ही देश में पूँजी पतियों और अंग्रेजों द्वारा उत्पीड़ित और शोषित किसान और मजदूर वर्ग सचेत हुआ। गाँधीजी के स्वदेशी और ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त ने भारत की आर्थिक दशा में आंशिक सुधार किया किन्तु देश की आर्थिक स्थिति निरन्तर जर्जर होती गयी। बुद्धिजीवी वर्ग की सारी प्रतिभा दो जून की रोटी का प्रबन्ध करने में ही नष्ट होती दिखायी देने लगी। देश में अराजकता का वातावरण उत्पन्न हो गया। भारतीय समाज अनेक प्रकार के अन्ध–विश्वासों, रूढ़ियों, कुरीतियों और सड़ी गली जर्जर मान्यताओं से आक्रान्त था। रीति–रिवाज, खान–पान, रहन–सहन और विवाह संस्कार आदि की जटिलताओं ने व्यक्ति तथा समाज में संकीर्णता और रूढ़िवादिता को अंकुरित किया। पूँजी–पति, सामन्त और जिमीदार आदि शोषक वर्ग ने अपनी स्वार्थ पूर्ति और कुकर्मों पर परदा डालने के लिए धर्म और ईश्वर का आश्रय लिया।

'महाकाल' का मोनाई बनिया अपने व्यवसाय हेतु धर्म और शास्त्र का सहारा लेता है– "यों भूँखी मर रही है बिचारी, वैसे कम से कम खाने–पहनने को मिलेगा। वो सुखी होगी और दो पैसे मुझको भी मिल जायेंगे। भगवान जी ने अगर इस व्यपार में अच्छे पैसे बनवा दिए तो आगे चलकर एक अनाथालय और आश्रम भी खुलवाएं दूंगा। यही तो धरम की महिमा है।"[112]

सेठ बाँकेमल

इस उपन्यास में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को नागरजी ने सामाजिक परिवेश में 'सेठ बाँकेमल' और उनके मित्र के जीवन के कुछ रोचक प्रसंगों की अवतारणा कर शिल्प में बाँध दिया है। सेठ बाँकेमल को बृद्धावस्था में भी पुरानी जिंदगी के संस्मरण अब भी विस्मृत नहीं हुए हैं। यद्यपि आज का जीवन पुराने जीवन से पर्याप्त भिन्न हो गया है। वे पुराने मूल्यों को, पुरानी जिन्दगी को श्रेष्ठ मानते हैं, नये मूल्यों से उन्हें असंतोष है। सेठ बाँकेमल तथा चौबे जी– "सामंतवाद की मिटती हुई आकृति और सामंतवादी जीवन व्यवस्था में पलने वाले एक वर्ग विशेष की जीती जागती प्रतिमूर्ति हैं।"[113] हास्य व्यंग्य के माध्यम से उपन्यासकार ने सामंतवादी युग के सामाजिक सांस्कृतिक संबंधों को उद्घाटित करते हुए नष्ट होती हुई पीढ़ी का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है। सामाजिक परिवर्तन के कारण जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है उनकी ओर भी संकेत है। "पैले भइयो, कुएँ थे, और हाथ की चक्की का आटा था। घर में बहू बेटियों ने मिलकर पानी खींचा, आटा पीसा। ताजा माल भैयो, रोज का रोज खाने को मिले था, और औरतें सुसरी गेंडा बनी रहवें थीं। खुद ही देख लो बड़ी–बूढ़ियाँ अब भी जो काम करके पटक देंगी, वे आज कल की लौडियों से कहाँ होंगे। भैयो, मिनट–मिनट में तो सुसरा हिस्टीरिया विन्हे धर दवावे है। कोच्छ नहीं, खुसकैट सुसरी। फैसन है, साले जार्जेट की साड़ियाँ पैनेगीं साब, जिसमें सब बदन उघाड़ा दीखे। जब ऐसी मतें बिगड़ गई हैं, तो हिस्टीरिया न होंगे और सुसरे क्या होंगे साले। सुसरे लड़के पैदा होवें हैं, आज कल। साले चूहे के बच्चे। विस जमाने में माँ–बाप तन्दुरुस्त होवें थे, भैया औलाद साली पैदा होते ही साल भर की मालूम पड़े थी।"[114]

सेठ जी आज की पीढ़ी का भी चित्र प्रस्तुत करते हैं– "मुझे तो छिमा करियो, बड़ा गुस्सा आवे है आज कल के लौंडों पे। सालों की नसों में खून नहीं, पानी दौड़े है पानी। लौड़े थोड़ा ही है, लौंडिया हैं लौडिया। रंडियों की तरह से सुसरी माँग पट्टियाँ निकाल लीनी और चले सब मूँछ मुड़ाकर सिगरेट पीते हुए। बड़ी तोपगी समझते हैं– सुसरे।"[115] सेठ प्राचीन का समर्थन और नवीन की निंदा करते हैं। प्राचीन भारत कैसा था ? "इसी हमारे भारत वर्ष में औरतें सती होवें थीं। तिनको देवी मान पूँजे थे। अपनी इज्जत बचाने के लिए सुसरियाँ आग में जल के भसम हो जाया करें थें और अब ये जमाना आय लगा है कि घर में औरतें–लड़कियाँ ऐसे–ऐसे बाइसकोप देख

रंडियाँ हुई चली जावें साली। वई मौजें, नई कउहूँ। पैले के जमाने सुद्ध पवित्तर ही थे, ऐसी कोई वारदातें होवईं, नहीं थीं। नई, होवें थी जरूर, पर बहुत कम और सो भी बड़ी दबी ढंकी भैयो।"[116]

नवीन परिवर्तनों पर व्यंग्य करते हुए सेठ कहता है– "अब तो जमानाई बदल गया सुसरा। आज कल की पढ़ी लिखी लौडियाँ हमारी धौंस थोड़े ही माने हैं। तो बात यह है वो साला बाइसकोप चला है, सिनेमा, जिसमें साले में रोजई बताई जॉय हैं। किसी भी ऐरे गैरे खुस कैट के साथ आँख लड़ा ली और जो माँ–बाप भला चाने वाले मना करे हैं तो विनो की छाती पर सवार हो जावे हैं ससुरा। वाइसकोप में ऐसेईं गाये जाते हैं कि जगत में प्रेम ही प्रेम है।"[117]

सुहाग के नूपुर

यह उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर आधारित है। जो दक्षिण भारतीय समाज के चित्रण में भारत के स्वर्ण युग का दर्शन कराता है। उस समय बड़े–बड़े महाजनों का व्यापार जल और स्थल मार्ग से केवल भारत में ही नहीं अपितु अरब, इजिप्ट, रोम,मिस्र, पारस, यूनान आदि देशों से भी होता था। राजाओं पर भी व्यापारियों का अत्यधिक प्रभाव था। समृद्धि पूर्ण इस वातावरण में विभिन्न कलाएँ अपने चरम विकास पर थीं। नृत्यकला, वारवनिताओं की प्रतिष्ठित कला थी। राजाओं से लेकर सभी धनी और व्यापारी वर्ग इन्हें आश्रय देता था। बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रचार था। बौद्ध आश्रमों को राजाओं और श्रेष्ठ जनों का संरक्षण प्राप्त था।

वास्तव में इस उपन्यास का प्रतिपाद्य तत्कालीन् नारी समाज ही है। सम्पूर्ण समाज कुलवधू और नगरवधू की प्रतिष्ठा के बीच झूल रहा था। नागरजी ने तत्कालीन् समाज के रस, यौवन, सौन्दर्य, ऐश्वर्य और व्यापारिक दाँव–पेंच, वारवनिताओं के कुलीनों और धनाढ्य श्रेष्ठ जनों से धन अर्जित करने के दाँव–पेंच आदि सामाजिक कार्य कलापों का अत्यन्त जीवंत और कला पूर्ण चित्रण किया है।

उपन्यास में कुलवधू और नगरवधू की टकराहट का जीवंत चित्रण है। कावेरी पट्टणम के सर्वाधिक धनी व्यापारी मासात्तुवान के पुत्र 'कोवलन' और एक अन्य प्रमुख धनी एवं प्रतिष्ठित व्यापारी मानाइहन की अकेली और सुन्दरी पुत्री 'कन्नगी' का परिणय बन्धन निश्चित होता है किन्तु, परिणय पूर्व ही कोवलन राज्य की प्रतिष्ठित नृत्य–प्रवीण एवं रूप गर्विता नगर वधू माधवी के प्रेम पाश में बँध जाता है। परिणाम स्वरूप विवाहोपरान्त कोवलन आदर्श एवं प्रेम के आकर्षण में द्वन्द्वात्मक स्थिति में पड़ जाता है। माधवी वारवनिता होने पर भी एक निष्ठ प्रेम के बल पर कुल वधू के रूप में पत्नी पद पर आसीन होने की आकांक्षा रखती है किन्तु, पुरुष सत्तात्मक समाज उसकी इच्छा पूरी नहीं होने देता। अतः नारी का जीवन कुल वधू के सुहाग के नूपुरों और नगर वधू के धुँधरूओं के मध्य फड़फड़ाने लगता है।

उपन्यासकार ने नारी की सोचनीय स्थिति का कारुणिक दृश्य सामाजिक परिवेश में निबद्ध कर दिया है। उपन्यासकार नारी की इस स्थिति के लिए पुरुष को ही पूर्ण रूप से

उत्तरदायी मानता है। लेखक ने वेश्यावृत्ति की जड़ तक पहुँचने का प्रयास किया है। वेश्या के गर्भ से उत्पन्न संतान का भविष्य भी उसी की भाँति असुरक्षित है। पुरुष वर्ग अपने मनोरंजन हेतु वेश्याओं की सृष्टि करता है और फिर अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु उनके जीवन को नरक बना देता है। माधवी का दुखी स्वर वेश्या की इस पीड़ा को व्यक्त करता है–

"स्त्री का जीवन भी क्या है ? उसे सती होकर भी चैन नहीं और वेश्या होकर भी नहीं।"[118]

उपन्यासकार ने वेश्या वृत्ति के लिए नारी को विवश करने वाले समाज के ठेकेदारों तथा नारी शोषण पर आधारित सामाजिक ढांचे पर प्रखर कटाक्ष करता है– "कोई कहता है मुझे मानव मात्र से घृणा है। मैं समाज का नाश करती हूँ। कोई यह नहीं देखता कि वेश्या स्वयं अपने ही से घृणा करने पर बाध्य है। क्योंकि परम्परा से घृणा के संस्कारों में पाली जाती है। जो स्त्री किसी भी अन्य गृहणी की तरह काम काजी और जन संचालन का भार वहन करने के योग्य थी, उसे पुरुषों की विलास वासना का साधन बनाकर समाज में निकम्मा बना दिया जाता है। फिर क्यों न वह समाज से घृणा करें ?"[119]

पुरुष की स्वार्थ लिप्सा एवं काम लिप्सा पर माधवी भयंकर चोट करती हुई कोवलन से कहती है– "तुमने मेरे लिए कुछ भी नहीं किया। जो कुछ किया अपनी वासना की तृप्ति के लिए किया।"[120]

उपन्यासकार का मन्तव्य है कि वेश्याओं को पत्नी का रूप देने के लिए एक बहुत बड़ी क्रान्ति की आवश्यकता होगी, जो व्यक्ति द्वारा नहीं पुरुष समाज द्वारा ही संभव है। कोवलन इस समस्या पर माधवी से कहता है– "पुत्री अकेली तुम्हारी ही तो नहीं, अन्य वेश्याओं और दासियों की कोख से भी मेरी संताने उत्पन्न हुई हैं, फिर उन सबके लिए भी ऐसी ही व्यवस्था करनी होगी। और यदि उन सबके लिए व्यवस्था हो तो सभी वेश्या पुत्रियों के लिए क्यों न हो ? ..... नहीं नहीं इससे हमारे समाज का सम्पूर्ण क्रम ही नष्ट हो जायेगा। इसके लिए अभूतपूर्व क्रान्ति की आवश्यकता है, जो मेरे द्वारा कदापि नहीं हो सकती है।"[121]

माधवी अपने सतीत्व एवं कुलीनता की रक्षा यथा शक्ति करती रही किन्तु राज पुरूष द्वारा उसका सतीत्व भंग कर दिया जाता है और वह अंत में बौद्ध धर्म की दीक्षा ले लेती है और कांचीपुरी के दिव्यारण्य बौद्ध विहार में रहने लगती है।

सतीत्त्व और पतिव्रता नारी की विजय दिखाना नागरजी का पुराना दृष्टिकोण है। वे सामाजिक व्यवस्था में पीड़ित नारी की मर्म स्पर्शी तथा कारूणिक गाथा तो प्रस्तुत करते हैं किन्तु उसका कोई समाधान ढूंढते नहीं दिखाई देते हैं। वस्तुतः डॉ0 प्रकाश चन्द्र के शब्दों में– "एक कुल वधू के रूप में पीड़ित है दूसरी नगर वधू के रूप में, एक घर की सीमाओं में घुट रही है, दूसरी खुले समाज में असफल विद्रोह के फलस्वरूप घुटती है। यह घुटन मूलतः नारी जीवन की

घुटन है जिसे इतिहास की पृष्ठ भूमि में स्वर्ण युग की ऊपरी चमक–दमक के बीच नागर जी ने प्रस्तुत किया है।"[122]

सतीत्त्व और पतिव्रता नारी की विजय दिखाने के प्रति कुछ आलोचकों ने अपनी आपत्ति प्रदर्शित की है– "कन्नगी की अन्तिम विजय और माधवी की दुःखद परिणति यह उद्घाटित करती है कि नागर जी ने इस उपन्यास में जहां नारी संबंधी कुछ नये मूल्यों की स्थापना की है, वहां वह नारी के पतिव्रत धर्म संबंधी मूल्यों को नवीन दृष्टि से नहीं देख पाए हैं। वे इस उपन्यास में उसी पुराने मूल्य का समर्थन करते हैं जो इस धारणा पर स्थित है कि पति चाहे अनाचारी, अत्याचारी तथा नाना दुर्गुणों से पूर्ण हो परन्तु नारी का यह कर्त्तव्य है कि वह उसके प्रति प्रत्येक स्थिति में एक निष्ठ और ईमानदार रहे।"[123]

डॉ0 सु देश बत्रा के शब्दों में– "नागरजी ने कुलवधू की महिमा को कहीं भी अपदस्थ न करवा के वेश्या की समस्या के लिए समाज से उत्तर मांगा है। ×××× एक ओर यदि वेश्या नारी का क्रन्दन है तो दूसरी ओर कुल वधू का मूक आर्त्तनाद भी सम्पूर्ण उपन्यास में सिसकियों से फूट पड़ा है।"[124]

सात घूँघट वाला मुखड़ा

इस उपन्यास में भी पुरुष सत्ता द्वारा नारी शोषण की अभिव्यक्ति की गई है। मुन्नी, दिलाराम, जुआना बेगम तथा बेगम समरू के नाम से सम्बोधित की जाने वाली नारी को शैशव काल में बशीर खाँ के पिता ने क्रय किया था। वह एक सामान्य कश्मीरी लड़की थी जिसके माँ–बाप मेरठ में रहते थे। नारी क्रय–विक्रय तद्युगीन् समाज की सामान्य बात थी। बशीर खाँ के पिता शकूर खाँ ने अपने बेटे को निर्देश दिया था कि "यह (मुन्नी, दिलाराम) हुकूमत करने के लिए पैदा हुई है, इस पर हुकूमत की नहीं जा सकती। बशीर को इसे इश्क के जादू से बाँध कर राह पर लाना होगा।"[125] वह अपने बेटे को उससे विवाह न करने की कसम दिलवाता है। बशीर खाँ नारी–क्रय–विक्रय का व्यापार करता है। वह मुन्नी उर्फ दिलाराम को अपने पिता की प्रबल इच्छानुसार ही दिल्ली स्थित वाल्टर रेनहार्ड के दूत 'टॉमस' के हाथ दस हजार स्वर्ण मुद्राओं के बदले बेच देता है। वह इस विक्रय के माध्यम से धनार्जन तो करता ही है, इसी के साथ उससे प्रेम का अभिनय करके उसका शील भंग कर अपनी काम पिपासा भी शान्त करता है।

पातिव्रत्य के मूल्य को उद्घाटित करना ही इस उपन्यास का उद्देश्य है। जुआना के संबंध में कहे गये व्यंगात्मक कथन इसकी पुष्टि करते हैं। आगरा के किले में वाल्टर रेनहार्ड, नवाब समरू आत्महत्या कर लेता है। पति की मृत्यु पर 'जुआना' गम की साक्षात् मूर्ति बन गई। इस अभिनय के कारण "जुआना के पातिव्रत धर्म की महिमा फौज का हर सिपाही, किले का हर कर्मचारी और यहाँ तक कि नगर का जनमानस भी प्रचार के चामात्कारिक ढंग की महिमा से मंडित कर दिया था। हर एक जबान पर बस यही चर्चा थी कि बेगम परम सती साध्वी और

महादेवी है।''[126] 'सती साध्वी' 'महादेवी' आदि कहकर नागरजी अपने व्यंगात्मक कथनों से यह प्रमाणित करते हैं कि उसमें इन गुणों में से एक भी नहीं था। जुआना उन नारियों की प्रतीक है जो नारी की संपूर्ण गरिमा प्राप्त करने में भी अतृप्त तथा भूखी है। उपन्यास में जुआना को विभिन्न नामों से सम्बोधन करना उसके चरित्र–विकास का विश्लेषण है। वास्तव में वह बशीर खाँ से प्रेम करती है किन्तु बशीर उसके दिल को तोड़ देता है। जब समरू को बेचा जाता है तब वह कहती है– ''मैंने तुम्हें अपना वेश कीमती दिल दिया था। दिल ही नहीं, तुम्हारे फरेब में आकर परसों रात में तुम्हें अपनी वह सबसे बड़ी दौलत भी सौंप चुकी जो औरत किसी को जिन्दगी में सिर्फ एक ही बार दे सकती है।''[127]

इस मनोवैज्ञानिक परिवर्तन के कारण उसके जीवन में नया मोड़ आता है। उसके पश्चात् उसने किसी से भी प्रेम नहीं किया। केवल प्रेम का नाटक किया। 'जुआना' की मानसिक स्थिति का चित्रण देखिए– ''जो कड़ी बशीर खाँ के साथ टूटी थी वह लवसूल के साथ जुड़ गई है। जुआना का दिल पत्थर हो गया है। मगर इस पत्थर के अन्दर मुन्नी, दिलाराम का दिल अब भी पानी के सोते सा बाकी बच गया है। और वह दिल भी किसी पर रीझा हुआ है। जुआना चाहती है कि वह किसी से दिल लगाए। पर दिलाराम का दिल किसी पर आ जाए तो जुआना बेचारी क्या करे ?''[128]

वह टॉमस तथा लवसूल से विवाह करने का उपक्रम करती है। लवसूल से भेंट करने से पूर्व की स्थिति का व्यंगात्मक चित्रण करता हुआ लेखक कहता है– ''जुआना अब अपने हसीन चेहरे पर तीसरे भाव का मुखौटा चढ़ाने बैठी। दिल की सात तहों के भीतर जुआना अब भी ईमान और इंसानियत के हुस्न पर मरती है। मगर हठीली होने की वजह से बशीर खाँ से धोखा खाने के बाद उसने अपने आपको पत्थर की तरह सख्त बनाना शुरू किया। वह लवसूल को अपनी ओर अधिक से अधिक आकर्षित करना तो चाहती है, पर वह हरगिज नहीं चाहती कि उसके प्रति आकर्षण भाव को तनिक भी उसके सामने प्रकट करे। इन दोनों ही चुम्बकों में खिंचकर उसके मन का लोहा लवसूल की रूह का पिंजरा बनने के लिए विचारों की भट्टी में तपने लगा।''[129]

उपन्यास में जुआना का चरित्र नारी संबंधी आदर्शों, मान मर्यादाओं तथा पातिव्रत जैसे गुणों से हीन है। इसी कारण उपन्यासकार उसे शासन सत्ता के उच्च शिखर पर पहुँचाकर भी गिरा देता है।

नारी के प्रति नारी की प्रतिहिंसा का चित्रण भी इस उपन्यास में मिलता है। मुश्तरी नवाब समरू की मुँह लगी दासी है। यही कारण है कि बेगम समरू प्रति हिंसा की ज्वाला में उसे भस्म कर देती है। मुश्तरी का अन्तरहृदय विदारक है। जुआना उसके शरीर पर कीलें ठुकवा कर दीवार में चुनवा देती है। मुश्तरी नवाब समरू से प्रेम करती है। वह यह भली–भाँति समझती है कि बेगम समरू अपने पति से प्रेम नहीं करती, वह अपने पति से विश्वासघात कर रही है– ''यह जुआना बेगम तो शर्तिया झूठी और मक्कार है। भले ही इसका मक्रो फरेब अब तक किसी की

निगाह में न आया हो। मगर यह दरअसल जहरीली नागिन है– हसीन मौत, शौहर के बजाय हुकूमत को प्यार करने वाली खूबसूरत बला।''[130]

खंजन नयन

'खंजन नयन में' लेखक ने समाज में दो प्रकार की स्त्रियों को माना है। नारी का एक रूप अमृत के समान है दूसरा विष के समान। उपन्यास सूर के स्वगत कथन द्वारा व्यक्त करता है– ''नारी अमृत है और विष भी। नरक है स्वर्ग भी, विजय भी है पराजय भी।''[131] नारी प्रेरणा स्रोत भी हो सकती है और पतन की ओर भी ले जा सकती है। सूर अपने तथा कंतो के प्रेम के संबंध में कहते हैं– ''नरक का द्वार नारी। परन्तु राधारानी भी तो नारी है। सीता, पार्वती भी नारी हैं। राधेश्याम, सीताराम, गौरीशंकर– नारी से मुक्त कौन है ? सच पूछो तो विरोध नारी से नहीं उसके वासना का माध्यम होने से है।''[132]

नारी पीड़ा उस युग की नहीं, इस युग की भी उतनी ही प्रबल समस्या है। कन्नगी तथा माधवी की पीड़ा जिस प्रकार अपनी स्थितियों में मार्मिक है, उसी प्रकार भुलनी, कुदसिया बेगम और मुश्तरी भी। नारी की इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के लिए पर्याप्त सीमा तक पूँजीपति वर्ग तथा पुरुष वर्ग उत्तरदायी है। कुछ सीमा तक वे नारियाँ भी जिम्मेदार हैं जो अपने अहं की तृप्ति के लिए नैतिक पथ से भटक कर नारी पुरुष किसी को भी अपने मार्ग में बाधक समझ कर उनका खुलकर शोषण करती हैं। 'शतरंज के मोहरे' की दुलारी और 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' की 'बेगम समरू' इसी कोटि की नारियाँ है।

घ. ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवेश

नागरजी के उपन्यासों में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का अनुशीलन करने से पूर्व इसका अर्थ स्पष्ट कर देना आवश्यक है। इतिहास से संबंधित पात्रों और स्थानों के चरित्र द्वारा एक विशेष शिल्प का सहारा लेकर तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण ऐतिहासिक परिवेश के अन्तर्गत आता है। इतिहास किसी भौगोलिक परिधि एवं सांस्कृतिक परिवेश में स्थित मानव जाति के रूप निर्माण और पारम्परिक विकास की प्रक्रिया है। इतिहास को समाज के, राष्ट्र के, मानव जाति के पारम्परिक अतीत की संज्ञा दी जा सकती है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इतिहास के मर्म को सारगर्भित शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है– ''प्रसिद्ध प्राचीन नगरों और गढ़ों के खण्डहर राज प्रासाद आदि जिस प्रकार सम्राटों के ऐश्वर्य, विभूति, प्रताप, आमोद–प्रमोद और भोग, विलास के स्मारक है उसी प्रकार उनके अवसाद विषाद, नैराश्य और घोर पतन के। मनुष्य की ऐश्वर्य विभूति, सुख–सौन्दर्य की वासना अभिव्यक्त होकर जगत के किसी छोटे या बड़े खण्ड को अपने रंग में रंग कर मानुषी सजीवता प्रदान करती है। देखते–देखते काल उस वासना के आश्रय, मनुष्यों को हटा कर किनारे कर देता है। धीरे–धीरे उनका चलाया हुआ ऐश्वर्य, विभूति का वह रंग भी मिटता जाता है। जो कुछ शेष रह जाता है वह बहुत दिनों तक ईंट, पत्थर की भाषा में पुरानी कहानी कहता रहता है। संसार का पथिक, मनुष्य उसे अपनी कहानी समझ कर सुनता है

क्योंकि उसके भीतर झलकता है जीवन का नित्य और प्रकृति स्वरूप।'' जहाँ तक सांस्कृतिक परिवेश का प्रश्न है, सांस्कृतिक शब्द संस्कृति से बना हुआ है। संस्कृति का सामान्य अर्थ संस्कार की हुई जीवन पद्धति है। यह संस्कार प्राकृतिक विधान, भौगोलिक स्वरूप और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप होता है। कहा जा सकता है कि ''संस्कृति सामाजिक विरासत है जिसमें परंपरा से पाया हुआ कौशल, वस्तु सामग्री, यान्त्रिक क्रियाएँ, विचार, आदतें और मूल्य समाविष्ट हैं।''[133] और इस प्रकार इतिहास और संस्कृति से संबंधित चित्रण ही उपन्यास में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवेश कहा जायेगा।

अतीत काल के मनुष्यों और उनकी संस्कृति का चित्रण तत्कालीन ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक पात्रों के चरित्र–चित्रण द्वारा अंकित करना ही ऐतिहासिक परिवेश है। ''मानव के आविष्कार निर्माण, कला, संस्थाएँ, सामाजिक संगठन तथा साहित्य, धर्म विचार आदि विषय।''[134] सांस्कृतिक परिवेश के अन्तर्गत आते है। सांस्कृतिक परिवेश का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसके अन्तर्गत धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक सभी बातें आ जाती हैं।

एकदा नैमिषारण्ये

इस उपन्यास में जातीय सामाजिक परिवर्तन, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि की जो विस्तृत चर्चा हुई है, उसमें समाहित समस्त सांस्कृतिक तत्वों और विन्दुओं का सोदाहरण निरूपण संक्षेप में संभव नहीं है। जातियों में पुराण काल से पूर्व की जातियों की ओर संकेत है और वर्तमान में नये जाति संघर्ष का चित्रण है लेकिन दृष्टिकोण सांस्कृतिक समन्वय का है। नारद कहते है ''अत्यन्त साहस भरे कठिन से कठिन कार्य सम्पादित करने वाले हमारे सभी पूज्य पुरुष असुर अर्थात् महाप्राण ही थे। आप इन विभिन्न मानव चेतनाओं के बीच केवल कटु इतिहास की कल्पना ही न करें। सभी ने सबको सिखाया है, सभी सबसे सीखें हैं।''[135] ''कदाचित परम्परागत अग्नि पूजकों और इन्द्रवादी अग्नि पूजकों का घर्षण ही इसका कारण होगा। इसीलिए कहता हूँ कि इन भेदों को जातिगत न मानिए। सभी विष्णुमय हैं। उनकी विविधता में भी एक विधा है, अनेकता में एकता है।''[136] आए हुए आर्यों पर बाद में आए हुए आर्यों के अत्याचार का विरोध करते हुए गिरा गुरु गणपति महाराज कहते हैं– ''हमने अर्थात् इस देश के निवासी वृषभ नाथ, तन्मुषि, हनुमान, कच्छप, मकर, अश्वत्थ आदि वंश चिन्हों वाले अग्नि वंशी ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्यादि ने कई शताब्दियों तक इन बाहर से आने वाले आर्यों, शकों और पवन म्लेच्छों के प्रहार और अत्याचार सहे हैं। इन्द्र वासियों से प्राप्त अनन्त कष्टों की कटुता हमारे मन से भला कैसे जा सकती है।''[137] सोमाहुति उत्तर देते हैं– ''यह भी सत्य है कि आप के साथ उन सूर्य–चन्द्र वंशी शकों, भरतों, अनु, दुह्य, यदुओं आदि को जो, अत्यन्त प्राचीन काल में यहाँ आकर आप से घुल मिल गये थे, जिन्होंने आपके साथ पृथ्वी पर दूर–दूर तक सभ्यता का प्रचार किया था, उन्हें भी उनके हाँथों से, जिनके साथ उनके पुरखे कभी एक ही जन थे, नाना लान्छन और अपमान कुछ कम नहीं भोगने पड़े थे।''[138]

लेखक ने भार्गव, सोमाहुति के पूर्वजों, को यवनादि द्वीपों के निवासी यवन माना है।''[139] इन सब जातियों में समन्वय स्थापित करना ही उपन्यासकार का लक्ष्य है। नागरजी का 'एकदा नैमिषारण्ये' नैमिष के धार्मिक आन्दोलन और वहाँ 'भारत संहिता' की रचना की कहानी प्रस्तुत करता है। यह किसी पुराण पर आधारित नहीं है। पुराण रचना और पौराणिक संस्कृति का श्री गणेश लेखक के अनुसार नैमिष में ही हुआ। यहाँ चौरासी हजार संत एकत्रित हुए। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की विषमता में विभक्त, संकीर्ण और पतनोन्मुख भारतीय धर्म को एक समन्वित मानवीय रूप दिया। पौराणिक क्षेत्र और तीर्थ स्थान के रूप में नैमिषारण्य का महत्व निर्विवाद है। हिन्दू धर्म के सभी प्राचीन आचार्यों ने उस तीर्थ की यात्रा की। भारतीय धार्मिक, सांस्कृतिक परम्पराओं में वह एक प्रधान प्रेरणा स्रोत रहा।

उपन्यास में लेखक ने तत्कालीन धार्मिक और ऐतिहासिक दोनों पहलुओं का ताना–बाना बुनकर धर्म को राजनीतिक परिस्थिति से भी जोड़ा है। लेखक के अनुसार पहले 'भारत संहिता' की रचना हो गई थी। इसके लुप्त हो जाने पर पुराणकाल में उसका परिवर्धित वर्तमान रूप प्रस्तुत हुआ है। नैमिष के अन्य सन्तों और पौराणिकों के तत्वाधान में भार्गव सोमाहुति द्वारा।[140]

भागवत धर्म के संबंध में लेखक ने ऐतिहासिक मानवीय दृष्टिकोण को अपनाया है। ''इतिहास यदि उच्च चेतना का दर्शन न कराए, केवल राग रंजित ही करे तो वह सद्पुरुषों के द्वारा सर्वथा त्याज्य होता है। ''धर्म युगानुरूप बदलता है। कर्म मनुष्य की श्रेष्ठतम संस्कारिता को प्रकट करता है। पुराण रचना के उद्देश्य और लक्ष्य के संबंध में लेखक ने नये ढंग से विचार किया है। पुराणों ने देश की पतनोन्मुख परिस्थितियों में आस्था और पूजा का नया विधान किया हैं– ''पूजा तप और तेज की होती है। वह नष्ट हुआ तो सब नष्ट हो गया समझो।''[141] ''अनैतिकता पूर्ण वातावरण में नीति को कथा प्रसंगों और चमत्कार पूर्ण प्रतीकों का आलम्बन लेकर समझाना है।'' जिस दायित्व को पुराणों ने सफलता पूर्वक निभाया है। ''लोक मानस को शीघ्र प्रबुद्ध बनाने के लिए इससे अच्छा कोई उपाय नहीं है।''[142] पुराणों ने एक ही प्रकार के गुणों वाले देवताओं को एक रूपता देकर लघु में विराट रूप को दिखलाकर प्राचीन देवताओं को नये रूप में प्रतिष्ठित किया है।''[143]

जैसाकि कहा जा चुका है, संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। प्रकृति प्रेम, देशप्रेम, पारिवारिक संबंध, सामाजिक संबंध, स्त्री–पुरुषों के पारस्परिक अनुराग, धर्म, दर्शन, दार्शनिक चिन्तन, मानवीय संबंध और संवेदना आदि में सांस्कृतिक चेतना अभिव्यक्त होती है। इसीलिए धर्म, दर्शन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, मानवता आदि को संस्कृति के अंग माना जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक चेतना, प्रधानता, धर्म, दर्शन, पारिवारिक, सामाजिक जीवन और मनुष्य की मानवीय संवदेना में प्रतिफलित होती है। मानव जीवन के ये पहलू भिन्न होते हुए भी संस्कृति से आन्तरिक रूप में जुड़े हैं, इन्हीं सब पहलुओं

द्वारा प्रकाशित संस्कृति की अभिव्यक्ति को नागर जी के उपन्यासों में सांस्कृतिक परिवेश में ढूढ़ना ही लक्ष्य है।

उपन्यास धर्म ग्रन्थ नहीं है, इसीलिए नारद, सोमाहुति आदि के शब्दों में लेखक ने उसकी मूल–भूत चेतना और उसके कुछ महत्व पूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डाला है, जो वस्तु के विविध प्रसंगों से सम्बद्ध हैं। भागवत धर्म आस्था पर आधारित है और विष्णु को परम तत्व के रूप में स्वीकार करता है। ''मोह माया का कर है, पृथ्वी के हर प्राणी को यह कर चुकाना पड़ता हैं।[144] आध्यात्मिक दृष्टि के बावजूद भागवत धर्म प्रवृत्ति मार्गी है भगवान के अवतारों में विश्वास करने वाला धर्म निवृत्ति मूलक नहीं हो सकता। ''भगवान के मनुष्य रूप में अवतरित होने की भावना कितनी सुन्दर है। मनुष्य में निहित इस अधिक प्रत्यक्ष और श्रेष्ठतम संस्कार को जागरुक करने वाले हमारे पुरखे त्रिकाल में प्रणम्य हैं।''[145] ''सगुण–निर्गुण दोनों के संस्कार साथ–साथ जगाना ही आर्य मन्त्र है। ऊपरी भेद के रूप में इनके परस्पर विरोधा भास की बात करना व्यर्थ का शाब्दिक वितण्डा मात्र है। भगवान की माया अस्तित्व का भ्रम कराते भी अपने आप में अस्तित्व विहीन होती है।''[146] ''ईश्वर को चाहे किसी रूप में देखें, वह एक ही है। वह सब में विद्यमान है।''[147]

भागवत धर्म समन्वयवादी है। सोमाहुति के शब्दों में ''ज्ञान, भक्ति और कर्म का उचित समन्वय ही लोक के लिए कल्याण कारी हो सकता है।''[148] कर्म मार्ग में लौकिक स्तर पर भागवत धर्म जाति भेद को स्वीकार नहीं करता। अच्छे, बुरे या पाप पुण्य के विवेक का आग्रह करता है। प्रलोभनों से अपने को बचाकर आत्म संयम और अनुशासन में विश्वास करता है। उपन्यासकार ने धर्म के उन तत्वों की चर्चा की है जो युग की आवश्यकता थे। धर्म की मानवीय आधुनिक संदर्भ में व्याख्या करने का भी उन्होंने प्रयत्न किया है।

लेखक ने उपन्यास की भूमिका में स्पष्ट किया है कि ''नैमिष छाप महाभारत, पुराण आदि ने ब्राह्मण और श्रमण संस्कृतियों का संगम कराके दलित, दीन, दरिद्र सहित पूरे समाज के लिए एक नवीन सांस्कृतिक आदर्श सामने रखा है।''[149]

उपन्यास में अनेक कुल, गोत्रों ऋषि, मुनियों और साधु, सन्तों का उल्लेख हुआ है जिसमें श्रृंगी, सौति, शौनक, व्यास, नारद आदि प्रसिद्ध हैं, जिनके नाम पुराणों में आते है। आवश्यकतानुसार बौद्ध, श्रमणों, हठ–योगियों आदि की कल्पना की गई है। धार्मिक घटनाएँ और प्रसंग कल्पित हैं। राजकीय पहलू में तत्कालीन उत्तर–दक्षिण के अनेक राजाओं और राज्यों का वर्णन किया गया है। इनमें कुछ वैदिक धर्मावलम्बी, कुछ बौद्ध और नाग तथा कुछ कुषाण थे। धार्मिक संघर्षों में इन राजाओं का अपना योगदान भी रहा। अपने राज्य विस्तार के लिए धर्म एक साधन भी हुआ। सोमाहुति तथा अन्य सन्तों ने धर्म समन्वय के प्रयत्नों में इन राजाओं से भी सहायता लेकर उन सबको धर्म संरक्षण के लिए एक सूत्र में गूंथने का प्रयत्न किया। अन्त में

'समुद्र गुप्त' समस्त भारत में अपने राज्य के विस्तार में सफल हुए और 'सोमाहुति' के पुत्र प्रचेता की देख–रेख में भारत की अखण्डता स्थापित की।

'महाभारत' के रचना काल को कुछ समीक्षक ईसा के बाद चौथी शताब्दी तक मानते हैं। उपन्यास कार ने इसी अभिमत को स्वीकार किया है। इस संबंध में मतभेद है और रचना काल को पहले का मानने पर उपन्यास का सारा ऐतिहासिक ढाँचा अनैतिहासिक हो जायेगा। लेखक ने उपन्यास की पृष्ठ भूमि के रूप में जो जातीय, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक सामन्य स्थिति का अंकन किया है, उसकी यथार्थता के संबंध में अधिक मत भेद नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि उपन्यास को पौराणिक पृष्ठ भूमि पर रखना चाहिए, ऐतिहासिक झमेले में पड़ने पर अनेक खतरे पैदा होते हैं।

उपन्यासकार का मत है कि "भारतीय संस्कृति का सब कुछ भारत देश में नहीं उपजा। बहुत कुछ का उद्‌गम स्रोत भारत के बाहर भी है। अनेक जातियों के सम्मिलित एवं सम्मिश्रण से नई जातियों की उत्पत्ति तथा संस्कृतियों का आपस में घुलना–मिलना बराबर बढ़ता गया।"[150] "भाषा शास्त्रियों का कहना है– भारत की वर्तमान संस्कृति में वैदिक संस्कृति का प्रभाव केवल पच्चीस प्रतिशत है, शेष पचहत्तर प्रतिशत अवैदिक है।"[151] उपन्यासकार के अनुसार पुराण काल में आकर नैमिषारण्य में विभिन्न जातीय संस्कृतियों के समन्वय से भारतीय संस्कृति ने एक निश्चित रूप लिया है। 'सोमाहुति' का कथन है– "आस्था–अनास्था की संध्या में रहने वाला यह सुहाना, अभागा भारत संत्रस्त होता है, तब राम ही का स्मरण स्मरण करता है। इसकी अति रमणीयता इसके कल्पना लोक में ज्ञान प्रखर होकर प्रतिष्ठित पौरुष के अचेत आदर्श के अनुरूप व्यवहार न होने के कारण है। इसका ज्ञान संचय का अनुराग स्थिर से गतिमान हो सदा बहता ही रहता है। जितना संचित करता है, उतना व्यवहार में नहीं ला पाता। व्यवहार कुछ और है। संस्कार संचय से इसकी अन्तश्चेतना की आदतें बदल गई हैं, पर बहिर्चेतना की आदतें तद्‌नुरूप कम ढली हैं। इसके सुकर्मोत्साह और कुकर्मोत्साह के विस्फोट इसके अन्तश्चेतना के आत्मसंतुलन की प्रक्रिया वश होते रहते है।"[152]

उपन्यासकार का कथन है कि "विष्णु पुराण का भारतगीत– 'गायन्ति देवाकिल गीत कानिधन्यास्तु ये भारत भूमि भागे' पढ़कर मेरी तो धारण पक्की हो गई कि चौरासी हजार सन्तों का पौराणिक सेमिनार (नैमिषारण्य) धार्मिक तमाशा या गप नहीं है। इसके पीछे राष्ट्रीय महत्व का कुछ इतिहास भी है।"[153] पुराण काल में ही आज का हिन्दू धर्म और संस्कृति का रूप निश्चित हुआ, वह राष्ट्रीय संस्कृति के रूप में समस्त भारत में ही व्याप्त नहीं हुआ बल्कि भारत के राजनीतिक इतिहास से जुड़कर भारत के घेरे हुए द्वीपों में धार्मिक एकता का प्रतिपादन करने में सफल हुआ। इसीलिए धर्म से सम्बद्ध देशों में राष्ट्रीय दृष्टि के विकास की आवश्यकता भी है। "छोटे–छोटे प्रजातन्त्र अपने में संगठित होकर भी मानव समाज में असंगठित इकाई ही बन जाते हैं। हमारा यह देश इन छोटे–छोटे प्रजातन्त्रों से भरा हुआ है परन्तु उन्हीं के कारण हम असक्त

हो रहे हैं, जबतक देश अथवा राष्ट्र की यह भावना हमारे अन्दर उत्पन्न नहीं होती है तब तक हमारा कल्याण नहीं है।''[154]

शतरंज के मोहरे

यह उपन्यास राजनीतिक, ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें नवाबी काल के ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का इतिहास सम्मत चित्रण है। **डॉ0 त्रिभुवन सिंह** ने इस उपन्यास के सांस्कृतिक झाँकी के संबंध में उचित ही कहा है– ''मुस्लिम परिवार के अभेद्य पर्दे में झाँककर नागरजी ने उसके भीतर चलने वाली ऐयाशी, दाँव–पेंच का बड़ा विश्वसनीय चित्र उरेहा है। नवाबों की शान–शौकत तथा नाच–गानों तथा वेश्याओं के प्रति उनकी अनन्य भक्ति का चित्रण कर ढलते हुए अवध के नवाबी ऐश्वर्य का जो चित्रण इस उपन्यास में खींचा गया है वह इतिहास संगत है।''[155] ''उसमें तत्कालीन राजनीतिक सांस्कृतिक और आर्थिक अवस्थाओं का ऐसा इतिहासानुमोदित और यथार्थवादी वर्णन किया गया है कि सारा अतीत हमारे सामने आज भी स्पष्ट हो उठता है।''[156]

उपन्यास के प्रारम्भ में ही नवाबी अत्याचारों की स्पष्ट झाकी मिल जाती है– ''काले–भूरे बादलों के घनघोर घेराव से आकाश घुट रहा था, धरती पर उसकी मनहूसियत फैल रही थी, नाजिमी सेनाओं की आहट से गाँव तक की हवा को साँप सूँघ गया था।''[157] ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विभिन्न पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने तत्कालीन अवध के नवाबी शासन काल में नवाबों की विलासिता और शासन के प्रति निष्क्रियता, भारत में अंग्रेजों के प्रभुत्व को सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध हुई।

उपन्यास के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक विषमता, नारी की दुर्दशा तथा हिन्दू, मुस्लिम संस्कृतियों का सन्निवेश के साथ–साथ नागरजी ने अपनी मान्यताओं के संकेत और कल्पना तत्वों की श्रृंखला से इस उपन्यास को अत्यन्त रोचक बना दिया है। इतिहास के इस कालखण्ड में हिन्दुओं की बड़ी ही दयनीय दशा थी। मुसलमान, हिन्दू लड़कियों से विवाह कर लेते थे पर हिन्दू मुसलमान लड़कियों को नहीं अपना पाते थे। एक प्रकार से इस समय शील, संस्कार, सदाचार, दीन, ईमान और मानवीयता एक प्रकार से लुप्त हो गए थे– ''सर्वत्र ठगी और लूटपात का बोल बाला था। शाही आमिल–अमले, शहर के रईस, छोटे अमले, जन साधारण आमतौर पर अपने सुख–विलास के लिए कुछ भी कर डालते थे, हिन्दुओं में कुलीन ठाकुर और ब्राह्मण बहुपत्नी वादी थे। निर्धन प्राकृतिक, अप्राकृतिक बलात्कार की ताक में रहते थे। विलास में सामाजिक जीवन डूब कर सड़ रहा था।''[158]

यह उपन्यास नागरजी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें गाजीउद्दीन बादशाह बेगम, नसीरूद्दीन हैदर, आगामीर, हकीम मेंहदी, मुन्नाजान, दुलारी, कैवांजाह, कुदसिया बेगम आदि ऐतिहासिक पात्र हैं जिनकी पुष्टि में उन्होंने ऐतिहासिक प्रमाण भी प्रस्तुत किए है। दिग्विजय ब्रह्मचारी के माध्यम से उन्होंने अपनी मान्यताओं का अंकन किया है। यद्यपि यह

उपन्यास ऐतिहासिक है तथापि लेखक ने वर्तमान सामाजिक विषमता, हिन्दू मुस्लिम, अंग्रेजी संस्कृतिकयों का विश्रृंखलन और विदीर्णन उनके मानवतावादी उद्देश्य का परिचायक है। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में इतिहास और कल्पना का सजीव समन्वय प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक यथार्थ के प्रति सजग रहते हुए नवाबी शासन के ह्रासशील जन–जीवन की पीड़ा को बड़ी ही निर्भीकता के साथ उभारा गया है। सामंती व्यवस्था की पतनोन्मुख स्थिति के लिए उत्तरदायी राजनीतिक दुर्बलताओं और व्यक्तियों की भूमिकाओं को भी बड़े ही सूक्ष्म ढंग से चित्रित किया गया है। इस संबंध में **डॉ० सुदेश बत्रा की यह समीक्षा अत्यन्त सटीक लगती है–** "नागरजी ने उसी सामंती परम्परा की कड़ी में अंग्रेजों के घृणित हथकंडों की पृष्ठ भूमि को उपस्थित किया है एवं अपनी जनवादी दृष्टि से अपने उद्देश्य को समयानुकूल एवं प्रभावी बनाया है। एक प्रकार से उन्होंने अवध के नवाबी शासन की शव परीक्षा की है और उसके खरे निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं।"[159]

संक्षेप में सन् 1820 से सन् 1837 की कालावधि में अवध के नवाब गाजीउद्दीन हैदर तथा उसके पुत्र नसीरूद्दीन हैदर की निष्क्रियता से उत्पन्न भ्रष्टाचार, षड्यन्त्र, छल–कपट और अत्याचारों का स्पष्ट चित्रांकन किया गया है। नवाबों का नैतिक पतन ही इन सारी परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी है। बांदियों से उत्पन्न संतानें, राज्य की उत्तराधिकारी बन जाती हैं और दुलारी जैसी स्त्री धाय बनकर मलकिए–जमानिया के पद पर पहुँच जाती है। गाजीउद्दीन हैदर का पुत्र नसीरूद्दीन भी उसका असली पुत्र नहीं है। इसीलिए उसमें चारित्रिक पतन और विलासिता सीमा से अधिक है। बादशाह बेगम की अपने पति गाजीउद्दीन से नहीं बनती है। इसका लाभ भी आगामीर और अन्य ओहदे दार उठाते हैं। अवध की समस्त राजनीति महरियों और बांदियों के षड्यंत्रों का शिकार है और दोंनों ही नवाब गाजीउद्दीन हैदर और नसीरूद्दीन यह सब जानते हुए भी विवश हो जाते है। षड्यंत्र, आंतक और भय के वातावरण में नसीरूद्दीन पागल हो जाता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। उत्तराधिकारी की होड़ में अनेक छल कपटों के मध्य नवाबी शासन डॉवाडोल होकर अंग्रेजों के हाथ में चला जाता है।

जहाँ तक इस काल में नारी समस्या का प्रश्न है वह शोषण का शिकार थी, पुरुषों के मनोंरंजन का साधन थी। किन्तु नारियों के कुछ ऐसे भी रूप मिल जाते हैं, जो दुलारी जैसी महत्वाकांक्षिणी नारियों के रूप हैं, जो अपनी सुन्दरता और पुरुष की भोग्या बनकर उन्नति के शिखर पर पहुँचती है और फिर से पतन के गर्त में गिर जाती हैं। नारी के दूसरे रूप में भुलनी जैसी आदर्शमयी नारी पात्र भी हैं जो अपने चरित्र. के आगे जीवन को हेय समझती हैं। वह अपनी इज्जत लुट जाने के बाद मृत्यु का ही वरण करती हैं। नागरजी ने अपने शिल्प के माध्यम से उपन्यास की कथा को रोचक और गतिशील बनाने के लिए ऐतिहासिक यथार्थ को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा है। विवरणात्मकता और कल्पना का सौष्ठव ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिवेश में नागरजी के शिल्प–वैशिष्टय को प्रमाणित करता है।

बूँद और समुद्र

बीसवीं शदी के प्रारम्भ में भारत की सांस्कृतिक चेतना नगरीय और ग्राम्य दो दिशाओं में विभक्त हो गई। जहाँ नगरीय संस्कृति भौतिक समृद्धि के कारण विकसित हो गई, वहीं ग्राम्य संस्कृति उचित शिक्षा और साधनों के अभाव में धूमिल पड़ती गई। गाँधी युग के प्रारम्भ होते ही गाँधी के विचार दर्शन ने भारतीय जनमानस एवं संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम' और 'सर्वोदय' की भावना के अभ्युदय के साथ ही मानवतावाद का ताप प्रखर हुआ।

उपन्यास में कहा गया है कि "हमारे ऋषियों, मनीषियों, तत्व दर्शियों ने स्वयं जिन अनुभवों को, उनके सत्य को जीवन की कठिन आँचों में तपकर सिद्ध किया था, उसे वे जन कल्याण के लिए नियम रूप में प्रतिष्ठित कर गए। समाज उन नियमों पर चला, जानकर नहीं, मानकर। समाज अनेक नियमों को अर्थहीन मानकर सुगमता पूर्वक चला गया। मुक्ति की चेतना निकल गई। उसके पाने की क्रियाएं केवल एक भयंकर भ्रम जाल बनकर हमारे सारे जीवन में जकड़ गई।"[160]

वर्तमान भारत की सांस्कृतिक चेतना पर भौतिकवाद और मार्क्सवादी चिन्तन का प्रभाव ज्यों–ज्यों बढ़ता गया त्यों–त्यों चिन्तन– में आध्यात्मिकता का स्वर बुझता गया। मध्यवर्गीय आदर्श मूलक मान्यताएँ यथार्थ की भूमि से टकराकर बिखर गयी हैं। आज के अनास्था और घुटन भरे परिवेश में मध्यवर्गीय व्यक्ति प्रतिष्ठित आदर्शों का खण्डन करता हुआ नित्य नूतन सांस्कृतिक स्थापनाओं और चिन्तन बोध के नये मान दण्ड स्थापित करने में संलग्न है।

नागरजी अपने सांस्कृतिक चिंतन क्षणों को प्राचीन और वर्तमान की सांस्कृतिक चिंतन भूमिपर पकाकर अत्यंत प्रगतिशील एवं युगानुरूप बनाने में समर्थ हैं।

प्राचीन भारतीय कलाओं में मानव जीवन अपने सम्पूर्ण कला बोध के साथ चित्रित हुआ है। हमारी प्राचीन कला मानव जीवन के विविध सन्दर्भों का व्यापक फलक है जिसे पढ़ और देखकर प्राचीन भारतीय संस्कृति सभ्यता और कला के चरमोत्कर्ष का ज्ञान होता है। "हमारी कला में चमत्कार खूब हैं। मगर वह हमें चौंकाता नहीं, बल्कि मन को प्रकाश देता है।"[161]

इस उपन्यास में युवा पात्र महिपाल और सज्जन की कलाकार दृष्टि प्राचीनता में नवीनता की खोज करती हुई सांस्कृतिक पुनर्जागरण का मार्ग प्रशस्त करती है। "सामाजिक क्रान्ति लाने वालों को पहले अपनी परम्पराओं का संग्रह तो कर लेना चाहिए, फिर उन्हें समझ कर उनके अच्छे बुरे पन को छाँटना होगा।"[162]

प्राचीन धर्म, कला, संगीत, नृत्य भारतीय संस्कृति की धरोहर है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हमारा प्राचीन सांस्कृतिक गौरव का प्रकाश मंद पड़ता जा रहा है। "खजुराहो, अजन्ता, एलोरा, चिदम्बरम्, तंजौर, मथुरा, कोणार्क, जगन्नाथ, आबू में सदियों की श्रृंखला में फैला हुआ पत्थर का काम करने वालों और अजन्ता के चित्र बनाने वालों के आज देश में कहीं भी नये निर्माण का परिचय नहीं मिल रहा– जीवन चारों ओर से रुद्ध हो गया है।"[163]

नागरजी की मनोभूमि सांस्कृतिक गरिमा से अभिभूत होकर प्राचीनता की स्वर्ण भूमि पर अभिनव समाज जीवन और राष्ट्रीय जागरण की अखंड ज्योति जलाकर राम राज्य की कल्पना साकार करने के लिए सचेष्ट है।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से नयी पीढ़ी अपनी परम्पराओं और संस्कृति को भूल सा गया है– ''आम तौर पर पढ़ा लिखा वर्ग अपनी सारी परम्पराओं से गाफिल है। अंग्रेजी प्रभाव में उसका रहन–सहन बिल्कुल बदल चुका है। आज वह अपने देश के संबंध में कोई जानकारी नहीं रखता। आमतौर पर वह दुनिया के किसी भी देश के इतिहास या संस्कृति के संबंध में नहीं जानता। वह मात्र खाने–पीने और मौज करने के सिद्धान्त को अपने आगे रखकर चल रहा है। जो इस सिद्धान्त का पोषण करने लायक पैसा कमा लेते हैं, वे निर्द्वन्द्व हो जाते हैं और बाकी सभी इसी आदर्श से लगे हुए संघर्ष करते रहते हैं। अगर आज का कोई आदर्श है तो यही है, बाकी सब खो गया।''[164]

शिक्षित नारी वर्ग, अभी अपनी प्राचीन संस्कृति नहीं छोड़ पाया है। यद्यपि उसे अपने अधिकार प्राप्त हो गए हैं फिर भी वह पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं हो पायी है। टोना–टोटका, तंत्र–मंत्र की संस्कृति, 'ताई' जैसी अनपढ़ स्त्रियों का पीछा अब भी नहीं छोड़ती। कन्या की भाभी जैसी घरेलू स्त्रियाँ पारिवारिक व्याभिचार से मुक्ति नहीं पा सकी हैं। पुरुष के साथ बढ़ते हुए सम्पर्क से नारी में स्वच्छन्द प्रेम की भावना को जन्म मिला है और इसी के फलस्वरूप प्रेम तथा विवाह के क्षेत्र में स्वतन्त्रता, विवाहोपरान्त स्वतन्त्रता और यौन संबंधी नैतिकता नये मान दण्डों से मापी जाने लगी। महिपाल जैसे पात्र माता–पिता द्वारा तय की गई शादियों को जीवन के लिए हितकर नहीं मानते हैं– ''माता–पिता द्वारा तय की गयी शादियाँ हमारे अस्सी फीसदी घरों में जीवन भर के कर्ज की तरह निभायी जाती हैं। नतीजा यह होता है कि कहीं पति, कहीं पत्नी, और कहीं पति–पत्नी दोनों ही एक–दूसरे की पीठ पीछे व्यभिचार करते हैं।''[165] सुशिक्षित नारी पात्र डॉ0 शीला स्विंग आर्थिक विपन्नता को ही नारी की दुर्दशा का कारण मानती हैं– ''शादी का रिवाज इंसानों में धोखा धड़ी, झूठ और अत्याचारों को जगाता है। इसे हटा दीजिए, औरतों को आर्थिक रूप से आजाद कर दीजिए फिर देखिए औरत और मर्द के रिश्ते कितनी जल्दी नार्मल हो जायेंगे।''[166]

अमृत और विष

इस उपन्यास में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् आए भारतीय संस्कृति के परिवर्तन के रूप में अन्तर्जातीय और अन्तर्धर्मीय, विधवा और प्रेम–विवाह आदि को प्रोत्साहन मिला। लेखक ने इस सांस्कृतिक परिवर्तन के संबंध में स्पष्ट किया है– ''यह अन्तर्जातीय विवाह आज के संक्रान्ति काल में हमारे समाज द्वारा एक विचित्र स्थिति पैदा कर रहे हैं। पुराने जमाने की तरह ऐसे विवाहों पर न तो कोई बिरादरी पूर्ण प्रतिबन्ध ही लगा सकती है और न उसे सहज भाव से स्वीकार कर पाती है। ऐसे विवाह करने वाले वाले युवक–युवती अपने आपको विद्रोह की सनक भरी स्थिति में

पाते हैं और अपनी सनक में वे कुछ गलत काम भी कर जाते हैं। व्यक्ति समाज को गालियाँ देता है। उसे स्वीकार नहीं करता है और वह भी समाजवादी युग में। उफ् कैसी विडम्बना है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रायः दो दशकों से लेकर अब तक व्यक्तियों ने समाज को झकोले दिए हैं। पुराना समाज इन्हीं झकोलें से टूट–टूटकर क्रमशः नया बन रहा है। अब किसी जाति का समाज हो, वह सुसंगठित समाज नहीं रहा। समाज जिस तेजी से चल रहा है उसमें निश्चित रूप से एक दिन भारत वर्ष में एक भी जाति नहीं रह जाएगी।''[167]

अरविन्द शंकर का जीवनानुभव सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश का प्रस्तुतीकरण करता है– ''मेरे बचपन में सदियों से सोता हुआ राष्ट्र फिर से करवटें बदलने लगा था। परिवर्तन के क्रम में अच्छाइयाँ और बुराईयाँ दोनों ही साथ–साथ तेजी से आगे बढ़ रही थीं। हम अपने लिए बहुत तेजी से नई दुनियाँ ला रहे थे। लेकिन आज ? आजादी मिल गयी है, बड़े–बड़े बाँध, नदी, घाटी, योजनाएँ, बड़ी–बड़ी कल पुर्जे बनाने वाली फैक्ट्रियाँ, यह सब कुछ थोड़ा बहुत अवश्य हो रहा है लेकिन आम तौर पर हमारे शहरी बाबू और नव जवान किस कदर निष्क्रिय, अस्वस्थ, विचार शून्य, निकम्मे, परावलम्बी हो रहे हैं। मुझे हैरत होती है कि आज हर तरफ माँगे पूरी करने के नारे ही अधिकतर लगते हैं, स्वयं हमारे भी कुछ कर्त्तव्य हैं जिन्हें पूरा करने की बात दिगाम से एकदम भुला दी जाती थी।''[168]

पश्चिमी विचारधारा और वैज्ञानिक उपलब्धियों ने युवा पीढ़ी के लिए नई संभावनाओं को आविष्कृत किया। फलतः विद्रोह और संघर्ष में ही उसे नव जीवन मूल्यों की तलाश और अपने भविष्य के प्रति आस्था, विश्वास का प्रकाश दिखाई दिया। उपन्यास में पूरी की पूरी पीढ़ी अपनी मानसिकता के साथ नवीन समाज व्यवस्था, संस्कृति और वैज्ञानिक जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए विद्रोह और संघर्ष के पथ पर अग्रसर है। नागर जी स्वयं विचार प्रकट करते हैं– ''हमारी नई पीढ़ी में इस समय दो तरह के लोग हैं। एक सक्रिय महत्त्वाकांक्षी हैं और दूसरा हताकांक्षी। महत्त्वाकांक्षियों की सक्रियता आज कल खुशामद, तिकड़म, दांव–पेंच और स्वार्थ भी बदमाशियों की दिशा में है। उसकी महत्वाकांक्षा का महत्त्व केवल उसी तक सीमित है। इसीलिए वह वर्ग अकेली लड़ंत लेता है और दूसरा हताकांक्षी वर्ग– कोल्हू का बैल, जहाँ चाहे जोत ले। उसके अरमान शुरू से ही कहीं उमंग नहीं पाते। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए समाज में पैदा होने वाले लड़के अपनें मन में महत्त्वकांक्षाएँ पालने तक के अधिकारी नहीं माने जाते। कुछ तो पुराने अन्त्यज हैं और कुछ दूसरे महायुद्ध के बाद नये आर्थिक अन्त्यजों की संताने ही विद्रोह पथ पर अग्रसर हो रही हैं। उनका विद्रोह दिशाहीन हो सकता है, उच्छृंखलता, औद्धत्य, विचारहीनता आदि कई दोष उसमें गिनाये जा सकते हैं, पर उनकी पीड़ा सच्ची होती है। उनके विद्रोह के पीछे किसी न्याय की ईमानदारी भरी माँग अवश्य होती है।''[169]

सात घूँघट वाला मुखड़ा

यह उपन्यास भी 'शतरंज के मोहरे' की ही भाँति ऐतिहासिक है। किन्तु इसकी ऐतिहासिक भूमि और उद्देश्य उतना ठोस नहीं है। भारतीय इतिहास के एक बहुचर्चित चरित्र बेगम समरू के जीवन पर आधारित यह उपन्यास तत्कालीन संस्कृति और राजनीति के गुप्त भेदों को उद्घाटित करता है। घटनाओं और वातावरण से उपन्यास मनोरंजक बन गया है। उपन्यास के फ्लेप पृष्ठ पर कहा गया है– 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' नागरजी का एकदम नया और अत्यन्त रोचक उपन्यास है। भरतीय इतिहास के एक अति रहस्यमय चरित्र बेगम समरू के रोमांचक और घटनापूर्ण जीवन पर आधारित इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रथम पृष्ठ से ही यह पाठक के मन को इस तरह बाँध लेता है कि इसे पूरा पढ़े बिना उसे चैन नही मिल सकता।''

इतिहास प्रसिद्ध नायिका बेगम समरू जो मुन्नी, दिलाराम, जुआना, टॉमस प्रिया, लवसूल प्रिया आदि नामों से प्रसिद्ध हुई, उसके चरित्र की ओर संकेत मात्र हैं। टॉमस, समरू (वाल्टर रेनहार्ड) और लवसूल आदि ऐतिहासिक पात्र हैं जो अपने–अपने राजनीतिक दाँव पेंच से एक दूसरे को मात देना चाहते हैं। बशीर खाँ और अन्य पात्र काल्पनिक हैं।

तत्कालीन् सामाजिक संस्कृति में स्त्रियों का उपयोग केवल पुरुषों की इच्छापूर्ति के लिए होता था स्त्रियाँ बाँदियों के बीच में अपने रहन–सहन और शारीरिक साज–सज्जा के लिए नवाबों पर आश्रित होती थीं। रिश्वत का बोल बाला था बाँदियों और छोटे कर्मचारियों को राजनीतिक षड्यन्त्र में सम्मिलित कर अपना विश्वास पात्र बनाने के लिए धन एवं भूषणादि देकर संतुष्ट किया जाता था। नारी क्रय–विक्रय की प्रथा भी प्रचलित थी। उपन्यास की नायिका 'समरू बेगम' भी लूटकर लायी गई थी और बशीर खाँ का पिता जो स्त्री खरीदने और बेचने का व्यवसाय करता था, उसे अपने यहाँ खरीद कर ही लाया था। बशीर खाँ ने उसे दस हजार अशर्फियों में वाल्टर रेनहार्ड के हाथ बेच दिया था।

सुहाग के नूपुर

'सुहाग के नूपुर' भी एक ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसमें इतिहास के साथ–साथ तत्कालीन् संस्कृति का भी समावेश पात्रों, उनके संवादों, वातावरण और घटनाओं के सृजन द्वारा किया गया है। इस उपन्यास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार करने में नागर जी ने कई पुस्तकों के आधार पर बनाया है। उन्होंने लिखा है– ''ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि संजोने में मुझे अपने आदरणीय भाई डा0 मोतीचन्द्र जी की अमूल्य पुस्तक 'सार्थवाह' से बड़ी सहायता मिली।'' इसके अतिरिक्त ब्लीच तथा एच0जी0 वेल्स लिखित 'विश्व इतिहास,' डोनाल्ड मैकेंजी की मिथ्स एण्ड लीजेण्ड्स, ऑफ ईजिप्ट तथा राबर्ट ग्रेब्ज की पुस्तक 'क्लाडियस' का अध्ययन मनन किया।''[170]

नागर जी ने ऐतिहासिक फलक पर यथार्थ का चित्रांकन किया है। उन्होंने अपनी दृष्टि को इतिहास की चकाचौंध में ही नहीं उलझाया है अपितु तत्कालीन् समाज और संस्कृति के

यथार्थ को भी देखने की चेष्टा की है। कावेरी पट्टणम् के वैभव के सुन्दर चित्र, राजकीय समारोहों का विवरण, श्रेष्ठियों के मुहल्लों, राजभवनों तथा मंदिरों के सामने विराजमान भिखारियों की पंक्ति को बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। सुन्दरी नर्तकियों के विलासपूर्ण वैभव के रंगीन चित्र भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो पाए हैं। नागरजी ने ऐतिहासिक यथार्थ के प्रति अपनी पूरी ईमानदारी दिखलाने का प्रयास किया है। यद्यपि नागरजी ने उपन्यास की प्रत्येक घटना के चित्रांकन में ऐतिहासिक वातावरण को प्रस्तुत किया है किन्तु फिर भी इनका सम्प्रेषण सामाजिक ही कहा जाएगा, ऐतिहासिक नहीं।

वस्तुतः नागरजी ने इस उपन्यास में अपने सम्पूर्ण ज्ञान भण्डार और ऐतिहासिक वक्तव्यों को कथा वस्तु में ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिवेश में जोड़कर अत्यंत रोचक बनाया है।

उपन्यास में नारी की चिरन्तन व्यथा को माधवी के चरित्र के रूप में बड़ी सहानुभूति पूर्वक साकार रूप देकर नागरजी ने तत्कालीन दक्षिण भारतीय संस्कृति का परिवेशीकरण किया है। नारी उच्च कुल में जन्म लेकर भी परिस्थितयों वश लूटी, चुराई या बेची जाती थी और उसे वेश्या बनने पर विवश किया जाता था। माधवी अपने कुलीन संस्कारों के कारण कुल वधू बनना चाहती है किन्तु, कितना भी चाहने के बाद भी वह पुरुष की दोहरी नैतिकता के कारण अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाती। माधवी ने वेश्या वर्ग की तड़प और विवशता का प्रतिनिधित्व किया है। कुलवधू पुरुष की रंगीनियों और चारित्रिक पतन के बीच सिसकती रहती है।

तत्कालीन् समाज राजाओं द्वारा पोषित था, श्रेष्ठियों का पूर्ण सहयोग था। श्रेष्ठिजन अनेक प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा परस्पर संस्कृतियों का आदान–प्रदान करते थे। उपन्यासकार ने अन्तर्राष्ट्रीय विविध संस्कृतियों को ऐतिहासिक और राजनीतिक परिवेश में प्रस्तुत करते हुए उनके भारत से संबंधों और वैभव का आकर्षण चित्रण किया है। भारत के व्यापारिक संबंध भारत से बाहर अरब देशों, मिस्र, रोम आदि देशों से थे। इन देशों के व्यापारी यहां भी आते थे और अपनी संस्कृति सहित उनमें से कुछ यहां बस भी गए थे। विभिन्न देशों की संस्कृति एवं भारतीय संस्कृति के पारस्परिक संबंधों को भी विश्लेषित किया गया है। कोवलन के विवाह के अवसर पर मिस्र और रोम से आए हुए व्यापारियों के मध्य अपनी–अपनी संस्कृतियों की विशेषताएं उन पात्रों के संवादों में बड़े ही सुन्दर ढंग से स्पष्ट हुई हैं–

क्लाडियस (रोमन)– ''नाना विधाओं के शास्त्र, प्रगाढ़ पाण्डित्य, काव्य और दर्शन, शिल्प और स्थापत्य, किस–किस को बखानू मित्र, आगस्टस महान के राज्य में हमें क्या–क्या ऐश्वर्य प्राप्त हैं।''

अमहोज (मिस्री)– ''तुम्हारे शास्त्र, शिल्प और पाण्डित्य के पीछे किसका वैभव चमक रहा है मित्र कलाडियस ? हमारे देवी–देवता ही तुम्हारे नगर वासियों द्वारा श्रद्धा से पूजे जाते हैं। तुम रोमन और जिनसे तुमने सभ्यता सीखी हे, वे ग्रीक भी हमारी सभ्यता से बहुत कुछ उधार लेकर गए थे।''[171]

इस वैवाहिक अवसर पर नृत्य–समारोह के लिए बनाए गए नयनाभिराम पन्दल की सजावट में भी वहां की संस्कृति का समावेश है। उस अवसर पर आए हुए यूनानी, रोम निवासी और भारतीय सेठों, की रूपाकृति और वेशभूषा का वर्णन कितना सुन्दर बन पड़ा है–

''कमर से लेकर घुटने से कुछ ऊपर तक भव्य रेशमी वस्त्र लपेटे, स्वर्ण के सादे नक्काशीदार, जालीदार टोप पहने, गले में ठोस मोटे–मोटे कालर तथा भारतीय प्रभाव वश, रत्नहार, मुदरियाँ, कंकण आदि भी पहने गेहुएँ रंग के मिस्र देशीय सेठ, पैरों में टखनों के ऊपर तक तसमों से बँधे जूते पहने, घुटनों के ऊपर जांघिया, रेशमी कमर पट्ट से बँधा बारीक सूती कुर्त्ता और आपादस्कन्ध भड़कीले लबादे डाले, लहराते सुनहरे बालों को सोने की जड़ाऊ पट्टी से सीधे दाढ़ी वाले, मूँछों वाले, गौर वर्ण के, सुन्दर, असुन्दर, तोंदियल यूनानी, रोम निवासी सेठ, सुनहरे तारों के किनारीदार घुटने तक अंग वस्त्रम पहने गले में उत्तरीय डाले मुक्ता, मरकत, माणिक्य, वैदूर्य के मूल्यवान कण्ठे, हार, मुद्रिकाएँ, कंकण, कुण्डल, किरीट आदि से सजे–धजे श्याम वर्ण सुन्दर तोंदियल भारतीय सेठ धीरे–धीरे पधारने लगे।''[172] इस अवसर पर बारातियों के रूप में वर–वधू के संबंधी तथा महाराज कारिहार बलवन के पितृव्य चेल तथा पाण्ड्यराजकुलों के प्रतिनिधि मथुरा, काशी, श्रावस्ती आदि के सेठ आए हुए थे। उनके मनोरंजनार्थ मिस्र देश के जादूगर अपना खेल दिखाकर हास्य अथवा चमत्कार की लहरें उत्पन्न कर रहे थे। उस समय व्यापारियों में भी अपने व्यवसाय के विस्तार हेतु तीन–तिकड़म और दांव पेंच चलते रहते थे। 'मानाइहन' के संकेत से पान्सा के जलसार्थ दो बार आन्ध्र के जल दस्युओं द्वारा लूटे गए। कोवलन कन्नगी के साथ ''हीरा, मोती, शेष, अक्रीक, लोहितांक, स्फटिक, जमुनियाँ, कोपल, वैडूर्य, नीलम, माणिक्य, पिरोजा, कोरण्ड आदि रत्नों का उत्तम भण्डार, काली मिर्च, जटामांसी, दालचीनी, इलायची, सोंठ, गुगुल, बायविडंग, शर्करा, अगुर–तिल का तैल, नील, सूती कपड़े, आबनूस की लकड़ी, हाथी दाँत, कछुए की खोपड़ियाँ आदि मिस्र, ग्रीस और रोम के बाजारों में अत्यधिक माँग वाली वस्तुओं से लदे पचास पोत लेकर कोवलन यात्रा पर जा रहा था।''[173]

वस्तुतः इस उपन्यास में नागरजी ने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिवेश का प्रस्तुतीकरण प्रशंसनीय शिल्प के साथ किया है।

मानस का हंस

इस उपन्यास में अकबर और उससे पूर्व के इतिहास के आधार पर उनके शासन काल की परिस्थितियों को पात्रों के संवादों, वातावरण के चित्रण द्वारा ऐतिहासिक परिवेश में बाँधा गया है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही अध्याय चार में तुलसी के जन्म के समय ही अकबर पठानों से जीत कर देश में कयामत जैसी उत्पन्न कर देते हैं। बकरीदी, राजा भगत को बतलाते हैं– ''हाँ, तो ये भया कि हुमायूँ बास्सायरहे। तौन उनके बाप पठानों से दिल्ली फतह कर लिहिन और फिर चारो अलंग देस में कयामत आय गई। मुगल ऐसी जोर से आए कि कुछ न पूछौ। कहीं रजपूतों से

ठनी, कहीं पठानों से कटाजुज्झ हुआ। बस लूट–पाट, मार–काट, आगजनी यहै हाल रहा। हमारे राजा साहेब जैसपुर के पठानों के साथ रहें। तौन मुगल, राजा साहेब की गढ़ी घेरि लिहिन– आस–पास के गाँवन मां गुहार पड़ गई। हमरे गाँव की सरहद पर ब्राह्मन, छत्तरी, अहिर, जुलाहा, सातो जात के सूरमा हर दम डटे रहे।''[174] इसी प्रकार जब तुलसीदास रत्नावली के अन्तिम समय में राजापुर पहुँचते हैं यहाँ भी लेखक इस लूट–पाट का स्पष्ट चित्रण करता है– ''जब हुमायूँ और शेरशाह की लड़ाई के पुराने दिनों की भगदड़ में इधर–उधर छितरा कर भागने वाले मुगल लड़वैये डाकू बन कर लूट–पाट और आतंक मचाने लगे, जब यह विक्रमपुर गाँव पूरी तरह से लुट–पिट और खण्डहर बनकर सभ्यता के मानचित्र से मिट गया था। बस, दो–चार गरीब गुरबे, छोटे काम करने वाले हिन्दू और पन्द्रह–बीस मुसलमानों के घर ही बच रहे थे। उस समय बाबा ने यहाँ आकर तपस्या की और संकटमोचन हनुमान को स्थापित किया। उन्हीं के आशीर्वाद से राजापुर नाम पाकर यह गाँव फिर से बसा था।''[175]

अयोध्या में राम–जन्म स्थान के ध्वंस और उसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण और काशी के विश्वनाथ मंदिर के जीर्णोद्धार की घटनाएं भी ऐतिहासिक परिवेश में वर्णित हैं। शेरशाह तथा हुमायूँ में युद्ध चल रहा था, चारों ओर अराजकता का साम्राज्य था। तुलसी की चित्रकूट से काशी की यात्रा के मध्य उन्हें एक मनुष्य पेड़ से लटका हुआ दिखाई देता है। अत्याचारियों ने उसे फाँसी दी थी। एक स्त्री भी वहीं दम तोड़ती हुई पड़ी थी। तुलसी कहते हैं– ''वीर थी वह स्त्री जिसने आतताईयों द्वारा अपवित्र होने से पहले इतने आदमियों को समाप्त कर दिया।''[176] इसी प्रकार के मर्मस्पर्शी और कारुणिक दृश्यों को देखकर तुलसी को कहना पड़ता है– ''अकबर शाह के समय में थोड़ा–बहुत सुशासन आया था, अब वह भी समाप्त हो गया। शासक दिल्ली में रहता है। उसे नित्य हीरे, मोती, जवाहरात, और सोना चाहिए। स्त्री और धन की लूट का नाम ही कलिकाल है। सारे पाप यहीं से प्रारम्भ होते हैं। हम जब पहली बार गुरु परमेश्वर के साथ यहां आए थे तब तो और भी बुरी दशा थी।''[177] तुलसी भी एक बार मेघा भगत के साथ यात्रा करते हुए मुगुल शासन के कर्मचारियों के शिकार हुए थे।

नागरजी ने तुलसी के जीवन में मोहिनी और रत्नावली के माध्यम से यह व्यक्त करना चाहा है कि नारी समस्या नहीं है, वह पुरुष के जीवन को सफल बनाने में सहयोग करती है। नारी का वासना जनित प्रेम अवश्य निन्दनीय है। मोहिनी का तुलसी से कहीं भाग चलने का आग्रह और राजापुर में भक्तिनों का घेराव तुलसी के आत्मबल को प्रोत्साहित करता है। रत्नावली तो उनको राम भक्ति तक पहुँचाने में सोपान ही सिद्ध हुई; तुलसी स्वयं कहते हैं– ''राम की प्रेम रूपी अटारी तक पहुँचने के लिए मुझे तुम्हारी प्रीति की सीढ़ियों पर चढ़ना ही था।''[178] पत्नी को शक्ति मानते हुए वे रत्ना को समझाते हैं– ''सियाराम का पुजारी अपने मानस की नारी शक्ति को भला कभी त्याग सकता है ? तुम्हारे कारण मेरी लड़खड़ाती हुई राम भक्ति अंगद का पांव बन गई।''[179]

तत्कालीन् वातावरण चित्रण में पण्डितों में तंत्र–मंत्र आदि का भी उल्लेख है। तुलसी को तान्त्रिकों का कट्टर विरोध और अनाचार भी सहने पड़े थे। प्रसिद्ध तान्त्रिक बटेश्वर दत्त और उनके पुत्र रविदत्त के कोप भाजन भी बने। तुलसी के माध्यम से नागर जी ने साधारण जन को आस्था युक्त बनाने का कार्य किया। तुलसी ने अपनी वृद्धावस्था में भी काशी प्रवास में स्थान–स्थान पर अखाड़ों का निर्माण कर युवकों को कुश्ती और व्यायाम आदि की प्रेरणा दी। भारतीय परम्परा और राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए उन्होंने अखाड़ों का निर्माण करवाया। ठठेरों, केवटों, अहीरों को संगठित कर उनकी सुप्त लोकशक्ति को जागृत किया। इसीलिए तो– ''काशी की ऐसी कौन सी गली थी, जिसे तुलसीदास ने अपना न बना लिया हो। शहर में सैकड़ों ऐसे युवक थे जिन्होंने उन्हीं की प्रेरणा से हनुमान अखाड़े आयोजित किए थे। ब्राह्मण, राजपूत, गोप, अहीर, गोंड, कहार, केवट, नाऊ, जुलाहे, छोटी कौमों के मुसलमान, तमोली, छोटे–छोटे सौदागर सभी तो राम बोला बाबा को अपना मानते हैं।''[180] तुलसी द्वारा राम राज्य की कल्पना की गई है– ''बाघ और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते हैं। राह में सोना उछालते चलो तो भी कोई तुमसे छीनेगा नहीं। जैसा न्याय राम जी करते हैं वैसा कोई नहीं कर सकता है बेटा! राम राज्य में कोई दीन–दुर्बलों को सता नहीं सकता। कोई भूखा नहीं रहता। कहीं भी चोरी–चकारी और अन्य अपराध जनित कार्य नहीं होते।''[181]

डॉ0 सुदेश के शब्दों में– ''समग्रतः 'रामचरित मानस' के प्रतिष्ठापक गोस्वमी तुलसीदास के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व को आधुनिक चेतना से संयुक्त कर देश, काल, संस्कृति को नवीन आयाम देने में नागर जी का उपन्यास 'मानस का हंस' हिन्दी साहित्य का एक अनुपम एवं सशक्त सोपान है। यह वह उपन्यास है जिसमें व्यक्ति के भीतर युग धर्म और युग धर्म में संस्कृति व मानवता के मंत्रपूत क्षण लिपिबद्ध होते चले गये हैं। निश्चय ही इस महार्घ उपलब्धि में नागरजी की सांस्कृतिक मनोमयी चिन्तना और सौष्ठवमयी कला का विशेष हाथ रहा है।''[182]

खंजन नयन

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने ऐतिहासिक एवं सांस्कृति परिवेश में तद्युगीन् हिन्दू, मुस्लिम कट्टरता का चित्रण किया है। सुल्तान सिकन्दर का युग था। मुसलमान धर्म का बोल बाला था। हिन्दू अनेक प्रकार से सताए जाते थे। हिन्दू मन्दिरों को लूटना और उन्हें ध्वस्त करना साधारण बात थी। यमुना के घाटों पर स्नान पर रोक थी। हिन्दू–समाज धीरे–धीरे भीरुं और जर्जर होता जा रहा था। कुछ कायर व्यक्तियों ने अपने जीवन रक्षा हेतु धर्म परिवर्तन का मार्ग अपनाकर मुक्ति पायी थी। हिन्दू और मुस्लिम धर्मों की टकराहट का यथार्थ चित्रांकन रामजियावन के संवाद द्वारा किया गया है– ''आज–कल भगवान तो जगह–जगह टूटे पड़े हैं। उनमें जो विसवास था वह भी टूट गया। जिनके पास पैसा है और नगर है तौ वे मजे में हैं, खाने–पीने और भोग–विलास की ताक लगाया करते हैं।''[183] परिस्थितियाँ तो यहाँ तक भीषण थीं कि धर्म के

नाम पर बदला लेने के लिए स्त्री और धन की लूट कुछ लोगों के लिए बनी हुई थी। उपन्यास के प्रारम्भ में सूरज और पण्डित सीताराम के संवाद द्वारा तत्कालीन अत्यन्त घृणित और हिन्दुओं की आस्था और संस्कृति पर प्रहार करने का चित्रण उपलब्ध होता है– ''बहुत से घाटों पर साधू और गौ माता के कटे सिर टंगे होते थे। जिससे जादू–टोने का भय उत्पन्न किया जाता था। सभी घाटों पर स्नान करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था।'' लोगों में परस्पर धार्मिक असहिष्णुता तीव्र गति से बढ़ रही थी– ''हरि जाने लोगों को ऐसी कुबुद्धि क्यों हो आती है कि दूसरों की धार्मिक आस्था पर प्रहार करते हैं। हमारे समाज में घृणा और द्वेष बहुतों को धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है। यह कुसंस्कार इतनी गहराई में गड़े हुए हैं कि इस समय घर–घर बिखर रहे हैं।''[185]

धार्मिक और सांस्कृतिक असहिष्णुता सबसे अधिक वही लोग मचाए हुए हैं जो हिन्दू परिवार बलात् मुसलमान बनाए गए थे कितना सजीव चित्रण है– ''कुछ वर्षो पहले सिकन्दर सुल्तान ने जब गद्दी पर बैठने के बाद महावन से आकर मथुरा में पहली मारकाट मचाई थी, तब जो परिवार जबरन मुसलमान बनाए गये थे, वे ही इस समय शहर में सबसे अधिक आतंककारी हैं। मथुरा के सैकड़ों घरों में लाशें पड़ी हैं, अनेक मुहल्ले धूँ–धूँ कर जल रहे हैं। काजियों, मुल्लाओं की जय–जय कार बोलकर सरकार और दीन की हुचकियाँ ले–लेकर नये मुसलमान गुण्डे हिन्दू बस्तियाँ लूट रहे हैं।[186] व्यापार नावों द्वारा दूर–दूर तक होता था। लुटेरे माल से भरी हुई इन नावों को लूट भी लेते थे। गोकुल में भी इतनी लूटपाट और ध्वंस हुआ है कि साधारण जन की आस्था ईश्वर के प्रति समाप्त प्राय हो गई है। इस स्थिति का चित्रण नागर जी ने संवादों के माध्यम से ही किया है। मुसलमानों का भय इतना अधिक था कि लोग मुस्लिम धर्म की बुराई नहीं कर सकते थे। हिन्दू और मुस्लिम धर्म को समान बतलाने पर एक पण्डित जी को फांसी भी दे दी गई थी। नाव पर सूर और कुछ यात्री बैठे यात्रा कर रहे हैं।– नाव वाले ने पूछा–''जाओंगे कहां सामी जी ?''

''गोपी की गरिया।''

''का धरो है वांपे। या गोकुल में अब न गौए हैं न ग्वारे।''

''एक ग्वाला तो अवश्य होगा वहां।''

''कौन ?''

''कृष्ण भगवान।''

पास बैठा एक यात्री बोला– ''भाजि गए ओऊ। अल्ला ने मारी लात, वो भाग पड़े गुजरात हं हं हं।''

सूरसामी– ''अल्ला ने तो हमें आपको लात मारी है। बहुत मुटमर्द हो गए थे हम लोग। श्रीकृष्ण तो स्वयं अल्ला हैं, उन्हें कौन मारेगा।''

"अरे भगत जी, यहां कही सो कोऊ बात नाय। सब अपने हैं, बाकी काहू मोलवी–मुल्ला के अगाड़ी मती कहियो। फांसी पे लटका दिए जाओगे।"

"फांसी च्यौ पडेगी ? कोई बुरी बात तो कही नई याने।"

"ये हमाई तुमाई सूधे–सच्चे मन की बात नाय है बाबा, इनके काजी मुल्लान को या बात भौत बुरी लगे कि कोऊं इनके धरम को और अपने धरम को बराबर बतलावें। एक पण्डत कौ याही बात पै सूली चढ़ाय दियो हतो।"[187]

घृणित और कारुणिक चित्रण देखिए–

"जो गाँव लूट में उजड़े हैं, उनके उजड़े परिवारों के उजड़े व्यक्तियों का समाज है। किसी की जमीन नहीं रही, कोई परिवार भिखारी बना, किसी के बच्चे तितर बितर हो गए। पति–पत्नी यहां है। विजेता जाति के एक सिपाही ने लूट के समय एक सुन्दर स्त्री और उसके घर को तो अपने अधिकार में कर लिया और पति तथा नौ वर्ष के बच्चे को मार–मार कर घर से भगा दिया। लड़का बड़ा होकर कहीं भाग गया और पिता यहाँ हैं। एक उच्च कुल का परिवार दुर्दिनों में गाँव के एक अन्त्यज परिवार के साथ भागा। युवा–युवती ने यौवन की माँग पूरी की। वर्णचेतना अब निर्लज्ज बनकर पछाड़ें खाने का खोखला अभिनय करती है। कुम्भी पाक नरक की पीडाएँ यहाँ प्रत्यक्ष देख लो। एक राजा के मुख से निषिद्ध मांस का स्पर्श कराके समाज च्युत कर दिया। पंडितों ने व्यवस्था दी कि चिता में भस्म होकर देहान्त प्रायश्चित करो। बेचारा यहीं आठो पहर अपनी हाय में भस्म होता रहता है। ऐसे अनेक व्यक्ति इनमें हैं, जो अपना नाम और भूतकाल भूल गए हैं। वर्तमान में इन्हें केवल रोटी और कामेच्छा के अतिरिक्त और कुछ याद नहीं। धवलपुर के राजा के अन्न छत्र से भोजन पाने के लिए इन्हें राधे–राधे जपने का आदेश है। पहर भर बाद इनका राधे–राधे घोर नाद आपको वृन्दावन की गली–गली में सुनाई पड़ेगा।"[188]

इस प्रकार नागरजी ने कहीं–कहीं अपनी किस्सागोई शैली के माध्यम से भी परिवेश, प्रस्तुतीकरण चित्रित किया है।

उस समय आवागमन का साधन नाव, बैलगाड़ी अथवा ऊँटगाड़ी, पालकियाँ इत्यादि थीं। ये ऊँट गाड़िया दुमंजिली भी होती थीं औ किराए पर यात्रियों को लाती ले जाती थी। सेठ, साहूकारों की आस्था तब भी श्रीराम और कृष्ण के प्रति अटल थीं।

उपन्यासकार ने संवादों द्वारा ही स्थान वर्णन और वातावरण का सृजन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिवेश में चित्रित किया है। श्री कृष्ण मंदिर का वर्णन, मंदिर की ऐतिहासिकता और स्थापत्य कला उसकी विशालता और हिन्दू संस्कृति का परिचय एक साथ देखिए–

"क्यों भाई, ये मंदिर कितना बड़ा है ?"

"जाको शिखर आकाश चूमें है। बड़ो भारी

मंदिर है। महराज! जब गजनी बारे ने पुरानो मंदिर तोड़ो हतो तब विजय पाल राजा ने जा मंदिर बनवाय के केशव जी को पधरायो ××× क्या फाटक आ गया ?"

"हाँ"

"कितना बड़ा है ?"

"मोहे तो झाई सी दीख पड़े हैं, पर मैंने एक बेर एक जना से पूछी हती। वा ने कहीं के चार–पाँच हाथी एक पे एक ठाढ़े होय तो या की ऊँचाई को पावै।[189] ऐसे मंदिरों में प्रतिदिन पूजा पाठ होता रहता था। लोगों की बड़ी भीड़ लगती थी।

उपन्यासकार ने राधा और कृष्ण की जन्म भूमि के विषय में भी बतलाया है कि राधा रावल गाँव में उत्पन्न हुई थी। "बाद में कंस राजा के कारण नंदराय जी और वृषभानु राय ने आपस में सलाह करके दूर हटकर 'नंद गाँव' और 'बरसाना' बसाया। अपनी निपट लरकाई में नंद के लाला और राधारानी इस भूमि पर खेले हैं।"[190] नागरजी ने अयोध्या के जन्म भूमि मंदिर तथा वहां के अन्य मंदिरों के विषय में भी संवादों को ही माध्यम बनाकर उनके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक परिवेश को प्रस्तुत किया है–

"राजा रामचन्द्र की बड़ी महिमा है। यह जन्म भूमि का मंदिर हजार वर्षों से भी अधिक पुराना है। सम्राट विक्रमादित्य का बनवाया हुआ है। गर्भ गृह के द्वारे ठोस सोने के बने हुए हैं।"

"यहाँ और भी मंदिर होंगें सेठ जी ?"

"हाँ–हाँ, शेष भगवान का मंदिर, नागेश्वर नाथ महादेव हैं।

जैनो के आदिनाथ भगवान का मंदिर है। एक बुद्ध भगवान का मंदिर अभी शेष है। प्राचीन कनक भवन के जीर्णशीर्ण मंदिर में सीताराम जी बिराजते हैं। पहले तो सुना बहुत सारे थे।"[191] राम मंदिर में प्रवेश करने और पूजा की पद्वति जो हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति की परिचायक है, भी इस मंदिर वर्णन में प्राप्त हो जाती है। मंदिर की बनावट, सजावट और भव्यता तथा तत्कालीन् मूर्तिकला, काष्ठकला, चित्रकला और संगीत कला आदि का चित्रण भी सजीव हो उठा है।

"पहली ड्योढ़ी, फाटक इतना बड़ा कि पाँच हाथी एक साथ प्रवेश कर जाएँ। चुनार के पत्थर की दीवारें। दूसरी ड्योढ़ी। फाटक पत्थर का ही परन्तु कोटा ईंट चूने का। फाटक से केवल तीन हाथी ही प्रवेश कर सकते हैं। एक साथ पधारे पाँच दर्शनार्थी राजाओं में से दो को अपनी मर्यादा समझकर यहाँ रुकना पड़ेगा। पहले तीन श्रेष्ठ राजाओं के हाथी जाएँगे। बाद में वे दो। इसी तरह अगले फाटक से दो, फिर एक श्रेष्ठतम दर्शनार्थी का हाथी ही प्रवेश कर पाएगा। फिर हाथी से उतर का मुकुट छत्र आदि सारे राज चिन्ह त्यागकर नंगे पांव दर्शनार्थी राजा मंदिर में प्रवेश करता था। यह मर्यादाएँ महाराज चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य ने स्वयं बाँधी थीं। यह मर्यादाएँ राजा महाराजों के लिए थीं। सदात्मा सद्योगी महापुरुष तो आप ही मर्यादाबद्ध थे।

राम के दरबार में सब समान हैं। मूल मण्डप के बाहर–बाहर की दीवारें सफेद पत्थर की संगमरमर का भव्य द्वार, ऊपर सूर्य की भव्य मूर्ति, चन्दन किवाड़ों पर अनेक दलों वाले कमल बने थे। भीतर से पूरा मण्डप कसौटी के पत्थर का ही बना था। चौरासी खंभो के गोल मण्डप में हर खंभे के पास एक–एक वीणा और एक मृदंग वादक बैठा हुआ धीमे स्वरों में सारे मण्डप को राम–राम की गूँज से भर रहा है। ××× उजागर मल सेठ, "जो स्वामी जी को एक–एक वस्तु का हाल बतलाते आए थे, अब उन्हें गर्भ गृह के द्वारे पर लाए। वहाँ तीन प्रकार के कटहरे लगे थे। एक सोने का, दूसरा चाँदी का, तीसरा ताँबे का। मर्यादानुसार ही दर्शनार्थी भगवान के निकट दर्शन पा सकता है। उजागर मल और सूर स्वामी ने चाँदी के कटहरे में खड़े होकर दर्शन पाए। जड़ाऊ हिंडोले पर अष्ट धातु से निर्मित बाल भगवान राम का मनोहर विग्रह विराज मान था।[192]

संगीत, कला और काव्य कला अपने उत्कर्ष पर थी। स्वामी हरिदास और नाद ब्रह्मानंद जैसे संगीत प्रवीण और सूर, तुलसी, नंददास, मीराबाई आदि प्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवि अपनी काव्य रचनाओं से लोक–मानस को आकर्षित कर रहे थे।

नागरजी ने भगवान विश्वनाथ की नगरी बनारस का भी ऐतिहासिक विवरण संवादों के माध्यम से ही ऐतिहासिक परिवेश में प्रस्तुत किया है। प्राचीन काल में बनारस में चार बनारस थे। एक–'देव बनारस'–इसमें सनातनी, जैनी और बुद्ध मतों के लोग रहते हैं, यह सबसे प्राचीन है। इसे देवी–देवताओं ने स्थापित किया था। दूसरी–'जवन बनारस'–प्राचीन काल में यह भी देव बनारस ही थी किन्तु बाद में धर्म परिवर्तन करके जब मुसलमान लोग यहां रहने लगे तो इसका नाम 'जवन बनारस' पड़ गया। तीसरी–बनारस–'मदन बनारस' और चौथी–'विजय बनारस'। इन दोनों को गाहड़ वाल राजाओं ने अपने–अपने नाम से बसाया था। परन्तु अब ये दोनों बस नाम के ही हैं। यवन–वाराणसी के वातावरण और राजसी ठाट बाट का सजीव चित्रण भी नागरजी ने किया है–

"घुड़ सवारों की खबड़–खबड़–खरड़–खरड़ करते रथों के बैलों की घण्टियाँ। डोली, पीनस कहारों के बोल शाह का बेटवा जिए, भइया हो–दुलकी चाल रामा–अल्लाहो। बच कै चलो भइया हो। इन परम्परागत बोलों के बाद घण्टियाँ बजाता, झूमता एक हाथी भी सड़क से गुजर गया। बड़ी–बड़ी हवेलियाँ, जिनकी लम्बी चौड़ी चहार दीवारियाँ, बीच–बीच में दो चार दुकाने अपनी–अपनी हलचलों से स्वामी के कानों ने देखी। सब मिलाकर मन पर पहली छाप यह पड़ी कि यहाँ रजोगुणी दुनिया है।"[193]

नागरजी ने ऐतिहासिक परिवेश में ही तत्कालीन् नगरों में होने वाले विद्रोह, सिकन्दर द्वारा हैबत खाँ को पराजित करना और यमुना तट पर बसे हुए आगरा को राजधानी बनाना आदि और 'बादल गढ़' नामक ध्वस्त प्राय किले की मरम्मत करवाना, 'सिकन्दरा' का नाम करण आदि का उल्लेख भी नागर जी के ऐतिहासिक परिवेश प्रस्तुतीकरण शिल्प का एक अनुपम उदाहरण है।

भगवान परशुराम की माता के नाम पर बसा हुआ रेणुका क्षेत्र का उस समय बड़ा माहात्म्य था। इलाहाबाद उस समय 'इलाबास' के नाम से प्रसिद्ध था, ग्वालियर ध्रुपद धमाल की राजधानी बनी हुई थी।

नागरजी ने इस उपन्यास में पर्वों उत्सवों का वर्णन करते हुए सांस्कृतिक परिवेश को एक अनोखा रूप प्रदान किया है। 'अन्न कूटोत्सव' का वर्णन सांस्कृतिक चित्रण के साथ कितना आकर्षक बन पड़ा है–

"पत्थर का सिंहासन बनाकर पीठ की ओर टेक लिए एक बड़ी शिला जमाकर गोबर्द्धन नाथ जी को प्रतिष्ठित किया गया। मंत्रोच्चार के साथ भगवान के स्नानार्थ ब्राह्मण गण गोविन्द कुंड से जल लाए। नाना वाद्य भेदी शंख मृदंग बजे। स्त्रियाँ मंगल गीत गाने लगीं। गाँव–गाँव से दूध, दही, घी, मख्खन आया, भोग सामग्री प्रस्तुत हुई, फल–फूल, शाक–भाजी नाना उपहार आ गए। माधवेन्द्र पुरी महाराज ने वर्षों से धूलि धूसरित अंगों को मल–मल कर पंचामृत से स्नान कराया फिर तेल मला, जल से नहलाया। अंग मार्जन करके केशर, कस्तूरी, कपूर संयुक्त सुगंधित चंदन से सर्वांग लेप किया, पीत वस्त्र पहनाए। तुलसी, पुष्प, गुंज माला, धूपदीप, नैवेघ इत्यादि से षोड्षोपचार पूजन किया। उत्तमोत्तम षटरस भोजन बने। बड़े–बड़े अभिमानी ब्राह्मण और उनकी ब्राह्मणियाँ चाकर बनी हुई रसोई की व्यवस्था कर रही थीं। भगवान को भोग अर्पित किया गया। आवाल, बृद्ध, वनिता सभी ब्रज वासियों ने प्रसाद पाया।"[194]

नागरजी ने जन्म भूमि मंदिर तोड़े जाने और उसके बाद एक वर्ष के अन्दर ही सिकन्दर लोदी की मृत्यु, इब्राहिम लोदी का अल्प शासन और उसके बाद बाबर द्वारा पूरे उत्तर भारत में अशान्ति की आग फैलने आदि का उल्लेख, राणासांगा की बाबर के साथ राजनीतिक चाल आदि का उल्लेख तो किया ही हैं, बाबर द्वारा बनवायी गयी बावड़ी हौज, बारह दरी और हनुमान आदि का निर्माण भी ऐतिहासिक परिवेश में चित्रित किए हैं– "इब्राहिम लोदी के महलों और किले की दीवार के बीच में जमीन का एक टुकड़ा खाली पड़ा था। उसमें बावड़ी बन गयी। जमनापार चारबाग बनवाया। अठपहलू हौज वाला लाल पत्थर का कमरा बनवाया। बढ़िया बाग, अच्छे किस्म के पेड़, सुन्दर फूलों की क्यारियाँ। लोग कहें कि बाबर शाह ने तो आगरे में काबुल आबाद कर दिखाया है। उन दिनों भारत में काबुल का बड़ा रोब था।"[195]

वस्तुतः इस उपन्यास में नागर जी का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवेश प्रस्तुतीकरण शिल्प अपनी अनुपम आभा विकीर्ण करता है।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में कालगत धारणा

(क) काल का स्वरूप

काल क्या है ? और उसके बोध का आधार क्या है ? सर्वप्रथम यहीं विचारणीय प्रश्न है। 'काल' के तीन रूपों–भूत, वर्तमान और भविष्य–से हम सभी परिचित हैं। मानव अपने अस्तित्व और सृष्टि के परिवर्तनशील अवयवों को ध्यान में रखकर 'काल' की त्रिमूर्ति की कल्पना करता है। इस संसार में काल के आयाम में, मानव का जीवन, जन्म और मृत्यु के दो सिरों से बँधा हुआ है। वह क्षण–क्षण परिवर्तित होता रहता है। बाल्य काल, यौवन काल और स्थविर काल को प्राप्त होकर वह जीवन लीला समाप्त करता है। कभी–कभी वह अकाल भी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। व्यक्तिगत जीवन के आधार पर मानव जाति की परम्परागत जीवन गति (इतिहास) को भी वह बोध ग्रहण करता है। जीवन यात्रा का जो अंश मनुष्य ने या मानव जाति ने तय कर लिया है उसे वह विगत अथवा 'अतीत' की संज्ञा देता है, और जिस क्षण वह अतीत की यात्रा से अपने को पृथक करके देख रहा है, वह उसका वर्तमान है। इसी प्रकार जिस समय 'वर्तमान' वर्तमान न रहकर अनागत बन जायगा, वह परवर्ती समय मनुष्य की कल्पना में 'भविष्य' है। इस प्रकार काल–प्रवाह का बोध मानव ने अपनी परिवर्तनशील स्थिति से प्राप्त कर लिया है।

परिवर्तन बोध पर हमारा काल–बोध निर्भर है। जिस चिन्तन में मनुष्य तथा अन्य चराचर में परिवर्तन संबंधी मान्यता स्वीकार नहीं है, वह दृष्टा को सृष्टि में निहित किसी काल निरपेक्ष निश्चल मूर्ति के ही दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ, अध्यात्म वादीजन जगत में पंचभूतों को मिथ्या ठहराकर 'आत्म तत्व' को सर्वोपरि तत्व के रूप में ग्रहण करता हैं। उनकी दृष्टि में 'आत्मा' अजर, अमर, और अजन्मा है। वह परिवर्तनशील नहीं है। वे आत्मा को 'भूत' या 'भविष्य' में न मानकर केवल वर्तमान में स्वीकार करते हैं। 'आत्मा' कालातीत है।

मानव का कालगति संबंधी बोध स्वंय उसके अनुभव का परिणाम है। उसने इस गति को विधिवत हृदयंगम करने के लिए इसका विभाजन किया है– अंधकार और प्रकाश के परस्पर अनुवर्ती क्रम के आधार पर। प्रकाश और अंधकार के क्रम का आधार है सूर्य। जब सूर्य का प्रकाश हमारी दृष्टि के समक्ष रहता है तो हम उसे 'दिन' कहते हैं और शेष को 'रात्रि'। यदि सूर्य हमारे जीवन से निकल जाय तो काल की गति स्तब्ध सी हो जायगी।

प्रकाश या अन्धकार, दिन अथवा रात्रि के चक्र से मापा जाता है। इन्हीं दिन और रात के आधार पर 'काल' को घण्टा, मिनट और सेकेण्ड में बाँटा गया है। इसे घड़ी की सुई में बाँधकर मनुष्य निश्चिंत है। काल का यही स्वरूप साधारणतः सर्वमान्य है। घड़ी के क्षण दिन बनाते हैं और दिनों का लेखा जोखा 'कैलेण्डर' करता है। घड़ी और कैलेण्डर हमारे 'काल बोध' के प्रतीक हैं।

(ब) काल के विभिन्न आयाम

हमारी जीवन यात्रा काल के आयाम में है। इस यात्रा की अनुभव प्रक्रिया भी काल के ही अधीन है। उपन्यास में जीवन यात्रा और उसके अनुभव हैं। अतः उपन्यास संबंधी गतिक्रम को समझने के लिए उसे तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

1– आख्यान काल।

2– निहित काल।

3– पठन काल।

'आख्यान' काल की वह मात्रा है जिसमें उपन्यास के जीवन को प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिए– किसी प्रसंग को प्रस्तुत करने के लिए उपन्यासकार 'दश' मिनट लगाता है, इन 'दश' मिनटों में वह दश मिनट के जीवन का या दश वर्षो के जीवन का अथवा सैकड़ों वर्षो के जीवन का बोध पाठकों को करा सकता है। उपन्यासकार ने अपने दश मिनटों में जो एक मिनट या दश मिनट, दश वर्ष या सौ वर्ष की कथा कही है, उसी के अनुसार उस कथा का 'निहित–काल' है। उपन्यासकार दश मिनट में (आख्यान काल) में दश वर्ष या सौ वर्ष (निहितकाल) की कथा कहता है। पाठक उसे पढ़ने, उसमें रस लेने और समझने में पन्द्रह मिनट लगाता है। हो सकता है, पाठक अपनी रूचि तथा प्रसंग की आर्कषण क्षमता के अनुसार उस अंश' को रूक–रूक कर, एक से अधिक बार पढ़कर, विचार तथा कल्पना में खोकर उसे पढ़ने में आख्यान काल का दूना समय लगा दे। यह भी संभव है कि प्रसंग की रोचकता के अभाव में अथवा पाठक की स्वयं की मनोदशा अनुकूल न होने पर, वह अंश पाठक एक ही दो मिनट में सरसरी तौर पर पन्ने पलटकर समाप्त कर दे– यहाँ जो समय लगता है, वही उपन्यास का 'पठन काल' है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आख्यान काल और पठन काल में एकता होना अनिवार्य नहीं है। निहित काल में गंभीरता से विचार करने से यह सभी बातें और अधिक स्पष्ट हो जायेंगी।

घड़ी या कैलेण्डर द्वारा अंकित कोई काल खण्ड– मिनट, घण्टे, दिन, सप्ताह, पखवारा, माह, वर्ष, दश वर्ष और शताब्दी, किसी घटना विशेष का काल– अनुभूति अथवा मानवीय संवेदना की दृष्टि से भिन्न–भिन्न अर्थ रखता है । जैसे– प्रिय के चिर प्रतीक्षित मिलने से पूर्व के कुछ क्षण, चरम उत्सुकता के कारण, व्यक्ति को वर्षों से अधिक भारी पड़ सकते हैं, इसके विपरीत संयोग के दिन उड़ते दृष्टि गोचर हों। देर हो जाने पर गड़बड़ी में रेल पकड़ने वाले और एकाग्रता में लीन व्यक्ति के काल–बोध में स्वाभाविक अंतर होगा। इसी प्रकार अबोध बालक के अस्पष्ट काल–ज्ञान और प्रौढ़ व्यक्ति के काल–ज्ञान में अंतर होता है। उपन्यासकार पात्रों के काल–यापन का उल्लेख मात्र कर देता है– जैसे– दिन बीत गया, सांझ आ गयी, रात बीती, सबेरा हो गया, दिन बीत

गए, दो महीने दश वर्ष या अनेक वर्ष व्यतीत हो गये। इतना काल बीतने का उल्लेख कुछ शब्दों में ही कर देता है। यही निहित काल के अन्तर्गत **'कालोल्लेख'** कहा जाता है।

कालोल्लेख के अतिरिक्त काल के चित्रण की दूसरी विधि पात्रों की गति विधि द्वारा अपनायी जाती है। पात्र बीतते क्षणों के साथ जो कुछ करता चल रहा है, उसका वृत्तांत देते समय उपन्यासकार पात्रों की गति और समय को 'सम' पर लाने का प्रयास करता है। यहाँ 'काल' के साथ जीवन चल रहा है। 'कालोल्लेख' में काल बीत गया है किन्तु जीवन में कहने योग्य विशेष परिवर्तन नही आता। जब जीवन गतिविधियों के साथ कालयापन करता है तो यही 'गतिविधि चित्रण काल' कहा जाता है।

निहितकाल की इन दो कोटियों के अतिरिक्त पात्रों के संवेदन काल की स्थिति आती है। भाव प्रवण व्यक्ति भावानुभूति के क्षणों के महत्व को भली–भाँति समझता है। जीवन–गति का मूल्य उसकी दृष्टि में एक अनिवार्य परिपाटी के रूप में रहता है। उसका शरीर जीवन प्रवाह का अंग है किन्तु उसका मन अनुभूतियों में केन्द्रित रहता है। जिस घटना को भोक्ता मन ने अनुभूति प्रदान की है, अपनी भावना से रचा और भोगा है, वह उसके लिए 'तथ्य' न रहकर 'सत्य' बन जाती है।

पात्रों की अनुभूतियाँ चेतना की गति साधारण काल गति से भिन्न है। इसके अन्तर्गत 'काल' का जो आभास 'उपन्यास' में कराया जाता है, उसे 'मनोगत काल' की संज्ञा दी गई है। मन की गति विचित्र है। यही कभी निश्चल हो जाता है और कभी अनुभूति और विचार के क्रम में अतीत अथवा भविष्य की अतल गहराइयों में डूबने उतराने लगता है। मन की इस दोलायमान प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति का वर्तमान कालखण्ड अनोखी विविधता और विचित्र विस्तार धारण कर लेता है।

इस प्रकार 'उपन्यास' के 'निहित काल' की तीन कोटियाँ है। उपन्यासकार कभी 'काल' का उल्लेख मात्र करता है अथवा कालान्तर में जो घटा है उसका सार वर्णन कर देता है। कभी वह काल गति के साथ पात्रों की गतिविधि का चित्रण करता है, और कभी कालक्रम को पीछे धकेलकर पात्रों की गहन चेतना में प्रवेश करता है। ये तीनों काल कोटियाँ क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाती है। इनको यदि हम सितार के तीन तार मान ले, तो इन्हीं पर आवश्यकतानुसार अंगुलियाँ फेरकर कुशल उपन्यासकार रचना के गतिबोध को नियन्त्रित करता है। तीसरे तार अर्थात् मनोगत काल में सबसे अधिक गूँज है। पात्रों के मनोगत काल के संकोच या प्रसार के कौशल से रचयिता अपनी सामर्थ्य का परिचय देता है। मनोगत काल की संवेदना क्षमता के अनुसार पाठक कभी उपन्यास में तन्मय हो जाता है, कभी रुक–रुक कर पढता है और कभी किसी अंश को बार–बार पढता है।[196] उपन्यास मानवीय संबंधों और मानव मन की दिशाओं को काल के विविध आयामों में प्रत्यक्ष करता है।

यद्यपि काल जिसे हम समय के नाम से भी जानते है। अनादि है, अनन्त है, असीम है फिर भी मनुष्य ने अपनी बुद्धि के अनुसार उसका अनुभव करने के लिए मुख्य रूप से तीन

आयामों में विभक्त कर रखा है– भूत, वर्तमान और भविष्य। 'अतीत' जिसे इतिहास का नाम दे दिया जाता है, वह भी 'वर्तमान' ही है और 'भूतकाल' ही भविष्य को जन्म देता है। काल की गति अबाध है, अटूट है। काल के संबंध में नागर जी ने 'बूंद और समुद्र' में अपनी धारणा व्यक्त की है– ''काल की एक अटूट धारा है। काल को सिर्फ जीव ही भोगता है, जीव ही पहचानता है। इन्सान चूंकि इन सब जीवों में 'आला दिमाग' रखता है इसलिए अपने काल के अनुभव को हजार तरीके से व्यक्त करना भी जानता है। अनुभव से ही उसकी रचनात्मक शक्तियों का विकास होता है। जीवन का अनुभव ही मनुष्य का इतिहास है– वह मनुष्य चाहे कलाकार हो या कोई भी हो।''[197] इसी 'आला दिमाग' वाले मनुष्य ने काल के अनुभव को, काल के अत्यन्त लघु और व्यापक तथा अत्यन्त विस्तृत कालखण्डों में अपनी सुविधानुसार बांटा है। घण्टा, मिनट, सेकेण्ड, दिन–रात, चौबीस घण्टे, सप्ताह, पखवारा, महीना, वर्ष, सौ वर्ष और युग आदि। इतिहासकारों ने इसे वैदिक काल, पाषाण काल, बौद्ध काल, गुप्त काल, अंग्रेजी शासन काल, नवाबी शासन काल, स्वातन्त्र्योत्तर काल आदि में विभक्त किया है। साहित्य के इतिहासकारों ने साहित्य की अनेक विधाओं के अनुरूप आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल, भारतेन्दुकाल, द्विवेदी युग, प्रेमचन्द युग और आधुनिक युग आदि नामों से इस अटूट धारा वाले काल को विभाजित कर रखा है। किन्तु, वास्तव में सब कालखण्ड एक ही है।

नागरजी का काल–प्रस्तुतीकरण–शिल्प

काल निरन्तर प्रवहमान रहता है। नागरजी की धारणा है कि काल अनादि अनन्त, अबाध और अकाट्य है। किन्तु उसका अस्तित्व तभी है। जब प्राणी उसके प्रभाव का अनुभव करें। उन्हीं अनुभवों को कलाकार अभिव्यक्ति देता है, चाहे वह मूर्ति कला हो, चाहे संगीत कला हो या काव्य–कला (साहित्य)। अभिव्यक्ति की सर्वाधिक क्षमता साहित्य में ही है। नागरजी ने अपने उपन्यासों में काल की त्रिमूर्ति (भूत, वर्तमान और भविष्य) का प्रस्तुतीकरण अत्यन्त कौशल के साथ किया है, उन्होंने कहीं भी अप्रासंगिक रूप से काल चित्रण नहीं किया है।

नागरजी सर्वप्रथम जीवन को भली–भाँति हृदयगम करते हैं, अतीत से प्रेरणा लेते है और भविष्य की सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए काल का प्रस्तुतीकरण करते हैं। भूत या अतीत का पुनरवलोकन ही इतिहास है और इसे मनुष्य अपने पूर्वजों से सुनकर या फिर चली आती हुई परम्पराओं का अध्ययन कर उनसे अपना मनतव्य स्थिर करता है।

नागरजी ने दृश्य और अदृश्य–जीवन के दोनों पक्षों को एकत्र किया है और इन्हीं के आधार पर अपने गम्भीर चिन्तन से जीवननद के तथ्यों एवं मूल्यों को काल चित्रण में प्रतिपादित किया है। 'बूँद और समुद्र' में महिपाल के चरित्र के माध्यम से वे जीवन के वर्तमान को प्रस्तुत करते हैं और उसका यह वर्तमान किन कारणों की देन है, इसका अन्वेषण उसके अतीत में करते हैं और इस प्रकार भावी सम्भावनाओं को भविष्य कें रूप में प्रस्तुत करते हैं। मनुष्य समाज में रहकर अनेक प्रकार की उलझनों से ग्रस्त रहता है। नागरजी ने अपने इस उपन्यास में व्यक्ति

और समाज की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है। उनका निष्कर्ष है कि व्यक्ति और समाज की इन समस्त अव्यस्थाओं का उत्तरदायी व्यक्ति का जीवन ही है, और इसी आधार पर वे इन विषमताओं की मूल को अन्वेषण करते हैं और तत्पश्चात् वे उसके निराकरण की सम्भावना और सुझाव व्यक्त करते हैं।

अमृतलाल नागर को अतीत से लगाव है, वर्तमान से किसी प्रकार का सन्तोष तो नहीं है किन्तु, कुरीतियों एवं रूढ़ियों के प्रति वे अपना विरोध व्यक्त करते है, वह भी अत्यन्त ही सहानुभूति के साथ। 'बूँद और समुद्र' के अन्त में नागरजी ने वर्तमान में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों, आस्थाओं और रूढ़ियों का विरोध करते हुए भविष्य में उनको त्यागने और वैज्ञानिक मंथन के द्वारा उनमें सुधार लाने की मंगल कामना की है। उपन्यास के नायक सज्जन द्वारा नागर जी ने अपने सामाजिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है और भिन्न–भिन्न पात्रों द्वारा खण्डन–मण्डन कराकर भावी सुधार की संभावना व्यक्त की है। उन्होंने लोक–जीवन के प्रत्येक पक्ष पर गम्भीर चिन्तन किया है।

विवाह

नागरजी ने इस उपन्यास में प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, अनमेल विवाह आदि का कटु शब्दों में प्रतिकार किया है और उनके दुष्परिणामों को सामने लाकर समाज को उससे सीख लेने के लिए प्रेरित किया है। मनिया की पत्नी 'बड़ी' (मोहिन), शंकर की पत्नी 'छोटी', 'मिसेज तारा वर्मा', 'सज्जन', 'वन कन्या', 'महिपाल', 'शीला स्विंग' और 'कल्याणी' आदि पात्रों के माध्यम से उपर्युक्त विवाहों तथा पति–पत्नी संबंध की सार्थकता के संबंध में वाद–विवाद और चर्चा की है। मनिया की पत्नी (बड़ी) जो सामान्य शिक्षा प्राप्त नारी है, प्रेम विवाह का समर्थन करती है– "कुछ भी कह लो भाई। लौ मैरिज में होता अजब मजा है। एक बार जब हम एर्थ में पढ़ते थे तो हमारा भी लौ हुआ था, एक लड़के से।"[198] छोटी का कथन है– "लव में तो यही खराबी है, वियोग हो जाता है। हमारा तो भाई सच्ची कहैं, किसी से लव–वव हुआ नहीं। हा जो ब्याह के पहले इन्हीं से कहीं हमारी आँख भी लड़ जाती तो बड़ा मजा आता।"[199] तारा इण्टरमीडिएट तक पढ़ी है, अन्तर्जातीय विवाह किया है। वह जाति–पाँति, ऊँच–नीच नहीं मानती है। भभूति सोनार की बड़ी और छोटी बहुओं से वह बड़ी आत्मीयता से कहती है– "अरे बहन, ऊँच–नीच की बातें अब कौन मानता है और हम तो भाई, जाति–पाँति को ही नहीं मानते।"[200] मिसेज तारा वर्मा अन्तर्जातीय विवाह करके परम प्रसन्न है। 'छोटी' प्रेम को ही विवाह की पहली शर्त मानती है– "इसीलिए तो कहती हूँ कि लव में भी धोखा है। अभी मान लो तुम्हारा कुछ ऊँच–नीच हो जाता, तो बदनामी तो तुम्हारी होती।"[201] वहीं 'बड़ी' का विचार है कि– "जब तक माँ–बापों के हाँथ में लड़की–लड़कों की शादी करने का अधिकार रहेगा, तब तक स्त्रियों को यों ही दुर्दशा होती रहेगी।"[202] 'छोटी', 'बड़ी' की इस बात का खण्डन करती है– "नहीं जीजी, दोनों ही बातें हैं। बहुत सी लव मैरिजें भी फेल हो जाती हैं। मैं तो कहती हूँ कि ये तारा बहन बड़े नसीब वाली है कि जो प्रेम के जाल में फँसी भी और उसके बाद भी भगवान ने जैसा सोहाग इनको दिया, वैसा

सबको मिले। नहीं तो मतलब भरे का प्रेम होता है, जहाँ मतलब सधा नहीं कि प्रेमी जी चंपत हो जाते हैं।''[203]

महिपाल की प्रेमिका शीला स्विंग उच्च शिक्षा प्राप्त युवती है। वह प्रेम विवाह के संबंध में वन कन्या से कहती है– ''तुम्हारा मतलब है कि शादी तुम्हारे लिए गंभीर चिंता की प्राब्लेम है। सच कहना डार्लिंग, क्या तुम भी उन लोगों में से हो जो प्रेम को स्कूल का कोर्स समझकर इम्तहान पर इम्तहान पास करते हैं। और अंत में सर्टीफिकेट लेकर शादी करते हैं। मुझे इस बेवकूफी के सिद्धान्त पर हंसी आती है। अरे, अपने ऊपर भरोसा रखो, जब एक दूसरे पर दिल आया है और जब दोनों ही पढ़े लिखे शरीफ और समझदार हैं, तो यकीन मानों उम्र भर दोनों में प्रेम की गाँठ खुल नहीं सकती।''[204] इसी प्रकार 'महिपाल' के साथ प्रेम में असफलता प्राप्त करने के बाद शीला अपने जीवन का अनुभव व्यक्त करती है:– ''औरत मर्द के रिश्ते को लेकर मैंने जीवन में एक–एक बात सीखी है– प्रेम थ्योरी नहीं, प्रैक्टिस है, जितना ज्यादा प्यार करो रिश्ता उतना ही गहरा पैठता है और रिश्ता जितना पुराना होता है, उसमें रोज उतनी ही ताजगी आती है।''[205]

उपन्यास में कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो विवाह संस्था का ही प्रतिकार करते हैं। 'सज्जन', 'महिपाल' और 'शीला' परस्पर चर्चा करते हैं ''शादी और उसका मारल कोड समाज को उठाने के बजाय उसे गिराते हैं। इन्हें खत्म कर देना चाहिए।''[206]

शीला:– ''वह आप ही खत्म हो जायगा जब औरत और मर्द दोनों ही ऊँची शिक्षा पायेंगे, दोनों ही कमाने लगेंगे। उसी दिन यह सड़ागला मारल कोड भी खत्म हो जायगा।''[207]

महिपाल:– मानव समाज के इतिहास में ही देखो, शुरू में तो कोई रिश्ते थे ही नहीं, ऐतरेय 'ब्राह्मण' में इसका रिफरेंस है।''[208]

शीला:– ''खून के रिश्तों को तो मानना ही चाहिए। यह हर प्रोग्रेसिव सोसाइटी में माने जायेंगे।''[209] मनिया की पत्नी 'बड़ी' भी विवाह का प्रतिकार करती है– ''हम तो कहते हैं, दुनिया से शादी की रसम ही उठा दी जाय। इससे हम औरतों का नुकसान होता है। धंधा पीटें, बच्चा जने, मार खाँय, सब के बोल–कुबोल सुने और फिर भी हमारी निगोड़ी कोई कदर नहीं। ×× हम तो चाहते है कि औरतें भी पढ़ लिख कर नौकरी करें, तब जैसे मरद मनमानी करता है, वैसे ही औरतें भी करेंगी। घर गिरहस्ती का झंझट नहीं। मजे से दफ्तर में गए, होटल में खाया और जिसके साथ मन में आया, घूमे फिरे।''[210]

महिपाल अपनी असफल शादी का कारण स्पष्ट करता हुआ करता है– ''मेरी शादी असफल रही, जैसी माता–पिता द्वारा तय की गई शादियाँ आम तौर पर होती हैं। हमारे अस्सी फीसदी घरों में ऐसी शादियाँ जीवन भर के कर्ज की तरह निभाई जाती हैं। नतीजा यह होता है

कि कहीं पति और कहीं पत्नी और कहीं पति–पत्नी दोनों ही एक–दूसरे के पीठ पीछे व्यभिचार करते हैं।''[211]

डॉ0 शीला मानती हैं कि– ''सिर्फ ऐसी ही शादियों में क्यों लव मैरिजेज में भी यही होता है। जब तक नये–नये रोमियों और जूलिएट रहे, दोनों में बड़ा प्रेम रहा, फिर या तो तलाक या आपस में दगा बाजी–यही रास्ते रह जाते हैं। मैं भी इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि शादी का रिवाज इन्सानों में धोखा धड़ी, झूठ और अत्याचारों को जगाता है। इसे हटा दीजिए, फिर देखिए औरत मर्द के रिश्ते कितने जल्दी नार्मल हो जायेंगे।''[212]

महिपाल का चिन्तन उपन्यासकार का चिन्तन है। ''जहाँ पुरुष अनेक पत्नियों, अनेक रखैलों के साथ सुख का जीवन बिताने के लिए स्वतंत्र है और स्त्री इस तरह बात–बात पर दण्डित की जाती है, वहाँ स्त्रियों द्वारा पाप न हो, वह थोड़ा है। पुरुष ने अपनी सुख सुविधा के लिए स्त्री को गणिका भी बनाया। पति–पत्नी के बैध नाते के अतिरिक्त समाज में उपपति, उपपत्नी, कौटुम्बिक व्यभिचार, पर जातीय व्यभिचार, वेश्यागामिता, बलात्कार आदि द्वारा भी अनेक बातें प्रचलित हैं। इस देश में तथा पर देशों में रचे नए–पुराने साहित्य के द्वारा भी पता चलता है कि यह कुचलन अति प्राचीन और सार्वभौमिक है। विवाह नामक अति सशक्त संस्था को बड़े पुराने जमाने से आज तक स्त्री–पुरुष के इन अनैतिक नातों ने अनगिनत आघात पहुँचाया है। फिर भी यह सच है कि विवाह की प्रथा आज तक किसी के द्वारा भी तोड़े न टूट सकी। विवाह की प्रथा सतीत्व के सिद्धान्त की जननी है और सतीत्व का आदर्श सदा एकांगी रूप से ही समाज पर लागू हुआ है। यह एकांगी सतीत्व ही विवाह प्रथा को अधिकांश में अर्थहीन और लकवा पीड़ित सा लुंज बनाए हुए है।''[213] नारी पुरुष संबंध की परिणति विवाह ही है। यह बहुत ही महत्व पूर्ण जिम्मेदारी है। विवाह मन चलों का खेल नहीं है। बन कन्या के शब्दों में:– ''कवियों ने जिन विचारों और अनुभूतियों को सदा आगे बढ़ाया है, मैं उन्हें धोखे की टट्टी मानती हूँ। बात सीधी होनी चाहिए। स्त्री–पुरुष नाते का अन्तिम रूप है– पति–पत्नी होना।''[214] स्त्री–पुरुष जीवन में सिर्फ एक ही बार एक–दूसरे को पाते हैं, मेरा इस बात में दृढ़ विश्वास है और पाने के लिए उन्हें आपस में अपने आपको अनेक कसौटियों पर कसना होता है।''[215]

भविष्य–

नागरजी का स्पष्ट मत है कि: ''पति–पत्नी की सहज जोड़ी दुनियाँ में रहेगी। वह नित्य है, उसका अन्त नहीं। संस्कार युक्त ऊँर्ध्व चेता महिपाल इससे मुह कैसे चुरा सकता है।[216]

विवाह प्रथा को 'अतीत' की कथा से जोड़ते हुए वे कहते हैं– ''शादी की प्रथा शुरू होने के साथ हमारे यहाँ एक बड़ी धार्मिक कथा जुड़ी हुई है। उद्दालक ऋषि का बेटा श्वेतकेतु अपनी माँ की गोद में बैठा हुआ था। अचानक एक ब्राह्मण आया और उसकी माँ का हाँथ पकड़ कर ले गया। माँ की गोद में सुख पाते हुए बालक को इससे बड़ा बुरा लगा। उसने अपने पिता से इसका कारण पूछा। उद्दालक बोले– 'यह समाज का नियम है, हर पुरुष का हर स्त्री पर

अधिकार है।' श्वेतकेतु ने तड़प कर कहा कि जो स्त्री और पुरुष आपस के नाते के अलावा अन्य स्त्रियों और पुरुषों से देह नाता जोड़ते फिरेंगे उन्हें भ्रूण हत्या का पाप लगेगा।' सचमुच माँ होने के बाद औरत महज देह भोग की चीज नहीं रह जाती और पिता होते ही पुरुष को अपने वीर्य का तेज दिखाई देता है।''[217]

इसी संबंध में अतीत से ही दशरथ का उदाहरण जोड़ते हुए उनका चिन्तन है कि ''स्वयं दशरथ की मिसाल ही मौजूद है। विभिन्न स्त्रियों से यदि उनकी संतानें न होती, तो क्या उनका घर यों तीन–तेरह होता ? बहु पत्नीवाद की अन्यतम ट्रेजडी के रूप में दशरथ का उदाहरण उसके सामने आया। तीन स्त्रियों से उत्पन्न चार बेटों के बाप को कितनी बुरी मौत मरना पड़ा।

राम का एक पत्नी व्रत का सिद्धान्त अपने पिता के जीवन दृष्टान्त से पाये गए कटु सत्य के आधार पर ही बना होगा। राम संयमी थे, विचारक थे। उन्होंने मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर ही महानियम को अपनाया।''[218]

लेखक के समक्ष वर्तमान में दहेज की समस्या और उसके दुष्परिणाम हैं। वह इससे आक्रोशित है। महिपाल के शब्दों में वह अपना आक्रोश प्रकट करता है– ''ये पैसे की दुनिया बहुत दिनों तक नहीं रहेगी, आज तो समाज का शासन ही बेइमानों और लुटेरों के हाथ में है। लोक जीवन की मान्यताएं वही हैं जो वे चलाते हैं। जो इस–इस धाँधली बाजी को समाज की सौभाग्य चमक बताकर अपना खोटा सिक्का चला रहे हैं, वे ये भूल जाते हैं कि करोड़ों भूखे, बेकार और नंगे उनके पीछे, 'मरता क्या न करता' वाली स्प्रिट लेकर पागल जोश के साथ बढ़े चले आ रहे हैं।'' यहीं लेखक पुनः भविष्य का निरूपण करता है– ''इन मुट्ठी भर धाँधली बाजों को जलाकर खाक कर देंगे तब मेरी लड़कियों के साथ ज्ञान रूपी दहेज जायेगा और उसी की कीमत होगी।''[219]

नागरजी बड़े कौशल के साथ वर्तमान की समस्या को उठाते हैं, उस समस्या की खोज में अतीत में जाते हैं और उस कारण पर चिन्तन कर भविष्य के निर्माण की कामना करते हैं। कन्या और सज्जन का संवाद यह स्पष्ट करता है कि हमारे सामाजिक ढाँचे में कहीं किसी सिस्टम की खराबी अवश्य है। इसीलिए अच्छे–अच्छे सामाजिक आदर्श अपना प्रभाव रखते हुए भी नई शक्ति नहीं बन पाते इस कारण की खोज के लिए लेखक अतीत की ओर दृष्टि डालता है और उसे लगता है कि ''कबीर बुर्जुआ कल्चर से नहीं आया। सूर, तुलसी, तुकाराम, नरसी, चण्डीदास, वगैरा बुर्जुआ कल्चर की देन नहीं, ये जो अपने यहाँ हम तमाम जाट, जुलाहे, चमार, पासी वगैरा संतों का ट्रेडीसन देखते हैं, वे किसी नेशनल करेक्टर के बिना पनप ही नहीं सकते। न पढ़े न लिखे, न किसी ऊँचे समाज में जन्मे, फिर भी अपनी पर्सनाल्टी से वे इस घोर रूढ़िवादी देश पर छा जाते हैं। मैं इन लोगों की नैतिक सुन्दरता की बात कर रहा हूँ।'' उपन्यासकार कुछ रूढ़ियों और परम्पराओं की बखिया उधेड़ता है और अगर इनमें कोई संसोधन न हुआ तो व्यक्ति किसी किस्म कीं नैतिक सुन्दरता के योग्य नहीं रह जाएगा। ''देखिए जैसे यह सत्यनारायण की

कथा है। इसमें क्या है ? करोड़ों घरों में इसकी कहानी बड़ी श्रद्धा से पढ़ी जाती है। इसमें कौन सा मारल है ? मैंने तो कथा पढ़ी है। उसमें न तो सत्य है और न नारायण। यह तो एक मिशाल हुई। हमारे बहुत से रस्म रिवाज बिल्कुल बेमानी, एक जबरदस्ती की निष्ठा लिए हुए चले आते हैं। शादी हो, तीज–त्यौहार हो सब इस कदर कीमती बना दिए गए हैं कि उनको बरतने वाला आदमी हरगिज किसी किस्म की नैतिक सुन्दरता को अपनाने के काबिल रह ही नहीं जाएगा।''[220]

नागरजी ने ईश्वर शब्द पर भी बहुत गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत किया है। संवादों के माध्यम से उन्होंने भविष्य पर भी चिन्तन किया है। लेखक यह मानता है कि मनुष्य अपने जीवन में अपने अनेक कार्यों द्वारा ईश्वर का ही निर्माण करता है। दुनियाँ विशेषकर भारत से ईश्वर का नाम मिटना असम्भव लगता है किन्तु, आशा की जाती है कि ''साइंस एक दिन जरूर इसका खुलासा करेगी या तो इस धारणा को मजबूत बनाएगी या फिर सदा के लिए खत्म कर देगी। अब हमने एटामिक युग में कदम रखा है। हम पृथ्वी को छोड़ कर दूसरे ग्रहों में पहुँचने की बात सोचने लगे हैं। इस तरह क्या एक दिन ईश्वर की असलियत तक न पहुँच जाएगे।''[221]

उपन्यासकार ने अनेक देवी–देवताओं पर भी समाज से जुड़ी आस्थाओं को अतीत कथाओं में पढ़ा और समझा है। बजरंग, शिव आदि पर गम्भीर चिन्तन कर काल निरूपण किया है। उपन्यास के अन्त में नायक सज्जन के यह विचार उपन्यासकार के ही विचारों का प्रतिबिम्ब हैं– ''हमारा देश विचारों और रीति–रिवाजों का एक महान अजायब घर है। सैकड़ों सदियों के रहन–सहन, रीति–रिवाज और मान्यताओं को, जो आज भौतिक विज्ञान के युग में एकदम अनुपयुक्त सिद्ध होते हैं, हमारा समाज अंध निष्ठा के साथ अपनाए हुए है। हर युग में जो सुधार आए, जितने ऐतिहासिक प्रभाव पड़े उनमें से अधिकतर आज भी हमारे सिर पर बने रखे हैं। हमारे घरों, गलियों, में रमे हुए साधु, बैरागी, फकीर, चंडी पाठ करने वाले पंडित, व्याह, मुंडन, जनेऊ से लेकर मृतक संस्कार कराने वाले पंडित, कथा वाँचने वाले पंडित, शास्त्रार्थ करने वाले पंडित, भूत झाड़ने वाले ओझा, सयाने, शनीचर का दान लेने वाले भड्डरी, टोना–टोटका, दहेज, ऊँच–नीच, तैंतीस करोड़ देवता, ये बेमतलब दिमाग खराब करने वाली बातें (दकिया नूसी) भौतिक विज्ञान की इतनी तेजस्वी प्रगति के युग में तमाम पुराना ढाँचा अर्थहीन हो गया है। इन देवताओं से चिपकी मनुष्य की चेतना को तुरन्त मुक्त होना चाहिए। श्रद्धा के प्रतीक की आवश्यकता है परन्तु अन्ध श्रद्धा के प्रतीकों की नहीं। सदा से इस देश का महान देवता पृथ्वी माता रही है। परमेश्वर खोखले आकाश में नहीं रहता। यह सत्य इस देश ने बहुत पहले ही देख लिया था। उसने हर जीव में उसे देखा, मनुष्य में उस परम शक्ति को पहचाना। इस देश ने ज्ञान और कर्म को ही अपने दर्शन का मूलाधार बनाया। इस प्रकार उसका दृष्टिकोण सृजनात्मक रहा है। यह सब बातें मनुष्य के आत्मविश्वास को दृढ़ करती हैं। आज के युग में हमें अपनी परम्परा की यही शक्ति लेकर बढ़ना है। मृत्यु के भय चक्र में पड़कर परलोक चिंतन में फंसाये रखने वाला दर्शन नितान्त

जड़ और आत्म घातक है। इस परलोक वाले दर्शन और उसके धर्म को लोक–जीवन से समेट कर म्यूजियम में रख देना ही उचित और समयानुकूल है। स्वामी विवेकानन्द ने कहीं कहा है कि आत्म विश्वास खोकर ईश्वर या माने हुए तैंतीस कोटि पौराणिक देवी–देवताओं में विश्वास रखना गलत है। आत्म विश्वास ही नए युग का धर्म है।

हमारे आज के लोक जीवन में फैले अविश्वास का दूसरा कारण आज की राजनीतिक पार्टियाँ हैं। इनके संचालक, दूसरे प्रकार के पंडित, पंडे, ओझा–सयाने हैं। राजनीति केवल दांव–पेंचों का अखाड़ा है। मानव हित के आदर्श से हीन व्यक्ति, व्यक्तिगत अहंकार के कारण राजनीत के खिलाड़ियों की बुद्धि, चतुराई और कार्य कुशलता बहक गई है। वर्तमान राजनीति का जन्म साम्राज्यवाद से हुआ है। साम्राज्यवाद चाहे पूंजीवाद का हो, राष्ट्रवाद, जातिवाद, धर्मवाद का हो सर्वथा गलत है। देश के पुराने नये इतिहास के अनेक उदाहरण इस बात को सिद्ध करते हैं।

आज इस देश में क्या कांग्रेस, क्या सोसलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, जन संघ, हिन्दू महासभा आदि जितनी भी राजनीतिक पाटियाँ हैं– सब अधिकांश में एक–एक से बढ़कर बेईमान, क्षुद्र आकांक्षाओं वाले जाल साज और मगरूरों द्वारा अनुशासित हैं। आदर्श और सिद्धान्त तो महज शिकार खेलने के लिए आड़ की टट्टियाँ हैं। इनका आपसी संघर्ष अधिकतर व्यक्तिगत है। इस देश की प्रतिक्रियावादी राजनैतिक शक्तियाँ भारतीय परम्पराओं को केवल रूढ़ियों ही में पहचानती हैं। उसकी प्रगतिशील परम्पराओं की जानकारी उन्हें नहीं है या बहुत कम है। वे सारी प्रगतिशील परम्पराओं की को केवल विदेशों में ही देखती हैं। विदेशी परम्पराओं को वे यहाँ की परिस्थितियों पर जबर दस्ती लादना चाहती हैं।''[222]

जन–जीवन अन्धविश्वास और भ्रान्तियों से जकड़ा हुआ है। ऐसी दशा में बुद्धिवादी भला चुप बैठ सकते हैं। क्या आज वे भी पूंजी और व्यक्ति सत्तावादी वातावरण से प्रभावित होकर जनता को भरमाने में ही योग देते रहेंगे ? क्या किसी को भी आज अपने देश से प्यार नहीं ? देश की परंपरागत अनेक सृजनात्मक शक्तियों पर अभिमान नहीं ?

भविष्य निरूपण– मनुष्य का आत्म विश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख–दुख में अपना सुख–दुख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है। विचारों के भेद से स्वस्थ द्वन्द्व होता है और उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख–दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट संबंध बना रहे– जैसे बूँद से बूँद जुड़ी रहती है–लहरों से लहरें। लहरों से समुद्र बनता है। इस तरह बूँद में समुद्र समाया है।

व्यक्ति की चेतना जागकर ही रहेगी।''[223]

अमृत और विष

काल प्रस्तुतीकरण शिल्प की अनूठी कृति–

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने त्रिकाल को तीन भागों में पृथक–पृथक विभक्त कर काल प्रस्तुतीकरण का एक अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास की शिल्प संबंधी

विशेषताओं में चतुर्थ अध्याय में वस्तु–शिल्प संबंधी प्रयोगों में उल्लेख किया जा चुका है कि 'अमृत और विष' में उपन्यास के भीतर उपन्यास का सृजनकर नागरजी ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक अनूठी भेंट प्रस्तुत की है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक उपन्यासकार अरबिन्द शंकर स्वयं नायक है। उसने अपनी आत्मकथा प्रस्तुत करते हुए स्वयं को साठ वर्ष का प्रदर्शित किया है। वह सर्व प्रथम अपने विगत जीवन पर विचार करता हुआ अपने पूर्वजों का परिचय देता है। उसके बाबा सदानन्द अत्यन्त ही स्वाभिमानी और अलमस्त प्रकृति के व्यक्ति थे और पिता किशोरी लाल अत्यन्त ही कुशाग्र बुद्धि होने के साथ–साथ अति महत्वाकांक्षी भी थे। किशोरी लाल एक सरकारी अध्यापक के रूप में जीवन व्यतीत करने के लिए विवश थे। यह उनका दुर्भाग्य ही था। उनका इस विवशता की कुण्ठा ने उन्हें आत्मघात करने पर विवश कर दिया था। अरविन्द शंकर कर बाल्यकाल अपने बाबा के साथ बड़े ही सुख के साथ प्रकृति की गोद में व्यतीत हुआ था। बड़ा होने पर जब उसे अपने उत्तर दायित्व का बोध हुआ तो उसे भी आर्थिक बाधाओं ने अपने जाल में जकड़कर छट पटाने के लिए विवश कर दिया था। ऐसे अनेक अवसर आए जिनमें उसका भावुक एवं स्वाभिमानी मन परिस्थितियों से समझौता करने के लिए बाध्य हो गया था।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस समय अरविन्द शंकर साठ वर्ष का हो रहा है। आज सायं उसके अभिनन्दन हेतु नगर के गण्य–मान्य व्यक्तियों ने 'अभिनन्दन' सभा का आयोजन किया है। इस समारोह में उसे जो सम्मान प्राप्त होता है, वह अरविन्द शंकर को अन्तर्मुखी बना देता है और वह अपने वर्तमान जीवन के अभावों और अन्तर विरोधों को गम्भीर चिन्तन द्वारा समझने का प्रयास कर रहा है। और एक बार उसे उसकी वर्तमान परिस्थिति उसको अपने अतीत में मग्न हो जाने की प्रेरणा देती है। इसी क्रम में विगत का चिन्तन कर वह एक उपन्यास लिखना प्रारम्भ करता है। इसमें उसका विगत और वर्तमान एक अलक्षित ढंग से व्यक्त होकर व्यक्ति और समाज के जीवन की अनागत सम्भावनाओं को टटोलता है।

अरविन्द शंकर का 'अभिनन्दन' समारोह चल रहा है किन्तु, वह अन्तर्मुखी होकर सोंच रहा है– ''साठ।साठ।साठ। हर भाषण में मेरी आयु के साठ वर्षों पर जोर दिया जा रहा है। मैंने साठ क्या पूरे किये–मानो एवरेस्ट की चोटी पर पहुँच गया। आखिर इन साठ वर्षों में मैंने पाया क्या, दिया क्या ? देने के नाम पर छोटी–बड़ी अड़तीस किताबें हैं, पहले भावों की उछाल में लिखी थीं फिर नाम की महत्वाकांक्षा में,

बाद में अपने परिवार के भरण–पोषण की समस्या हल करने के लिए। मुझे फुरसत ही कहां मिली जो अपने से उबर कर दूसरों के लिए सोचता।''[224]

अरविन्द शंकर के वर्तमान में उसकी आज्ञाकारिणी अर्द्धांगिनी उसके साथ किसी प्रकार गृहस्थी की गाड़ी को घसीट रही है। उसका पुत्र भवानी, श्रम जीवी न होकर 'सिस्न जीवी' हो गया है। बड़ा पुत्र विनय भी 'बीबी चरण दास' है। उसका यह पुत्र अपने लेखक पिता की अव्यावहारिकता से असन्तुष्ट है। उसका तीसरा और छोटा पुत्र उमेशो अपने पिता की भाँति

आदर्श के सपने देखकर, जीवन के सुख चैन को नष्ट नहीं करना चाहता। इसलिए वह स्वार्थी होने के साथ–साथ अवसरवादी भी है। आई.ए.एस. बनकर उसी वर्ग की लड़की से विवाह कर लेता है किन्तु, उसकी कार्य शैली, अविवेक और नियति उसको आत्महत्या के लिए विवश कर देती है। बेटी टीबी की मरीज होकर भी मुसलमान युवक से प्रेम स्थापित कर विवाह करना चाहती हैं। प्रकरण गर्भ पात तक ही सीमित रह जाता है। इन्हीं परिस्थितियों में उसकी षष्टी पूर्ति का आयोजन किया जाता है किन्तु, ''तन केठेले पर लदा हुआ यह जीवन का भारी बोझ खींचते–खींचते उसके प्राणों का भूखा असक्त भैंसा अब बेदम होकर जेठ की चिलचिलाती धूप में तपती हुई सड़क पर गिर पड़ा है।''[225] किन्तु फिर भी उपन्यासकार जीवन से संघर्ष करता हुआ एक नया उपन्यास लिखने के लिए तत्पर दिखाई देता है और उसका पिता हृदय इन सबसे अपने को पृथक नहीं करपाता। वह सोचता है– अपने बच्चे भले ही कैसे भी हों। मनुष्य के सबसे सबल मोहपाश होते हैं। मैं बड़कू, छोटकू, उमेशो, बिट्टी या नन्ही, किसी को भी अपने मन से अलग नहीं कर पाता।''[226] नागरजी के काल प्रस्तुतीकरण पर डॉ0 शशिभूषण सिंहल ने अत्यन्त ही सटीक और स्पष्ट व्याख्या की है– ''अमृत और विष' में अरविन्द शंकर के पूर्वजों और उसके पिछले जीवन की कथा 'अतीत' है, उसके परिवार की कथा 'वर्तमान' है ओर उसके द्वारा रचित उपन्यास 'भविष्य' है।'' तथा– ''अमृत और विष का नायक अरविन्द शंकर अपने चिन्तन–लेखन द्वारा वर्तमान से अतीत, अतीत से वर्तमान और फिर वर्तमान से भविष्य की ओर उन्मुख होता है। उसकी यह प्रक्रिया घूमने वाले बिजली के पंखे (आसी लेटिन करेंट फैन) का स्मरण कराती है।''[227]

नागरजी ने 'वर्तमान' के प्रस्तुतीकरण में अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम विवाहों का प्रतिपादन करके युग–युग से अवरूद्ध भारतीय चेतना और युवा शक्ति को गति एवं कर्मण्यता प्रदान करने का अभिनन्दनीय प्रयत्न किया है। इस संबंध में उपन्यास के एक पात्र रमेश द्वारा युवा शक्ति के दृष्टिकोण का उल्लेख किया है।– ''आप आजाद भारत में इस तरह दो शरीफ युवक–युवतियों को जो कि बालिग हैं, समझदार हैं, स्वतन्त्र हैं, शरीफ आदमियों की तरह विवाह करके अपना संसार बनाना चाहते हैं, इस तरह अपमानित कैसे कर सकते हैं ?''[228]

स्वातन्त्र्योत्तर काल की राजनीति के ऊपर हावी, बेईमान पूंजी पतियों के द्वारा अपनाए जाने वाली हिंसा, छल कपट और धन सम्पन्नता के आधार पर सम्पूर्ण समाज का शोषण, पैसा–पैसा जोड़ने और दूसरों का शोषण करने वाले पशुवत पुराने रईस, नये व्यापारी, शोषित जनताकी देह पर वोट रूपी निर्दयी पैरों को रखकर चलने वाले खद्दर धारी राजनेता, जो देश के विकास में बाधक बनकर अपनी तिजोरियाँ भरना चाहते हैं, विदेशी बैंकों में धन जमा करने वाले मंत्री, राजनीति और साहित्यक गतिविधियों द्वारा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं– का उल्लेख वर्तमान के प्रस्तुतीकरण में उल्लेखनीय है। इसी के साथ बुद्धि से दिवालिये राजनीतिज्ञों की मदान्धता, मिसेज माथुर जैसी कांमातुर महिलाओं के आधार पर उन्नति करने वाले लच्छू जैसे

युवकों की कुष्ठित आकांक्षाएं और इसके साथ ही युवकों का प्रबल आक्रोश, जो एक नूतन मार्ग प्रशस्त कर राष्ट्रीय जीवन को शुद्ध एवं गौरवान्वित बनाता है–का यथार्थ चित्रण स्वातन्त्र्योत्तर काल में संक्रान्ति कालीन भारतीय परिस्थितियों के दर्पण के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो उपन्यासकार की भावी सम्भावनाओं का मंगलकारी प्रयास है।

नागरजी ने 'ब्यूरोक्रेसी' को भारत के लिए अभिशाप बताया है। राष्ट्र के शीर्षस्थ नेता बूढ़े और दरिद्र भारत का सर्वांगीण विकास करने के लिए फलदायी योजनाएँ। बनाते हैं किन्तु वे इस भ्रष्ट एवं मन्द गति से चलने वाली 'ब्यूरोक्रेटिक' मशीन के निकट आते ही धराशायी हो जाती हैं। डॉ0 आत्माराम और सेन को इनका प्रतीक बनाया गया है वे लिखते हैं– डॉ0 सिद्धान्त निश्चित करते हैं उनके आधार पर सेन योजनाएं बनाते हैं, उन योजनाओं को फैलाने वाले उसे मनमाने ढंग से चलाते–फैलाते हैं। ××× इस बीच में उनकी पुरानी प्रेरणाएँ लावारिस औलादों की तरह आवारा होकर जिस–जिस रास रंग में बहकने–भटकने लगती हैं। अमृत, विष बन जाता है।

नागरजी ने देश में चुनावी हलचल और प्रजातान्त्रिक स्वरूप पर अपनी झल्लाहट प्रकट की है। "नेहरू अब भी चुम्बक है। नेहरू अब भी दम खम वाला है। तूफानी दौरे किये। ज्यों–ज्यों चुनाव आन्दोलन जोर पकड़ता गया, त्यों–त्यों जनता अपना असन्तोष दबाकर गुण्डों में चुनाव करने की मजबूरी से शान्त गुण्डी 'कांग्रेस' के पक्ष में होने लगी। पैसे और सरकारी सत्ता का प्रभाव भी काम कर रहा था। सबसे बड़ी बात यह है कि कांग्रेस का नसीबा सिकन्दर था। पूरी आपा धापी, करोड़ों का खर्च और गुण्डा गीरी तथा अनेकता की लहलही फसल उगाकर चुनाव का तमाशा पूरा हो गया।"[229]

इस उपन्यास में एक सौ दश वर्षों का अंग्रेजी शासन काल की स्थापना से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक के भारत का चित्र प्रस्तुत किया गया हैं। उपन्यासकार अरविन्द शंकर विचार करता है– "मेरे देखते–देखते पचास–पचास वर्षों में पुराना नया हो चला। वो कूड़े कचरे और अंधेरे भरी गलियाँ अब हू बहू वैसी नहीं रहीं। शाम को सात–आठ बजते न बजते तक आम घरों मे दरवाजे बन्द हो जाया करते थे। न सिनेमा थे न आज के ये हजरतगंज, कनाटप्लेस के समान सैर करने लायक चहल–पहल भरे बाजार ही। बड़ा अन्तर आ गया है जीवन में।" "अपनी दुनियां के इस नएपन को अब हम स्वीकार कर चुके हैं। पुरानी दुनियां बड़ी तेजी से गायब हो रही है, इस बात को भी अब पूरे विश्वास के साथ अनुभव दृष्टि से देखने लगा हूँ।" "अपने बचपन के दिन याद करता हूँ तो लगता है कि वह दीन दुनियां ही और थी। यह माना कि बहुत सी गलियाँ और मकान अभी ज्यों के त्यों मौजूद हैं, पर इन सबके बावजूद हिन्दुस्तान अब वह नहीं रहा जो आज से पचास–पचपन वर्ष पहले मेरे होश के समय था।"[230] इस परिवर्तन से समाज में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ आई हैं। आज कल का जीवन खोखला हो गया है। "ये सब पुरानी–पुरानी बातें याद आती हैं तो आज के जीवन में मुझे कहीं तक एक प्रकार का खोखलापन

भी लगता है। एक ओर जहाँ मुझे अपना आज का भारत पहले से कहीं अधिक उन्नत और वैभवशाली लगता है, वहीं मुझे अपने बचपन और जवानी के दिनों से यह देश कहीं अधिक खोया हुआ निष्प्राण और निकम्मा लगता है। मेरे बचपन में सदियों से सोया हुआ राष्ट्र फिर से करवटें बदलने लगा था। परिवर्तन के क्रम में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों ही साथ–साथ तेजी से बढ़ रही थीं। हम अपने लिए बहुत तेजी से नई दुनियाँ ला रहे थे।''[231] समाज मे प्रत्येक दशा और दिशा में परिवर्तन हुआ है– ''आज के समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक परिस्थितियों के कारण हमारे देश का सामाजिक ढंग भी बहुत बदल गया है। तब एक झूठे विरोधभास को इतनी लम्बी–चौड़ी परम्परा क्यों दिखलाई देती है। हम कहीं जरूर बदल कर भी एक जगह अपने प्राचीनतम सामाजिक ढाँचे से बुरी तरह बंधे हुए हैं। हमारा सारा विकास उस लुंज मनुष्य की तरह तड़प रहा हैं जिसके आधे अंग में फालिज मार गया है।''[232]

सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया में जहां एक ओर विकास दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर समाज में मानवीय मूल्यों का ह्रास भी हुआ है। ''जीवन भर देश प्रेम, मानवता, सत्य, न्याय और ईमानदारी को ही भला समझता रहा, पर अब ये बातें निस्सार लगती हैं। इनसे न तो वह संसार ही बदला जिसे बदलने की भावना से मेरे मन में सदा उथल–पुथल मचकर नये से नये विचार और कल्पनायें स्वतःस्फूर्त होती रहीं औरन मुझे सुख ही मिला।''[233] समाज में जातिगत परिवर्तन भी हो रहे हैं और एक दिन ऐसा आयेग जब जाति सम्प्रदाय कुछ नहीं रहेगा। ''उन्नीसवीं शती के प्रायः अन्तिम दो दशकों से लेकर अब तक व्यक्तियों ने ही समाज को झकोले दिए हैं। पुराना समाज प्रायः इन्हीं झकोलों से टूट–टूट कर क्रमशः नया बन रहा है। अब किसी जाति का भी समाज हो, वह सुसंगठित समाज नहीं रहा। वह फुट्टैल व्यक्तियों का समाज बन गया है। समय जिस तेजी से बदल रहा है उसमें निश्चित रूप से एक दिन भारत वर्ष में एक भी जाति नहीं रह जाएगी, न हिंन्दुओं, मुसलमानों और न पारसी, ईसाइयों की ही।''[234]

भविष्य– आज के समाज में युवक–युवतियों में जाति बंधन के प्रति आक्रोश दिखाई देता है। अरविन्द शंकर रूढ़िगत समाज में युवा पीढ़ी के प्रति सोचता है– ''हमारी सामाजिकता में लड़के–लड़कियों को दोस्त बनकर रहना बुरा माना जाता है। जाति बंधनो से भी नौजवान लड़के–लड़कियाँ अधिकतर सन सनाए थर्राते हुए रहते हैं। यह विपरीत परिस्थितियाँ यदि हमारे समाज से चली जांय, तो मेरे 'भवानी' जैसे अनगिनत जवानों की इस तरह विकृत विद्राही बनने की नौबत न आये– क्या करूँ कि ऐसा सुनहरा दिन हमारे समाज में जल्दी ही आ जाए ?''[235]

शतरंज के मोहरे

यह नागरजी का एक ऐतिहासिक उपन्यास है। ऐतिहासिक उपन्यास को प्रमाण की अपेक्षा होती है और इसके लिए रचनाकार को अतीत की छाप लगानी अनिवार्य है। इस ऐतिहासिकता के लिए नागरजी ने वातावरण, घटना और पात्र, तीनों का आश्रय लिया है। भूत, वर्तमान और

भविष्य, तीन कड़ियों से गठी हुई श्रृंखला के रूप में मानव जीवन निरन्तर प्रवहमान है। 'वर्तमान में मनुष्य कार्यरत रहता है', 'भूत का अनुभव प्राप्त कर वह वर्तमान में उनका विचार और विश्लेषण करता है' और इसी आधार पर उसकी दृष्टि भविष्य खोजती है। अतीत (इतिहास) मनुष्य को सोचने–समझने, अनुभव करने और उस पर गहन चिन्तन–मनन के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार 'अतीत' ही उसके 'वर्तमान' जीवन में नवीन आकांक्षाओं को जन्म देता है। उपन्यास में वातावरण चित्रण ही पाठक को वर्तमान से भिन्न अतीत के संसार में ले जाता है। इसीलिए ऐतिहासिक उपन्यास की वातावरण सृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म तथा व्यापक है। यह भी कहा जा सकता है कि उपन्यास में पात्रों के संवाद और गतिविधियों के अतिरिक्त अन्य समस्त सामग्री देश, काल और वातावरण से ही सम्बद्ध रहती है।

नागरजी ने काल प्रस्तुतीकरण हेतु युग–चित्रण को अत्यधिक महत्व दिया है और इसके लिए पात्रों के संवाद की भाषा में व्यंजित पात्रों की मनोवृत्ति में युग की अमिट छाप रहती है। नागर जी के उपन्यासों में पात्रों की भाषा, मनोवृत्ति तथा कार्य व्यापार की विशेषताएँ प्रत्येक काल को स्पष्ट करती हैं। वातावरण के सृजन में पात्रों के आचार–विचार, रहन–सहन और परिस्थितियाँ योगदान करती हैं। नागरजी के इस उपन्यास में अतीत को प्रमाणिकता प्रदान करने के लिए घटना और पात्रों का आश्रय लेना पड़ा है। इतिहास की प्रामाणिकता के साथ–साथ कुछ कल्पित पात्र और घटनाएं भी चित्रित है। नागरजी ने ऐतिहासिक तथ्यों की पूर्ण रूपेण रक्षा करते हुए उनके पल्लवन में कल्पना का प्रयोग करते हुए तथ्यों की नवीन व्याख्या के साथ कार्य कारण श्रृंखला में बांध दिया है। उपन्यासकार ने उपन्यास में ऐतिहासिक व्यक्तियों का उद्देश्य पूर्ति के लिए इस प्रकार प्रयोग किया है कि उनके चरित्र में जो काल्पनिक अंश है वह भी युगानुकूल ही है।

नागरजी काल निरूपण में अत्यन्त दक्ष हैं। उपन्यास में चर्चित लखनऊ लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व का है। लखनऊ का चौक मुहल्ला नागरजी के जीवन से सम्बद्ध है। अतः इस उपन्यास में काल निरूपण के लिए वातावरण की सृष्टि में नागरजी की अनुभूति कल्पना की अपेक्षा अधिक महत्व रखती है। इसलिए इस काल चित्रण में लोक जीवन का अनुभव और अध्ययन स्वयं उन्हीं की देन है। तत्कालीन युग चित्रण में जहाँ उपन्यासकार की दृष्टि भिखारियों से लेकर बादशाहों तक है, वहीं राज पथ पर चलने वाले विभिन्न वर्ग और प्रकार के यात्रियों की वेषभूषा, वार्ता, सवारियों के आवागमन आदि का चित्रण भी है। नगर में शाही सवार, मौलवी, मुल्ला, रईस, जौहरी, सिपाही, सागिर्द भी हैं। ये कुरता, धोती, अंगरखा, पगड़ी, पाजामा तहमद, अंगौछा धारी सभी कोई हैं।

नागरजी ने लोक–जीवन की गति विधि के बाह्य चित्रण में रुचि दिखाते हुए सार्वजनिक पतन के मूल में कार्यरत प्रवृत्तियों का भी उद्घाटन किया है। यहां नागरजी ने एक समाज शास्त्रीय की भाँति अनेकानेक और अत्यन्त सूक्ष्म रीति–रिवाजों और रहन–सहन के ढंगों तथा

मान्यताओं और उनकी अनेक श्रेणियों सहित उनके आतंक का चित्र सा खींच दिया है। और इसी के साथ तत्कालीन शासन व्यवस्था, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मूल्यों का चित्रण भी किया गया है।

इस उपन्यास की कथा नवाब गाजीउद्दीन हैदर और उसके उत्तराधिकारी नसीरुद्दीन हैदर के राज्यकाल के साथ–साथ उन दोनों की मानसिक अवस्था का चित्रण भी करती है। युग चित्रण को आकर्षक बनाने और पूर्णतः प्रदान करने के लिए नागरजी ने अपनी किस्सागोई प्रवृत्ति के अनुरूप अनेकानेक भिन्न प्रसंगों की भी उद्भावना की है। इस प्रसंग में इन इतर प्रसंगों को प्रदर्शित करने में डॉ0 शशि भूषण सिंहल ने बड़े परिश्रम के साथ खोज करके लिखा है कि ''उपन्यास 425 पृष्ठों का है, इसमें कथा–मुक्त इस प्रकार के प्रसंग 124 पृष्ठों में व्याप्त हैं। इस प्रकार, उपन्यास का चतुर्थांश से भी अधिक भाग उपन्यासकार ने युग को उभारने के हेतु अलग से व्यय किया है।''[236] साथ ही पाद टिप्पणी में इन मुक्त मुख्य प्रसंगों का विवरण भी दिया है। इनमें दुलारी का त्रिया चरित्र और कन्या का जन्म होने पर उसकी हत्या की प्रथा आदि चित्रण विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपन्यास में दोनों बादशाहों–गाजीउद्दीन हैदर और नसीरुद्दीन के जीवन के वीभत्स पक्ष को उद्घाटित करते हुए इन्हीं दोनों को युग पतन का उत्तरदायी ठहराया गया है। उस समय इन शाही महलों में षड्यन्त्रकारियों द्वारा दास–दासियों को लुभाकर किस प्रकार अन्दर की रहस्यमयी बातों की जानकारी ली जाती थी, इसके भी बड़े रोचक प्रसंग हैं। इन दास–दासियों में एक बृद्धा दासी 'मुनिया' अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती है, जो शाही महल से खबरें लाकर उन्हें बाहर बेंचने का व्यवसाय करती है। नागरजी ने अत्यन्त विनोद और व्यंग्य के साथ उसके नख–शिख चित्रण में अपने सूक्ष्म अध्ययन का परिचय दिया है– ''इतनी उम्र हो जाने पर भी मुनिया अपने आप को नन्ही–मुन्ही ही मानती है। सफेद बालों पर मेंहदी, आंखों में सुरमा, टिकली, मिस्सी, कानो मे इत्र की फरहरी, धानी–दुपट्टा, गुलाबी कुरता, सर पै झुमका, कानो, में करन फूल, नाक में बुलाक, गले में तौकें, बाहों में जोसन, हाथों में कडे और चूड़ियाँ, उँगली–उँगली में अँगूठियाँ, अँगूठों में आरसे, पावों में कड़े–छड़े–झांझ,–गरज कि मुनिया अपने ख्याल से उम्र के पैंसठवें साल में जवानी की देहली चढ़ रही थी।''[237]

उपन्यास को अनागत बनाने के लिए नागर जी ने सूफीसंत हजरत कौड़ाशाह द्वारा दिग्विजय ब्रह्मचारी के प्राण बचाते हुए उन्हें पिया गया कौड़ाशाह का आशादायी संदेश उपन्यास का अविस्मरणीय अंश है–

–'तू चहता क्या है साईं ?' सूफी संत ने सहसा पूछा।

(दिग्विजय ब्रह्मचारी)– 'मैं ?–चाहता हूँ यह अन्याय मिट जाए।'

'तो मिटा दो। जो चाहता है उसे पाने के लिए जतन कर।'

'यही तो सवाल है। क्या जतन करूं। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।

समय बिखर रहा है, मनुष्य का मन बिखर रहा है–कैसे बंधे ?'

'देख प्यारे, अपने पकाव पर आए बगैर कोई बात बनती नहीं। मौसम आने पर किसान खेत में बीज डालता है और मौसम आने पर ही उसका फल भी पाता है। बीच में लाख जतन करने पर भी वह फल नहीं हासिल कर सकता।'

'ठीक है। यही करो। हम तुम जो उसे प्यार करते हैं, हक़ पर क़ायम रहकर अपनी मिसाल पेश करें। सांस रुक जाए तो जिस्म मुरदा हो जाएगा, किसी काम का नहीं रहेगा; मगर सांस जो चल रही है तो भले ही हमारा ध्यान उस पर आज न जाए, कल या परसों जाए, जब भी जाए, जाएगा जरूर। सांस की तरह अपनी मिसाल क़ायम रखो साईं। तुम चलते रहोग तो जमाना तुम्हारे साथ चलेगा।''[238]

इस प्रकार नागरजी ने अपने उपन्यासों में पात्र, घटना और वातावरण का आश्रय लेते हुए काल प्रस्तुतीकरण शिल्प में अपनी दक्षता का परिचय दिया है। 'सेठ बाँकेमल' में सेठ के अतीत में भोगे गये सुख और मौज मस्ती के जीवन का चित्रण, वर्तमान में पुरानी मान्यता और जीवन पद्धति में परिवर्तन के प्रति असन्तोष एवं आक्रोश का चित्रण हास्य एवं व्यंग्य के माध्यम से चित्रित किया गया है– यह पुरानी पीढ़ी नवयुग की बदलती हुई मान्यताओं को स्वीकार करने में असमर्थ है। अतः अवसर पाते ही 'सेठ बाँकेमल' अपनी भोगी हुई जिन्दगी के बीच पहुंचकर जैसे आगे जाने का सहारा खोज लेते हैं। उनके सामने 'भविष्य' का कोई सवाल नहीं है। 'वर्तमान' से उन्हें बेहत असन्तोष है। यह तो उनके द्वारा भोगा गया वह शानदार 'अतीत' है, जो उन्हें 'वर्तमान' की सारी विरासत के बीच जीने का सहारा दिए हुए है।[239] 'महाकाल' में 'अतीत' के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के भारतीय समाज के अनेकानेक अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, कुरीतियों, सड़ी–गली जर्जर मान्यताओं, रहन–सहन, विवाह संस्कार आदि की जटिलताओं तथा समाज में संकीर्णता और रूढ़िवादिता से आक्रान्त होने का चित्रण है। पूंजी पतियों, सामंतों और जिमीदारों ने अपनी स्वार्थ पूर्ति और कुकर्मों पर परदा डालने के लिए धर्म और ईश्वर का अवलम्बन लिया। इसी 'अतीत' के चिन्तन के परिणाम स्वरूप बंग के दुर्भिक्ष के चित्रण के 'वर्तमान' को प्राकृतिक अकाल न मानकर मनुष्य द्वारा निर्मित अकाल की संज्ञा दी गई है। लेखक आक्रोश व्यक्त करता हुंआ भविष्य की संभावना निर्मित करता है। ''थोड़े से जो लोग अमीर कहलाते हैं–बच रहेंगे। रुपिया–पैसा, सोना–चांदी को क्या दांतों से चबाया जा सकेगा ? मोटरों और ऊँचे–ऊँचे महलों से क्या पेट का कभी न भरने वाला गड्ढा भर पायेगा ? नहीं। वो भी एक दिन मरेंगे। बड़े समाज को अपने स्वार्थ के लिए मारकर छोटा समाज भी जीवित नहीं रह सकता।''[240] उपन्यासकार ने भविष्य के रूप में पाँचू के निम्नांकित कथन को महत्तादी है। ''उद्देश्य रहित की हुई ये तपस्या संसार में घृणा उत्पन्न करेगी। घृणा मत उत्पन्न करो पाँचू। कामना करो कि तुम्हारी बलि मानव में प्रेम की भावना उत्पन्न करे।'' ''मानव हृदय में जिस स्वार्थ रहित प्रेम और कर्तव्य का अभाव मुझे

इस बच्चे द्वारा मिला है, उसे कर्म में बदलना है। रोटी लेनी है, अपना जीने का अधिकार सुरक्षित करना है।''[241]

'सुहाग के नूपुर' नागरजी का एक ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसमें चोल वंशी राजाओं के शासनकाल के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विभिन्न देशों की संस्कृति, वेष भूषा, रहन–सहन का निरूपण है। उपन्यास की मुख्य समस्या 'नारी समस्या' है जिसमें उपन्यासकार ने 'नगर वधू' और 'कुल वधू' की तत्कालीन सामाजिक और मानसिक स्थिति का अत्यन्त गंभीर चिंतन पूर्ण चित्रण है। 'कुल वधू' कन्नगी के माध्यम से नागरजी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि प्रेम की असंदिग्ध निष्ठा मनुष्य को जीवन में मानसिक शान्ति और गरिमा प्रदान करती है। ''द्विविधा में बंधी हुई स्त्री कभी किसी पुरुष को बल नहीं दे सकती। वह कभी एक भाव में रहेगी, कभी दूसरे में। एक निष्ठ सती ही अपने पुरुष को बल प्रदान कर सकती है क्योंकि वह द्विविधा से रहित है।''[242] नगर वधू 'माधवी' की मनो कामना है कि वह उच्च कुलोत्पन्न नारियों की भाँति ही एक निष्ठ होकर जीवन बिताए किन्तु, उसे नियति स्वीकार नहीं करती, समाज स्वीकार नहीं करता। भविष्य के रूप में नागरजी का मन्तव्य है कि ''पुरुष जाति का स्वार्थ और दम्भ भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्द्धांग–नारी जाति–पीड़ित है। एकांगी दृष्टि कोण से सोचनें के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर ही सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर ही। इसी कारण वह स्वयं ही झकोले खाता है और खाता रहेगा।''[243] 'अतीत' में मानव समाज के समक्ष ईसा की प्रथम शताब्दी में भी यही प्रश्न था और 'वर्तमान' में आज भी यही ज्वलंत प्रश्न है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' में नागरजी ने 'निर्गुनियाँ' के चरित्र के माध्यम से 'वर्तमान' समाज में मेहतर समाज की स्थिति का चित्रण किया है। मेहतर समाज को रीति–रिवाज, रहन–सहन, खान–पान का अभूत पूर्व चित्रण वातावरण की सृष्टि के साथ किया गया है। यहाँ भी नागरजी 'निर्गुनियाँ' के ब्राह्मण से मेहतर बनने के कारणों को 'अतीत' में खोजते है और 'वर्तमान' में जाति, वर्ग तथा वर्ण में बँटे समाज तथा उनमें प्रचलित रूढ़ियों पर तीव्र प्रहार करने के साथ–साथ 'निर्गुनियाँ' के 'अतीत' से समाज में प्रचलित अनमेल विवाह के दुष्परिणामों को स्पष्ट किया है। नागरजी ने 'मोहना' के माध्यम से अपना विक्षोभ व्यक्त किया है और ऊँची कौम वालों की बखिया उधेड़कर रख दी है– ''मुझे नफरत है इन सब ऊँची कौम वालों से। सारे सोहबत के शौक में हमारी औरतों को अकेले में दबोचते हैं। सात करम करके बाहर से उजले बनते हैं और उन्हीं के जो बच्चे होते हैं, उन्हें छूते हुए भी घिनातें हैं। मेरा बस चले तो एक दिन छावनी के सारे तोप खानों को इन शरीफ और बड़े आदमी कहलाने वाले जल्लादों की बस्तियों में लगाकर इन हिन्दू, मुसलमानों को एक साथ धडाम से उडवा दूं।''[244] नागरजी ने इस उपन्यास में 'वर्तमान' की राजनीतिक स्थिति को भी अभिव्यक्त किया है– ''इस डेमोक्रेसी में साहब पूछिये नहीं, अन्धेर मच गया है। काम करने की योग्यता किसी में हो या न हो मगर किसी का चमचा बनना आवश्यक

है।'' आपातकाल का चित्रण करते हुए इन्दिरा गाँधी के पुत्र संजय की ओर संकेत करते हुए उपन्यासकार लिखता है– ''वह बेताज का बादशाह है। उसकी आंखों के इशारो पर सूर्य उदय और अस्त होता है। वह भला किसी को क्या समझता है। राष्ट्रपति की बोलती बंद कर दी और तुर्कमान गेट उजाड़ डाला। ओह! कैसा निर्मम प्रहार था। मैं पूंछता हूँ कि ब्रिटिस सरकार क्या असुर सरकार से अधिक अत्याचारी थी ? आखिर इस इमरजेन्सी का कभी अन्त होगा कि नहीं ?''[245] इमरजेन्सी में सभी की जबानें बन्द कर दी गयी हैं। प्रेस पर सेंसर लागू कर दिया गया है– ''प्रेस के वर्तमान सेंसर ने जबान काट ली है लेकिन न बोल सकने वाले मन ने शेष नाग की जिह्वाओ की तरह अपनी असंख्य जबानें लपलपा ली हैं। आजकल की इमरजेन्सी के दिनों में तो मैं किसी भीम के आने की कल्पना ही नहीं कर सकता, जो इस प्रेस सेंसर रूपी राक्षस को मार डालेगा। इस देश के सारे भीम और अर्जुन जेलों में बन्द हैं। उनकी आवाज बाहर नहीं आ सकती। उनके हाथ–पैर इस समय ईसा मसीह की तरह कीलों से गड़े हैं।''[246]

'एकदा नैमिषारण्ये' में पुराणकालीन संस्कृति का चित्रण है। नैमिषारण्य में सम्पन्न ऋषियों के सेमिनार में 'अतीत' पर विचार करते हुए 'वर्तमान' की परिस्थिति में सुधार लाने के लिए जिस राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता है– पर गहन चिन्तन किया जाता है और भविष्य में अखण्ड भारत की कल्पना ही लेखक की मंगलकारी भावी योजना है– ''कोरी लड़ाइयों से यह देश एक न होगा और इस आसेतु हिमाचल व्याप्त भूखण्ड के तप, ज्ञान और सम्पदा की सुरक्षा के हेतु इस समय भारत की एकता अनिवार्य है।''[247] तथा ''सनातन संकोच से बँधे जन हृदय को युगानुकूल उसके व्यापक होने के गुण का बोध यदि एक बार करा दिया जाय, फिर वह आप ही अपनी स्फूर्ति से संचालित होकर सही दिशा में बढ़ने लगेगा।''[248]

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' भी नागरजी का ऐतिहासिक उपन्यास है। मुन्नी, जुआना बेगम, टॉमस प्रिया, लवसूल प्रिया इत्यादि नामों से चर्चित इतिहास प्रसिद्ध इस रूप सौन्दर्य की धनी, अत्यन्त चतुर और राजनीति निष्णात दासी से शासिका बनी हुई महिला के चरित्रांकन के परिप्रेक्ष्य में ही उपन्यासकार ने तत्कालीन् सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रण किया है। 'वर्तमान' मे इस नारी ने जिस चातुर्य के साथ अपनी पदोन्नति स्वयं ही की, उसका अंत जिस बुरी स्थिति में हुआ उसके 'अतीत' के क्रिया–कलाप ही कारण बने। उसने अपने रूप सौन्दर्य का लाभ उठाया किन्तु, व्यक्तिगत प्रेम की तुलना में उसने राष्ट्र प्रेम को महत्व नहीं दिया। इसीलिए उसकी यह दुर्गति हुई। वह स्वयं कहती है कि ''मुल्क। हां, यही मैं भूल गई थी। .... मैंने अपने दिल को अपने मुल्क और फर्ज से बड़ा मान लिया। मैंने मुनासिब सजा पाली।''[249] इस उपन्यास में नागरजी ने 'अतीत', 'वर्तमान और 'भविष्य' का निरूपण तो अत्यन्त कौशल के साथ किया ही हैं। सर्वाधिक विशिष्टता यह है कि इसमें उन्होंने काल के बहुत छोटे–छोटे आयामों के उल्लेख के साथ घटनाओं, वातावरण और पात्रों का चित्रण किया है। यथा–

''तीन बरस बाद।

जनरल वाल्टर रेनहार्ड डीग के किले में अपने कक्ष के सामने वाले आंगन में बाँदियों को शतरंज की मोहरे बनाकर दोहरी चालों से अपना मन बहला रहे थे।''[250] बरस–दिन और बीते। टॉमस और जुआना कभी–कभी यों ही अपने दिल हल्के करने के लिए मिलते तो रहे पर उनके मिलने की प्यास दिल्ली के तख्त और समरू के मरने की आस में अब तक मृग तृष्णा ही बनी हुई थी।''

''तभी एक दिन।

जनरल वाल्टर रेनहार्ड साहब क्रोध में बार–बार दांत पीसते हुए कमरे में बेचैनी से चहल कदमी कर रहे थे।''[251]

''दिन ढले का समय था, खलीफा जाग तो चुके थे पर अभी तखत पर करवटें ही बदल रहे थे।''[252]

''अट्ठारह घण्टे बीते। भूख–प्यास, देह की आवश्यकताएँ, चिल–चिलाती धूप, बावले बागियों की गालियाँ और तरह–तरह की बातें जुआना पर अब किसी चीज का असर बाकी नहीं रह गया था। उसका सोचना ही बन्द हो गया था।''

''दोपहर ढलते न ढलते तक। महबूबा और बशीर खाँ, टॉमस और उसके सिपाहियों को साथ लेकर आ गए।''[253]

''एक सप्ताह तक बेगम की फौज को फिर से व्यवस्थित करने के बाद टॉमस चला गया।''[254]

''ढाई घड़ी रात बीत चुकी थी परिन्दे–परिन्दे तक सुख की नींद सो रहे थे, जब कि शाहे अवध को न इस करवट चैन मिल रहा था न उस करवट।''[255]

''होते करते दुलारी को महलों में छह महीने गुजर गए।''[256]

'मानस का हंस' अपने कथानक में ही काल के तीन आयामों भूत, भविष्य, वर्तमान–में व्याप्त है। उपन्यास पूर्व दीप्ति शैली में लिखा गया है और इसका प्रारम्भ 'वर्तमान' में 'तुलसी' के नब्बे वर्ष बाद 'रत्नावली' के अन्तिम क्षणों में आने से प्रारम्भ होता है और तब राजापुर वासी अनेक व्यक्ति जो अत्यन्त बृद्ध और जर्जरित तथा कृशकाय हो गए है और कुछ तो परलोक वासी भी हो गए है। 'तुलसी' का बालमित्र 'राजा' भी यहां विद्यमान है। 'बकरीदी' काका है और बाबा के साथ आए हुए उनके प्रिय शिष्य 'रामू द्विवेदी' भी हैं। यहीं पर 'बकरीदी' और 'राजा भगत' बाबा के विगत जीवन के विषय में चर्चा करते हैं और 'बेनीमाधव' तथा 'रामू' बाबा के जीवन के अनेक प्रसंगों को बाबा के मुख से स्वयं सुनना चाहते है और उपन्यासकार 'बकरीदी' के मुख से 'तुलसी' के जन्म, तत्कालीन् राजनीतिक स्थिति, हुमायूँ तथा शेरशाह के मध्य हुए युद्ध का प्रसंग प्रस्तुत करता है। और बताता है कि आज के राजपुर गाँव का नाम अपने मित्र राजा के नाम पर बाबा ने ही रखा था। 'तुलसी' के बाल्यकाल के वर्णन में लेखक ने तत्कालीन् सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण भी प्रस्तुत कर दिया है। एक बार पुनः 'तुलसी' राजापुर में रहकर

चित्रकूट पहुँचते है। इस समय के वर्णन में बच्चों द्वारा जन्माष्टमी मनाए जाने आदि के संबंध में राम और कृष्ण की एकता संबंधी चर्चा भी हो जाती है। तत्कालीन् परिस्थितियों का लूट–खसोट, अत्याचार आदि के कई दृश्यों का अंकन 'अतीत' की तुलना करते हुए किया है। "अकबर शाह के समय में थोड़ा बहुत सुशासन आया था। अब वह समाप्त हो गया। शासक दिल्ली में रहता है, उसे नित्य सोना–चांदी, हीरे, जवाहरात चाहिए। स्त्री और धन की लूट का नाम ही कलिकाल है। सारे पाप यहीं से आरम्भ होते है। हम जब पहली बार गुरु परमेश्वर के साथ यहाँ आए थे, तब तो और भी बुरी दशा थी।"[257] तुलसी काशी नगरी से बहुत प्रभावित थे क्योंकि काशी के वायुमण्डल ने ही 'तुलसी' को 'तुलसी दास' बनाया था। यहाँ लेखक फिर 'तुलसीदास' को 'अतीत' के क्षणों मे ले जाता है जहाँ आचार्य शेष सनातन से आज्ञा लेकर तुलसी स्थानान्तरण करते हैं। 'महाकाल' की भाँति ही कुरुक्षेत्र में पड़ा भीषण अकाल भी कृत्रिम ही था। बाबा कहते है– "अकाल के हमने बड़े विषम दृश्य देखे। एक जगह चार–चार मुट्ठी चावल के लिए लोगबाग अपनी जवान स्त्रियाँ, लड़के–लड़कियाँ तक बेंच रहे थे।"[258]

उपन्यासकार मथुरा में 'नन्ददास' के साथ 'तुलसी' की 'सूरदास' जी से भेंट करवाता है। इस प्रकार उपन्यासकार ने ऐतिहासिक तथ्यों को प्रमाणित करने का प्रयास करने के साथ–साथ अनेक काल्पनिक प्रसंग भी जोड़कर काल निरूपण में अपना कौशल प्रदर्शित किया है।

'खंजन नयन' में भी 'मानस का हंस' की भाँति 'सूर' के जीवन से संबंधित अनेक काल्पनिक प्रसंगों की उद्भावना के साथ नागरजी ने काल प्रस्तुतीकरण शिल्प का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है। 'वर्तमान' में सिकन्दर लोदी की सेनाओं का लूटपाट का चित्रण तत्कालीन् सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों का वर्णन वातावरण की सृष्टि सहित अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'मानस का हंस' की मोहिनी–तुलसी प्रसंग जैसा ही प्रसंग 'सूर और कन्तों' को लेकर 'खंजन नयन' में बड़ी मनोरम और रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है। हिन्दू–मुस्लिम विवाद और 'सूर' जैसे रस सिद्ध कवि और भक्त के साथ भी ईर्ष्यालुओं द्वारा उसी प्रकार के षड्यन्त्र और अत्याचारों का उल्लेख तत्कालीन् विद्वत समाज का पारस्परिक द्वेष प्रकट करता है। अयोध्या का राम मन्दिर और जन्म भूमि विवाद तथा काशी में 'बाबा विश्वनाथ' के मन्दिर का वर्णन करने के साथ–साथ वहाँ प्रचलित 'करवत' जैसी कुप्रथाओं का भी 'सूर' ने जमकर विरोध किया।

इस प्रकार नागरजी ने काल प्रस्तुतीकरण में कुरीतियों, रूढ़ियों का विरोध इतिहास के परिप्रेक्ष्य में गम्भीर चिन्तन के साथ प्रस्तुत किया है। 'युग–चित्रण' में नागरजी का मन बहुत रमा है और इतिहास से उन्हें बहुत लगाव है।

नागरजी के काल प्रस्तुतीकरण शिल्प के संबंध में कहा जा सकता है कि वर्तमान, अतीत और भविष्य सभी एक हैं क्योंकि काल तो आखण्ड है। डॉ0 शशि भूषण सिंहल की यह पंक्तियाँ भी इसकी पुष्टि करती हैं– "वास्तव में 'वर्तमान' अनिश्चित, अस्थिर और परिवर्तनशील है।

'वर्तमान' का प्रत्येक पल 'अतीत' में परिणत होता जा रहा है और प्रत्येक अनाहूत क्षण 'भविष्य' की सम्पत्ति है। 'वर्तमान', 'अतीत' और 'भविष्य' के मध्य की अदृश्य कड़ी मात्र है– यह अतीत की देन है जो भविष्य की जननी है।''[259]

काल प्रस्तुतीकरण के संबंध में विस्तृत उल्लेख, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं राजनैतिक परिवेश के अन्तर्गत देखा जा सकता है।

संकेत सन्दर्भ–

1.	डॉ0 गुलाब राय–काव्य के रूप।	पृष्ठ–176–177
2.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–39
3.	,, ,, ,,	पृष्ठ–10
4.	,, ,, ,,	पृष्ठ–10
5.	,, ,, ,,	पृष्ठ–14
6.	,, ,, ,,	पृष्ठ–15
7.	,, ,, ,,	पृष्ठ–31
8.	,, ,, ,,	पृष्ठ–79
9.	,, ,, ,,	पृष्ठ–136
10.	अमृत और विष।	पृष्ठ–266
11.	,, ,, ,,	पृष्ठ–679
12.	सुहाग के नूपुर।	पृष्ठ–255
13.	,, ,, ,,	पृष्ठ–09
14.	,, ,, ,,	पृष्ठ–35–36
15.	,, ,, ,,	पृष्ठ–57
16.	,, ,, ,,	पृष्ठ–82
17.	,, ,, ,,	पृष्ठ–251
18.	,, ,, ,,	पृष्ठ–251
19.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–02
20.	,, ,, ,,	पृष्ठ–43
21.	,, ,, ,,	पृष्ठ–48
22.	,, ,, ,,	पृष्ठ–52
23.	,, ,, ,,	पृष्ठ–93
24.	,, ,, ,,	पृष्ठ–138
25.	नाच्यौ बहुत गोपाल।	पृष्ठ–13
26.	,, ,, ,,	पृष्ठ–28
27.	खंजन नयन।	पृष्ठ–13
28.	,, ,,	पृष्ठ–17
29.	,, ,,	पृष्ठ–24
30.	,, ,,	पृष्ठ–46
31.	,, ,,	पृष्ठ–84

32.	खंजन नयन।	पृष्ठ–230–231
33.	,, ,,	पृष्ठ–211
34.	मानस का हंस।	पृष्ठ–13
35.	,, ,, ,,	पृष्ठ–33
36.	,, ,, ,,	पृष्ठ–47
37.	,, ,, ,,	पृष्ठ–104
38.	,, ,, ,,	पृष्ठ–379
39.	एकदा नैमिषारण्ये	पृष्ठ–51
40.	,, ,, ,,	पृष्ठ–438
41.	,, ,, ,,	पृष्ठ–439
42.	,, ,, ,,	पृष्ठ–13
43.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–428
44.	,, ,, ,,	पृष्ठ–387
45.	,, ,, ,,	पृष्ठ–392
46.	,, ,, ,,	पृष्ठ–434
47.	,, ,, ,,	पृष्ठ–582
48.	,, ,, ,,	पृष्ठ–582
49.	,, ,, ,,	पृष्ठ–583
50.	,, ,, ,,	पृष्ठ–128
51.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–11
52.	अमृत और विष।	पृष्ठ–621
53.	मानस का हंस।	पृष्ठ–101
54.	,, ,, ,,	पृष्ठ–187
55.	नाच्यौ बहुत गोपाल।	पृष्ठ–35
56.	,, ,, ,,	पृष्ठ–250
57.	,, ,, ,,	पृष्ठ–252
58.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–168
59.	,, ,, ,,	पृष्ठ–169
60.	,, ,, ,,	पृष्ठ–171
61.	,, ,, ,,	पृष्ठ–172
62.	,, ,, ,,	पृष्ठ–173
63.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–13

64.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–13
65.	,, ,, ,,	पृष्ठ–87
66.	,, ,, ,,	पृष्ठ–83
67.	,, ,, ,,	पृष्ठ–122
68.	,, ,, ,,	पृष्ठ–352–353
69.	,, ,, ,,	पृष्ठ–457
70.	,, ,, ,,	पृष्ठ–12
71.	,, ,, ,,	पृष्ठ–423
72.	,, ,, ,,	पृष्ठ–423
73.	,, ,, ,,	पृष्ठ–488
74.	,, ,, ,,	पृष्ठ–489
75.	,, ,, ,,	पृष्ठ–81
76.	,, ,, ,,	पृष्ठ–354–355
77.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–11
78.	,, ,, ,,	पृष्ठ–185
79.	,, ,, ,,	पृष्ठ–105
80.	,, ,, ,,	पृष्ठ–105
81.	,, ,, ,,	पृष्ठ–120–121
82.	,, ,, ,,	पृष्ठ–581–582
83.	,, ,, ,,	पृष्ठ–583
84.	,, ,, ,,	पृष्ठ–580
85.	,, ,, ,,	पृष्ठ–583
86.	अमृत और विष।	पृष्ठ–141
87.	,, ,, ,,	पृष्ठ–210
88.	,, ,, ,,	पृष्ठ–476
89.	,, ,, ,,	पृष्ठ–400
90.	,, ,, ,,	पृष्ठ–622
91.	,, ,, ,,	पृष्ठ–622
92.	,, ,, ,,	पृष्ठ–493
93.	,, ,, ,,	पृष्ठ–496
94.	,, ,, ,,	पृष्ठ–496
95.	,, ,, ,,	पृष्ठ–406

96. अमृत और विष। पृष्ठ–655

97. ,, ,, ,, पृष्ठ–705

98. डॉ0 अमर जायसवाल–हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन। पृष्ठ–147

99. मानस का हंस। पृष्ठ–07–08

100. ,, ,, ,, पृष्ठ–08

101. ,, ,, ,, पृष्ठ–51

102. ,, ,, ,, पृष्ठ–30

103. ,, ,, ,, पृष्ठ–52

104 ,, ,, ,, पृष्ठ–52

105. ,, ,, ,, पृष्ठ–61

106. ,, ,, ,, पृष्ठ–326

107. ,, ,, ,, पृष्ठ–326

108. ,, ,, ,, पृष्ठ–326

109. ,, ,, ,, पृष्ठ–325

110. ,, ,, ,, पृष्ठ–338

111. ,, ,, ,, पृष्ठ–333

112. महाकाल। पृष्ठ–176

113. प्रकाश चन्द्र मिश्र–अमृत लाल नागर का उपन्यास साहित्य। पृष्ठ–86

114. सेठ बाँकेमल। पृष्ठ–51–52

115. ,, ,, ,, पृष्ठ–40

116. ,, ,, ,, पृष्ठ–103

117. ,, ,, ,, पृष्ठ–101–102

118. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–48–49

119. ,, ,, ,, पृष्ठ–234

120. ,, ,, ,, पृष्ठ–234

121. ,, ,, ,, पृष्ठ–179

122. डॉ0 प्रकाश चन्द्र मिश्र–अमृतलाल नागर का उपन्यास साहित्य। पृष्ठ–201

123. डॉ0 हेमराज कौशिक– अमृतलाल नागर के उपन्यास (नये मूल्यों की तलाश)। पृष्ठ–171–172

124. डॉ0 सुदेश बत्राः अमृत लाल नागरः व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–110–111

125. सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–08

126. ,, ,, ,, पृष्ठ–101

127. सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–14

128. ,, ,, ,, पृष्ठ–91

129. ,, ,, ,, पृष्ठ–106

130. ,, ,, ,, पृष्ठ–42

131. खंजन नयन। पृष्ठ–104

132. ,, ,, पृष्ठ–71

133. मैलना उसकी, इन्साइक्लोपीडिया ऑफ दि सोशल सांइन्सेज। पृष्ठ–221

134. डॉ0 श्यामा चरण दुबे–मानव संस्कृति। पृष्ठ–17–18

135. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–102

136. ,, ,, ,, पृष्ठ–103

137. ,, ,, ,, पृष्ठ–364

138. ,, ,, ,, पृष्ठ–107

139. ,, ,, ,, पृष्ठ–13

140. एकदा नैमिषारण्ये–अपनी बात। पृष्ठ–14

141. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–51

142. ,, ,, ,, पृष्ठ–106

143. ,, ,, ,, पृष्ठ–35

144. ,, ,, ,, पृष्ठ–38

145. ,, ,, ,, पृष्ठ–254

146. ,, ,, ,, पृष्ठ–254

147. ,, ,, ,, पृष्ठ–404

148. ,, ,, ,, पृष्ठ–278

149. ,, ,, ,, पृष्ठ–107

150. ,, ,, ,, पृष्ठ–10–11

151. ,, ,, ,, पृष्ठ–12

152. ,, ,, ,, पृष्ठ–414

153. ,, ,, ,, पृष्ठ–08

154. ,, ,, ,, पृष्ठ–491

155. डॉ0 त्रिभुवन सिंह–हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद। पृष्ठ–532

156. डॉ0 माखन लाल शर्मा–हिन्दी उपन्यासः सिद्धान्त और समीक्षा। पृष्ठ–357

157. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–09–10

158. ,, ,, ,, पृष्ठ–117

159.	अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त।	पृष्ठ–128
160.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–570
161.	,, ,, ,,	पृष्ठ–10
162.	,, ,, ,,	पृष्ठ–415
163.	,, ,, ,,	पृष्ठ–07
164.	,, ,, ,,	पृष्ठ–494
165.	,, ,, ,,	पृष्ठ–96
166.	,, ,, ,,	पृष्ठ–96
167.	अमृत और विष।	पृष्ठ–242
168.	,, ,, ,,	पृष्ठ–175–176
169.	,, ,, ,,	पृष्ठ–329
170.	सुहाग के नूपुर ; निवेदनम्।	
171.	,, ,, ,,	पृष्ठ–84
172.	,, ,, ,,	पृष्ठ–82–83
173.	,, ,, ,,	पृष्ठ–121
174.	मानस का हंस।	पृष्ठ–33
175.	,, ,, ,,	पृष्ठ–18
176.	,, ,, ,,	पृष्ठ–90
177.	,, ,, ,,	पृष्ठ–90
178.	,, ,, ,,	पृष्ठ–213
179	,, ,, ,,	पृष्ठ–213
180.	,, ,, ,,	पृष्ठ–367
181.	,, ,, ,,	पृष्ठ–75
182.	अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त।	पृष्ठ–172
183.	खंजन नयन।	पृष्ठ–78
184.	,, ,,	पृष्ठ–127
185.	,, ,,	पृष्ठ–77
186.	,, ,,	पृष्ठ–10
187.	,, ,,	पृष्ठ–81
188.	,, ,,	पृष्ठ–102
189.	,, ,,	पृष्ठ–63–64
190.	,, ,,	पृष्ठ–96

191.	खंजन नयन।	पृष्ठ–127–128
192.	,, ,,	पृष्ठ–130–131
193.	,, ,,	पृष्ठ–155
194.	,, ,,	पृष्ठ–184
195.	,, ,,	पृष्ठ–204
196.	डॉ0शशिभूषण सिंहल–उपन्यास का स्वरूप।	पृष्ठ–13–24 के अन्तर्गत
197.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–285
198.	,, ,,	पृष्ठ–02
199.	,, ,,	पृष्ठ–03
200.	,, ,,	पृष्ठ–02
201.	,, ,,	पृष्ठ–63
202.	,, ,,	पृष्ठ–62
203.	,, ,,	पृष्ठ–62
204.	,, ,,	पृष्ठ–232
205.	,, ,,	पृष्ठ–233
206.	,, ,,	पृष्ठ–94
207.	,, ,,	पृष्ठ–94
208.	,, ,,	पृष्ठ–94
209.	,, ,,	पृष्ठ–63–64
210.	,, ,,	पृष्ठ–94
211.	,, ,,	पृष्ठ–93
212.	,, ,,	पृष्ठ–93
213.	,, ,,	पृष्ठ–480–481
214.	,, ,,	पृष्ठ–205
215.	,, ,,	पृष्ठ–205
216.	,, ,,	पृष्ठ–268
217.	,, ,,	पृष्ठ–96
218	,, ,,	पृष्ठ–207
219.	,, ,,	पृष्ठ–105
220.	,, ,,	पृष्ठ–132–133
221.	,, ,,	पृष्ठ–231
222.	,, ,,	पृष्ठ–582

223. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–282–583
224. अमृत और विष। पृष्ठ–41
225. ,, ,, पृष्ठ–34
226 ,, ,, पृष्ठ–246
227. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ। पृष्ठ–137
228. अमृत और विष। पृष्ठ–400
229. ,, ,, पृष्ठ–648
230. ,, ,, पृष्ठ–150–151
231. ,, ,, पृष्ठ–111
232. ,, ,, पृष्ठ–56
233. ,, ,, पृष्ठ–215–216
234. ,, ,, पृष्ठ–215–216
235. ,, ,, पृष्ठ–157
236. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ। पृष्ठ–413
237. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–45
238. ,, ,, पृष्ठ–330–331
239. प्रकाश चन्द्र मिश्र–नागर उपन्यास कला। पृष्ठ–76
240. महाकाल। पृष्ठ–200
241. ,, ,, पृष्ठ–230
242. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–265
243. ,, ,, पृष्ठ–267
244. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–117
245. ,, ,, ,, पृष्ठ–252
246. ,, ,, ,, पृष्ठ–251
247. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–463
248. ,, ,, ,, पृष्ठ–473
249. सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–156
250. ,, ,, ,, पृष्ठ–25
251. ,, ,, ,, पृष्ठ–34
252. ,, ,, ,, पृष्ठ–74
253. ,, ,, ,, पृष्ठ–155
254. ,, ,, ,, पृष्ठ–156

255. सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–48

256. ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–64

257. मानस का हंस। पृष्ठ–101

258. ,, ,, ,, पृष्ठ–187

259. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ। पृष्ठ–402

अध्याय–नौ

विचार–प्रस्तुतीकरण–शिल्प।

(क) जीवन, मृत्यु, ईश्वर, आत्मा, देश, कला और साहित्य संबंधी विचार।

(ख) विचार और शिल्प की भंगिमाएँ।

निष्कर्ष।

विचार–प्रस्तुतीकरण–शिल्प

उपन्यास में अभिव्यक्त विचारों को उसके दृष्टिकोण के पृष्ठभूमि में रखकर ही समझा जा सकता है। यह समझना भूल हो सकती है कि उपन्यास में जो कुछ भी या जहाँ कहीं भी कहा गया है, वह सब लेखक का अपना विचार या मान्यता है। यही एक कारण है जिससे कभी–कभी यह समझना कठिन हो जाता है कि किसी कृति में लेखक की अपनी मान्यताएँ तथा स्थापनाएँ क्या हैं। प्रायः ऐसा होता है कि कथा के नायक के माध्यम से लेखक अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है तथा अन्य पात्रों द्वारा उन्हीं के खण्डन–मण्डन का प्रयत्न करता है। निश्चय ही यह बौद्धिक क्षेत्र में एक नई विचारधारा होती है। यदि लेखक वास्तव में महान कलाकार है, अन्यथा ये कृतियाँ सामान्य रूप से मनोरंजन की वस्तु समझी जाती है और थोड़े ही समय में उनका जीवन समाप्त हो जाता है। इसीलिए अनेक आधुनिक आलोचकों के मतानुसार जीवन दर्शन से रहित उपन्यास, कुल मिलाकर एक अशक्त कृति कही जायगी। केवल दार्शनिक सिद्धान्तों या जीवन के गूढ़ तत्वों की ही विवेचना होनी चाहिए। यदि उपन्यास इस दृष्टिकोण से लिखा जायगा तो निःसंदेह वह इन सारी विशेषताओं के बावजूद एक शुष्क और अरोचक कृति होगी। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि इनका समावेश उपन्यास में केवल उसी सीमा तक होना चाहिए जिस सीमा तक वे उपन्यास की गरिमा की वृद्धि कर सकें तथा साथ ही उपन्यासकार के जीवन दर्शन को स्पष्ट करने में सहायक हो सकें।

नागरजी ने अपने साहित्य द्वारा पाठकों को एक विशिष्ठ विचार की स्फुरणा करायी है। व्यक्तिवाद नहीं अपितु समग्र समाज का चिन्तन अर्थात् समूह का हित ही सर्वोपरि है। अपनी गहनानुभूति और नवनवोन्मेषशालिनीप्रतिभा के आधार पर जीवन को एक रूपक में आबद्ध करके 'बूँद और समुद्र' प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज ही वह समुद्र है। नाना व्यक्तियों और वर्गों के सम्मिलित विश्वासों, मान्यताओं तथा विसंगतियों रूपी बूँदों का विराट स्वरूप है। जीवन सागर में डुबकी लेने वाले कथाकार महिपाल, कर्नल, सज्जन, कन्या तथा ताई आदि महत्वपूर्ण बूँदें हैं। 'बूँद और समुद्र' व्यष्टि और समष्टि के द्योतक है। व्यष्टि और समष्टि की एकात्मकता समाज की मन्थर गति के लिए आवश्यक है। व्यष्टि का चिन्तन मनन समाज के परिप्रेक्ष्य में ही उपयोगी हो सकता है। अतः उपन्यासकार का विचार है "व्यक्ति अवश्य रहे पर उसके व्यक्तिवादी चिन्तन में सामाजिक दृष्टिकोण का रहना अनिवार्य है।"[1]

अब नागरजी के उपन्यासों में पाये जाने वाले विभिन्न विषयों पर उनके विचारों को प्रस्तुत किया जाता है।

जीवन और मृत्यु–

जन्म और मृत्यु अनिवार्य है। श्रीमद्भगवत्गीता के अनुसार– ''जन्मतस्य ध्रुवं मृत्युः, ध्रुवं जन्म मृतस्य च'' जन्म लेने वाले की मृत्यु और मरे हुए का जन्म होना ध्रुव है। नागर जी ने 'बूँद और समुद्र' में जन्म और मृत्यु को प्रकृति का नियम माना है। ''जन्म–मृत्यु प्रकृति का नियम है। जन्म की खुशी और मृत्यु का शोक सदा से समाज का व्यापार रहा है और रहेगा।''[2]

'खंजन नयन' में लेखक ने जीवन को 'सत्य' और 'सुन्दर' कहा है और मृत्यु उसके विचार से मिथ्या है। ''मृत्यु मिथ्या है, जीवन सत्य है, सुन्दर है।''[3] मृत्यु निश्चित है और उससे जीव को कष्ट अवश्य होता है– ''मृत्यु कितनी भी मिथ्या हो, पर उसकी करुणा यथार्थ है।''[4]

नागर जी ने जीवन और मृत्यु को जुड़वा भाई–बहन माना है। वे कहते है कि जीवन, जीवन के विकास हेतु संघर्ष करता है और मृत्यु एक प्रकार की शान्ति है जहां न तो प्रकाश है और न ऊर्जा है। ''जन्म और मृत्यु जुड़वा भाई–बहन हैं। भाई, जीवन के विकास के हेतु संघर्ष करता है, सृजन करता है। बहन मृत्यु, वह विमल शान्ति है, जिसमें सूर्य नहीं, ऊर्जा नहीं, निविड़ अन्धकार और नीरस अकेलापन है। लेकिन इस ऊर्जाहीन कंप कंपी भरे ठिठुरते अन्धेरे और निपट एकान्त में भी जीव का साथ देती है, उसकी चेतना, उसके संस्कारों का बीज।''[5]

मृत्यु का भय प्रत्येक प्राणी को होता है किन्तु, जो ईश्वर दर्शन की इच्छा रखते हैं, उन्हें मृत्यु का भय नहीं होता। उनके लिए तो– ''मृत्यु जीवन का रूपान्तर मात्र है। श्री सीताराम स्वरूप है।''[6]

ईश्वर–

नागरजी ने अपने उपन्यासों में कई स्थानों पर स्वयं और कहीं–कहीं विभिन्न पात्रों द्वारा ईश्वर सम्बन्धी विचार प्रकट किये हैं। ''परमेश्वर शब्द को उन्होंने विष्णु का पर्याय माना और शिव जी खुदा के हाँथ में संहार का कार्य सौंप कर भांग घोटने चले गये।''[7] एक स्थान पर उपन्यास की नायिका कन्या और डा0 शीला स्विंग के तर्क विर्तक द्वारा ईश्वर सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये गये हैं। कन्या ''मैंने कभी इस बात पर सीरियसली विचार तो नहीं किया कि ईश्वर है या नहीं ? और विचार किया भी है तो किसी तर्क से ईश्वर को काट नहीं पायी। अच्छे बुरे समय में औरों की तरह वह मेरे मन का सहारा ही है।'' शीला.....ईश्वर तर्क की चीज नहीं। मेरा ख्याल है कि हर आदमी पूरी जिन्दगी में अपनी तमाम कार गुजारियों से ईश्वर का ही निर्माण करता है ×× दुनिया से खास तौर पर हमारे देश से ईश्वर नाम की चीज मिट जाय, यह मुझे नामुमकिन ही लगता है ××× × साइंस एक दिन जरूर इसका खुलासा करेगी। या तो इस धारणा को मजबूत बनायेगी या फिर सदा के लिए खत्म कर देगी। अब हमने एटामिक युग में कदम रखा है, हम

पृथ्वी को छोड़कर दूसरे ग्रहों में पहुँचने की बात सोंचने लगे हैं, इस तरह क्या एक दिन ईश्वर की असलियत तक न पहुँच जायेंगे।''[8]

एक अन्य स्थान पर बाबा राम जी कहते हैं और उसके उत्तर में महिपाल प्रश्न करता है– ''आपने शिव का साक्षात्कार किया है ? किया हो तो वैज्ञानिक रूप में सिद्ध करें। ये अन्ट–सन्ट, अन्ध–विश्वास नये युग में नहीं चलेगा। भारत इन खोखले आध्यात्मिक प्रतीकों से हजारों साल तक ठगा जा चुका है। नया युग ईश्वर रूपी असत्य को सदा के लिये जड़ मूल से उखाड़ फेंकेगा। ईश्वर, ईश्वर, ईश्वर। ×× ईश्वर है क्या, कोरा भय और उसकी माया है घोर अंधकार। ईश्वर के चरणों में लुक–छिपकर जान बचाने वाली वृत्ति और उसके कुसंस्कारों से जकड़ कर ही जन जीवन आज तक अविकसित रह गया। पंगु अहंकार ने अपने अविकास को भी ईश्वरीय मर्यादा देकर सुशोभित और सुसज्जित किया। धर्म–कर्म, दुनियादारी, आबरू–लोकलाज, जग हँसाई आदि खुराफात मान्यताओं को इसी साले ईश्वर और धर्म के नाम पर समाज में प्रतिष्ठित किया गया है। लुक छिपकर चाहे जो करो, पैसे वाले हो तो चाहे जो पाप करो, बस दुनियादारी निवाह लो। आबरू, लोक लाज और जग हँसाई की ओर से अपनी किले बन्दी रखो। बेईमान ससरे। ईश्वर पूंजीपतियों का सबसे बड़ा सहायक और ढकोसला है। उसके नाम पर मनुष्य आज तक गुलाम बनाकर रखा गया है।''[9]

सज्जन– ''ईश्वर क्या है ? कौन है ? यह तो मैं नहीं जानता लेकिन मनोवैज्ञानिक पहलू से यह जरूर सोंचता हूँ कि इंसान के स्वभाव की गढ़न में ईश्वर भीरुता का बीज किसी न किसी अंश तक उसके **इंसटिंक्ट** को सही तौर पर गाइड किया करता है।''

नागर– ''बहुत से ऐसे हैं जो गुलामी की भावना को या किसी भी प्रकार के भय को ईश्वर मानने से इंकार करते हैं। अलक्षित परम शक्ति की ओर से एक बार नाता जुड़ जाने पर इंसान के मन में ज्ञानार्जन की वृत्ति अपने आप खुलकर काम करने लगती है। मैं ईश्वर और ज्ञान में कोई भेद नहीं मानता हूँ।''

साधु– ''हम तो आपको देखते हैं रामजी। जहाँ तक जीव दिखाई पड़ते हैं, वहाँ तक रामजी भी दिखाई देते हैं। बाकी, कोई राम ऊपर आकाश में हैं कि नीचे पाताल में हैं, मोर मुकुट पहनते हैं या अब नई पोजीशन का, कोट, पतलून पहनने लगे हैं– ई तो सब देखेंगे, तब कहेंगे।''

× × ×

इच्छा तो है राम जी। और प्रियत्न भी है। अब मिलेगा तो मिलेगा नहीं खड्डे में जाय। बाकी हमें अब भी संतोष है कि घट–घट व्यापी राम को देख लेते हैं।''[10]

सज्जन उपन्यास का नायक तथा नायिका कन्या ब्रज यात्रा के समय भगवान कृष्ण के ईश्वर होने के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं। ''सर्व शक्तिमान भगवान जो अपने ही बनाए हुए एटमबम हाइड्रोजन बमों से डर रहा है, जिस दिन इस हाऊ–भय से मुक्त हो

जायेगा, उस दिन फिर उसी तरह बाल रूप होकर नव संस्कृति का निर्माण करेगा। कच्छमच्छ, वाराह, नृसिंह आदि रूप धारण कर विघ्न रूपी असुरों को मारता हुआ जब वह एटमासुर का संहार करेगा, जब फिर मोहमयी धरती जननी के सामने वह सहज भाव से भय मुक्त होकर आएगा तब किसे अच्छा न लगेगा ? कौन ऐसा होगा जो अपने इस सहज भाव भरे रूप पर मुग्ध नहीं हो जायेगा ?''[11]

ईश्वर के नाम पर धर्म के ठेकेदार अनेक प्रकार के स्वार्थों से वशी भूत अनेक व्यभिचार और पाप करते हैं।

''आज जब आत्म–विश्वास का यही प्रतीक धर्म के इजारे दारों का स्वार्थ बनकर सामने आता है तब कितना घृणित और गंदा लगता है। भक्त वत्सल भगवान पत्थर की आलीशान हवेलियों में कैद होकर कितने घृणित कितने, क्रूर और नृशंस हो जाते हैं। अपने को महान और पवित्र मानने और मनवाने वाले ये महंत, गोसाईं और पंडे, भगवान के नाम पर कौन सा पाप नहीं करते ? ये अपवित्र, अछूत, नरक के कीड़े भगवान की रास लीला के नाम पर व्यभिचार फैलाते हैं ।''[12]

इस प्रकार के व्यभिचारों के संबंध में गाइड ने एक महाशय के संबंध में जो जानकारी दी उससे भी ये स्पष्ट होता है कि ईश्वर के ठेकेदारों द्वारा कितने घृणित कार्य किये जाते हैं। रास लीला के नाम पर मंदिरों में जो पाप–कर्म होते हैं उनका भी खुलासा इस कहानी से होता है। ''एक महाशय के संबंध में गाइड ने बताया कि उनके जिम्में कई धार्मिक जायदादें थीं। आपने मंदिर में आने वाली दर्शनार्थी युवतियों को अपनी सिद्धि के चमत्कार से थोड़ी देर के लिए अलोप कर फिर प्रकट कर देने में विशेष रूप से प्रसिद्धि प्राप्त की थी। आपके जन्म का इतिहास, सच–झूठ की राम जाने, गाइड के कथनानुसार यह था कि आपकी माता एक गोस्वामी–कृष्ण की राधिका थीं। उन कृष्ण रूप गोस्वामी को उन्होंने अपनी **यौवन–मणि** प्रदान की थी साथ ही अपने पति कुल के ऐश्वर्य भरे खजाने का बहुत सा अंश भी गोसाई जी को अर्पित किया था। फलस्वरूप वह बालक जन्मा। धन के प्रताप से इस बालक को पाल पोषकर बड़ा करने वाले सेठानी के एक अभिभावक भी पैदा हो गए। बड़ा होने पर अपना ही गोसाई बालक गोद लेकर सेठानी जी ने उसे अपने पति कुल का सारा ऐश्वर्य सौंप दिया।''[13]

ईश्वर के नाम पर ये सब अत्यन्त घृणित कार्य समाज में होते हैं, जबकि ईश्वर नाम की कोई शक्ति इस प्रकार के कार्य करने की अनुमति क्यों देगी। सज्जन के सोंच के अनुसार ''भगवान के–यानी मनुष्य के स्वरूप स्वभाव को ही सर्व व्यापी बनाने में प्रगतिशील समाज को रूढ़िग्रस्त असत्य भगवान से जुझारू युद्ध करना होगा। युद्ध के माने एटम बम नहीं, बल्कि युद्ध का अर्थ है, हर विघ्न बाधा को पार कर सामाजिक चेतना को नई सतह पर ऊँचा उठाना।

सिद्धान्त के लिए, यानी विकास के क्रम के अनुसार बढ़ने वाले सिद्धान्त के लिए–लड़ना मौत की निशानी नहीं, जीवन की है। नई सभ्यता के उदय काल में इतिहास को अगर एक और

युद्ध देखना ही पड़ा तो आज की विकसित, व्यापक मानव चेतना के लिए,यह बड़े ही शोक और लज्जा की बात होगी, पर यदि लड़ाई होती है तो उसे ऐतिहासिक मजबूरी मानकर हमेशा के लिए लड़ाई का **मुँह काला करने के लिए** नए भगवान और पुराने भगवान में लड़ाई भी होगी।''[14]

नागर जी ईश्वर को मनुष्य में प्राप्त अथवा जीव मात्र में प्राप्त चेतना को ही ईश्वर मानते हैं। ''भगवान केवल मनुष्य रूप में ही नहीं, परन्तु जीव मात्र है। हाँ, यह भले कहिए कि इसकी चेतना मनुष्य में ही सबसे अधिक होती है। इसीलिए भगवान व्यास देव कह गए हैं कि मनुष्य से बड़ा और कोई नहीं। तब फिर क्या इतनी महान जाति आत्मघात करके मरेगी। राम घट–घट व्यापी हैं। उन पर विश्वास रखे।''[15]

''यों तो अभ्यास वश सब में ही भगवान को देखता हूँ पर परम रूप का दर्शन तो अभी हमें भी नहीं मिला राम जी। जिन्होंने देखा है वे कहते हैं कि अनुभव से राम जी भी परम सिद्ध के रूप में जीव को मिलते हैं। हमें उनकी बात पर श्रद्धा है। बाकी सत्य तो अनुभव गम्य है इस लिए प्रयत्न करते हैं। होगा तो मिलैगा, नहीं मिलेगा तो खड्डे में जाय। हमें अपनी निष्काम सेवा में ही परम सुख मिल रहा है। हम तो इसी धरती में भगवान को विचरते हुए देखकर परम संतुष्ट हैं।''[16]

'अमृत और विष' में उपन्यासकार ने ईश्वर के संबंध में कई स्थानों पर अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि '' यह भगवान वाली समस्या मुझे तंग कर रही है। क्या भगवान वाकई कोई चीज है ? लोग उसकी अचल–सचल स्थिति को तर्कातीत बतलाते हैं। भला कोई पढ़ा लिखा मनुष्य तर्क का विज्ञान सम्मत आधार क्यों कर छोड़ सकता है ?.....मेरी जवानी के अनेक साथी जो मेरी ही तरह उस समय ईश्वरी सत्ता को नकारते थे, अब तिलक, चंदन लगाने लगे। परलोक की बात करने लगे, यही नहीं मुझे नास्तिक भी कहने लगे हैं। लेकिन मैं क्या करू ? जिस बात को साफ–साफ समझ नहीं पाया उसे समझाने का ठकोसला क्यों कर सकता हूँ ?.....चेतना जितनी स्वस्थ, सबल एवं दृढ़ होगी, कल्पना उतनी ही सुन्दर और बेदाग भी होगी। **मैं अपने जीवन भर के कार्य ही को ईश्वर मान सकता हूँ।** भावात्मक रूप से और अधिक गतिमान और सत्य शील होते हुएं मैं, **मनुष्य में भगवान के अस्तित्व को स्वीकार कर सकता हूँ।** राम और कृष्ण, पता नहीं इस धरती पर सचमुच पैदा हुए थे या नहीं, पर बुद्ध और महावीर ये दो भगवान तो निश्चित रूप से ऐतिहासिक पुरुष है। इस तर्क से भगवान मनुष्य के रूप में ही दिखलाई पड़ सकते है।''[17]

नागरजी ईश्वर को आस्था का स्वरूप मानते है। यदि मनुष्य को दृढ़ विश्वास है तभी ईश्वर है अन्यथा नहीं। नागर जी ब्रह्म और जीव को एक मानते है उनके अनुसार– ''ब्रह्म तो अद्वैत है। जो हम सो ब्रह्म। सत्–चित आनन्द। अन्ततोगत्वा चित और आनन्द भी सत् में समा जाता है। इसलिए ब्रह्म सत्य है। सत्य ही ब्रह्म है। महात्मा बुद्ध की बुद्धिगत व्याख्या के अनुसार सत्य भी रूप मात्र है। अतः ब्रह्म शून्य है, अनिर्वचनीय है।''[18]

आत्मा–

उपन्यासकार बाबा जी के माध्यम से आत्मा के संबंध में अपने विचार प्रकट करते है। उनके अनुसार आत्मा ही ईश्वर है और उसी के विविध स्वरूप ब्रह्मा और विष्णु तथा महेश है। "आत्मा ही ब्रिम्हा, विष्णु, महेश है। ब्रिम्हा के रूप में वह अनुभव की सृष्टि करता है, विष्णु के रूप में अपनी सृष्टि की श्री को ग्रिहण करता है और शिव के रूप में निष्काम जोगी बन सर्जन और पालन के अहंकार का नाश करता है। तथा सृष्टि और उसकी श्री को सदा एक रूप बनाकर अपने में लय किए रहता है। सो हम तो आत्मा के शिव रूप में स्रिद्धा रखते है रामजी।"[19]

एकदा नैमिषारण्यें में मथुरा में एक विद्वत गोष्ठी के आयोजन में आत्मा की स्थिति पर गम्भीर तर्क–विर्तक प्रस्तुत किए गए हैं। सेठ गुस्तास्प द्वारा आयोजन इस गोष्ठी में ऋषिवर भार्गव, श्रावक आचार्य जिन भद्र और अन्य आजीवक विद्वान और अनेक सेठ विद्वान भी उपस्थित थे– एक आजीवक विद्वान आत्मा को केवल बकवास मानते हुए कहते हैं– "आत्मा..... आत्मा–कोरी बकवास है तुम्हारी आत्मा। जैसे महुवा, गुड़ और जल आदि के मिलने से उसमें मादकता का एक विशिष्ट गुण उत्पन्न हो जाता है, वैसे ही पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि के मिलने से उनमें एक विशिष्ट प्रकार की संचेतना उत्पन्न हो जाती है। मनुष्य की आत्मा और मदिरा का मद एक समान है। शरीर का अंत होते ही आत्मा का भी अंत हो जाता है, जो व्यक्ति आत्मा के चक्कर में रहते हुए इस लोक के प्रत्यक्ष सुख को त्याग कर परलोक के सुखों की कल्पना करने में मगन रहते हैं, उन्हें कुछ भी नहीं मिलता।" इसी प्रकार के विचार सुन्न सेठ ने आत्मा का खण्डन करते हुए व्यक्त किए– "यह समस्त जगत् शून्य रूप है, इसमें विचरने वाले नाना रूपों के मनुष्य, पशु–पक्षी आदि जितने पदार्थ हमें प्रतिभासित होते हैं, वे वस्तुतः मिथ्या हैं। उनमें आत्मा का अस्तित्व खोजना बहुत बड़ी भ्रान्ति है। आत्मा स्वप्न या इन्द्रजाल के कौतुक से अधिक और कुछ भी नहीं। जैसे स्वप्न में अथवा इंद्रजाल से बँधी हुई दृष्टि में बहुत से आकार आ जाते हैं और फिर सहसा विलीन हो जाते हैं, वैसे ही इस जगत् का सारा क्रिया कलाप भी होता रहता है। ग्रीष्म ऋतु में मरुभूमि की सूर्य किरणों से चमकती सिकता को जल मानकर प्यासा हिरन जैसे दौड़ता है, वैसे ही यह आत्माभिमानी भोगाभिलाषी मनुष्य भी परलोक के सुखों की मिथ्या कल्पना को सत्य मानकर उसे पाने हेतु दौड़ते–दौड़ते अन्त में तृषा और थकावट से टूटकर हताश मर जाते हैं।"

इसी प्रकार एक अन्य विद्वान् सेठ पुत्र ने भी जीव या आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व को बड़े जोरदार शब्दों में नकारा और कहा– "यह जगत् विज्ञान मात्र है, ज्ञान का विकार है, और कुछ भी नहीं। यहाँ सब कुछ क्षण भंगुर है। क्षण भंगुर पदार्थ में हमें जो प्रत्यभिज्ञान होता है, वह कोरा छलावा भर है। आप सब अपने केशों और नखों को कटवाते रहते हैं। वे जब बढ़ते हैं तो आप कहते हैं कि आपके वही केश और नख फिर से बढ़ आए हैं, जिन्हें आपने पहले कटवा दिया था। वस्तुतः यह धारणा भ्रान्त है, नितान्त भ्रान्त है। अरे, जो पहले बढ़े थे, वे पहले ही कट भी चुके

और जो अब बढ़े हैं, वो एकदम नये हैं। पहले कट जाने वाले केशों और नखों से भला इन नये केशों और नखों का सम्बन्ध जुड़ ही क्यों कर सकता है ? सब कुछ नया जन्मता है और पुराना होकर मर जाता है। नए पुराने के बीच में कोई अविच्छिन्न परम्परा नहीं होती।''

अन्त में आचार्य जिन भद्र ने उपर्युक्त विचारों का खण्डन करते हुए अपने विचार प्रस्तुत किए– ''जो विद्वान् आत्मा को नकारते हैं, वे यह क्यों भूल जाते हैं कि पृथिवी आदि भूत चतुष्टय के अतिरिक्त हमें ज्ञान रूप दर्शन की भी प्रतीति होती है। चैतन्य, चित्स्वरूप, ज्ञान दर्शन रूप है और शरीर अचिन्त्य रूप जड़ है। जड़ता में चेतना उसी प्रकार रहती है, जैसे म्यान में तलवार। तलवार म्यान में रहती अवश्य है, पर वह म्यान से उत्पन्न नहीं होती। इसी प्रकार चैतन्य न तो पृथिवी, जल, अग्नि आदि भूत चतुष्टय से निर्मित है और न वह उनमें से किसी भूत का विशिष्ट गुण ही है। शरीर और चैतन्य दो अलग–अलग पदार्थ हैं। यद्यपि शरीर चैतन्य के निवासार्थ ही निर्मित होता है। जैसे वर्तमान शरीर में चेतना का अस्तित्व है, वैसे ही अगले पिछले शरीरों में भी था, यह सिद्ध होता है।''[20]

कला–

सृष्टि में अनेक प्रकार के मानव चरित्र और अन्य प्रकार की वस्तुएँ जो यथार्थ जीवन में लेखक को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उन्हें अपने ढंग से कल्पना के सहारे जीवन्त बना देते हैं। अजन्ता और ऐलोरा की गुफाएँ, हिमालय का सौन्दर्य आदि का चित्रण इस प्रकार किया जाता है कि वे यथार्थ और चेतन से लगने लगते हैं, इसी प्रकार उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में कल्पित पात्रों के अनेक चित्र उकेरे हैं। लेखक के अनुसार ''समाज में एक नमूने के अनेक चरित्र होते हैं उनकी कुछ झलकियाँ एक साथ मिलाकर देखने से एक नया पात्र ही सामने आ खड़ा होता है। मेरा पात्र कुँवर रद्धू सिंह इस समय हूबहू मेरी दृष्टि के सामने खड़ा है। ये विजन ये ये सन्दर्शन, छाया, अपच्छाया, आभास इन तमाम पढ़े–लिखे शब्दों के अर्थ स्वरूप मेरा कल्पित दृश्य कभी–कभी इतना मांशल हो उठता है कि वस्तु जगत की चीज का आभास करा देता है।''[21] आगे उपन्यासकार स्पष्ट करता है कि ''उपन्यास का पात्र मेरी कल्पना की सृष्टि भले ही हो पर मेरे बाप का गुलाम तो नहीं। सृष्टि अपने ही नियम से चलती है। रद्धू सिंह के मानस में प्रवेश करने के लिए जब तक उसके बाह्य जगत् के अन्तरंग यथार्थ को न देखुँगा तब तक उसके मन का यथार्थ मुझे क्यों कर मिल सकेगा ? मैं यथार्थ की गति स्थूल से सूक्ष्म मानकर चलता हूँ। मेरी बिम्ब ध्वनि या ध्वनि बिम्बों का अभिन्न अटूट तार अब तो अपनी बर्हिचेतना द्वारा बिना किसी प्रकार का श्रम कराए ही मेरे पूर्व श्रम के अर्जित फल स्वरूप संस्कार बनकर बिम्बा वलियों की स्वतंत्र गति के साथ घुल–मिल कर एक हो गया है। यथार्थ के स्थूल से सूक्ष्म तत्वों पर आते हुए यथार्थ शब्द किसी भी स्तर पर अपना मूल भूत अर्थ नहीं खोता और इस सूक्ष्म से फिर एक नये यथार्थ की स्थूल अनुभूति तक कभी न कभी होकर ही रहती है। एक चक्कर है, चक्कर दार

सीढ़ियाँ– पता नहीं लगता, गति ऊपर होती है या नीचे, दायें या बायें, पर गति चक्र अवश्य है।''[22]

उपन्यास में कहानियाँ, चरित्र, घटनाएँ लेखक द्वारा चित्रण के फल स्वरूप इतने सजीव और यथार्थ लगते हैं मानो मौके पर ही बैठ कर चित्रण किया गया हो। नागर जी ने स्पष्ट किया है– ''प्रेमचन्द्र के बारे में यह विदित है कि वे आमतौर पर अपने गाँव या शहर के समाज से अधिक घुलते–मिलते या रीति व्यवहार नहीं करते थे। ''हम कला को अपने यहाँ जिन्दगी के साथ–साथ बँधा हुआ पाते हैं। हमारी कला में चमत्कार खूब है मगर वह हमें चौंकाता नहीं, बल्कि मन को प्रकाश देता है। वह खूबसूरती हमारे मनों को अपने निकट खींच ले जाती है और उन्हें भी उतना ही खूबसूरत बना देती है।''[23] फिर भी उनकी तमाम कहानियाँ और उपन्यास, चरित्र, घटनाएँ अधिकतर इतने सजीव और यथार्थ लगते हैं मानो उन्होंने मौके पर बैठकर ही वह तमाम बयान कलम बन्द किया हो। उनसे अगर पूँछा जाता आपके अमुक पात्र के पीछे यथार्थ जीवन का कौन सा चरित्र है ? तो शायद वे उसका सही–सही जवाब न दे पाते। यानी अपने प्रसंग में आते हुएँ इसका मतलब यह हुआ कि खुद मैं भी इस सवाल का जबाब नहीं दे सकता। हर छोटे–बड़े लेखक के साथ में कमजोरी होती है कि वह यथार्थ जीवन के कुछ चरित्रों, घटनाओं और कुछ भावों से ऐसा बँध जाता है कि नये–नये रूपों में उनको बार–बार विभिन्न परिस्थितियों में पेश करने की बान बना लेता है। कलाकार एक मूल बिम्ब से पचासों और कभी–कभी सैकड़ों विभिन्न पात्र–पात्रियों का सृजन कर डालता है।''[24]

हिमालय का वर्णन करते हुए लेखक एक चित्र उपस्थित करता है– ''निर्मल दूधियाँ बादलों का लहराता महासागर बीच–बीच मे कुछ स्वेत–स्याम बादल उस क्षीर सागर की लहरों से अपना व्यक्तित्व अलग ऊँचा उठाये हुए, डूबे पहाड़ों से शिखरों जैसे।''[25] सारांश में नागर जी का स्पष्ट मत है– ''नकल में असल का रस भर देना ही तो कला है।''[26]

विचार और शिल्प की भंगिमाएँ–

नागरजी ने अपने उपन्यासों में विचार शिल्प के लिए मुख्य रूप से निम्नांकित भंगिमाएँ अपनायी हैं–

1. विभिन्न पात्रों द्वारा खण्डन–मण्डन।
2. कुछ ऐसे पात्रों की सृष्टि द्वारा जिनका लक्ष्य ही लेखक के विचारों को प्रकट करना है।
3. स्वयं पात्र के रूप में।
4. व्यंग्य द्वारा।

विभिन्न पात्रों से खण्डन–मण्डन द्वारा

जड़ और चेतन के संबंध में एक स्थान पर एक पात्र द्वारा ये कहने पर कि जो वस्तु जड़ है वह चेतन नहीं हो सकती। दूसरा पात्र कहता है– "मैं नहीं मानता कि जो मैटर जड़ है वह कभी चेतन नहीं हो सकता जड़ता में भी चेतना उत्पन्न होती है मैटर का रूपान्तर होता है।"[27]

मृत्यु के संबंध में महिपाल कहता है– "प्रकृति और उसकी बेटी नारी को आदि शक्ति मानकर वे उसकी सत्ता के आगे सिर झुकाते थे। मृत्यु का उन्होंने जीवन का अन्त नहीं बल्कि किसी किस्म के मायावी जीवन का आरम्भ माना।"[28] "मृत्यु को पहले एक गहरी नींद ही मानता होगा फिर लाश के सड़ने पर उसे दफनाने की प्रथा चली होगी। मृत्यु के बाद जीव की एक नये रहस्यमय रूप में परिणति हो जाने की भावना जागी। परलोक में मृत व्यक्ति की सुख सुविधा के लिए पशुओं, स्त्रियों की बलि भी की जाती थी। यही प्रथा आगे चलकर सती प्रथा बन गयी।"[29]

राजनीतिक पार्टियों के संबंध में "ये तो बात ठीक है महणाज्ज जी। सब ससडे बदमाश हैंगे। पड़ हम तो यह कहते हैंगे कि कांगड़स वालों की तोंद खाय–खाय के फूल गयी हैंगी। दुसड़े आयेंगे तो ससड़े फिर पब्लिक को नये सिड़े से नोचेंगे।"[30]

पुलिस के संबंध में दृष्टिकोण–

पुलिस किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करती है देखिए–दरोगा जी कहते हैं– "देखो तो जाके अन्दर, **वो साली मरी कि नहीं मार डाला साली ने।** आज भूँखा भी रखेगी **बंचो।**" सज्जन के टोकने पर इंस्पेक्टर कहता है– "हैं खैर, बुरी तो है ही पर क्या करें साहब, यह पुलिस का महकमा गाली बगैर काम ही नहीं कर सकता।"[31] पुलिस द्वारा गालियाँ देने की बात की पुष्टि करते हुए कहा गया– "अजी तमाम दुनिया गालियाँ देती है। आप नीच कौमों में देखे तो औरत, मर्द, बच्चें सभी गाली के बगैर एक शब्द नहीं बोल सकते। मैं तो समझता हूँ कि गाली बकना इंसानी कमजोरी नहीं, खुशूसियत है।"[32]

विधवाओं के संबंध में समाज का दृष्टिकोण–

एक स्त्री कहती है– "विधवा है, बस एक टिकली नहीं लगाती, काँच की चूड़ियाँ नहीं पहनती। बाकी तुम उसके सिंगार पटार देखो तो कह थोड़े ही सकती हो कि यह विधवा है।"[33] "ये विधवाएँ तो सच पूछो 'प्रासों' से भी ज्यादा बुरी होती हैं। 'प्रास' बाजार में कोठे पर बैठती है तो सब जानते तो है कि रन्डी है, और ये लोग तो भली बनकर सत्तर घर घालती हैं डायने।"[34]

शिक्षा का अभाव–

शीला कहती है– "यह सही है ऐसी ट्रेजडीज ऐसी यहाँ सैकड़ों होती है मगर करना क्या चाहिए ? सज्जन– "ये सब शिक्षा की कमी की वजह से है। हमारी जनता बहुत बैकवर्ड है।" शीला– "शिक्षा ? व्हाट शिक्षा ? कैसी शिक्षा ? समाज को आखिर क्या

सिखाया जाय। जिससे कि ऐसे क्राइम्स एकदम से बंद हो जाँय।" सज्जन– "गवर्नमेन्ट उनको एजूकेशन दे। उन्हें समझाया जाय कि मानवता क्या है ? ह्यूमन वैल्यूज क्या हैं ?" इसका खण्डन करता हुआ महिपाल कहता है

महिपाल– "मगर आप उनको समझाइएगा कैसे ? आपके पास साधन क्या है।"

सज्जन – "क्यों गवर्मेन्ट, टीचर्स अप्वाइन्ट करे। आर्ट और कल्चरल फंक्शन कराये। कुछ ऐसे स्त्री पुरुष भी रखे जाँय जो घर–घर जाकर लोगों को सफाई रहन–सहन के कायदे समझाएँ, उनकी दिमागी सतह को ऊँचा उठाये।"

शीला– "कोरी नसीहत में मेरा विश्वास नहीं सज्जन।"

महिपाल– "मेरी शादी असफल रही जैसे आमतौर पर माता–पिता द्वारा तै की गई शादियाँ होती हैं। हमारे अस्सी फीसदी घरों में ऐसी शादियाँ जीवन भर के कर्ज की तरह निभाई जाती है। नतीजा यह होता है कि कहीं पति कहीं पत्नी कहीं पति–पत्नी दोनों ही एक–दूसरे के पीठ–पीछे व्यभिचार करते हैं।"

शीला– "सिर्फ ऐसी ही शदियों में क्यों ? लव मैरिज में भी यही होता है। जब तक नये–नये रूमियों और जूलिएट रहे, दोनों में बड़ा प्रेम रहा, फिर या तो तलाक या आपस में दगाबाजी– यही रास्ते रह जाते हैं। मैं भी इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि शादी का रिवाज इंसानों में धोखा धड़ी, झूठ और अत्याचारों को जगाता है। इसे हटा दीजिए, औरतों को आर्थिक रूप से आजाद कर दीजिए, फिर देखिए औरत–मर्द के रिश्ते कितनी जल्दी नार्मल हो जाएँगे।"[35]

दहेज के संबंध में–

महिपाल कहता है– "ये पैसे की दुनियाँ बहुत दिनों तक नहीं रहेगी आज तो समाज का शासन ही बेईमानों और लुटेरों के हाँथ में है। लोग जीवन की मान्यताएँ वहीं है, जो वे चलाते है। जो इस– धाँधली बाजी को समाज की सौभाग्य चमक बताकर अपना खोटा सिक्का चला रहे है, वे ये भूल जाते है कि करोड़ों भूँखें बेकार और उनके पीछे मरता क्या न करता वाली स्प्रिट लेकर पागल जोश के साथ बढ़े चले आ रहे है। इन मुट्ठी भर धाँधली बाजों को जलाकर खाक कर देगें तब मेरी लड़कियों के साथ ज्ञान रूपी दहेज जायेगा और उसी की कीमत होगी।"[36]

प्राचीन ग्रन्थों के संबंध में– "समझ में नहीं आता कि यह मनु भगवान– जिनकी स्मृति को हिन्दू आज भी अपनी हवेली का नगाड़ा बनाकर रखे हुए हैं, आस्तिक थे या नास्तिक ?"[37] "इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं कि वे सब बातें जो आज हमें अपने शास्त्रों में दिखाई पड़ती हैं, वे मूल लेखकों द्वारा लिखी गयी हों। हमारे यहाँ सदियों से पुराने ग्रन्थों में नित–नई ठूस–ठाँस होती चली आयी है।" [38]

राष्ट्रीय चरित्र–

कन्या– "मेरा यह तमाम कहने का आशय सिर्फ यही है कि एक तरफ जहाँ हमारी संस्कृति ने ये अजन्ता–एलोरा वगैरा जड़ पहाड़ों में चेतना भरी, वहीं किसी सिस्टम की खराबी से चेतन आदमी को जड़ पत्थर बना दिया। हमारे इतने अच्छे–अच्छे आदर्श समाज में एक जगह अपना सच्चा असर रखते हुए भी सिमट कर नई शक्ति नहीं बन पातें। व्यक्ति की इतनी सच्ची निष्ठा होते हुए भी हमारा नेशनल करेक्टर कुछ भी नही।"[39]

सज्जन– "मै सिर्फ उस समाज की बात नहीं कर रहा जिसको आप बुर्जुआ कहते है। कबीर बुर्जुआ कल्चर से नहीं आया। सूर, तुलसी, तुकाराम, नरसी, चण्डीदास वगैरा बुर्जुआ कल्चर की देन नहीं, ये जो अपने यहाँ हम तमाम जाट, जुलाहों, चमार पासी वगैरा संतों का ट्रेडीसन देखते है, वे किसी नेशनल करेक्टर के बिना पनप ही नहीं सकते। न पढ़े–न लिखें–न किसी ऊँचें समाज में जन्में, फिर भी अपनी पर्सनाल्टी से वे इस रूढ़िवादी देश पर छा जाते हैं। मैं इन लोगों की नैतिक सुन्दरता की बात कर रहा हूँ।"

कन्या– "मैं इससे इन्कार नहीं करती हूँ, मगर यह जरूर कहती हूँ कि हमारे सामाजिक ढाँचे में जरूर ही कोई ऐसी विरोधी धारा भी पनप रही है, जो इस तमाम नैतिक सुन्दरता की आँख फोड़ देती है।"

× × ×

देखिए जैसे यह सत्य नारायण की कथा है, इसमें क्या है ? करोड़ों घरों में इसकी कहानी बड़ी श्रद्धा से पढ़ी जाती है। इसमें कौन सा मारल है ? मैं ने तो कथा पढ़ी है। उसमें न तो सत्य है और न नारायण। यह तो एक मिशाल हुई। हमारे बहुत से रस्म–रिवाज बिल्कुल बेमानी, एक जबर दस्ती की निष्ठा लिये हुयें चलें आते है। शादी हो, गमी हो, तीज–त्यौहार हो, सब इस कदर कीमती बना दिये गये है कि उनको बरतने वाला आदमी हरगिज किसी किस्म के नैतिक सुन्दरता को अपनाने के काबिल रह ही नहीं जायेगा।"[40]

प्रेम–

शीला– "जिस प्रेम पर दुनिया जान देती है मैं उसे मन का एक अभाव मानती हूँ।" "अभाव के सिवा ये और क्या ? लैला का मंजनू न मिला, मंजनू बिना लैला के रह गया। इसीलिए दुनिया उनके प्रेम के गीत गाती है। मैं पूछती हूँ यहीं लैला मंजनू अगर आपस में विवाह कर पाते तो क्या दुनियाँ इन्हें अमर प्रेमी मानकर याद रखती।"

शीला– "औरत मर्द के रिश्ते को लेकर मैंने अपनी जिन्दगी में एक बात सीखी है– प्रेम थ्योरी नहीं प्रैक्टिस है। जितना ज्यादा प्यार करो रिश्ता उतना ही गहरा पैठता है। और रिश्ता जितना ही पुराना होता है उसमें रोज उतनी ही नई ताजगी आती है।"

सज्जन– "बाह क्या बात कही है– लव इज नॉट थ्योरी बट प्रैक्टिस।"[41]

कन्या– "मै जानती हूँ कि जिस तरह भिखारी अपनी गरज का बावला होने की वजह से बड़ी–बड़ी दुआएँ देता है, उसी तरह अपनी खुद गर्जी के लिए मर्द औरत की जवानी का भिखारी बनकर उससे दान पाने के लिए निकम्मी तरीफें किया करता है। जैसे भिखारी की दुआएँ ऊपरी मन से निकलती हैं और बेमानी होती हैं, उसी तरह मर्दों की प्यार और आदर्श भरी बातें भी।"[42]

सज्जन– "स्त्री–पुरुष का प्रेम सिर्फ देह संबंध या उसकी इच्छा का ही दूसरा नाम है, यह बात समाज के बहुत बड़े तबके के लिए आज भी सौ फीसदी सही है। मैं कहता हूँ, सौ में दो चार को छोड़ दो, बाकी सब व्यभिचारी हैं। जिन्हें मौका मिल जाता है वे खुल खेलते है, बाकी मौका न मिल पाने की वजह से या कायरता के कारण देह से एक पत्नी वृत पालन करके किसी न किसी हद तक मानसिक व्यभिचार करते है।"[43]

"स्त्री–पुरुष जीवन में सिर्फ एक ही बार एक दूसरे को पाते है। मेरा इस बात में दृढ़ विश्वास है और पाने के लिए उन्हें आपस में अपने आपको अनेक कसौटियों पर कसना होता है। ये जिम्मेदारी का नाता है– रईसों कलाकारों, मनचलों के दिल बहलाव का खेल नहीं।"[44]

बहु पत्नीवाद और एक पत्नीवाद–

नागरजी ने नायक–नायिका के द्वारा ही इस समस्या पर भी विचार किया है– "स्वयं दशरथ की मिसाल ही मौजूद है। विभिन्न स्त्रियों से यदि उनकी सन्तानें न होती, तो क्या उनका घर यों तीन–तेरह होता ? बहुपत्नीवाद की अन्यतम ट्रेजडी के रूप में दशरथ का उदाहरण उसके सामने आया। तीन स्त्रियों से उत्पन्न चार बेटों के बाप को कितनी बुरी मौत मरना पड़ा।"

राम का एक पत्नी व्रत का सिद्धान्त अपने पिता के जीवन दृष्टान्त से पाए गए कटु सत्य के आधार पर ही बना होगा। राम संयमी थे, विचारक थे। उन्होंने मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर ही महा नियम को अपनाया।"[45]

इसी प्रकार कृष्ण के संबंध में– "पहले तो मुझे इस बात पर विश्वास ही नहीं होता कि कृष्ण इतने आवारा और बदचलन थे, जितना कि रीति काल के कवियों ने उन्हें बना दिया है। विलासी वो जरूर थे। कम से कम आठ रानियाँ उनके थी हीं। इनके अलावा दूसरी सोलह हजार एक सौ ब्रज की सारी गोपियाँ प्लस बेचारी काल्पनिक प्रेमिका राधा, जो कृष्ण की इतनी अन्यतम थी और जो कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद उनके जीवन से अधूरी कहानी सी निकल गयी। उन सबकी चर्चा को कोरी कल्पना मानकर अगर हम अस्वीकार कर दें तब भी सामन्तों की तरह बहुपत्नी वादी विलासी तो वे थे ही।"[46]

पाप और पुण्य–

"पाप और पुण्य शब्दों के साथ सोंचने वाला व्यक्ति अपनी विचार शक्ति को सदा के लिए बोथरा बना देता है।"[47]

"इन दोनों ही शब्दों के अर्थ जन साधारण में कुछ बड़े ही आउट ऑफ डेट चित्रों के साथ रूढ़ि हो चुके है। हम स्वर्ग और विमान की कल्पनाओं को अब साकार कर चुके हैं। पुण्य करने वाला यानी एवज में आसमानी शक्ति से कुछ पाने के लिए सौदा करने वाला कभी भी सही स्प्रिट में परोपकार नहीं कर सकता।" क्योंकि उसका दृष्टिकोण मानवीय नहीं हो पाता। उपकार करने वाले और उपकार किये जाने वाले व्यक्ति के बीच में ईश्वर आड़े आता है। आदमी–आदमी में प्यार नहीं हो पाता। यह बड़ा व्यक्तिवादी संकीर्ण दृष्टिकोण है। इससे व्यक्ति में व्यापक, सामाजिक चेतना आम तौर पर कभी सही नहीं हो पाती।

हाँ। क्योंकि इनके अर्थ रूढ़ हो गये है। पाप और पुण्य, परलोक के लिए किये जाते है– मरने के बाद उनका फल मिलने की बात, इन शब्दों में निहित सामाजिक पहलू को उभरने नहीं देती।"[48]

परम शक्ति–

कन्या– "यों यह भी कहा जा सकता है कि टेली पैथी अब एक जाना–माना ज्ञान है। पर .....अजब सवाल है। कुछ कहते नहीं बनता। शक्ति है, उसका परमरूप भी है, जो सुन्दर, संतुलित या घृण्य विकृत रूप में इतिहास के सामने बार–बार आया है और अपना प्रभाव डाल गया है। अब भी डाल रहा है। पर वह शक्ति पारलौकिक है या लौकिक ? कुछ कहते नहीं बनता। आसमान के तारों से लेकर महा समुद्रों के तल तक में जीवन जितने रूपों में दिखलाई देता है, यदि उसे अनेक रूपों वाला विराट ईश्वर माने तो वह लौकिक है। एटम, हाइड्रोजन आदि जो अब लौकिक ज्ञान में व्याप्त हो गये हैं– वह भी।"

सज्जन– "मगर उसमें जिस शक्ति के दर्शन होते हैं, वह आती कहाँ से है ? ××× मैं–मैं तुमसे एक प्रश्न करता हूँ। तुम बड़ी पढ़ी–लिखी, प्रोग्रेसिव और साथ ही ईमानदार महिला हो। तुम लौकिक ईश्वर को मानती और देखती हो फिर–क्यों जी, तुम बजरंगबली को बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करती हो।"

कन्या मुस्कराकर बोली–और तुम भी तो करते हो।"[49]

श्रद्धा के प्रतीक–

उपन्यासकार बजरंगबली और शिव आदि देवताओं को मात्र श्रद्धा का प्रतीक मानता है। नायक–नायिका द्वारा इस विषय में कितने सुन्दर शिल्प के साथ नागर जी ने विचारों की अभिव्यक्ति की है–

सज्जन– "हाँ, मैं भी करता हूँ। और मुझे अब इसकी झिझक भी नहीं रही। **इनफैक्ट** अभी परसों–नरसों की बात है। मैं, महिपाल और कर्नल के साथ। काफी हाउस से निकल कर हजरतगंज की तरफ आ रहे थे। महावीर जी के मंदिर के सामने आते ही श्रद्धा से हमारे हाथ जुड़ गये। बाद में महिपाल ने हँस कर कहा कि हम अपने पुरखा वानर का पूजन अब भी करते

हैं। अवैदिक और सनातन सभ्यता का यह श्रद्धा प्रतीक अब बड़ी–बड़ी जानकारियाँ हो जाने के बाद केवल म्यूजियम में ही रखने के काबिल रह गया है। **इसी तरह शिव का प्रतीक** है। हमारी बढ़ी हुई चेतना बार–बार यह सवाल पूँछती है कि आदिम काल की चेतना के इन **माइल** स्टोनों को हम अब क्यों नापें ?''

सज्जन बोला– ''आखिर हम इन श्रद्धा प्रतीकों को क्यों पूजें ? यों श्रद्धा भी शक्ति है। पर वह शक्ति गलत जगह पर क्यों इस्तेमाल की जाती है ?''

कन्या बोली– ''बात तो ठीक है, पर.....''

''हाँ, तुम जो सोंच रही हो, वही बात मेरे मन में भी है। यह प्रतीक अब ज्ञान और अन्ध विश्वास दोनों ही के ऐसे अनेक प्रयोगों से जुड़ गये हैं कि उनसे अब हमारा दूसरा ही नाता हो गया है।''

कन्या ने कहा– ''नहीं, मैं कह रही थी कि शिव हो या मुण्डमाल धारण करने वाली शक्ति या हनुमान, भैरव आदि हों, ये सब दर असल अब उन चामत्कारिक दन्त कथाओं से बल पाकर जन विश्वास में जम चुके हैं, जो बड़े पुराने जमाने से समय–समय पर रची गयी थीं। अनजानी विपत्तियों से रक्षा पाने के लिए यह देवता अब एक सहारा हैं। यद्यपि गलत सहारा हैं। ज्यादातर यह भय और आतंक के प्रतीक बन जाते हैं। मगर मैं तुमसे सच कहूँ, मैं उन्हें पूजती हूँ। यह जीवन का एक अभिन्न सा लगने वाला संस्कार है। इनके सहारे अपने अचेतन संस्कार को जगाती हूँ। एक बात मैंने और आजमाई है, किसी भी देवता के मंदिर में जाऊँ, परन्तु, श्रद्धा भाव सब जगह एक सा ही उमगता है। शिव, हनुमान, राधा–कृष्ण, दुर्गा आदि प्रतीक महज श्रद्धा को झलकाने के माध्यम बन जाते हैं। और उस श्रद्धा भाव से माँगती हूँ।''[50]

सज्जन– ''इक्जेक्टली। यही बात मेरे मन में भी एकदम साफ है। इसीलिए मुझे झिझक नहीं। ये प्रतीक तो महज एक बहाना है, जिनके सहारे अनायास हमारा मन अपनी इच्छा शक्ति को किसी दिशा की ओर बढ़ने के लिए जगाता है। वह चेतना ऊपरी सतह पर मन की किसी अनजानी गहराई से आती है। उसके आने का एक विधान है। जहाँ तक मालूम हो गया, वहाँ तक वह साइंस है, और जो नहीं मालूम हुआ वह अभी हमारी भविष्य की महत्वाकांक्षा है।''[51]

2. कुछ ऐसे पात्रों की सृष्टि द्वारा जिनका लक्ष्य ही लेखक के विचारों को प्रकट करना है–

नागरजी ने इस प्रकार के दो विशिष्ट पात्र सृजित किये हैं, एक बाबा राम जी दास और दूसरे साधु जो क्रमशः 'बूँद और समुद्र' और 'अमृत और विष' के पात्र हैं।

व्यक्ति और समाज एक–दूसरे के पूरक हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुएँ बाबा राम जी दास वन कन्या से कहते हैं– ''हाथ साधे रहो बेटी हर बूँद का महत्व है, वहीं तो अनन्त सागर है। एक भी बूँद व्यर्थ क्यों जाय ? उसका सदुपयोग करो, कैसे हो सदुपयोग ? कैसे यह बूँद अपने को महासागर अनुभव करे ? इस विशाल जनसागर में वो नितान्त अकेली है। उसका

कोई अपना नहीं। ऐसा लगता है जैसे उसके चारों ओर सागर सीमा बाँध कर लहरा रहा है और बूँद सागर से अलग रेत में घुलती चली जा रही है। केवल उसकी ही यह हालत हो ऐसी बात नहीं। हर व्यक्ति आम तौर पर इसी तरह अपनी बहुत छोटी–छोटी सीमाओं में रहता हुआ एक दूसरे से अलग है।''[52]

वह आशा करते हैं– ''मनुष्य का आत्म विश्वास जागना चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख–दुख में अपना सुख–दुख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है। विचारों के भेद से स्वस्थ द्वन्द्व होता है और उससे उत्तरोतर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख–दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट संबंध बना रहे– जैसे बूँद से बूँद जुड़ी रहती है– लहरों से लहरें। लहरों से समुद्र बनता है इस तरह बूँद में समुद्र समाया है। ''उन्हें पूर्ण विश्वास है कि ''व्यक्ति की चेतना जागकर ही रहेगी।''[53]

3. स्वयं पात्र के रूप में–

'बूँद और समुद्र' में नागर जी स्वयं एक पात्र के रूप में सम्मिलित होकर देवी–देवताओं संबंधी चर्चा में रुद्र नारायण के साथ भाग लेते हैं।

हनुमान के संबंध में– नागरजी– ''यह बजरंग मूल रूप से द्रविड़ों का देवता है। वाजिस्टर ने सिद्ध किया है कि हनुमंत नाम से पूजित यह वानर देवता अनार्य लोगों द्वारा पूजित था। तमिल भाषा के अम्मन्ति शब्द का अर्थ है पुरुष वानर। मजूमदार और प्रसालकर द्वारा संपादित 'वैदिक राज' में लिखा है जब आर्यों ने देश के इस देवता को पहचाना तो उसका अनुवाद अपनी भाषा में 'वृषाकपि' के नाम से किया। तमिल का अम्मन्ति शब्द ही संस्कृत में आकर 'हनुमंत' हो गया।''[54]

शिव के संबंध में

इसी प्रकार शिव के संबंध में नागर जी ने कहा– ''शिव इस देश के तथा दुनियाँ के प्राचीनतम् देवता हैं। मोहन–जोदारों के एश्वर्य काल में भी यही पूजित थे। अच्छा और इनको लेकर हमारे पौराणिक साहित्य में पहले बड़ी कीचड़ उछाल की गई है। वामन पुराण कथा में, कथा है, महादेव नग्न वेष में नये तापस का रूप धारण कर मुनियों के तपोवन में आये। मुनियों की पत्नियों ने कामातुर होकर शिव को घेर लिया। अपनी पत्नियों का ऐसा बुरा आचरण देखकर मुनिलोग 'मारो–मारो' कहते हुये लकड़ी, पत्थर लेकर उनकी ओर दौड़ पड़े। उन्होंने शिव के भीषण उर्ध्व लिंग को गिरा दिया। बाद में मुनियों के मन में भी भय का संचार हुआ। ब्रह्माजी ने उन्हें शिव की महिमा बतलाई, और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मुनियों के घर ही में गहरी फूट पड़ गई थी। उनकी पत्नियाँ शिव पूजा किए बगैर नहीं मानती थीं।''[55]

× × ×

कितनी ऐसी ही कथाएँ हैं। अँ अँ जैसे कि सतीदाह की ही कथा लीजिए। अँ अँ–वह कथा ज्योतिष शास्त्र का एक रूपक ही क्यों न हो, मगर इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि किसी जमाने में आर्य लोग शिव को अपना देवता मानने से इनकार कर उन्हें यज्ञ का भाग नहीं देते थे।''[56]

रुद्रनारायण के संबंध में–

इसी तरह रुद्रनारायण के संबंध में नागर जी ने कहा– ''अच्छा एक बात और देखिएगा, जितने असुर हैं, वे सब भोलानाथ के ही भक्त हैं और साथ ही साथ आपके जितने **पापुलर** देवता हैं– राम, कृष्ण, गणेश, स्वामी कार्तिक, प्रमुख देवियाँ इन सबके साथ शिव का घनिष्ठ संबंध जुड़ा हुआ है।''

इस प्रकार स्वयं के नाम से एक पात्र प्रस्तुत करके उसके माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त कर नागर जी ने विचार शिल्प को एक नितान्त, नवीन भंगिमा प्रस्तुत की है।

4. व्यंग्यात्मक विचार शिल्प–

नागरजी निर्भीक व्यंग्यकार है। उन्होंने समाज की अनेकानेक दशाओं और स्थितियों पर ऐसा तीखा व्यंग्य किया है कि जिससे उनकी स्वतंत्र चेतना स्पष्ट हो जाती है। उनके सर्वाधिक व्यंग्य सेक्स संबंध या फिर प्रजातंत्र और तत्संबंधी व्यवस्था और व्यक्ति विशेष पर किये गए है। भारतीय मताधिकार की व्यर्थता पर व्यंग्य–प्रहार करते हुए वे लिखते है– ''वोट डालने के अतिरिक्त राजनीति और कोई अर्थ नहीं रखती। और ओट मेल–मुलाहिजे में की जाने वाली कार्यवाही मात्र थी। वोट देने का अधिकार स्त्री के लिए वर्तमान सामाजिक परिथिति में नपुंसक की पत्नी के समान था।''[57]

'नपुंसक की पत्नी' कहकर लेखक ने अपने मन की खीझ और घृणा एक साथ उडेल दी है। हमारे देश का दुर्भाग्य रहा है कि हमने ईमानदार लोगों की अवहेलना की। कुछेक ईमानदार आदमी जनता का सुख–वैभव पूर्ण जीवन यापनार्थ योजनाएँ बनाते हैं किन्तु उनके अधीनस्थ कर्मचारी आलस्य और अकर्मण्यता के कारण उन योजनाओं को सफली भूत नहीं होने देते। नागरजी ने ऐसा ही एक चित्र 'अमृत और विष' में संजोया है– ''डॉक्टर सिद्धान्त निश्चित करते हैं। उनके आधार पर योजनाएं बनाते हैं। उन योजनाओं को फैलाने वाले मनमाने ढंग से चलाते है। डॉक्टर झुझलाते है। मुट्ठियाँ बाँधते है। शब्दों की आग बरसाते हैं। आत्माराम सैद्धान्तिक, तात्विक, अन्तर्राष्ट्रीय, मानवीय महत्व की गुत्थी सुलझाने में रम जाते है। इसी बीच में उनकी पुरानी प्रेरणाएँ लावारिस औलाद की तरह होकर जिस–तिस रास रंग में बहकने–भटकने लगती हैं। अमृत–विष बन जाता है। डॉक्टर अपनी उत्तमोत्तम प्रेरणाओं की ऐसी मौतें देखकर वीतराग हो चले है।''[58]

नागरजी के व्यंग्य केवल सैद्धान्तिक पक्ष पर ही नहीं, अपितु जो व्यक्ति उन सिद्धान्तों की आड़ में अपना स्वार्थ सिद्ध करता रहता है, उन व्यक्ति विशेष पर भी वे कटु व्यंग्य–प्रहार करते

नहीं झिझकते। चाहे वह व्यक्ति कितना ही बड़ा और जनता की दृष्टि में कितना ही उच्च क्यों न हो। इस दृष्टि से वे स्वतंत्र चेता कलाकार है। एक स्थान पर नेहरू जी को 'डेमोक्रेसी का कबूतर बाज पैगम्बर' कहा है।''[59] नेहरू के व्यक्तित्व की एक वाक्य में शब्द–चिकित्सा कर दी जो अनेक पृष्ठों में भी संभव नहीं थी।

एक स्थान पर अपने कथित प्रिय नेताओं और चुनाव पर भी व्यंग्य करते है– ''समाज वाद की कलई से चमचमाते उनका जनघाती उद्देश्य जीत गया।.....रुपयों के आगे लोगों की चिन्तन शक्ति को भ्रमित और कुण्ठा केन्द्रित कर देना, उन्हे नपुंसक, बौद्धिक और सैद्धान्तिक बकवास के लिए प्रेरित कर उनकी बची–खुची स्नायविक शक्तियों को थकाना और तोड़ना क्या अच्छी बात है ?.....काँग्रेस सोसलिज्म ला रही है और जिस जनता को हमारे महान महानतम नेताओं ने बड़े कामों से फुर्सत न मिलने की वजह से मेरे और राधे रमन जैसों के हाथों, हाजी नवीबख्श ने अपनी पत्नी मुमताज बेगम को सौंपा था और जिसने उसे घुला–घुलाकर मार डाला था।.....हाजी अपनी मुमताज के हत्यारे हैं। हमारे नेता अपनी जनता के हत्यारे हैं।''[60]

उनके सर्वाधिक व्यंग्य नेहरू, उनकी पद्धति और प्रजातन्त्र पर है। अतः उसकी रक्षा अत्यधिक प्रिय व्यक्ति या व्यक्ति समूह का विरोध करके भी करनी चाहिए, यही कलाकार की जागरुकता है। नेहरू जी पर व्यंग्य करते समय यह बात उनके मन मस्तिष्क में अवश्य रही होगी। एक स्थान पर उपन्यासकार नेहरू जी पर और भी कठोर व्यंग्य करता है– ''दिमाग से उदार–समाजवादी, दिल से संकीर्ण व्यक्तिवादी।''[61] इसी प्रकार ''नेहरू मार्का समाजवाद को धोखा मानता है।''[62]

एक शताब्दी पश्चात् जब भारतीय जनता का राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास लिखा जाएगा, उस समय इन व्यंग्यों के आधार पर जनता और अपने नेताओं की विफलता का सटीक चित्र प्रस्तुत किया जा सकेगा। भावी संततियाँ आज की परिस्थिति और काँग्रेस के कुशासन का अनुमान बड़ी सरलता से लगा सकेगें। नागर जी ने अपने लघुउपन्यास 'पाँचवा दस्ता' में एक स्थान पर भारतीय प्रजातंत्र जिन हाँथों में है, उन जन नेताओं पर ऐसा व्यंग्य किया है कि अगर वे नेता इन व्यंग्य को पढ़ ले, तो तिलमिला उठेंगे।

''फिर सम्मान किसका रहा ? राष्ट्रों का, जनता का ? जो किताबी तर्कों की दकिया नूसी आदत में बँधें हुए जनता की महानता को अपने केविनेट हालों और पार्लमेंट भवनों की विशालता के एक चार दीवारी के अन्दर बन्द हो जाती है। एक कमरे में सिमट आती है। मर्जी की गुनहगार हो जाती है और यह तब तक होता रहेगाा जब तक समाज पर पैसा की हुकूमत किसी रूप में रहेगी।''

''इसमें भारतीय जनता की बेबसी और राजनैतिक पिछड़ेपन की अभिव्यक्ति है। वोट लेने के पश्चात् हमारे नेता गण जनता के दैन्य, दुख–दारिद्य और कष्टों को भूल जाते है। वे संसद

भवन में बैठकर शुद्ध मानसिक व्यायाम करते है, जनता से अपना संपर्क काट देते है। जनता–समूह की वाणी पंगु और कान वधिर हो जाते हैं।''[63]

निष्कर्ष

नागरजी ने अपनी गहनानुभूति और नवनवोन्मोंष शालिनी प्रतिभा के आधार पर जीवन को एक रूपक में आबद्ध करके 'बूँद और समुद्र' प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज ही वह समुद्र है, नानाव्यक्तियों और वर्गो के सम्मिलित विश्वासों, मान्यताओं तथा विसंगतियों रूपी बूँदों का विराट स्वरूप है। जीवन–सागर में डुबकी लेने वाले कथाकर महिपाल, कर्नल, सज्जन, वनकन्या तथा ताई आदि जैसी महत्वपूर्ण बूँद–रत्न जुटाए है। 'बूँद और समुद्र' प्रतीक है व्यष्टि और समष्टि के। बूँद से ही समुद्र का अस्तित्व है और बिना समुद्र अर्थात् समाज के व्यक्ति रूपी बूँद का महत्व ही नहीं। व्यष्टि का चिन्तन मनन समाज के परिप्रेक्ष्य में ही उपयोगी हो सकता है।

सामाजिक जीवन के लिए मानव मन को आस्थावान बनाना आवश्यक है। यदि व्यक्ति के जीवन में आस्था और विश्वास दृढ़ नहीं होते तो ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण समाज की बहुमंजिली इमारत धराशयी हो सकती है। विचारों में भेद हो सकता है, विचारों के भेद से स्वस्थ द्वन्द्व होता है और इसी आधार पर समाज का उत्तरोतर एवं समन्वयात्मक विकास होता है। सांसारिक जीवन में मनुष्य को विजय श्री उसके आत्म विश्वास और दृढ़ निश्चय में निहित होती है। संदेहास्पद और आत्म स्खलित व्यक्ति जीवन में उन्नति के सोपान चढ़ने में असमर्थ रहता है, अपने आलम्बन के प्रति पूर्ण आस्था हो जिससे उसका कर्म क्षेत्र आनन्दमय बन सके, क्योंकि ''आस्थाहीन मनुष्य का जीवन उसका असह बोझ बन जाता है।''[64]

जीवन में तपस्या और साधना परमावश्यक है। जिजीविषा सभी प्राणियों का सहज धर्म है। जीवन में संस्कारों का भी अत्यन्त महत्व है क्योंकि, ''संस्कारों का महत्व है मेरे दोस्त! वह गुण भी प्रकृति में निहित है, इसी से उसका विकास होता है। हीरा जिस हालत में खान से निकलता है, वह कुदरती नहीं।''[65]

मानव जीवन में संस्कारों के महत्व का प्रतिपादन सोमाहुति, भारत तथा नारद आदि चरित्रों के माध्यम से किया गया है। 'शतरंज के मोहरे' का नायक नसीरूद्दीन अपने संस्कार विहीन जीवन के कारण भ्रष्ट राजनीति पंक में फँस कर आत्महत्या करता है।

मानव समाज के समन्वयात्मक विकास के लिये सामाजिक प्राणियों में परस्पर सेवा का भाव होना परमावश्यक है। 'बूँद और समुद्र' में बाबाराम जी सेवा के ज्वलन्त प्रतीक के रूप में पागलों की सेवाकर समग्र मानवता के लिए श्रेय बने हैं। ''इनकी (पागलों की) सेवा ही मेरा जोग है।''[66]

उपन्यासकार का मत है कि योग के समान ही निष्काम सेवा भी अत्यन्त कठिन है। सेवा मनुष्य जीवन का सर्वाधिक कष्ट साध्य व्रत है। सेवा के लिए प्राणि मात्र के प्रति ममत्व एवं एकात्मकता परमावश्यक है। ''ममत्व बड़ी चीज है बेटी! ममत्व भरी दृष्टि का न्याय और ही होता

है। ममता उसी प्रकार से तुम्हारी न्याय वृत्ति का सन्तुलन में रहने के लिए मजबूर करती है, जैसे उस पागल को लोहे का वजन सन्तुलित करता है।''[67]

'सुहाग के नूपुर' में कन्नगी आजीवन अपने पति और संबंधियों की सेवाकर जीवन यापन करती है। 'अमृत और विष' का नायक रमेश सेवा को ही अपने जीवन का ध्येय बनाता है। 'एकदा नैमिषारण्ये' के 'सोमाहुति' और 'नारद' समग्र राष्ट्र के एकीकरण के लिए राष्ट्र के प्रबुद्ध नागरिकों को प्रेरित करते हुए समाज पथ पर चलने के लिए जाग्रत करते हैं। इसी प्रकार भव बन्धनों और माया मोह से दूर रहने वाले सन्यासी 'तुलसी दास' भी महामारी के समय जन–जन की सेवा का शंखनाद करते हैं और स्वयं विश्वनाथ की नगरी के मानवों की सेवा में रत रहकर स्वयं रुग्ण हो जाते हैं।

सामाजिक सेवा के लिए निर्पेक्ष सत्य नहीं सापेक्ष सत्य की आवश्यकता होती है, क्योंकि ''झूठ जब लक्ष्य नहीं नीति मात्र हो, जब उसका संबंध एक व्यापक सत्य से हो, तब हम उसे अपनायेंगे। जहाँ तनिक सा झूठ बोलकर परोपकार करना संभव हो, वहाँ पर सत्य संगत है। पुण्य है। व्यास महाराज का यह उपदेश 'परोपकार पुण्य है और परपीड़न पाप है' हमें उचित जान पड़ता है।''[68]

नागरजी मूलतः समन्वयवादी उपन्यासकार हैं। अतः वे शकों और आर्यों के एकीकरण और शैव आदि सम्प्रदायों को अविरोधी बताकर समस्त राष्ट्र की सुप्त चेतना को जाग्रत करना चाहते है। विभिन्न पूजा पद्धतियों को वे राष्ट्रीय मानते हैं। इसीलिए सोमाहुति का कथन है– ''किसी भी धर्म के अनुयायी बनकर अपने प्रभु को प्रणाम करो। वह 'सर्व देव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति' के समर्थक हैं। भार्गव कबीर राम की महिमा सुनाते, कभी विष्णु, शिव, सूर्य, ऋषभ, भारत, महावीर, बुद्ध का गुण गान करने लगते है और सब ओर श्रद्धा की बन्दन वारें बाँधकर फिर केशव, वासुदेव का गुणगान करने लगते है। [69]

उपन्यासकार इस देश में जन्में महापुरुषों को एक ही राष्ट्र जीवन की मालिका मानता है। ''उनके वैचारिक आन्दोलन की पृष्ठ भूमि भी एक ही थी कि किसी न किसी प्रकार इस नैमिष को सशक्त और दृढ़ किया जाय।''[70]

संगठन राष्ट्र जीवन के लिए आवश्यक है क्योंकि ''असंगठित, अव्यवस्थित समाज सदा दुर्बल रहता है। भले ही उसके व्यक्तितों में भीम, कर्ण और अर्जुन जैसे महा योद्ध क्यों न हो। कलिकाल में संघ ही शक्ति है।''[71] जाति व्यवहार पर इसीलिए प्रहार करते हुए वे कहते है। ''यदि जाति ब्राह्मण हुआ करती राजन् ! तो अप्सरा पुत्र वशिष्ट कभी ब्राह्मण न माने जाते। दासीपुत्र 'कवष' और 'एलूष' को क्या हम पूज्य भाव देते। भगवान 'वेद व्यास' मल्लाहिन के गर्भ से जन्में थे और 'पराशर' चाण्डालिन के पुत्र थे। जाति इनमें से एक को भी ब्राह्मणत्व प्राप्ति में बाधा न बन सकीं।''[72]

हिन्दू राष्ट्र जिसे नागरजी ने नैमिष राष्ट्र कहा है, उनकी भव्य और स्पृहणीय कल्पना है। वे कहते हैं– आमतौर पर जिसे हिन्दू राष्ट्रवाद कहते हैं, उसे मैं नैमिष राष्ट्रवाद कहता हूँ। इस निष्ठा मूलक राष्ट्र कर्मियों के संगठन में बिखरी हुयी बहु राष्ट्रीयता को एक संगठित राष्ट्र में परिवर्तित कर दिखलाया था। इतिहास के पूर्व मध्यकाल में, इसी नैमिष राष्ट्रवाद ने, जहाँ 'समुद्र गुप्त' जैसी अमोघ प्रतिभा प्रदान की, वही उत्तर मध्यकाल में हमें 'शिवा' जी और 'गुरु गोविन्द' दिये। इस हिन्दू राष्ट्र अथवा नैमिष राष्ट्र वाद को हमें एक ही कलम से रिजेक्ट न कर देना चाहिए। यह राष्ट्रवाद शुद्ध सैद्धान्तिक चेतना पर उदय होता है। इसे नये मानवीय अर्थों में देखना ही होगा।''[73]

मुसलमानों के आगमन को वे एक आक्रमण मानते हैं। इसी कारण बहुल समाज में उनके प्रति प्रेम के स्थान पर घृणा उत्पन्न हुई। यह भी सत्य है कि अधिकांश मुसलमान यहीं जन्में हिन्दुओं की सन्तानें हैं परन्तु फिर भी हिन्दू समाज उन्हें अपना बनाकर रखने में असमर्थ रहा है। अतः उनके हृदय में इस देश के प्रति भक्ति और निष्ठा जाग्रत कर यहाँ की संस्कृति और इतिहास के प्रति आस्था रखने के लिए कहा जाय। ''यहाँ एक साथ रहते हुए हिन्दू–मुसलमानों ने एक–दूसरे से बहुत कुछ लिया और दिया भी है।''[74]

''नागरजी की दृष्टि आग्रह मुक्त और आस्था युक्त है।''[75] यह कथन नितान्त सत्य है ऐसा ही मत डॉ0 दामोदर वाशिष्ट ने भी प्रकट किया है– ''उपन्यासकार किसी वाद से बँध कर विचार नहीं करता किन्तु उसका विश्वास अनुभव जन्म सत्य पर आधारित रहता है। वे समाज में नवीन प्रयोंग देखते और समझते है। उन प्रयोंगों में से जो उचित एवं सत्य दिखाई दिये उन्हें अपने कथा सूत्र में अनुस्यूत करके तद्जनित सत्य का उद्घाटन करते है। इनकी इस आग्रह मुक्त सरिता के निर्मल जल स्रोत के दर्शन होते है जो मानव जीवन के लिए उपादेय है।''[76]

नागरजी का विचार है कि आज के समाज में निष्ठा और भक्ति से कार्य करने की प्रवृत्ति विलुप्त हुई है। इसीलिए कर्म की सफलता संदिग्ध हुयी है। वे कर्म के बन्धन को ही मानव की मुक्ति का कारण मानते है– ''जड़–चेतनमय, विष–अमृतमय, अंधकार–प्रकाशमय और जीवन में न्याय के लिए कर्म करना ही मुक्ति है। मुझे जीना ही होगा, कर्म करना ही होगा– यह बन्धन ही मेरी मुक्ति है।''[77]

नागरजी की समग्र दृष्टि समाज हित पर केन्द्रित है। उनका सम्पूर्ण चिन्तन मानव कल्याण कारी और भावी जीवन के प्रति एक अत्यन्त विशिष्ट मार्ग प्रस्तुत करता है। उनके विचारों का जितना ही मन्थन और आलोड़न होगा उतना ही वह स्पष्ट और आभायुक्त बनेगा।

इस प्रकार नागरजी ने अपने उपन्यासों में मानव–जीवन के हर क्षेत्र के कोने–कोने में पहुँचकर अपने विचारों को पात्रों द्वारा अत्यन्त ही सहज, सफल और शिल्प के रूप में प्रस्तुत किया है।

संकेत सन्दर्भ–

1.	बूँद और समुद।	पृष्ठ–603
2.	,, ,,	पृष्ठ–581
3.	खंजन नयन।	पृष्ठ–26
4.	,, ,,	पृष्ठ–30
5.	,, ,,	पृष्ठ–209
6.	,, ,,	पृष्ठ–17
7.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–47
8.	,, ,,	पृष्ठ–231
9.	,, ,,	पृष्ठ–245
10.	,, ,,	पृष्ठ–246
11.	,, ,,	पृष्ठ–264
12.	,, ,,	पृष्ठ–265
13.	,, ,,	पृष्ठ–265
14.	,, ,,	पृष्ठ–266
15.	,, ,,	पृष्ठ–457
16.	,, ,,	पृष्ठ–457
17.	अमृत और विष।	पृष्ठ–233
18.	खंजन नयन।	पृष्ठ–173
19.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–245
20.	एकदा नैमिषरण्ये।	पृष्ठ–283–284–285
21.	अमृत और विष।	पृष्ठ–113–114
22.	,, ,,	पृष्ठ–114
23.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–130–131
24.	अमृत और विष।	पृष्ठ–157
25.	,, ,,	पृष्ठ–402
26.	,, ,,	पृष्ठ–403
27.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–17
28.	,, ,,	पृष्ठ–33
29.	,, ,,	पृष्ठ–33–34
30.	,, ,,	पृष्ठ–45

31.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–54
32.	,, ,,	पृष्ठ–55
33.	,, ,,	पृष्ठ–61
34.	,, ,,	पृष्ठ–61
35.	,, ,,	पृष्ठ–91–92–93
36.	,, ,,	पृष्ठ–105
37.	,, ,,	पृष्ठ–110
38.	,, ,,	पृष्ठ–111
39.	,, ,,	पृष्ठ–132
40.	,, ,,	पृष्ठ–133
41.	,, ,,	पृष्ठ–233
42.	,, ,,	पृष्ठ–355
43.	,, ,,	पृष्ठ–423
44.	,, ,,	पृष्ठ–205
45.	,, ,,	पृष्ठ–207
46.	,, ,,	पृष्ठ–321
47.	,, ,,	पृष्ठ–549
48.	,, ,,	पृष्ठ–550–551
49.	,, ,,	पृष्ठ–550–551
50.	,, ,,	पृष्ठ–551
51.	,, ,,	पृष्ठ–551–552
52.	,, ,,	पृष्ठ–388
53.	,, ,,	पृष्ठ–583
54.	,, ,,	पृष्ठ–249
55.	,, ,,	पृष्ठ–249
56	,, ,,	पृष्ठ–249–2450
57.	,, ,,	पृष्ठ–428
58.	अमृत और विष।	पृष्ठ–621
59.	,, ,,	पृष्ठ–590
60.	,, ,,	पृष्ठ–535
61.	,, ,,	पृष्ठ–590

62. अमृत और विष। पृष्ठ–590

63. उपन्यासकारः अमृतलाल नागर, डॉ0दामोदर वाशिष्ट। पृष्ठ–173–174

64. मानस का हंस। पृष्ठ–430

65. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–444

66. ,, ,, पृष्ठ–429

67. ,, ,, पृष्ठ–432

68. ,, ,, पृष्ठ–526

69. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–325

70. राष्ट्र धर्म–जून–1974। पृष्ठ–135

71. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–329

72. ,, ,, पृष्ठ–354

73. राष्ट्र धर्म–जून 1974। पृष्ठ–135

74. अमृत और विष। पृष्ठ–603

75. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ–डॉ0 शशिभूषण सिंघल। पृष्ठ–104

76. उपन्यासकारः अमृतलाल नागर–डॉ0 दामोदर वाशिष्ठ। पृष्ठ–147

77. अमृत और विष। पृष्ठ–648

अध्याय–दश

अमृतलाल नागर के उपन्यासों का
भाषा– शिल्पगत अनुशीलन।

निष्कर्ष।

नागरजी के उपन्यासों का भाषा–शिल्पगत अनुशीलन

यद्यपि उपन्यास के शिल्प–विधि के संबंध में विद्वानों द्वारा पर्याप्त विचार और चिन्तन किया गया है। तथापि उपन्यास की भाषा के बारे में समालोचकों ने अधिक विचार नहीं किया। नागरजी के उपन्यासों में भाषा गत शिल्प पर अनुशीलन करने के पूर्व भाषा शैली की परिभाषाओं पर विचार कर लेना आवश्यक है।

डॉ0 श्याम सुन्दर दास के अनुसार– "भाषा ऐसे शब्द समूहों का नाम है जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होती है। अतेव भाषा का मूलाधार शब्द है, जिन्हें उपयुक्त रीति से प्रयुक्त करने के कौशल को ही शैली का मूल तत्व समझना चाहिए। अर्थात् किसी कवि या लेखक की शब्द योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और इसकी ध्वनि आदि का नाम ही शैली है।"[1]

भाषा का प्रयोग शब्दों और वाक्यों की योजना में साकार होता है। भाषा भावानुकूल रूप बदलती चलती है। उसके बाह्याकार में परिवर्तन दृष्टि गोचर होता है। यह परिवर्तन शैली का रूप भी परिवर्तित करता है। "वस्तुतः शैली और भाषा पृथक–पृथक तत्व न होकर एक ही तत्व है, अभिन्न और अविभाज्य। भाषा, शैली का रूप निर्धारित करती है, शैली लेखक की भावाभिव्यक्ति की विशेष पद्धति है।"[2] "इसमें लेखक का व्यक्तित्व अन्तर्निहित रहता है।"[3] "शैली लेखक के मस्तिष्क की सौन्दर्य पूर्ण अभिव्यक्ति है।"[4] "शैली लेखक के व्यक्तित्व का एक अविभाज्य और घनिष्ठ अंग है। शैली उसका निजत्व है जो उसकी प्रकृति का एक अंग है। वस्तुतः शैली ही एक ऐसा साधन है जिससे हम किसी लेखक विशेष को पहचान लेते हैं।"[5]

जब हम किसी लेखक या कवि की भाषा पर विचार करते हैं तो उस समय शब्द योजना आदि का ही विचार नहीं, अपितु उन शब्दों के माध्यम से भाव सौन्दर्य का आकलन करना भी आवश्यक होता है। इसके साथ ही विभिन्न मनो–भावों के प्रकटीकरण की तीव्रता से ही भाषा का गहरा संबंध है। किसी भी उपन्यासकार की भाषा के संबंध में भाषा संबंधी सभी सिद्धान्तों का विचार करना परमावश्यक है।

रस परिपाक– जिस प्रकार महाकाव्य में एक प्रमुख रस की सृष्टि की जाती है उसी प्रकार उपन्यास में भी यह अभीष्ट होता है। नागरजी के 'एकदा नैमिषारण्ये' में वीर रस एवं 'मानस का हंस' में शान्त रस का परिपाक हुआ है। 'अमृत और विष' में पूर्ण रूप से करुण तो नहीं किन्तु करुण जैसा आभास अवश्य होता है, क्योंकि, 'लच्छू' को जीवन में घोर नैराश्य ही मिलता है। 'एकदा नैमिषारण्ये' में 'भारत' और 'प्रज्ञा' के मिलन में श्रृंगार की अद्भुत छटा दिखाई

देती है, "प्रज्ञा के चेहरे पर सुहाग चढ़आया। कुछ लजाकर उसकी बाँह से लता की तरह लिपटी, फिर रीझे पति को रीझ कर देखा और फिर उसी दृष्टि में मान चमक उठा।"[6] यहाँ श्रृंगार के सभी अवयव मिलकर रस की पूर्णता करते हैं। शब्द योजना रसानुकूल ही है।

क्रोध में मनुष्य की शब्दावली अधूरी ही उच्चारित होती है। देखिए– "पुत्ती गुरु ने किच–किचाकर दूसरी बार हाँथ उठाया ही था कि रमेश ने उनका हाँथ पकड़कर कहा– गाली मत दो बाबू– मैं कहता हूँ गाली मत दो। हमारी बारह दरी कोई नहीं ले सकेगा। हम मन्दिर नहीं बनने देंगे। .....हात्थ छोड़– हॉथ छोड़ ससरे तुम्हारी मजाल क्या है जो मन्दिर न बनें।"[7]

इस प्रसंग में क्रोध का सजीव चित्रण हुआ है– 'किच–किचाकर' आदि से क्रोध की चरमावस्था और अनुभावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ नागरजी ने मानव मनोभावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए तद्नुरूप सजीव भाषा का चित्रण किया है। इसी प्रकार हिमालय का चित्रण देखिए– "शिखरों वाले क्षेत्र से लेकर धुर नीचे तक चमचमाती सिंदूरी, सुनहरी, हल्की पीली, आसमानी नीली और उसके बीच–बीच में कहीं–कहीं निखरती चन्दन सी सफेदी, हरी–नीली और काली परछाइयाँ, देखने वालों को अपने मन की सतह से हिमालय के दर्पण में मानों जटिल, गहन, आत्म सौन्दर्य का सरल, सुगम बोध करा रही हैं।"[8]

इसी प्रकार स्थान वर्णन देखिए–

"कुप्पी–दिये, लम्प, लालटेन और बिजली के सम्मिलित प्रकाश में टिमटिमाती हुई सैकड़ों सदियों के इतिहास की जीती–जागती रिसर्च सामग्री सी फैली हुई गलियाँ में गुजरते हुए राजा बहादुर के मन में परिचय–अपरिचय के मिश्र भाव आ जा रहे थे।"[9]

भाषा और शब्द शक्ति– लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का नागर जी के उपन्यासों में अत्यधिक प्रयोग मिलता है। इनका प्रयोग अर्थ के नये आयामों को खोल देता है। 'अमृत और विष में मिसेज माथुर नित्य नवीन पुरुष की खोज में रहती हैं। एक शाम वे लच्छू को खोजते–खोजते बहुत दूर जंगल में चली जाती है। वहाँ लच्छू के मिलने पर स्नेहालिंगन होता है। "इधर जंगल धीरे–धीरे अँधेरे में समाता चला गया और फिर लच्छू मर्द बन गया।"[10] 'लच्छू मर्द बन गया' इस वाक्य से एक विशेष ध्वनि निकलती है। एक अन्य स्थान पर लच्छू के विषय में ही नागरजी किस तरह व्यंजना करते है देखिए– "मिसेज माथुर ने मिसेज अशरफ और मिसेज राम नायकम् के साथ पूरा दोस्ताना बरत कर लच्छू को मिल बाँट कर अचार की तरह चाँटा था।"[11]

रमेश और रानी के प्रेमालाप में लेखक रमेश के हृदय भावों की बहुत ही सटीक व्यंजना करता है– "अति व्यस्त रहते हुए भी उसका ध्यान योगी की तरह रानी में अपना कैवल्य सिद्ध करता ही रहा।"[12]

"जुआना **उदासी ओढ़कर** लेट गई।"[13] "मुन्ना अब मेरा **शेर** है, मैं बेचारी **गाय** हो गई।"[14] आदि शब्दों की ध्वन्यात्मकता में व्यंजना अन्तर्भूत हो उठी है।

यह कहना अनुचित न होगा कि यदि नागरजी के सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में ध्वन्यात्मक अर्थ देने वाले उपमाओं, वाक्यांशों, मुहावरों और शब्दों का गहराई से अध्ययन किया जाय तो निश्चय ही उनकी भाषा से सेवाओं का उचित मूल्यांकन किया जा सकेगा।

भाषा और चित्रोपमता– भाषा की विशेषता इस बात में है कि उसके द्वारा जो चित्र उपस्थित किये जायें वे इतने सटीक और जीवन्त हों जिससे वे पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ सकें। यह बिम्ब विधायक तत्व भाषा में होना अत्यन्त आवश्यक है। नागर जी में कल्पना के माध्यम से चित्रावली सृजन करने की सर्वाधिक क्षमता है। "नागर जी अपनी जीवन्त भाषा के माध्यम से गत्यात्मक और सौन्दर्यावगुण्ठित चित्र पर चित्र उपस्थित कर पाठक के सम्मुख एक दृश्य पट उपस्थित कर उसे पुलकित कर देते हैं।"

एक समारोह में अनेक व्यक्ति उपस्थित है। कुछ व्यापारी भी आये हुए हैं। चित्र देखिए– "एक लालाजी सामने कुछ दूर पर खड़ी नारियों की तनिक परवाह किये बिना अपनी पूरी जांघ खोलकर जोर–जोर से उसे खुजलाते हुए एक दूसरे लालाजी को बतला रहे थे कि उन्होंने तेल में मिलाने के लिए भटकटैया के फूल कहाँ से और कितने हजार बोरे मँगाए हैं।"[15]

'मानस का हंस' में उपन्यासकार 'तुलसी' का रेखाचित्र उतारता हुआ लिखता है– "आजानुबाह, चमकते सोने सी पीत देह, लम्बी सुतवानाक, भरी ठोढ़ी, पतले होंठ, सिर और चेहरे के बाल घुटे हुए, माथे, बाहों और छाती पर वैष्णव तिलक था। कायाकृश होने पर भी व्यायाम से तनी हुई भव्य लगती थी। लगता था मानव मनुष्यों के समाज में कोई देव जाति का पुरुष आ गया है। बाये हाँथ में कमण्डलु, दाहिने हाँथ में लाठी, गले में जनेऊ और तुलसी की मालाएँ पड़ी थीं वे जवानों की तरह तन कर चल रहे थे।"[16]

यहाँ वैष्णव सन्यासी और तुलसी की शारीरिक और आन्तरिक विभूति का पूर्ण चित्र पाठकों के सामने उपस्थित हो जाता है। इसी प्रकार रत्नावली का एक चित्र– "तुलसी बाबा के स्मृति पटल पर रत्नावली नई व्याहुली, अपना घूँघट करना चाहती है उसका दिव्य सौन्दर्य तुलसी की दृष्टि को स्तम्भित कर देता है। वे अपना घूँघट करना चाहती हैं, किन्तु रामबोला उनका हाँथ दबोचकर घूँघट के झीने पट में उस अनिन्द्य सौन्दर्य को नहीं रखना चाहते। रत्ना हाँथों में फँसी चिड़िया की तरह आँखें मीचे, निश्चल, स्पन्द मुद्रा धारण किये बैठी थी। सजीवता उसकी लज्जा में थी वर्ना यूँ लगता था कि किसी कुशल मूर्तिकार ने लाजवन्ती की मूर्ति गढ़कर बैठा दी हो। मुग्ध आँखों से एक टक देखते हुए तुलसीदास अपना आपा विसार बैठे थे। सामने की सौन्दर्य राशि फूलों से लदी बगिया की तरह मोहक थी।"[17]

नई व्याहुली और उससे अल्हड़ पति की छेड़–छाड़ के सम्पूर्ण सौन्दर्य भरे चित्र को देखकर ऐसा कौन होगा जो रस मग्न न हो जाय।

'बूँद और समुद्र' में नागरजी द्वारा अंकित कुछ चित्र देखिए–

"गेहूँए रंग के ऊँचे कपाल पर बड़ी बिन्दी से दमकता हुआ कल्याणी का श्री युक्त मुख आँखों के सामने आ गया।"[18] "चौराहों के चारों ओर बसें, मोटरें, ताँगे–इक्के, रिक्शे, साइकिलें और पैदल भीड़ अनवरत क्रम में बँधी हुई, इस तरह गतिमान है, जैसे किसी दिवालिए सेठ की मील चल रही है।"[19] "तीनों में छोटी का फैशन अप्टूडेट था– "काली धारीदार सुरैया का कुर्त्ता, सफेद साटन की सलवार, सफेद सिलून का दुपट्टा, बाँयें हाँथ में कीमती घड़ी, दाहिनी में ऊँचे दामों वाला प्लास्टिक का कड़ा, गले में सच्चे मोतियों के कण्ठी, कानों में मोतियों के टाप्स।"[20] "कटी–फटी पतंगों, मकड़ी के जालों, घोसलों, चिड़ियों, गिलहारियों और पीपली के दानों से लदा अनगिनत इन्सानों के चँचल मन समूह सा हरहराता हुआ घना पीपल, कई सदियों से मुहल्ले का साथी है।"[21]

खंजन नयन' में सूर के रूप–स्वरूप की चित्रोपमता दर्शनीय है– "लम्बा, दुर्बल, गोरा, नाक लम्बी और सुतवां, उभरी हुई हठीली ठोढ़ी, उन्नत कपाल, लहराती हुई घुँघराली लटें जटाओं सी झूल रही हैं। हल्की–हल्की दाढ़ी–मूछें भी है, कान बड़े है। कितना सुन्दर होता यदि यह आदमी देख भी पाता। बड़ी–बड़ी आँखें है मगर, बेजान।"[22]

'शतरंज के मोहरे' की 'सुलखिया' बादशाह की ही टकटकी का केन्द्र नहीं, पाठक भी इस तस्वीर को देखते ही रह जाते हैः– "बादशाह भर नजर टकटकी साधे कुछ देर सुलखिया को देखते ही रह गये– ठमका कद, गेहुँआ रंग, बड़ी–बड़ी हिरन के बच्चे सी भोली दर्द से भीनी आँखें उसकी सादगी, बादशाह को अपनी ओर ताकते देखकर नजर झुकाए, हाथ बाँधे तस्वीर सी खड़ी थी।"[23]

बीबी गुलाटी की अन्तर्वाह्यय सौदर्यांकन की चित्रोपमता दृष्टव्य हैः–

"मोटे कपड़े का चूड़ीदार पायजामा, कुरता पहने और सफेद मोटी ओढ़नी ओढ़े, सन–से सफेद बालोंवाली, सात्विक तेज से दीप्त वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध देवी सहज भाव से बादशाह बेगम के पास बैठ गयी।"[24]

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' के कुछ चित्र देखिएः–

"जनरल वाल्टर रेनहार्ड साहब क्रोध में बार–बार दांत पीसते हुए कमरे में बेचैनी से चहलकदमी कर रहे थे। बीच–बीच में आंखें यों चमक उठती थीं जैसे बरसाती आकाश में बिजली चमकती है। मेहराव के खम्भे की पीछे परदे की आड़ में खड़ी मुश्तरी खामोंशी से झांककर अपने स्वामी को सधी दृष्टि से ताक रही थी। जनरल की बावली चहलकदमी काफी देर तक होती रही, मानों पिंजरें में अचानक बन्द हो जाने वाले शेर को अपनी नई स्थिति भयंकर रूप से तड़पा रही हो।"[25]

बेगम 'जुआना' की इस तस्वीर पर कौन न फिदा हो जाएगाः– "खुले वालों गाउन में लिपटी हुई 'जुआना' मुस्कराती हुई कमरे में दाखिल हुई।"[26]

भाषा की सरलता– "उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी भाषा को प्रयोग करे जो कि सर्व साधारण में समझी जाती हो। प्रचलित भाषा का यह भी अर्थ नहीं है कि अशुद्ध भाषा हो। भाषा की सर्वमान्यता और निर्दोषिता उपन्यास को सफलता प्रदान करती है।"[27]

नागरजी के उपन्यासों में 'एकदा नैमिषारण्ये' के उन पृष्ठों को छोड़कर जहाँ उपन्यासकार भाषा विज्ञान के सिद्धान्त या फिर पौराणिक सिद्धान्तों को लेकर चलता है, उनकी भाषा सर्वत्र ही सरल और बोध गम्य है। अत्यधिक चिन्तन और दार्शनिक विचारों को भी वह बड़ी ही सरलता और ऐसी ही शब्दावली के माध्यम से प्रकट कर जाते हैं जो कि जन साधारण की चिर परिचित होती है। यद्यपि 'मानस का हँस' एक विशेष परिवेश में लिखे जाने के कारण उसकी भाषा की साहित्यिकता अपनी पराकाष्ठा पर है, फिर भी भाषा के कारण कहीं पर भी दुर्बोधता नहीं दिखलाई देती है। 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष' की भाषा सरल और सरस तथा पात्रानुकूल है। 'शतरंज के मोहरे' में नवाबी शान को प्रकट करने वाली कहीं–कहीं फारसी मिश्रित उर्दू तथा खड़ी बोली तो है किन्तु इससे समझने में किसी प्रकार की अड़चन नहीं अनुभव होती। 'सेठ बाँकेमल' खड़ी बोली मिश्रित बृजभाषा में लिखा गया है और इसमें नागरजी को असामान्य सफलता प्राप्त हुई है। इसकी भाषा सरल, सरस, हास्य व्यंग्य युक्त और मनोभावों को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफल है। बीच–बीच में अशुद्ध अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग जनता के मन की ओर संकेत करता है।

नागरजी के ऐतिहासिक उपन्यासों की भाषा

सम सामायिक समस्याओं और समाज को आधार बनाकर रचित उपन्यासों की अपेक्षा ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाषा सर्वथा भिन्न होती है। नागर जी के तीन उपन्यास 'शतरंज के मोहरे', 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' ऐतिहासिक कहे जा सकते हैं। 'मानस का हंस' और 'एकदा नैमिषारण्ये' में सांस्कृतिक बोध का आधिक्य है। 'एकदा नैमिषारण्ये' को डा0 गोपाल राय ने संस्कृति विवेचन का उपन्यास कहा है।"[28]

पात्रानुकूल भाषा– 'एकदा नैमिषारण्ये' में नारद बृज भाषा का प्रयोग करते हैं। सोमाहुति की भाषा में माधुर्य और सहजता है। विद्वान होते हुए भी सोमाहुति की भाषा में भी कृत्रिमता और अव्यवहारिकता दिखाई नहीं देती। "उनका स्वप्न क्या अपना है। वह वासुदेव कृष्ण का है। जिन्होंने छोटे–छोटे दरिद्री गण तंत्रों और राज्य के फूट के फोड़ों से सड़ते हुए भारत को नीरोग करने के लिए महाभारत रूपी युद्ध से शल्प–चिकित्सा की थी। वह स्वप्न आदि वेद व्यास का है जिन्होंने युद्ध जर्जर बने भारत को स्फूर्णा देने के लिए ज्ञान कर्म और उपासना का सम्मिलित मार्ग देकर कृष्ण की राजनैतिक एकता को आध्यात्मिक स्तर प्रदान किया था। वह स्वप्न वैशम्पायन का है जिन्होंने अपने पूज्य गुरु की जय को भारत जाति की जय कहकर बखाना और यह स्वप्न नारायण धर्मी जाति से महाजाति तक की भावना तक उठने वाले मेरे उन

ऋषि पुरुषों का है जिन्होंने 'महाभारत' का स्वप्न दिया। यह सपना युग का है। इस स्वप्न को साकार करना सत्य का यथार्थ बोध करना है। प्रतिक्षण व्यापक और प्रतिक्षण ही सिमटने वाला जीवन, जब कभी अपने ही कारणों से ही रोगी पड़ता है तो महामाया उसका वैसे ही उपचार करती है जैसे किसी राजा के पालतू सिंह की शल्य–चिकित्सा की जाती है। उपचार करने वालों के लिए एक ओर स्वयं मृत्यु के मुख में जाने का भय रहता है और दूसरी ओर ठीक स्थल पर रोग की जड़ को काटकर घावों पर गुड़ टपकाकर चींटों के टाकों से सीना पड़ता है। जब तक घाव भर न जाय, तब तक शेर की माँद में घुसकर उसका उपचार करना पड़ता है। स्वास्थ्य का संकेत पाकर हिंस्र पशु भी अपने उपचारों के प्रतिविनम्र हो जाता है– मैं अपना सपना तोड़ने वाली इस प्रतिक्षण संकुचित और प्रसारित होते रहने वाले हिंस्र रोगी जीवन–पशु को चुनौती देता हूँ''[29]

उपर्युक्त उद्धरण में उपन्यासकार की चिंतन पूर्ण भाषा, उसका माधुर्य और रूपक के आधार पर स्पष्टीकरण, प्रांजलता तथा तारल्य और अपने पन की झलक गोचर होती है।

नारद एक स्थान पर कहते है– ''वे नगर–नगर, गाँव–गाँव, एक–एक तपोवन में, भारत देश के कोने–कोने में, अतिमिश्रित बहुधर्मी, बहुजातीय समाज को एक महाभाव युक्त देखना चाहते हैं। सनातन संकोच से बँधे जन–हृदय को युगानुकूल उसके व्यापक होने के गुण का बोध यदि एक बार करा दिया जाय, तो फिर वह आप ही आप अपनी स्फूर्ति से संचालित होकर सही दिशा में बढ़ने लगेगा।''[30]

यहाँ नारद जी ने भौतिक विज्ञान के 'लाआफ स्प्रिचुअल' के सिद्धान्त को बहुत ही सरल शब्दों में अपने पाठकों के सम्मुख रख दिया है। उपन्यासकार के भाषा पर असाधारण अधिकार का ज्ञान पाठकों को होता है। प्रथम उदाहरण में– स्वास्थ्य का संकेत पाकर हिंस्र पशु भी अपने उपचारों के प्रति विनम्र हो जाता है, आदि शाश्वत सत्य का भी उद्‌घाटन एक विशिष्ट मनोवृत्ति का परिचय देता है।

'मानस का हंस' भी सांस्कृतिक बोध कराने वाला ही उपन्यास कहा जायेगा। वस्तुतः इस उपन्यास में भाषा का स्तर भी तुलसी के मानसिक धरातल जैसा ही है। पण्डित तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली को संबोधित करते हुए कहते हैं– ''तुम बड़ी नटखट हो। सूत्रधार की भाँति मुझ कठपुतली को अपनी अँगुलियों पर मनमाने ढंग से नचाती हो। तुम्हारा आकर्षण ही मेरा राम मार्ग है। तुम्हें और इस आँखों के तारे को भी सीताराम ने अपने प्रति मेरी अनुरक्ति बढ़ाने के लिए कृपा करके मुझे दिया है। तुम मिलकर ऐसा दर्पण बन जाते हो जिसमें मुझे रामरूप प्रतिच्छवि दिखाई देती है।''[31]

प्रस्तुत उद्धरण में तुलसी ने सांख्य दर्शन के प्रकृति और पुरुष की कल्पना और फिर प्रकृति अपने अपूर्ण सौन्दर्य से लुब्ध हो कर पुरुष को मोहित करने में सफल होती है। आदि विचार तुलसी के व्यतिव के अनुरूप ही व्यक्त हुए हैं। **यहाँ शैली जहाँ समास बहुला है।** वहाँ तुलसी के जीवन की गहन आस्था भी व्यक्त करती है। एक स्थान पर तुलसी बाबा कैलास को

कहते हैं– "कैलास मनुष्य अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही आगे बढ़ता है। फिर हरेक की प्रवृत्ति पर सत्य को अपने जीवन में निभा रहा है या नहीं। यदि निभा रहा है तो उसके सत्य को देखों, उसकी सामर्थ्य को नही। और यदि सामर्थ्य की आलोचना करना ही चाहते हो तो रचनात्मक दृष्टि से देखों।"[32]

यहाँ नागरजी की भाषा शैली अत्यधिक चिन्तन शील और भावगांभीर्य युक्त है। भाषा का परिमार्जन तो सर्वत्र ही है। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नागर जी अपने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक बोध उत्पन्न कराने वाले उपन्यासों की भाषा का एक विशिष्ट स्तर रखतें है जो उपन्यासों के पात्रों की गरिमा उनके सांस्कृतिक धरातल, उसके बौद्धिक तथा भावात्मक सौन्दर्य को विकीर्ण करने में सक्षम होती है।

नागरजी के दो सामाजिक उपन्यास जो अत्यधिक प्रसिद्ध है– 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष'। इन उपन्यासों में लखनऊ नगर के विभिन्न वर्गों की भाषा का प्रयोग किया गया है। जो स्वंय में मोहक एवं आत्मरंजक है। 'अमृत और विष' में एक पात्र 'लाला रूपचन्द्र' है जो लखनऊ के ही रहने वाले है। अतः उनकी भाषा भी लखनवी ही है– "सारी दुनिया जानती हैगी कि खन्ना बाबू नास्तिक हैंगे। इन्हीं के फूँके मन्तरों को ये मानते हैं। बस–लिच्चरबाजी, खेल–कूद, विधर्मियों–अधर्मियों के मतों की पोंथियाँ पढ़ना, यही इनका काम हैगा। कोच्छू नई, ये लायबरेरी वगैरा सब बन्द होनी चाहिए)– ये ससुर मोहल्ला ही बिगाड़ देंगे।"[33] "मैं कहता हूँ कि आप लोग जरा भारती संसकिर्त की दृष्टि से गौर कीजिएगा इस बात पर–।"[34]

लखनऊ की महिलाओं की भाषा देखिए– "चलों रमेश। अब तुम सब जने अपने–अपने घर चलो भइया। बहुत हुई गया भइया। अरे खाये पिये से कौन लड़ाई ? अन्न देउता कहीं छोड़े जात हैं भइया ?"[35]

युवकों के जीवन में पाये जाने वाले फक्कड़पन और अलमस्ती की भाँति ही उनकी भाषा में भी एक विशेष रवानी और जीवन दिखलाई देता है– "वा बेटा लाल बुझक्कड़, तू खूब समझा। "कम्भी हँसकर बोला– रमेश का पेट तो इस आलू के पराठे से भर गया और हम लोगों के लिए कोई और सहारा नहीं।" रमेश ने हँसते हुए जय किशोर की ओर मुक्का तान कर कहा– माँरुगा साले। तुम बड़ी लगाई बुझाई करने लगे हो।"[36]

'बूँद और समुद्र' में ताई जैसी अनपढ़ महिला की भाषा देखिए– "ताई के चलते पाठ–सांताकारं भचक सैनं जोग भी ध्यान गमियं के साथ ऊँह। पूजा में भी चैन नहीं लेने देते नास पीटे।"[37] एक अन्य स्थान पर ताई कहती है– "राड़ बहुत पेट लिए घूमती है ऐसे ही कटकर गिर पड़ेगा।"[38]

अनपढ़ महिला ताई किस प्रकार की गाली भरी भाषा का प्रयोंग करती है– "निगोड़ों के तन–मन में कीड़े पड़े, रोये–रोये में कोढ़ हो, मरो के पूरे घर की अर्थियाँ एक साथ उठे, हैजा हो

पिलेग हो, शीतला खाँय।"[39] लेखक ने सज्जन द्वारा इन्हें ट्रेडीसनल इंडियन स्टाइल की ठेठ गालियाँ कही हैं।

लखनऊ की अनपढ़ महिला की भाषा– "अरे हियाँ आव जल्दी से। गजब हुई गया।"

"हे सतनराइन स्वामी, अरे तुम्हारी कथा बोलत हूँ– हे बजरंगबली, तुम्हारा सवा पाँच रूपया का परसाद–मातेसरी, हमरी रच्छा करो।"

"अरे बहुआ, ई देखौ तौ देखौ तौ तनी–कौनौ तिपूती रॉड हमरे दरवज्जे पर ई पुतले धर गई हैगी। जिसनें हमरे लिए किया होय, ईसुरनाथ, उसी के आगे आवै। छिनट्टी, चोट्टी, निगोड़ीये नन्दों रॉड का काम होगा– वही ताई से कराय के धर गई है।" (श्रीमती लाले कहती हैं)– "ए बहुआ, तनी उन्हें उठाय कै चउराहे पर धरि अवती। हमें गोमती जान की देर हुई रही हैगी।"[40]

श्रीकृष्ण लीला के प्रसंग में लीला के सभी पात्र ब्रज भाषा का ही प्रयोग करते है। अतः नागर जी ने उन पात्रों के अनुकूल ही बृजभाषा का प्रयोग किया है– "जसोदा–आज मेरो कनैया दुहताय को खेलन गयो है। और आज तो कलेऊ हू नाय कर गयो। जाने कहाँ चलो गयो है।

× × × ×

अरे लाला तू आय गयो ! तू तो ऐसो बाबा को लाड़लो है गयो है कि दिन और रात खेल्यौ ही करे है। अरे लाला देख, अब तू दूर खेलबो मती जायो करे। यहाँ हाऊ आ गयो हैं।"

कृष्ण– "अरी मैया देख। चार वेदन कूँ लैके शंखासुर दानव जल में जाय दुबक्यौ रहयो। वा जल में कोउ जाय सकै नाय हौ। तब मैया मैने मच्छी को रूप धरि के वाकू मार्‌यौ हौ। अरी मैया। हाऊ तो मैने वहाँ देखे नायँ है।"

जसोदा– "अरे लाला! संखासुर दानव तैने ही मारयो, और मीन को रूप तैने ही धर्‌यो।"

कृष्ण– "हॉ भैया मैने ही।"

ज्सोदा– "(चौककर) तैने ही ?"

कृष्ण– (बात को बहलाकर) अरी मैया ना है, मोते तो बाबा कह्‌यो करै है।

अरी मैया ! मैं जमुना जी के तट पै अपने गैया, बछरान कूँ चरायो करूँ हूँ। और पाताल में पैठ के काली नाग नाथ्यो हौ। वहाँ हू हाऊ तो मैने नाय देखे।"[41]

कल्याणी महिपाल की अशिक्षित और रीति–रिवाजों, परंपराओं को मानने वाली ग्रामीण पत्नी है। अतः उसकी भाषा शैली भी उसके अनुरूप ग्रामीण अवधी ही है। "तुम्हार दुश्मनौ यू कलंक नाही लगाय सकत हैं।" तुम चले जइहौ तौ हम लरिकन ते का कहब ? दुनिया का कउनु मुंहु दिखउब।"[42]

इसी प्रकार कल्याणी तथा महिपाल की नोक–झोंक के समय की भाषा देखिए– "बिजली वाले स्टोप पै गरम किहा है अबहीं। तुम सबेरे थरिया सरकाय कै चले गयौ, हमार दिन कइस बीता है।"

महिपाल ने चम्मच में हलुवा भर कर उसकी तरफ बढ़ाया, कल्याणी बोली– "हम न खाब।"[43] महिपाल ने भी पत्नी की ग्रामीण भाषा में ही बात आगे बढ़ायी– "काहे ईमा छूत हुई गयी ? बौड़म। अरे चउका नाम के याकु कमरा मा न खावा बइठिकै, बइठका नाम के दुसरे कमरे मइहाँ खाय लिहा। ईमा कौन बुराई आय गई ?" "तौ हम तुमका थोरौ कहित है। बाकी हम पन्चन का विचार विवकु है। हमार हिन्दुस्तान क्यार धर्म–जानति हऊ कहाँ रहति है ?– रसुइयाँ मा। औ हमार भगवान को आय ? कहिनि कि हमार भगवान आय दार, चाउर की बटलोही।"[44]

नागरजी ने समाज के हर क्षेत्र के व्यक्ति की भाषा को बहुत निकट से सुना है। इसीलिए उनकी दृष्टि से किसी प्रकार का व्यक्ति बच नहीं पाया है। पुलिस के व्यक्ति साधारण रूप में भी गालियों के बिना बात नहीं करते चाहे किसी के ऊँपर दुःख का पहाड़ टूटा हो। कन्या की भाभी ने लोक–लाज के भय से आत्म हत्या कर ली है। एक कांस्टेबिल और इंस्पेक्टर मौके पर आता है। उसकी भाषा देखिए– "देखो तो जाके अन्दर– वो साली मरी की नहीं ? मार डाला साली ने। आज भूँखा भी रखेगी बन्चो।"[45]

उपन्यास में नायक और नायिका सुशिक्षित और अंग्रेजी पढ़े–लिखे हैं। इसीलिए इनकी भाषा भी उनके अनुकूल ही अंकित की गई है। डॉ०शीला एक पढ़ी–लिखी युवती है अंग्रेजी का ज्ञान रखती है। उनकी भाषा देखिए' "शिक्षा ? व्हाट शिक्षा ? कैसी शिक्षा ? समाज को आखिर क्या सिखाया जाय जिससे कि ऐसे क्राइम्स एकदम से बन्द हो जांय।"

"कितने चार्मिंग (मनोहर) हो तुम ? नाउटेक केयर योर हेल्थ डियर।"[46]

इसी प्रकार एक स्थान पर प्रेम के संबंध में शीला कहती है– "औरत–मर्द के रिश्ते को लेकर मैंने अपनी जिन्दगी में एक बात सीखी है– प्रेम थ्योरी नहीं प्रैक्टिस है।"[47] सज्जन भी इसी प्रकार की हिन्दी, अंग्रेजी मिश्रित भाषा का प्रयोंग करता है– "वाह क्या बात कहीं है–लव इज नॉट थ्योरी बट प्रैक्टिस।"[48] सज्जन ईश्वर के संबंध में कहता है– "मनोवैज्ञानिक पहलू से यह जरूर सोचता हूँ कि इन्सान के स्वभाव के गठन में ईश्वर भीरुता का बीज किसी न किसी अंश तक उसके **इन्सटिक्ट** को सही तौर पर **गाइड** किया करता है।"[49]

इस उपन्यास के विशिष्ट पात्र बाबा राम जी उपदेशात्मक प्रवचन शैली का प्रयोग करते हुए कहते हैं– "इस समय वैसा ही समुद्र मंथन हुइ रहा है, जैसा कि पुराणों में लिखा है। **दैवी और आसुरी विचार धारा मन समुद्र कोमथ** रही है। जो अनुभव है, वही रत्न हैं। भावना ही अमृत है। और विष भी है। वही लक्ष्मी है और रंभा भी। मन ही उच्चैश्रवा घोड़े के समान आत्मा की अति चंचल सवारी है। और वही ऐरावत हाँथी के समान गुरु गंभीर सवारी भी है। आत्मा ही ब्रिम्हा, विष्णु, महेश है। ब्रिम्हा के रूप में वह अनुभव की सृष्टि करता है, विष्णु के रूप में अपनी सृष्टि की श्री को ग्रिहण करता है और शिव के रूप में निस्काम जोगी बन सर्जन पालन के अहंकार का नाश करता है। तथा सृष्टि और उसकी श्री को सदा एक रूप बनाकर अपने में लय किए रहता है। सो हम तो आत्मा के शिव रूप में स्रिद्धा रखते हैं रामजी, हमारा ये अटल विस्वास

है कि इस मन मंथन से विज्ञान के जो अनुपम रत्न निकल रहे हैं, मानवतावाद के व्यापक प्रचार हुइ के चेतना का जो अमृत निकलेगा वह समस्त लोक को मिलेगा। और जौन ये स्वार्थ परता, अनाचार का कालकूट निकल रहा है तौन नीलकंठ परम सेवक हैं, वो अपनी ड्यूटी बजाने से कभी नहीं चूकते।''[50]

नागरजी ने समाज में सत्यनारायण की कथा बाँचने वाले अशुद्ध संस्कृत का उच्चारण करने वाले पण्डितों की भाषा शैली को भी अच्छी तरह से सुना है। उन पर व्यंग्य करते हुए उनकी भाषा का नमूना देखिए– ''एकदा नारदो जोगी परानुग्रह कांक्षया। पर्यटन विविधान लोकान मर्तलोकमुपागमत। उसके बाद खोपड़ी पर हाँथ फेरते हुए पंडित जी ने भाषा टीका भी की– ''सूत जी बोलेम् कि हे जिजमान सुनौ, एक समय जो है सो नारद जी वैकुंठ लोक के बीच मेम् लक्ष्मी पति भगवान विसनू के पास जाय के कहत भयेम् कि फिर वही अशुद्ध संस्कृत का उच्चारण, ऊँचा–नीचा, खाँचेदार स्वर सुनने वाले भी बैठे जरूर थे, बाकी सुन रहे थे या नहीं, सो सत्यनारायण ही जाने।''[51]

'शतरंज के मोहरे' मुस्लिम महिला और ग्रामीण बुधुवा तथा 'अंग्रेजों की हिन्दी' के उदाहरण देखते ही बनते हैं। इसी प्रकार 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' में ग्रामीण महिला की ब्रजभाषा का प्रयोग कितना उत्कृष्ट बन पड़ा है :–

''तब तो तुम चाहे मानौ चाहे ना मानौ चच्ची, ये लौंड़ा जो है, नईमा, सारी कारस्तानी उसी की है। पारसाल बस्ती बाहेर पीपल तले जौन साईं आया रहा, जिसने गाँव–भरे के भूत जलाये रहे, उनके पास ये बहुत आता–जाता रहा। उन्हीं से कुछ पढ़वाय–पढ़वूय के लाया होगा। दुलरिया से इसकी आसनाई है, ये तौ मैं भरी गंगा में कह सकता हौं। सेवबरन जमादार की आँखें धोखा नहीं खाती।''[52] बुधुआ बोला : ''ई द्याखौ, जाय रहे हयिं ई सब रावन केर नातीं।'' ''उयि बड़कई मिमियाँ द्याखौ, कस धरती धमकु चाल ते चली जायि रही है। अच्छा बल्लू, जब यू मरि हैं तब कितने मनई यहि की लहासि उठाई पइहैं ?''[53]

अंग्रेज अफसर स्मिथ की टूटी–फूटी हिन्दी भाषा– ''हाम आपको एक बाट बोलना माँगटा। हमारा कोठी से आप लोग का बौट फायडा हाय। हाम बाजू का गाँव से बन्डोबस्त करेगा। हाम हुवाँ का टैकूर रैमगूलाम सिंगा को बरा आडमी बनायेगा। आप राजा हाय टो हमारा मार्जी से हाय। कम्पनी बाडूर आप का बैडशा का सरपरस्ट हाय। याड रखे खान जाडा साब, हाम इंगलिश मैन हाय, हमारा कौम डोष्ट लोग का मडड करटा हाय, फायडा करता हाय, अऊर हमारा दुश्मन लोग को हाम टबा करने माँगटा, एकदम नेस्टबूड करने माँगता। हाम आपको डो घण्टा का मोलट डेटा हाय, आप सोचें अऊर गऊर करें। हाम फिर आने को माँगटा।''[54]

''हां हां, चौं' नई, लौंडो, बे, सुन लिया ना ? अबे डल्ला, तू चबूतरे पेई बैठा रइयो भला। ले एक बालूशाही और ले जा।''[55]

'शतरंज के मोहरे' अशिक्षित मुस्लिम महिला की आक्रोशपूर्ण गालियों से युक्त भाषा तो 'बूँद और समुद्र' की 'ताई' की गालियों का स्मरण दिलाती है–

"खुदा करे इनके रोयें रोयें में कीड़े पड़ें, कफन और मिट्टी तक नसीब न होवे। कुत्ते सियार भी इनकी लाशों पर पेंशाब करके चले जाँय।"[56]

'खंजन–नयन' में पात्रानुकूल ब्रजभाषा का प्रयोग देखिए :–

"ये हमाई तुमाई सूधे सच्चे मन की बात नाँय है, बाबा। इनके काजी मुल्लान कौ या बात भौत बुरी लगै कि कोऊ इनके धरम को अउर अपने धरम को बरोबर बतलावै। एक पंडत कौ याही बात पै सूली चढ़ाय दियौ हतो।"[57]

कंतो की दयनीय ब्रजभाषा : "अब तो मेरो जीनो मरनो याही चरनन में होयगो। मुझे तुमसे कछु और नाय चइये।"[58]

सूफी संत की भाषा का प्रयोग भी दृष्टव्य है– "हसबुनल्लाहों यं नेमल वकील। लानका का मकान ढूंढ लिया। आफरीन।"[59]

'शतरंज के मोहरे' में बादशाह बेगम की उर्दू का नमूना दर्शनीय है– "सैयिदुश्–शोहदा हजरत इमाम हुसैन के मातम के अलावा मैंने कभी मातमी पोशाक नहीं पहनी। तुम्हारे वालिद और दादा का जब इन्तकाल हुआ था तब हमारे खानदान में किसने मातमी पोशाक पहनी थी जो मैं आज पहन कर आती। नाहक की रार बढ़ा रहे हो बरखुरदार, किसी ने तुम्हारे दिल को बदगुमाँ कर दिया है। इससे कुछ हासिल न होगा, हाँ फरेबियों के जाल में फँसकर हम बरबाद हो जायेगे।"[60]

नागरजी भाषा के पारखी हैं। उनका हिन्दी गद्य की अभिव्यंजना शैली में अपूर्व योगदान है।

भाषा में नवीन प्रयोग

अलंकार– नागरजी ने अपनी भाषा में नित्य–प्रति के जीवन से जुड़ी उपमाएँ ग्रहण की हैं। इसीलिए उनमें कालिदास की उपमाओं की भाँति अनूठापन और अपूर्वता है। कबीर और नजीर अकबरा बादी की उपमाओं जैसी जीवन्तता और हृदय स्पर्शता मिलती है। डॉ० दामोदर बाशिष्ट का यह कथन बिल्कुल सत्य है– "नागर जी की उपमाएँ नित नवेली और नई व्यहुली जैसी लाजवन्ती होने के कारण सौन्दर्यमयी हैं।"[61]

कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं– 1. "दूसरी ओर रम्भू की जबान **राड़ के चरखे जैसी** एक सी चल रही थी।"[62] तात्पर्य यह है कि बेचारी राड़ को तो और कुछ काम नहीं। जबान की 'चखचख' और 'चरखे की चर्र–मर्र' दोनों में अनुकरणात्मक संबंध है।

2. "आध पौन घण्टे तक **श्लोकों के इंजन का** संटिग कराते रहे।"[63] दो ब्रह्मणों द्वारा उच्चरित श्लोको से संबंधित हास्य उत्पन्न होता है।

3. "पुत्ती गुरु के **तीव्र संचारी मनोभाव हिन्दुस्तान, पाकिस्तान की तरह** आपस में बँट कर लड़ने लगे।"[64]

4. क्रुद्ध भीड़ ने **छेड़ी ततैयों की तरह** रुप्पन की कोठी पर पथराव किया।"[65]

कुछ मुहावरा गत उपमाएं देखिए–

"अन्दर ही अन्दर कंडे की तरह सुलगना।"[66] आदि मुहावरागत उपमाएँ जिनमें उपन्यासकार की मनोदशा के साथ ही साथ उसका सूक्ष्म निरीक्षण परिचायक मन दिखलाई देता है। "टैंया सा उठ खड़ा होना।"[67] उपमा भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत ली जायेगी। "मरतान मर जाएँगें पर किसी का एहसान न लेंगे।"[68] आदि प्रयोग नित्य की बोल चाल से ग्रहण किए गए हैं। इसी प्रकार "धुर्रे उड़ाकर बिखेर देगी।"[69] और कहीं "उम्र के अरमानों की शक्तिशाली गुण्डा।"[70]

नागरजी को कुछ उपमाएँ अत्यन्त प्रिय हैं। जिनका प्रयोग वे अपने कई उपन्यासों में करते हैं। जैसे–

"क्षितिज पर काशी दिखलाई पड़ने लगी। गंगा दूर से रुपहली मोटे गोटे की पट्टी जैसी चमक रही थी।"[71]

यही उपमा 'अमृत और विष में गोमती के लिए प्रयुक्त की गई है– "बाई ओर धानी साड़ी में रुपहली गोट सी बनी गोमती नदी चमक रही थी।"

'बूँद और समुद्र' की कुछ उपमाएँ देखिए– "उभरी हुई हड्डियों वाले लम्बे चेहरे पर कड़ी–कड़ी रेखाएँ और सिकुड़ने उसी तरह गन्दी और मनहूश लगती हैं। जैसे–गली की सतह पर अनेक टेढ़ी–मेढ़ी धाराओं में अन्दर की घुटन से उबल कर बहता हुआ नाले का पानी।"[72]

स्थान वर्णन में एक अत्यन्त पुराने घने पीपल की उपमा मनुष्य की चंचल मन समूह से की गई है। "कटी–फटी पतंगों, मकड़ी के जालों, घोसलों, चिड़ियों, गिलहरियों और पीपली के दानों से लदा अनगिनत इंसानों के चंचल मन समूह सा हरहराता हुआ घना पीपल कई सदियों से मोहल्ले का साथी है।"[73] "स्क्रीन पर बिरहेश का नाम बाँचने के लिए ऐसे सध गई, जैसे– अर्जुन की दृष्टि चिड़िया के सिर पर सधी थी।"[74] यहाँ दृष्टि की एकाग्रता का उपमा द्वारा सजीव चित्रण किया गया है। इसी प्रकार खुद से भागते हुए व्यक्ति के मन को अजीब गोरख धन्धा बताते हुए स्पष्ट करते हैं– "और भय जब बिगड़े साँड़ की तरह रगेदना शुरू करता है ×××× अगति के खूँटे में बँधा नये नाथे गये जंगली भैंसे की तरह उसका मन मुक्त होने के लिए फुफकारें छोड़ रहा था।"[75] अन्यत्र सज्जन अपने स्वर में स्वर भरकर बोलते हुए इस तरह उठा, मानो रावण भगवान शंकर को कैलाश पर्वत से उठाकर फेंकने के लिए जा रहा हो (उत्प्रेक्षा)"[76] इसी प्रकार महिपाल के मनोभावों का चित्रण करते हुए– "मुह में चार पान भरकर इस तरह निश्चिन्त हुआ मानो चोरी का माल लेकर भागने वाला चोर डर के इलाके से निकल कर अपनी सरहद में पहुँच

गया हो।"[77] "आशिक का दिल काँसे की तरह खन्न से बज उठा।" एक स्थान पर रात का वर्णन करते हुए उत्प्रेक्षा के माध्यम से कितना सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है– "नये साल के नये दिन की रात इस तरह जगमगा रही है, मानो कोई सतायी हुई वेश्या अपने मन की पीड़ा को मन ही में कस कर पेट के ग्रहकों को रिझाने की खातिर पूरे साज–सिंगार के साथ अपने छज्जे पर बैठी हो।"[78] एक स्थान पर महिपाल की मनोदशा का चित्रण करते हुए लेखक ने एक नवीन उपमान की सृष्टि की है– "कर्नल के साथ वह उसी प्रकार लौट रहा है। जैसे– घर से रूठकर भाग जाने वाला लड़का गिरफ्तार होकर लौट रहा हो।"[79]

कल्याणी के साथ महिपाल ने जो समझौता किया वो उसे अखर रहा था। कल्याणी के साथ अकेले में जाते हुए वह कैसा अनुभव कर रहा है, सुन्दर उपमा देखिए– "इस समय अकेले ने कल्याणी के सम्मुख वह कुछ–कुछ उसी प्रकार अनुभव कर रहा था। जैसे– हारे हुए राजा पुरु में विजेता सिकन्दर के सम्मुख किया होगा।"[80]

कई अन्य स्थानों पर भी भाषा में बहुत सुन्दर और नवीन उपमाओं की सृष्टि हुई है। "सज्जन आते हुए मजमें से यूँ कतराया जैसे– गन्दगी का टोकरा उठाये लिए जाता हुआ मेहतर शरीफ जादों से बचकर चलता है।"[81] "कर्नल साहब ने फौरन अपना कन्धा यों उचकाया जैसे– बैल की दुम अपने बदन पर बैठी हुई मक्खी को हटाने के लिए उचकती है।"[82] "इस समय कर्नल के पीछे वह इस तरह सिर झुकाए कमरे से बाहर निकला जैसे कोई प्रबल विद्रोही निरस्त्र होकर पुलिस की हथकड़ियों के कब्जे में आ गया हो।"[83] "शीला सुनकर उस बच्चे की तरह खामोश थी जिसे बहुत रोने के बाद मिठाई मिली हो।"[84] "ताई के काले–काले डण्ठल जैसे दाँत।"[85]

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' की उपमाएँ तो इतनी नई और सटीक है कि भावों को स्पष्ट करने में उनकी ही उपमा नहीं है। "उस **कुलीन की सुहागिन के समान थी जिसे व्याहने के बाद ही पति एक बार जुठार कर** सदा के लिए छोड़ गया हो।"[86] "वह सामने चली आ रही है। जनरल को लगता है **जैसे आँगन में चमकने वाले सूरज की रोशनी** इस **हुस्न के आफताब** के आगे मन्द हो गयी हो।"[87] "वशीर खाँ के जाने के बाद जुआना एकदम निढाल हो गयी, चेहरा **लाश की तरह निस्तेज** और निष्प्राण हो गया। अपनी ख्वाब गाह में जाकर वह **टूटी मीनार–सी अपने पलग पर गिर पड़ी।**"[88] "महबूबा **चोट खाए नागिन सी** तड़प उठी।"[89]

नागर जी के 'खंजन नयन' और 'शतरंज के मोहरे' में प्रयुक्त उपमाएँ अनूठी होने के साथ ही उनकी भाषा विधायिनी शाक्ति की परिचायिका है :–

"बोलते–बोलते सूरज की वाणी ऐसी वेदना भरी हो गयी जैसे **बाहर निकलते हुए व्यक्ति के लिए अचानक किवाड़ बन्द कर दिये गये हो और वह सिर फूटने से कराहा हो।**"[90] "कंतो खिल–खिलाकर हँस पड़ी। **मदन–ध्वज सी लहराती** उसकी हँसी ने सूरज के मन में **दाद की खुजली जैसी** रति– गुदगुदी

मचायी पर वह उसे नकार गया।''[91] , ''आवें की आग की तरह।''[92] , ''बड़ी–बड़ी आँखें पानी भरे कटोरों सी।''[93], **''सन से सफेद बाल बादलों घिरी रात के अंधेरे में उसी तरह झलक रहे थे जैसे झूठ की भारी तहों में धुँधलका झलकता है।''**[94], ''बेगम साहिबा की रोबीली आवाज से परिचालित होकर दुलारी ऐसे बैठ गयी जैसे हवा के झोके से डाली का फूल टूटकर धरती पर गिरा हो।''[95] ''आगामीर के अन्तर का पशु कमजोर राजकुमार को उसी तरह दबोच बैठा था जैसे चूहे को बिलाव दबोचता है।''[96], ''पकड़े जाने के बाद टुण्डा बिल्ली के पंजे में दबे हुए चूहे की तरह निश्चेष्ट हो गया।''[97]

रूपक– उपर्युक्त उपमाओं के साथ नागर जी द्वारा प्रयुक्त रूपकों पर भी विचार करना आवश्यक है। उनके रूपक कहीं प्राचीन परम्परा से और कहीं सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित है। ''इसी **प्रलय** में तुम मुझे **मनु की नौका के समान** मिली हो प्रिये।''[98] प्रकृति प्रेमी कलाकार प्रकृति को अपनी अभिव्यंजना का माध्यम बनाता है– ''रह–रहकर उसके प्रति **कटुता, घृणा,** क्रोध की **ऊँची–ऊँची लहरें घुटन के अथाह समुद्र में** उठती हैं और चेतना के तट पर आकर निकम्मी बिछ जाती हैं।''[99] आदि कथन से अत्यन्त घृणा का चित्रण होता है। एक स्थान पर भीड़ का चित्रण करते हुए उनका अप्रस्तुत विधान देखते ही बनता है– ''निराश लौटी भीड़ की धक्का–मुक्की भरी आवा–जाही, वैसी ही असंख्य अणुओं की प्रवाह सी थी जैसी–अधखुले किंवाड़े से भीतर जाने वाली सूर्य किरण में दिखलाई पड़ती है।''[100] भीड़ का एक अन्य चित्रण– ''बरसात की हठीली मक्खी जैसे किसी जगह बैठ जाने पर हटाये नहीं हटती, हटकर भी बराबर लौटती है।''[101]

'मानस का हंस' में 'तुलसी' काशी में आते हैं। विश्वनाथ के दर्शन करते हैं। 'तुलसी' की अन्तरात्मा में अपूर्व भाव–योग है। नागर जी ने उसका चित्रण रूपक के सहारे कितने सटीक शब्दों में किया है देखिए–

''भाव के दूध में उमंग रूपी चीनी जैसे–जैसे घुलती गयी वैसे–वैसे ही **आँखों का स्वाद** बदलता गया।''[102] विरोधियों के मन तुलसी की भाव तेजस्विता के सम्मुख किस प्रकार नत मस्तक हो जाते हैं– ''उनके विरोधियों के **मन का लोहा** तक उसकी **भाव शक्ति के ताप से** पिघल कर रस बन गया था।''[103] तात्पर्य है कि विरोध कम होने लगा।

श्रृंगार रस का चित्रण करते समय अप्रस्तुत विधान भी ठीक ऐसा ही रस टपकाने लगता है।

''नाजुक अंगुलियों का स्पर्श पाते ही आचार्य जी भीतर से बाहर तक **गुल–गुला उठे।''**[104]

गुलगुला उठना मुहावरागत प्रयोग है जिसका अर्थ है पुलकित होना। इसी प्रकार एक स्थान पर उपन्यासकार ने नारी को ''मधुसनी कटार''[105] कहा है। एक अन्य स्थान पर ''सच तो

यह था कि शाहगुल तथा यास्मीन दोनों ही मिलकर नित्य भृगु वत्स की **जन्म पत्री बिगाड़ रहीं थी।**''[106]

'अमृत और विष' में दंगे के दृश्य का वर्णन करते हुए रूपक के साथ–साथ कई अन्य उपमानों का प्रयोग एक साथ देखा जा सकता है। प्रत्येक शब्द इतना सशस्त है कि दंगे के कारण भागती हुई भीड़ का सजीव चित्र उपस्थित हो गया है। ''बीच सड़क के आस–पास की गलियों में चौकन्नी भीड़ लपका–लपक, राम–श्याम, खुदा–पीर करती, छितराने के लिए, अपना घर– अपनी सुरक्षा पाने के लिए जग से बेलौस, मगर जग से मिलकर चलने के लिए बेकरार अलग और मिली हुई भी, भागी जा रही थी। लम्बे **लकड़बग्घी चाल** नाटे सॉप चाल, छरहरे **हिरन चाल**, मोटे **मेढ़कों से** फुदकते, पोज पोजीशन वाले **दगे सॉड़ की तरह**–दौड़ते– बस भागम–भाग ही मची हुई थी। **नगर रूपी काया का हृदय** बड़ी जोर से धड़ धड़ाया था और **उसकी नसों–दर नसों जैसी गलियों में भीड़ खून की तरह दौड़ती चली** जा रही थी।''[107]

इसी प्रकार हिन्दू–मुसलमान और ईसाई पन की बात करने वाले लोगों के संबंध में ''ये सब हिन्दू–मुसलमान और ईसाईपन की, जाति महत्ता की बातों में विश्वास करने वाले लोग ऐसे मालूम होते है, जैसे– **जवानी में बचपन के कपड़े घसीट–घसीट कर पहने खड़े हो।**''[108] एक महिला बातों की झड़ी लगा देती है, इस पर उपन्यासकार की कल्पना देखिए– ''महिला रेल के डिब्बे की तरह वाक्य में वाक्य जोड़ती ही चली गयी।''[109] मेरा **नशे का परी घोड़ा** तुरन्त मौके की बात ले उड़ा।''[110]

''**विचार चुम्बकों के विद्युत–आकर्षण की** सन सनी सी उनकी नसों में समा रही थी।''[111] ''यद्यपि अब साल दो बरस से, मन मंथन के प्रभाव से उसने जो **सिद्धान्त नवनीत** पाया था, उससे वह काफी हद तक शान्त, गम्भीर और संतुलित हो गयी थी।''[112] ''**आर्थिक असमर्थता के शेर ने** पंजा उठाकर ऐसा थप्पड़ मारा कि उसके **साहित्यिक वैभव की खाल** खिंच गयी।''[113] ''महिला का चेहरा दीवाल पर टंगी तस्वीर से उतरा और हमारी ओर **भव्य मुस्कराहट की खुशनुमा कालीन** बिछाता हुआ आया, **होठों के लाल किले के फाटक** खुले और **मर्मरी दाँतों की बारादरी सी झलक** उठी।''[114]

'खंजन नयन' में तथा 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' में भी रूपकों के रत्न भाषा में जड़े हुए है।

''मन आकांक्षाओं का गेंद है।''[115] ''मन के सीमाहीन मैंदान में।''[116] क्रोध के पत्थर फेंक रहा था भाव के आकाश में।''[117] ''मन की दीवार ई।''[118] ''रात भर में खड़े हुए **उन्नत शिखरों वाले विचारों के गमन चुम्बी पर्वत, समीर के एक ही झोंके से धुएँ** की तरह बिखर कर तिरोहित हो गए।''[119] चाहत के अंगारे सुलगा रही है।''[120] ''मुँह से भद्दी **गालियों का फव्वारा** छूटा।''[121] ''फिर गलियों की 'तई' में **सूर स्वामी जलेवी** से नाचने लगे।''[122] **क्रोध के ज्वर की गरजती हुई उत्ताल तरंगे भाटे की करुण सिसकियों** में बदल गई।''[123] **क्रोध रूपी भयानक पशु सौन्दर्य की देवी से सामना**

होते ही दुम हिलाने लगा।''[124] ''**घृणा की बिजलियां** कौंध उठी।''[125] ''**मुख चन्द्र** पर **चिन्ता का ग्रहण लगा** हुआ था।''[126], ''उसके गुस्से की आग पर बशीर खां की **ठंडी हंसी का पानी** पड़ा।''[127]

उत्प्रेक्षा

नागरजी ने उत्प्रेक्षा का प्रयोग कर अपनी भाषा को मनोरम और सरल तथा सरस बनाया है। मनोभावों से युक्त सज्जन की गति विधि को देखिए– ''सज्जन अपने स्वर में स्वर भर कर बोलते हुए इस तरह उठा मानो रावण भगवान, शंकर का कैलाश पर्वत उठाकर फेंकने के लिए जा रहा हो।''[128] सनातन धर्म पर व्यंग्य करते हुए उपन्यास कार कहता है– ''हमारा सनातन धर्म वी हिजड़े की तरह है जो नाक पै उगली रख कै दीदे मटकाते हुए अपने मानने वालों से कहता है कि ऐ निगोड़ों मुझे छूना मत मैं पाक साफ हूँ।''[129] ''सज्जन की आँखें यूँ निकली पड़ रही थीं मानो दो पिस्तौलें हों जिनसे गोलियाँ छूटने वाली हैं।''[130] ''तेरी आवाज है कि रेल की सीटी।''[131] ''लिपिस्टिक विहीन ओंठ ऐसे नीले पड़े हुए थे, मानों उनमें साँप डस गया हो।''[132]
नागर जी का केवल अप्रस्तुत विधान ही प्रसंशनीय नहीं है, वे परम कुशल शब्द शिल्पी भी हैं।

शब्द – भण्डार

नागरजी के उपन्यासों में दो प्रकार के नवीन शब्द प्रयोग हुए हैं। एक ऐसे शब्द हैं जो अभी तक जन–जीवन की बोली तक ही सीमित थे। किन्तु, नागर जी ने उन्हें सभ्यता और साहित्यिकता प्रदान की। इस दृष्टि से उनकी गद्य सेवा प्रसंशनीय है। नागर जी ने दूसरे प्रकार के नवीन शब्द गढ़े हैं। जिससे भाषा की अभिव्यंजना निखरी और परिष्कृत हुई। काम विह्वला, शिश्न जीवी, नर वेश्या, भोगांगना, स्वप्न पटी जैसे सर्वथा नवीन शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों की योजना संस्कृत का सहारा लेकर की गई है। परन्तु कुछ ऐसे शब्द भी है जो जन–जीवन से ग्रहण किये गये हैं। उनकी संख्या अत्यधिक है। ''चन्द्रगुप्त को उनके ससुरालियों समेंत समाप्त करने के लिए प्रवर सेन ने वीड़ा उठा लिया।''[133] ''धीरे–धीरे चमलाते हुए विचार कर लेने के उपरान्त।''[134] ''भारत और प्रज्ञा **नये व्याहुलों से चहक रहे थे**।''[135] इतनी **तथा** नहीं थी।''[136] ''यहाँ तथा का अर्थ सामर्थ्य से है।'' चमत्कार सा **चिड़ी फुर्र** हो गया।''[137] **होतव्यता** को पहचान कर आपसे यथार्थ कह रहा हूँ।''[138] इसी प्रकार 'सियापा', 'दयी–देवता', 'संई साँझ' आदि सामान्य और चलते हुए शब्दों को लेकर खड़ी बोली का भवन निर्मित किया है।

हिन्दी विकास शील भाषा है। विचार और भावों की अभिव्यक्ति के लिए आज इसमें अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, बंगाली शब्दों के अतिरिक्त स्थानीय शब्दों और अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया जाने लगा है। विभिन्न भाषाओं के शब्द हिन्दी भाषा का एक अंग बन गये है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में विभिन्न भाषाओं के शब्दों का इस प्रकार प्रयोंग किया है कि वे, पाठक पर एक अमिट छाप छोड़ते हैं।

1. संस्कृत–शब्द

नागरजी ने अपने उपन्यासों में भाषा की आवश्यकतानुसार संस्कृत शब्दों का समुचित प्रयोग किया है। कहीं–कहीं संस्कृत निष्ठ भाषा जैसे– "देह भोग के रूप मे नारी जीवन की **सार्थकता** का पाठ उसने निरे बचपन में ही पढ़ लिया था। माँ के साथ पिता की **काम चेष्टाओं** की अनेक झलकियाँ उसने बड़े कौतूहल के साथ देखी थी। अपने घरों में ऐसी ही झलकियाँ देखने वाले पास पड़ोस के लड़के–लड़कियों के बड़ों की **काम–क्रीडाओं का निष्पाप अभिनय** वह किया करती थी।"[139]

इसी प्रकार भ्रूण हत्या, देह भोग, साक्षात्कार, श्री, हनुमन्त, कामातुर, आत्म तेज, कामेच्छा, कामवृत्ति, कामदमन, मदन दहन, मन मन्थन, अकल्पनीय, घृणामयी, निष्काम, राज वैभव, सांस्कृतिक समारोह। **संस्कृत श्लोकों और स्तुतियों का प्रयोग** :–

"यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वांछित फलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।"[140]

"राधा रसेश्वरी रास वासिनी रसिकेश्वरी
कृष्ण प्रणाधिका कृष्ण प्रिया कृष्ण स्वरूपिणी,
कृष्णा, वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावन विनोदिनी
चंद्रावती चंद्रकांता शत चंद्राभिनाम्ना
कृष्ण वामांग संभूता परमानन्द रूपिणी।"[141]

कहीं–कहीं संस्कृत सूक्तियों के रूप में पूरे वाक्य भी मिलते है, यथा– "योगः कर्मसु कौशलम्।"[142] "सत्यः श्रमाभ्याम् सकलार्थ सिद्धिः।"[143] "एकदा नारदो जोगी परानुग्रह कांक्षया। पर्यटन विविधान लोकान मर्तलोक मुपागमत।"[144] "विनाश काले विपरीत बुद्धी।"(570)

कहीं–कहीं संस्कृत सूक्तियों का छायानुवाद भी मिलता है, जैसे– व्यास महाराज का यह उपदेश कि "परोपकार पुण्य और पर पीडन पाप है।"[145] बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।"[146]

2. अंग्रेजी–शब्द

"प्लीज एक्स क्यूज मी थैक्यू–थैक्यू यू आर जेन्टिल मैन हेल्प मी।"(122) हाउ हार्विल यू आर सज्जन।" (81)

वाक्य तथा छायानुवाद– नागर जी ने पात्रों की भाषा के अनुरूप अंग्रेजी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया हैं। अंग्रेजी के कुछ वाक्य प्रयोग देखिए– "नाइन्टी नाइन परसेन्ट नाइन प्वाइन्ट नाइन।"[147] "नाउ टेक केयर हेल्थ डियर।"[148] "लव इज नॉट थ्योरी बट प्रैक्टिस।"[149] "अंग्रेजी के शब्दों को भाषा के साथ मिलाकर प्रयोग तो बहुत अधिक मिलता है, जैसे– ऐस्ट्रे, ट्रेडिसनल, इंडियन स्टाइल, मैटर, इंचुलैक्चुएल, प्रिमट्यू, टेरी बिल, इन्फीरियार्टी, काम्पलैक्स,

सब्जेक्ट, विडो, ट्रेजडी, अटेन्ड, इलेक्शन, रिजर्व, प्रोपेगैण्डा, मैटीरियल, हस्बैण्ड।''(97) सोसायटी (60) इन्सर्ट, अन एजूकेटेड, अन कल्चर्ड (61), प्रास (64), फैक्ट–(64), मैटिनीशो, कन्सिटीट्यूशन (69), फैशन, अप्टू डेट (72), कान्ट्रेक्ट, पोड्यूसर, डायरेक्टर, प्ले बैक सिंगर, म्यूजिक, कैमरामैन (73), एस्टेथिक टेस्ट (74), सेंसर सार्टिफिकेट, स्क्रीन (78), मिस्टिक्स (82), आर्ट्स स्कूल, डिप्लोमा, कल्चर, ओब्लाइज (89), एजूकेशन, बैकवर्ड, ट्रेजडीज, क्राइम्स, गंवर्मेण्ट, ह्यूमन वैल्यूज, टीचर्स, होप्लेस केश (92) चार्मिंग, (97), स्टेट मेण्ट (117) एटामिक, साइंस (231), इंसटिंक्ट, (246), हिप्नोटिज्म (271), प्रैस्टिज (511), आउट ऑफ डेट, स्प्रिट, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन (550–51), इन्फैक्ट, माइल स्टोन (551), एक्जेक्टली (551–52), कम्पराइजन, फ्यूचर (564), आदि (सभी–'बूँद और समुद्र' से)

अंग्रेजी के कुछ नये शब्द जिन्हें हिन्दी का रूप दिया गया है।

इस प्रकार के नये शब्द नागरजी के स्वयं गढ़े हुए नवीन प्रयोग के रूप में दिखाई देते हैं। कुछ अंग्रेजी के विशेषण शब्दों को हिन्दी के भाव वाचक शब्दों के रूप में हिन्दी का 'ता' लगाकर निर्मित किया गया है। जैसे– इन्टेलेक्चुएलता, ग्रेटनेश्ता यहाँ क्रमशः इन्टेलेक्युएल में हिन्दी का 'ता' लगाकर भाव वाचक संज्ञा बनायी गई है।

3. उर्दू तथा अन्य भाषाओं के शब्द

ऐसे शब्दों का प्रयोग भी पात्रानुसार अथवा स्थानानुसार किया गया है। जिनसे भाषा की सरलता और सहजता स्पष्ट होती है। कुछ उदाहरण देखिए–

फरमाइस, पाखाने, बदबू (9–10), गुजरते हुए (14), चीजें (15), गजब (17), लाश, शख्स (36), ''**अजी तमाम दुनिया** गालियाँ देती है। आप नीच **कौमों** में देखें तो **औरत–मर्द**, बच्चे सभी गाली के **बगैर** एक शब्द नहीं बोल सकते। मैं तो समझता हूँ कि गाली बकना इंसानी कमजोरी नहीं खुशूशियत है।''[150] नसीहत, शादियाँ, अस्सी फीसदी, कर्ज, नतीजा, दगाबाजी, रिवाज, इंसान (93), आबरूदार, रौनक (136), दिल बहलाव (205), आला दिमाग, चूँकि (291), ''**जनाब** बड़े आदमियों की जूठन बटोर कर घूरे पर फेंकी जायेगी, **शहर**, भर के भिखारियों और मेहतरों को रईसों की प्रसादी मिलेगी।''[151]

निकम्मी तारीफें, दुआएँ, खुदगर्जी, नुमाइश (391), अमा, हैरान (416), शक (416), सिर्फ, तबके, कुदरती, तसरीफ रखिए (429), खूबी, बाज–बाज, वाकया, साजिस, आखिर, ख्याल (511), मंसबदारी, इंतजाम (539), मगर, जबान, बदमजगी (575), रीति–रिवाज, दांव–पेंच आदि, (सभी 'बूँद और समुद्र' से)

एक अन्तिम उदाहरण देकर इस बिन्दु को समाप्त किया जाता है। उर्दू और हिन्दी मिलती–जुलती भाषा में या यह भी कहा जा सकता है कि उर्दू या अन्य भाषाओं के जो शब्द हिन्दी में आत्म सात हो गयें हैं, का प्रयोग देखिए– ''नहीं में कह रही थी कि शिव हो या मुण्ड माल धारण करने वाली शक्तियाँ हनुमान, भैरव आदि हों, ये सब **दर असल** अब उन चामत्कारिक

दन्त कथाओं से बल पाकर जन विश्वास में **जम चुके** हैं। जो बड़े पुराने **जमाने** से समय–समय रची गयीं थी''[154]

4. साधारण बोल–चाल के शब्द

उपन्यासकार ने अपनी कृतियों को सुपाठ्य एवं बोध गम्य बनाने के लिए सर्व–साधारण में समझी जाने वाली और प्रचलित भाषा का प्रयोग किया है। 'बूँद और समुद्र' का यह उदाहरण दृष्टव्य है– ''मैं तुम्हें वह वा क्या बतलाऊँ। अलीगढ़ में इसी तरह औरतें बेंचने का सेण्टर था। उस साजिस में पाँच डिप्टी सुपरेन्टेन्डेण्ट और एक एस.पी. शामिल थे। यू.पी. की सी.आई.डी.ने यह केस पकड़ा था।''[153]

यहाँ उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया गया है जो जन सामान्य में प्रतिदिन बोले जाते हैं और हिन्दी भाषा में बिल्कुल घुल–मिल गये हैं, एक अन्य सीन पर अत्यन्त ही साधारण बोल – चाल की भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है–

''दो स्त्रियाँ आई। हनुमान जी पर फूल और शिव जी पर पानी और फूल चढ़ाकर स्तुति और श्लोकों के स्थान पर आपस में किसी की मेहरिया और महतारी पर किसी के द्वारा होने वाले अत्याचारों की चर्चा करती हुई चली गईं।''[154] यहाँ उपन्यासकार ने भाषा के माध्यम से सामाजिक रंग–ढंग भी चित्रित कर दिया है। एक अन्य स्थान पर पुरुष की मूछ का महत्व बतलाते हुए बिलकुल साधारण बोल–चाल की भाषा का सफल प्रयोग दृष्टव्य है–

''मूछ सामन्ती जीवन की बहुत बड़ी बात रही है। मूछ का बाल गिरवी रखकर लाखों का कर्ज तक लिया–दिया जाता रहा है। मूछ केवल पिता की मृत्यु के उपरान्त ही मूड़े जाने का रिवाज रहा है। बीसवीं शदी की आमद से लार्ड कर्जन के बहाने भारत की यह कीमती मूछ मुड़ने लगी।''[155]

5. स्थानीय शब्द

आँचलिकता का पुट देने के लिए अंचल विशेष में बोले जाने वाले शब्दों का प्रयोग नागर जी ने अपने उपन्यासों में किया है। 'बूँद और समुद्र' में लखनऊ के चौक मुहल्ले में बोली जाने वाली भाषा का प्रयोग है। 'सेठ बाँके मल' में आगरा के पास की बोली का प्रयोग मिलता है। 'अमृत और विष' में 'अवधी' का प्रयोग किया गया है। कुछ उदाहरण देखिए–

''सारी दुनिया जानती हैगी कि खन्ना बाबू नास्तिक हैंगे। इन्हीं के फूँके मन्तरों को ये मानते हैं। बस–लिच्चर बाजी, खेलकूद, विधर्मियों–अधर्मियों के मतों की पोथियाँ पढ़ना, यही इनका काम हैगा। कोच्छ नई, ये लायबरेरी वगैरा सब बन्द होनी चाहिए।–ये ससुरे मोहल्ला ही बिगाड़ देगें।''[156]

'शतरंज के मोहरे' में–

1. "दरवाजा खोल खसम के सामने टेसुएँ ढलकाती हुई आयी चुड़ैल।"[157]

2. "कभी–कभी दिन में एकाध चक्कर लगा कि न लगा।"[158]

3. "सई साँझ से ही गाँव में ऐसा सन्नाटा छाया हुआ है कि मानों पूरी आबादी को साँप सूँघ गये हैं। कहीं पत्ता नहीं खटकता, चिरई का एक पूत भी नहीं झाँकता।[159]

'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष' में स्थानीय शब्दों का बाहुल्य है। इसके उदाहरण पिछले पृष्ठों पर दिये जा चुके हैं।

इस प्रकार स्थानीय भाषा का प्रयोग करने के कारण शब्दों का विकृत रूप अधिक दिखाई देता है। स्थानों, रीति–रिवाजों के नाम तथा लोक उपादानों का स्थानीय भाषा में ही विवरण दिया गया है। –

"हलदात की रस्म आरम्भ हुई। **गणेश नव ग्रहों** के सामने मन्नू को लेकर पूजन कराने बैठे। **चावल, मूँग, नमक, जौ पिसी हुई पिट्ठी, पीढ़ा, मूसल, चक्की** सब संजोयी गई। **सात सुहागिनों** ने **चक्की** में **नाज पीसा। पीढ़े पर बडियाँ तोड़ी।** मन्दिर वाले दालान में दीवार पर **गेरू पोत कर ऐपन से थापें की चीतन कारी** हुई। वहाँ **औलंग चढ़ाई के गीत** हुए लड़की को **ब्याह का कंगना** बाँधा गया। दूसरे दिन से **बानो** के **नहान** पड़ने लगे। **नाईन** जौ पीस कर लाई उसका **उबटन** बना। **दही, तेल, मेंहदी, रोली उबटन** मिलाकर **दूब मौली की कूची से सात बार लड़की के पैरों, घुटनों, कंधे और माथे पर तेल चढ़ाया गया।**"[160]

यहाँ तक कि विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले स्थानीय गीतों, सोहर, बनरा और नकटा आदि का बड़ा रोचक एवं सजीव भाषा में चित्रण है। और कहीं–कहीं इनके अर्थ भी दिये गये हैं।

6. युगीन विचार धाराओं के अनुरूप शब्दावली

'बूँद और समुद्र' में व्यक्तिवाद से संबंधित विचारों की शब्दावली देखिए– "व्यक्ति–व्यक्ति अवश्य रहे पर उसके व्यक्तिवादी चिन्तन में भी सामाजिक दृष्टिकोण रहना अनिवार्यहै।"[161]

पूँजीवाद का विरोध करते हुए–

"पूँजीवाद को उखाड़ फेंकना ज्यादा कठिन काम है।"[162]

7. दार्शनिकता का समावेश

"अपने विशिष्ट जीवन–दर्शन की शब्दों की अभिव्यक्ति के लिए लेखक शब्दों का चयन करता है। दार्शनिक विचारों की बोझलिता से जीवन–चित्रण उलझा–उलझा और अस्पष्ट सा प्रतीत होने लगता है। उदाहरणार्थ–

"काव्य में बखानी गयी योगिनी बाला की तरह मति–गतिहीन होकर स्तब्ध हो गई। मार्क्स, गाँधी आदि का दर्शन, बहस, वाहसा, एलक्शन, राजनीति, स्त्री स्वातन्त्रय, साहित्य, कला और संस्कृति, ज्ञान–विज्ञान भरी हलचल से भरी ऊपरी दुनियाँ से वह उसी तरह

बेमान हो गई जैसे–नींद से देह बिसर जाती है।''[163] एक अन्य उदाहरण– ''फागुन की रात आई। सरोवर के किनारे बसें फूलों की सुगन्धि–भार से लदे, मदमाते विरवों ने चाँद को अपनी गुइयाँ के साथ घर आने का न्यौता दिया। हवा बसंत को बहा लाई। अबोलों की नृत्य भरी चँचलता सोमरस के धनुष पर पैने शरों की तरह दसों दिशाओं को बेधनें लगी। बाहों से बाहें जकड़कर पुरुष की शक्ति और नारी के सिंगार में दान की होड़ लग गई। धरती पर संगीत ने जन्म पाया।''[164]

8. निरर्थक शब्दों का प्रयोग

जैसे– पानी वानी, चाय–वाय।

9. मनौवैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग

''उसकी इन उलझनों में एक निजी और गोपनीय उलझन भी पैना काम कर रही थी, अब भी करती है। पैना इसलिए कि अपनी इस उलझन को लेकर आज तक वह किसी के सामने अपना मन खोल नहीं सकी। बड़े भाई से लिहाज के मारे कुछ कहा नहीं जा सकता था, और बाहर किसी से भी कहकर वह अपनी नैतिकता, सच्चरित्रता पर ऑच नहीं आने देना चाहती थी। आज, चौबीस वर्ष की आयु तक कन्या देह से ब्रह्मचारिणी है। यद्यपि संस्कारों ने उसके मनोलोक में अब्रह्मचर्य नहीं फैलने दिया फिर भी वह मदन–दहन कर बीत राग तो नहीं ही हो पाई है। उम्र के तकाजे से पुरुष के अंग–संग की सहज, स्वाभाविक इच्छा कहीं उसके मन में भूखी रेंगती थी। पिता की काम विकृतियाँ,चाची की चरित्र हीनता और स्वयं उसकी सुन्दर जवानी को लालच के प्याले में पीने वाली पुरुष आँखें तथा इन सब बातों के साथ ही इस देश के अनेक आदर्श पुरुषों द्वारा कामवृत्ति के विकार समझने के उपदेश, दबे तौर पर निरन्तर उसे दो सिरे पर खींचकर हैरान किया करते थे। कामेच्छा और काम की इच्छा–दोनो साथ ही साथ उससे उलझती थी।''[165]

10. नये निर्मित–शब्द

शब्दों को नये सन्दर्भ में प्रयुक्त कर उन्हें नये विशेषण शब्दों के साथ जोड़ा गया है, जैसे–क्वांरी सांसें, सीपियाँ पलकें, डब–डबायी बत्तियाँ, सड़ा पपीता, आर्टिस्टपना। ''सैकड़ों, हजारों लिहाफों की गर्मी विधवा हो गई।''

11. शब्दों का विकृत–रूप

नागरजी ने अनपढ़ और अशिक्षित पात्रों के मुख से अंग्रेजी के अशुद्ध और विकृत शब्दों का प्रयोंग भी तद्नुरूप किया है। जैसे– पोलटिक, वौण्डरी, सुसाइटी, लौ (लव)। हिन्दी के भी अशुद्ध और बिगड़े हुए रूपों का प्रयोग मिलता है किन्तु, वह भी लेखक का अशुद्ध प्रयोग नहीं है। या तो लेखक व्यंग्य के रूप में अशुद्ध बोलने वालों की आलोचना करता है जैसे–कथा बाँचने वाले पण्डितों की अशुद्ध संस्कृत उच्चारण भाषा का उदाहरण है। अथवा–अनपढ़ लोगों द्वारा बोलें जाने वालें शब्दों का प्रयोंग जैसे–'शाक्सात'[166] 'जैसीकिस्न'[167]

12. लोकोक्तियाँ और मुहावरे

नागरजी ने अपने उपन्यासों में लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग नये अर्थ का बोध कराने के लिए किया है। ये लोकोक्तियाँ रूढ़ार्थ में नया अर्थ भर देती हैं। नागर जी ने कुछ नये मुहावरों का भी प्रयोग किया है। जैसे– "चार नजरों में बात करने की जितनी शक्ति होती है उतनी हजार जबानों में एक साथ मिलकर भी नहीं हो सकती।"[168] "अबे देख के नहीं चलता ? मारे जूतों के सारा **छायावाद ढीला कर दूंगा**।" "पत्नी आज सबेरे से सौत संवाद पर कई बार अपना पांच जन्य फूँक चुकी है।"[169]

नागरजी ने भाषा सौन्दर्य में वृद्धि करने और अर्थ को सरल बनाने हेतु अपने उपन्यासों में लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ–

लोकोक्तियाँ– "बाला पिये प्याला और फिर बाला के बाला।"[170], "जितने मुँह उतनी बातें।"[171], "नोन, तेल, लकड़ी।"[172], "सॉप का फन।"[173], "छब्बे बनने आये थे और दुबे बनकर लौट गये।"[174], "जहाँ सुई न जाय वहाँ फावड़ा चलाने की कोशिश।"[175], "बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेई।"[176], "सात–पांच की लकड़ी एक जाने का बोझा।"[177], "बन्दा जोड़े पली–पली मेहमान उड़ावे कुप्पा।"[178], "खरबूजा को देखकर खरबूजा रंग बदल देता है।"[179], "अन्धे के आगे रोएं अपने नैन खोए।"[180], "घर की देहली छोड़कर बाहर का पहाड़ पूजने क्यों जाऊँ।"[181], "बरमारे चाहे कन्या, जग्गी गुरु को दक्षिण से काम।"[182], "हीरा–हीरे को काटता है।"[183] , यन्द्री का लड़बड़ा, जिभ्या का फूहड़ा।"[184], "सूत न कपास कोरियों में धकापेल।"[185], "दिये को अपने नीचे का अन्धेरा दिखलाई नहीं देता।"[186]

मुहावरे– छाती पर मूंग दलना।[187], जहर की पुड़िया।[188], गाँठ के पूरे।[189], हवेली का नगाड़ा।[190], खून के आँसू।[191], दिन काटना।[192], बकरी बनना।,[193] बालू से तेल निकालना।[194], छाती पर सॉप लहराना।[195], ढोल में पोल होना।[196], भेजा गरम होना।[197], तीन तेरह होना।[198], मुँह चुराना।,[199] हाथों के तोते उड़ जाना।[200], मुंह दिखाना।[201], दूध का धोया होना।[202], खून का घूँट पीना।[203], आँखें और गला भर आना।[204], छठी का दूध याद आना।[205], शिकार होना।[206], चार दिन में चट–पट हो जाना।[207], अपनी धोती तले नगें होना।[208], दाल न गलना।[209], चेहरा चुकन्दर होना।[210], हड्डी–हड्डी बज उठना।[211], पानी में आग लगना।[212], मन में पानी भर आना।[213], पैर की धोवन।[214], भागे भूत की लंगोंटी।[215], होम करते हाथ जलाए।[216], देवता की तरह पुजने लगे।[217], दो नावों पर एक साथ पैर रखकर चलेगा तो डूबेगा ही।[218], ढोल के भीतर पोल।[219], पानी–पानी होकर बह चला।[220], सारा सुख–गुड़ गोबर हो गया।[221], खाते–खाते रबड़ी में सड़ांध भरी कीचड़ मिल गयी।[222], जो भगवान सूरत–सकल दी होती तो धरती पर पैर ही न पड़ते तेरे।[223], दाद की खुजली जैसी।[224], गुड़खायें पर गुल गुलों से परहेज करें।[225], गेहूँ के साथ धुन क्यों पिसे।[226]

जान छोड़कर चीखा।[227], आँखों का नूर बन गया।[228], अंधें की लाठी।[229], जल में रहकर मगर से बैर नहीं कर सकता।[230], धोबी से बस न चला तो गधे की गर्दन नापी।[231], सॉप मारा और लाठी भी न टूटने दी।[232], ईट से ईट बजा दी जायेगी।[233], आग में घी का काम कर गया।[234], छाती में मुह छिपाकर।[235], सॉप को मारना बहुत जरूरी है मगर लाठी को बचाना भी।[236], चार गवाँ कर छह बचाने में ही अक्ल मन्दी है।[237], गड़े मुर्दे उखड़ने लगे।[238], सिर पर जादू की तरह चढ़कर बोलती थी।[239], पत्ता कट जाना।[240], धोखे की टट्टी था।[241] नाक का बाल हो गया।[242], दाँत पीस कर बोला।[243], उड़ती चिड़िया के पर गिन सकते हैं।[244], आँख भी उठाने की जुर्रत कर सके।[245], मैं तेरा खून पी लूंगा।[246], खुद तुमने ही उसके लिए चारा बिखेरा था।[247], लोहे के चने चबवा दिए।[248]

13. लोकगीत

नागरजी ने अपने कई उपन्यासों में वातावरण सृजन हेतु लोक गीतों का भी प्रयोग किया है– रसिया कंतो द्वारा–

"मै तो सोय रही सपने में, मोय रंग डारो नंद लाल।
सपने में श्याम मेरे घर आए जी।
× × ×
हंस हंस के मोय कंठ लगाय जी,
मानो खोय खोय दौलत पाय जी।
खुले सपने में मेरे भाग
मेरी गई तपस्या जाग।।"[249]
"मोरे उठत जोबनवाँ में पीर।
पिया घर बेगि पधारौ।।"[250]

14 सूक्तियाँ

नागरजी ने अपनी भाषा में अर्थ गाम्भीर्य और अभिव्यंजना में परिष्कार करने हेतु सूक्तियों का प्रयोग किया है। नागर जी सूक्तियों और शाश्वत सत्यों के प्रयोग में सिद्ध हस्त हैं। इसी कारण उनके उपन्यासों की भाषा में प्रांजलता और भाव गाम्भीर्य स्वतः ही झलकता है। कुछ उदाहरण देखिए–

"पश्चाताप से बढ़कर कोई पाप नहीं होता है।"[251]
"श्रम साध्य पसीना मोती की बूंद बनता है।"[252]
"निष्क्रिय चिन्ता मूर्खों का काम है।"[253]

"युद्ध क्रोध नहीं बल्कि क्रोध की आँच पर सिद्ध किया जाने वाला रसायन है।"[254]

"नाता' शब्द भावना का रहस्य खोलने की कुंजी है।"[255]

"प्रेम थ्योरी नहीं प्रैक्टिस है।"[256]

"पति–पत्नी का नाता नित्य है, अनन्त है, अभेद्य है।"[257]

"विश्वास जीवन का आधार है।"[258]

"निकम्में के प्रति दया करना अमानुषिकता है।"[259]

"प्रेम बहती धारा की स्थिर परछाई है।"[260]

"कुटुम्ब व्यक्तिगत प्रेम से बड़ी वस्तु है।"[261]

"जिस पर रीझों वही सुन्दर है।"[262]

"कमजोरियाँ समाज व्यापी होती है।"[263]

"जहाँ सिद्धान्त निष्कपट रूप से आचरण में लाया जाता है वहाँ विनाशात्मक–बुद्धि काम नहीं करती।"[264]

"खरा समाजवादी वही है जो दूसरों के लिए, जिये और जीने दे।"[265]

"आत्म विश्वास ही नये युग का धर्म है।"[266]

"सौन्दर्यानुभूति निश्चय ही एक जगह अथाह और वर्णनातीत हो जाती है।"[267]

नागरजी ने कुछ **संस्कृत सूक्तियों** का भी प्रयोग किया है। जैसे–

"जोगःकर्मसु कौशलम्"[268]

"सत्य श्रमाभ्याम् सकलार्थ सिद्धिः।"[269]

कुछ संस्कृत सूक्तियों का **छायानुवाद** भी किया है, जैसे–

"परोपकार, पुण्य और परपीडन पाप है।"[270](परोपकारः पुण्याय,पापाय पर पीडनम्)

"बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।"[271]

'मानस का हंस' उपन्यास में इनका अत्यधिक प्रयोग किया गया है इस कारण उपन्यास की भाषा में निखार अपनी चरमावस्था पर है। इस उपन्यास में नागर जी ने तुलसीदास ..... द्वारा प्रयुक्त लोकोत्तियों और सूक्तियों को बड़ी ही निपुणता और उपयुक्तता के साथ अपनी भाषा में पिरोया है।

वस्तुतः विहंगावलोकन से ज्ञात होता है कि –

'बूंद और समुद्र' की भाषा विभिन्न भाव–भूमियों पर चलने के कारण अपनी व्यापकता में अद्वितीय है। सज्जन, महिपाल, डॉ0 शीला स्विंग और वनकन्या की भाषा शैली में नागरिकता का पुट, परिष्कार और परिपक्वता है। सज्जन की भाषा में विचार तत्व की प्रधानता, तथा महिपाल की भाषा में साहित्यिक गरिमा, ओज, भावुकता और आक्रोश है। वन कन्या और शीला की भाषा चलताऊ है। वन कन्या उर्दू मिश्रित शब्दावली का प्रयोग करती है कभी–कभी अंग्रेजी शब्दों का

भी। शीला उर्दू के साथ–साथ अंग्रेजी का खुलकर प्रयोग करती है। ताई, कर्नल, साधु बाबा, नन्दों, बड़ी आदि गौण पात्रों की भाषा पूर्णतः आंचलिक है। ताई की भाषा में तीक्ष्णता, संक्षिप्तता और आक्रोश का पुट है। अवस्थानुसार बुद्धि जीवियों की अपनी भाषा है। कर्नल की भाषा में अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी, लखनवी आदि मध्यवर्गीय खिचड़ी भाषा का प्रयोग है।

'बूंद और समुद्र' में कथा वर्णन की भाषा सरल स्वाभाविक बोल–चाल की अलंकृत, काव्यात्मक एवं गम्भीर है। सरलता, रोचकता, प्रवाहमयता, प्रसंगानुकूलता, चित्रात्मकता, मूर्ति विधायिनी क्षमता आदि विशेषताओं ने कथा वर्णन की भाषा को कलात्मक बना दिया है। शब्द–शिल्प की दृष्टि से 'बूंद और समुद्र' विभिन्न भाषा शब्दों के मेल से एक विशिष्ट शब्द–कोश की रचना करता है।

डॉ0 रामविलास शर्मा द्वारा 'बूंद और समुद्र' की भाषा–संरचना पर लिखी गयी ये पंक्तियाँ सर्वथा सार्थक हैं– ''अमृत लाल नागर द्वारा किया हुआ एक मुहल्ले का यह 'लिंग्विस्टिक' सर्वे भाषा विज्ञान की सामग्री का अद्‌भुत पिटारा है। अब तक किसी भी देशी–विदेशी भाषा में एक नगर की बोलियों का निदर्शन करने वाला ऐसा उपन्यास मेरे देखने में नहीं आया। इन शैलियों में भाषा और समाज का इतिहास बोलता है।''[272]

इसी संदर्भ में डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी की यह वाक्यावली भी कितनी सटीक है– ''बोल–चाल के लहजे, भाषा के लटके, स्थानीय बोलियाँ, पात्रों के मानसिक उतार–चढ़ाव, पात्रों की भाव–भंगिमा, परिस्थितियों की नाटकीयता जितने सुन्दर ढंग से नागर जी ने दी है, देश–काल, वातावरण, पात्र, मनोवृत्ति सभी रूपों में, कथोपकथन की भाषा जितनी समर्थ नागर जी की है, शायद ही सफलता की इस ऊँचाई को हिन्दी के किसी अन्य कथाकार ने छुआ हो।''[273]

'शतरंज के मोहरे' नवाबी सांस्कृतिक परिवेश में रचित होने के कारण अरबी, फारसी भाषा की शब्दावली से पूर्ण है। मुस्लिम पात्र अरबी, फारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग अधिक करते हैं। कभी–कभी वे अवधी भाषा का प्रयोग भी कर जाते हैं। ग्रामीण–पात्रों की भाषा में आंचलिकता के साथ ग्रामीणता का पुट है। अंग्रेजी–भाषी पात्र जब हिन्दी का प्रयोग करते हैं तब उनके मुख से 'त' की ध्वनि 'ट' के रूप में, 'द' की ध्वनि 'ड' के रूप में, 'ठ' की ध्वनि 'ट' के रूप में और 'ण' की ध्वनि 'र' के रूप में उच्चरित होती है। कई पात्रों द्वारा 'बैसवाड़ी' का प्रयोग भी मिलता है। आलंकारिक भाषा का प्रयोग भी मिलता है।

'अमृत और विष' की भाषा प्रायः सरल और अस्वाभाविक बोल–चाल की भाषा है। अरबिन्द शंकर के आत्म–कथांश की भाषा प्रसंगानुकूल, गम्भीर, चिन्तन प्रधान, परिमार्जित, प्रवाहपूर्ण और साहित्यिक है। शेख फकीर मोहम्मद, सत्तो बाबू तथा पुत्ती गुरु के कथनों की भाषा में स्थानीयता की झलक है। सरल, परिष्कृत तथा कलात्मक शब्दों के साथ लोक प्रसंगानुसार लोक वाणी में प्रचलित उर्दू शब्दों, अंग्रेजी शब्दों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी पर्याप्त प्रयोग

मिलता है। संक्षेप में इस उपन्यास की भाषा–शैली साहित्यिक, मनोरंजक तत्वों से पूर्ण, प्रवाहमय एवं अनेक शिल्पगत विशेषताओं से युक्त है।

'सात घूंघट वाला मुखड़ा' की भाषा रंजक, कवित्वमय और प्रवाह पूर्ण है। उर्दू शब्दों का निखरा हुआ रूप प्राप्त होता है।

'एकदा नैमिषारण्ये' में इसके प्रारम्भिक अंश में ब्रज भाषा की शब्दावली भी प्रयुक्त है। पात्रों की सूक्ष्म मनः स्थितियों के चित्रण में नागर जी का भाषा सामर्थ्य और भी उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है। वस्तुतः इस उपन्यास की भाषा में सम्प्रेषण क्षमता, सहजता, सरलता बोध गम्यता के साथ ही अलंकार, कहावतें, मुहावरें, वर्णनात्मक शैली की कलात्मकता और संस्कृत मिश्रित भाषा का अद्‌भुत सामन्जस्य है।

'मानस हा हंस' की भाषा, कथा, घटना, परिवेश, पात्र सभी को जीवन्तता प्रदान करने में समर्थ है। अवध क्षेत्र की पृष्ठ भूमि पर रचित होने के कारण इसमें अवधी भाषा का निखरा हुआ रूप दृष्टि–गोचर होता है। भाषा में काव्यात्मकता, चित्रात्मकता एवं मूर्ति विधायिनी शक्ति का कुशल संयोजन हुआ है। अलंकारों का प्रयोग अनूठा बन पड़ा है। पात्र और परिवेश दोनों ही अधिकांश में लोक–जीवन से सम्बद्ध होने के कारण तत्सम शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम और तद्‌भव शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है– घरैतिन, मेहरारू, भोरहरे, बिटौना जैसे प्रयोग नागर जी के भाषाधिकार को प्रमाणित करते हैं। अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग सहजता के साथ हुआ है। मराठी, गुजराती बंगला आदि भाषाओं के उदाहरण भी पात्रानुकूल भाषा में मिल जाते हैं।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' की भाषा में लोक–जीवन में प्रयुक्त प्रतिनिधि भाषा की गहराई तक पैठकर उसे एक विशिष्ट तेवर के साथ प्रस्तुत करने में नागर जी को सफलता प्राप्त हुई है। भाषा पात्रों की मनः स्थिति, विचाराभिव्यक्ति तथा जीवन के प्रत्येक पहलू का स्पर्श करती हुई प्रवहमान है। नागर जी के पास आंचलिक सम्बोधनों, मुहावरों, लोकोक्तियों तथा प्रतीकों का इतना बड़ा स्टाक है कि उपन्यास का हर ब्यौरा एक–दूसरे से अलग और विशिष्ट दीखता हैं। मेहतर समाज में प्रयुक्त होने वाली भाषा और बोली को अत्यन्त बारीकी एवं सहजता के साथ प्रस्तुत किया है। लड्‌डन की माँ बोलती है– "ऐ मुई, सूप बोले तो बोले पर तू हरजाई बहत्तर छेद वाली चलनी, तू भला क्या बोलेगी ?"[274] प्रसन्नता की स्थिति में नागर जी के पात्र अत्यन्त **रंजक भाषा** का प्रयोग करते हैं। मोहना अपनी पत्नी निर्गुनियाँ को दुलारते हुए कहता है– "कोऽच्छ नई, कल मास्टर मोहन अपनी डियर मैडम को बाइसिकिल पर सिटान कराके सान से यह गो और वह गो, वन–टू–थिरी फरा फर्र।"[275] क्रोधा वेश में उपन्यास के पात्र अपनी मानसिकता के साथ प्रस्तुत होकर अपनी क्रिया–प्रतिक्रिया सहज ढंग से व्यक्त करते है। माई निर्गुनियाँ को फटकारती हुई गरजती है– "अरी बहरी है क्या ? सुनती नहीं। तेरी माँ .....में कीड़े पड़े। अबकी जो नहीं सुना निगोड़ी तो उठ के चट्‌टियों–ई–चट्‌टियों मांरूगी तुझे, सारा छिनाल पन भूल जायगी रंडो।"[276] श्योम बक्श की अपनी अलग चटकीली गँवई भाषा है– "हराम जादी ! बाप सैकड़न

हजारन हिन्दू बहू–बेटियन का सुहाग उजाड़िस .....(गाली) अपने का बहुत बड़ा मनई समझत है ! यहि का बाप सार खुले आम हम हिन्दू लोगन का कुत्ता कहिस ! चार–छः दिन पहले सार भरी सभा मां कहिस अकि सब हिन्दुन का मारि–मारि के भंगी बनाय डारौ। उनते मुसलमान का पैखाना उठवाऔ, उनकी जनाना लोगन का पतुरिया बनाय के नचाओ ससुरिन का। तो अब हम लौग ई सार मियंटी का भंगियों बनइबै और पतुरियों बनइबै.....।[277] क्रिश्चियन मास्टर जैक्सन अंग्रेजी मिश्रित भाषा बोलता है– "ओ ! दैट इज वेरी स्माल मैटर माई डियर ब्वाय। टुम लोग जाल्डी से बैप्टिस्म ले लो। क्रिस्चेन ब्रडर, हुड में आ जाओ। नाइन्टीन ट्वन्टी सिक्स का इयर खटम होने से पैले टुम लाई जीजस का गिरोह में आ जाओं। यू सी मैडम मोहन, शिकान्डर मेसी हमारे साठ काम करटा आमारा। चोकरा.....।"[278]

इस प्रकार 'नाच्यौ बहुत गोपाल' का प्रत्येक पात्र अपने यथार्थ परिवेश में बंधा हुआ पृथक–पृथक भाषा बोलता है। भाषा रंग–बिरंगे छोटे–छोटे बल्वों की झिलमिलाती लड़ी की भांति चमकती हुई अपने रंगों का बोध कराती है।

'खंजन नयन' की कथा–वस्तु का क्षेत्र 'ब्रज' होने के कारण इसकी भाषा अधिकांश 'ब्रज' भाषा ही है। यत्र–तत्र पात्रानुसार शुद्ध साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया गया है। 'सूर' की भाषा प्रसंगानुकूल ब्रज, अवधी और साहित्यिक है। प्रसंग एवं पात्रानुसार उर्दू, फारसी तथा अरबी भाषा का प्रयोग भी मिलता है। उपन्यास के नायक 'सूर' की भाषा–शैली चिन्तन प्रधान हैं। प्रसंगानुकूल पौराणिक और दार्शनिक भाषा के प्रयोग भी मिलते है। भाषा में संस्कृत श्लोकों, उक्तियों के प्रयोग यत्र–तत्र दृष्टि गोचर होते है। लोक–गीतों, मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों से उपन्यास की भाषा समृद्ध हुई है। भाषा सहज, सरल, लाक्षणिकता पूर्ण और व्यंजनात्मक है।

संक्षेप में नागर जी के सभी उपन्यासों की भाषा उनके विषयों के अनुकूल, भाषा के समस्त गुणों, शब्द शक्तियों, अप्रस्तुत विधान, पात्रानुकूलता और चित्रोपमता आदि गुणों से विभूषित है।

निष्कर्ष

अतः यह कहना असंगत न होगा कि नागर जी कुशल शब्द शिल्पी हैं और नवीन अप्रस्तुत विधान का प्रयोग कर भाषा के सौंदर्य को निखार देते हैं। नागर जी का अप्रस्तुत विधान अत्यधिक चिंतन और भावुकता की अवस्था का प्रति फलन है। भावुकता के कारण ही उसमें स्वाभाविकता है। उनकी उपमाओं में नवीनता, जीवन्तता और मौलिकता है। उनके रूपक भाषा की व्यंजना शक्ति को बढ़ावा देने वाले तथा अपनापन लिए हुए हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भाषा संबंधी सभी दृष्टियों से विचार करने पर– "नागर जी भाषा के डिक्टेटर है।"[279] "उनकी भाषा कबीर, चंदबरदायी, तुलसी, नजीर और भारतेन्दु तथा प्रेमचन्द की भाँति समन्वयकारी नीति को लेकर चली है। नागर को संस्कृत भाषा रिक्थ में मिली है, बृज भाषा में उनका शैशव और युवावस्था स्पंदित हुई है, अवधी लखनऊ

निवास के कारण उन्हें अनायास ही प्राप्त हो गयी। खड़ी बोली में उर्दू की चासनी घोलना उनका अपना वैशिष्ट्य है। वाणी कलाकार के सम्मुख हांथ जोड़कर खड़ी रहती है और आज्ञा प्राप्त करते ही भावानुरूप अभिव्यक्ति के लिए तत्पर रहती है। उनका शब्दकोश अक्षय एवं विशाल है। इसी कारण शब्द कर्त्तव्य परायण सैनिक की भाँति कलाकर की ओर निहारते रहते हैं, कि न जाने कब किसको अपना कर्त्तव्य निभाने की आज्ञा मिल जाय।''[280]

संकेत सन्दर्भ–

1. साहित्यालोचन। पृष्ठ–259
2. Style is the technigue of Expression
   Problem of stile- J.Middleton-Murray. Page-5
3. Style-it is personality. Clothed in words" Page-1
   Lucas style. Page-59
4. Robert Penn Warren-Fundamentals of good writing. Page-38
5. Style-means That Personal idiosyncracy of Expression by Whicth we Recognisea Writer " J.Middleton Murray-The Problem of style. Page-4
6. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–431
7. अमृत और विष। पृष्ठ–320–321
8. ,, ,, पृष्ठ–369–370
9. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–14
10. अमृत और विष। पृष्ठ–195
11. ,, ,, पृष्ठ–372
12. ,, ,, पृष्ठ–89
13. सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–107
14. ,, ,, ,, पृष्ठ–133
15. अमृत और विष। पृष्ठ–428
16. मानस का हंस। पृष्ठ–13
17. ,, ,, पृष्ठ–13
18. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–220
19. ,, ,, पृष्ठ–136
20. ,, ,, पृष्ठ–72
21. ,, ,, पृष्ठ–38
22. खंजन नयन। पृष्ठ–48
23. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–52
24. ,, ,, ,, पृष्ठ–57
25. सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–34–35
26. ,, ,, ,, पृष्ठ–37
27. डॉ0 त्रिभुवन सिंह–हिन्दी उपन्यासः शिल्प और प्रयोग। पृष्ठ–397
28. समीक्षा, 15 अक्टूबर 1972।

29.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–467–468
30.	,, ,,	पृष्ठ–473
31.	मानस का हंस।	पृष्ठ–270–271
32.	,, ,,	पृष्ठ–374
33.	अमृत और विष।	पृष्ठ–319
34.	,, ,,	पृष्ठ–325
35.	,, ,,	पृष्ठ–329
36.	,, ,,	पृष्ठ–335
37.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–10
38.	,, ,,	पृष्ठ–21
39.	,, ,,	पृष्ठ–10
40.	,, ,,	पृष्ठ–22
41.	,, ,,	पृष्ठ–263–264
42.	,, ,,	पृष्ठ–273
43.	,, ,,	पृष्ठ–101
44.	,, ,,	पृष्ठ–102
45.	,, ,,	पृष्ठ–54
46.	,, ,,	पृष्ठ–97
47.	,, ,,	पृष्ठ–233
48.	,, ,,	पृष्ठ–233
49.	,, ,,	पृष्ठ–255
50.	,, ,,	पृष्ठ–245
51.	,, ,,	पृष्ठ–547
52.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–25
53.	,, ,,	पृष्ठ–111
54.	,, ,,	पृष्ठ–125–126
55.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–74
56.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–04
57.	खंजन नयन।	पृष्ठ–81
58.	,, ,,	पृष्ठ–116
59.	,, ,,	पृष्ठ–133
60.	सतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–243

61. उपन्यास कारः अमृतलाल नागर। पृष्ठ–159
62. अमृत और विष। पृष्ठ–334
63. ,, ,, पृष्ठ–341
64. ,, ,, पृष्ठ–340
65. ,, ,, पृष्ठ–355
66. ,, ,, पृष्ठ–412
67. ,, ,, पृष्ठ–513
68. ,, ,, पृष्ठ–478
69. ,, ,, पृष्ठ–647
70. ,, ,, पृष्ठ–479
71. मानस का हंस। पृष्ठ–99
72. बूंद और समुद्र। पृष्ठ–10
73. ,, ,, पृष्ठ–38
74. ,, ,, पृष्ठ–78
75. ,, ,, पृष्ठ–88–89
76. ,, ,, पृष्ठ–95
77. ,, ,, पृष्ठ–99
78. ,, ,, पृष्ठ–136
79. ,, ,, पृष्ठ–268
80. ,, ,, पृष्ठ–275
81. ,, ,, पृष्ठ–353
82. ,, ,, पृष्ठ–372
83. ,, ,, पृष्ठ–377
84. ,, ,, पृष्ठ–486
85. ,, ,, पृष्ठ–528
86. सात घूँघट वाला मुखड़ा। पृष्ठ–17
87. ,, ,, ,, पृष्ठ–26
88. ,, ,, ,, पृष्ठ–53
89. ,, ,, ,, पृष्ठ–150
90. खंजन नयन। पृष्ठ–70
91. ,, ,, पृष्ठ–70
92. ,, ,, पृष्ठ–61

93.	खंजन नयन।	पृष्ठ–191
94.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–05
95.	,, ,,	पृष्ठ–57
96.	,, ,,	पृष्ठ–64
97.	,, ,,	पृष्ठ–85
98.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–114
99.	,, ,,	पृष्ठ–232
100.	,, ,,	पृष्ठ–232
101.	,, ,,	पृष्ठ–91
102.	मानस का हंस।	पृष्ठ–104
103.	,, ,,	पृष्ठ–104
104.	एकदा नैमिषारण्ये	पृष्ठ–313
105.	,, ,,	पृष्ठ–314
106.	,, ,,	पृष्ठ–335
107.	अमृत और विष।	पृष्ठ–646
108.	,, ,,	पृष्ठ–505
109.	,, ,,	पृष्ठ–223
110.	,, ,,	पृष्ठ–220
111.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–460
112.	,, ,,	पृष्ठ–260–261
113.	,, ,,	पृष्ठ–105
114.	अमृत और विष।	पृष्ठ–220
115.	खंजन नयन।	पृष्ठ–68
116.	,, ,,	पृष्ठ–71
117.	,, ,,	पृष्ठ–117
118.	,, ,,	पृष्ठ–120
119.	,, ,,	पृष्ठ–56
120.	,, ,,	पृष्ठ–61
121	,, ,,	पृष्ठ–123
122	,, ,,	पृष्ठ–148
123.	,, ,,	पृष्ठ–159
124.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–37

125.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–72
126.	,, ,, ,,	पृष्ठ–148
127.	,, ,, ,,	पृष्ठ–150
128.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–95
129.	,, ,,	पृष्ठ–102
130.	,, ,,	पृष्ठ–336
131.	,, ,,	पृष्ठ–419
132.	,, ,,	पृष्ठ–339
133.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–462
134.	,, ,,	पृष्ठ–351
135.	,, ,,	पृष्ठ–377
136.	,, ,	पृष्ठ–50
137.	,, ,,	पृष्ठ–369
138.	,, ,,	पृष्ठ–56
139.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–65
140.	खंजन नयन।	पृष्ठ–64
141.	,, ,,	पृष्ठ–94
142.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–458
143.	अमृत और विष।	पृष्ठ–44
144.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–546
145.	,, ,,	पृष्ठ–504
146.	,, ,,	पृष्ठ–94
148.	,, ,,	पृष्ठ–97
149.	,, ,,	पृष्ठ–233
150.	,, ,,	पृष्ठ–55
151.	,, ,,	पृष्ठ–343
152.	,, ,,	पृष्ठ–551
153.	,, ,,	पृष्ठ–511
154.	,, ,,	पृष्ठ–518
155.	,, ,,	पृष्ठ–524
156.	अमृत और विष।	पृष्ठ–319

157. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–31
158. ,, ,, पृष्ठ–30
159. ,, ,, पृष्ठ–127
160. अमृत और विष। पृष्ठ–77
161. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–603
162. ,, ,, पृष्ठ–489
163. ,, ,, पृष्ठ–278
164. ,, ,, पृष्ठ–31
165. ,, ,, पृष्ठ–260
166. ,, ,, पृष्ठ–57
167. ,, ,, पृष्ठ–154
168. ,, ,, पृष्ठ–208
169. ,, ,, पृष्ठ–183
170. ,, ,, पृष्ठ–105
171. ,, ,, पृष्ठ–136
172. ,, ,, पृष्ठ–136
173. ,, ,, पृष्ठ–143
174. ,, ,, पृष्ठ–267
175. ,, ,, पृष्ठ–329
176. ,, ,, पृष्ठ–401
177. ,, ,, पृष्ठ–421
178. ,, ,, पृष्ठ–572
179. ,, ,, पृष्ठ–544
180. अमृत और विष। पृष्ठ–67
181. ,, ,, पृष्ठ–141
182. ,, ,, पृष्ठ–360
183. ,, ,, पृष्ठ–401
184. खंजन नयन। पृष्ठ–70
185. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–39
186. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–196
187. ,, ,, पृष्ठ–21
188. ,, ,, पृष्ठ–66

189.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–87
190.	,, ,,	पृष्ठ–110
191.	,, ,,	पृष्ठ–121
192.	,, ,,	पृष्ठ–121
193.	,, ,,	पृष्ठ–123
194.	,, ,,	पृष्ठ–136
195.	,, ,,	पृष्ठ–136
196.	,, ,,	पृष्ठ–136
197.	,, ,,	पृष्ठ–183
198.	,, ,,	पृष्ठ–207
199.	,, ,,	पृष्ठ–268
200.	,, ,,	पृष्ठ–273
201.	,, ,,	पृष्ठ–273
202.	,, ,,	पृष्ठ–366
203.	,, ,,	पृष्ठ–367
204.	,, ,,	पृष्ठ–445
205.	,, ,,	पृष्ठ–473
206.	,, ,,	पृष्ठ–484
207.	,, ,,	पृष्ठ–484
208.	,, ,,	पृष्ठ–519
209.	,, ,,	पृष्ठ–539
210.	अमृत और विष।	पृष्ठ–57
211.	,, ,,	पृष्ठ–79
212.	,, ,,	पृष्ठ–79
213.	,, ,,	पृष्ठ–209
214.	बूँद और समुद्र।	पृष्ठ–272
215.	अमृत और विष।	पृष्ठ–54
216.	खंजन नयन।	पृष्ठ–29
217.	,, ,,	पृष्ठ–180
218.	,, ,,	पृष्ठ–43
219.	,, ,,	पृष्ठ–51
220.	,, ,,	पृष्ठ–51

221.	खंजन नयन।	पृष्ठ–54
222.	,, ,,	पृष्ठ–54
223.	,, ,,	पृष्ठ–57
224.	,, ,,	पृष्ठ–70
225.	,, ,,	पृष्ठ–71
226.	,, ,,	पृष्ठ–116
227.	,, ,,	पृष्ठ–123
228.	,, ,,	पृष्ठ–131
229.	,, ,,	पृष्ठ–128
230.	,, ,,	पृष्ठ–146
231.	,, ,,	पृष्ठ–215
232.	,, ,,	पृष्ठ–217
233.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–128
234.	,, ,,	पृष्ठ–132
235.	,, ,,	पृष्ठ–207
236.	,, ,,	पृष्ठ–211
237.	,, ,,	पृष्ठ–211
238.	,, ,,	पृष्ठ–218
239.	,, ,,	पृष्ठ–219
240.	,, ,,	पृष्ठ–221
241.	सात घूँघट वाला मुखड़ा।	पृष्ठ–56
242.	,, ,, ,,	पृष्ठ–60
243.	,, ,, ,,	पृष्ठ–84
244.	,, ,, ,,	पृष्ठ–95
245.	,, ,, ,,	पृष्ठ–97
246.	,, ,, ,,	पृष्ठ–113
247.	,, ,, ,,	पृष्ठ–132
248.	,, ,, ,,	पृष्ठ–143
249.	खंजन नयन।	पृष्ठ–60
250.	शतरंज के मोहरे।	पृष्ठ–11
251.	एकदा नैमिषारण्ये।	पृष्ठ–457
252.	,, ,,	पृष्ठ–439

253. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–311
254. ,, ,, पृष्ठ–547
255. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–191
256. ,, ,, पृष्ठ–233
257. ,, ,, पृष्ठ–269
258. ,, ,, पृष्ठ–291
259. ,, ,, पृष्ठ–401
260. ,, ,, पृष्ठ–412
261. ,, ,, पृष्ठ–496
262. खंजन नयन। पृष्ठ–129
263. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–526
264. ,, ,, पृष्ठ–538
265. ,, ,, पृष्ठ–545
266. ,, ,, पृष्ठ–582
267. अमृत और विष। पृष्ठ–231
268. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–458
269. अमृत और विष। पृष्ठ–44
270. बूँद और समुद्र। पृष्ठ–499
271. ,, ,, पृष्ठ–504
272. आस्था की समस्या : शीर्षक लेख–आलोचना–अंक–20। पृष्ठ–83
273. अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–95
274. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–103
275. ,, ,, ,, पृष्ठ–109
276. ,, ,, ,, पृष्ठ–84
277. ,, ,, ,, पृष्ठ–267–268
278. ,, ,, ,, पृष्ठ–118
279. डॉ0 दामोदर वाशिष्ठ–उपन्यासकार : अमृतलाल नागर। पृष्ठ–163
280. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृष्ठ–164

अध्याय–ग्यारह

उपसंहार।

वस्तु–शिल्पगत मूल्यांकन।

निष्कर्ष।

उपसंस्कारक–ग्रन्थ–सूची।

उपसंहार

वस्तु–शिल्पगत मूल्यांकन–

लगभग एक दर्जन से ऊपर उपन्यासों की रचना करने वाले नागरजी ने अपने सामाजिक उपन्यासों में विशेषकर 'बूँद और समुद्र' 'अमृत और विष' में उस पीढ़ी को लिया है जो आधुनिक और मध्य कालीनता के भँवर में चक्कर काट रही है। सम–सामाजिकता के माध्यम से उस पीढ़ी के तनावों, संघर्षो और खिचावों को उभारने का प्रयास किया हैं। उनके रहन–सहन, बोल–चाल, हाव–भाव, आचार–विचार और संस्कारों का लेखा जोखा किया गया है। उन्होनें इस पीढ़ी के जीवन की संगति–असंगति और विसंगति को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। उनके उपन्यासों के माध्यम से आज की भ्रमित पीढ़ी अपने लक्ष्य की खोज में दिखाई देती है। किं करोति ? क्व गच्छामि ? की मूक वेदना से उसके जीवन में अशान्ति और व्याकुलता है। वे कहीं 'वनकन्या' और सज्जन को 'बाबा राम जी' जैसे निष्काम सेवी से भेंट करा, ठिकाना देते है, तो कहीं 'रमेश' को सांत्वना और पुचकार देते दिखाई देते है। अतः उपन्यासकार केवल विकृतियों को उद्घाटन करके ही किसी समस्या का समाधान नही करते, अपितु उसका विधायक मार्ग भी प्रस्तुत करते है। 'वन कन्या', 'सज्जन' और 'रमेश' का मार्ग जैसे सीधा–साधा है– चाहे वह आपदाओं से पूर्ण हो, और कोई भी नवीन मार्ग आपदाओं से पूर्ण होगा ही।

कभी–कभी कुछ आलोचकों का यह मन रहता है कि ''नागरजी के उपन्यासों में प्राचीन मान्यताएँ उगमगा रही है और विश्वास टूट रहे हैं, तथा प्रचीन सत्य आँखों से ओझिल हो रहे हैं।''[1] किन्तु यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि **नागर आस्थाओं और विश्वसों वाले उपन्यासकार है।** 'बूँद और समुद्र' में आस्थाएँ 'बाबा राम जी' के माध्यम से पल्लवित हुई है, 'अमृत और विष' 'हाजीमियाँ' के माध्यम से प्राचीन और नवीन का समन्वय कराकर तथा हिन्दू–मुस्लिम समन्वय पक्रिया को रचनात्मक रूप प्रदान किया गया है। उपन्यासकार अनागत के संबंध में चिन्ताकर व्यवस्थाएँ देता है। वह भविष्य को ऐसे दृष्किाण से देखता है, जहाँ सदाबहार है। जहाँ आशा है, नैराश्य और धुँधलका नहीं। उसकी राह सीधी और साफ है। क्या सेवा का मार्ग पुरातन होते हुए भी आधुनिक युग में डगमगा रहा है ? इसके मत और विचार प्राचीनता के संदर्भ में आधुनिक जीवन के लिए उपादेयता रखते हैं। नवीन प्राचीन विचारों से पूर्णतया विच्छिन्न नही हो सकता। प्रचीन और नवीन का अभेद्य और अटूट संबंध है। नागरजी एक ऐसे समन्वयात्मक दृष्टि सम्पन्न कलाकार हैं जो विधायक है, सशक्त है और विश्रृंखलित समाज में एक रूपता लाने वाली है। 'एकदा नैमिषारण्ये' में कथा पौराणिक और सांस्कृतिक एकीकरण से संबंधित है। उसके माध्यम से आधुनिक भारतीय की अत्यधिक जटिलता एंव संवेदन उत्पन्न करने वाली समस्या जातीय संगठन,

राष्ट्रीय एकता का विचारोत्तेजक समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'सोमाहुति' केवल पौराणिक ही नही, आधुनिक भारत के एकीकरण में प्रयासरत तत्वचिंतक के रूप चित्रित हुए है। ऐसे ही 'बाबा राम जी' का व्यक्तित्व मध्यकालीन तथा आधुनिकता–बोध के सम्मिश्रण का चिंतन परिणाम है।

नागरजी के उपन्यासों की **कथावस्तु** अत्यधिक विशाल फलक पर अवतरित होती है। वे समग्रतावादी उपन्यासकार हैं। उनकी लेखनी–तूलिका से समाज के ऐसे चित्र भी चित्रित किए गए हैं जो सूक्ष्म हैं और अन्धकार में पड़े हुए थे। उनके उपन्यासों में गली–कूचों, टोले–मुहल्लों का जीवन बोल उठा है। उनके चित्रों में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के चित्र उपलब्ध हो जाते है। उन्होने समाज के प्रत्येक स्तर से अपने उपन्यासों की सामग्री बटोरी है। सभी के प्रति उनकी आत्मीयता और संवेदनशीलता बनी रहने के कारण समाज का समग्ररूप देने में समर्थ हुए है। उनके उपन्यासों में फैले हुए विभिन्न वर्ण, जातियों की अवस्था और स्वभाव, उनका सांस्कृतिक धरातल तथा उनके अनुरूप कुंठाओं का अत्यधिक सजीव चित्रण हुआ है।

उपन्यास–रचना एक कला है और उसका शिल्प कला की चरम परिणति। अतः शिल्प और कला यदि एक–दूसरे के पर्याय नही, तो परस्पर सम्बन्धित अवश्य है। सौन्दर्य–सृष्टि के प्रसंग और उसकी अनुभूति के क्रम में कला स्वतः ही अवतरित होती है। किसी भी उपन्यास के कला–शिल्प का मूल्यांकन न केवल भाषा–शैली और प्रतीकान्वेषण के सहारे किया जा सकता है, अपितु उसके लिए आवश्यक है कि हम कथा–शिल्प, चरित्र–शिल्प, संवाद–शिल्प और परिवेश की सम्मूर्तन शैली को भी देखें समझे। यह ठीक है कि किसी एक उपन्यासकार का शिल्प दूसरे से मिलता–जुलता नहीं हो सकता है। कारण शिल्प एक गतिशील रचना–पक्रिया है।

नागरजी के उपन्यासों में कथा–वस्तु नये–नये प्रयोगों को लेकर गठित है। केवल शिल्प ही में बनने वाले उपन्यासाकारों ने वस्तु के बन्धन को सर्वथा अस्वीकार किया है किन्तु उपन्यास में जीवन के छोटे या बड़े अंशो का ऐसा चित्र होना चाहिए जो सजीव होकर मानव चेतना की व्यंजित कर सके।

नागरजी ने अपने उपन्यासों में कहानीपन को इन्सान की घुट्टी में पड़ी आदत के समान प्रयोग किया है, उनके कुछ उपन्यासों में नवीन प्रयोग भी मिलते है। 'सेठ बाँकेमल', 'अमृत और विष' तथा 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' में आत्मविश्लेषणात्मक यथार्थ पद्धतियों में प्रयोग किये गए है, किन्तु, प्रयोगात्मक होने पर भी नागर जी की सभी रचनाएँ यथार्थ के धरातल पर ही आधारित हैं। नागरजी के उपन्यासों का ताना–बाना सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों से बुना हुआ है। 'बूँद और समुद्र' अमृत और विष', 'एकदा नैमिषारण्ये', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन' विशाल फलक पर अंकित हैं। 'महाकाल', 'सुहाग के नूपुर', 'शतरंज के मोहरे', 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' और 'नाच्यौ बहुत गोपाल' के कथा फलक मध्यम आकार–प्रकार के हैं। 'सेठ बाँकेमल' अत्यन्त लघु आकार का उपन्यास है। सभी उपन्यास विशेष वस्तु और समस्याओं से पोषित हैं। भाव–सौन्दर्य व्यंग्यार्थ में फलित हुआ है। तद्युगीन प्रभाव ने वस्तु–तत्व

में मानवीय संवेदनाओं के साथ–साथ शिल्प को एक नई गति प्रदान की है। नागरजी के उपन्यासों की सांकेतिक वस्तु व्यवस्था ने शीर्षकों को प्रतीकात्मक रूप में सार्थक बनाया है जैसे– 'बूँद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष'। नागर जी ने कथानक के गठन में आकार के साथ–साथ उसके प्रस्तुतीकरण में सौष्ठव और सौन्दर्य का भी ध्यान रखा है। नागरजी के उपन्यास विविध कथा–प्रसंगों से युक्त हैं, उन्होने उपन्यास में केन्द्रीय भाव को अत्यन्त प्रभावी और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए ही वस्तु का प्रस्तुतीकरण किया है। लघु आकार वाले उपन्यास कथा–गठन की दृष्टि से अधिक सशक्त बन पड़े है। प्रासंगिक कथाओं की योजना केवल सहायक रूप में हुई है।

'महाकाल' की कथा–वस्तु चिंतन प्रधान है। नायक की चिन्तन धारा के प्रवाह में ही अकाल के वीभत्स चित्र और तज्जन्य भावी समस्याओं का दारुण और यथार्थ चित्रण पाठक को अपने सम्मोहन में बाँध लेता है।

'शतरंज के मोहरे' ऐतिहासिक उपन्यास होते हुए भी इसकी कथा में एक सुव्यवस्थित प्रवाह है। प्रासंगिक कथाओं और विविध प्रसंगों का प्रयोग होते हुए भी कहीं भी शिथिलता नहीं दिखाई देती है। वस्तु का धारा प्रवाह इतना तीव्र है कि वह नवाबी शासन के सभी स्तरों, राजनीतिक हथकंडों, सामान्यजन जीवन और अंग्रेजो की कूट नीति तथा नवाबी महलों की अन्तरंग झाकियों का स्वतः ही दर्शन करा देती है।

'सुहाग के नूपुर' की कथा–वस्तु अत्यन्त सुगठित है। दक्षिण भारत की सांस्कृतिक झलकियों से युक्त नगरवधू प्रति कुलवधू की समस्या का सूक्ष्म विश्लेषण करती हुई सम्पूर्ण उपन्यास की घटनाएँ परस्पर सम्पृक्त हैं।

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' लघु होने के कारण इसका कथानक कुछ शिथिल है। यह ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर काल्पनिक उड़ानों से युक्त घटना–प्रधान उपन्यास है।

'बूँद और समुद्र' का कथानक एक विशाल फलक पर भारतीय मध्यवर्गीय समाज का विविध आयामी चित्रांकन है। यद्यपि इसमें मूलकथा के अतिरिक्त अन्य अनेक वर्णन और प्रासंगिक कथाओं की योजना की गयी है, तथापि सभी प्रसंग और प्रासंगिक कथाएँ पूर्ण और उद्देश्य पूर्ति में सहायक हैं। डा0 सुदेश बत्रा के अनुसार– "अनेकानेक कथा सूत्रों और अन्तर कथाओं के कारण कथानक में अत्यधिक जटिलता आ गयी है। कथा–वस्तु की व्यापकता और जटिलता में यह शिथिलता कथा को चिंतन प्रद रूप प्रदान करती है, किन्तु नागरजी का कथा कहने का लहजा उस लय और गति के साथ परिपूर्ण रोचकता प्रदान करता है। कथा को रोचक बनाने के लिए उन्होंने अनेक उपायों की योजना की है। कहीं गप्प गोष्ठियों का बतरस हैं, कहीं भाँग का आयोजन है, कहीं गली–मुहल्लों की आन्तरिक दास्ताने हैं, कहीं रोमानी दृश्यों और बातों के अनुरूप वातावरण की सर्जना है और कहीं राजनीति के खुले चित्र और चुनावों के ढिंढोरे है– इस प्रकार हर रंग को उन्होंने सजीवता दी है, उसे समझा है भोगा है। लोक जीवन और संस्कृति उनकी कलम की नोक से फोटो ग्राफी के रंगों में निखरी है। यह अप्रतिम अभिव्यक्ति एक ओर

लखनऊ के रेशे–रेशे को चित्रित कर गयी है, दूसरी ओर भारत का शहरीपन साकार हो गया है। 'बूँद और समुद्र' का कथा–शिल्प कतिपय अतिरेकी घटना प्रसंगों की आयोजना के बावजूद प्रशंसनीय है। उसमें संगठन, कौतूहल और रंजनकारी तत्वों की उपयुक्त निबन्धना हुई है।''[2]

'अमृत और विष' दोहरे कथानक से युक्त उपन्यास है और दोनो ही कथानक अपनी–अपनी सम्पूर्णता लिए हुए है। एक कथानक जहाँ चिंतन प्रधान एवं मंद गति वाला है वहीं दूसरा पात्र एवं घटना बाहुल्य से युक्त जीवन की तीव्रगति का परिचय देता है।

'एकदा नैमिषरण्ये' और 'मानस का हंस' तथा 'खंजन नयन' लेखक की कुशलता की नूतन उपलब्धियाँ है। एकदा नैमिषारण्ये' पौराणिक राष्ट्रीय संस्कृति के नव जागरण का सजीव अंकन है, 'मानस का हंस' मानस के हंस गोस्वामी तुलसी दास के जीवन वृत्त को भक्ति, आस्था के रूप में व्यक्त करने वाला एक विल्कुल नवीन उपन्यास है। 'खंजन नयन', अन्ध कृष्ण भक्त महाकवि 'सूरदास' के अन्धकार पूर्ण जीवन का प्रकाशमय चित्रण है। इसमें कथा–वस्तु को एक अत्यन्त परिपक्व और प्रौढ़ उपन्यासकार के शिल्प का सहयोग मिला है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' ''अपने मूल कथ्य में, संदर्भो में, प्रस्तुतीकरण में लेखक की सर्जनात्मक प्रतिभा का वह अमूल्य दस्तावेज है जो आधुनिक हिन्दी उपन्यास के यथार्थ की बंधी–बंधायी परिभाषाओं और सरणियों से कहीं आगे ले जाकर विघटित होते हुए उन मान दण्ड़ों के क्षेत्र में ले जाता है जहाँ वर्जनाएँ और कुष्ठाएँ नया जन्म पाने को अकुला रही है। मानव जीवन का यह यथार्थ सत ही जिजीविषा और आभिजात्य आस्था की दुन्दुभियों को नकार कर सच्चे अर्थों में साहित्य का दायित्व निभाना चाहता है। प्रेम, राग, सामाजिक रूढ़ियों, नारी–पुरुष सम्बन्ध, पीढ़ी भेद जैसे–महानगरीय सभ्यता के पुरस्कार स्वरूप मिले हुए यथार्थ के अंकन की भूल भूलैया में भटकने वाले आधुनिक साहित्कारों के लिए यह औपन्यासिक यथार्थ मार्ग दर्शन का एक दीप स्तभ्भ है। नागरजी की लेखनीय संवेदना का यह चरमतम यथार्थ है। जहाँ वह अपने जन्मगत पारम्परिक ब्राह्मणत्व की बंधी बंधायी जंजीरों को तोड़कर केवल एक मानव है और मानवता का तकाजा लिये हुए जब वह निम्न वर्ग के अन्तरंग संसार में प्रवेश करता है तो वह साहित्कार प्रणम्य हो जाता है। आम आदमी की वह चिरन्तन मूर्ति जो तुलसीदास ने शबरी और केवट के माध्यम से प्रभु राम की महिमा–गान के लिए गढ़ी थी, आज नये सिरे से उस आम आदमी की पीड़ा स्वयं मानवता का जयगान करने के लिए प्रतिष्ठित हो गयी है।

समग्रतः 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में नागर की चिरन्तन आस्था, जिजीविषा और मानवीयता अधिक प्रखरता से जाह्नवी की पावन जलधारा के समान प्रवाहमान है। निश्चय ही यह कृति अपने 'शीर्षक को सार्थक करती हुई सदियों से चले आये एक वर्ग की, उसकी व्यवस्था की, भीतर तक चीरने वाली पीड़ा का ही मुखर प्रखर विद्रोह है।''[3]

वस्तुतः नागरजी का सम्पूर्ण औपन्यासिक साहित्य, साहित्य की सभी शर्तो से युक्त होकर जीवन को यथार्थ धरातल प्रदान करता है।

उपन्यास शिल्प के आकर्षण में वृद्धि करने के लिए नागर जी ने अनेक शैलियों और पद्धतियों का नियोजन कथावस्तु के विकास के लिए किया है–

1. कथात्मक अथवा वर्णात्मक पद्धति।
2. नाटकीय अथवा संवादात्मक पद्धति।
3. मनोविष्लेषणात्मक पद्धति ।
4. समीक्षात्मक पद्धति।
5. फ्लैश बैक पद्धति।
6. कलात्मक अथवा भावात्मक पद्धति।
7. प्रतीकात्मक पद्धति।

प्रसंगो की इतिवृत्तात्मकता और वातावरण सृष्टि के लिए कथात्मक अथवा वर्णात्मक पद्धति का प्रयोग, रचना को कौतूहल और गति प्रदान करने के लिए नाटकीय अथवा संवादात्मक पद्धति, पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व और चरित्रांकन के लिए मनोविश्लेषणात्मक पद्वति, मन चाहा आकार देकर कथा को अतीत की ओर मोड़कर उसे गति एवं व्यापकता देने के लिए, वर्तमान अनुभवों में अतीत के प्रसंगों का स्मरण करके अनुभूतियों को श्रृंखलाबद्ध करने के लिए फ्लैश बैक पद्धति, सामाजिक समस्याओं, ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक और नैतिक पहलुओं का खण्डन–मण्डन करने हेतु समीक्षात्मक पद्धति तथा भावों के स्पन्दन तथा सजीवता उत्पन्न करने के लिए काव्यात्मक अथवा भावात्मक पद्धति, मानव के हृदय के गूढ़ रहस्यों की अभिव्यक्ति को परोक्ष व्यंजना में प्रकट करने के लिए प्रतीकात्मक पद्धति का आश्रय लिया गया है।

नागरजी का 'बूँद और समुद्र' प्रतीकात्मक शिल्प विधि का उपन्यास है। उपन्यास का प्रत्येक पात्र यह सिद्ध करने की चेष्टा करता है कि समुद्र में प्रत्येक बूँद का स्वतंत्र महत्व है। प्रखर अनुभूति और सूक्ष्म कलात्मकता नागर जी के अधिकांश उपन्यासों की विशेषता है। 'अमृत और विष' तथा 'मानस का हंस' भी प्रतीकात्मक हैं। 'अमृत और विष' सामाजिक संघर्षों का सार है, जहाँ 'अमृत और विष'–सुख और दुख आनन्द और शोक सभी समाए हुए है। 'मानस का हंस' 'राम चरित मानस' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास का जीवन वृत्त है।

नागरजी ने कथावस्तु में शिल्प गत प्रयोग भी किए है। 'सेठ बाँकेमल' व्यंग्यात्मक शैली का और 'अमृत और विष' प्रौढ़ कलाकार की वैचारिक परिपक्वता और गम्भीर्य का परिचायक है। 'अमृत और विष' का दोहरा कथानक अर्थात् उपन्यास के भीतर एक और उपन्यास– औपन्यासिक शिल्प का एक सशक्त प्रयोग है। कथाएँ अलग होते हुए भी उपन्यासकार की मानस–सृष्टि से निरन्तर जुड़ी रहती हैं। एक ही उपन्यास में दो कथात्मक शैलियों का प्रयोग– आत्मकथात्मक और वर्णनात्मक अपने में एक अनूठा और अप्रतिम प्रयोग है। नागरजी ने किस्सों, दृष्टान्तों आदि का प्रयोग करके अपनी शैली को आकर्षण का केन्द्र बनाया है।

नागरजी के उपन्यासों की कथा–वस्तु का प्रमुख आधार है मानस जीवन की समस्याएँ। 'महाकाल' में भूख, 'बूँद और समुद्र' एवं 'अमृत और विष' में मध्यवर्गीय समाज के विविध स्तरों के खुले चित्र, 'सुहाग के नूपुर' में नगर वधू बनाम कुल वधू की समस्या, 'शतरंज के मोहरे' में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक, राजनीतिक प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन और 'एकदा नैमिषारण्ये' में पौराणिक आख्यानों को नूतन वैज्ञानिक सन्दर्भ प्रदान करना तथा 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में अनुसूचित जातियों के आक्रोश, अहंकार और द्वेष तथा जीवन की समस्त करूपताओं के बीच आन्तरिक मूल्यों का जुड़ाव और विखराव तथा 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' में मानव की कुप्रवृत्तियों और सद्वृत्तियों में मानवीय आस्था का निरूपण है।

कुछ समीक्षको के अनुसार नागर जी के उपन्यासों में केवल कौतूहल और रोचकता बढ़ाने के लिए कई बार अविश्वसनीय और जासूसी, तिलस्मी जैसे प्रसंगों की अवतारणा सहज प्रवाह में बाधक लगती है। 'बूँद और समुद्र' में सज्जन को बाबा राम जी दास की आवाजे सुनायी देना, बाबा जी द्वारा मन की बात पहले ही जान लेना, परामनों–विज्ञान का अभास कराते हैं। महिला आश्रम का भण्ड़ा फोड़, डाकुओं को पकड़ने जैसे प्रसंग (अमत और विष) जासूसी उपन्यासों की याद दिखाते हैं। 'मानस का हंस' में तुलसी का मुगल शिविर में सिद्ध ज्योतिषी के रूप में हर बात जान लेना अविश्वसनीय से प्रतीत होते हैं। 'खंजन नयन' में सूर को ज्योतिष पारंगत और प्रश्न कर्ता के मन के प्रश्न को उसके बिना कहे हुए ही जान लेना और तत्काल का ज्ञान ऐसे प्रसंग अपवाद पूर्ण हैं किन्तु मेरे विचार में ये सभी बातें तुलसी और सूर जैसे सिद्ध महापुरुषों के लिए अप्रासंगिक नहीं कही जा सकतीं।

अन्त में कथा–वस्तु के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि नागरजी के प्रायः सभी उपन्यास दृढ़ कथा संगठन से पूर्ण रूप से युक्त है। जहाँ क्षेत्र की विस्तीर्णता के कारण 'बूँद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' शिथिल गठन से आरोपित है, वहीं 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' तथा 'खंजन नयन' विस्तृत कथा फलक पर आधारित होते हुए भी सघन संगुंफित एवं चुस्त कथा प्रवाह से युक्त हैं। 'एकदा नैमिषारण्ये' अपनी अत्यधिक सफलता में बहु सूत्रीय हो जाता है तो 'मानस का हंस' की कथा तुलसी के जीवन वृत्त पर आधारित होने के कारण उसमें आयी विश्रृंखलता को एक श्रृंखला में बाँध देती है। वस्तुतः ''नागर जी के उपन्यासों का कथा–शिल्प मात्र कथा वृत्त नहीं है, उसमें आदि, मध्य, अन्त, घटना–संघटन और प्रसंगोचित समस्त गुण विद्यमान हैं, जिनसे लेखकीय प्रतिभा उजागर होती है।''[4]

''नागरजी में कथा कहने की जबरदस्त प्रतिभा है। उनके उपन्यास यद्यपि विवरणात्मक शैली में है और विवरण देने का लोभ वे प्रायः संवरण नही कर पाते फिर भी उनके कथानक अत्यन्त सुगठित होते हैं और वे तीव्रगति से विकसित होते हैं।''[5] इसीलिए कभी–कभी उनकी तुलना देवकी नन्दन खत्री और उनकी किस्सा गोई से की जाती है और डॉ0 शान्तिस्वरूप गुप्त उन्हे महाकाव्यकार कहते है। उनके विचार से– ''लेखक ने आज के बदलते हुए मध्यवर्गीय

समाज के बनते–बिगड़ते भारतीय परिवार के चित्र बड़े बृहद् चित्र फलक पर बड़ी मार्मिकता से अंकित किये हैं। आज हमारे समाज में जो विभिन्न संघर्ष चल रहे हैं, जीविका के लिए संघर्ष और व्यक्ति–व्यक्ति के लिए संघर्ष, तथा सबसे महत्वपूर्ण संघर्ष व्यक्ति के अन्तर्मन की परस्पर विरोधी वृत्तियों का संघर्ष– इन सबका यथार्थ एवं हृदय को छूने वाला चित्रण हुआ है।''[6] इसीलिए समीक्षकों ने 'बूँद और समुद्र' को महाकाव्य के रूप में देखा है। ''महाकवि में जैसे कथा कहने की सहज स्वाभाविक विशेषता होती है, ठीक वैसे ही उपन्यासकार नागर में भी कथा और अन्तर्कथाओं को विन्यस्त करने की असाधारण प्रतिभा है।''[7]

चरित्रांकन शिल्प–

वस्तु और चरित्र निर्माण परस्पर एक दूसरे के पूरक है। चरित्रों के अभाव में न तो उपन्यास की कथा का निर्माण हो सकता है न संवादो की योजना ही हो सकती है। न किसी समस्या को ही उठाया जा सकता है, न कल्पना के लिए भूमि ही मिल सकती है। कथा वस्तु का गठन और उपन्यास का मूल उद्देश्य भी सिद्ध नही हो सकता है। वास्तव में चरित्र उपन्यास की कथा काया का मेरूदण्ड है। 'मेरेन एलवुड' ने ठीक ही कहा है कि ''कथा की कल्पना अगणित स्रोतो से की जा सकती है, किन्तु चरित्रो के अभाव में कथानक की उत्पत्ति नही हो सकती, क्योकि गतिशील चरित्र ही कथानक है।''[8] जीवन की यथार्थता को निरूपित करने में सर्वप्रमुख होने के कारण उपन्यासों के पात्र, मानव चरित्र एंव उसके कार्य व्यापारो का अधिकारिक व्यापक, स्पष्ट, स्वाभाविक एवं कलात्मक स्वरूप प्रस्तुत करने में अप्रतिम होते हैं। इसीलिए पात्रों को सजीवता एवं यथार्थता के साथ प्रस्तुत करना उपन्यास की अनिवार्य शर्त मान लिया गया है।

नागरजी की पात्र योजना, यथार्थ जगत से पूर्णतया सम्बद्ध है। सभी मुख्य पात्र सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण से जुडे हुए हैं और गौण पात्र पृष्ठ भूमि में मुख्य पात्रों को प्रभावी बनाने में सहायक हैं। वास्तव में मानव जीवन की विद्रूपताओं, विसंगतियों, आचार–विचारों और जर्जर मान्यताओं से परिणामित समस्याओं के आधार पर रचित उपन्यास के पात्रों को व्यावहारिक जीवन में आनीत होना चाहिए। किन्तु नागर जी की सफलता इस बात में है कि वे पात्रों को अपने बलबूते पर जिन्दगी की लड़ाई लड़ने के लिए छोड़ देते हैं और इसमें सन्देह नही कि ये पात्र परिस्थितियों का घात–प्रतिघात झेलते हुए अपने भाव, विचार और कर्म के अनुसार विविध जीवन सन्दर्भो में अपनी सत्ता और इयत्ता प्रमाणित करते चलते हैं। नागरजी ने अपने प्रारम्भिक उपन्यासों में उच्च वर्गीय समाज के, प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों को सम्पूर्ण जीवन्तता के साथ प्रस्तुत किया है। 'महाकाल' का 'मोनाई' पूँजीवादी समाज की विकृतियों का प्रतीक प्रतिनिधि पात्र है। 'दयाल' अपनी सामन्तीय अमानसिकता के कारण हर किसी का ध्यान आकृष्ट करने वाला जिमीदार है। 'बूँद और समुद्र' के राजा बहादुर और 'सर द्वारिकादास' तथा 'सेठ रूप रतन' भी वर्गगत पात्र है। 'अमृत और विष' का पूँजीपति 'रूपचन्द', 'सुहाग के नूपुर' का 'चेट्टियार कोवलन' और व्यापारी 'पाँसा' जैसे पात्र महाजनो के लुटेरे पन को लेकर प्रस्तुत हुए है।

प्रेमचन्द के समान ही नागरजी ने भी व्यक्ति–चरित्र को सामाजिक प्रतिबद्धता के लिए उत्तरदायी ठहराया है। उनके साहित्यिक पात्र सहज प्रवाह से चरित्र विकास पाते हैं। कुछ पात्र आदर्शवाद की रचना के लिए सृजित किये गये हैं, जो लेखक के आदर्शो और सिद्धान्तो के संवाहक है। 'बूँद और समुद्र' के 'बाबा राम जी दास' और 'शतरंज के मोहरे' के 'दिग्विजय ब्रह्मचारी' ऐसे ही पात्रों की श्रेणी में आते हैं। 'महाकाल' का नायक 'पाँचू गोपाल' लेखकीय चेतना का वाहक बनकर उसके उद्देश्य को स्पष्ट कर देता है। नागरजी प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि पात्रों की सृष्टि के समर्थक हैं। 'बूँद और समुद्र' एवं 'अमृत और विष' मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन के विशाल फलक पर रचित है। 'बूँद और समुद्र' के 'सज्जन', 'महिपाल', 'कर्नल', 'बाबा राम जी दास' आदि प्रमुख पात्र भी समाज के प्रतिनिधि होकर भी व्यक्ति अधिक हैं। इनकी विशिष्टता और सजीवता इन्हें निश्चित व्यक्तित्व प्रदान करती है। 'राजा साहब', 'सेठ रूप रतन', 'सालिगराम जायसवाल', 'कवि विरहेश' आदि पात्र 'टाइप' (वर्गगत) अधिक हैं, व्यक्ति कम। इस उपन्यास में लेखक, कलाकार, व्यापारी, दुकानदार, राजा, रईस, राजनीतिज्ञ और नेता, यहाँ तक कि खोंचे वाले, सुनार और बढ़ाई जैसे विविध सामाजिक और आर्थिक स्तरों से आए हुए पात्र हैं।

'अमृत और विष' में दो मध्य वर्गीय पीढ़ियों का चित्रण है। युवा पीढ़ी के दो वर्ग हैं– एक सक्रिय महत्वाकांक्षी और दूसरा हताकांक्षी। 'रमेश' साहस, उत्साह, आस्था, कर्मठता और संघर्षशीलता से युक्त तरुण वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है और 'लच्छू', क्षोभ, कुंठा, निराशा, विद्रोह एवं हिंसा भावना से युवकों का। 'पुत्तीगुरु' और 'रद्धू सिंह' पुरानी पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं। वह पुरोहित, धर्मभीरू, परम्परावादी और अन्ध विश्वासी व्यक्ति हैं। 'डॉ0 आत्माराम' मध्यवर्गीय आभिजात्य समाज का प्रतिनिधि है। खन्ना दम्पत्ति डॉ0 आत्माराम के मिशन को अग्रसर करने वाले क्रियाशील पात्र हैं। 'अरविन्द शंकर' हिन्दी के मध्यवर्गीय लेखकों की मानसिकता को उजागर करता है। 'अरविन्द शंकर' के अतिरिक्त इस उपन्यास के सभी पात्र वर्गगत अधिक हैं व्यक्ति कम। 'बूँद और समुद्र' के पात्र व्यक्ति अधिक हैं वर्गगत कम।

नागरजी के उपन्यासों के नारी पात्र अपनी सम्पूर्ण शक्ति और सीमाओं के साथ अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक बन पड़े हैं। उनके उपन्यासों में नारी पात्रों का बहुरंगी सृजन हुआ है, जिनका प्रसार आदर्श गृहणी से लेकर वेश्या तक दृष्टिगोचर होता है। गृहणी, पति परायणा, समाज सेविका, शिक्षिता, राजनीति में रुचि लेने वाली, स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाली, टोना–टोटका, भूत–प्रेत, जंतर–मंतर आदि में रमने वाली, नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाली, निम्न मध्यवर्गीय चेतना का प्रतीक, रूढ़ियों से ग्रस्त अतृप्त प्रेम एवं वासना में घुटने वाली, अत्याचार की शिकार वधू, पुरुष वर्ग की भोग लिप्सा का शिकार, तिरष्कृता, विधवा, पाउडर, क्रीम, बिन्दी और सिनेमा आदि में भटकने वाली आधुनिका, पर पतिरनिरता, किशोरावस्था की यौन विकृतियों से

ग्रस्त, पति पर अत्याचार करने वाली विवाहिता, प्रेमिका, परित्यक्ता, बाल विधवा, वेश्या कर्म करने के लिए बाध्य नारी के विविध रूप नागरजी के उपन्यासों में प्राप्त होते हैं।

वेश्याओं के प्रति नागर जी का हृदय सहानुभूतिपूर्ण है। किन्तु समाज में वेश्या को उचित स्थान नही दिला सके है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' की 'निर्गुनियाँ' अमृत लाल नागर के समस्त उपन्यासों में सर्वाधिक संघर्षशील नारी पात्र है। डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी के शब्दों में– ''वह पण्डित बटुक प्रसाद जैसे संरक्षक, मसुरिया दीन जैसे बृद्ध पति, डाकू मोहना जैसे प्रेमी, मसीताराम जैसे आश्रय दाता और मार्गदर्शक, दारोगा बसन्त लाल जैसे दुष्ट तथा स्वामी वेद प्रकाशानन्द और पादरी डॉ0 एण्डरसन जैसे हित चिन्तक के रूप में अनेक पड़ावों से होते हुए अपनी जिन्दगी की मंजिल तय करती है। इतनी विषम परिस्थितियों के बावजूद निर्गुनियाँ पराजय नहीं मानती। प्रतिकूलताओं के बीच भी वह अपना मार्ग बनाने में सक्षम है। इतने जीवट वाली नारी नागर जी के कृतित्व में ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी उपन्यास जगत में बिरली ही मिलेगी।''[9]

'शतरंज के मोहरे' और 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' के प्रायः सभी महत्वपूर्ण पात्र ऐतिहासिक ही है। इन्हें कल्पना के सहारे अत्यन्त सजीव बना दिया गया है। ऐसे पात्रों में नवाब, शासक, सामंत, सेनापति और बेगम जैसे वैभव विलास में लिप्त रहने वाले उच्च वर्गीय पात्र है और दूसरी ओर अत्यन्त सामान्य नर–नारी। नवाब गाजीउद्दीन, नसीरूद्दीन (शतरंज के मोहरे) और नवाब समरू (सात घूँघट वाला मुखड़ा) प्रभृति पात्र नवाब शासकों का प्रति निधित्व करते है। इनके चरित्र में लगभग एक जैसी दुर्बलता, विवशता, कुष्ठा, भय, आक्रोश और एकाकीपन है। तीनों का पतन अत्यन्त नाटकीय ढंग से दिखाया गया है। नसीरूद्दीन का चरित्र नवाबी शासन के अन्तिम दिनों की कहानी कहता है। आगामीर (शतरंज के मोहरे) और सर टॉमस (सात घूँघट वाला मुखड़ा) जैसे पात्र नवाबी महत्व के आन्तरिक कलह से लेकर प्रशासनिक कूटनीति में दखल रखते है। आगामीर अपने छल–बल के सहारे एक साधारण बावर्ची से अवध का बजीर बना। सर टॉमस बेगम समरू से मिलकर नवाब समरू के विरूद्ध षड्यन्त्र में सम्मिलित होता है। अन्य पात्रों में अपनी प्रेमिका मुन्नी उर्फ दिलाराम को नवाब समरू के हाथों बेचने वाला व्यवसायी बशीर खाँ, असफल प्रेमी नईम एवं लवसूल तथा रूस्तम अली और मातादीन है। 'शतरंज के मोहरे' के बाबा दिग्विजय ब्रह्मचारी और 'बूँद और समुद्र' के बाबा राम जी का चरित्र मानवतावाद, तेजस्विता, परोपकारिता, दयालुता और सादगी से युक्त है।

इन ऐतिहासिक पात्रों में नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण हुआ है। एक ओर दुलारी जैसी महत्वाकांक्षी, विश्वास घातिनी, कुलक्षिणी, प्रेम का ढोंग रचने वाली बहु पुरूष–भोगिनी, कूटनीतिज्ञ और रूप गर्विता नारी है तो दूसरी ओर भुलनी जैसी नारियाँ भी हैं जो नैतिकता और मर्यादा के लिए आत्मबलिदान कर देती हैं। कुद्सिया बेगम और कुल्सुम पुरुष–वर्ग की स्वेच्छा चारिता के

संदर्भ में नारी–विवशता की कहानी कहती हैं। अवध के शाही अन्तः पुर में चलने वाली राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली बादशाह बेगम अहंकारिणी होकर भी एक धार्मिक महिला है।

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' की 'जुआना बेंगम' अपने पति नवाब समरू को हेय दृष्टि से देखती है, जिसके कारण वह आत्म हत्या करने के लिए विवश होता है। जुआना बेगम नवाब समरू की मृत्यु के पश्चात् अपनी वासना की तृप्ति के लिए लवसूल जैसे एक सामान्य व्यक्ति से यौन–सम्बन्ध स्थापित करती है। अन्ततः वह विवशता, प्रायश्चित और अवसाद की प्रतिमूर्ति बनकर रह जाती है। ऐतिहासिक उपन्यासों के पुरुष–पात्र, नारी–पात्रों के समक्ष दुर्बल प्रमाणित होते है। सच यह है कि नारी–पात्रों के व्यक्तित्व का विकास पुरुष–पात्रों की दुर्बलता के कारण ही सम्भव हो सका है।

ऐतिहासिक, पौराणिक और सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि पर रचित 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' एवं 'खंजन नयन' के पात्र सहज मानवीय गुणों से मण्डित हैं। ऐतिहासिक पात्रों में 'विंध्य शक्ति', 'प्रवरसेन', चन्दगुप्त, समुद्रगुप्त, नागषेण, भवनाग, अच्युत नाग आदि प्रमुख है और पौराणिक पात्रों में व्याससोमाहुति भार्गव, महार्षिनारद, भारतचन्द्र, योगिराज नागेश्वर आदि। पौराणिक पात्रों की कल्पना 'भागवत् पुराण' से ग्रहण की गयी है। सोमाहुति भार्गव और नारद की अनुभूतियाँ उसके ऋषित्व से मंडित होकर भी सहज मानवीय हैं। इज्या की मृत्यु पर भार्गव का विलाप मार्मिक और सहज है। नारद और भार्गव की मैत्री आदर्श–स्वरूप है। महार्षि नारद को उपदेशक–रूप में ही नहीं, ग्रहस्थ–रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। पौराणिक पुरुष–पात्रों में भावात्मक एकता के प्रबल उपदेशक नारद, अनेक भाषाओं के विज्ञ सोमाहुति भार्गव तथा भारत चन्द्र के चरित्र समाज में भी यत्र–तत्र मिल सकते हैं।

नारी–पात्रों में शस्त्र–शास्त्र निष्णात्, गृहस्थ–जीवन व्यतीत करने वाली, पति–निष्ठालु, वात्सल्य–भाव से ओत–प्रोत सोमाहुति की पत्नी इज्या प्रमुख हैं। पति के दम्भी व्यक्तित्व में आमूल परिवर्तन लाने वाली, सहज मानवीय गुणों से युक्त प्रज्ञा स्वच्छ विचारों की महिला है। आजन्म ब्रह्मचारिणी, तपस्विनी सरजू वाशिष्ठी, परम कूटनीतिज्ञ ब्राह्मणी वृद्धा है। इनके व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी गुणों का समावेश है।

'मानस का हंस' में गोस्वामी तुलसीदास के विविध पक्षों का सजीव–चित्रण है। उनके व्यक्तित्व के पीछे व्यक्तिगत और सामाजिक संघर्ष का प्रमुख हांथ रहा है। तुलसी का प्रारम्भिक व्यक्तित्व प्रेम और रसिकता से परिपूर्ण है। वे कथा वाचक, ज्योतिषाचार्य, भक्त, विद्वान् तो थे ही, उन्होनें समाज, धर्म और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एकता, विश्व बन्धुत्व, सहयोग और प्रेम के विकास के लिए अपने को खूब तपाया भी। भाव–विह्वल भक्त के रूप में मेघा भगत का चरित्र अत्यन्त सशक्त एवं स्वाभाविक है। बाबा नरहरि दास, पूज्य पाद आचार्य शेष सनातन महाराज, तुलसी के गुरु और उद्धारक, सब कुछ थे। राजा भगत, टोडरमल, रामू द्विवेदी, बेनीमाधव, गंगाराम आदि के चरित्र भी अपनी विशेषताओं के कारण उल्लेखनीय है।

नारी पात्रों में वेश्या, प्रेमिका, नर्तकी और संगीतज्ञ रूप में मोहिनी का महत्व है। 'खंजन नयन' की कंतो अथवा कान्ता 'सूर' की तपोशक्ति है। वह 'सूर' के नन्दन वन की अनुपम शोभा है। 'सुहाग के नूपुर' की वेश्या माधवी की भाँति मोहिनी को भी समाज नहीं अपनाता है। रत्नावली में रूप, गुण, विद्या के अतिरिक्त अभिजात्य–दर्प भी है। वह त्याग, संघर्ष और साधनामय जीवन का आदर्श प्रस्तुत करती है। रत्ना का वियोग–जीवन, करुण और मार्मिक है। 'मानस का हंस' की दूसरी सप्राण नारी–सृष्टि पार्वती अम्मा है। उसमें ममत्व, करुणा, दया का सहज उद्रेक है। वह राम बोला (तुलसीदास) की आश्रयदात्री है। तुलसी ने उसे अपना आदि गुरु स्वीकार किया है।

नागरजी के प्रायः प्रत्येक उपन्यास में कोई न कोई भंगड़ पात्र आया है। 'मानस का हंस' में गुरु महाराज, आचार्य शेष सनातन के साले मामा जी, तथा 'अमृत और विष' के पुत्ती गुरू महाराज भांग–प्रेमी के रूप में चित्रित हैं। उनके अतिरिक्त अयोध्या और काशी के अनेक महंत भी भाँग घोटते नजर आते हैं। कदाचित् इस प्रकार की पात्र–योजना में नागर जी का अपना भाँग–प्रेम प्रेरक रहा है।

नागरजी के सांस्कृतिक और पौराणिक पात्र वेद, पुराण, ज्योतिष, धर्म–शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् तथा गार्हस्थ्य कर्म, आस्था और विश्वास की गहराई में डूबने वाले साधक हैं। उनका आदर्श जीवन हमें युग–युग तक प्रेरणा देता रहेगा। गोस्वामी तुलसीदास एवं भार्गव व्यास सोमाहुति सांस्कृतिक एकता के प्रतीक हैं।

नागरजी ने चरित्रांकन की आत्याधुनिक विधि को प्रायः अपने सभी उपन्यासों में प्रयोग किया है। चरित्रांकन की सभी भंगिमाओं–बहिरंग, अन्तरंग और मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया है। अन्तरंग विधि के अन्तर्गत पूर्व इतिहास को प्रस्तुत कर उनके चरित्र का विश्लेषण करने की विधि मनोवैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत पात्रों के अन्तरंग व्यक्तित्व को मनोवैज्ञानिक पृष्ठ भूमि में रखकर उनकी आन्तरिक प्रेरणा और द्वन्द्व का चित्रण करती है। 'बूँद और समुद्र' की ताई, वनकन्या शीला स्विंग, सज्जन और महिपाल आदि का चरित्रांकन बड़ी सफलता के साथ किया गया है। विपरीत परिस्थितियों में पात्र का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व उसके चरित्र का प्रकाशन करता है। पाँचू गोपाल (महाकाल), माधवी (सुहाग के नूपुर), नसीरूद्दीन हैदर (शतरंज के मोहरे), महिपाल, शीला स्विंग (बूँद और समुद्र), अरविन्द शंकर (अमृत और विष), बेगम समरू, नवाब समरू (सात घूँघट वाला मुखड़ा), तुलसीदास (मानस का हंस), सोमाहुति भार्गव, भारत चन्द्र (एकदा नैमिषारण्ये), निर्गुनियाँ (नाच्यौ बहुत गोपाल), सूरदास (खंजन नयन) आदि पात्रों का चरित्र वाह्य संघर्षों के साथ अन्तर्द्वन्द्व से गुजरता हुआ अत्यन्त सजीव और मार्मिक हो गया है। निर्गुनियाँ के खण्डहर मन का अन्तर्द्वन्द्व उसे परिस्थितियों के प्रति सचेत करता है– "निर्गुनियाँ चेत! उबर! इससे उबर! नाना से कथा में कितनी बार सुना था–मन के मिथ्या मोह प्राणियों के अपने लुभावने माया जाल में फँसाकर नचाते हैं। केवल घनश्याम मनमोहन, अखंड, अछेद, अभेद, अनन्त श्रीराम।. .....भाग चल निर्गुनियाँ। उछाला मिला है। उद्धार कर ले अपना। जा, भाग जा यहाँ से

भाग! भाग! लेकिन कहाँ भागे ? उसके जीवन में तीन बार तीन तरह की दुनियाएँ बदल चुकीं। पर तन मोहन को छोड़कर अभी मन मोहन के ध्यान में मजा नहीं आता। मन अभी तक तन का गुलाम है, अपना स्वामी स्वामी नहीं बना।''[10] इन पंक्तियों में निर्गुनियाँ के मानस में उठने वाली बहुविध भाव–तंरगों की टकराहट बहुत ही स्पष्ट है।

नागरजी के पात्रों का चरित्रोद्घाटन समय–समय पर उनके द्वारा दिये जाने वाले उदाहरणों से भी होता है। पात्र अपनी मनः स्थिति के अनुसार ही सूक्तियों का कथन करता है। 'मानस का हंस' के तुलसीदास काम को छोड़कर राम की शरण में जाने का संकल्प करते हुए जब 'विनय पत्रिका' की पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं तब कथन की प्रभावात्मकता बहुत बढ़ जाती है ——

''अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
राम कृपा भव निसा सिरानी, जागे पुनि न डसै हौं।

'बूँद और समुद्र' के बाबा रामजीदास द्वारा उदृत काव्य–पंक्तियाँ उनके चरित्र और लेखक के उद्देश्य को एक साथ प्रत्यक्षीकृत करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

'सकल पदारथ या जग माहीं।
कर्महीन नर पावत नाहीं।'

'नाच्यौ बहुत गोपाल' का निम्नांकित उद्धरण निर्गुनियाँ की मनः स्थिति का परिज्ञान कराने के साथ उपन्यास के नामकरण की सार्थकता भी सिद्ध करता है–

''अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल।''

व्यक्तित्व को मूर्तित करने के लिए नागरजी ने अनुभावों के साथ–साथ व्यंजनात्मक रूप में उनकी अन्तः प्रक्रियाओं को चित्रित किया है। पात्रों का स्वरूप बोध कराने के लिए कभी–कभी उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभावों और परिवेश को इस प्रकार बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव से अंकित कर दिया गया है कि पाठक के लिए कोई भी वस्तु अनुबूझी नहीं रहती। 'एकदा नैमिषारण्ये' में इज्या का चिंतन करते हुए सोमाहुति भार्गव की मनोभूमि प्रकृति की रमणीयता का साहचर्य पाकर सतरंगी आभा से मंडित हो जाती है। भावनाओं के प्रति फल के उतार–चढ़ाव का कलात्मक रूपायन बस देखते ही बनता है– ''रस रूपी हिमालय की दूर–दूर तक फैली हुई रंगारंग चोटियों के बीच इर्द–गिर्द वासना की नदियों से घिरी हुई एक मंत्र मुग्ध पहाड़ी पर बैठ, चैन की बंशी बजाते हुए बेचैन हो गया, भूचाल आ गया। रंगों का नगर, कामनाओं के कलस–कँगूरे, धूल कण बन ऐसे भूमिसात् हुए कि आकाश स्वच्छ हो गया।[11]

'सुहाग के नूपुर' में प्रकृति की संवेदनशीलता को पात्रों के मनोभावों और चारित्रिक विषेशताओं के प्रकटीकरण में सहायक बनाया गया है। कन्नगी द्वारा कोवलन को सम्बोधित कर कही गयी उक्ति कितनी सार्थक है–''अस्त होते हुए सूर्य के रंगों को चुराने का साहस ये निर्बल,

निकम्में बादल भी कर लेते हैं। इन रंग–बिरंगे बादलों की सुन्दरता पर तो सब रीझते हैं, सूर्य की विवशता पर कोई आँसू नहीं बहाता।''[12]

'मानस का हंस' में रत्नावली के विक्षोभ को उसकी मेंहदी–रची उँगलियों में फँसा बेलन अत्यन्त मोहक ढंग से व्यंजित करता है। सामान्य मनः स्थिति में चकले पर रोटी बेलते हुए रत्नावली की मेंहदी–रची उँगलियों में बेलन मानो जानदार होकर किलोलें कर रहा हो किन्तु मनःस्थिति के बदलते ही उसकी गति असामान्य हो जाती है– ''मेंहदी रची उँगलियों में फँसा नाचता बेलन एकदम थम गया। झुका सिर उठा और झटक कर बालों की लट सरकायी, फिर सीधे देखकर कहा–''पीहर का पक्ष लेना नारी–मन का नैसर्गिक न्याय है। मैं यदि लड़का होती तो मेरे पितृ की पीढ़ियों से पुजती हुई आ रही गद्दी आज यों सूनी न होती।'' बेलन दूनी तेजी से मेंहदी रची उँगलियों में नाचने लगा।''[13]

कभी–कभी पात्र दूसरे पात्र के चरित्र पर अपना व्यक्तव्य देता हुआ दिखाई पड़ता है और कभी पात्र स्वयं ही अपने चरित्र पर टिप्पणी करता है। 'सुहाग के नूपुर' में सेठ मासात्तुवान द्वारा कहे गये शब्द कन्नगी के चरित्र का प्रकाशन करते हैं–''बेटी तुम्हारा शील तुम्हारे पितृ कुल की यशोगाथा गा रहा है और तुम्हारा असत्य भाषण मेरे कुल की लाज बचा रहा है।[14]

नागरजी ने पात्रों के नाम, रूप और व्यक्तित्व के अनुरूप उन्हें प्रतीकात्मक स्वरूप भी प्रदान किया है। 'एकदा नैमिषारण्ये' की इज्या भार्गव को यज्ञ अथवा पूजा शब्द के, प्रज्ञा को बुद्धि के और भारत चन्द्र को तद्युगीन खंडित भारत वर्ष के प्रतीक–रूप में ग्रहण किया गया है। इज्या के सन्दर्भ में बड़ी–बड़ी कटोरियों जैसी, उनमें ज्योति रस बनकर छलक रही थी।[15] 'अमृत और विष' के युवा–पात्र लच्छू को नवजवान भारत का प्रतीक माना गया है– ''उसके सामने कुंठित नौजवान भारत बैठा था, जो बेकार है, दरिद्रता से नफरत करता है, उन्नतिशील जीवन चाहता है– और न मिलने पर, दुत्कारे जाने पर अपने कुंठित आत्म सम्मान के लिए, नहीं विकृत विद्रोही भर है।''[16]

नागरजी ने पात्रों की घुटन, खीझ, आत्मग्लानि जैसे भावों के द्वारा उनके चरित्र को उभाड़ने का प्रयास किया है। आत्माभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत 'शतरंज के मोहरे' के नसीरूद्दीन के कथन से उसका मनस्ताप फूट पड़ा है– ''बहलाओ मत जानेमन! हम अंग्रजों की शतरंज के बादशाह हैं। हम उसकी चाल पर चलते हैं। मुझे खलता है, बेहद खलता है।[17] 'एकदा नैमिषारण्ये' में भारत चन्द्र अपने अनास्थामय जीवन की विद्रूपता की ओर संकेत करता है– ''कोल्हू का बैल हूँ। जलमय और जलहीन मैदान हूँ। आपने मेरे मन की बेकली और इतराहट का जो शब्द चित्र प्रस्तुत किया वह भी अक्षरशः सत्य है। परन्तु करूँ क्या ? खरी उमंग, खरा आत्म विश्वास कैसे पाऊँ ? यह भी छोड़ दूँ तो मेरा संसार फिर खो जायेगा।''[18]

इसी प्रकार अरविन्द शंकर की आत्माभिव्यक्ति उसके जीवन की टूटन को व्यंजित करती है– ''तन के ठेले पर लदा हुआ यह जीवन का भारी बोझ खींचते–खींचते मेरे प्राणों का भूखा

अशक्त भैसा अब बेदम होकर जेठ की चिलचिलाती धूप में तपती हुई सड़क पर गिर पड़ा है नियति की चाबुकों से उत्तेजित होकर भी अब उसमें उठने की ताब नहीं रही। अब सदा के लिए मेरी आँखें मिच जाँय, मैं लकड़ियों पर सो जाऊँ।''[19]

नागरजी ने चरित्र–चित्रण के लिए स्वप्न–विश्लेषण, डायरी, संस्मरण और संवाद की पद्वति भी अपनायी है। 'मानस का हंस' चरित्र–चित्रण, स्वप्न–विश्लेषण और संस्मरण पद्वति द्वारा हुआ है। इतना कुशल शिल्पी भला चरित्रांकन के मामले में कब चूकने वाला है ? यदि कहीं एतद्गत कोई स्खलन दिखायी पड़ता है तो उसे अपवाद ही मानना चाहिए। यथा– 'अमृत और विष' में रमेश और रानी की प्रणय– भंगिमा प्रायः सपाट और अपरिपक्व रह गयी है। अन्यथा परिस्थितियों के आरोह–अवरोह में पात्रों के व्यक्तित्व का विकास–क्रम स्पष्ट हुआ है।

निष्कर्षतः नागरजी ने अपनी प्रतिभा और मौलिकता का पूर्ण विनियोजन करते हुए पात्रों का चरित्र–विश्लेषण किया है। परिस्थितियों और सन्दर्भों के मध्य जाने वाले पात्रों के क्रिया–कलापों ने उनके चरित्र–विकास में कलात्मक उत्कर्ष की वृद्धि की है। ये चरित्र लेखक की टीका–टिप्पणियों, विवरणों तथा विश्लेषणों के कारण अत्यन्त विश्वसनीय बन गये हैं। किन्तु, कहीं–कहीं अनावश्यक वक्तव्य पात्रों के चरित्र को स्थूल बनाते हैं। औपन्यासिक पात्रों के चरित्र–चित्रण में स्वाभाविकता, सप्राणता, सहृदयता और मौलिकता आदि गुणों का समायोजन कुशलता पूर्वक हुआ है। नागर जी की मानव–मनोविज्ञान में गहरी पैठ है। इसलिए वे पात्रों के चरित्र–चित्रण में उनके मन की गहराइयों में घुल मिलकर उनका मार्मिक स्वरूप उद्घाटित करने में बड़े कुशल हैं। उन्होंने पात्रों के चरित्र–चित्रण में मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली का कलात्मक उपयोग किया है। पात्रों को विस्तृत और व्यापक परिवेश में देखना उनकी विशेषता है। इनकी अप्रतिम चित्र–विधायिनी प्रतिभा ने सजीव चरित्र प्रस्तुत किये हैं। 'मानस का हंस' में राम बोला के बाल–चरित्र –चित्रण में यह कला पूरे उत्कर्ष पर है। लेखक ने अनाथ, गरीब, भिखारी राम बोला की दयनीय स्थिति का ऐसा जीवंत चित्र उरेहा है कि वह अनन्त काल तक अपने प्रति किये गये अत्याचारों को प्रतिवेदित कर सामाजिक न्याय का द्वार खट खटाता रहेगा। जो भी हो, नागर जी की पात्रावतारणा के संबंध में एक बात बहुत स्पष्ट होकर सामने आती है कि वे अभी तक प्रेम चन्द, शरच्चन्द्र और रवीन्द्र नाथ टैगोर की भाँति कोई ऐसा पात्र नहीं दे पाये हैं जिसे उनकी अपूर्व सृष्टि कहा जा सके। भगवती बाबू की चित्रलेखा जैसा तगड़ा पात्र भी उनके पास नहीं है। यह अलबत है कि जितने प्रकार के पात्र नागर जी के उपन्यासों में आये हैं उतने प्रकार के पात्रों का सृजन दूसरा कोई नहीं कर सका है। इस अर्थ में नागर जी की चरित्र–चित्रण क्षमता बेजोड़ है।

संवाद–शिल्प

उपन्यास–सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने लिखा है– "उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय, उतना ही अच्छा है।"[20] अमृतलाल नागर की कथा–कृतियों में उनकी नाट्य प्रतिभा के कारण रंग, आकार, प्रकृति, भाषा और बोलियों की मंजुलता और ध्वनियों की संगीतात्मकता के संगुंफन से अत्यन्त सजीव और रोचक संवादों की प्रस्तुति संभव हुई है। उनके कथोपकथनों की सर्व प्रधान विशेषता उनका पात्र और परिस्थिति के अनुकूल होना है। नागर जी के उपन्यासों में हमें उच्च वर्ग से लेकर सामान्य जन तक अनगिनत प्रकार के पात्रों के दर्शन होते हैं। उनमें शहर के पात्र हैं और गाँव के भी, शिक्षित पात्र हैं और अशिक्षित या अल्प शिक्षित भी, विचारक हैं और कलाकार भी। लेखक, अध्यापक, दारोगा, धर्म प्रचारक, समाज–सुधारक, नेता, सेठ साहूकार, व्यवसायी, दूकानदार दफ्तर के बाबू, निम्न वर्ग के मेहतर, मेहतरानी आदि अनेकानेक पात्र अपनी–अपनी भूमिकाओं में जीवंत हो उठे हैं। उनके पौराणिक–सांस्कृतिक उपन्यासों के पात्र ऋषि–देवर्षि–साधक और साधु हैं तो भोगी और योगी भी, ज्योतिष शास्त्र, तन्त्र–मन्त्र के ज्ञाता हैं तो लठैत अहीर, केवट और पाखंडी भी। ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्र भी अपनी ऐतिहासिकता की छाप पाठक के मन पर अंकित कर जाते हैं। तात्पर्य यह कि अनेक भूमिकाओं के नारी और पुरुष–पात्रों का एक बहुत बड़ा सम्मेलन उनकी कृतियों में है। नागर जी की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने प्रत्येक पात्र को उसकी मानसिक भूमिका के अनुरूप उसकी बोली–बानी, शिक्षा–दीक्षा, संस्कार आदि का ध्यान रखते हुए ऐसे कथोप कथनों की योजना की है जो मनोवैज्ञानिक, स्वाभाविक और सजीव है।

कथोपकथन की सार्थकता उपन्यास में कथा के विकास, विस्तार और औपन्यासिक शिल्प की कलात्मक अभिवृद्धि कराने में है किन्तु, केवल औपन्यासिक शिल्प को केन्द्र बनाकर कथोपकथनों का विस्तार–भार किसी कृति को लचर बना देता है। कुशल रचनाकार पात्रों के चरित्र, उनके अनुभवों, विचारों एवं संवेदनों की मार्मिक अभिव्यक्ति में संवादों का सटीक प्रयोग करता है। नागरजी का रचनाकार कथोपकथन के सभी छोरों को छूता हुआ अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए यथार्थ–भूमि पर सहजता से अवतरण करता है। उन्होंने इतिहास, राजनीति, धर्म संस्कृति, समाज, साहित्य आदि विषयों पर विचाराभिव्यक्ति के लिए यत्र–तत्र लम्बे कथोपकथन भी दिये हैं, जो औपन्यासिक संवेदना को ठोस पहुँचाते हैं। स्वगत चिन्तन और स्वगत कथन में भी संवादों का अनावश्यक विस्तार अखरता है। फिर भी, सरलता और रोचकता उसे दुरूह होने से बचा लेती है। यों तो वर्णनात्मक संवाद उनके प्रायः सभी उपन्यासों में मिलते हैं किन्तु 'बूँद और समुद्र' 'अमृत और विष', 'एकदा नैमिषारण्ये' में विशेष रूप से प्राप्त होते हैं। कथोपकथन सम्बन्धी कतिपय न्यूनताओं के बावजूद नागरजी की संवाद–योजना प्रभावोत्पादक ढंग से वातावरण–चित्रण, पात्र–सृष्टि, कथा–विकास तथा शिल्प–सौष्ठव में अपना रंग बिखेरती रहती है।

नागरजी ने उपन्यासों में अति संक्षिप्त, संक्षिप्त, मध्यम विस्तार और भरपूर विस्तार वाले संवादों का प्रयोग हुआ है।

नागरजी ने दीर्घ संवादों का प्रयोग भी किया है। किन्तु, रोचकता, सरसता और सार्थकता के कारण ऐसे संवाद अपेक्षाकृत दुर्बल होते हुए भी कथा के विकास, पात्रों के चरित्रांकन और लेखकीय चिन्तन को अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। दीर्घ संवाद जब भाषण का स्वरूप ग्रहण कर लेता है तब उसकी मार्मिकता नष्ट हो जाती है और वह शिल्प की दृष्टि से दोष के अन्तर्गत गिना जाने लगता है। 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष' तथा 'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास में इस प्रकार के लम्बे और उबाऊ संवाद स्थान–स्थान पर मिलते हैं। इसी प्रकार 'एकदा नैमिषारण्ये' के नारद, व्यास सोमाहुति, सौति, गणपति नाग, शौनक आदि पात्र जब धर्म और दर्शन जैसे गूढ़ विषयों पर लम्बे–लम्बे प्रवचन करने लगते हैं, तब पाठक को विचित्र प्रकार की एक रसता महसूस होने लगती है और कथा–विकास में व्याघात उत्पन्न होता है।

नागरजी का अभिव्यंजन–शिल्प अत्यन्त उच्च कोटि का है। वे कथा को अप्रत्याशित घुमाव देकर अभिव्यक्ति की प्रभाव–वृद्धि के लिए नाटकीय संवादों के माध्यम से अप्रत्यक्ष–घटनाओं को प्रतयक्ष कर देते हैं। नागर जी की संवाद–योजना की एक मुख्य विशेषता यह भी है कि वे पात्र की भाषा–बोली और शैली से ही उसके अन्तर्वाह्य चरित्र की रेखाओं को उभार देते हैं। डॉ0 चुघ के अनुसार– ''नागरजी के संवादों में रेणु जी की अपेक्षा पात्रों का निजीपन अधिक झलकता है जो चरित्र–प्रकाशन के अनुकूल है।''[21] यत्र–तत्र पात्रों के स्वगत–कथन, स्वगत–चिन्तन और स्वयं के आलाप–प्रलाप के द्वारा भी संवादों की योजना हुई है। स्वगत–चिन्तन से पात्र की परिस्थिति, व्यथा, दीनता तथा मानसिक संघर्ष को भी अभिव्यक्ति मिलती है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुनियाँ का स्वगत–चिन्तन उसकी विवशता और पीड़ा का बोध कराता है।

'मानस का हंस' के तुलसीदास का स्वगत–चिन्तन नागर जी की चित्रण–कला का उत्कर्ष है। मोहिनी के प्रेम में डूबे हुए तुलसी के 'राम और काम' के अन्तर्द्वन्द्व की गुत्थियों को बड़ी सफाई एवं रोचकता के साथ उकेरा गया है। इसी प्रकार 'खंजन नयन' में सूर की अन्तः प्रेरणा और अन्तर्द्वन्द्व को उनके स्वगत–चिन्तनों द्वारा अंकित किया गया है। सूर के जन्म, ग्राम और जन्मान्ध होने की प्रामाणिकता ही संवादों द्वारा सिद्ध की गयी है।

मनः स्थिति, दृश्य और परिवेश को एकमेक करके अभिव्यक्ति को प्रभाव पूर्ण बनाने की दृष्टि से 'सुहाग के नूपुर' के संवाद अत्यन्त मार्मिक बन पड़े हैं।

समग्रतः नागरजी के उपन्यासों का संवाद–शिल्प प्रचलित मान्यताओं से ही परिचालित नहीं होता वरन् उसके पीछे नवीन मौलिक उद्भावनाएँ भी क्रियाशील रही हैं। उनके संवाद उपन्यास की कथा की गत्वरता, चरित्र–प्रकाशन, वातावरण–सृष्टि और लेखकीय उद्देश्य की सिद्धि में सार्थक हैं। उपयुक्तता, अनुकूलता, संबद्धता, स्वाभाविकता, नाटकीयता, मार्मिकता आदि नागर जी के संवादों की सहज विशेषताएँ हैं, निखार आता गया है।

देशकाल परिवेश–शिल्प

उपन्यास में सजीवता, स्वाभाविकता और गरिमा लाने के लिए अनुकूल वातावरण की सृष्टि हेतु उपन्यास की कथा वस्तु के अनुसार, देश कालान्तर्गत किसी भी राष्ट्र देश अथवा समाज और जन–जाति के आचार–विचार, वेश–भूषा, रीति–रिवाज, सभ्यता–संस्कृति तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है। तथा उस देश की प्राकृतिक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन भी होता है। इस प्रकार लेखक अपने औपन्यासिक कौशल से युग विशेष के परिवेश को जीवंतता के साथ उपस्थित कर देता है। परिवेश की प्रामाणिकता सदैव स्थान और समय सापेक्ष होती है। दूसरे शब्दों में ऐतिहासिक उपन्यासों की कथा वस्तु देश काल की सापेक्षता में रची जाती है और सामाजिक उपन्यासों में स्थानीय रंग (लोकल कलर) का उभरना आवश्यक होता है। स्थानीय रंग को दूसरे शब्दों में आंचलिकता कहा जा सकता है। स्थान विशेष की भाषा, संस्कृति, लोक–व्यवहार, मुहावरे आदि का प्रयोग तथा सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण स्थानीयता की रक्षा के लिए किया जाता है।

नागरजी के उपन्यासों में परिवेश का चित्रण बड़ी ही सफाई के साथ हुआ है। एतदर्थ उन्होंने प्रतीकात्मक, भावात्मक और चित्रमयी कल्पनाओं को माध्यम बनाया है। नागर जी के प्रारम्भिक उपन्यासों में मध्य युगीन लखनऊ की नवाबी सभ्यता, स्थानीयता के चटकीले रंगों में चित्रित है। नागरजी ने 'अमृत और विष' एवं 'शतरंज के मोहरे' में लखनऊ के वातावरण की सृष्टि की है। पाठकों का आक्षेप है कि 'शतरंज के मोहरे' की अपेक्षा 'बूँद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' में लखनऊ का वातावरण सजीवता नहीं प्राप्त कर सका। इस सम्बन्ध में नागर जी का स्पष्टीकरण ध्यान देने योग्य है– ''बूँद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' में लखनऊ का वातावरण 'शतरंज के मोहरे' में किसी भी प्रकार न्यून नहीं है। फिर भी, यदि पाठकों को शिकायत है तो उसके लिए मैं दोषी नहीं, समय का दोष है, जिसकी घटनाओं और परिस्थितियों को उपन्यास का रुप दिया गया है। फिर वातावरण और देश काल का तो महत्व है ही। जैसा कि आप जानते हैं, 'शतरंज के मोहरे' का काल नवाबों का काल है, जिनकी सम्पन्नता और विलासिता की कहानियाँ भारत क्या विदेशों में भी फैली हुई हैं। नवाबों और उनके नगर के चित्रण में वातावरण विशेष रुप से प्रतिरूपित हो तो आश्चर्य नहीं मानना चाहिए।''[22]

उपन्यास के आरम्भ में हमें उद्देश्य का संकेत मिलता है और नवाबी अत्याचारों का वातावरण जीवंतता के साथ प्रस्तुत है– ''काले भूरे बादलों के घनघोर घेराव से आकाश घुट रहा था। धरती पर उसकी मनहूसियत फैल रही थी, नाजिमी सेनाओं की आहट से गाँव की हवा तक को साँप सूँघ गया था।''[23]

सामाजिक उपन्यासों में 'महाकाल', 'सेठ बाँकेमल', 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'सुहाग के नूपुर' और 'नाच्यौ बहुत गोपाल' का नाम आता है। 'महाकाल' बंगाल के अकाल की पृष्ठ भूमि पर रचित है। इस उपन्यास का वातावरण विवशता, करुणा और श्मशान की सी उदासी से परिपूर्ण है। दूसरी ओर अत्याचार, बलात्कार, नृशंसता के पीछे सामन्तीय और व्यावसायिक मनोवृत्ति उजागर हुई है। 'सेठ बाँकेमल' का देशकाल–वातावरण, हास्य व्यंग्यपूर्ण है। इसमें स्थानीयता सम्बन्धी वैशिष्ट्य मिलता है। यह नयी–पुरानी पीढ़ी के संघर्ष एवं सामाजिक आशयों से संश्लिष्ट तथा पुराने समाज के आचार–विचार, परिवर्तन मान्यताओं, देश–प्रेम एवं कुंठाहीन जीवन–दर्शन को साकार करने वाली रचना है।

छोटे–छोटे व्यंजक व्यौरों के द्वारा वातावरण–चित्रण की कला में नागर जी बड़े सिद्ध हस्त हैं। नागर जी में वातावरण–चित्रण की अद्‌भुत क्षमता है। नागर जी को गली–कूचों, वहाँ की बोली बानी का उतना ही नजदीकी अनुभव है जितना प्रेम चन्द को खेतों–खलिहानों का था। अपने समृद्ध अनुभव एवं चित्रण कौशल से उन्होंने यथार्थवादी वर्णन शैली को विशेष गरिमा दी है।

'अमृत और विष' में भी सूक्ष्म व्यौरों से मुहल्ले–टोले के छोटे–छोटे घर, मन्दिर और बैठक, सड़कें, गलियाँ, त्यौहार और उत्सव, विभिन्न कोणों से देखे गये बाढ़ के दृश्य, चुनाव की हलचलें, राजनीतिक षड़यन्त्र आदि प्रत्यक्ष हो उठे हैं। बाढ़ का दृश्य पाठक के मानस–पटल पर उसकी यथार्थ स्थिति को साकार कर देता है। 'सुहाग के नूपुर' में भी बाढ़ की भयंकरता का सजीव वर्णन मिलता है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' में मेहतर कहे जाने वाले अन्त्यजों के जीवन को आधार बनाकर जातिगत समाज को उजागर है। इस उपन्यास की मेहतर बस्ती हमारी आज की आँखों में देखी बस्ती से अभिन्न है; जहाँ पहुँचकर हमें वह सब कुछ देखने–सुनने को मिल जाता है जो उपन्यास में वर्णित है। वही मसीताराम, वही निर्गुनियाँ, वही गुल्लन चाची, नब्बो–सभी हमें प्रत्यक्ष दिखायी पड़ते हैं। नागरजी ने मेहतर–बस्ती के सजीव वातावरण के साथ मेहतरों के दुःख–दर्द, गाली–गलौज, चोरी–डाका, लड़ाई–झगड़ा तथा नित्य–प्रति की जिन्दगी की कड़ुवाहट को भी साकार कर दिया है। बस्ती के बाहर हमें देखने को मिलता है छावनी के बाजार में स्थित जैक्सन का रंग महल, सिकन्दर का क्लब घर, डाकू मोहना का शरण स्थल, खण्डहर, आर्य समाज–मन्दिर, थाना आदि और इन्हीं के बीच शोभा पाती है झोपड़ों वाली निर्गुनियाँ की मेहतर बस्ती। उपन्यास के प्रारम्भ में ही लेखक ने उस बस्ती की स्थिति की रुपरेखा प्रस्तुत की है।

पौराणिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर रचित नागर जी के तीन उपन्यास हैं– 'एकदा नैमिषारण्ये', 'मानस का हंस' और 'खंजर नयन'। इनका वातावरण हमारी आँखों के सम्मुख पौराणिक और मध्यकालीन भारत को साकार करता है। नागर जी छोटे–छोटे व्यंजक व्यौरों के लिए तो प्रसिद्ध ही है। 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' में अयोध्या, काशी, चित्रकूट,

इलाहाबाद, परासोली, वृन्दावन का सामाजिक एवं धार्मिक चित्रिण अत्यन्त सजीव एवं युगानुकूल तो है ही, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वह सटीक एवं खरा उतरता है। मुगल कालीन राजनीतिक पृष्ठ भूमि पर उपन्यास का वाह्य परिवेश, युद्ध की हलचल एवं आतंक के साथ अंकित है। 'एकदानैमिषारण्ये' में अयोध्या, मथुरा, नैमिषारण्य, प्रयाग, कौशाम्बी, पद्मावती आदि पवित्र धर्म नगरियों की रमणीयता, वैभव–सम्पन्नता के प्रतीक महल–मन्दिर, भवन, झोपड़े, अरण्य, वाटिकाएँ, नदी–तट, प्राकृतिक वैभव, राजपथ, गलियाँ, पगडंडियाँ, हरे–भरे खेत, युद्ध के मैदान, नौका–विहार, रथों अश्वों, गजों की भागदौड़, यज्ञ कुण्ड का धुआँ, पर्व, नृत्य, युद्ध, अग्नि से जलते हुए वन वृक्ष, नदी–घाट का दृश्य आदि सब कुछ तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक परिवेश और देशकाल के अनुरूप है।

औपन्यासिक परिस्थितियों को स्वाभाविक बनाने के लिए आन्तरिक वातावारण का चित्रण आवश्यक होता है और यह कार्य घटनाओं और परिस्थितियों के चित्रण द्वारा किया जाता है। नागरजी कोमल एवं भयंकर दोनों प्रकार के वातावरण–चित्रण में सक्षम है । कठोर वातावरण–चित्रण का एक उदाहरण दृष्टव्य है–"कोलाहल टीले पर दौड़ता हुआ चढ़ रहा था। नीचे बस्ती में लपटें उठ रही थीं। प्राणान्तक आर्त्तनाद, पशुओं का डकारना और भयाक्रान्त उड़ते पक्षियों का कलरव वायुमण्डल में सनसना रहा था। शोर मचाता हुआ विजयी शत्रु दल वट–वृक्ष के नीचे से होकर गुजरा। इज्या आवेश में आकर यहीं चूक गयी। उसने तीर बरसाने शुरू कर दिये। वट–वृक्ष अब शत्रु–दल के आकर्षण का केन्द्र बन गया। तीर अब केवल ऊपर से नीचे ही नहीं वरन् नीचे से ऊपर भी आने लगे। दो–चार मशालची और आठ–दस धनुर्धर पेड़ को घेर कर खड़े हो गये। बाकी टीलों पर इधर–उधर कुटियों में आग लगाते डोलने लगे।"[24] वातावरण की कठोरता का इतना प्रभाव पूर्ण चित्रण नागर जी की अनूठी कला का परिणाम हैं। 'शतरंज के मोहरे' और 'महाकाल' उपन्यासों में राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश को मूर्तित करने की दृष्टि से कठोर वातावरण–चित्रण का विशेष महत्व है।

नागरजी पात्रों का मानसिक स्थिति का चित्रण करते हुए उसे अप्रस्तुत वातावरण से जोड़कर इतनी बारीकी से काम लेते हैं कि पाठक को वातावरण समझने में तनिक भी विलम्ब नहीं होता। 'अमृत और विष' में लच्छू की मनःस्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण वातावरण–प्रधान है– "बिना पेट्रोल की पंक्चर पहियों वाली मोटर की तरह लच्छू अपने कमरे में निकम्मा पड़ा था। भभ्भड़ भरे ब्याह–कारज के बाद जैसे हिसाब–किताब की विधि मिलायी जाती है, उसी तरह गहरी उदासी के रेगिस्तान में रह–रह कर उसका ध्यान अपने पीछे छोड़े हुए पद–चिन्हों पर जाता था। आज सुबह से यही दशा है, जो अपने आप ही रह–रहकर घन घोर घुटन एक अदृश्य बिन्दु से फैलते–फैलते पूरे तन–मन बुद्धि सभी पर घटाटोप बनकर छा जाती है। फिर अनबूझी पीड़ा बरसती जो समझ की सतह पर, लाने का प्रयत्न करते ही अपने असफलता के रूप में स्पष्ट उभर आती है।"[25] यहाँ मन की उदासी और रेगिस्तान बिम्ब–प्रतिबिम्ब–भाव से जुड़ गये हैं।

नागरजी के उपन्यास में देशकाल–वातावरण–चित्रण सजीवता, स्वाभाविकता, सूक्ष्मता और सोद्देश्यता की कसौटी पर खरा उतरता है। नागर जी जितने ही सक्षम लेखक हैं, उतने ही प्रबुद्ध समाज शास्त्री भी। उनके इस ज्ञान ने उनके उपन्यासों को देशकाल–वातावरण तथा स्थानीयता की दृष्टि से निर्दोष बनाया है।

विचार, प्रस्तुतीकरण–शिल्प

साहित्यकार समाज का मन और मस्तिष्क दोनों ही होता है। समसायिक समाज की पीड़ा, उत्पीड़न और शोषण का विश्वस्त चित्र तो वह उरेहता ही है, इसके साथ ही समाज में चलने वाले विचार, चिन्तन और जीवन मूल्यों का भी चित्रण करता है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में समाज, संस्कृति, राजनीति तथा आत्मा, ईश्वर, कला, जीवन और मृत्यु राष्ट्रीयता आदि विषयों पर अपने उपन्यासों में भाषा के माध्यम से पात्रों, उनके पारस्परिक संवादों में मोती की भाँति पिरोया है। उन्होंने अपने सामाजिक उपन्यासों में व्यक्ति और समाज को 'बूँद और समुद्र' की भाँति एक–दूसरे से अभिन्न बताया है। उनका 'अमृत और विष' वास्तव में आस्था और जिजीविषा का ही द्योतक है, वे आस्था के सर्जक और जिजीविषा के वितरक हैं। उनका विश्वास है कि जीवन संघर्षों से जूझता हुआ मनुष्य प्रेम और विश्वास। विचारों के पोषक हैं बाबा राम जी, दिग्विजय ब्रह्मचारी, सोमाहुति भार्गव, तुलसीदास और सूरदास आदि आदर्शवादी पात्र।

संक्षेप में नागरजी ने रूस के साम्यवाद की प्रसंशा की है। उनका विचार है कि संकीर्ण अहंमन्यता और सत्तागत स्वार्थ निन्दनीय है। राजनीति को वे केवल स्वार्थ सिद्धि का साधन मानते हैं। गाँधी जी के सिद्धान्तों की व्यावहारिकता को वे स्वीकार करते हैं और मानव प्रेम ही उनके लिए श्रेयष्कर है। हिंसा को वे अज्ञान जनित मानते हैं।

नागर जी साम्यवाद को अहिसा का जनेऊ कहते है और वे वास्तव में तो मानवतावादी हैं। हम कह सकते है कि– "सामान्तवाद से पूँजीवाद और आगे चलकर साम्यवाद से समाजवाद तक उनकी वैचारि यात्रा निश्चित रूप से मानवतावाद के पोषण में ही पकाव पा सकती है।"[26]

भाषा–शिल्प

अमृतलाल नागर के उपन्यासों की भाषा एक ओर उनकी सांस्कृतिक अभिरुचि और श्रेष्ठ मानवतावादी जीवन–दृष्टि का संवहन करती है और दूसरी ओर देशकाल–पात्र के अनुरूप सुरुचि पूर्णता, गम्भीरता, स्थानिकता, हास्य–व्यंग्य–विनोद ही नहीं लखनवी नजाकत और नफासत से युक्त होकर रचनाकार के औपन्यासिक कौशल में चार–चाँद लगा देती है।

नागरजी की मातृ भाषा तो गुजराती है। परन्तु उर्दू, अंग्रेजी, मराठी, बंगला आदि भाषाओं का भी उन्हें अच्छा ज्ञान है। संस्कृत और तमिल भाषाओं से भी उनका प्रगाढ़ सम्बंध है। फिर भी, उन्होंने हिन्दी को अपनी साहित्य–भाषा बनाया। उन्होंने अपने साहित्य सृजन के लिए विविध पृष्ठ

भूमियों का चयन किया है। 'सेठ बाँकेमल' हास्य–व्यंग्य प्रधान औपन्यासिक कृति है। 'महाकाल', 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'नाच्यौ बहुत गोपाल' सामाजिक समस्याओं पर आधृत हैं। 'शतरंज के मोहरे', 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' में ऐतिहासिक पीठिका पर नवाबी संस्कृति का अंकन हुआ है। 'सुहाग के नूपुर', 'एकदा नैमिषारण्ये', 'मानस का हंस' और 'खंजन–नयन' में ऐतिहासिक, पौराणिक और सांस्कृतिक प्रेरणा कार्य करती है। साहित्य–सृजन की ये वैविध्यपूर्ण भाव भूमियाँ रचनाकार से विशद जीवनानुभव और समृद्ध शब्द–भण्डार की मांग करती हैं। नागरजी के उपन्यासों का कोई भी अध्येता यही कहेंगा कि उन्होंने भाषिक संरचना के धरातल पर अपने दायित्व का सम्यक् रूप से निर्वाह किया है। उनके उपन्यासों में रचनाकार की अभिव्यक्ति–क्षमता, भाषागत, जीवंतता के रूप में निरंतर अभिवृद्धि पाती रही है। उनकी भाषा प्रत्येक स्थिति में जन–जीवन से जुड़ती है।

लखनवी पृष्ठ भूमि पर आधारित नागर जी के उपन्यासों में अवधी की हर रंग की क्षेत्रीयता, गली–मुहल्लों की बोल–चाल की भाषा से लेकर शिक्षित वर्गो के विविध स्तरीय भाषा–रूपों के साथ कहीं ब्रज का पुट और कहीं आगरे की रंगत दिखायी पड़ती है। वास्तव में पात्रों के निजीपन को अलग–अलग करके प्रस्तुत करने में नागर जी की भाषा अद्भुत है। नागर जी के उपन्यासों में बीसों भाषा–शैलियों के दर्शन किये जा सकते है। उनके संवादों का आधार यथार्थ जीवन है। उनके मनोरंजक संवाद हास्य की सृष्टि करने के अतिरिक्त चित्रणगत सजीवता की छाप मन पर छोड़ते हैं। निःसंदेह 'बूँद और समुद्र' मध्यवर्गीय नगरीय जीवन का रंगीन विशाल चित्र है।

नागरजी के कथा–वर्णन की भाषा–सरल तथा स्वाभाविक बोल–चाल की है। इसमें भरसक प्रवाह पूर्णता, उक्ति–वैचित्र्य, रोचकता और वातावरण–व्यंजकता का समावेश हुआ है। नागर जी की भाषा महलों से लेकर झोपड़ों तक, पर्वत की ऊंचाई से छूटकर पेड़ों पर, नदियों, वनों और प्रकृति के मनमोहक सौन्दर्य पर क्रीड़ा करती है। किन्तु, प्रकृति का सारा सौन्दर्य सिमटकर मानव में केन्द्रित हो जाता है और नारी तो सौन्दर्य का भण्डार ही है। उसका अन्तर्वाह्य सौन्दर्य मन को पराभूत करने में समर्थ है। 'मानस का हंस' की रत्नावली का स्वर्गिक सौन्दर्य तुलसी का मन मोह लेता है। वास्तव में लेखक की सौन्दर्य चेतना भाषा का सौन्दर्य बनकर उभरी है।

पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग नागर जी के उपन्यासों की उल्लेखनीय विशेषता है। उनके ग्रामीण पात्रों की बोली में जन भाषा के शब्दों का प्राचुर्य है और नागरिक पात्रों की भाषा में नगर की भाषा के शब्दों का। मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू–फारसी शब्दों का बाहुल्य है। सोमाहुति भार्गव जैसे आचार्यों और विद्वानों की भाषा संस्कृतनिष्ठ और परिष्कृत है। ग्रामीण पात्र गँवई गांव की बोली बोलते हैं। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की सबसे बड़ी विशेषता उसकी भाषा है।

नागरजी की भाषा–शक्ति अनुपम है। उन्हें संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से युक्त परिमार्जित भाषा, अरबी–फारसी मिश्रित उर्दू भाषा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं यहाँ तक कि वैयक्तित स्तर पर भाषा–प्रयोगगत बारीकियों की ऐसी पकड़ है कि अनेक बार भाषा सम्बन्धी विशिष्टताएँ ही उनके पात्रों की निजी पहचान बन जाती हैं। वातावरण–चित्रण, पात्रों के चरित्रांकन तथा उनकी विविध भंगिमाओं को उजागर करने में नागर जी भाषा– विवेक का जैसा निपुण प्रयोग करते हैं वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अरुणेश नीरन ने ठीक ही लिखा है– ''भाषा के इतने रंग कहीं भी दुर्लभ हैं। भाषा कहीं रिरियाती है, कहीं खोंखती है, कहीं तन जाती है, कहीं फूट पड़ती है, कहीं लजौनी की तरह लजा जाती है। हर वर्ग की नजाकत–नफासत और निजत्व का भीतरी हिस्सा उसकी खिड़कियों से साफ दिखलाई देता है। बहुत इत्मीनान और लगन के साथ नागर जी भाषा की गहराइयों में पैठे हैं और खूब पैठे है, भाषा का प्रचलित रूप आभिजात्य और उसकी मूल–संवेदना की तेजस्वी चमक में सारा कुछ जगमगा उठा है।''[27]

नागरजी ने हिन्दी भाषा को सब प्रकार से समर्थ बनाया है। उनके साहित्य में भाषा की अगाध सम्प्रेक्षण–क्षमता है। वहाँ सहज, सरल, बोधगम्य, आलंकारिक, मनोरम भाषा–रूप से लेकर गूढ़ संस्कृतनिष्ठ दार्शनिक भाषा का गुरु गम्भीर–रूप प्राप्त होता है। नागर जी के उपन्यासों में यत्र–तत्र हास्य–व्यंग्य एवं विनोद का गाढ़ा रंग दिखाई पड़ता है। 'मानस का हंस' में रत्नावली का व्यंग्य तुलसी को वैराग्य–पथ पर पहुँचा देता है।

'मानस का हंस' में प्रकाण्ड तान्त्रिक पण्डित रविदत्त की भाषा अपना अलग ढब लिए हुए है। आक्रोश की स्थिति, में अहिर युवक की बोली अवधी का गाढ़ा रंग लिए है। नागर जी ने भाषा को रोचक एवं आकर्षक बनाने के लिए चित्रात्मक शैली का सहारा लिया है। वस्तु–वर्णन के अर्न्तगत प्रकृति अथवा बाढ़, बारात, युद्ध–प्रयाण, मुहल्ले की लड़ाई–झगड़े जैसे अनेक प्रसंग बिम्बित हो गये है। आक्रमण, दंगा, जुलूस आदि के वातावरण–चित्रण के लिए इसी शैली का प्रयोग किया गया है।

परिस्थिति के अनुकूल नागरजी की भाषा का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। सामान्य प्रसंगों में भाषा का स्वरूप सरल और सरस होता है जबकि चिंतन प्रधान प्रसंगों में भाषा गम्भीर हो गयी है। एक ही पात्र सहज मनःस्थिति में सामान्य भाषा का प्रयोग करता है और चिन्तन की सूक्ष्मता में भाषा दार्शनिक और गूढ़ रूप धारण कर लेती है। 'अमृत और विष' के अरविन्द शंकर का चिन्तन एक बुद्धिजीवी एवं अनुभवी व्यक्ति की गंभीरता लिये हुए है।

नागरजी के उपन्यासों में बोल–चाल की भाषा कहीं हिन्दी मिश्रित अवधी है, कहीं ठेठ ग्रामीण अवधी और कहीं अंग्रेजी का लोक–प्रचलित रूप लिये हुए है। ग्रामीण भाषा में यदि अनपढ़ और तद्भव शब्दों का प्राचुर्य है तो नगर वालों की भाषा बोल–चाल की हिन्दुस्तानी है। शिक्षित लोगों के भाषा के दो रूप मिलते हैं– साधारण वार्ता में सहज भाषा के दर्शन होते है और चिन्तन मनन में संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता मिलती है। मुस्लिम पात्रों की भाषा

उर्दू–फारसी मिश्रित हैं। 'एकदा नैमिषारण्ये' की भाषा शुद्ध कलात्मक संस्कृतनिष्ठ एवं पौराणिकता लिए है। 'मानस का हंस' की भाषा साधारण हिन्दी रूप के साथ काव्यात्मकता भी समोये है।

नागरजी ने मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रचलित रूपों के अतिरिक्त नवीन उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं से भाषा को अंलकृत किया है। हास्य–व्यंग्य का गहरापुट, इनकी उर्वर कल्पना–शक्ति का प्रमाण है।

नागरजी की भाषा का लालित्य 'मानस का हंस' में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। हिन्दी का काव्यात्मक भाव भीना रूप पूरे उपन्यास में फैला हुआ है। अवधी का चटुल, चंचल–रूप पूरी शक्ति के साथ उभरा है। स्त्रियों की भाषा का रूप उनके घरेलूपन को साकार करता है। 'मानस का हंस' के सामान्य पात्रों के वार्तालाप में अवधी भाषा का प्रयोग अत्यन्त रोचक है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में यत्र–तत्र विवेचनात्मक भाषा का प्रयोग भी किया है।

नागरजी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की पृष्ठ भूमि नवाबी शासन से ली है। अतः उनके दोनों ऐतिहासिक उपन्यास 'शतरंज के मोहरे' और 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' में लखनवी, उर्दू–फारसी युक्त भाषा बड़ी शक्ति के साथ उभरी है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में काव्यात्मक उक्तियों के प्रचुर प्रयोग किये है। 'बूँद और समुद्र', 'मानस का हंस', 'एकदा नैमिषारण्ये', 'खंजन नयन' और 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में लोक गीतो हिन्दी कथा संस्कृत की काव्यात्मक उक्तियों के प्रयोग मिलते है। नागर जी की भाषा–समृद्धि का आधार उनका विपुल शब्द–भण्डार है।

नागरजी के उपन्यासों में कुछ विशेष संस्कार में ढले पात्र गालियों का प्रयोग करते पाये जाते है। 'बूँद और समुद्र' की ताई तथा 'नाच्यौ बहुत गोपाल' के अनेक पात्र बेहिचक गालियों का प्रयोग करते हैं। ये गालियाँ सामान्य लोक–जीवन में परिस्थिति के अनुसार प्रयुक्त होती हैं। वस्तुतः नागर जी जैसा भाषा का जादूगर हिन्दी में दूसरा कोई नहीं हुआ।

निष्कर्ष

समस्त विवेचनोपरान्त नागरजी के उपन्यासों के शिल्प का बिम्ब यह प्रमाणित करता है कि उनका शिल्प–वस्तु का सहचर है।

अमृतलाल नागर उन उपन्यासकारों में से एक है जिन्होंने सदा ही नित नवीन विषय को लेकर, नवीन शैली को अपनाकर अपनी औपन्यासिक रचनाओं का निर्माण किया है। उनकी प्रत्येक रचना अछूते संदर्भो एवं नूतन विषयों को लेकर चली है। वे एक चिंतनशील उपन्यासकार हैं। जनमानस में उठने वाले प्रश्नों को उन्होंने सदा ही बड़ी तत्परता एवं क्षमता के साथ प्रस्तुत किया है।

नागरजी उन सृजन–शील रचनाकारों में से हैं जिन्होंने सदा ही संकीर्णता के बंधनों को काटकर मानव मात्र के निजी जीवन को शब्दों में बांधकर प्रस्तुत किया है। उनका प्रत्येक उपन्यास, नये प्रश्न, नयी समस्या, नये आदर्श एवं नये यथार्थ को लेकर चला है। यथार्थ का आग्रह नागर में शिल्प और शैली की दृष्टि से भी प्रशंसनीय है। उनकी प्रत्येक रचना अपने में से

एक अभिनव प्रयोग है। नागरजी की उपन्यास कला का मूल–भूत उद्देश्य व्यक्ति एवं समाज में समन्वय की चिरन्तन समस्या का उद्घाटन कर उसका समाधान प्रस्तुत करना है और वाह्यारोपित सिद्धांतो की यांत्रिकता तथा रूढ़िवद्ध मान्यताओं की संकीर्णता पर व्यंग्यात्मक कठोर कोमल प्रहार करके व्यापक मानवता का संदेश देना है।

नागरजी ने कथानक के विकास में विविध विधियों का कथानक के सभी गुणों–सम्बद्धता, मौलिकता, निर्माण कौशल, सत्यता, रोचकता, मानव जीवन की समस्याओं की व्याख्या, प्रतिनिधित्व का संकेत, जीवन की विविध अवस्थाओं का चित्रण, जीवन पक्षों के महत्व का मूल्यांकन, अनुभूतियों की पूर्ण अभिव्यक्ति का ध्यान रखते हुए, कथानक के सभी रूपों– वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक आदि का प्रयोगपूर्ण सफलता के साथ किया है। उन्होंने कथानक और पात्रों के बीच विकासगत सन्तुलन और अन्तर्विरोध की उपेक्षा आदि का भी ध्यान रखा है।

नागरजी के प्रायः सभी उपन्यास मानव जीवन के अत्यधिक निकट हैं। मानव जीवन की समस्त विशेषताएँ उनमें मूर्त्त होकर आयी हैं। मानव सहज नहीं, दुर्भेद्य है, अतएव उसके जीवन की जटिलताएँ उपन्यास में भी साकार होकर आयी हैं। पात्रों के नये रूप इस बात का प्रतीक हैं कि लेखक का पात्रों का निर्वाचन क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। नागरजी के उपन्यासों में सोद्देश्य रचना के कारण ऐसे पात्रों का निर्माण हुआ है जो साधारण ही है। इनका निर्माण वर्गगत विशेषताओं तथा प्रवृत्ति विशेष के कारण हुआ है। मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण में ऐसे पात्रों को प्रस्तुत किया गया है जो विरोधी प्रवृत्तियों के परिणाम स्वरूप अधिक जटिल और असाधारण प्रतीत होते हैं। ऐसे पात्र अधिक विकासशील हैं, चरित्र–चित्रण का पक्ष सदैव प्रयोगशील रहा है इसलिए मानव सदैव अपनी विविधताओं के साथ उपन्यास में आयेगा और नवीनता का समावेश होता रहेगा।

नागरजी ने किसी एक विचार विशेष अथवा दुराग्रह से ग्रस्त होकर अपना कोई उपन्यास नहीं लिखा है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में विभिन्न राजनीतिक दलों के स्वार्थ और सत्ता के दुरुपयोग का चित्रण 'बूँद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' में पूर्ण सफलता के साथ किया गया है। परम्परागत कथानक को लेकर प्रचलित आदर्श के विरोध में यथार्थ का आग्रह करने वाले नागरजी के उपन्यास हैं– 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन'। इन दोनों के कथानक यद्यपि अतीत के हैं तथापि लीक से हटकर जीवन के उदात्त पक्ष को प्रस्तुत किया गया है। 'एकदा नैमिषारण्ये' पौराणिक विषय को लेकर रचा गया है। यह उपन्यास समस्त वैचारिक भिन्नता एवं जटिलता को रखते हुए भी लोक कल्याण एवं सांस्कृतिक अभ्युदय का एक अभिनव साहसिक प्रयास है। 'सात घूँघट वाला मुखड़ा', 'शतरंज के मोहरे' और 'सुहाग के नूपुर' में नागरजी का दृष्टिकोण अत्यन्त संवदेनशील है। इनमें उनका मानवता वादी दृष्टिकोण सर्वत्र दृष्टि गोचर होता है। यथार्थ के प्रति आग्रह उनमें सर्वत्र पाया जाता है। 'अमृत और विष', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन' इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

संवादों का प्रयोग उनके उद्देश्य और गुणों को ध्यान में रखते हुए पूर्ण सफलता के साथ किया गया है। देशकाल–परिवेश के अन्तर्गत सामाजिक, प्राकृतिक, ऐतिहासिक आदि परिवेशों का प्रयोग कर पात्रों के चरित्र, घटना और काल के विविध आयामों का सफल दिग्दर्शन कराया गया है।

जन जीवन की जो भाषा वेश्यालयों में, तांगे वालों में, दुकानदारों में, छात्रों में और सामन्ती वर्ग में बोली जाती है, वह सब नागरजी के उपन्यासों में मिल जाती है। इस दृष्टि से उनकी भाषा सप्त वर्णी इन्द्र धनुष के समान है, जहाँ विविधामा प्राप्त होती है।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास में भाषा की अर्थवत्ता और उसकी व्यंजना शक्ति को बढ़ावा देने वाला यह एक मात्र उपन्यासकार है। यशपाल ने पंजाबी के प्रयोग से भाषा की अर्थ शक्ति का विस्तार अवश्य किया परन्तु उनकी भावुकता वादों के नीचे दब गयी है। जैनेन्द्र की भाषा में शुष्कता और नीरसता है। वाक्य अन्वय ढीला है, भावुकता की परम कृपणता है। अतः इस क्षेत्र में, नागर जी स्वयं भू कलाकार हैं।

नागरजी की शैली वर्णनातिरेंकता, विविध प्रसंगों के उद्घाटन की क्षमता और रोचकता से पूर्ण होने के कारण जादू की तरह सिर पर चढ़ाकर बोलती है। डॉ0 सुदेश बत्रा के अनुसार नागरजी के पास "वाणी का कौशल तो है ही, अपने परिवेश, समाज और व्यक्तियों को बाँधने वाली कला भी है। ××× उनके शब्द जीवन से उठाए हुए शब्द हैं किन्तु उन्हें जिस अन्दाज और कौशल से उठाया गया है, वह काबिले तारीफ है। 'अमृत और विष', 'बूँद और समुद्र', 'मानस का हंस' और यहाँ तक कि 'नाच्यौ बहुत गोपाल' तक में शब्दों का प्रायोगिक बँधाव उस ईंट की तरह है जो इमारत में चुनी जाने पर अपनी अस्मिता भी बताती है और इमारत का सौष्ठव भी बढ़ाती है।"[28]

नागरजी के उपन्यासों में वस्तु और पात्रों के चित्र अपने परिवेश में जुड़े रहने के कारण ही विशिष्ट बन सके हैं। शिल्प की दृष्टि से नागर जी के उपन्यास हिन्दी साहित्य में अपना अलग महत्व रखते हैं। नागर जी को अपने किस्सागो होने पर गर्व है। नागरजी की चरित्र सृष्टि अपूर्व है। यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि नागर जी के उपन्यासों में पात्रों की जितनी विविधता है वह हिन्दी के किसी उपन्यासकार के उपन्यासों में नहीं हैं। उनकी लेखनी चरित्रांकन करते हुए व्यक्ति के बारीक से बारीक रेशों को भी उभार कर रख देती है।

नागरजी जैसा भाषा का विधायक हिन्दी में तो है ही नहीं अन्य भाषाओं में भी मिलना कठिन है।

प्रतिपाद्य विषय, देशकाल और सामाजिक परिवेश की भिन्नता उपन्यासों के भिन्न रूपों का निर्माण करती है जिससे भिन्न भाषा प्रयोग का सिद्धान्त अपने आप लागू हो जाता है। नागर जी ने अपने उपन्यासों में शैली की अभिव्यंजना शक्ति को भाषा के विविध उपादानों से सजाया है।

इस प्रयोग में जितनी सफला इन्हें मिली है, उतनी हिन्दी के किसी उपन्यासकार को नहीं मिली, यहाँ तक कि फणीश्वर रेणु को भी नहीं।

वस्तु और शिल्प की दृष्टि से नागरजी के समस्त उपन्यास पूर्ण सफल हैं। उनके उपन्यासों में वस्तु और शिल्प का अपार वैभव विद्यमान है। इसको जितनी सूक्ष्मता के साथ देखा और परखा जायेगा उतना ही इसका मूल्य बढ़ता जायेगा। वस्तु और शिल्प का जैसा मणि–कांचन संयोग नागरजी के उपन्यासों में है, वैसा अन्यत्र दुलर्भ है। नागर जी के उपन्यास भावी उपन्यासकारों के लिए पथ पदर्शक तो हैं ही, शोधार्थियों के लिए भी उनमें अनेक अछूते सन्दर्भ मिलने की प्रबल संभावनाएँ विद्यमान हैं। नागरजी के वस्तु एवं शिल्प के संबंध में 'तुलसी' की यह पंक्ति स्मरण आती है– "भयउ, न है, कोउ होनेउँ नाहीं"।

संकेत सन्दर्भ–

1. डॉ0 इन्द्रनाथ मदान–आज का हिन्दी उपन्यास। पृष्ठ–67
2. अमृतलाल नागर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–301–302
3. डॉ0सुदेश बत्रा–अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–356
4. " " " " " " " " पृष्ठ–306
5. डॉ0 सुरेश सिन्हा–हिन्दी उपन्यासः उद्भव और विकास। पृष्ठ–502
6. हिन्दी उपन्यासः महाकाव्य के स्वर। पृष्ठ–94
7. डॉ0 दामोदर वाशिष्ठ–अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–168
8. करेक्टर्स मेक मोर स्टोरी। पृष्ठ–02
9. अमृतलाल नागर के उपन्यास। पृष्ठ–241
10. नाच्यौ बहुत गोपाल। पृष्ठ–166
11. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–455–456
12. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–150
13. मानस का हंस। पृष्ठ–122–123
14. सुहाग के नूपुर। पृष्ठ–101
15. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–30
16. अमृत और विष। पृष्ठ–700
17. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–235
18. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–390
19. अमृत और विष। पृष्ठ–44
20. प्रेमचन्द–कुछ विचार, भाग–1। पृष्ठ–55
21. डॉ0 चुघ–आस्था के प्रहरी। पृष्ठ–81
22. आज–दैनिक, 19–अगस्त, 1979।
23. शतरंज के मोहरे। पृष्ठ–02
24. एकदा नैमिषारण्ये। पृष्ठ–113
25. अमृत और विष। पृष्ठ–679
26. डॉ0 सुदेश बत्रा–अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–289
27. दस्तावेज–अंक प्रथम, अक्टूबर, 1978। पृष्ठ–32
28. अमृतलाल नागरः व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त। पृष्ठ–335

उपसंस्कारक ग्रंथ–सूची

1. आधार ग्रंथ–उपन्यास :

लेखक–श्री अमृतलाल नागर।

1. महाकाल (भूख)–राजपाल एण्ड संस, दिल्ली। 1970
2. सेठ बाँकेमल–किताब महल, इलाहाबाद। 1971
3. बूँद और समुद्र– ,, ,, ,, ,, 1978
4. शतरंज के मोहरे–भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली। 1974
5. सुहाग के नूपुर–राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। पांचवा 1973 संस्करण
6. अमृत और विष–लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद। 1976
7. सात घूँघट वाला मुखड़ा–राजपाल एण्ड संस, दिल्ली। 1971
8. एकदा नैमिषारण्ये–लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद। 1972
9. मानस का हंस–राजपाल एण्ड संस, दिल्ली। 1987 संस्करण
10. नाच्यौ बहुत गोपाल–राजपाल एण्ड संस, दिल्ली। चतुर्थ 1982
11. खंजन नयन–राजपाल एण्ड संस, दिल्ली। 1981

समीक्षात्मक ग्रंथ (हिन्दी)

(अ)

1. अमृतलाल नागर के उपन्यास (नए मूल्यों की तलाश)–डॉ0 हेमराज कौशिक।
2. अमृतलाल नागर–व्यक्तित्व,कृतित्व एवं सिद्धांत–डॉ0 सुदेश बत्रा।
3. अमृतलाल नागर का उपन्यास साहित्य–प्रकाश चन्द्र मिश्र।
4. अमृतलाल नागर के उपन्यास–डॉ0 आनन्द प्रकाश त्रिपाठी।
5. अमृतलाल नागर के उपन्यासों में आधुनिकता : डॉ0 अनीता रावत।

(आ)

6. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण–डॉ0 मोहम्मद अजहर ढैरीवाला।
7. आधुनिक साहित्य–आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी।
8. आधुनिक हिन्दी साहित्य–डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।
9. आधुनिक साहित्य–विविध परिदृश्य–डॉ0 सुन्दरलाल कथूरिया।
10. आस्था और सौन्दर्य–डॉ0 रामविलास शर्मा।
11. आस्था के प्रहरी–डॉ0 सत्यपाल चुघ।
12. आधुनिक हिन्दी साहित्य–डॉ0 रामगोपाल सिंह चौहान।
13. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास–डॉ0 सरोजनी त्रिपाठी।

14. आज का हिन्दी उपन्यास–डॉ0 इन्द्र नाथ मदान।

(उ)

15. उपन्यासकार अमृतलाल नागर–डॉ0 दामोदर वाशिष्ठ एवं आशा बागड़ी।

16. उपन्यास का स्वरूप–डॉ0 शशिभूषण सिंहल।

(क)

17. कवितावली–गो0 तुलसीदास।

18. काव्य के रूप–गुलाब राय।

19. कुछ विचार–प्रेमचन्द्र।

(ग)

20. गद्य काव्य मीमांसा–पं0 अम्बिका दत्त व्यास।

21. गर्म राख की भूमिका–उपेन्द्र नाथ अश्क।

22. गेरुआ बाबा की भूमिका–गोपाल राम गहमरी।

(ज)

23. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास–रघुनाथ सरन झालानी।

(न)

24. नागर–उपन्यास कला–प्रकाश चन्द्र मिश्र।

25. नया साहित्य–नए प्रश्न–नन्द दुलारे बाजपेयी।

26. नया दौर–डॉ0 सत्येन्द्र।

(प)

27. परख–कुछ शब्द–डॉ0 जैनेन्द्र।

28. प्रेम चन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि–डॉ0 सत्यपाल चुघ।

(म)

29. मानव संस्कृति–डॉ0 श्यामा चरण दुबे।

30. मानक हिन्दी कोश (पहला खण्ड)–रामचन्द्र वर्मा, सम्पादक।

31. मानक हिन्दी कोश (तीसरा खण्ड)–रामचन्द्र वर्मा, सम्पादक।

(व)

32. वीर व्रत पालन की अवतरणिका–बनवारी लाल त्रिवेदी।

33. विवेक के रंग–दो आस्थाएँ–राजेन्द्र यादव।

(श)

34. शतरंज के मोहरे–एक दृष्टि–रामअवध शास्त्री।

(स)

35. समीक्षायण–डॉ0 पारुल कान्त देसाई।
36. समीक्षा शास्त्र–सीताराम चतुर्वेदी।
37. साहित्या लोचन–डॉ0 श्यामसुन्दर दास।
38. साहित्य का श्रेय और प्रेय–जैनेन्द्र कुमार।
39. साहित्य का उद्देश्य–सीताराम चतुर्वेदी।
40. सुख शर्वरी का निदर्शन– किशोरी लाल गोस्वामी।

(ह)

41. हिन्दी साहित्य कोश।
42. हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास–डॉ0 रणवीर रान्ध्रा।
43. हिन्दी उपन्यास–डॉ0 सुषमा धवन।
44. हिन्दी उपन्यास–शिव नारायण श्रीवास्तव।
45. हिन्दी उपन्यास–डॉ0 सुरेश सिन्हा।
46. हिन्दी उपन्यास–सिद्धांत और संरचना–रवीन्द्र कुमार जैन।
47. हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन–डॉ0 अमर जायसवाल।
48. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद–डॉ0 त्रिभुवन सिंह।
49. हिन्दी उपन्यास सिद्धांत और समीक्षा–माखन लाल शर्मा।
50. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ–डॉ0 शशिभूषण सिंहल।
51. हिन्दी उपन्यास–शिल्प और प्रयोग–डॉ0 त्रिभुवन सिंह।
52. हिन्दी उपन्यास–उद्भव और विकास–डॉ0 सुरेश सिन्हा।
53. हिन्दी उपन्यास–महाकाव्य के स्वर–शांति स्वरूप गुप्त।
54. हिन्दी का गद्य साहित्य–डॉ0 रामचन्द्र तिवारी।
55. हिन्दी उपन्यासों में कथा शिल्प का विकास–डॉ0 प्रताप नारायण टंडन।
56. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास–शंभू नाथ।
57. हिन्दी उपन्यास–शिल्प–बदलते परिप्रेक्ष्य– डॉ0 प्रेम भटनागर।
58. हिन्दी साहित्य–एक आधुनिक परिदृश्य–अज्ञेय।
59. हिन्दी उपन्यास–एक अन्तर्यात्रा–डॉ0 रामदरश मिश्र।
60. हिन्दी उपन्यास परम्परा और प्रयोग–डॉ0 सुभद्रा।
61. हिन्दी उपन्यास–ब्रजरत्न दास।
62. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष–शिवदान सिंह चौहान।
63. हिन्दी उपन्यास का इहिास–डॉ0 गोपाल राय।

64. हिन्दी साहित्य का इतिहास–रामचन्द्र शुक्ल।
65. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ0 नगेन्द्र।
66. हिन्दी के सांस्कृतिक उपन्यास–डॉ0 सी.चेन्न केशवुलु।
67. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ0 माधवराव सोनटक्के।
68. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास (अष्टम भाग)–डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।
69. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास–डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त।
70. हिन्दी साहित्य–हजारी प्रसाद द्विवेदी।

English Books

1- Aspeets of the Novel- E. M. Forster.
2- A short history of the Novel- S. D. Neel.
3- An introduction to the english Novel. Arnol Kalle.
4- Characters make more story- Meren alwood.
5- Dictionery of world literature- J.T. Shiplay.
6- Form of fiction- Willam van o. Corner.
7- Formes of modern fiction- Mark Shorar.
8- How not to write a play- Walker pens.
9- Letter to the huge walpoble- Henery James.
10- New literary values- Devid daches.
11- Novelist of the Novel- Talastay.
12- New Inter national dictionary- Werester.
13- Qvetatated in the play writesart-Roder M. Busfield.
14- Slifing the Hollow man characterization-Scott Meredith.
15- The quest of literature- Shiplay.
16- The Encyelopaedia of America.
17- The writers Book- Aera Walford.
18- The Novel and the people- Ralf Fox.
19- The Development of the Novel- Cross.
20- The History of Novel- E.A. Baker.
21- The Encyelopidia of the social Sciences.
22- The problem of style- J.Midd leton murray.
23- The art of fiction- Henery James.
24- The Common reader- Virginia walf.

25- The Craft of fiction- Percy. lubbock.
26- The writer's art- G. Henary warren.
27- The te cnigue of fiction writing- Kenneth macnichol.
28- To Cheers for demo cracny- E.M. forster.
29- Time and the Novel- Mendilow.
30- The Tecnigue of novel- Carl H. Grabo.
31- The theory of literature- Austen Warren and renewellek.
32- Talk on writing english Series.
33- The play writer- Green wood.
34- The measuring of fiction- Albert Cook.
35- Writing advise and devices-Walter S. Combell.
36- The future of the Novel- Henary James.
37- Fundementals of good writing- Robert renn warren.

पत्र–पत्रिकाएँ

1. 'आलोचना'– उपन्यास विशेषांक– अंक 13 (2) आलोचना वर्ष–1–खंड–1।
2. 'माध्यम' – मई 1965।
3. धर्मयुग –अप्रैल–8–1973।
4 दस्तावेज विशेषांक–अक्टूबर 1978।
5. आलोचना वैल्यूम चार 1954–55।
6. डॉ0 ललित शुक्ल का– दिशाओं के परिवेश, मध्यवर्ग का विस्तार और अर्न्तविरोध : शीर्षक लेख–सुरेन्द्र चौधरी।
7. राष्ट्र धर्म, जून 1974।
8. समीक्षा, 15 अक्टूबर, 1972।
9. आलोचना, अंक 20।
10. आज–दैनिक, 19 अगस्त, 1979।
11. प्रतीक–जनवरी 1961–यशपाल।
12. प्रतीक–जनवरी 1961–भगवती चरण वर्मा।
13. साहित्य–संदेश–आधुनिक उपन्यास अंक 1956।
14. एक साक्षात्कार–11–11–1971 राजेन्द्र यादव।
15. आजकल–मासिक– जुलाई 1957 (दिल्ली)।

16. धर्म युग– नवम्बर 1980।

17. नया जीवन– मई, जून–1962।

18. आज–दैनिक 19 अगस्त 1979।

19. धर्म युग–अगस्त 1964।

20. आलोचना–अंक 28।

21. मनोरमा–जनवरी 1979।

22. सीमान्त प्रहरी–अमृतलाल नागर, अंक।

BUNDELKHAND UNIVERSITY
Central Library
Acc. No. 12639
Date
JHANSI